॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

३६



महाकविबाणभट्टविरचितं

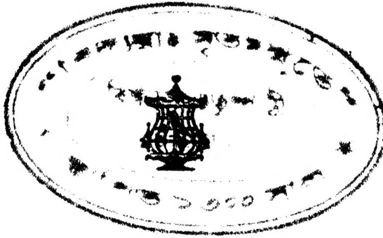
हर्षचरितम्

श्रीशङ्करकविरचित 'सङ्केत' व्याख्योपेतम्

हिन्दीव्याख्याकारः

पं० श्रीजगन्नाथपाठकः साहित्याचार्यः

बिहारप्रान्तीयवैद्यनाथधामगुरुकुलप्राध्यापकः



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

मूल्यं ६) [ई० १९५६

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्याभवन,

चौक, वाराणसी-१

Chowkhamba Vidya Bhawan

Chowk, Varanasi-1

मुद्रकः—

विद्याविलास प्रेस,

वाराणसी-१



भूमिका

महाकवि बाण

संस्कृत-साहित्य में महाकवि कालिदास की पद्य-रचना जितनी उत्कृष्ट और सरस है उतनी ही महाकवि बाण की गद्य-रचना महत्त्वशाली है। बाण ने अपनी गद्य-रचना का जो परिष्कृत और परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया है वही आगे चल कर साहित्य के अन्य गद्य-कवियों के लिए आदर्श बन गया। संस्कृत में गद्य-साहित्य की यों ही कमी समझी जाती है और बाण जैसे कवि ने आकर मानों अपने पहले और आगे के समस्त अभाव की पूर्ति स्वयं कर ली। हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है जो गद्य की उत्कृष्ट शैली के कादम्बरी में होने वाले साक्षात्कार की प्रस्तावना है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि कादम्बरी के संतुलन में हर्षचरित एकदम नहीं आ सकता, बल्कि बाण की चित्रग्राहिणी प्रतिभा का निखार अपेक्षाकृत हर्षचरित से कादम्बरी में अधिक पाया जाता है। हर्ष-चरित में बाण की महती साधना अभिलक्षित होती है। वही साधना कादम्बरी के रूप में फल के समान उद्भूत हुई है। जैसे कोई योगी सिद्धिप्राप्ति के उद्देश्य से साधना में स्थिर हो जाता है उसे साधक कहते हैं और जब उसकी साधना फलित हो जाती है तब वह सिद्ध की आख्या ग्रहण करता है उसी प्रकार हर्षचरित में बाण साधक हैं और कादम्बरी में सिद्ध। बाण के दोनों ग्रन्थ साहित्य और कला की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण हैं। विशेषरूप से हर्षचरित पर बाण की युगीन संस्कृति का प्रभाव अधिक है। अतः ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से हर्षचरित संस्कृत-साहित्य का सर्वाधिक मूल्यवान् ग्रन्थ है ऐसा विद्वानों का कथन है। हर्षचरित हमें बाण की आत्मकथा से भी बहुत अंशों में परिचित कराता है। बाण ने हर्षचरित के प्रसंग में आत्म-चरित को सन्नद्ध करके साहित्यिक जगत् का बड़ा ही उपकार किया है। बाण के साहित्य का अध्ययन करते हुए हमारी आँखों के सामने बाण का स्वाभिमानी और मस्ताना व्यक्तित्व नाचने लगता है। हम उसी के आधार पर बाण की प्रत्येक सूक्ष्मेक्षिका को आसानी से आँक लेने में समर्थ होते हैं। संस्कृत-साहित्य के अध्ययनशील लोगों के मन में आचार्यों और कवियों की निजी जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के न मिलने के कारण बड़ी उत्सुकता रह ही जाती है

और जब यह बात मन में आती है कि कभी भी हमें तत्तत् कवियों और आचार्यों के जीवन के सम्बन्ध में जानने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा तब वही उत्सुकता एक गहरी निराशा के रूप में बदल जाती है। सौभाग्य से बाण के सम्बन्ध में हम ऐसा नहीं सोच सकते क्योंकि उन्होंने हर्षचरित के आरम्भिक दो-तीन उच्छ्वासों में अपने अल्हड़ जीवन की मौलिक घटनाओं का उल्लेख वंशानुकीर्तन की भूमिका में क्रम से प्रस्तुत कर दिया है। बाण का स्थितिकाल निःसन्देह रूप से सप्तम शती का पूर्वार्ध (६०६–६४८ ई०) है। हर्ष का समय निश्चित होने के कारण इस सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक वैमत्य नहीं है।

बाण का वात्स्यायन वंश

बाण ने हर्षचरित के आरम्भ में अपनी आत्मकथा के साथ-साथ अपने कुल का भी पौराणिक शैली में उद्भव बताया है। बाण के जीवन से परिचित होने के लिए यह सामग्री बड़ी सहायक है। एक बार भगवान् ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के बीच कमल के आसन पर विराजमान थे। वहाँ मनु, दक्ष, चाक्षुप प्रभृति प्रजापति एवं मुनिगण भी गोष्ठी में ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। ऋक्, साम, यजु का पाठ भी चल रहा था। वेद के अर्थ के सम्बन्ध में परस्पर विवाद का भी प्रसंग उपस्थित हो जाता था। ऐसे अवसर पर स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी महामुनि दुर्वासा और उपमन्यु नामक मुनि में विवाद छिड़ गया। क्रोध से अभिभूत दुर्वासा ने सामगान करते हुए स्वर से हीन पाठ कर दिया। दुर्वासा के स्वरहीन सामगान से एकाएक गोष्ठी के समस्त लोग सन्न हो गए और शाप के भय से किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। भगवान् ब्रह्मा ने भी इस भयावह प्रसंग को टालने का प्रयास किया परन्तु उन्हीं के पार्श्वभाग में चामर लेकर खड़ी सरस्वती दुर्वासा का स्वरहीन पाठ सुन कर हँस पड़ी। सरस्वती को अपने पर हँसते हुए देखकर दुर्वासा क्रोध से तमतमा उठे और उन्होंने शाप देने के लिए हाथ में जल उठा लिया। ब्रह्मा ने जोर से दुर्वासा को फटकारा, अत्रि ने स्वयं मना किया, सरस्वती की सखी सावित्री ने भी क्रोध शान्त करने के लिए प्रार्थना की, फिर भी दुर्वासा ने किसी की न सुनी और शाप दे ही डाला। ब्रह्मलोक को छोड़कर सरस्वती को तब तक अन्यत्र रहना होगा जब तक वह अपने पुत्र का मुख न देख ले। दुर्वासा के शाप से ग्रस्त होकर सरस्वती ने किसी प्रकार सावित्री के साथ मर्त्यलोक के लिए प्रस्थान किया। स्वर्ग की गंगा के तटमार्ग से होते हुए वह मर्त्यलोक में हिरण्यवाह शोण के समीप उतरी। सरस्वती ने शोण के तट पर ही रहने के लिए आग्रह किया। दोनों ने नदी के तीर पर एक लतामण्डप में निवास किया। शोण में नित्य स्नान और देवार्चन करते हुए कुछ दिन बीत गए।

एक समय दिन जब एक पहर चढ़ गया तब उत्तर की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट सुन पड़ी। कुतूहल से सरस्वती ने लतामण्डप से बाहर निकल कर देखा कि धूल उड़ाता हुआ घोड़ों का समूह चला आ रहा था, जिसके साथ हजारों पैदल युवक चले आ रहे थे। अश्वारोहियों के बीच अट्ठारह वर्ष की आयु के एक सुन्दर युवक को देखा। एक ओर अधिक अवस्था वाला पुरुष भी उसके साथ था। वह युवक दिव्य आकृति वाली दोनों कन्याओं को देखता हुआ कुतूहल से लतामण्डप के समीप आ पहुंचा और घोड़े से उतर गया। साथ के और लोगों को दूर पर ही उसने रोक दिया और उस दूसरे सज्जन के साथ पैदल ही वहाँ आया। सरस्वती के साथ सावित्री ने उसका वनवास के उचित सामग्री से सत्कार किया और उस वृद्ध से पूछा—'यह युवक कहाँ से आया है? इसे जाना कहाँ है? इसके पिता कौन हैं, माता का क्या नाम है और इसका क्या नाम है?' सावित्री के इस अनुरोध पर उस पुरुष ने कहा—'यह च्यवन का पुत्र दधीच है, इसकी माता राजा शर्यात की पुत्री सुकन्या है। शर्यात पुत्री को गर्भवती जान कर पति के घर से अपने घर ले गए। वहीं उसने इसे जन्म दिया। अपने ननिहाल में ही यह बढ़ा। जब इसकी माता अपने पति के घर जाने लगी तब नाना ने स्नेह से इसे अपने साथ ही रख लिया। वहीं पर इसने समस्त विद्याओं और कलाओं को सीखा तब किसी प्रकार नाना ने इसे पिता के पास जाने के लिए छोड़ा। मैं उन्हीं शर्यात का निकुक्षि नामक आज्ञाकारी भृत्य हूँ। मुझे इसे पिता के घर पहुँचाने के लिए भेजा गया है। शोण के उस पार भगवान् च्यवन का आश्रम है, हम वहीं जा रहे हैं।' यह कह कर उस पुरुष ने उन दोनों का भी परिचय पूछा। तब सावित्री ने कहा—'आर्य, हम दोनों का यहाँ बहुत दिनों तक रहने का विचार है अतः धीरे-धीरे सब कुछ ज्ञात हो जायगा।' फिर दधीच और वह पुरुष दोनों च्यवनाश्रम की ओर घोड़े पर सवार होकर चल दिए। इधर सरस्वती दधीच के चले जाने पर उस दिशा की ओर ही देर तक आँखें फैलाए बैठी रही, फिर किसी तरह वह दिन बीता। रात में भी दधीच के दर्शन की चिन्ता में ऊभ-चूभ होती रही। इस प्रकार कई रातें बीतीं तो अपने देश की ओर लौटते समय विकुक्षि वहाँ पहुँचा। सावित्री ने दधीच का कुशल पूछा। विकुक्षि ने दधीच की मालती नाम की दूती के आने का समाचार कह कर विदा ली। विकुक्षि के जाने पर अश्वारूढ होकर मालती वहाँ पहुँची। दोनों ने उसका सम्मान किया। मालती कुछ देर तक ठहरी और फिर दधीच को लाने के लिए च्यवनाश्रम गई और दधीच को साथ लेकर लौटी। प्रणय हो जाने पर दधीच सरस्वती के साथ एक वर्ष तक वहीं रह गए। दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय पर पुत्र पैदा किया। पैदा होते ही सरस्वती ने अपने पुत्र को समस्त वेदों,

शास्त्रों, कलाओं और विद्याओं में प्रवीण हो जाने के लिए वर दिया और दधीच तथा पितामह के आदेश से सावित्री के साथ ब्रह्मलोक चली गई। सरस्वती के चले जाने पर दधीच ने भार्गव वंश में उत्पन्न अपने भाई की अक्षमाला नाम की पत्नी के पास उस सारस्वत पुत्र को पालने के लिए छोड़ कर तपस्या करने के लिए जंगल में प्रस्थान किया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र पैदा किया था उसी अवसर पर अक्षमाला के गर्भ से भी पुत्र उत्पन्न हुआ था। अक्षमाला ने दोनों पुत्रों को पाल-पोस कर बड़ा किया। एक का नाम सारस्वत और दूसरे का नाम वत्स था। दोनों में सहोदर भाई जैसा स्नेह था। माता के वरदान से सारस्वत यौवन के आरम्भ में ही समस्त शास्त्रों का पारंगत विद्वान् हो गया। उसने वत्स को भी अपनी सारी विद्या दे दी और उसका विवाह करके प्रीतिकूट नाम का स्थान बनवा दिया तथा पिता दधीच जहाँ तपस्या कर रहे थे वहीं स्वयं दण्ड-चीवर धारण करके चला गया।

वत्स से वंश चला। उसी वंश की परम्परा में बाण का जन्म हुआ। बाण ने वात्स्यायन-वंश की परम्परा भी दी है। वत्स के बाद अनेक वर्ष बीते और बहुत से वात्स्यायन ब्राह्मण उस कुल में क्रमशः उत्पन्न हुए। उसी क्रम में कुबेर नाम का ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। उसके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत। पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था। अर्थपति ने ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम ये हैं—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप। चित्रभानु के ही पुत्र बाण थे। बाण की माता का नाम राजदेवी था। बाण के दो पारशव भाई (शूद्र स्त्री से उत्पन्न) थे—चित्रसेन और मित्रसेन, और चार चचेरे भाई थे—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल।

बाण की आत्मकथा

इस प्रकार बाण ने अपने वात्स्यायनवंश का उद्भव बताते हुए प्राचीन कुलपुरुषों की क्रमबद्ध वंशावली दी है और इसी क्रम में अपनी भी चर्चा की है। कहा जा चुका है कि बाण के पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बालपन में ही उसे माता का वियोग सहना पड़ा और पिता ने मातृस्नेह के साथ उसका पालन किया। वह अपने घर पर ही रह कर बढ़ा। उसके उपनयन आदि संस्कार यथासमय पिता ने किए। जब वह चौदह वर्ष का हुआ तब उसके पिता का भी देहान्त हो गया। उस समय तक उसका समावर्तनसंस्कार और उसके साथ ही विवाह भी हो चुका था। पिता की मृत्यु के बाद दुखी और शोकसंतप्त बाण ने किसी प्रकार अपने घर पर ही रह कर वह समय

काटा। कुछ दिन के बाद जब पितृशोक कुछ कम हुआ तब बाण की स्वतंत्र प्रकृति ने जोर मारा। उसमें वह विनय अब न रहा। अल्हड़पन के कारण बालक बाण में नई-नई वस्तुओं के देखने का कुतूहल बढ़ा। फलतः वह यौवन के आरम्भ होते ही धैर्य को त्याग कर घुमक्कड़ और आवारा बन गया। इसके साथी और सहायक भी बहुत से हो गए। वह उनके साथ देश-देशान्तरों को देखने की इच्छा से अपने पिता-पितामह के वैभव और विद्या की परवाह न करके घर-द्वार छोड़ कर निकल पड़ा। स्वच्छन्द होकर वह इस प्रकार मनमौजी हो गया कि उसकी खिल्ली उड़ने लगी।

अपने उसी उच्छृङ्खल भ्रमण के अवसर में घूम-घूम कर बाण ने अपने युग के जीवन का गहरा अध्ययन किया। वह राजकुलों में पहुँचा जहाँ के व्यवहार अत्यन्त उदार होते थे, गुरुकुल या उस समय के शिक्षासंस्थानों में भी कुछ काल तक रहा, बहुमूल्य बात-चीत करने वाले गुणवान् लोगों की गोष्ठियों में बैठा और विदग्ध जनों के बीच पहुँचा। इस प्रकार युवक बाण को अनुभव के चार स्रोत जीवन के आरम्भ में ही मिल गए। अनुभवी होकर बाण की चंचल प्रकृति बदल गई। वह वात्स्यायन वंश के अनुरूप गम्भीर स्वभाव वाला बन गया। बहुत दिनों तक देश-देशान्तरों का चक्कर काट कर वह फिर अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौटा और अपने बालमित्रों से बड़े स्नेह के साथ मिला।

अपने बन्धु-बान्धवों से मिल कर बाण बड़ा प्रसन्न हुआ। बहुत दिनों तक प्रीतिकूट का ही आनन्द लेता रहा। एक दिन स्थाण्वीश्वर के महाराज श्रीहर्ष के भाई का भेजा हुआ मेखलक नाम का दीर्घाध्वग बाण से आकर गर्मी के दिनों में मिला। उस समय भोजन के पश्चात् बाण अपने घर पर आराम कर रहा था। उसके पारशव भाई (शूद्रा जननी से उत्पन्न) ने भीतर आकर उसके आगमन की सूचना दी। बाण ने कहा—'उसे शीघ्र अन्दर लावो।' तब वह दीर्घाध्वग भीतर जाकर बाण के समीप कुछ हट कर बैठा। बाण के पूछने पर उसने कृष्ण का कुशल-समाचार सुना कर पत्र अर्पित किया। बाण ने पत्र को स्वयं पढ़ा। फिर मेखलक ने मौखिक सन्देश में कृष्ण की ओर से कहा—'मैं तुमसे बिना कारण ही अपने बन्धु की तरह प्रेम करता हूं। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगों ने सम्राट् के कान भर दिए, पर वह सत्य नहीं। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं से चिढ़ कर कुछ इधर-उधर की बात कह दी। अन्य लोगों ने भी ठीक वैसा ही समझा और कहने लगे। सम्राट् ने ऐसे मूर्खों की एक-सी बात सुन कर अपना मत स्थिर कर लिया। तुम्हारे विषय में मैंने सम्राट् से निवेदन किया और उन्होंने मेरी बात मान ली। अब अपने घर पर व्यर्थ समय-यापन करना ठीक नहीं, शीघ्र राजकुल में आओ।'

यह सुन कर बाण ने उसी चन्द्रसेन को आज्ञा दी—'मेखलक को ले जाकर भोजनाच्छादन की व्यवस्था कर आराम से ठहराओ।' तब तक दिन ढल चुका था। बाण संध्योपासन से निवृत्त होकर फिर अपने शयनीय पर आ गए और सम्राट् से मिलने के सम्बन्ध में एकाकी सोचने लगे—'क्या करूँ? महाराज ने मुझे कुछ और ही समझ लिया है, मेरे अकारणबन्धु कृष्ण ने ऐसा संदेश भेजा है, सेवा बहुत कष्टदायिनी है, नौकरी करना मेरे अनुकूल नहीं, राजकुल अतिगम्भीर और विशाल है, न तो मेरे पूर्वजों का राजकुल से सम्बन्ध रहा है जिससे प्रेमभाव बना है, न तो मुझमें कुलक्रमागत क्षमता ही है, न तो पहले राजकुल के द्वारा किए हुए उपकार का स्मरण मुझे आ जाता है, न तो बचपन में राजकुल से ऐसी मदद मिली जिसका स्नेह मान कर चला जाय, न तो बड़े होने का अब तक गौरव मिला है, न पहली मेल-मुलाकात की अनुकूलता है, न तो बुद्धि-सम्बन्धी विषयों में आदान-प्रदान करने का प्रलोभन है, न तो अपनी विद्या के अतिशय प्रदर्शन का कुतूहल है, न तो अपनी सुन्दर आकृति से मिलने वाले आदर की आकांक्षा है, न सेवावृत्ति के अनुरूप चापलूसी करने की कला मुझे आती है, न तो मुझमें वैसी चतुराई है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लूँ, न तो धन खर्च करके दूसरों को मुट्ठी में कर लेने की आदत है, और न तो राजा के प्रिय जनों से मेरा परिचय है और कृष्ण के संदेशानुसार जाना भी जरूरी है। त्रिभुवनगुरु भगवान् शंकर वहाँ जाने पर सब भला करेंगे।' यह सोच कर बाण ने प्रस्थान करने के लिए निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाण ने स्नान करके उज्ज्वल दुकूल धारण किया और हाथ में अक्षमाला लेकर प्रस्थानिक सूक्तों और मंत्रपदों को बार-बार दुहराया, फिर देवों के देव भगवान् शङ्कर की साङ्गोपाङ्ग अर्चना की तथा तिल और घृत की आहुतियों से हवन सम्पन्न किया। ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन दिया। होमधेनु की परिक्रमा की। शुक्ल अङ्गराग, शुक्ल माल्य, शुक्ल वसन एवं रोचनाचित्रित तथा दूर्वाग्रग्रथित गिरिकर्णिक नामक पुष्प का कर्णपूर और शिखा में सिद्धार्थक आदि माङ्गलिक द्रव्यों से परिष्कृत होकर बाण प्रस्थान के लिये तैयार हो गया। माता के समान स्नेह से आर्द्र हृदय वाली पिता की छोटी बहन मालती ने बाण के प्रस्थान की माङ्गलिक तैयारी की। गाँव की बांधव-वृद्धाओं ने आशीर्वाद दिए, परिजनों की बूढ़ी स्त्रियों ने बाण का अभिनन्दन किया, पूजितचरण गुरुओं ने बाण के प्रस्थान का समर्थन किया, कुलवृद्धों ने उसका सिर सूँघा, शुभ शकुनों से उसका उत्साह और भी बढ़ा, ज्योतिषियों ने नक्षत्र की गणना की, फिर शोभन मुहूर्त में जल से पूर्ण कलश की ओर दृष्टिपात करते हुए कुलदेवताओं को प्रणाम कर बाण प्रीतिकूट से निकल पड़ा।

पहले दिन गर्मी में किसी प्रकार धीरे-धीरे चण्डिकायतन-कानन पार कर वह मल्लकूल नामक गाँव में गया। वहाँ बाण का भाई और हार्दिक मित्र जगत्पति रहता था, उसने बाण का सत्कार किया। बाण उस दिन वहीं सुख-पूर्वक ठहरा। दूसरे दिन गङ्गा पार करके यष्टिगृहक नाम के बनगाँव में रात बिताई। फिर राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणितारा नामक गाँव के पास हर्ष के स्कन्धावार (छावनी) में पहुंचा। जो राज-भवन के सन्निकट ही था।

स्कन्धावार में स्नान, भोजन और विश्राम के पश्चात् जब एक पहर दिन बाकी था और जब हर्ष भी भोजन आदि से निवृत्त हो चुके थे तब वह मेखलक के साथ राजद्वार के लिए चल पड़ा। मार्ग में प्रख्यात राजाओं के अनेक शिविर-सन्निवेश मिले। राजद्वार पर सम्राट् के दर्शन के लिए नाना देशों से सामन्तगण पधारे हुए थे। झुण्ड के झुण्ड हाथी, घोड़े और ऊँट खड़े थे और हजारों आतपत्रों से वहाँ श्वेतद्वीप का दृश्य था। सब लोग राजद्वार के राजकीय अनुयायियों से यह पूछते हुए नहीं थकते थे कि बाह्य कक्षा में उपस्थित होकर सम्राट् कब दर्शन देंगे? एक ओर एकान्त में बौद्ध, जैन, पाशुपत, संन्यासी, वर्णी सम्प्रदायों के साधु, सब देशों के लोग, समुद्री तटों के निवासी, म्लेच्छ और समस्त द्वीपों से संवाद लेकर लौटे हुए दूत एकत्र थे। राजद्वार के इस दृश्य को देखकर बाण के मन में आश्चर्य हुआ। द्वारपालों ने मेखलक को दूर ही से पहचान लिया। 'क्षण भर आप यहीं ठहरें' बाण से यह कह कर मेखलक बेरोक भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह महाप्रतीहारों के प्रधान दौवारिक पारियात्र के साथ वापस आया। मेखलक द्वारा परिचित होकर पारियात्र ने बाण को प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा—'देव के दर्शन के लिए भीतर पधारिए, आप पर देव की प्रसन्नता है।' बाण ने 'मैं धन्य हूँ, जो देव मुझे इस प्रकार अपने अनुग्रह का पात्र समझते हैं' यह कहते हुए उसके साथ भीतर प्रवेश किया। तब बाण ने वनायु, आरट्ट, कम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और पारस देश के राजवल्लभ अश्वों से भरी हुई मन्दुरा देखी। कुछ दूर हट कर बाईं ओर इभधिष्ण्यागार या हाथियों का लम्बा-चौड़ा बाड़ा मिला। वहाँ बाण ने सम्राट् के मुख्य हाथी दर्पशात को देखा। उसे देखकर बाण बहुत आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा—निश्चय ही इस महागज के निर्माण में बड़े-बड़े पर्वत परमाणु बनाए गए होंगे, नहीं तो यह गौरव कहाँ से इसमें आता? इस प्रकार फिर तीन कक्ष्याओं को पार कर बाण ने भुक्तास्थानमण्डप के सामने वाले आँगन में सम्राट् हर्ष के दर्शन किए।

तब सम्राट् के सामने आकर बाण ने दाहिना हाथ उठा कर 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण

किया। हर्ष ने उसे देख कर दौवारिक से पूछा—'यह वही बाण है ?' दौवारिक ने कहा—'देव का कथन सत्य है, वह यही बाण है।' इस पर हर्ष ने कहा—'मैं इसे तब तक नहीं देखना चाहता जब तक यह मेरा प्रसाद प्राप्त न कर ले।' यह कह कर उन्होंने अपने पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र (माधवगुप्त ?) से कहा—'यह भारी भुजङ्ग (आवारा) है।'

बाण राजा के अभिप्राय को नहीं समझ सका। सारी राज-मण्डली में सन्नाटा छा गया। बाण कुछ देर तक चुप रह कर बोला—'आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं ? जैसे आपको मेरे विषय में सच्ची बात का पता न हो या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती है, अथवा आप स्वयं लोक के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बात मनमानी और तरह-तरह की होती है। किन्तु श्रेष्ठ लोगों को ठीक-ठीक देखना चाहिए। मुझे साधारण समझ कर अनाप-शनाप कल्पना न कीजिए। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में जन्मा हूँ। समय से मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेद का सम्यक् प्रकार से स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण मैंने किया है। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझमें क्या भुजङ्गपना है ? मेरी नई अवस्था की कुछ चपलताएँ अवश्य हैं पर वे ऐसी नहीं जिससे इस लोक या परलोक का कोई विरोध हो। मैं इस बात को इनकार नहीं करता। मेरे हृदय में इसी बात का बहुत पश्चात्ताप है। हे देव, आप भगवान् बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान वर्णाश्रममर्यादा के रक्षक और यम के समान दण्डधर हैं। सातों समुद्रों की करधनी और समस्त द्वीपों की माला से विराजित पृथिवी पर आपका एकच्छत्र शासन है, तो कौन ऐसा निडर है जो सब प्रकार से दुःखद अभिनय करने की मन से भी कल्पना करता है ?......समय से स्वयं आप मेरे विषय में सब कुछ जान लेंगे, क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में विपरीत हठ नहीं रखते।' इतना कह कर बाण चुप हो गया। सम्राट् ने भी 'मैंने ऐसा ही सुना था' बस इतना ही कहा। लेकिन बातचीत और आसन-दान आदि के प्रसाद से उसे अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेह से भरे अमृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपातमात्र से उसको नहलाते हुए उन्होंने अपने अन्तरतम की प्रीति प्रकट की। जब सूर्य अस्त होने लगा तो सम्राट् राजसमूह से विदा लेकर महल के अन्दर चले गए।

बाण वहाँ से निकल कर अपने निवास-स्थान स्कन्धावार में लौट आया। तब वह अपने मन में सोचने लगा—'सचमुच देव हर्ष बड़े उदार हैं, क्योंकि मेरे बाल्यकाल की चपलताओं से फैले हुए जनापवाद को सुनकर कुपित होने पर भी मन में मेरे प्रति स्नेह

अवश्य रखते हैं। मैं उनकी आँखों पर चढ़ा हुआ (अक्षिगत, अर्थात् कोपभाजन) होता तो कैसे दर्शन देने की कृपा करते। वह मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि छोटों को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनय सिखा देते हैं। मुझे धिक्कार है यदि अपने ही दोषों से अन्धा होकर और केवल अनादर से दुःखी होकर मैं ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ सोचने लगूँ। अब मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय से वे ठीक मुझे पहचान लें।' बाण ने ऐसा निश्चय किया और दूसरे दिन प्रातःकाल वह स्कन्धावार से निकल कर मित्रों और रिश्तेदारों के घर में ठहरा। तब तक सम्राट् स्वयं उसके स्वभाव से परिचित होकर उस पर प्रसन्न हो गए और फिर वह राजभवन में आकर जम गया। थोड़े ही दिनों में सम्राट् उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

इस प्रकार बाण सम्राट् हर्ष से पर्याप्त सम्मान पाकर किसी समय शरत्काल के आरम्भ में बन्धुओं को देखने की उत्कण्ठा से अपनी जन्म-भूमि प्रीतिकूट आया। बाण के भाई-बन्धु उसकी प्रशंसा करते हुए उसके स्वागत में निकल पड़े। सबसे मिलकर बाण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सबसे पूछा—'आप लोग सुखपूर्वक तो रहे ? यज्ञ का कार्य चल रहा है ? प्रतिदिन वेदाभ्यास तो अविच्छिन्न है न ? व्याकरण के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ तो होते रहते हैं ? काव्य की चर्चा तो बराबर रहती है ?' तब उन्होंने उससे कहा—'हम लोग सर्वथा कुशल से हैं। अपनी शक्ति और विभव के अनुसार समय से सब लोग ब्राह्मण के उचित क्रिया-कलाप करते हैं। जब तुम परमेश्वर महाराज हर्ष के पार्श्वभाग में वेत्रासन पर स्थित हो तो विशेष रूप से हम लोग प्रसन्न हैं।' इस प्रकार की अनेक बातों से मन बहलाता हुआ बाण उनके साथ देर तक ठहरा। मध्याह्न में उठ कर वह स्नानादि से निवृत्त हुआ। भोजन के पश्चात् जब वह बैठा तो सब के सब जुट आए और उसे घेर कर बैठ गए। इसी बीच सुदृष्टि नामक बाण का पुस्तक-वाचक आ गया और उसके कुछ दूर पर रखी हुई वेत्रपीठिका पर बैठ गया। क्षणभर ठहर कर तत्काल उसने सूत की बेठन खोल दी। पुस्तक को उसने सरकंडों के बने पीढ़े पर रख दिया। पीछे समीप में बैठे हुए मधुकर और पारावत नामक वंशी बजाने वाले बाण के दो मित्रों ने जब अवकाश दिया, तब सुदृष्टि वायुपुराण का पाठ करने लगा।

जब सुदृष्टि वायुपुराण का पाठ कर रहा था, उसी समय सूचीबाण नामक बन्दी ने दो आर्याछन्दों का गान किया। उसने कहा कि वायु-पुराण हर्ष के चरित से अभिन्न प्रतीत

होता है। आर्याओं को सुन कर बाण के चार चचेरे भाइयों—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ने एक दूसरे की ओर देखा। तत्पश्चात् उन चारों में सबसे छोटा बाण का अत्यन्त प्रिय श्यामल बोला—'तात बाण, प्रातःस्मरणीय, पुण्यों के राशि देव हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों की वंशपरम्परा के साथ हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह इच्छा बनी हुई है। अतः आप कहें। यह भार्गववंश पुण्यवान् राजर्षि के पवित्र चरित को सुनकर और पवित्र बन जाय।' बाण ने हँस कर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दूसरे दिन हर्षचरित का वर्णन आरम्भ करने के लिए निश्चय किया और संध्योपासन के लिए शोण के तीर पर चले गए।

इस प्रकार बाण ने दूसरे दिन हर्ष के पूर्व-पुरुषों की वंशपरम्परा के साथ हर्षचरित का वर्णन आरम्भ किया। बाण के जीवन के सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता।

हर्षचरित के अतिरिक्त बाण की दूसरी कृति कादम्बरी है। कादम्बरी संस्कृत गद्य-साहित्य के चरम-उत्कर्ष का एक उज्ज्वल उदाहरण है। कादम्बरी के आरम्भ में भी बाण ने संक्षेप में अपनी वंशपरम्परा दी है। कादम्बरी की वंशपरम्परा में कुबेर के बाद अर्थपति का उल्लेख आता है। बीच में पाशुपत का नाम छूट गया है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् बाण कन्नौज से प्रीतिकूट लौट आए। वहीं इन्होंने अपने दोनों ग्रन्थों को लिखा। हर्षचरित से हर्ष के जीवनवृत्त के सम्बन्ध की आकांक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति नहीं होती। बाण जैसे ग्रन्थ को पूरा लिखने में उदासीन हो गए। कादम्बरी को भी वे अपूर्ण छोड़ गए। सौभाग्य से उनके सुयोग्य पुत्र ने उसे पूरा किया। कुछ लोग उनके पुत्र का नाम भूषणबाण या भूषणभट्ट बतलाते हैं। कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'पुलिन' या पुलिन्द नाम मिलता है। धनपाल की तिलकमञ्जरी में श्लेष से पुलिन्द ही का उल्लेख है—

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानं पुलिन्दकृतसन्निधिः॥

(ति. म. २६ श्लोक)

बाण के समकालीन कवियों में मातंगदिवाकर और मयूर का उल्लेख आता है। अनुश्रुति के अनुसार मयूर जिन्होंने सूर्यशतक का निर्माण किया है, बाण के श्यालक बताए जाते हैं। बाण ने अपने विवाह का उल्लेख सम्राट् हर्ष से मिलने के प्रसंग में ही किया है—'दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि।' इसके अतिरिक्त उनके वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं है।

बाण की रचनाएँ

बाण की प्रामाणिक रचनाओं में हर्षचरित और कादम्बरी के अतिरिक्त कोई दूसरी नहीं है। यों तो उनके नाम पर कई अन्य रचनाओं का भी उल्लेख आता है। चण्डीशतक बाण का निर्मित समझा जाता है। इसमें १०० श्लोकों में बाण ने भगवती दुर्गा की स्तुति की है। पार्वती-परिणय नाटक को भी कुछ लोगों ने बाण ही का निर्माण समझा था। परन्तु कीथ ने स्पष्ट कर दिया कि यह नाटक १५ वीं शताब्दी के कवि वामनभट्ट बाण की रचना है। वामनभट्ट बाण तैलंगदेशीय वत्सगोत्री ब्राह्मण थे। नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल और गुणविनयगणि के अनुसार बाण ने मुकुटताड़ितक नाटक की भी रचना की थी, पर यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। जहाँ तक बाण की शैली और कल्पना का क्षेत्र है उसकी भूमिका में बाण के हर्षचरित और कादम्बरी के अतिरिक्त ये अन्य कृतियाँ किसी अंश में भी संगत नहीं बैठतीं। अतः प्रामाणिक तथ्य के अभाव में यह मान लेना ही ठीक है कि इन दोनों के अतिरिक्त बाण की कोई अन्य रचना नहीं है।

हर्षचरित

हर्षचरित एक आख्यायिका है। बाण ने ग्रन्थ के आरम्भ में स्वयं कहा है—'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्' (श्लोक २०)। आचार्यों ने आख्यायिका का जो स्वरूप निर्धारित किया है उसका समन्वय विशेष रूप से हर्षचरित में मिल जाता है। प्रसंगतः हम कथा और आख्यायिका के भेद की चर्चा करेंगे। हर्षचरित एक ऐतिहासिक काव्य है। यह कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में ऐतिहासिक काव्य लिखने का शुभारम्भ बाण के द्वारा ही हुआ। प्राचीन कवि ऐतिहासिक पुरुषों के चरित को लेकर काव्य का निर्माण करने में सम्भवतः अपनी हीनता समझते थे। सामान्य व्यक्ति को काव्य का नायक बनाकर लिखना उनके विचार में शोभन न था। बाण ने हर्षचरित लिख कर इस कलंक को मिटाने का प्रथम प्रयास किया। आगे चलकर कई ऐतिहासिक पुरुषों के जीवनवृत्त पर कवियों ने अनेक चरित-काव्य लिखे। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। प्रथम सवा दो उच्छ्वासों में बाण ने आत्मकथा लिखी है और शेष में सम्राट् हर्षवर्धन का चरित है। आरम्भ हर्ष के वंश-प्रवर्तक पुष्पभूति के वर्णन से किया गया है। हर्ष के पिता का नाम प्रभाकरवर्धन और माता का यशोवती था। उनके बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन था। राज्यवर्धन का जन्म ५८८ ई० में हुआ। दो वर्ष के बाद

हर्ष उत्पन्न हुए तथा तीन वर्ष के बाद राज्यश्री का जन्म हुआ। राज्यश्री का विवाह ग्रहवर्मा से हुआ। ग्रहवर्मा मौखरि क्षत्रिय एवं अवन्तिवर्मा का पुत्र था। हूणों द्वारा राज्य के उत्तर में आक्रमण किए जाने पर राज्यवर्धन एक बड़ी सेना लेकर उन्हें रोकने के लिए गए। राज्यवर्धन लौटे न थे कि इधर प्रभाकरवर्धन का देहान्त हो गया। हर्ष की माता यशोवती पति की मृत्यु होने से पूर्व ही चिता में बैठ कर सती हो गई। इधर मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री मालवाधिप के कैद में आ गई। राज्यवर्धन ने हर्ष को राज्य का भार देकर शत्रु के विरुद्ध प्रयाण किया। उन्होंने मालवराज को परास्त कर दिया, परन्तु उसके सहायक गौडाधिप ने धोखे से उन्हें मार डाला। हर्ष को बड़े भाई की असामयिक मृत्यु से बहुत क्षोभ हुआ। प्रतिशोध के लिये उन्होंने प्रस्थान किया। मार्ग में उन्हें दिवाकरमित्र नामक बौद्ध भिक्षु द्वारा अपनी बहन राज्यश्री का पता लगा जो बन्दीगृह से छूट कर विन्ध्याटवी में भाग निकली थी। राज्यश्री के मिलने के बाद हर्षचरित समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार यह एक ऐतिहासिक तथ्य बाण की रचना में अलंकृत काव्यमय शैली में आया है। जगह-जगह पर अलौकिक पात्रों और पौराणिक कथाओं का भी उपयोग किया गया है। किसी घटना के तिथिक्रम का उल्लेख नहीं है। कुछ ऐतिहासिक पात्रों के नाम का भी उल्लेख नहीं है। राज्यवर्धन को मारने वाले गौडाधिप का हर्षचरित में नामोल्लेख नहीं किया है। इन कारणों से हर्षचरित के ऐतिहासिक महत्त्व के कम होने पर भी हर्ष के समकालीन युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अध्ययन के लिए हर्षचरित से बढ़ कर कोई दूसरा सहायक ग्रन्थ नहीं है। किसी का कहना कि 'हर्षचरित सभ्यता का विश्वकोश है' किसी अंश में अत्युक्ति नहीं। समकालीन संस्थाओं का चित्र इस तरह हर्षचरित में निखर उठा है। हर्षचरित को अजन्ता के कलामण्डप से सन्तुलित करना भी सर्वांशतः ठीक है। ह्वेनसांग के संस्मरणों और हर्षचरित के घटना-क्रमों का ठीक-ठीक मेल हो जाने से हर्षचरित के महत्त्व का पता चलता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी हर्षचरित का महत्त्व है। आरम्भ में बाण ने महाभारत, वासवदत्ता एवं बृहत्कथा नामक ग्रन्थों की तथा भास, कालिदास, प्रवरसेन, भट्टार हरिचन्द्र एवं आढ्यराज नामक कवियों की प्रशंसा की है। बाण के स्थिति-काल का निश्चय हो जाने से अन्य कवियों के स्थितिकाल के निर्णय में बड़ी सहायता मिलती है।

हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है। यद्यपि भाषा और भाव की दृष्टि से कादम्बरी

की तरह प्रौढ़ता हर्षचरित में नहीं, तथापि इन दोनों की अभिव्यक्ति-सामर्थ्य में अपूर्णता भी कोई अभिलक्षित नहीं होती। बाण की स्फुरत्कलालापविलासकोमला कविता-नववधू कादम्बरी में जो कौतुकाधिक राग उत्पन्न करती है, हर्षचरित में विवाह की योग्यता होने पर भी अविवाहिता होने के कारण अज्ञातयौवना-सी लगती है। सम्भव है इसी कारण वह कादम्बरी की तरह सहृदय-जनों में कौतुकाधिक राग उत्पन्न न कर सकी हो। स्थान-स्थान पर बाण की अद्भुत वर्णनाशक्ति का पूर्वाभास हर्षचरित में मिल जाता है।

पात्रालोचन

[अब यहाँ संक्षेप में हर्षचरित के पात्रों के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। मुख्य पात्र के रूप में सरस्वती, सावित्री, बाण, पुष्पभूति, भैरवाचार्य, प्रभाकरवर्धन, यशोवती, राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री के चरित्र हर्षचरित में निर्दिष्ट हैं। अतः उन्हीं के सम्बन्ध में अग्रिम वक्तव्य है]

सरस्वती और सावित्री—सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री देवी और ब्रह्माजी की कुमारी कन्या थी। विद्या की देवी होने के कारण और बालभाव की चपलता से अंशतः उनमें कुछ अभिमान की मात्रा भी थी। दुर्वासा के स्वरहीन सामगान पर वह हँस पड़ी जिससे उस क्रोधान्ध ऋषि के शाप से ग्रस्त हुई। दुर्वासा ने उसकी विद्याजनित उन्नति को चूर करने के लिए नीचे मर्त्यलोक में चले जाने का शाप दे डाला। परन्तु सरस्वती ने ऋषि के शाप को शिर झुका कर मान लिया। उसकी प्रिय सखी सावित्री ऋषि के इस अन्याय को न सह सकी और स्वयं प्रतिशाप देने के लिए उद्यत हो गई। तब सरस्वती ने उसे रोका और कहा—'सखी, तू अपना क्रोध शान्त कर, संस्कारशून्य बुद्धि होने पर भी ब्राह्मण सर्वथा आदरणीय है।' सरस्वती की इस वाणी में उसकी अपार सहिष्णुता निहित है। वह निरपराध होने पर भी कुछ नहीं बोलती और सावित्री को साथ लेकर मर्त्यलोक के लिए ब्रह्मलोक से प्रस्थान कर देती है। ब्रह्मा जी ने उसके शाप को पुत्र का मुख देखने की अवधि दी। सावित्री ने उसे बहुत ढाढस दिया और वे दोनों शोण के तट पर निवास करने लगीं। वहीं पहुँचे हुए दधीच से सरस्वती का प्रणय हो गया। सरस्वती की अपेक्षा सावित्री अधिक प्रगल्भ थी। सरस्वती मुग्धा और सावित्री प्रगल्भा थी। दधीच के प्रथम दर्शन से आकृष्ट होने पर भी सरस्वती ने अपना प्रणय-भाव बिलकुल छिपाए रखा। उसके चले जाने पर शून्य-शून्य सी रहने लगी। जब दधीच का कुशल-समाचार लेकर मालती आई तब एकान्त में सरस्वती ने दधीच के प्रति अपना अनुराग व्यक्त किया। दधीच को लाने के लिए मालती के चले जाने पर उसने सावित्री से यह रहस्य प्रकट कर दिया। इस

प्रकार सरस्वती एक सहिष्णु, लज्जाशील नारी के रूप में चित्रित है और सावित्री का चित्रण एक संवेदनशील नारी के रूप में हुआ है।

बाण—हर्षचरित के रचयिता बाण भी एक मुख्य पात्र हैं। मानना तो यह चाहिए कि हर्षचरित दो विभागों में विभक्त आख्यायिका है। प्रथम भाग के मुख्य पात्र स्वयं महाकवि बाण हैं और द्वितीय भाग के सम्राट् हर्षवर्धन। बाण ने अपने चरित्र का जितनी धार्मिकता और स्पष्टता से चित्रण किया है उतना शायद ही हर्ष के चित्रण में हो। यद्यपि यह बात नहीं फिर भी कवि ने अपना दोष और गुण सब एक तटस्थ पर्यवेक्षक के नाते कह डाला है। बाण की तटस्थता इसी से व्यक्त होती है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में 'उत्तम पुरुष' के स्थान पर अन्य पुरुष का ही प्रयोग किया है। 'मैं उत्पन्न हुआ' के स्थान पर 'बाण उत्पन्न हुआ, बढ़ा और यौवन के आरम्भ में आवारा (इत्वर) बन गया' आदि साधारण पात्र के रूप में ही बाण ने अपने को रखा है। सम्भव था अगर उत्तम पुरुष 'मैं' का प्रयोग करते तो अपने दोष-पक्ष के उल्लेख में इतनी स्पष्टता न होती। छोटी अवस्था में ही बाण की माता मर गई। पिता ने ही किसी प्रकार पाल-पोस कर बढ़ाया। दुर्भाग्य से जब बाण चौदह वर्ष का हुआ तभी उसके पिता भी दिवंगत हो गए। अब मातृ-पितृहीन बाण को सुधारने वाला कोई नहीं मिला। मिले वही नाचने-गाने के शौकीन संगी-साथी। उनके साथ रहने से बाण की स्वतन्त्रता बढ़ती गई और फलतः यौवन के आरम्भ में ही वह आवारा (इत्वर) हो गया। इन्हीं साथियों के साथ यहाँ-वहाँ मारा-मारा फिरने लगा। कभी किसी नगर में जाकर नाटक खेलता, कभी किसी नगर में। इस इत्वरवृत्ति ने यद्यपि बाण को पितृ-पितामह द्वारा अर्जित विभव एवं अविच्छिन्न विद्या-प्रसंग से वंचित कर दिया तथापि बाण ने अपने उसी भ्रमणशील जीवन में, जब उसकी लोग खिल्ली उड़ा रहे थे, अनुभव के चार स्रोत पकड़ लिए थे। उसके अनुभव के प्रथम स्रोत राजकुल थे, उनमें घूम-घूम कर वह उनके प्रत्येक कर्मचारी से मिलता और वहाँ के उदार व्यवहारों से परिचित होता। दूसरा स्रोत उस समय के गुरुकुल थे, वहाँ जा-जा कर अध्ययन-अध्यापन की विधियों को उसने खूब समझ लिया। तीसरा स्रोत गुणी जनों की गोष्ठियाँ मिलीं, जिनमें उसने अनमोल बातें सुनीं। चौथा स्रोत सूझ-बूझ वाले विदग्ध जनों की मंडलियाँ थीं, उसने उनमें भीतर घुस कर थाह ली। इस प्रकार वह अपने जीवन के अल्हड़पन और घुमक्कड़ी प्रवृत्ति से अपनी आँखों देखा हुआ लोकजीवन का चौचक अनुभव पाकर अपने घर वापस आया। तब उसके अन्दर जो पुश्तैनी प्रतिभा थी वह चमक उठी।

बाण स्वभावतः अपने भाई-बन्धुओं में हिल-मिल जाता था। उसे अपने गाँव में अपने लोगों के बीच मोक्ष का आनन्द मिलता था। वह सम्राट् के पास से भी उस आनन्द के

लिए चला आता था। अपनी इस प्रकृति से बाण बहुत अधिक जनप्रिय हो गया था। उसमें नम्रता भी खूब थी। अपने बड़ों के सामने झुक जाता था। उसने अपनी आरम्भिक जीवन की समस्त बुराइयों को जड़ से खोद कर निकाल दिया था और अनुभवी होने के बाद स्वयं अपना निर्माण किया। यद्यपि बाण ने कादम्बरी में भर्वु या भर्त्सु नामक अपने गुरु का उल्लेख किया है, तथापि यह नहीं विदित होता कि बाण के जीवन के निर्माण में भर्वुशर्मा का कितना हाथ था। बाण के व्यक्तित्व में दो बातें बड़े महत्त्व की थीं, एक तो वह जन्म से ही स्वभावगम्भीर अर्थात् विस्तृत मेधाशक्ति वाला था, दूसरे वह प्रत्येक वस्तु की जानकारी प्राप्त करने के लिए सदा उत्सुक रहता था। इन दोनों बातों से बाण को मार्गस्थ होने में बड़ी सहायता मिली।

बाण के व्यक्तित्व की एक और विशेषता है, वह है उसका स्वाभिमान। वह जितना नम्र था उतना ही स्वाभिमानी भी। वह किसी की परवा नहीं करता था। उसे क्या पड़ी थी कि वह राजकुल में प्रवेश पाकर सेवा में हाजिरी बजाता और सेवकों जैसी चापलूसी करता? जब हर्ष के भाई कृष्ण ने अपने दूत द्वारा संदेश भेजा कि बिना समय गँवाए राजकुल में पधारें तो बाण बहुत सोच में पड़ गया। कृष्ण के दूत ने संदेश में यह भी कहा कि सेवा में झंझट सोच कर उदासीन न होना चाहिए। इससे प्रतीत होता है कि बाण के स्वाभिमानी व्यक्तित्व से कृष्ण खूब परिचित थे। उन्हें डर था कि बाण कहीं सम्राट् के पास आना अस्वीकार न कर दें। बाण से डाह करने वालों ने उसकी आरम्भिक चाल-चलन की बात लेकर सम्राट् के कान भर दिये थी, जिसका परिमार्जन बड़े प्रयत्न से कृष्ण ने कर दिया। बाण अपने अकारणबन्धु कृष्ण का संदेश सुन कर बहुत सोच में पड़ गए। राजसेवा उन्हें कष्टप्रद लगती थी। राजदरबार में बड़े खतरे नजर आते थे। न उनके पुरखों में किसी की इस तरफ रुचि रही, न उनके ही मन में ऐसी बात थी कि वे राजकुल में जाकर बुद्धि-सम्बन्धी विषयों का आदान-प्रदान करें। न विद्वानों की गोष्ठियों में बैठने की विलक्षण चतुराई ही उनके पास थी। चापलूसी से भी उन्हें बड़ी चिढ़ थी। ऐसी स्थिति में भी उन्होंने जाने का निश्चय कर लिया। स्वाभिमान उन्हें रोकता था, परन्तु जब यह ध्यान में आता कि सम्राट् कुछ ऐसा-तैसा मुझको समझ गए हैं तो उनका स्वाभिमान उनको चलने के लिए ही प्रेरित करने लगा। स्वाभिमानी बाण को यह कैसे सह्य होता कि दूसरा उसे हीन दृष्टि से देखे, जब कि वह हीन नहीं। अपनी अहीनता का सम्यग्ज्ञान होने पर भी बाण में अहंकार का लेश भी न था। उन्हीं के निर्देश से पता चलता है कि वे रूप-सम्पन्न थे, पर उनके मन में सुन्दर रूप से मिलने वाले आदर

की इच्छा न थी। उनमें प्रगाढ़ शास्त्रीय ज्ञान था लेकिन बुद्धि-सम्बन्धी विषयों पर लड़-झगड़ के लिए दिखावा करने जाना वह सर्वथा व्यर्थ समझते थे।

जब सम्राट् हर्ष ने प्रथम बार बाण को देख कर हँसते हुए 'महानयं भुजङ्गः' कह डाला तो बाण अपनी स्वतंत्र प्रकृति और स्वाभिमान से संवलित ब्रह्मतेज का संवरण न कर सके। थोड़ी देर तक चुप रह कर उन्होंने पूछ ही डाला—'का मे भुजङ्गता ?' बाण का व्यक्तित्व इस प्रकरण में जितना स्पष्ट खुल सका है उतना अन्यत्र नहीं। उस समय बाण को यह सुध-बुध न थी कि वे महाराजाधिराज हर्षवर्धन के सामने खड़े हैं। उनका स्वाभिमान तत्काल प्रज्वलित हो उठा था। जब कि बाण में अब कोई भुजंगपना न रह गया था तब भी दूसरों के कान भर देने से केवल ऐसी निराधार कल्पना कर देना कहाँ तक उचित था। उसने हर्ष से स्पष्ट कह दिया कि 'आप नेय की तरह बोलते हैं अर्थात् आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर करती है। आप मुझे साधारण व्यक्ति मत समझिए। मैंने वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में जन्म लिया है। सांगवेद का स्वाध्याय और अनेक शास्त्र भी सुने हैं। विवाह हो जाने के बाद नियमित गृहस्थ हूँ। (इससे यह पता चलता है कि बाण उस समय तक विवाहित हो गए थे और तभी से उनके जीवन में स्थिरता हुई)। यौवन के आरम्भ में अवश्य ही मुझ में कुछ चपलताएँ थीं, इससे मैं इनकार न करूँगा, किन्तु वे ऐसी थीं जिनका इस लोक या उस लोक में विरोध न हो।' बाण की इस वाणी में सचमुच उनका ब्रह्मतेज निखर उठा है। फिर बाण अपनी नम्रता का अवलम्बन ले लेते हैं। बाण ने अपने आप को खूब पहचाना था। वे अपनी कमजोरियों को अच्छी तरह समझ गए थे और उन्हें हटाने का प्रयत्न भी करते थे। जैसा कि उन्होंने स्कन्धावार में दरबार से लौटने पर सोचा था कि मुझे धिक्कार है यदि मैं अपने दोषों के प्रति अन्धा होकर केवल अनादर की पीड़ा अनुभव करके इस गुणी सम्राट् के प्रति कुछ और सोचने लगूँ। अवश्य ही मैं वह करूँगा जिससे यह कुछ समय बाद मुझे ठीक जान ले।

पुष्पभूति और भैरवाचार्य—पुष्पभूति ही हर्ष के वर्धनवंश के आदि संस्थापक थे। वे शिव के अनन्य उपासक थे। उनके प्रभाव से घर-घर में शिव की पूजा होती थी। राजा पुष्पभूति वेताल-साधना भी करते थे इस कार्य में उनका सहायक भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव था। भैरवाचार्य से मिलन का वृत्तान्त यह है कि एक दिन उस राजा के पास एक परिव्राट् आया। वह भैरवाचार्य का मुख्य शिष्य था। राजा के पूछने पर कि 'भैरवाचार्य कहाँ हैं ?' उस शिष्य ने 'सरस्वती के किनारे शून्यायतन में ठहरे हैं' यह कह कर पाँच चाँदी के कमल भैरवाचार्य की ओर से अर्पित किए। दूसरे दिन पुष्पभूति ने पुराने देवी के मन्दिर के उत्तर बिल्ववाटिका में आसन लगाए भैरवाचार्य

को साक्षात् शिव की तरह देखा। भैरवाचार्य से राजा की मित्रता हो गई। भैरवाचार्य के शिष्य ने ब्रह्मराक्षस के हाथ से छीन कर लाई हुई अट्टहास नामक तलवार राजा को अर्पित की। राजा ने भैरवाचार्य की वेताल-साधना में बड़ी सहायता की। फलतः श्रीकंठ नाग को हरा कर उसने लक्ष्मी को प्रसन्न किया। प्रसन्न लक्ष्मी द्वारा वर माँगने के लिए प्रेरित किए जाने पर पुष्पभूति ने अपने प्रिय सुहृद् भैरवाचार्य की सिद्धि के लिए ही वर माँगा। इससे पुष्पभूति की निःस्वार्थपरता व्यक्त होती है। लक्ष्मी ने उसे देकर राजा की शिव-भट्टारक के प्रति अनन्य भक्ति देखकर वरदान में यह भी कहा—'तुम महान् राजवंश के संस्थापक होगे जिसमें हरिश्चन्द्र के समान सर्वद्वीपों का भोक्ता हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा।' भैरवाचार्य विद्याधर के शरीर को प्राप्त हुआ। उसने राजा का बहुत बड़ा उपकार माना। इस प्रकार पुष्पभूति के रूप में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया गया है जो परोपकार में ही जीवन को लगा देता है और स्वप्न में भी स्वार्थ का चिन्तन नहीं करता।

प्रभाकरवर्धन और यशोवती—पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्धन बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने सिन्धु, गान्धार, गुर्जर, लाल, मालव देशों पर विजय प्राप्त की थी। हूणरूपी हिरन के लिए वह केसरी था। इस प्रकार वह स्थाण्वीश्वर के छोटे से राज्य को बढ़ा कर महाराजाधिराज की पदवी से विभूषित हुआ। इसी कारण उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। प्रभाकरवर्धन अत्यन्त पराक्रमी होते हुए भी दयावान् था। उसने मालवा के राजा के मारे जाने पर उसके अनाथ कुमारों के साथ मृदु व्यवहार किया। वह सूर्य का भक्त था। उसकी रानी यशोवती थी। हर्षचरित में यशोवती के चरित्र का चित्रण एक भारतीय पतिव्रता के रूप में हुआ है। रानी यशोवती के गर्भ से ही राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री ने जन्म लिया। प्रभाकरवर्धन ने राज्यश्री का विवाह बड़ी धूम-धाम से मौखरिवंशज अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ किया। राजा प्रभाकरवर्धन ने अपने योग्य पुत्र राज्यवर्धन को हूणों से युद्ध करने के लिए भेजा। उसके पीछे-पीछे १४-१५ वर्ष की आयु वाला हर्ष भी कुछ पड़ावों तक गया, पर वह शिकार खेलने की रुचि से हिमालय की तराइयों में रुक गया। अचानक पिता की बीमारी का समाचार पाकर हर्ष वहाँ से लौट आया। हर्ष के आने पर पति के मरने के पूर्व ही रानी यशोवती ने अग्नि में प्रवेश कर भारतीय नारी के आदर्श का उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किया। बाद में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई।

राज्यवर्धन—एक आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहशील भाई और शूर योद्धा के रूप में राज्यवर्धन का चित्रण किया गया है। वह पिता की आज्ञा पाते ही हूणों के साथ युद्ध करने के लिये चला जाता है। बालक हर्ष भी कुछ पड़ावों तक उसके साथ चलता है,

पर हिमालय की तराइयों में आखेट के लिये रुक जाता है। जब तक राज्यवर्धन परदेश से नहीं लौटा था, इसी बीच प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो गई और माता यशोवती भी न रहीं। हर्ष ने राज्यवर्धन के पास खबर भिजवा दी। इधर हर्ष के मन में बड़ी भारी चिन्ता यह होने लगी कि पिताजी का समाचार सुनकर बड़े भैया (आर्य) भी कहीं बुद्ध की तरह आचरण न कर बैठें। कहीं राज्यर्षि राज्यवर्धन आश्रम में प्रविष्ट न हो जायँ ? कहीं वह पुरुष-सिंह किसी गुफा में न चला जाय। अनाथ पृथिवी को देखकर कहीं निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित न करने लगें। प्रथम बार इस आपत्ति से विह्वल होकर आत्मचिन्तन में न लग जायँ। संसार को अनित्य समझकर पास आती हुई राज्यलक्ष्मी से विरक्त न हो जायँ। कहीं दुःखज्वाला का शमन करने के लिये जल में न डूब जायँ। यहाँ लौटने पर राजाओं के कहने पर पराङ्मुख न हो जायँ। इस प्रकार हर्ष अपने मन में कल्पना करते हुए राज्यवर्धन की बाट देखते रहे। भ्रातृप्रेम से अभिभूत हर्ष के मन के ये भाव राज्यवर्धन के शम-प्रधान व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं। लगता है राज्यवर्धन आरम्भ से ही भगवान् बुद्ध के धर्म से आस्थावान् था। जैसा कि एक ताम्रपत्र के अनुसार उसे परम-सौगत भी कहा गया है। हर्ष को भी उपर्युक्त चिन्ता में भी राज्यवर्धन में विरक्त होने के पश्चात् बुद्ध के जीवन की झलक मिलती है। हर्ष को यह सन्देह था कि बुद्ध के समान वे भी कहीं न चले जायँ।

पितृ-शोक से अभिभूत होकर राज्यवर्धन जब लौटा तब यही घटना घटी। हर्ष से उसने कहा—'तुम राज्यभार ग्रहण करो, मैंने आज शस्त्र छोड़ा।' और तलवार हाथ से फेंक दी। राज्यवर्धन के इस कथन में उसकी निःस्पृहता, पितृप्रेम, भ्रातृप्रेम आदि समस्त सद्वृत्तियाँ एक साथ उमड़ पड़ी हैं। इसी अवसर पर एक विचित्र घटना घट जाती है। एक परिचारक ने आकर खबर दी कि सम्राट् के मरने की खबर सुनकर दुरात्मा मालव-राज ने ग्रहवर्मा को जान से मार डाला और राज्यश्री को कान्यकुब्ज के कारावास में डाल दिया। इस समाचार से तत्काल राज्यवर्धन का शोक जाता रहा, उसके स्थान पर क्रोध प्रतिष्ठित हो गया। उसने हर्ष से कहा—'तुम राज्य सँभालो, मैं मालवराज के कुल का नाश करने चला।' हर्ष ने जब यह कहा कि 'आर्य के प्रसाद से पहले भी मैं कभी वञ्चित न रहा। कृपा कर मुझे भी साथ ले चलें।' तो राज्यवर्धन ने कहा—'तुम ठहरो, मुझे अकेले ही शत्रु का नाश करने दो।' यह कहकर उसने उसी दिन शत्रु पर धावा बोल दिया।

राज्यवर्धन मालवराज की सेना को खेल ही खेल में जीत लेने पर भी गौड़ाधिप के कुचक्र से मारा जाता है। हर्ष के हृदय में राज्यवर्धन के प्रति अपार स्नेह था। उसने उसके मारे जाने का समाचार सुनकर उसकी चरण-रज का स्पर्श करके प्रतिज्ञा की—'कुछ

ही दिनों में यदि गौड़ाधिप को न मार डालूँ तो स्वयं जल कर भस्म हो जाऊँगा।' हर्ष-चरित में राज्यवर्धन का व्यक्तित्व सर्वथा अकलुषित और स्नेह तथा पराक्रममय देखने में आता है।

हर्षवर्धन—कहा जा चुका है कि वर्धनवंश के आदि संस्थापक राजा पुष्पभूति को लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया था—'तुम्हारे वंश में हरिश्चन्द्र के समान समस्त द्वीपों का भोक्ता हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा।' इसलिए यह स्वाभाविक था कि हर्ष के समस्त गुण जन्मजात थे। जैसा कि बाण ने हर्ष के यशोवती के गर्भ में आते ही रानी का वर्णन करते हुए लिखा है—उसके मन में यह दोहद इच्छा हुई कि चार समुद्रों का जल एक में मिलाकर स्नान करूँ और समुद्र के वेला-कुंजों में भ्रमण करूँ। नंगी तलवार के पानी में मुँह देखने की, वीणा अलग हटा कर धनुष की टंकार सुनने की और पंजर-बद्ध केसरियों के देखने की इच्छा हुई। इस प्रकार हर्ष जन्म से ही एक महापुरुष था। किसी ब्राह्मण ने ज्योतिष के अनुसार हर्ष के जन्म के समय भविष्यवाणी भी कर दी थी। हर्ष में शैशव काल से ही अपूर्व रणोत्साह और साहस का आभास मिलने लगा था। जब पिता ने अपने सुयोग्य पुत्र राज्यवर्धन को हूणों से भिड़न्त के लिए भेजा तो १४-१५ वर्ष की अवस्था वाले हर्ष भी बड़े भाई के साथ चलने के उत्साह का संवरण न कर सके। कुछ पड़ावों के बाद ही हर्ष का मन आखेट में लग गया तो वे आगे न जाकर हिमालय की तराइयों में शिकार करने लगे। यहीं से हर्ष के जीवन का आकस्मिक परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। उन्हें पिता जी की बीमारी की खबर मिलती है। शीघ्र ही दौड़ पड़े, मार्ग में कुछ भी नहीं खाया-पिया। इससे उनका अनन्य पितृ-प्रेम व्यक्त होता है।

राजद्वार पर पहुँचते ही उन्होंने उद्विग्न होकर सुषेण नामक वैद्यकुमार से पिता जी की हालत पूछी। सुषेण ने कोई आशाजनक बात न कही तो घबड़ाए हुए पिता जी के पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें रुग्णावस्था में देखा। प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को देख कर उठने की चेष्टा की। उन्होंने बड़ी कठिनता से यह कहा—'हे वत्स, दुबले जान पड़ते हो।' तब भंडि ने कहा कि हर्ष को भोजन किए हुए तीन दिन हो चुके हैं। यह सुन कर पिता ने गद्गद कंठ से कहा—'तुम्हारे आहार ही के बाद मैं पथ्य लूँगा।' पिता का पुत्र के प्रति स्नेह स्वाभाविक है, पर यहाँ स्वाभाविकता की सीमा पर वह स्नेह पहुँच गया है। गुणवान् पुत्र के प्रति पिता का इससे बढ़ कर क्या भाव हो सकता है? हर्ष की गुणग्राहिता भी असामान्य थी। जब उन्होंने सुना कि रसायन नामक वैद्यकुमार ने सम्राट् के प्रति भक्ति और स्नेह से अभिभूत होकर आग में कूद कर जान दे दी तो उनकी प्रतिक्रिया यह हुई कि उसने कुलपुत्रता धर्म को चमका दिया। स्वयं बाण ने हर्ष की गुणग्राहिता की प्रशंसा

अपनी प्रथम भेंट के अवसर पर की थी। जब बाण ने अपना विशिष्ट परिचय दिया तब हर्ष ने कहा था कि मैंने भी ऐसा ही सुना है। तब बाण ने एकान्त में हर्ष की उदारता एवं गुणग्राहिता की प्रशंसा की है। अस्तु, इसी बीच जब प्रभाकरवर्धन मृत्युशय्या पर अन्तिम सांस तोड़ने ही वाले थे तब हर्ष केजीवन की दूसरी मार्मिक घटना—माता यशोवती के सती हो जाने की तैयारी सुनकर हुई। किसी प्रकार वे माँ को उनके निर्णय से विचलित न कर सके। तत्पश्चात् पिता जी भी दिवंगत हो जाते हैं। इन उद्वेजक घटनाओं से हर्ष अत्यन्त शोकमग्न अवस्था में पड़ गए। अनेक कुलपुत्र, गुरु, वृद्ध ब्राह्मण, मूर्धाभिषिक्त अमात्य, मस्करी, मुनि, वेदान्ती तथा पौराणिक लोगों ने हर्ष के शोक को उदाहरणों और दृष्टान्तों द्वारा कम किया। तब हर्ष के मन में राज्यवर्धन के विषय में अनेक विचार आने लगे। कहीं बड़े भाई पिता जी के मरण का घातक समाचार सुन कर बुद्ध की तरह आश्रम में न प्रविष्ट हो जायँ? हर्ष की यह भावना राज्यवर्धन के प्रति अपार भ्रातृ-प्रेम और हृदय की पवित्रता को व्यंजित करने वाली है। सचमुच इस प्रकार की आन्तरिक वृत्ति के कारण महानता की दृष्टि से हर्ष एक उच्च आदर्श का रूप धारण कर लेते हैं।

जैसा हर्ष ने राज्यवर्धन के विषय में मन में सोचा था, शोक से भरे हुए राज्यवर्धन ने आकर वही सोचा और अपनी तलवार फेंक दी। राज्यवर्धन के इस विचार से हर्ष का हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने अपने आप में ही कोई ऐसा दोष अनुभव किया जिसके कारण राज्यवर्धन ने यह निश्चय कर डाला। हर्ष के उस विदीर्ण हृदय में कितनी पवित्रता और विशालता थी। इसी बीच एक घटना और घटती है। मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा की मृत्यु और राज्यश्री के कारागार में बन्द होने की खबर तत्काल मिली। सुनते ही राज्यवर्धन का विषाद जाता रहा. वे आग-बबूला हो गए। हर्ष को राज्यभार सम्हालने के लिए कहा और स्वयं फिर हाथ में कृपाण उठा लिया। यहाँ भी हर्ष ने साथ जाने के लिए आग्रह किया। राज्यवर्धन हर्ष के पराक्रम से परिचित थे, उन्होंने कहा—'सारी पृथिवी को जीतने के लिए मान्धाता की तरह तुम धनुष उठाओगे, तो तुम ठहरो। मुझे अकेले ही शत्रु का नाश करने दो।' यह कह उन्होंने प्रस्थान किया। जब हर्ष को चौथी घटना यह सुन पड़ी कि एक मालवराज को खेल-खेल में पराजित कर लेने पर भी राज्यवर्धन को धोखे से गौड़ाधिप ने मार डाला, तो उनकी क्रोधाग्नि फूट पड़ी। तब हर्ष ने यह प्रतिज्ञा की—'यदि कुछ ही दिनों में इस पृथिवी को गौड़रहित न बना दूँ और समस्त राजाओं के पैरों में बेड़ियाँ न पहना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतंगे की तरह अपने शरीर को जला दूँगा।' हर्ष की इस प्रतिज्ञा में उसका समस्त ओज प्रदीप्त हो उठा है। युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कुछ दिन बाद प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार ने हंसवेग के

साथ एक छत्र और अनेक उपहार भेजे। हर्ष के हृदय में प्रत्युपकार की भावना का यह कितना सुन्दर प्रसंग है जब एकान्त में बैठे-बैठे उन्होंने यह सोचा—'आमरण मैत्री के अतिरिक्त इस प्रकार के सुन्दर उपहार का बदला और क्या हो सकता है ?' भण्डि ने आ कर राज्यश्री के विन्ध्याटवी में भाग जाने की खबर दी तो हर्ष स्वयं सब काम छोड़ कर उसे खोजने निकल पड़े। बीच में शबर युवक निर्घात के माध्यम से दिवाकरमित्र नामक एक बौद्ध भिक्षु से भेंट होती है। दिवाकरमित्र के एक शिष्य ने हर्ष को राज्यश्री का पता बताया। अन्त में राज्यश्री मिल जाती है।

इस प्रकार हर्ष का व्यक्तित्व आदि से अन्त तक निर्भीक और साहसी, कर्त्तव्यपरायण और स्नेहमय मिलता है। बाण ने सम्राट् के उदात्त जीवन का बहुत नजदीक से अध्ययन किया था। बाण की लेखनी के स्पर्श से हर्ष के व्यक्तित्व की जो परिस्फूर्ति हर्षचरित में दिखाई देती है वह अपूर्व है। यह कहना कठिन है कि बाण की लेखनी ने हर्ष का स्पर्श कर इतनी सामर्थ्य प्राप्त की अथवा हर्ष का व्यक्तित्व ही बाण की लेखनी के स्पर्श से समृद्ध हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि हर्ष जैसा सम्राट् भारतवर्ष में कोई दूसरा नहीं हुआ। हर्ष की महती सफलता तो इसमें भी अभिलक्षित होती है कि उसने परस्परविरोधी, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक वातावरण को भी एक सन्तुलित रूप दिया था। हर्ष किसी एक धर्म और एक सम्प्रदाय का पक्षपाती न था। उसके मन में सबके प्रति समान आदरभाव था। बाण ने एक तटस्थ दर्शक के रूप में ही उसके व्यक्तित्व का चित्रण किया है। व्यर्थ प्रशंसा का पुल बाँधना बाण जैसे स्वाभिमानी के लिए कहाँ तक सम्भव था।

हर्ष के व्यक्तित्व की यह प्रसंगतः सामान्य चर्चा है। ग्रन्थ के आद्योपान्त अवलोकन से ही पाठक उसकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे। बाण की चित्रग्राहिणी प्रतिभा में हर्ष के व्यक्तित्व का चित्र ऐसी स्वाभाविकता से आलिखित है कि देखते ही बनता है।

राज्यश्री—यह हर्ष की छोटी बहन थी। वह नृत्य, गीत आदि कलाओं में प्रवीण थी। प्रभाकरवर्धन ने धूम-धाम से ग्रहवर्मा के साथ उसका विवाह किया। पिता के मरते ही राज्यश्री पर भी दुर्भाग्य के बादल उमड़ आए। मालवराज ने ग्रहवर्मा को जान से मार दिया और उसे कान्यकुब्ज के कारागार में बन्द कर रखा। वह किसी तरह बन्धन से छूट कर परिवार के साथ विन्ध्याचल के जंगल में चली गई। जब वह वहाँ अग्निप्रवेश करने के लिए तैयार थी तब हर्ष उसे ढूँढते हुए पहुँच गए। इस अवस्था में सहसा भाई को पाकर वह विलाप करने लगी। हर्ष ने रोते हुए कहा—'अब धीरज धरो, अपने को सम्हालो।' राज्यश्री पर इस समय दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था, हर्ष ने मृत्यु के मुख से खींच कर उसे बचा लिया। वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए शत्रु के कारावास से भी

भाग निकली। भारतीय नारी का यह उच्च आदर्श राज्यश्री में एकान्ततः प्रस्फुरित होता है। बौद्धभिक्षु आचार्य दिवाकरमित्र के सामने राज्यश्री ने हर्ष से विनय-पूर्वक काषाय वस्त्र धारण की अनुज्ञा मांगी। एक विधवा के तपस्वी जीवन के लिए आत्मसंयम के अतिरिक्त और दूसरा क्या कर्तव्य रह जाता है। हर्ष ने भाई के वध का बदला लेने की जो प्रतिज्ञा की थी उसे सुनाकर तत्काल राज्यश्री को ऐसा न करने के लिए कहा। उन्होंने भिक्षु दिवाकरमित्र से कह दिया कि प्रतिज्ञा पूरी होने पर मैं और यह एक साथ काषाय ग्रहण करेंगे। तब राज्यश्री ने भाई की बात पर आग्रह नहीं किया।

इस प्रकार इन प्रमुख पात्रों की चर्चा के साथ ही हर्षचरित का कथानक भी बहुत अंश में सामने आ जाता है।

कादम्बरी

महाकवि बाणभट्ट की दूसरी 'अतिद्वयी' रचना कादम्बरी है। यह एक कथा है। आधुनिक परिभाषा में कथा को ही उपन्यास कहते हैं। यद्यपि कथा और उपन्यास में बहुत अन्तर है, तथापि काल्पनिकता का सम्बन्ध दोनों में एक-सा अभिलक्षित होता है। आधुनिक उपन्यास कथा का विकसित रूप है और कथा उपन्यास का पूर्व रूप। कादम्बरी संस्कृत-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्य-रचना है और बाण की अमर कृति है। 'हर्षचरित इस पृथिवी-लोक की तथ्यात्मक आख्यायिका है पर कादम्बरी दिव्य-लोक को भूतल पर लाने वाली काव्य-कल्पना है।' यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है बाण हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी में अधिक सफल हुए हैं। कादम्बरी की कथा के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि यह गुणाढ्यकृत बृहत्कथा से ली गई है। गुणाढ्य ने बृहत्कथा को पैशाची भाषा में लिखा था, जो अब तक उपलब्ध नहीं है। उसके संस्कृत अनुवाद के रूप में क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी और सोमदेवकृत कथासरित्सागर में कादम्बरी-कथा का मूल रूप सुरक्षित है। भारतीय प्राचीन साहित्य के उपजीव्य तीन ग्रन्थ विशेष रूप से रहे हैं—रामायण, महाभारत और बृहत्कथा। अतः सम्भव है कि बाण ने अपनी कथा की मूल घटनाएँ बृहत्कथा से ली हों, किन्तु यह निर्विवाद है कि उन्होंने अपनी प्रतिभा से उसे एक सर्वथा नवीन और मौलिक रूप दे दिया है।

कादम्बरी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—'विदिशा के राजा शूद्रक के समीप एक चाण्डालकन्या पंजरबद्ध आश्चर्यकारी शुक को उनकी सेवामें अर्पित करती है। वह शुक अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का वृत्तान्त सुनाता है। महर्षि जाबालि शुक के पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं—उज्जयिनी के राजा तारापीड

थे। उनकी रानी विलासवती थी। उनके गुणवान् महामन्त्री शुकनास थे। बड़ी प्रतीक्षा के बाद राजा को एक पुत्र होता है। उसी समय शुकनास की पत्नी मनोरमा के गर्भ से भी पुत्र होता है। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ था और शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन। दोनों ने एक साथ गुरुकुल में अध्ययन किया। दोनों दिग्विजय के लिए सेना लेकर निकल पड़े। राजकुमार चन्द्रापीड़ एक बार किन्नर-मिथुन का पीछा करते हुए बहुत दूर अच्छोद नामक सरोवर के समीप पहुँच गए। वहाँ महाश्वेता नामक एक तपस्विनी गन्धर्वकन्या मिलती है। पूछने पर अवगत हुआ कि उसका अभीप्सित प्रिय पुण्डरीक मिलने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। प्रिय के भावी मिलन की आशा में वह अच्छोद सरोवर के किनारे रहने लगी थी। उसकी सखी कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण किया था। वह चन्द्रापीड़ को कादम्बरी के पास ले जाती है। वहाँ प्रथम साक्षात्कार में ही चन्द्रापीड़ और कादम्बरी दोनों अनुरक्त हो जाते हैं। चन्द्रापीड़ फिर लौट कर अपने स्थान पर आते हैं। वहाँ से पिता का पत्र पाकर अकेले घर आ जाते हैं। घर से फिर स्कन्धावार पहुँच कर वैशम्पायन को वहाँ न देख दौड़े-दौड़े महाश्वेता के पास जाते हैं। महाश्वेता ने जब यह कहा कि मुझसे उसने प्रणययाचना की तो मैंने उसको शुक बना दिया, तो इस प्रकार अपने सुहृद की आपत्ति से चन्द्रापीड़ के प्राण निकल जाते हैं। वहाँ कादम्बरी भी पहुँचकर चन्द्रापीड़ के पुनः मिलन की आशा से उनके शवशरीर की सेवा करती है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब शुक ने शूद्रक से कहा कि मैं जाबालि के आश्रम से महाश्वेता के लिए उड़ चला तो बीच ही में चाण्डालकन्यका ने पकड़ कर मुझे आप के समीप ला दिया। तब चाण्डाल-कन्यका ने कहा कि मैं लक्ष्मी हूँ, यह शुक पुण्डरीक है और आप चन्द्रापीड़ हैं। शूद्रक को कादम्बरी का प्रेम स्मृत हो उठा। उनके प्राण निकल गए और उधर चन्द्रापीड़ जीवित हो गए। शुक की आत्मा भी पुण्डरीक के मृत शरीर में जाकर पुनः मिल गई, जो चन्द्रलोक में सुरक्षित था। तत्पश्चात् महाश्वेता और पुण्डरीक, कादम्बरी और चन्द्रापीड़ सब एकत्र हो गए और विवाहित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी अनेक अप्राकृतिक घटनाओं से भरी होने पर भी कुतूहल उत्पन्न करने में अपूर्व है। उत्सुकता तो कथा के आरम्भ में चण्डालकन्या द्वारा शूद्रक की सभा में वैशम्पायन शुक के लाए जाने से ही लेकर आरम्भ हो जाती है और पाठक को बरबस आगे बढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कथा की प्रधान नायिका कादम्बरी बड़ी लम्बी चढ़ान के बाद मिलती है। अनेक उपकथाएँ भी साथ-साथ चल पड़ती हैं जो कथा के सूत्र में पुष्टि लाने का काम करती हैं। महाश्वेता की प्रणयकथा कादम्बरी की प्रणयकथा

के अन्तर्मुक्त होने पर भी अपना अस्तित्व अलग रखती है। कादम्बरी एक मुग्धा नायिका है जो सिर्फ प्रणय करना जानती है, महाश्वेता तपी हुई वनिता है जो प्रणय के सच्चे मार्ग पर कादम्बरी को प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है। कादम्बरी से महाश्वेता का व्यक्तित्व किसी अंश में दुर्बल नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि कादम्बरी बिलकुल एक कठपुतली रह गई है। वह सबके प्रभाव से अलग होकर अपने प्रणय का अस्तित्व बनाने में अत्यन्त निपुण है। आरम्भ में उसका वासना-जनित प्रेम भी आगे चल कर विरह-तप्त होकर महाश्वेता के प्रणय के समान ही पवित्र बन गया। आरम्भ से अन्त तक कादम्बरीकथा अनेक प्रकार की विविधतापूर्ण घटनाओं से भरी होने के कारण कवि के वस्तुविन्यास-कौशल का परिचय देती है।

बाण के चरित्र-चित्रण की अपनी विशेषता है। जैसा कि हम हर्षचरित में देख चुके हैं उसी प्रकार कादम्बरी के भी सभी पात्र सजीव बन पड़े हैं। नवयुवक चन्द्रापीड़ जो अपनी सौम्यता में, महाराज तारापीड़ जो अपनी उदारता में, आदर्श महामंत्री शुकनास जो अपनी अगाध प्रवीणता में, रानी विलासवती जो अपनी सुकुमारता में, छाया की भाँति चन्द्रापीड़ का अनुसरण करने वाली पत्रलेखा अपनी तत्परता में, कठोर कपिंजल अपनी स्नेहमयता में कादम्बरी के जीते-जागते पात्र हैं जो पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। कादम्बरी के चित्रण में बाण ने भावों के सम्बन्ध में अपने मार्मिक निरीक्षण का अपूर्व परिचय दिया है। कादम्बरी के समस्त भाव सहृदय और समीक्षक पाठक के लिए अलग से अध्ययन के विषय हैं। बाण के मौलिक कवित्व का साक्षात्कार इन्हीं विषयों में होता है।

वर्णन-वैचित्र्य

कल्पनाओं का अतिरंजित हो जाना बाण जैसे कल्पनाशील मन वाले भावुकहृदय कवि के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह दृष्टि में आती है कि बाण ने अपने बहुमुखी जीवन के अनुभवों को समेट कर पद-पद में अनुस्यूत कर डाला है। हर्षचरित में बाण की दृष्टि के सामने उनके जो समस्त अनुभव थे, कादम्बरी में वे ही बिलकुल उनके तरल मानस में अन्तर्लीन होकर कुछ विलक्षण रूप में प्रस्फुरित होते हैं। जैसे कोई चित्रकार किसी प्रपात के मनोहर दृश्य के सामने बैठ कर उसका रेखाचित्र बना लेता है और घर पर जाकर आँखों के मार्ग से मन में उतारे हुए उस दृश्य के समस्त छविमय आकार को विविध प्रकार के रंगों से अभिव्यंजित करता है ठीक उसी प्रकार बाण ने अभ्यास के लिए अनुभव के विविध रूपों का एक खाका तैयार कर लिया जो हर्षचरित के रूप में सहृदय जनों के सामने है। फिर वे ही अनुभव नये-नये रंग-रूप में अलौकिकता

के साथ कादम्बरी के पद-पद में भीन गए हैं। यही कारण है कि कवि की सफलता हर्ष-चरित की अपेक्षा कादम्बरी में अधिक समझी जाती है। हर्षचरित में जो सेनापति सिंहनाद का उपदेश है उसकी कोटि में कादम्बरी का शुकनासोपदेश कितना विस्तृत और पूर्ण बन गया है। ऐसा लगता है जैसे महर्षि व्यास ने महाभारत के एक अतिरिक्त प्रकरण में गीता को उपनिबद्ध कर दिया है वैसे ही महाकवि बाण ने शुकनासोपदेश के नाम से एक अतिरिक्त रचना ही कादम्बरी में उपनिबद्ध कर दी हो।

कादम्बरी शताधिक वर्णनों का अद्भुत संग्रह है। डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल के शब्दों में कादम्बरी में बाण की वर्णन-क्षमता का मृद्वीकापाक हुआ है। बाण की चित्र-ग्राहिणी प्रतिभा वर्णनों में वर्णनातीत सफल हुई है। कादम्बरी में बाण ने नदी, वन, वृक्ष, सरोवर, नगर, सायं-प्रातः, चन्द्रोदय, धूलिपटल, राजकुल, इन्द्रायुध अश्व आदि के वर्णनों में बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। व्यक्ति के चित्रण में, उसके सौन्दर्य की सूक्ष्मतम कल्पना में बाण के अतिरिक्त कौन सफल हो सकता है? यद्यपि संस्कृत-साहित्य में वर्णनकर्ता कवियों की कमी नहीं है, कालिदास का तो कहना क्या? लेकिन बाण विस्तार-प्रधान वर्णन के पक्षपाती हैं। कालिदास जिस चित्र को थोड़े में ही अंकित कर सके हैं उसे बाण ने भव्य रूप देकर बड़ा बना दिया है। यही कारण है कि कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक मौलिकता बाण की अपेक्षा अन्य को नहीं मिली। बाण की दृष्टि में किसी विशेष वर्णन में पक्षपात नहीं दिखाई देता। बाण जिस सूक्ष्मता से धवलदेहकान्तिप्रतिमण्डिता महाश्वेता का वर्णन करते हैं उसी सूक्ष्मता से नीलम की पुतली के समान काली-कलूटी चाण्डालकन्या का भी वर्णन करते हैं। अपेक्षाकृत बाण के वर्णन प्रातःकाल से अधिक सायंकाल के ही मिलते हैं। सम्भव है प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल का दृश्य ही उनको अधिक पसंद था। नगरी उज्जयिनी के वर्णन से जाबालि के शान्त और पवित्र आश्रम का वर्णन भी कम अद्भुत नहीं। कादम्बरी के सौन्दर्य-वर्णनों में भी कम आकर्षण नहीं। मानवी सौन्दर्य का वर्णन और तद्वाची शब्दों की विकसित सामग्री भी कालिदास से कहीं अधिक बाण की इस रचना में मिल जाती है। इसके अतिरिक्त इन्द्रायुध अश्व के सजीव वर्णन से बाण को 'तुरङ्गबाण' की पदवी भी मिली है। बाण के साहित्य के प्राण वर्णन ही हैं। उन्हें अलग कर देने पर कथा कुछ भी न रह जायगी।

बाण अत्यन्त परिहास-प्रिय व्यक्ति थे। कादम्बरी के चंडिका-मन्दिर के बुड्ढे पुजारी के वर्णन में उनकी परिहास-प्रियता का पता चलता है। उस पुजारी के वर्णन में बाण ने खुलकर मजाक किया है। 'देवी के चरणों पर बार-बार माथा रगड़ने से उसके माथे पर

'चट्टा पड़ गया था। किसी कठवैद द्वारा दिए हुए सिद्धांजन से उसकी एक आँख फूट गई थी इसलिए वह दूसरी आँख में प्रतिदिन तीन बार अंजन लगाता था जिससे लकड़ी की सलाई भी घिस कर चिकनी हो गई थी। रेशम के कोये का छल्ला पैर के अँगूठे में मढ़ लेने के कारण उसकी काट से अंगूठा घायल हो गया था। पिशाच चढ़े हुए लोगों का भूत उतारने के लिए वह मंत्र पढ़कर पीली सरसों से बार-बार उन्हें मारता तो वे भी उसकी ओर लपक कर लप्पड़ मारते जिससे उसका कान दब कर चपटा हो गया था। वह दिन भर मच्छड़ की तरह भनभनाता हुआ सिर हिला कर कुछ गुनगुनाता रहता था। वह लाचारी ब्रह्मचारी था, अतएव जब दूर जगहों से आकर ठहरी हुई बुड्ढी तापसियों को देखता तो ताव खा-खा कर स्त्रीवशीकरण चूर्ण का उन पर प्रयोग करता था। कभी आए हुए बटोहियों को वहाँ न ठहरने देने के लिए उनसे जूझ जाता और तब वे भी बिगड़ कर उसके साथ गुत्थम-गुत्था करने लगते और उसे पटक कर उसकी पीठ चटका देते। रतौंधी के कारण वह दिन में ही आ-जा लेता। उसका पेट निकला हुआ था और खाने की कोई थाह न थी। फागुन में जब लोगों को मस्ती चढ़ती तो वे मचियासहित किसी बूढ़ी दासी को उठा ले आते और उसके साथ ब्याह रचा कर उसकी ठठोली करते।' इस प्रकार बाण के इस बुड्ढे पुजारी को देख कर मन में रस भर आते हैं। हास्य, बीभत्स और भयानक का जीता-जागता चित्र बाण ने यहाँ देकर अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन-किया है।

कादम्बरी का एक प्रसंग बहुत ही आश्चर्यकारी है जहाँ बाण की कथा-निर्माणक्षमता का अनुमान सहज ही होने लगता है। जब महाश्वेता के साथ चन्द्रापीड़ कादम्बरी के यहाँ भवन में जाकर ताम्बूल द्वारा उससे सम्मानित होते हैं। तत्पश्चात् उस समय कथा-क्रम शिथिल होता प्रतीत होता है। सबके सब चुपचाप यथास्थान बैठते हैं। कादम्बरी, चन्द्रापीड़, महाश्वेता एवं और सब उपस्थित सखी और परिजनों के लिए इस समय ऐसे हलके झोंके की आवश्यकता थी कि जिससे फिर वे अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त कर सकें। बाण ने वहाँ सहसा एक सारिका और परिहास नामक शुक के झगड़े का प्रसंग लाकर कथा के प्रवाह को विलक्षण युक्ति से सम्हाल लिया है। चन्द्रापीड़ ने इस प्रसंग में नर्म-भाषित करके सबको प्रभावित कर लिया। वहाँ का वातावरण उन पर हावी न हो सका। वहाँ के लोगों और चन्द्रापीड़ में अपरिचयकृत दूरी हट गई और वे उन सबके ऊपर प्रभावशाली हो गए तथा परस्पर सबके निकट आ गए। इस प्रकार बाण की लेखनी कथा के वस्तु-विन्यास-वर्णनों के संवर्धन एवं मानस भावों के अंकन में सर्वत्र जागरूक रहती है। वर्णनों की भरमार से कथा-प्रवाह के शिथिल प्रतीत होते हुए भी उनकी सरसता एवं चित्रमयता से पाठक को किसी प्रकार का उद्वेजन नहीं हो पाता। वह कथा के अग्रिम

मोड़ से परिचित होने के लिए उत्सुक होकर भी तत्काल वर्णनों के भीतर इतना डूब जाता है कि कथा की ओर से उसका ध्यान हट जाता है। इसे बाण की अपनी विशेषता समझनी चाहिए।

यह पहले कहा जा चुका है कि कादम्बरी का उत्तर भाग बाणभट्ट के सुयोग्य पुत्र की रचना है। सौभाग्य की बात है कि उत्तरभाग भी बाणरचित पूर्वभाग की तरह ही बन गया है। सम्भव था बाण कुछ और विस्तृत करके लिखते। उत्तरभाग को देख कर ऐसा लगता है कि अगर भूषणभट्ट या पुलिन्द(न्ध्र)भट्ट ने अपना नाम बिना लिखे ही कादम्बरी की पूर्ति कर दी होती तो निश्चय ही यह किसी के लिए निर्णय करना कठिन हो जाता कि पूरी रचना एक ही कवि की है या नहीं। हाँ, इतना तो लोग अवश्य कहते कि बाण अन्त में चल कर हड़बड़ा गए और कथा को शीघ्र समाप्त कर डाला। कहीं उत्तर भाग में भी पूर्व भाग के टक्कर की रचना हो गई है। फिर भी बाण-पुत्र यह कहते हुए तनिक भी रुकते नहीं कि मैंने पिता की वाणी के समुद्रगामी प्रवाह में अपनी वाणी की धारा मिला दी जिससे कथा समाप्ति को प्राप्त हो सके। उनका यह कथन सर्वथा सत्य है। बाण की धारा में मिल पाने से ही उनकी वाणी यह काम कर सकी, अन्यथा बाण-जैसे वर्णनशिल्पी के सामने किसी दूसरे का डट पाना कभी सम्भव न था। बाण-पुत्र में कुछ-कुछ कवित्व का जो गुण था वह उनके पिता के आशीर्वाद का ही फल था। उन्होंने कादम्बरी के सम्बन्ध में कहा है—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाऽप्यनुसन्दधानः॥

अर्थात् कादम्बरी (एक प्रकार की मदिरा तथा कादम्बरीकथा) के उत्तम रस को पीकर सहृदय जनों का वर्ग बिलकुल छक कर अपनी सुध-बुध खो बैठा है। ऐसी स्थिति में रस और वर्ण से विहीन अपनी वाणी द्वारा कादम्बरी की पूर्ति करते हुए मुझे कुछ भय नहीं, क्योंकि बेहोशी में किसी को पता न चलेगा।

बाण की दृष्टि में काव्य का स्वरूप

बाण की शैली जानने से पूर्व हमें बाण के विचार में काव्य के स्वरूप को जान लेना चाहिए। बाण काव्य के स्वरूप के संबन्ध में अपनी अलग दृष्टि रखते हैं, जैसा कि हर्ष-चरित के आरम्भ में उन्होंने समझाया है। बाण को उन कवियों की कविता पसंद न थी जो राग-द्वेष से भर कर मनमाने ढंग से बकवास करते हैं। बाण के अनुसार ऐसे 'वाचाल' और 'कामकारी' लोग ही कुकवि हो जाते हैं। नई वस्तु उत्पन्न करने वाला ही सच्चे अर्थ

में कवि कहलाने योग्य है और वही 'उत्पादक' है। बाण केवल स्वभावोक्ति (जाति) के पक्षपाती न थे। प्रायः उन दिनों साहित्य में कविता के नाम पर प्रचुर मात्रा में स्वभावोक्तिशैली का प्रचलन था। बाण की प्रतिक्रिया यह थी कि स्वभावोक्ति किसी प्रकार भी कविता नहीं हो सकती; क्योंकि उसमें नवीनता का सर्वथा अभाव रहता है। आगे चल कर अलंकारशास्त्र के आचार्यों ने वक्रोक्तिवाद को खड़ा करके बाण के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण किया। स्वभावोक्ति एक अलंकारमात्र तक सीमित रह गई। वस्तु के यथार्थ रूप में कोई आकर्षण नहीं रहता, अन्यथा कविता लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं। कवि वस्तु के यथार्थ रूप को बदल डालता है और अपनी प्रतिभा से नई वस्तु का निर्माण करता है, यही बाण का अभिप्रेत पक्ष था। वक्रोक्ति ने श्लेषप्रधान शैली को उत्पन्न किया। श्लेषपूर्ण शैली का काव्य-निर्माण भी चल पड़ा। उसकी झलक बाण के पूर्ववर्त्ती सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमय रचना वासवदत्ता में मिलती है। यह शैली बाण को भी पसंद थी। कादम्बरी में उन्होंने लगातार श्लेषों से भरी हुई (निरन्तरश्लेषघना) शैली की प्रशंसा की है। वस्तु की भावात्मक रचना में जब तक शब्दों की मरोड़ से उत्पन्न नवत्व का साक्षात्कार नहीं मिलता तब तक कवि प्रशंसा के पात्र नहीं, सम्भवतः बाण की यही दृष्टि थी। यह भी बात नहीं कि जाति या स्वभावोक्ति शैली बाण को सर्वथा अनभिमत थी, उन्होंने अग्राम्या जाति की प्रशंसा की है, अर्थात् वह स्वभावोक्ति जो केवल वस्तु के यथार्थ रूप का चित्रण न होकर सुन्दरतापूर्ण चित्रण हो, बाण को सर्वथा मान्य थी।

बाण कविता में समन्वय दृष्टि के पक्षपाती थे। वे एकांगी दृष्टि को कविता के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे। उन दिनों प्रायः पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के कवि लोग एकांगी दृष्टि से काव्य लिखते थे, जैसा कि बाण ने स्वयं निर्देश किया है—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥ (हर्ष०)

अर्थात् उत्तर के लोगों में श्लेष-प्रधान शैली में रचना करने की प्रवृत्ति है, पश्चिम के लोग अर्थमात्र पर ध्यान देते हैं, भाषा कैसी भी हो अर्थ बढ़िया होना चाहिए। दाक्षिणात्य लोग उत्प्रेक्षा करने में खूब पटु हैं, उत्प्रेक्षाशैली उड़ान भरना या हद तक कल्पना करना है, गौड़ देश के निवासी कवियों में अक्षराडम्बर ही खूब चलता है। अक्षराडम्बर अर्थात् विकट शब्दों की योजना का आनुप्रासिक प्रवृत्ति से तात्पर्य है। इस प्रकार चारों ओर साहित्यिक समाज में एकांगी दृष्टि से काव्य-निर्माण की प्रवृत्ति चल पड़ी थी जो बाण को अभिप्रेत न थी। बाण कविता में सब शैलियों का समन्वय मानते थे। बाण की दृष्टि में बढ़िया काव्य वह है जिसमें पाँच बातों का मेल हो—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥ (हर्ष० श्लोक १।८)

अर्थात् विषय की नवीनता, सुन्दर लगने वाली स्वभावोक्ति, श्लेष ऐसा जो क्लिष्ट न हो, स्फुट रस, जिसके निर्णय के लिए सहृदय को विशेष माथा-पच्ची न करनी पड़े, विकट या भारी भरकम शब्दों की योजना। बाण का कहना है कि सब मिल कर ये पाँचों बातें किसी एक काव्य में दुर्लभ हैं, परन्तु सच्चे अर्थ में वही काव्य कहने योग्य है जिसमें इन सब का समन्वय हो। बाण ने अपने काव्यों में इनके समन्वय का हमेशा ध्यान रखा है। बाण की यह समन्वयप्रधान शैली किसी प्रकार के एकांगी दृष्टिकोण के अधीन नहीं रही, यही उसकी विशेषता है। सचमुच श्लाघनीय रचना समन्वयप्रधान दृष्टिकोण का कवि ही कर सकता है, बाण की सफलता का रहस्य भी यही है। बाण की रचना में विषय की सर्वाधिक नूतनता, सरल श्लेष-प्रधान शैली की अद्भुत योजना, वस्तुओं का अग्राम्य यथार्थ-वर्णन, समासबहुल पदविन्यास तथा कथावस्तु का ग्रथन, इन सब का विलक्षण सामंजस्य मिल जाता है।

कहा गया है कि बाण मनमाने ढंग की कविता करने वाले वाचाल एवं अनुत्पादक कवियों से खूब चिढ़े हुए थे। दूसरे कवि के वर्णों को बदल कर उनके स्थान में अपने शब्द रख कर काव्य निर्माण की प्रवृत्ति रखने वाले कवि बाण के शब्दों में चोर होते हैं। वे सहज ही पकड़ जाते हैं। ऐसे कवियों की रचना किसी अंश में आदर के योग्य नहीं। बाण की दृष्टि में कविता की भूमिका अपने स्वरूप में सर्वथा मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। कविता की सिद्धि के लिए कवि को महती साधना करनी पड़ती है। साधना-विहीन कवि किसी प्रकार भी कविता की उच्च भूमिका में नहीं पहुँच सकता। बाण ने किसी विशेष कवि का नाम लेकर इस प्रकार की कुछ भी निन्दा की बात नहीं कही है। व्यक्तिगत आक्षेप बाण को अभिमत नहीं। प्रशंसा के अवसर पर वे विशेष कवियों की चर्चा हृदय खोल कर करते हैं। इसी प्रसंग में बाण ने अनेक कवियों का आदर-पूर्वक स्मरण किया है।

सर्वविद महर्षि व्यास और आख्यायिका निर्माण करने वाले कवीश्वरों की वन्दना के पश्चात् बाण अपने पूर्ववर्ती गद्यकाव्य वासवदत्ता की प्रशंसा करते हैं। वासवदत्ता सुबन्धु-कृत होनी चाहिए। किन्तु कुछ विद्वानों को कथा के रूप में सुबन्धु की उपलब्ध श्लेष-बहुल-रचना वासवदत्ता आख्यायिका के प्रसंग में कवियों के दर्प को विचलित करने वाली बाण की निर्दिष्ट (आख्यायिका) वासवदत्ता से अतिरिक्त लगती है। अस्तु, वे वासवदत्ता के गुण से प्रभावित अवश्य थे, पर अन्य कवियों की तरह विगलित-दर्प न थे, क्योंकि कादम्बरी

के आरम्भिक पद्यों में बाण ने अपनी कथा को 'निरन्तरश्लेषघना' और 'अतिद्वयी' अर्थात् वासवदत्ता और गुणाढ्यकृत बृहत्कथा का अतिक्रमण करने वाली कहा है।

फिर बाण ने भट्टार हरिचन्द्र नामक कवि के गद्यबन्ध की चर्चा की है, जिसमें पद-बन्ध उज्ज्वल, मनोहर तथा अनुप्रास के रूप में क्रम से वर्णों की स्थिति है। उसकी शैली बाण के लिए आदर्श थी। भट्टार हरिचन्द्र के गद्यबन्ध के उपलब्ध न होने से यह ठीक पता नहीं चलता कि वे कौन थे। सम्भावना है कि राजशेखर ने जिन हरिचन्द्र का उल्लेख किया है वे ही बाण के भट्टार हरिचन्द्र हों। इस प्रकार बाण ने सातवाहन के सुभाषित-कोश गाथासप्तशती, प्रवरसेन की प्रसिद्ध रचना सेतुबन्ध और भास के यशस्वी नाटकों का सादर संस्मरण किया है।

महाकवि कालिदास बाणभट्ट के अत्यन्त प्रिय कवि थे। बाण ने उनकी मधुरसार्द्र सूक्तियों में खूब आनन्द लिया था। सचमुच कालिदास के बाद बाण का ही नाम लिया जा सकता है। बाण ने कालिदास को खूब समझा है और उनकी शैली को आदर्श मान कर और भी पल्लवित रूप में निर्माण करने की अद्भुत क्षमता अर्जित की है। गुणाढ्य की बृहत्कथा और आढ्यराज नामक कवि के काव्योत्साह भी बाण के लिए आश्चर्यकारी थे। आढ्यराज की प्रशंसा में बाण कहते हैं कि जिह्वा ही भीतर की ओर खिंच जाती है और कविता करने के लिए प्रवृत्त नहीं होती।

इस प्रकार बाणभट्ट जितने अंश में दोषज्ञ थे उतने ही अंश में गुणज्ञ भी। फिर भी किसी विशेष के प्रति उनकी बुरी धारणा न थी। बाण के साहित्य में ऐसे व्यक्ति का कोई भी निर्देश नहीं मिलता जिससे बाणभट्ट क्षुब्ध हों। कादम्बरी में उन्होंने थोड़े में ही अपनी काव्यनिर्माणशैली की ओर संकेत किया है। जैसा कि कहा जा चुका है श्लेष-प्रधान शब्दों की अद्भुत योजना ही बाण की शैली की विशेषता है। कादम्बरी में इस शैली की प्रांजलता का साक्षात्कार होता है। बाण के शब्दों में बाण की शैली को 'निरन्तर-श्लेषघना' कहना चाहिए।

आख्यायिका और कथा

महाकवि बाण आख्यायिका और कथा दोनों के लेखक हैं। हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा। अमरकोश में 'आख्यायिकोपलब्धार्था' कहा है, अर्थात् आख्या-यिका वह कथा है जिसका सत्यार्थ ज्ञात हो। कथा का विषय कल्पित होता है। आगे चल कर आख्यायिका के इस लक्षण का विकास हुआ और भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी परिभाषा की। हर्षचरित और कादम्बरी को देख कर आख्यायिका का विषय ऐतिहासिक

होना और कथा का कल्पनाप्रसूत होना, ऐसा ज्ञात होता है। अग्निपुराण के अनुसार आख्यायिका वह है जिसमें लेखक के वंश की प्रशंसा कुछ विस्तार से हो, कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियों का वर्णन हो, रीति और वृत्ति अति प्रदीप्त शैली में हों, परिच्छेदों का नाम उच्छ्वास हो, चूर्णक शैली का बाहुल्य हो तथा वक्र और अपवक्र नामक श्लोक हों (अग्नि० ३३६।१३-१४)। कथा में इसके विपरीत कुछ श्लोकों में कवि-वंश का संक्षिप्त वर्णन हो, मुख्यार्थ के अवतरण के रूप में दूसरी कथा कही जाय, जिसमें परिच्छेद न हों अथवा कहीं पर लम्बक हों (अग्नि० ३३६।१५-१७)। दण्डी ने भी काव्यादर्श में दोनों के भेद बताने का प्रयत्न किया है। आख्यायिका का वक्ता स्वयं नायक होता है, कथा का नायक या अन्य कोई; किन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं। दण्डी दोनों में किसी विशेष अन्तर के पक्षपाती न थे। नाममात्र का ही भेद है यही उनका तात्पर्य था। पर बाण ने दोनों को अलग-अलग माना है। हर्षचरित में वक्त्रादि छन्दों का भी प्रयोग किया है और उच्छ्वास के रूप में विभाग किया है। कथा में बाण ने इससे बिलकुल भिन्न दृष्टि अपनाई है। आगे चल कर आचार्यों ने हर्षचरित और कादम्बरी को देख कर ही आख्यायिका और कथा के लक्षण बनाये हैं। दण्डी के अनुसार नाम-भेद वाला पक्ष किसी को सम्मत नहीं।

बाण ने अनेक आख्यायिकाकार कवियों की आख्यायिकाएँ देखी थीं। सम्भवतः महाभाष्य में उल्लिखित वासवदत्ता नाम की आख्यायिका से ही बाण परिचित हों। सुबन्धु की वासवदत्ता, जो कथारूप में अभी उपलब्ध है, बाण के बाद की रचना हो। पतंजलि ने वासवदत्ता के अतिरिक्त सुमनोत्तरा और भैमरथी आख्यायिकाओं का भी उल्लेख किया है। तात्पर्य यह कि बाण का हर्षचरित संस्कृत-साहित्य की पहली आख्यायिका नहीं, पर यह अवश्य है कि उपलब्ध पहली आख्यायिका यही दृष्टिपथ में आती है।

बाण की शैली

अब हमें संक्षेप में बाण की शैली के आधार पर वर्णनों का अध्ययन कर लेना चाहिए। बाण के समय से ही चार प्रकार की गद्यशैलियाँ चल पड़ी थीं, जिनमें बाण के साहित्य में तीन मिलती हैं, जैसे—एक दीर्घ समास वाली, दूसरी अल्प समास वाली और तीसरी समास-रहित। लम्बे-लम्बे समासों वाली शैली को उत्कलिका, छोटे-छोटे समासों वाली शैली को चूर्णक और समासरहित शैली को आविद्ध कहते हैं। बाण को इन तीनों शैलियों में बड़ी सफलता प्राप्त थी। उन्हें किसी विशेष शैली पर आग्रह नहीं था, फिर भी उत्कलिका अर्थात् दीर्घ समास वाली शैली बाण के चित्रात्मक प्रसंग

के अनुकूल पड़ती थी। इसलिए बाण वर्णनों में प्रायः इसका आश्रयण करते हैं। हर्षचरित के दर्धाचवर्णन, ग्रीष्मवर्णन आदि प्रसंगों में विशेष रूप से यह शैली प्रयुक्त है। वर्णनों में चलचित्र के समान शब्दों के माध्यम से छोटे-छोटे चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं। संस्कृत भाषा की यह महती विशेषता है कि उन लघु चित्रों को प्रस्तुत करने में कवि कई शब्दों को गूँथकर एक लड़ी बना डालता है। बाण के जिस वर्णन को लीजिए उसमें दीर्घ समासों वाली शैली मिलेगी। वर्णन के अन्त में प्रायः बाण उत्कलिका को छोड़कर समासरहित आविद्ध शैली का आश्रयण करते हैं। आविद्ध शैली में किसी चित्र को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वस्तु से सम्बन्धित कुछ बातों की सामान्य चर्चा के लिए यह उपयोगी है। बाण ने अपने वर्णनों में प्रायः ऐसा ही किया है। चूर्णकशैली को जिसमें छोटे-छोटे समास होते हैं, बाण खूब लिखते हैं। इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। वर्णन करते-करते कभी-कभी शास्त्रीय उपदेश भी करने की प्रवृत्ति बाण के साहित्य में जगह-जगह मिलती है। उसमें प्रायः अल्पसमास चूर्णकशैली बाण को पसंद है। बाण की शैली का निखरा हुआ रूप हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास में जहाँ राज्यश्री के विवाह का प्रसंग है, मिलता है। हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी के वर्णन चित्रमयता और प्रांजलता तथा सरसता की दृष्टि से अपूर्व बन पड़े हैं। महाश्वेता, कादम्बरी आदि के वर्णनों में बाण की अलौकिक वर्णन-क्षमता का परिचय मिलता है।

बाण स्वयं कादम्बरी में गद्य की उत्कृष्ट शैली की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्।' अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों द्वारा नये अर्थ-समूह का प्रतिपादन करने वाला गद्य उत्कृष्ट होता है अथवा वह उत्कृष्ट कवि द्वारा लिखा जाता है। रीति की दृष्टि से बाण में पाञ्चाली रीति का प्राचुर्य है। स्वयं भोजराज भी इसे स्वीकार करते हैं—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥ (सरस्वतीकण्ठाभरण)

अर्थात् शब्द और अर्थ का समान रूप से गुम्फन पाञ्चाली रीति में होता है, वह शिलाभट्टारिका और बाण दोनों की उक्तियों में पाई जाती है। विषय के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग ही पाञ्चाली रीति का तात्पर्य है। बाण इसके सिद्धहस्त कवि हैं।

इस भूमिका में बाण के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बातों की चर्चा की गई है। आशा है बाण के विद्यार्थी इससे लाभान्वित होंगे। श्रद्धेय डा० वासुदेव शरणजी अग्रवाल ने हर्षचरित और कादम्बरी पर अलग-अलग अपना सांस्कृतिक अध्ययन

प्रस्तुत किया है। भूमिका में मैंने उनकी दृष्टि का बहुत अंश में अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। बाण के साहित्य को जानने के लिए जो कुछ अन्य स्रोत भी मिले हैं मैंने उनका उपयोग किया है।

अनुवाद के सम्बन्ध में

हर्षचरित का अनुवाद मैंने किया यह कहने की हिम्मत मुझमें नहीं। अनुवाद आरम्भ करने के पूर्व मैंने अपने गुरुदेव डा० अग्रवाल जी से इस सम्बन्ध में पूछा था। उन्होंने सहर्ष अनुमति दी और उत्साहित किया। तत्काल स्वयं चौखम्बा विद्याभवन के अध्यक्ष महोदय से उन्होंने बातें भी कर लीं और मुझे अनुवाद तैयार करने के लिए सूचित किया। उन्होंने उत्साहित करते हुए यह कहा कि कहीं शंका हो तो पूछ लेना। मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इसी बीच अध्यापनार्थ मुझे वैद्यनाथधाम गुरुकुल आना पड़ा। मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया मेरी कठिनाइयाँ भी बढ़ने लगीं। किसी किसी प्रसंग में मैंने अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाया। अनुवाद की परिसमाप्ति की लोलुपता और गुरुदेव का असान्निध्य दोनों ने मुझे अहोरात्र उद्वेलित किया। तब मैंने ऐसे प्रसंगों में 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' की शरण ली और बड़ी सरलता से पूरे ग्रन्थ का अनुवाद तैयार कर लिया। इस अनुवाद की आधारभित्ति गुरुदेव की कृति ही है। अतः गुरुदेव के लिए मैं अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट करूँ? आशा है वे मेरी विवशताजन्य धृष्टता को क्षमा कर देंगे।

चौखम्बा विद्याभवन के अध्यक्ष महोदय धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने मेरे अनुवाद को अपने यहाँ से प्रकाशित किया और आगे के कार्य के लिए भी प्रेरित किया।

वैद्यनाथधाम
गुरुकुल

जगन्नाथ पाठक

विषय-सूची

प्रथम उच्छ्वास (वात्स्यायनवंशवर्णन)

द्वितीय उच्छ्वास (राजदर्शन)

तृतीय उच्छ्वास (राजवंशवर्णन)

चतुर्थ उच्छ्वास (चक्रवर्तिजन्मवर्णन)

पञ्चम उच्छ्वास (महाराज-मरण-वर्णन)

षष्ठ उच्छ्वास (राजप्रतिज्ञावर्णन)

सप्तम उच्छ्वास (छत्रलब्धि)

अष्टम उच्छ्वास (विन्ध्याद्रिनिवेशन)

॥ श्रीः ॥

हर्षचरितम्

'संकेत' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

प्रथम उच्छ्वासः

[1]नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शंभवे ॥ १ ॥

❀ संकेतः ❀

श्च्योतन्मदाम्बुभरनिर्भरचण्डगण्डशुण्डाग्रशौण्डपरिमण्डितभूरिभृङ्गान् ।
विघ्नानिवाननवरं चलगण्डतालैरुत्सारयञ्जयति आतनुणो गणेशः ॥
शङ्करनामा कश्चिच्छ्रीमत्पुण्याकरात्मजो व्यलिखत् ।
शिष्टोपरोधवशतः सङ्केतं हर्षचरितस्य ॥

'सर्वकर्माणि कुर्वीत प्रणिपत्येष्टदेवताम्' इति शिष्टाचारमनुपालयन् 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥' इति काव्यलक्षणामपूर्वां सृष्टिं स्थिरां प्रवर्तयन्नेष कविः शिवं बहुशक्तियुतमपि नियत-शक्त्यात्मकमेव स्तौति—नमस्तुङ्गेत्यादिना। न कश्चित्प्रणतो यो मूर्धा तत्स्पर्शी चन्द्र एव सितवालतुल्यप्रभाप्रसरतया स्वेदादिविनाशाद्विशिष्टस्थानस्थितश्च चामरम् । त्रैलोक्यमेव नानाभङ्गिशोभित्वान्नगरं तदारम्भे मूलस्तम्भः। नगरारम्भे हि मूलस्तम्भो भवति। तत्र च पट्टबन्धादिवदुल्लेखनानन्तरमुन्नते पृष्ठदेशे चन्द्रतुल्यं श्वेतं चामरं क्रियत इति स्थितिः। केचित्पुनः—त्रैलोक्यनगरस्यारम्भे मूलं मूलकारणं परमाणव-स्तेषामुपाश्रयेण मूलकारणत्वात्स्तम्भ इव। ते हि तद्वशात्कार्यमारभन्ते। तस्य

---

१. जीवानन्दपाठे प्रथमः श्लोकः—

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

निमित्तकारणत्वादित्याहुः। 'स्वयंभूः शम्भुरादित्यः' इति नामसहस्रे दृष्टत्वाद्धरेः, 'शम्भू ब्रह्मत्रिलोचनौ' इत्यभिधानकोशदर्शनाच्च ब्रह्मणोऽपि नमस्कारोऽयमित्यन्ये वदन्ति। व्याकुर्वते च हरिपक्षे—त्रैलोक्याक्रमणकाले। यद्वा—'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ मही' इत्यभिप्रायेण तुङ्गमुच्छ्रितं चुलवणं यच्छिरस्तच्चुम्बि-चन्द्र एव चामरं तेन चारवे। ब्रह्मपक्षे—चन्द्रः स्वर्णं तन्मयं चामरमिव चामरं केशकलापः हिरण्यकेशो हि ब्रह्मा त्रैलोक्यादीनि सर्वत्र तुल्यमिति ॥ १ ॥

❀ हिन्दीव्याख्या ❀

उन भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ जिनके कहीं भी न झुकने वाले उन्नत मस्तक पर विराजमान चन्द्ररूपी चँवर की शोभा है, जो त्रिभुवनरूपी नगर के निर्माण-आरम्भ में मूलस्तम्भ के समान हैं ॥ १ ॥

हरकण्ठग्रहानन्द[1]मीलिताक्षीं नमाम्युमाम्।
कालकूटविषस्पर्श[2]जातमूर्च्छागमामिव ॥ २ ॥

हरेत्यादिना। प्रियं प्रति गाढस्नेहादि सौकुमार्यं चोपमयोच्यते। कालकूटविषेति प्रशंसार्थः सामान्यपदप्रयोगो मेरुमहीधरचूतवृक्षादिवत्। आगमः प्रारम्भः ॥ २ ॥

उमा को प्रणाम करता हूँ, जिनकी आँखें शिव के कण्ठालिङ्गन के आनन्द से मुँद गई हैं, मानों शिव के गले में स्थित कालकूट विष के स्पर्श हो जाने से उन्हें तत्काल मूर्च्छा आ गई हो ॥ २ ॥

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ ३ ॥

संप्रत्युत्कृष्टकवित्वाभिमानेन तादृशमेव कविवरं स्तौति—नमः सर्वेत्यादिना। सर्वा वेदादिका विद्या गीतादिकलाश्च वेत्ति यस्तस्मै। तदुक्तम्—'नासौ शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला। जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महाकवेः॥' इति कविरेव वेधाः। उक्तं च—'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः'। कवीनां वेधाः। कविशब्दोऽत्रोपचारात्कविबुद्धिषु वर्तते। तेन कविबुद्धीनां श्रेष्ठ इत्यर्थः। तथा चाह मुनिः—'इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः' इति। यद्वा व्युत्पत्त्युत्पादनद्वारेण कवय एवंभूताः सन्तः क्रियन्ते। मुख्य एव कविशब्दस्यार्थः। यदुक्तम्—'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते' इति। पुण्यं पावनम्। यदुक्तम्—'भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः। श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापानि देहिनः॥' इति। सरस्वती वाणी, तस्या लताया इव पुष्पादिहेतुत्वाद्वर्षं वृष्टिमिव। वर्षं वा स्थानविशेषः। यतोऽसौ तत्रास्ते। यदुक्तम्—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न

---

१. पाठान्तरम्—हरकण्ठाग्रहानन्द। २. स्पर्शाज्जात।

तत्कथित्'। भरतानधिकृत्य कृतो ग्रन्थो भारतस्तम्। यद्वा—भारतं वर्षमिव। भरतः कश्चिद्राजा तस्य निवासं भारतं वर्षं भूभागैकदेशस्तदिव। उक्तं च–'स्यात्प्रावृड्वर्षा लोकधात्वंशो वत्सरे वर्षमस्त्रियाम्' इति। यद्वा—भारतवर्षान्तःस्था भावा मनुष्येषु सुलभास्तद्वन्महाभारतस्था सरस्वती। एतदपि सरस्वत्याख्यया पुण्यम्॥३॥

वेदादि समस्त विद्याओं और कलाओं को जानने वाले और कवियों के प्रजापति सर्वज्ञ महर्षि व्यास को प्रणाम है, जिन्होंने अपनी वाणी से महाभारत को उस प्रकार पवित्र किया जैसे सरस्वती नदी ने सारे भारतवर्ष को॥ ३॥

प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः।
कोकिला इव जायन्ते वाचालाः कामकारिणः[2]॥ ४॥

एवं सर्वज्ञतागुणकथनेन कविप्रशंसां कृत्वा काव्यप्रशंसामाह—प्राय इत्यादिना। काव्यमेतं नाम स्वभावसुभगम्। येनेदृशा अपि कवयः प्रायः प्राचुर्येण कोकिला इव जायन्ते वल्गुवाचः संपद्यन्ते, किं पुनः संविशिष्टा न जायेरन्। केचित्पुनर्भूयसा कुत्सिताः कवयो जायन्त इति कुकविनिन्दैवेयमिति व्याख्यातवन्तः। रागो दुष्पूर्वकोऽनर्थाभिनिवेशस्तेनाधिष्ठिता दृष्टिर्बुद्धिर्येषाम्। वाचाला असबद्धप्रलापिनः। कामेन स्वेच्छया, न खलंकारकृद्दर्शितनीत्या, कुर्वन्ति ये ते। कोकिलपक्षे—कुकन्ति गृह्णन्ति चेतांसीति कुकाः, ते च ते वयो मयूरप्रवराः पक्षिणः; रागो लौहित्यम्। दृष्टिश्चक्षुः। वाचा भारत्या। आला आ समन्ताद्भ्रान्त्यावर्जयन्ति यतस्तादृशाः सन्तः। कामं व्यसनं कुर्वन्ति तच्छीलाः। कामोद्दीपनविभावतां यान्तीत्यर्थः। यद्वा—अवाचालाः। अकारप्रश्लेषोऽत्र॥ ४॥

लोक में प्रायः देखा जाता है कि राग-द्वेष की अकुशल भावनाओं से भरे हुए पर ऊपर से राग का प्रदर्शन करने वाले कोकिल के समान अनेक कुकवि उत्पन्न हो जाते हैं, जो मनमाना बकवास करते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार नियमों की व्यवस्था का उल्लंघन करते हैं॥ ४॥

सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥ ५॥

सन्तीत्यादि। असंख्या अगणनार्हाः। जातिं स्वरूपवर्णनामात्ररूपां वक्रोक्तिशून्यां भजन्ते। 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' इत्यादिवत्। आमोऽप्यसंख्याः। नास्ति संख्यं सङ्ग्रामो येषां ते। जातिशब्देनात्र स्वजातिसमवेता अमेध्यभक्षणादयो गृहीताः। यद्वा—सत्त्वं नाम जातिस्तत्प्रतिपादकं प्रयोजनान्तर-

१. मूर्तयः। २. कामचारिणः।

शून्यतामावेदयति। उत्पादका नवनिर्माणकारिणः, ऊर्ध्वपादाश्च। शरभा हि प्राणिभेदाः। अष्टपादा एते। श्वजातीया इति केचित् ॥ ५ ॥

कुत्तों के समान घर-घर में केवल जन्म लेने वाले कवि असंख्य हैं, जो स्वरूप मात्र का वर्णन करते हैं। शरभों के समान उत्पादक[1] अर्थात् नव-निर्माण करने वाले कवि जगत् में बहुत नहीं हैं ॥ ५ ॥

अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥ ६ ॥

अन्येति। कविश्चौरः सहृदयानां मध्येऽनाख्यातः कथितोऽपि न ज्ञायते। न आ समन्तात्ख्यातः, अपि तु किञ्चित्प्रथितो वा। अन्ये पूर्वकविनिबद्धविलक्षणा ये वर्णा अक्षराणि तेषां रचनेन बन्धचिह्नं श्रीलक्ष्मीप्रभृतिरचनालिङ्गम्। अन्ये तु भाषालंकारप्रभृतिबन्धचिह्नमाहुः। अथ च सतां साधूनां मध्ये चौरो लक्ष्यते। कीदृक्? न ना अना कापुरुषः, अख्यातोऽप्रसिद्धः। केन? अन्यः प्राक्तनच्छायाव्यतिरिक्तत्रासकृतः पाण्डिमादिर्वर्णो मुखरागविशेषस्तत्परिवर्तनेन। यद्वा—शूद्रत्वे सति द्विजादिवर्णाश्रयेण। स्वजात्युचितस्य स्वभावस्य त्यक्तुमशक्यत्वात्तद्भावप्रकटनमवश्यमेव भवति। यतो बन्धः शृङ्खलादिकृतो ग्रन्थिस्तच्चिह्नं त्वग्दूषणादि ॥ ६ ॥

सहृदय जनों के बीच अप्रसिद्ध कवि दूसरे कवि के वर्णों को बदल देने से एवं निर्माण के चिह्नों को छिपाने से चोर समझा जाता है, क्योंकि चोर भी लोगों के बीच मुख के अकस्मात् फीके पड़ जाने से और हाथों पर लगे हुए बेड़ी के दागों को छिपाने से पहचान लिया जाता है ॥ ६ ॥

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम् ॥ ७ ॥

श्लेषेत्यादि। मात्रकपदेन श्लेषयमकाद्यलंकारशून्यत्वं दर्शयति। अक्षरेत्यादिनार्थविशेषाभावं प्रसादादिगुणगुम्फनाभावं चाख्याति। एतदुक्तं भवति—कश्चित्कश्चिद्गुणोऽपि भवति। स च भवन्नपि न सहृदयजनावर्जक इति। अमुनैवाभिप्रायेण नव इत्यादीनि प्रत्येकं विशेषणपदानि वक्ष्यति ॥ ७ ॥

उत्तरी क्षेत्र के कवियों की रचना श्लेष-प्रधान होती है। पश्चिमी क्षेत्र के कवि प्रधान रूप से अर्थाडम्बर में लगे रहते हैं। दाक्षिणात्य कवि उत्प्रेक्षा करने में निपुण होते हैं और गौड़देशीय (प्राच्य) कवियों की रचना में अक्षरमात्र का प्राचुर्य रहता है ॥ ७ ॥

---

१. उठे पैरों वाले। शरभ एक प्राणी है जिसके आठ पैर होते हैं और सब ऊपर की ओर उठे रहते हैं।

---

१. डम्बरः।

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या[1] श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च[2] कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ ८ ॥

नव इत्यादि । **नव आद्यैः कविभिरनिबद्धः, चमत्कारी च । जातिः स्वभावोक्तिः ।** अग्राम्येति । **न तु 'गतोऽस्तमर्कः' इत्यादिरूपा । सधर्मेषु तन्त्रप्रयोगः श्लेषः । अक्लिष्टः सम्यगनेकार्थप्रतिपादनक्षमः । स्फुटो दुर्बोधभङ्गयादिभिरदूषितः । रसः शृङ्गारादिः । विकट उदारतालक्षणबन्धगुणयुक्तः । यत्र सति नृत्यन्तीव पदानि प्रतिभासन्ते ॥ ८ ॥**

नवीन अर्थ जिसे अबतक किसी कवि ने नहीं लिखा हो, अर्थात् चमत्कारी, अग्राम्य जाति अर्थात् स्वभावोक्ति, बिना माथापच्ची के ही समझ में आ जाने वाला श्लेष, सुबोध रस एवं आकर्षक शब्दों का संचयन—इन सब गुणों का एकत्र किसी काव्य में होना कठिन है ॥ ८ ॥

किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी ।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति[3] जगत्त्रयम् ॥ ९ ॥

किमित्यादि । **वृत्तानि वर्णमात्रागणसमार्धसमविषमरूपाणि तदन्तगमनं तद्वि-रचनक्षमत्वम् । भारती वाणी । व्याप्नोति । अदृष्टमपि दृष्टमिव जगत्त्रयं प्रतिभानव-शाद्युत्पत्तेश्च तथात्वेन प्रकाशयति । यद्वा—जगत्त्रयप्रथिता भवतीति स्फुट एवार्थः । भरतानधिकृत्य प्रथिता भारती कथेव । सापि सर्वे ये वृत्तान्ताः सत्पुरुषचरितान्यु-पाख्यानानि च तान्गमयति बोधयति । तथा सर्वत्र ज्ञेया भवति । तथा च— 'नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् । गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ॥' इत्युक्तम् ॥ ९ ॥**

उस कवि के काव्य से क्या, जिसकी वाणी सब प्रकार के वृत्तान्तों वाली महाभारत की कथा के समान तीनों जगत् में व्याप्त नहीं होती ॥ ९ ॥

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥ १० ॥

अधुना स्वगुरुतः स्वप्रभृतिभिः कृतानाख्यायिकादीन्काव्यभेदान्स्तुवन्नौद्धत्यार्थं सर्वत्र नमस्कारमाह—उच्छ्वासान्त इति । **उच्छ्वास इवोच्छ्वासो विश्रान्तिस्थानं सर्गा-दिवत्कथासन्धिस्तस्यान्तेऽप्यखिन्ना उच्छ्वासान्तरकरणक्षमाः । अविच्छिन्नप्रतिभाना इति यावत् । गुरुत्वाद्बहुवचनम् । 'नान्त्यन्ते ह्यम्बुधेर्वक्त्रम्' इति वक्त्रलक्षणम् । वक्त्रे सरस्वती । वृत्तविशेषयोगिनीत्यर्थः । एतस्मिन्नाख्यायिकाकृद्भिर्भाविवस्तुसंसूचनाय वाग्विरच्यते । तथा चाह भामहः—'वक्त्रं चापरवक्त्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि'**

---

१. अग्राम्याः । २. विकटो । ३. प्राप्नोति दिगन्तरम् ।

इति। आख्यायिकाः कुर्वन्तीत्याख्यायिकाकाराः। यद्वा—आख्यायिकेवाकारो येषाम्। अथ 'कविं पुराणम्' इति न्यायेन कवयश्च त ईश्वरा हरिहरब्रह्माणः। उच्छ्वसन्ति भूतान्यस्मिन्नित्युच्छ्वासः कल्पस्तदन्ते संहारेऽपि तेऽखिन्नाः कल्पान्तरजननोद्योगिनस्तेषां मुखे वागीशी। उक्तं च—'सरस्वतीवाग्बलमुत्तमोऽनिलः' इत्यादि। आख्यायिकाभिराख्यानैराकारो येषाम्। सर्वस्य हि शास्त्रागमसमधिगम्याः, न पुनः प्रत्यक्षलक्ष्याः। ते च वन्द्याः सर्वस्य ॥ १० ॥

जो उच्छ्वास के बाद भी नहीं थकते और जिनके मुख में सरस्वती विराजमान हैं ऐसे आख्यायिकाओं के निर्माण करने वाले कवि क्यों नहीं वन्दनीय हैं? ॥ १० ॥

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां[1] गतया कर्णगोचरम् ॥ ११ ॥

कवीनामिति। वासवदत्ता कथा, वासवेन शक्रेण दत्ता च। कर्णः श्रवणं, राधेयश्च। कवीनां काव्यकर्तॄणां, द्रोणादीनां च ॥ ११ ॥

निश्चय ही कवियों का अभिमान सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' के कानों तक पहुँचते ही उस प्रकार चूर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्रद्वारा प्राप्त शक्ति नामक अस्त्र विशेष को कर्ण के पास देखते ही द्रोण आदि का गर्व बिलकुल नहीं रहा ॥ ११ ॥

पदबन्धोज्ज्वलो[2] हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो[3] नृपायते ॥ १२ ॥

पदेत्यादि। पदानां सुप्तिङन्तानां बन्धः प्रकृष्टा रचना। रीतिरित्यर्थः। स्वमण्डलावष्टम्भश्च। हारी हृद्यः, हारयुक्तश्च। अहारीति वा। न कस्यचिदपि यो हरति। कृता वर्णानामक्षराणां क्रमेण भामहादिप्रदर्शितनीत्या स्थितिरवस्थानं यत्र; कृतयुगवद्वर्णानां द्विजादीनां क्रमेण मन्वादिस्मृतिकारप्रकाशितमार्गेण स्थितिः पालनं यस्मिन्सतीति च। भट्टारेति पूजावचनम् ॥ १२ ॥

आर्य हरिचन्द्र द्वारा निर्मित गद्यकाव्य राजा के समान है, उसमें शब्दों की रचना निर्मल है, वह मनोहर है एवं उसमें आलङ्कारिकों के मतानुसार अक्षरों की एक क्रम से संघटना है ॥ १२ ॥

अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः[4]।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥ १३ ॥

अविनाशिनमित्यादि। अविनाशिनं प्रसिद्धम्, अनश्वरं च। अग्राम्यं वैदग्ध्ययुक्तम्,

---

१. पुत्रस्य। २. पदबद्धोज्ज्वलो हारिकृतकण्ठक्रमस्थितिः। ३. पद्य। ४. कुविनाशिनम्।

अग्राम्यभवं च। जातिः स्वभावोक्तिरूपोऽलङ्कारः। कोशः समुच्चयः, गञ्जश्च। सुभाषितैः सूक्तिभिः, शोभनं च भाषितं प्रभाववर्णनं येषां तैः ॥ १३ ॥

सातवाहन ने निर्दोष गुणालङ्कारयुक्त सुभाषितों का एक संग्रह तैयार किया जो विशुद्ध जाति के रत्नों के कोष के समान कभी विनष्ट नहीं होने वाला, वैदग्ध्यपूर्ण हुआ॥१३॥

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ १४ ॥

कीर्तिरित्यादि। प्रवरसेनः कश्चित्कविः प्रवे प्लुते रसो येषां ते प्रवरसा वानरास्तेषामिनः स्वामी, प्रवरा च सेना यस्य स सुग्रीवश्च। कुमुदवत्कैरववत्। यद्वा—कुर्भूमिस्तस्या मुत् प्रहर्षस्तयेति, कुमुदेन वानरसेनापतिना च। सेतुः प्राकृतकाव्यग्रन्थः, सेतुश्च ॥ १४ ॥

प्रवरसेन नामक कवि की कुमुद के समान उज्ज्वलकीर्ति सेतु (बन्ध) नामक प्राकृतकाव्य के द्वारा समुद्र को पार कर गई, जैसे वानरों की सेना सेतु के द्वारा समुद्र पार पहुँच गई थी ॥ १४ ॥

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः[1]।
सपताकैर्यशो लेभे भासो[2] देवकुलैरिव ॥ १५ ॥

सूत्रेत्यादि। सूत्रधारः पूर्वरङ्गस्य प्रवक्ता चार्चिक्यः, स्थपतिश्च। भूमिकाः पात्राणि रामाद्यनुकार्यावस्थाभूमयः, उपभोगनिमित्तान्युत्पत्तिस्थानानि। पताका अर्थप्रकृतिः। उक्तं च—'बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च। अर्थप्रकृतयो ह्येताः पञ्च सर्वप्रयोगगाः॥' इति। 'यद्वृत्तं तु परार्थं स्यात्प्रधानस्योपकारकम्। प्रधानवच्च कल्पेत सा पताकेति कीर्त्यते॥' इति वैजयन्ती च पताका ॥ १५ ॥

भास ने देवमन्दिरों के समान अपने नाटकों से लोक में ख्याति प्राप्त की जिनका आरंभ सूत्रधार करता, जिनमें पात्रों की भूमिकायें (अवस्था) और सहायक कथायें (पताका) रहतीं ॥ १५ ॥

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य[3] सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ १६ ॥

निर्गतास्विति। निर्गता उच्चारितमात्राः। आस्तां तावदर्थावगतिः, आपात एव गीतध्वनिवत्किमपि श्रोत्रहारिण्यः। यदुक्तम्—'अपर्यालोचितेऽप्यर्थे बन्धसौन्दर्यसंपदा। गीतवद्धृदयाह्लादं तद्विदां विदधाति यत्॥ तत्काव्यम्' इत्यादि। तथा निर्गताः सर्वदेशप्रतीताः, अन्यत्र—निर्गता अभिनवोद्भिन्नाः न वा कस्येत्यनेनैत-

१. भूमिकैः। २. भासा। ३. निसर्गसूरवंशस्य।

दुष्करम् । आस्तां तावत्काव्यतत्त्वविदः सहृदया विवेकारः, येऽपि शास्त्राग्रहितबुद्धयो दुरूढमत्सरप्रायास्तेषामपि या हृदयमाह्लादयन्ति । तथा चोक्तम्—'असुणिअ परमंथाण वि हरेइ वाआमआणं कइम्माण । आणाणजकुवलअवणमलद्धगंधाण वि सुहाइ ॥' इति । मधुराश्च ताः सान्द्राः सरसाः । अन्यत्र—मधुना मकरन्देन किंजल्केन रसेन सान्द्राः सुगन्धयः ॥ १६ ॥

नई उकसी हुई मंजरियों के समान मधुर एवं सरस कालिदास की सूक्तियों में उच्चारणमात्र से ही किसे नहीं आनन्द आता ? ॥ १६ ॥

समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥ १७ ॥

समुद्दित्यादि । बृहत्कथा कस्य न विस्मयाय । अपि तु सर्वस्यैव गर्वविनाशाय भवतीत्यर्थः । अद्भुतकथावर्णनाद्वाश्चर्याय । समुद्दीपितो वृद्धिं नीतः कंदर्पो यस्याम् । कामजननानां बहूनां वृत्तान्तानां वर्णनादुद्बोधितः स्मरो ययेति वा । काव्यसेवया हि श्रृङ्गाररसः समुद्भवति । तथा चोक्तम्—'ऋतुमाल्यालंकारप्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः । उपवनगमनविहारैः श्रृङ्गाररसः समुद्भवति ॥' यद्वा—समुद्दीपितः प्रकाशितः ख्यातिं नीतः कन्दर्पो नरवाहनदत्तो यस्यामिति । स हि कामांश इत्यागमः । कृतं गौर्या विद्याभेदस्याराधनं यस्याम् । सा हि नरवाहनदत्तेनेशारूपाराधितेति तत्रोक्तम् । यद्वा—गौरीं प्राति पूरयति गौरीप्रः । साधनं परिकरबन्धो यथाप्रस्तावो यस्याम् । गौरीप्रेरितेन हि हरेण तथा तस्यां परिकरबन्धः कृतो यथा सातीव पिप्रिये । हरलीलापि समुत् सहर्षा, दग्धकामा च । कृतं गौर्याः प्रसाधनं मण्डनं यस्याम् । क कामं प्रति तादृग्द्वेषः, क च कान्तां प्रति प्रसाधनमिति कृत्वा विस्मयमाश्चर्यम् ॥ १७ ॥

जैसे कामदेव को जलाकर भस्म करना और पार्वती का श्रृङ्गार करना आदि परस्पर विरुद्ध बातों से शिव की लीला किसे नहीं विस्मित करती, उसी प्रकार वर्णनों द्वारा कन्दर्प (कामदेव या नरवाहनदत्त) को प्रकाशित करने वाली एवं पार्वती के प्रति आराधना से युक्त (गुणाढ्य की) बृहत्कथा किसे नहीं विस्मय-विमुग्ध करती ? ॥ १७ ॥

आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तःकृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ॥ १८ ॥

आढ्येति । आढ्यराजः कश्चित्कविः । उत्साहो नृत्ते तालविशेषः । उदीर्यमाणगीत्याधारभूतपदोपचारात्काव्यमप्युत्साह इति केचित् । यत्र पूर्वं श्लोकेनार्थ उपक्षिप्यते, पश्चात्स एव गद्येन वितन्यते, मध्ये वृत्तनिबन्धश्च भवति, स परिसमाप्तार्थं

१. आद्य ।

उत्साह उद्यत इत्यन्वये। अपिः समुच्चये। यद्वा—आढ्यराजहृदयस्था अप्यन्तर्जिह्वां नाकर्षयन्ति, तत्कथं त एव स्मृता इत्यपिशब्दार्थः ॥ १८ ॥

आढ्यराज के उत्साह या महान् कार्य को हृदयस्थ करके स्मरण करने पर मानों मेरी जीभ मुँह के भीतर की ओर ही खिंची जा रही है और कविता करने में प्रवृत्त नहीं हो रही है। निष्कर्ष यह कि आढ्यराज के सामने मैं कवि बनने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १८ ॥

तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥ १९ ॥

एवमनौद्धत्यमुक्त्वाह—तथेत्यादि। तथापीत्थं जानन्नपि जिह्वाप्लवनलक्षणं चापलं करोमि। यतो नृपतेर्भक्त्याहमभि इतः समन्ताद्युक्तः। निर्वहणे समाप्तावाकुलः। जिह्वा चाब्धावकालवातस्तत्र वहन्त्यां कश्चिद्यथा प्लवनरूपं चापलं करोति। अत्र पक्षे—अभीतोऽत्रस्तः। निर्वहणं पारप्राप्तिः। 'कृत्ये च' इति णत्वम् ॥ १९ ॥

ऐसा जानता हुआ भी मैं सम्राट् के प्रति अपने असाधारण अनुराग से प्रेरित होकर आख्यायिका रूपी समुद्र को पार करने में आकुलता और भय का अनुभव करते हुए भी अपनी जीभ (अर्थात् वाणी द्वारा) के चप्पू द्वारा तैरने की चपलता कर रहा हूँ ॥१९॥

सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः।[1]
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥ २० ॥

सुखेत्यादि। सुखेन जायासंमितत्वेन हृदयाह्लादनपूर्वम्, न तु वेदेतिहासादिवत्, यः प्रबोधः प्रकृष्टं बोधनं धर्मादिसाधनव्युत्पत्तिः। उक्तं च—'कटुकौषधिवत्काव्यमविद्याव्याधिभेषजम्। आह्लाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ॥' इति। सुवर्णघटना शोभनाक्षररचना। प्रतिपादकैर्विवक्षिताभिधायकैः। शय्यापक्षे—सुखं यः प्रबोधः स्वापादुत्थानम्। सुवर्णघटना हेमयोजना। प्रतिपादकैः खट्वाया उत्तामकैः। तदा पादानां प्रतिच्छन्दाः प्रतिपादकाः पुरुषयत्नोत्थापिताः पादमुद्रास्तैः। अत्र च शोभनो वर्णोऽलक्तादिकृतः ॥ २० ॥

बिना किसी आयास के सुखपूर्वक समझ में आ जाने से सुन्दर लगने वाली और आकर्षक रचना वाले एवं विवक्षित अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों से आख्यायिका उस शय्या के समान शोभित है जिसपर सुखपूर्वक नींद तोड़ी जाती है और जो सोने से मढ़े पावों से चमकती है ॥ २० ॥

जयति[2] ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकार[3]कृतजगद्रक्षः।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः ॥ २१ ॥

---

१. घटनोज्ज्वला; घटिनोज्ज्वला। २. जयत्युज्ज्वलत्प्र; जयज्ज्वलत्प्र। ३. प्रकार।

इदानीं समुद्दिश्येषमाख्यायिका क्रियते तस्य 'तथापि नृपतेर्भक्त्या' इत्यनेन नृपतिशब्देन सामान्येन निर्देशं कृत्वा विशेषेणाह—जयती-त्यादि। ज्वलन्दीप्ततया प्रसरन्, प्रताप एव ज्वलनस्तं प्राति पूरयति य आकारस्तेन कृता जगति रक्षा येन सः। सकलानां प्रणयिनां ये मनोरथास्तत्सिद्धौ श्रियां पर्वतो गिरिः। श्रियस्तत्र कूटीभूता इव स्थिता इति यावत्। यद्वा—यथा पर्वतस्थः कश्चिद्दुरभिभवः, तद्वद्वंस्था श्रीरिति। अथ च श्रीपर्वताख्यो गिरिरीदृगेव। तथा च ज्वलत्प्रकृष्टतापो यो ज्वलनो जठराग्निः स एव निषेधकत्वात्प्राकारः सालस्तेन कृता मुक्तेर्विघ्नहेतुतया जगतो भूलोकस्य रक्षा येन सः। अन्यत्रोत्सादनं तद्यावत्। अन्ये तु—त्रिपुरदाहे यो विघ्नमकरोद्गणेशस्तदा हरेण ज्वलत्प्रकृष्टतापो ज्वलनप्राकारो निर्मितः। तेन च तत्र रक्षा विधीयत इत्याहुः। ज्वलत्प्रतापो ज्वलनप्राकारश्च द्वौ मुद्रारूपौ मन्त्रविशेषौ स्तः, ताभ्यां कृतजगद्रक्ष इति केचित्। प्रणयिनः सिद्धिकामाः। हर्षः कथानायकः। इतरत्र-हर्षकारितया हर्षः। सर्वत्र च परमार्थतो हर्ष एव जयति। तस्यैवाभिलषणीयत्वात्स एव काव्येन क्रियत इति ध्वनयति ॥ २१ ॥

सम्राट् हर्ष की विजय हो, जो सारे जगत् की रक्षा चारों ओर प्रज्वलित प्रतापाग्नि की दीवार बनाकर करते हैं और जो समस्त प्रियजनों के मनोरथ सिद्ध करने में श्रीपर्वत के सदृश हैं ॥ २१ ॥

एवमनुश्रूयते—पुरा किल भगवान्स्वलोकमधितिष्ठन्परमेष्ठी विकासिनि पद्मासने[1] समुपविष्टः सुनासीरप्रमुखैर्गीर्वाणैः[2] परिवृतो ब्रह्मोद्याः[3] कथाः कुर्वन्नन्याश्च निरवद्या विद्यागोष्ठीर्भावयन्कदाचिदासांचक्रे। तथासीनं च तं त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं मनुदक्षचाक्षुषप्रभृतयः प्रजापतयः सर्वे च सप्तर्षिपुरःसरा महर्षयः[4] सिषेविरे। केचिदृचः स्तुतिचतुराः समुदचारयन्। केचिदपचितिभाञ्जि[5] यजूंष्यपठन्। केचित्प्रशंसासामानि[6] सामानि जगुः। अपरे विवृतक्रतुक्रियातन्त्रान्मन्त्रान्[7] व्याचचक्षिरे। विद्याविसंवादकृताश्च तत्र तेषामन्योन्यस्य विवादाः[8] प्रादुरभवन्।

एवमिति। अनुश्रूयते पारम्पर्येणाकर्ण्यते। किलेत्यत एवागमसूचनाय। भगवानिति केवलनिर्देश उल्लुण्ठनपरिहारार्थम्। ब्रह्मलोकमित्युक्ते सत्युत्कर्षदायिन्यात्मीयताप्रतिपत्तिर्न स्यादिति स्वग्रहणं साभिप्रायम्। अधितिष्ठन्बहुमानेन तद्योगक्षेमादिकमुद्वहन्। परमे पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी। विकासिनीति नित्ययोग इनिः।

१. शुनासीर। २. गीर्वाणगणैः। ३. ब्रह्मोदिताः। ४. महामुनयः।
५. अपि बिभाञ्जि। ६. सामानि। ७. विततक्रतु०। ८. विद्याविवादाः।

विष्टरमासनम्। सुनासीर इन्द्रः। गिरः स्तुतिरूपा वणन्ति भजन्तीति गीर्वाणा देवाः। गीरेव वाणः शरो येषामिति वा, परिवृतश्चतुर्दिक्कं वृतः परिवलितः। तस्य चतुर्मुखत्वात्। ब्रह्म वदन्तीति ब्रह्मोद्याः। 'वदः स्वपि क्यप्च'। ब्रह्मणा वेदेन, ब्रह्मणि परमात्मनि वा वेदितव्या ब्रह्मोद्याः। उक्तं च—'ब्रह्मोद्या सा कथा यस्यामुच्यते ब्रह्म शाश्वतम्' इति। सामान्यविशेषभावेन 'उद्वासिकामासते' इतिवत्। ब्रह्मवदनरूपा वा कथास्तासां वक्ष्यमाणगोष्ठ्यभिप्रायेण प्राधान्यात्स्वयं करणम्। निरवद्या दोषरहिताः। तथा च वात्स्यायनः—'या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी। परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः॥ लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया। गोष्ठ्या सह चरन्विद्वाँल्लोकसिद्धिं नियच्छति॥' समानविद्यावित्तशीलबुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठी। प्रतीच्यः पूज्यः सम्यगुदात्तादित्रैस्वर्यादिप्राधान्यादुदचारयन्नगुः। अपचितिः पूजा। सामानि जगुरिति साम्नां गानमेवोचितम्। विद्याविसंवादकृता इति, न तु मात्सर्यादिना। प्रादुरभवन्नित्यनौचित्यशङ्कया तत्कर्तृत्वपरिहारः।

ऐसा सुना जाता है—बहुत पहले की बात है, भगवान् ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक में शासन कर रहे थे। किसी समय विकसित कमल के आसन पर विराजमान हो इन्द्रप्रमुख देवताओं के बीच घिरे हुए शाश्वत ब्रह्म के विषय में चर्चा कर रहे थे और अन्य दोष-रहित विद्यागोष्ठियों में भाग ले रहे थे। उस प्रकार अपने आसन पर बैठे हुए तीनों लोकों के पूजनीय भगवान् ब्रह्मा की सेवा में मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति और सप्तर्षि आदि महर्षि संलग्न थे। उनमें कुछ ने बड़ी स्पष्टता के साथ स्तुतिप्रधान ऋचाओं का पाठ किया। कुछ ने पूजन के यजुर्वेदीय मंत्र पढे। कुछ ने प्रशंसामूलक सामों का गान किया। अन्य लोगों ने यज्ञक्रियाओं के उपयोग में आने वाले मंत्रों की व्याख्या की। वहां उन लोगों के बीच मत-मतान्तर को लेकर परस्पर विद्याविषयक विवाद उठ खड़े हुए।

अथातिरोषणः प्रकृत्या महातपा मुनिरत्रेस्तनयस्तारापतेर्भ्राता नाम्ना दुर्वासा द्वितीयेनोपमन्युनाम्ना मुनिना सह कलहायमानः साम गायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरोत्। सर्वेषु च तेषु शापभयप्रतिपन्नमौनेषु मुनिष्वन्यालापलीलया चावधीरयति कमलसंभवे भगवती कुमारी किंचिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनवयौवने वयसि वर्तमाना, गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता पितामहमुपवीजयन्ती, निर्भर्त्सनताडनजातरागाभ्यामिव स्वभावारुणा-

१. मन्द। २. सामगायः। ३. शापभयात्प्र। ४. अवधीरयति।
५. नवे वयसि। ६. स्वभावारुणपाद।

भ्यां पादपल्लवाभ्यां समुद्भासमाना, शिष्यद्वयेनेव पदक्रममुखरेण नूपुर-युगलेन वाचालितचरणयुगला, धर्मनगरतोरणस्तम्भविभ्रमं बिभ्राणा जङ्घाद्वितयम्[1], सलीलमुत्ककलहंसकुलकलालापप्रलापिनि[2] मेखलादाम्नि[3] विन्यस्तवामहस्तकिसलया, विद्वन्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसा[4]वलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण[5] पवित्रीकृतकाया, भास्वन्मध्यनायकमनेकमुक्तानुयातमपवर्गमार्गमिव हारमुद्वहन्ती[6], वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तकरसेनेव पाटलेन[7] स्फुरता दशनच्छदेन विराजमाना, संक्रान्तकमलासनकृष्णाजिनप्रतिमां मधुर[8]गीताकर्णनावतीर्णशशिहरिणामिव कपोलस्थलीं दधाना, तिर्यक्सावज्ञ[9]मुन्नमितैकभ्रूलता, श्रोत्रमेकं विस्वरश्रवणकलुषितं प्रक्षालयन्तीवापाङ्ग[10]निर्गतेन लोचनाश्रुजलप्रवाहेणेतरश्रवणेन च विकसितसितसि[11]न्धुवारमञ्जरीजुषा हसतेव प्रकटितविद्यामदा, श्रुतिप्रणयिभिः प्रणवैरिव कर्णावतंसकुसुम[12]मधुकरकुलैरुपास्यमाना, सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञाप्रतानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा[13], वाङ्मयमिव निर्मलं दिक्षु दशनज्योत्स्नालोकं विकिरन्ती[14] देवी सरस्वती श्रुत्वा जहास ।

प्रकृत्येति । अन्यथा ब्रह्मसन्निधानेन कथमीदृगाक्षेपः । कथमीदृशोऽवकाश इत्याह—महातपा इति । मुनिरित्यनेनास्य ज्ञानप्राधान्यात्तत्त्वतोऽन्नासनमतीवोपकारः । अत्रेस्तनय इति न केवलं महातपस्त्वेन यावदत्रितनयत्वेन ब्रह्मलोकप्राप्तिरस्य । ततस्तारापतेरित्यादिना तथाभूतपरमप्रजापतिसम्बन्धयोग्यत्वमस्याख्यायते । द्वितीयेनेति तत्समत्वमुच्यते । कथं सामगानेऽप्यनवहित इत्याह—क्रोधान्ध इति । सर्वेष्वित्यादौ देवी सरस्वती श्रुत्वा जहासेति क्रियाप्रतिपत्तिरस्य मा भूदित्युत्तमप्रकृतित्वादन्येत्याद्युक्तम् । अन्येन सहालापलीलाकथाक्रीडया । कुमारीति । कुमारीत्वेनास्या हास्यादिकं नानुचितमिति दर्शयति । भूषितेत्यनेन दर्शनीयत्वमाह—पितामहमिति । सर्वप्राधान्यमनेनोक्तम् । निर्भर्त्सनं ताडनं तेन तदर्थं वा यत्ताडनं रोषाद्भूमिहननं तद्वशाज्जातरागाभ्यामिव पादपल्लवाभ्यामित्यनेनारुणत्वं सौकुमार्यं चाह । अत एव गाढताडनेन रक्तत्वमुत्प्रेक्षितम् । ताडितो वा यं ताडितस्तत्तुल्यो

१. द्वितीयम् । २. कुलकल; कुलाकलालापप्र । ३. धाम्नि । ४. नेवांशाव । ५. सहजब्रह्म । ६. हारमुरसासमु । ७. पाटलेनेव च । ८. साममधुर; समम; प्रतिबिम्बां मधुर । ९. सावर्णमु । १०. तीवाक्षविनि । ११. सिन्दु । १२. संसक्तमधु; वतंसमधु । १३. तनुलता । १४. किरन्ती ।

रागो जातो ययोरिति व्याख्येयम्। पदक्रमं पादन्यासपरिपाटी। अन्यत्र च-पदानि च क्रमश्च तत्पदक्रमम्, चरणौ पादौ चरणाश्च विशिष्टशाखापाठकता वाचालिताः शोभिता ययेति। उत्का उत्सुकाः। मेखलादाम्नि रशनागुणे। मानसं चित्तं, सरोविशेषश्च। गुणा अपि भास्वान्दीप्रो मध्यनायकः पदकं यत्र तत्। अथ च भास्वतो मध्यं तेन नयति सः। यदुक्तम्-'परिव्राड्योगयुक्तश्च शूरश्चाभिमुखे हतः। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ॥' इति। मुक्ता मौक्तिकानि, मोक्षगामिनश्च। हारं मुक्ताकलापं च, अपवर्गमपि। हारं हरसम्बन्धिनं तत्प्रसादप्राप्यत्वात्। 'अलक्तकरसेनेव पाटलेन' इति वा पाठः। स्फुरतेति रोषात्। भगवतीकपोले शशिहरिणस्यैवावतारः सम्भाव्यत इति शशिपदम्। अत्र हि कपोले ब्रह्मकृष्णाजिनसंक्रान्तिः, तत्र कामसम्भावना सामान्यहरिणस्यावतरणे। कलुषितं प्रक्षालयन्तीवेति। सलिलस्य क्षालनमेव युक्तमिति समुचितेयमुक्तिः। श्रुतिप्रणयिभिरिति। श्रूयते इति श्रुतिर्ध्वनिस्तया प्रणयः प्रशंसातिशयो येषां तैः। यद्वा-श्रुती श्रोत्रे तत्कर्तृकः प्रणयः प्रार्थना मधुरध्वनित्वाद्येषां तैः। कर्णसम्बन्धैरिति व्याख्याने तु कर्णावतंसेत्यादिना पौनरुक्त्यमपरिहार्यम्। श्रुतिर्वेदोऽपि। सूक्ष्मार्थदर्शित्वात्सूक्ष्मस्तीक्ष्णः विमलस्तत्त्वग्राही। अन्यत्र-सूक्ष्मं तनु, विमलं शुक्लम्। प्रतानः प्रसारः।

इसी बीच स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी, महातपस्वी, अत्रि का पुत्र, तारापति का भ्राता दुर्वासा नाम का मुनि उपमन्यु नाम के दूसरे मुनि के साथ झगड़ा कर बैठा और सामगान करते हुए क्रोध से अन्धे होकर उसने स्वर-भंग कर दिया। शाप न दे दे इस डर से सबके सब चुप हो गए और दूसरों के साथ बात करने के बहाने ब्रह्माजी ने भी (उस विस्वर सामगान की) उपेक्षा की। पर कुमारी सरस्वती वहीं उपस्थित थी। वह कुछ कुछ अपना बालभाव छोड़ नये यौवन को सुशोभित करने वाली उम्र में आ पहुँची थी। चँवर पकड़ कर भुजलता को हिलाते हुए पितामह ब्रह्माजी पर झल रही थी। दुर्वासा के प्रति झुझलाहट के कारण भूमि पर पटकने से मानो लाल हुए पल्लव के समान स्वाभाविक लाल अपने चरणों से शोभित थी। पदन्यास से मुखरित होने वाले नूपुरों से उसके दोनों चरण वाचाल हो रहे थे, मानों पदपाठ और क्रमपाठ के अभ्यास में मुखर दो शिष्य अपने चरण अर्थात् शाखा का स्वाध्याय कर रहे हों। उसकी दोनों जांघें धर्मनगर के तोरणस्तम्भ का अनुकरण कर रही थीं। उत्सुक कलहंस की भांति अव्यक्त शब्द करती हुई अपनी करधनी (मेखलादाम) पर वह लीला के साथ किसलयसदृश अपना बायां हाथ रखे हुए खड़ी थी। विद्वानों के चित्त में हमेशा निवास करने से संक्रान्त हुए गुणों (श्लेष से तन्तुओं) के समान कंधे पर लटके हुए ब्रह्मसूत्र से उसका शरीर पवित्र हो रहा था। वह चमकते हुए मध्यमणि से युक्त और अनेक मोतियों से गुम्फित हार को पहने थी, जो सूर्य के मध्य से के जाने वाले और अनेक मोक्षगामी जीवों द्वारा

अनुसृत मोक्षमार्ग की तरह प्रतीत हो रहा था। मुख में विद्यमान समस्त विद्याओं के चरण के आलते से मानों पाटल हुए (क्रोध से) फड़कते ओठ उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके कपोलों पर ब्रह्माजी के काले मृगचर्म की छाया पड़ रही थी, मानों उसके मीठे गानों को सुनने के लिए चन्द्रमा का मृग ही वहाँ उतर कर आ गया हो। उसकी एक भौंह कुछ तिरस्कार का भाव लिए हुए टेढ़ी और ऊपर की ओर उठी हुई थी। आँख के कोने से निकलते हुए आँसू की धारा से मानों वह भ्रष्ट पाठ के श्रवण करने से कलुषित अपने एक कान को धो रही थी और उसके दूसरे कान पर खिले हुए श्वेत सिन्धुवार की मंजरी हँस रही थी जिससे उसका विद्यामद प्रकट हो रहा था। उसके कान पर लगे कनफूल पर भौंरे छाए हुए थे, मानों वह श्रुति (वेद) से प्रेम करने वाले अनेक प्रणवों (ओं अक्षरों) से उपासित हो रही थी। प्रज्ञा के प्रतान की तरह बहुत बारीक तन्तुओं से बना और उज्ज्वल अंशुक उसका शरीर ढँक रहा था। वह वाङ्मय के समान निर्मल अपने दाँतों से चाँदनी का आलोक दिशाओं में छिटका रही थी। (दुर्वासा के स्वरहीन पाठ को) सुन कर वह हँस पड़ी।

दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीं स मुनिः 'आः पापकारिणि, दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे, मामुपहससि' इत्युक्त्वा शिरःकम्पशीर्यमाणबन्धविशारारोरुन्मिषत्पिङ्गलिम्नो जटाकलापस्य[1] रोचिषा[2] सिञ्चन्निव रोषदहनद्रवेण दश दिशः, कृतकालसंनिधानामिवान्धकारितललाटपट्टाष्टापदामन्तकान्तः[3][4]पुरमण्डनपत्रभङ्गमकरिकां भ्रुकुटिमाबध्नन्, अतिलोहितेन चक्षुषाऽमर्षदेवतायै स्वरुधिरोपहारमिव प्रयच्छन्, निर्दयदष्टदशनच्छदभयपलायमानामिव वाचं रुन्धन्दन्तांशुच्छलेन, अंसावस्रंसिनः[5] शापशासनपट्टस्येव ग्रथ्नन्ग्रन्थिमन्यथा कृष्णाजिनस्य, स्वेदकण[6]प्रतिबिम्बितैः शापशङ्का[7]शरणागतैरिव सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवः, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिना करेण प्रसादनलग्नामक्षरमालामिवाक्षमाला[8]माक्षिप्य कामण्डलवेन वारिणा सं[9]मुपस्पृश्य शापजलं जग्राह।

दृष्ट्वेत्यादौ। स मुनिस्तां तथा हसन्तीं दृष्ट्वा शापजलं जग्राहेति सम्बन्धः। तथेति

१. जटासञ्चयस्य। २. शोचिषा। ३. ललाटाष्टापदां। ४. अन्तकमण्डन। ५. अंसस्रंसिनः। ६. स्वेदप्रति। ७. शापभयाच्छरण। ८. प्रसादलग्नामक्षमालां विक्षिप्य; अक्षरावलिकामिवाक्षरमाला। ९. स समुप।

पावृताक्रमणभ्रूक्षेपादिपूर्वम्। स मुनिरिरिति प्राग्वर्णितस्वरूपः। आः कृत्यकमायाम्। मामिति योऽहं त्रैलोक्यप्रख्यातरोषणस्तमेवेति। समीप एव विशीर्यते तच्छीलो विशरारुरितश्चामुतश्च। अत एवोन्मिषपिङ्गलिमा। रोचिषा दीप्त्या। रोषदहनो द्रवो रस इव, द्रवत्वं च यद्यपि विशिष्टस्यैव तेजसः सुवर्णादि सम्भवति, तथाप्यत्रोपचारात्सादृश्यम्। कालः कृष्णो गुणो यमश्च। अन्धकारितं सङ्कुचितत्वाददर्शनीयमेव चकितं ललाटपट्टमेवाष्टापदम्। यथा प्रतिपङ्क्ति अष्टौ पदान्यस्येत्यष्टापदं चतुरङ्गफलकम्। अत एवानेन भ्रूसमुन्नमनमव्यक्तीकृतरेखवत्तया विस्पष्टव्यलीकमेतत्। 'ललाटमुपगीयते। भ्रवोर्मूलसमुत्क्षेपाद्भ्रुकुटिं परिचक्षते'। सुशब्दः सुतरां नैरपेक्ष्यसूचनाय वा चोभयसम्बन्धः। अमावस्रसिन इति। संरम्भाच्छासनपट्टः शुक्लत्वाच्छिपिकाण्य्याश्च सितासितवर्णसंवलितमध्यः पर्यन्तशुक्लश्च भवति। अत एव ते विन्दुचित्रत्वादुपान्तशुक्लत्वाच्च कृष्णाजिनमुत्प्रेक्षते। यथा शासनपट्टे सति क्वचिद्ग्रामादावधिकारो भवति, तद्वच्च जनसमूहः प्रार्थनां करोति। सहस्तपादादिके सर्वस्मिन्नङ्गे गलति। कोपेत्यादौ कम्पग्रहणम्। रोषः शरीरं बाधत इति यावत्। सन्निवेशसाधर्म्याद्युक्तम्—अक्षरमालामिवेति। सरस्वतीसम्बन्धितया चोक्तम्—प्रसादनलग्नामिति। विक्षिप्यन्ते। यश्च विरुद्धपक्षः प्रसादयति स विक्षिप्यते तिरस्क्रियते। कामण्डलवेन मुनिकरकभवेन। समुपस्पृश्याचम्य।

दुर्वासा ने सरस्वती को उस प्रकार हँसते देखकर कहा—'ओ पाप करने वाली, निम्न रूप से प्राप्त विद्या के लेश पर अभिमान से भरी ओ दुर्विदग्धे, तू मेरा उपहास कर रही है!' यह कह कर मुनि बार-बार शिरःकम्प के कारण बंधन के शिथिल हो जाने पर इधर-उधर खुले हुए, पीताभवर्ण की चमक से युक्त, अपने जटा-समूह के तेज से मानों अपनी क्रोधाग्नि के द्रव से समस्त दिशाओं को सींचने लगे। उनकी भौंहें चढ़ने लगीं, मानों यमराज का सन्निधान प्राप्त कर चुकी थीं, उनके ललाटरूपी शतरंज खेल के पट्ट को मानों अपनी कालिमा से मलिन कर रही हो और जैसे वे यमराज के अन्तःपुर की पत्रभंगमकरिकाएँ हों। मुनि की आँखें अत्यन्त लाल हो गईं, मानों वे अमर्ष देवता के लिए अपने ही रुधिर का उपहार भेंट कर रहे थे। बड़ी बेदर्दी से ओठ कट जाने के भय से भागती हुई वाणी को वे अपने दाँतों की प्रभा के बहाने मानों रोक रहे थे। शाप के शासनपट्ट की भाँति कंधे से गिरते हुए कृष्ण मृगचर्म की गाँठ दूसरे प्रकार से बाँधने लगे। शाप के भय से शरण में आए हुए की तरह सुर, असुर और मुनि उनके स्वेदकणों से भरे समस्त अङ्गों में प्रतिबिम्बित हो रहे थे। क्रोध से उत्पन्न कँपकँपी के कारण चंचल अंगुलियों वाले हाथ से उन्होंने मानों प्रसन्न करने के लिये लगी हुई अक्षरमाला की भाँति अपनी अक्षमाला को फेंक दिया और कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिए जल उठाया।

अत्रान्तरे स्वयंभुवोऽभ्याशे[1] समुपविष्टा देवी मूर्तिमती पीयूषफेनप-
टलपाण्डुरं कल्पद्रुमदुकूल[2]वल्कलं वसना, बिस[3]तन्तुमयेनांशुकेनोन्नतस्त-
नमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः, तपोबल[4]निर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिरिव तिसृ-
भिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितललाटाजिरा, स्कन्धावलम्बिना सुधाफे[5]-
नधवलेन तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन गङ्गा[6]स्रोतसेव योगपट्टकेन विर-
चितवैकक्ष्यका,[7] सव्येन ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव स्फटिक[8]क-
मण्डलुं करेण कलयन्ती, दक्षिणमक्षमालाकृतपरिक्षेपं कम्बुनिर्मितो-
र्मिकादन्तुरितं[9] तर्जनतरङ्गिततर्जनीकमुत्क्षिपन्ती करम्, 'आः पाप,
क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनिखेट[10], अपसद,
निराकृत[11], कथमात्मस्खलितविलक्षः सुरासुरमुनिमनुजवृ[12]न्दवन्दनीयां
त्रिभुवनमातरं भगवतीं सरस्वतीं शप्तुमभिलषसि' इत्यभिदधाना, रोष-
विमुक्तवेत्रासनैरोङ्कारमुखरितै[13]र्मुखै[14]रुत्क्षेपदोलायमानजटाभारभरितै[15]र्दिग्भिः
परिकरबन्धभ्रमितकृष्णाजिना[16]टोपच्छायाश्यामायमानदिवसैरमर्षनिःश्वास-
दोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः सोमरसमिव स्वेदविसरव्याजेन स्रवद्भिर-
ग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मेरललाटैः कुशतन्तुचारु[17]चामरचीरचीवरिभिराषा-
ढिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैर्मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह बृसीमपहाय
सावित्री समुत्तस्थौ।

अत्रान्तर इत्यादौ मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह सावित्री समुत्तस्थाविति सम्बन्धः। अभ्याशे समीपे। गात्रिकाग्रन्थिर्ग्रन्थिविशेषः स्वस्तिकाकारः स्त्रीणामुत्तरीयस्य स्तनोद्देशे भवति। तिलकं पुण्ड्रकं स्कन्धावंसौ वायुस्थानानि च स्कन्धाः। फेनैस्त-द्वच्च धवलेन। 'तिर्यग्वक्षसि विक्षिप्तं वैकक्ष्यकमुदाहृतम्'। सव्येन वामेन। पुण्डरी-कमुकुलं मुकुलितं पद्मम्। कलयन्ती क्षिपन्ती, धारयन्ती वा। परिक्षेपः परिवलनम्। कम्बुः शङ्खः। ऊर्मिका वालिका। दन्तुर इव दन्तुरो व्याप्तस्तम्। तर्जनं निर्भर्त्सनम्। तरङ्गिता तर्जिता चलिता। तर्जनी प्रदेशिन्यङ्गुष्ठनिकटाङ्गुलिः क्रोधोपहतेत्यात्म-विनाशायैव ते क्रोध इत्युक्तं भवति। ब्रह्मबन्धो निकृष्टब्राह्मण। अपसदो नीचः।

---

१. आभ्यासे। २. दुगूल। ३. विश। ४. तपोनिर्जित। ५. फेनध। ६. शगाष। ७. वैकक्षा,। ८. स्फुरि। ९. दन्तुरं। १०. खेटापसदनि राकृत। ११. निराकृते। १२. मनुजमाननीयां। १३. मुखर। १४. आक्षेप। १५. भरित-शिरोभिः। १६. कृष्णाजिनपटच्छा। १७. कुशतन्तुचामर।

निराकृतोऽस्वाध्यायः विलक्षो लज्जितः। सुरासुरमनुजाश्च परस्परविरुद्धानुष्ठानाः। अत्र पुनरीदृशामपि न विप्रतिपत्तिरिति भावः। अभिलषसीति। इच्छामात्रकमपीदं महत्साहसमित्यर्थः। ॐकार एव मुखरितं मुखं येषां तैः। परिकरबन्धः पर्यङ्कबन्धः। स चोत्थितस्यापि संरम्भभाजो भवति। आटोपो वक्षःप्रदेशे श्यामायमानो रात्रिरिवाचरद्दिवसा यैर्हेतुभिरित्यर्थः। अमर्षनिःश्वासैर्दोलावत्प्रेङ्खोलितश्चलितो ब्रह्मलोको यैः। कुशतन्तूनां चामरमिव चामरं गुच्छः। कुशतन्तुचामरं दर्भपिञ्जूलम्, चीरचीवरं वृक्षत्वग्वस्त्रं ते विद्येते येषां तैः। 'आषाढसंज्ञो दण्डस्तु पालाशो व्रतचारिणाम्'।

इस अवसर पर देवी सावित्री ब्रह्माजी के समीप सदेह बैठी थी। वह अमृत के फेन-पटल के सदृश उज्ज्वल कल्पद्रुम से प्राप्त दुकूलाकृति छाल को पहने थी। उसने अपने उन्नत स्तनों के मध्य को बिसतन्तु के बने हुए अंशुक की स्वस्तिकाकार गाँती से बाँध रखा था। भस्म की तीन रेखाएँ उसके ललाट के प्रांगण में शोभायमान थीं मानों उसके अपने तपोबल से जीते गए तीनों भुवन की जयपताका हों। कंधे पर अवलम्बित, अमृत-फेन के समान धवल और मानों तपस्या के प्रभाव से टेढ़े किए हुए गङ्गा के सोते के समान उसने अपने योगपट्ट को वक्ष पर टेढ़ा लटका कर वैकक्ष्यक बना लिया था। उसके बायें हाथ में ब्रह्माजी की उत्पत्ति वाले पुण्डरीक के मुकुल के सदृश स्फटिक मणि का कमण्डलु डोल रहा था। वह अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर की ओर फेंक रही थी, जो अक्षमाला से परिवेष्टित, शंख की बनी अंगूठी से व्याप्त थी और जिसकी तर्जनी चञ्चल हो रही थी। वह बोल उठी—'अरे पापी, क्रोध का मारा, दुरात्मा, मूर्ख, अपने आप को न पहचानने वाला, पतित ब्राह्मण, पाखण्डी साधु, नीच, स्वाध्यायशून्य, अपनी गलती से लज्जित, तू देवता, असुर, मुनि, मनुष्यसमूह द्वारा वन्दनीय त्रिभुवन की माता देवी सरस्वती को शाप देना चाहता है?' यह कहती हुई सावित्री मूर्तिमान चारों वेदों के साथ कुशासन छोड़ उठ खड़ी हुई। क्रोध से उन मूर्तिमान् वेदों ने भी अपने-अपने वेत्रासन छोड़ दिए, उनके मुख ओंकार की ध्वनि से भर रहे थे, वेग से ऊपर को ओर फेंकने से उनका चञ्चल जटाभार मानों दिशाओं में फैलने लगा। उनकी कमर में लपेट कर बाँधे हुए काले मृगचर्म की घनी छाया से दिन में अंधेरा छाने लगा, वे अपने अमर्षजन्य निश्वासों से सारे ब्रह्मलोक को दोलायमान करने लगे। उनके शरीर से सोमरस के समान स्वेदजल निकल रहे थे। अग्निहोत्र के पवित्र भस्म से उनके ललाट चमक रहे थे। वे कुश के तन्तुओं से बने चामर एवं वल्कल और आषाढ़संज्ञक पलास का दण्ड धारण किए हुए थे। वे अपने कमण्डलु से मारने के लिए तत्पर हो उठे।

ततो 'मर्षय भगवन्, अभूमिरेषा शापस्य' इत्यनुनाथ्यमानोऽपि विबुधैः, 'उपाध्याय, स्खलितमेकं क्षमस्व' इति बद्धाञ्जलिपुटैः प्रसाद्य-

मानोऽपि स्वशिष्यैः, 'पुत्र, मा कृथास्तपसः प्रत्यूहम्' इति निवार्यमाणोऽप्यत्रिणा, रोषावेशविवशो दुर्वासाः 'दुर्विनीते, व्यपनयामि ते विद्याजनितामुन्नतिमिमाम्, अधस्ताद्गच्छ मर्त्यलोकम्' इत्युक्त्वा तच्छापोदकं विससर्ज। प्रतिशापदानोद्यतां सावित्रीम्[1] 'सखि, संहर रोषम्[2], असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः' इत्यभिदधाना[3] सरस्वत्येव न्यवारयत्।

तत इत्यादौ शापोदकं जग्राहेति विससर्जेति सम्बन्धः। मर्षय क्षमस्व। अनुनाथ्यमानः प्रार्थ्यमानः। प्रत्यूहं विघ्नम्। उन्नतिमिति। उच्चदेशस्थश्चाधस्तान्नीयत इति समुचितेयमुक्तिः। असंस्कृतमतयः संस्काररहिताः।

तब 'हे भगवन्, क्षमा करो, यह शाप देने योग्य नहीं' इस प्रकार देवताओं के प्रार्थना करने पर भी, 'पुत्र, तपस्या में विघ्न उत्पन्न न करो', इस प्रकार अत्रि द्वारा रोके जाने पर भी क्रोध के वशीभूत दुर्वासा ने कहा—'दुर्विनीते, मैं तेरे इस विद्याजनित गर्व को दूर करता हूँ, तू यहाँ से नीचे मर्त्यलोक में गिर' और शाप के जल को छिड़का। प्रतिशाप देने के लिए झट सावित्री तैयार हो गई तो सरस्वती ने यह कहा—'सखी, तू अपने क्रोध को समेट ले, संस्कार-शून्य बुद्धि होने पर भी जाति के कारण ब्राह्मण हमारे मान्य हैं' और उसे रोक रखा।

अथ तां तथा शप्तां सरस्वतीं दृष्ट्वा पितामहो भगवान्कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव धवलयज्ञोपवीतिनीं तनुमुद्वहन्, उद्गच्छदच्छाङ्गुलीयमरकतमयूखलताकलापेन त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारिणेव दक्षिणेन करेण निवार्य शापकलकलम्, अतिविमलदीर्घैर्भाविकृतयुगारम्भसूत्रपातमिव दिक्षु पातयन् दशनकिरणैः, सरस्वतीप्रस्थानमङ्गलपटहेनेव पूरयन्नाशाः, स्वरेण सुधीरमुवाच—'ब्रह्मन्, न खलु साधुसेवितोऽयं पन्थाः येनासि प्रवृत्तः। निहन्त्येष परस्तात्। उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्। कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते। विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा। निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि? क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न ते आत्मरागदोषं पश्यति। क्व

१. प्रतिशापोद्यतां सावित्री०। २. रुषाम्। ३. इत्यभिदधती।

महातपोभारवैवधिकता, क्व पुरोभागित्वम् ? अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः । नहि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा । कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः । आदाविन्द्रियाणि रागः समास्कन्दति, चरमं चक्षुः । आरम्भे तपो गलति, पश्चात्स्वेदसलिलम् । पूर्वमयशः स्फुरति, अनन्तरमधरः । कथं लोकविनाशाय ते विषपादपस्येव जटावल्कलानि जातानि । अनुचिता खल्वस्य मुनिवेषस्य हारयष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः । शैलूष इव वृथा वहसि कृत्रिममुपशमशून्येन चेतसा तापसाकल्पम् । अल्पमपि न ते पश्यामि कुशलजातम् । अनेनातिलघिम्नाऽद्याप्युपर्येव प्लवसे ज्ञानोदन्वतः । न खल्वनेडमूकाः एडा जडा वा सर्व एते महर्षयः । रोषदोषनिषद्ये स्वहृदये निग्राह्ये किमर्थमसि निगृहीतवाननागसं सरस्वतीम् । एतानि तान्यात्मप्रमादस्खलितवैलक्ष्याणि, यैर्याप्यतां यात्यविदग्धो जनः' इत्युक्त्वा पुनराह—'वत्से सरस्वति, विषादं मा गाः । एषा त्वामनुयास्यति सावित्री । विनोदयिष्यति चास्मद्विरहदुःखिताम् । आत्मजमुखकमलावलोकनावधिश्च ते शापोऽयं भविष्यति' इति । एतावदभिधाय विसर्जितसुरासुरमुनिमनुजमण्डलः ससंभ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः समुचिताह्निककरणायोदतिष्ठत् । सरस्वत्यपि शप्ता किंचिदधोमुखी धवलकृष्णशारां कृष्णाजिनलेखामिव दृष्टिमुरसि पातयन्ती सुरभिनिःश्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा शापशोकशिथिलितहस्ताऽधोमुखीभूतेनोपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गेव नखमयूखजालकेन नूपुरव्याहाराहूतैर्भवनकलहंसकुलैर्ब्रह्मलोकनिवासिहृदयैरिवानुगम्यमाना समं सावित्र्या गृहमगात् । ✓

अथेत्यादौ भगवान्पितामहः सुधीरमुवाचेति सम्बन्धः । तथेति । तेन प्रकारेण । निरपराधां सरस्वतीमित्यर्थः । धवलयशो[illegible]तिनीमिति । प्रशंसायां नित्ययोगे वा मत्वर्थीयः । 'बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः' इतिवत् । अन्यथा कर्मधारये कृते मत्वर्थीय एकबुद्ध्यनुमितौ बहुव्रीहौ प्रतिपत्तिर्भवतीति । इतरत्र तु बुद्धिद्वयमिति लघुत्वात्प्रक्रमस्येत्युक्तम् । उद्गच्छन्नच्छाङ्गुलीयमरकतस्य मयूखलताकलापो यस्य तेन करेण । आपीडः समूहः । पातं विन्यासम् । पातयन्कुर्वन् । अत्र हि धात्वर्थगतानुष्ठानमात्रवृत्तिः क्रिया । यथा—'संवस्ते चालिते वस्त्रे' इति । पन्था व्यवहारः, मार्गश्च ।

निहन्ति पातयति। प्रसृतानि गन्तुं प्रवृत्तानि, प्रसृता च जङ्घा। रजो रागः, धूलिश्च। कलुषयति कार्याकार्यदर्शनासमर्थां करोति। दृष्टिं बुद्धिम्, नेत्रं च। अक्षाणीन्द्रियाणि, रथाङ्गं चाक्षः। तेन च रथो लक्ष्यते। कृतबुद्धयः संस्कृतमतयः। असदविद्यमानम्। निसर्गः स्वभावः। आलोको विवेकः, प्रकाशश्च। तमः अन्धकारं, अज्ञानमपि। दोषाः, सत्त्वमण्डलत्वादीनि च। कुपिता क्रुद्धा, धातुवैषम्यदूषिता च। आत्मरागदोषमिति। आत्मभूतगुणदर्शनम्, लौहित्यलक्षणं च विकारम्, 'वोढा भारस्य धीमद्भिर्जनैर्वैवधिकः स्मृतः। दोषैकग्राहिहृदयः पुरोभागी निगद्यते॥' रागोऽभूतगुणाभिनन्दनम्, रक्तता च। जटाः शिखाः, मूलानि वल्कलानि मुनिवस्त्राणि, त्वचश्च। वृत्तमुक्ता शीलेन त्यक्ता, परिवर्तुलमौक्तिका च। 'जायोपजीवि हि जनः शैलूषः कथितो बुधैः'। आकल्पो वेषः। जातं प्रकारः। अतिलघिमानुपादेयता तुच्छत्वात्। उपर्येवेत्यन्तःप्रवेशाभावाद्। लघुश्च जलोपरि प्लवते। 'कथिता अनेडमूकाः श्रोतुं वक्तुं च खलु न ये शक्ताः। एडास्तु श्रुतिहीना जडास्तु मूर्खा बुधैः प्रोक्ताः'॥ रोष एव दोषस्तस्य निषद्या नियमेनावस्थितिर्यत्र तस्मिन्स्वहृदये ते। यद्वा—रोषदोषस्य निषद्या आपणस्त्वं तस्यामन्त्रणम् हे रोषदोषनिषद्ये इति व्याख्येयम्। निगृहीतवान्प्राप्तवान्। 'आगः पापापराधयोः'। वैलक्ष्यं लज्जितम्। याप्यो गर्ह्यः। पुनराहेति। अविश्रान्तेऽप्युक्तिक्रमे पुनरित्युपादानं वाच्यतापरिहाराय। वत्से इति प्रसादाविष्करणार्थम्। एषेति। या तवैव स्निग्धा। विनोदयिष्यति सुखयिष्यति। सरस्वतीति। सरस्वत्यपि शप्ता गृहमगादिति सम्बन्धः। शारां शबलाम्। धवलकृष्णामित्येव वक्तव्ये शारग्रहणं संवलितवर्णद्वयप्रतीत्यर्थम्। अधोमुखीभूतेनेति। योऽधिकरणवशादनिष्टमुपदिशति स लज्जादिनावश्यमधोमुखीभवति। जालकं समूहः। व्याहार उक्तिः।

तब पितामह भगवान् ब्रह्मा ने दुर्वासा के शाप से ग्रस्त सरस्वती को देखा। उनके शरीर पर सफेद जनेऊ ऐसा लगता था मानों कमल में उत्पत्ति के होने से उसके मृणाल सूत्र लग गए हों। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से, जिसकी निर्मल अंगूठी के मरकत से किरणें फूट कर निकल रही थीं और जो त्रिभुवन के कष्ट को दूर करने के लिए कुश की पवित्री धारण कर रहा था, शापजन्य कोलाहल को शान्त किया। अति विमल और फैलती हुई दाँतों की किरणों से मानों भविष्य के होने वाले सतयुग का आरम्भिक सूत्रपात करते हुए, सरस्वती के प्रस्थान के समय मङ्गलपटह के समान अपनी आवाज से दिशाओं को भरते हुए ब्रह्माजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'हे ब्राह्मण, आपने जिस मार्ग को अपनाया है वह अच्छे लोगों के द्वारा सेवित नहीं है। अन्त में गिरा देता है। जो जितेन्द्रिय नहीं हैं उनकी आँखें उच्छृङ्खल (बेलगाम) इन्द्रियरूपी घोड़ों द्वारा उठी धूल से भर जाती हैं। चर्मचक्षु कहाँ तक देख सकते हैं? बुद्धिमान् लोग अपने विशुद्ध प्रज्ञारूपी चक्षु से

समस्त भले-बुरे को देख लेते हैं। जल और अग्नि के समान धर्म और क्रोध का एक जगह रहना स्वभाव से विरुद्ध है। प्रकाश (विवेक) को छोड़ अंधकार (अज्ञान) में क्यों गिर रहे हो ? क्षमा तो सब तपस्याओं का मूल है। दूसरों की बुराइयों को ही देखने में निपुण दृष्टि के समान तुम्हारी क्रोध से अभिभूत दृष्टि अपने ही भीतर उत्पन्न राग को नहीं देख पा रही है। कहाँ महान् तप के भार को वहन करने की क्षमता और कहाँ एकमात्र दूसरों के अवगुण ग्रहण करना ! अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का नेत्रधारी भी अन्धा है, क्योंकि क्रोध से कलुषित हो जाने पर बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार नहीं कर पाती। पहले क्रोधी व्यक्ति की विद्या धुँधली हो जाती है और पीछे उसकी भौंह। पहले राग इन्द्रियों को घेरता है, पीछे (लाली रूप में) आँखों में व्याप्त हो जाता है। आरम्भ में तपस्या विगलित हो जाती है, पश्चात् स्वेदजल। पहले अयश स्फुरित होने लगता है, फिर अधर (फड़फड़ाने लगता है)। विषवृक्ष के समान तुम्हारे जटारूपी वल्कल लोक-विनाश के लिए कैसे उत्पन्न हो गए ? तुम्हारी शीलरहित चित्तवृत्ति मुनिवेश के लिए हारयष्टि के समान अनुचित है। शमभाव से रहित चित्त के द्वारा नट के समान कृत्रिम तपस्वी के भेस को व्यर्थ ही ढो रहे हो। (इससे) तुम्हारा भी कल्याण नहीं देख रहा हूं। इसी हल्केपन से आज भी तुम ज्ञान-समुद्र के ऊपर-ऊपर ही तैर रहे हो। ये सब महर्षि कानों के बहरे, आँखों के अंधे और मूर्ख नहीं हैं। जहाँ क्रोध जैसा महान् दोष नियमतः वर्तमान रहता है ऐसे अपने हृदय को तुम्हें नियन्त्रित करना चाहिए। फिर भी क्यों तुमने निरपराध सरस्वती को शाप से जकड़ डाला। अपनी असावधानी से हुई गलतियों से लज्जित होने का यही अवसर है, जिनसे मूर्ख निन्दनीय होता है।' यह कह कर ब्रह्मा जी ने फिर कहा—'वत्से सरस्वती ! दुखी मत हो, यह सावित्री तेरे साथ जायगी। हमारे विरह से दुखी होने पर यह तुझे बतलाएगी। पुत्र का मुखकमल देखने तक तेरे इस शाप की अवधि है।' इतना कह कर ब्रह्माजी ने सुर, असुर और मुनि के मण्डल को अपने-अपने स्थान पर विदा किया और स्वयं शीघ्र पहुंचे हुए नारद के कन्धे पर हाथ रख कर समुचित दैनिक क्रिया करने के लिए उठ खड़े हुए। सरस्वती भी शप्त होने के कारण कुछ सिर झुकाए सावित्री के साथ घर चली। कृष्ण मृगचर्म की रेखा जैसी उज्ज्वल और श्याम अपनी आँखें वह वक्ष पर डाल रही थी। मूर्तिमान् शाप के अक्षरों के समान भौंरे उसकी श्वास की सुगन्धि के साथ लग गए मानों उसे रोक रहे थे। शापजन्य शोक से उसके हाथ शिथिल पड़ गए थे। नीचे की ओर दौड़ती हुई उसके नखों की किरणें मानों उसे मर्त्यलोक में अवतीर्ण होने का मार्ग बतला रही थीं। ब्रह्मलोक में निवास करने वाले लोगों के हृदय के समान भवन के कलहंस उसके नूपुरों की आवाज से बुलाए जाने पर उसका पीछा करने लगे।

अत्रान्तरे सरस्वत्यवतरणवार्तामिव कथयितुं मध्यमं लोकमवतता-

रांशुमाली। क्रमेण च मन्दायमाने मुकुलितबिसिनीविसरव्यसनविषण्ण-सरसि वासरे, मधुमदमुदितकामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव द्वेपीयः क्षितिधरशिखरमवतरति तरुणतरकपिलपनलोहिते लोकैकचक्षुषि भगवति, प्रस्नुतमुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलितेष्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येषु, अपराह्णप्रचारचलिते चामरिणि चामीकरतटताडनरणितरदने रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरमैरावते, प्रसृतानेकविद्याधराभिसारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्, तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तमयार्घ्यावर्जिते रञ्जितककुभि, कुसुम्भभासि स्रवति पिनाकिप्रणतिमुदितसंध्यास्वेदसलिल इव रक्तचन्दनद्रवे, वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दबध्यमानसंध्याञ्जलिवने, ब्रह्मोत्पत्तिकमलसेवागतसकलकमलाकर इव राजति ब्रह्मलोके, समुच्चारिततृतीयसवनब्रह्मणि ब्रह्मणि, ज्वलितत्रैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेष्वारब्धधर्मसाधनशिबिरनीराजनेष्विव सप्तर्षिमन्दिरेषु, अघमर्षणमुषितकिल्बिषविषगदोल्लाघलघुषु यतिषु संध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने प्लवमाननलिनयोनियानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि मन्दाकिनीजले, जलदेवतातपत्रे पत्त्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे, निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीतिप्रीते सुषुप्सति मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकंधरे धुतपक्षराजिवीजितराजीवसरसि राजहंसयूथे, तटलताकुसुमधूलिधूसरितसरिति सिद्धपुरपुरंध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि सायंतने तनीयसि निशानिःश्वासनिभे नभस्वति, (संकोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिसंकटकुशेशयकोशकोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे, नृत्योद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे नभस्तलं स्तबकयति तारागणे, संध्यानुबन्धताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे, मेदिनीं मीलयति नववयसि तमसि तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि समुन्मिषति यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकदम्बके प्रदीपप्रकरे, प्रतनुतुहिनकिरणकिरणलावण्यालोकपाण्डुन्याश्यानतनीलनीरमुक्तकालिन्दीकूलबालपुलिनायमाने शातक्रतवे कृशयति तिमिरमाशामुखे, खमुचि मेचकितविकचितकुवलयसरसि शशधरकरनिकरकचग्रहाविले विलीयमाने मानिनीमनसीव

शर्वरीशबरीचिकुरचये चाषपक्षत्विषि तमसि, उदिते भगवत्युदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितमिव लोहितं वपुरुदयरागधरमधरमिव विभावरीवध्वा धारयति श्वेतभानौ, अचलच्युतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते, गोलोकगलितदुग्धविसरवाहिनि दन्तमयमकरमुखमहाप्रणाल इवापूरयितुं प्रवृत्ते पयोधिमिन्दुमण्डले, स्पष्टे प्रदोपसमये सावित्री शून्यहृदयामिव किमपि ध्यायन्तीं सास्रां सरस्वतीमवादीत्—'सखि, त्रिभुवनोपदेशदानदक्षाया-

स्तत्र पुरो जिह्वा जिह्वेति मे जल्पन्ती। जानास्येव यादृश्यो विसंस्थुला गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्षणभङ्गिन्यो दुरतिक्रमणीया न रमणीया दैवस्य वामा वृत्तयः। निष्कारणा च निकारकणिकापि कलुषयति मनस्विनोऽपि मानसमसदृशजनादापतन्ती। अनवरतनयनजलसिच्यमानश्च तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा प्ररोहति। अतिसुकुमारं च जनं संतापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमानयन्ति। महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम्। सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुस्त्यजा जन्मभूमयः। दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः, सा नार्हस्येवं भवितुम्। अभूमिः खल्वसि दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानाम्। अपि च पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्। इदं च ते त्रिभुवनमङ्गलैककमलममङ्गलभूताः कथमिव मुखमपवित्रयन्त्यश्रुबिन्दवः। तदलम्। अधुना कथय कतमं भुवो भागमलंकर्तुमिच्छसि। कस्मिन्नवतितीर्षति ते पुण्यभाजि प्रदेशे हृदयम्। कानि वा तीर्थान्यनुग्रहीतुमभिलषसि। केषु वा धन्येषु तपोवनधामसु तपस्यन्ती स्थातुमिच्छसि। सज्जोऽयमुपचरणचतुरः सहपांशुक्रीडापरिचयपेशलः प्रेयान्सखीजनः क्षितितलावतरणाय। अनन्यशरणा चाद्यैव प्रभृति प्रतिपद्यस्व मनसा वाचा क्रियया च सर्वविद्याविधातारं दातारं च श्वःश्रेयसस्य चरणरजःपवित्रितत्रिदशासुरं सुधासूतिकलिकाकल्पितकर्णावतंसं देवदेवं त्रिभुवनगुरुं त्र्यम्बकम्। अल्पीयसैव कालेन स ते शापशोकविरतिं वितरिष्यति' इति।

मध्यमं लोकं भूमिम्। अंशुमाली रविः। क्रमेणेत्यादावस्मिन्सति सावित्री सरस्वतीमवादीदिति सम्बन्धः। विसरशब्द औणादिकः षण्डपर्यायः। मुदिताः सञ्जातमन्मथाः। कामिन्यः शृङ्गारिण्यः। सम्भोगान्तरायकारी कथमयमद्यापि नास्तमेतीत्यतः कोपः। क्षिप्यमाणश्चातित्वरितं पतति। क्षेपीयस्तूर्णतरम्। लपनं वदनम्। लोकेत्यादिना सम्भोगविघ्नकारित्वमेव प्रकाश्यते। माहेयी गौः। उद्दामः प्रवृद्धिं गतः। उपशल्यं समीपम्। चामीकरं सुवर्णम्। रदना दन्ताः। रदति विलिखति। सुरस्रवन्ती गङ्गा। रोधस्तटम्। स्वैरं स्वेच्छम्। 'या दूतिका गमनकालमपाहरन्ती सोढुं स्मरज्वरभरार्तिपिपासितेव। निर्याति वल्लभजनाधरपानलोभात्सा कथ्यते कविवरैरभिसारिकेति॥' तारापथो नभः। आवर्जिते प्रकीर्णे। ककुभो दिशः। कुसुम्भं पद्मकम्। रक्तचन्दनद्रवे स्रवति सतीति योजना। वन्दारु वन्दनशीलम्। वृन्दारकशब्दः प्रशंसायाम्। सवनं प्रातर्मध्याह्ने सायं च सोमयागैकदेशस्नानमित्यन्ये। ब्रह्म वेदः। वैतानो यज्ञभवः। जटालानि व्याप्तानि। अजिराण्यङ्गणानि। आरब्धे धर्मसाधने शिबिरे पुण्योपकरणस्कन्धावारे नीराजनाख्यं शान्तिकर्म येषु। धर्मोपकरणविषये मा दोषः प्रादुरभवन्निति। 'शमनं सर्वपापानां जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्'। गदो रोगः। उल्लाघं स्वस्थताकरम्। यतयश्चतुर्थाश्रमिणः। सद्यो जलत्यक्तं तटं पुलिनम्। नलिनयोनिर्ब्रह्मा। हंसानां हासः शौक्ल्यं, हंसा एव वा शुक्लतया हासः। दन्तुरा एव दन्तुरिताः। ये च सहासास्ते लक्ष्यमाणदन्तद्युत्या दन्तुरा इव दृश्यन्ते। आतपत्रं छत्रम्। पत्त्ररथाः पक्षिणः। कलत्रं दाराः। मधु मकरन्दः, मद्यं च। मधुपा भ्रमराः, मद्यपाश्च। मुमुदिषमाणे विचिकित्सिषति। अन्यत्र,-मोदितुमिच्छति। प्रारिप्स्यमानगीतादिगोष्ठीबन्ध इति यावत्। 'मञ्चाः क्रोशन्ति' इतिवत्। नाम्यदिति। ताम्यन्ति, न तु तान्तानि, प्रदोषस्य न तावत्प्रवृत्तत्वात्। मधु, मद्यमपि। सपीतिस्तु सहपानम्। अनेन तु प्रेमातिशय आवेद्यते। सुषुप्सति निद्रासति। मृद्दिति। कण्डूयनं विक्रियाविशेषम्। कुण्डलिता चक्रीकृता। राजीवं पद्मम्। राजहंसा इत्यत्रैकशेषः। तटशब्दः प्रत्यासत्त्युपलक्षणार्थः। पुरंध्रिरुत्तममहिला। धम्मिल्लाः संयताः कचाः। मल्लिका भूपदी। एषा च सायमेवोन्मिषति। सायंतने दिनान्तभवे। कोषः कुड्मलम्। कोटरमभ्यन्तरम्। कुटी गेहम्। शयनमत्र विश्रमणम्, न तु स्वापः, पौनरुक्त्यापत्तेः। अटवीति विवक्षितम्। तत्रैवाकृत्रिमकुसुमसंबन्धात्। कुटजं गिरिमल्लिका। कुड्मलं कलिका। निकरः समूहः। अनुबन्धः संस्कारः। परिणमज्जरठीभवत्। तालस्तृणराजः। मेदुरं घनम्। मीलयति स्थगयति। नववयसि प्रत्यग्रे। चम्पको हेमपुष्पकः। आश्यानमीषच्छुष्कम्। नीरं जलम्। कालिन्दी यमुना। नीलिमाभिप्रायेणैतत्पदम्। यस्तटभागो वारिणा त्यक्तस्तत्पुलिनम्। कूलं ततोऽन्यत्। तनूकरोति तनूकुर्वति। समुज्झि त्यक्ताकाशे। भूभागमवलम्बमान इत्यर्थः। मेचकितं

निर्विभागतां नीतम्। शशधरकरैः स्वीकारेण करम्बितेऽत एव क्षयं गच्छन्ति। अन्यत्र चन्द्ररश्मीनां धारणेन सेवनेन किंकर्तव्यतामूढ एवमधिगलत्याद्रर्ता भजमाने। केशपाशपक्षे तु विस्रंसमाने। चाषः किकीदिविः पक्षी। हरिः सिंहः। नखरा नखाः। हेतिरायुधम्। विभावरी रात्रिः। श्वेतभानुश्चन्द्रः। अचलः, अर्थादुदयाचलः; गोलोको रश्मिसमूहो वा। मकरमुखमिव मुखमग्रमस्येति समासः। विसंस्थुला निर्मर्यादाः। दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्रूराः। क्षणभङ्गिन्य इत्याश्वासनगर्भेयमुक्तिः। वामाश्च स्त्रिय ईदृश्य एव। निकारः परिभवः। कणिका लेशः, शर्करिका च। कलुषयति दूषयति, कालुष्यं नयति च। मानसं चेतः, सरश्च। अनवरतमश्रुणा सिच्यमानः। अनवरतं घटसारणीप्रणालादिना नयनं प्रापणं यस्य तादृशो जलेनोक्ष्यमाणश्च। विपल्लव आपल्लेशः, विगतपल्लवश्च। प्ररोहति स्थिरीभवति। तरुपक्षे प्ररोहा विद्यन्ते यस्य स प्ररोहः, स इवाचरति प्ररोहतीति व्याख्या। संतापः खेदः, ऊष्मा च। मालतीकुसुमं सुमनःपुष्पमतिसुकुमारम्। महान्त उत्तमाः द्राघीयांसश्च। सृणिरङ्कुशः। मातरोऽपि जन्मभूमयः। दारुणो विषमः, काष्ठस्य च। क्रकचः करपत्रम्, हृदयं चित्तम्, मध्यं च। संस्तुतः परिचितः। सेति। सर्वनामपदं जानासीत्यादिपूर्वोक्तार्थगर्भीकारेण। अभूमिरस्थानम्, अक्षेत्रं च। क्ष्वेडो विषम्। शुभेऽशुभे वेत्यादि। सम्प्रतिपन्ना लोकोक्तिरियम्। 'अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासताप्याकुलः', 'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः' इत्यादिवत्। अधिष्ठातरि स्वामिनि। अग्रेऽग्रगामिनि। अपवित्रतां नयन्ति, न तु शोभां त्याजयन्ति। धामसु स्थानेषु। तपस्यन्ती तपश्चरन्ती। सज्जः प्रगुणः। आज्ञाकार्यमिति दृष्टस्वरूपः। निःसामान्यविस्रम्भभाजनतामभिव्यनक्ति सखीजनशब्दः। श्वःश्रेयसस्य कल्याणस्य दातारम्। सुधासूतिश्चन्द्रः। कलिका तरिका। शापविरतिर्ब्रह्मणैवोक्ता। अतस्तत्र किमन्यापेक्षयेत्याशङ्क्याह—अल्पीयसैव कालेनेति।

इसी बीच सूर्य मानों सरस्वती के अवतीर्ण होने का समाचार कहने मध्यमलोक में उतरे। क्रमशः कमलिनी-समूह के मुकुलित होने के दुःख से सरोवर दुखी हो गए और दिन भी मंद पड़ने लगा। मदिरा से मदमाती कामिनियों के क्रोध के कारण टेढ़े कटाक्षों द्वारा मानों ढकेले जाने पर बड़ी शीघ्रता से तरुण वानर के मुँह के सदृश लाल वर्ण वाले संसार के एकमात्र नेत्र भगवान् सूर्य अस्ताचल के शिखर पर उतरने लगे। दिव्य आश्रमों के समीपवर्ती प्रदेश आर्द्र स्तनों वाली गौओं के झुण्ड से बहती हुई दूध की धार से धवल हो रहे थे मानों निकट में होने वाले चन्द्रोदय से बढ़े हुए क्षीरसागर की तरंगों द्वारा प्रक्षालित हो रहे हों। संध्याकालीन भ्रमण के लिए निकला हुआ, चँवर धारण किए हुए इन्द्र का हाथी ऐरावत सुवर्ण के तटों पर अपने दाँतों को पीट कर बजाता हुआ स्वच्छन्द होकर मन्दाकिनी के किनारों को खोदने लगा। आकाश लाल हो गया, मानों मार्ग में

इधर-उधर घूमती हुई सहस्रों विद्याधरी अभिसारिकाओं के चरणों में लगे महावर से पुत गया हो। आकाश में घूमते हुए सिद्धों द्वारा सूर्यास्त के अर्घ्यरूप में ढाला गया, दिशाओं को रंजित करता हुआ कुसुंमी रंग का रक्तचन्दन चू रहा था, मानों शिव के प्रणाम करने में विभोर संध्या के शरीर से पसीना निकल रहा हो। वन्दनशील मुनिजन अपनी संध्योपासना में अञ्जलियाँ बाँध रहे थे, मानों ब्रह्माजी की उत्पत्ति वाले कमल की सेवा के लिए समस्त कमल इकट्ठे हों, इस प्रकार ब्रह्मलोक सुशोभित हो रहा था। ब्रह्माजी तीसरी बार (संध्या-कालीन) सवन (यज्ञीय स्नान) विषयक वेद का उच्चारण कर रहे थे। सप्तर्षियों के गृह-प्रांगण में यज्ञाग्नि की ज्वालाएँ व्याप्त थीं, मानों शिविर में धर्म का एक कार्य नीराजन (आरती) नामक शान्तिकर्म हो रहे हों। अघमर्षण मंत्र के जप से पाप के विषाक्त रोग का विनाश हो जाने से यतिलोग स्वस्थ हो रहे थे। मन्दाकिनी के तट का पुलिन संध्यो-पासना के लिए तपस्वियों के बैठने से और भी पवित्र हो रहा था। तैरता हुआ ब्रह्मा जी का वाहन हंस अपनी उज्ज्वल हंसी से मन्दाकिनी की तरंगों को निम्नोन्नत बना रहा था। जलदेवता के छत्रस्वरूप और पक्षि-कामिनियों के अन्तःपुर के प्रासादरूप, अपने मकरंद की मीठी सुगन्ध वाले, तथा भौंरों को प्रसन्न करने वाले कुमुद तत्काल खिल रहे थे। राजहंसों का समूह ढंपते हुए कमलों के मीठे मधु (मकरन्द या मद्य) का सहपान करने से छक कर, गर्दन को कुण्डलित करके कोमल मृणालों द्वारा शरीर खुज-लाते हुए, पंखों को फड़फड़ा कर पद्मसरोवरों को हवा देते हुए ऊँघ रहा था। तट की लताओं के फूलों की धूल उड़ा कर नदी को धूसर बनाती हुई, सिद्धों के नगर की उत्तम महिलाओं के बंधे हुए केशपाश की मल्लिका की गंध लेकर रात की सांस के समान वायु मंद-मंद बहने लगी। झुण्ड के झुण्ड भौंरे सिकुड़ जाने से पराग भरे कमलों के कोशों की संकीर्ण कुटिया में विश्राम करने लगे। नृत्य के समय हिलती हुई भगवान् शंकर की जटा के कुटज फूल-जैसे गुच्छेदार तारे आकाश में छिटक गए। संध्या की लाली लिए हुए, पकते हुए तालफल की त्वचा के समान कलौंस भरी ललाई वाला प्रलयकालीन मेघों के सदृश गहन पहला अंधेरा धरती पर छा गया। रात्रिरूपी कामिनी के कान में खोंसी हुई चम्पा की कली-जैसे दीपक गहन अंधेरे को हटाने लगे। यमुना का रेतीला किनारा नीले जल के हट जाने पर जैसा लगता है उसी प्रकार पूर्व दिशा का मुख चन्द्रमा की कुछ-कुछ रश्मियों के लुनाई-भरे आलोक से पीला होने लगा और अंधकार को क्षीण करने लगा। विलीन होता हुआ अंधकार आकाश को छोड़ने लगा, खिले हुए कुवलय वाले सरोवर अभिन्न वर्ण के हो गए। चहे पक्षी के पंख जैसा और रात्रि रूपी भीलनी के बालों जैसा अंधेरा चन्द्र की किरणों के कचग्रह से मानिनी नायिका के मन के समान कम पड़ने लगा। रात्रिवधू के अधरराग के समान लाल चन्द्रमा उदित हो गया, मानों उदयाचल की खोह में रहने वाले सिंह के द्वारा कड़े पंजे से मारे गए

हिरन के रक्त से वह रँग गया था। उदयाचल से बहती हुई चन्द्रकान्त मणियों की जलधारा से मानों सारा अंधेरा धुल गया। आकाश में उठ कर चन्द्रमा अपनी सफेद चाँदनी से समुद्र को ऐसे भरने लगा जैसे हाथी के दाँतों का बना हुआ मकरमुखी पनाला गोलोक से दूध की धार बहा रहा हो। इस प्रकार प्रदोष समय के स्पष्ट हो जाने पर सावित्री शून्य हृदय होकर कुछ सोचती और डबडबाती हुई सरस्वती से बोली—'सखि, तू त्रिभुवन को उपदेश देने में चतुर है, तेरे सामने मेरी जीभ कुछ बकते हुए शर्मिन्दा हो रही है। तू तो जानती ही है कि गुणवान् लोगों के विषय में जैसी दैवी प्रवृत्तियाँ मर्यादाहीन, दुर्जनों की तरह क्रूर, क्षणभङ्गुर, दुरन्त एवं अरमणीय होती हैं। समानता न रखने वालों द्वारा बिना किसी कारण के उत्पन्न परिभव का लेश भी मनस्वी के मन को कलुषित कर डालता है। विपत्ति का अंकुर निरन्तर आँसुओं से सींचे जाने पर वृक्ष के समान हजारों शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ता ही जाता है। मालती के फूल की तरह अतिसुकुमार लोगों को सन्ताप के परमाणु मुरझा डालते हैं। छोटा भी अंकुश जैसे हाथियों पर गिर कर उनको परेशान कर देता है वैसे ही बड़ों के ऊपर थोड़े ही क्लेश का पड़ना बहुत कष्टकर हो जाता है। बंधु-बांधव के समान अपनी जन्मभूमियाँ, जिनके साथ स्वाभाविक स्नेहपाश का गटबंधन हो चुका है, दुस्त्यज हैं। अपने परिचित जनों का विरह दारुण आरे की तरह हृदय को चीर डालता है। पर तुझे इस तरह नहीं होना चाहिए। दुःख रूपी विष के पौधे के उत्पन्न होने के लिए तू स्थान नहीं है। और भी, जब कि पूर्वजन्म के बलवान् शुभ या अशुभ कर्म आगे और पीछे फल देने वाले हैं ही तो बुद्धिमान् को शोक करने का क्या अवसर है? त्रिभुवन का मंगल करने वाले तेरे कमल के समान इस मुख को अमंगल आँसू क्यों अपवित्र कर रहे हैं? बस रहने दे, अब बता—धरती के किस भाग को अलंकृत करना चाहती है? किस पुण्यवान् प्रदेश में उतरने के लिए तेरा हृदय तुझे प्रेरित कर रहा है? किन तीर्थों को तू अनुगृहीत करना चाहती है? तपोवन के किन धन्य स्थानों में तपस्यानिरत रहने के लिए सोच रही है? उपचार करने में चतुर, बाल्यकाल से ही धूल की क्रीडाओं का साथी और प्रिय यह जन तेरे साथ पृथिवी पर उतरने के लिए तैयार है। अनन्यशरण तू आज से ही मन, वचन और कर्म से भगवान् शंकर को मान, जो समस्त विद्याओं के विधाता एवं कल्याण को देने वाले, देवों के देव और त्रिभुवन के गुरु हैं। जिन्होंने अपने चरण की धूल से सुर, असुर दोनों को पवित्र किया है और चन्द्र की एक कला को अपना कर्णावतंस बनाया है। बहुत थोड़े समय में वे तेरे शापजन्य शोक को कम कर देंगे।'

एवमुक्ता मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजललवा सरस्वती प्रत्यवादीत्—'प्रियसखि, त्वया सह विचरन्त्या न मे कांचिदपि पीडामुत्पादयिष्यति ब्रह्मलोकविरहः शापशोको वा। केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे

हृदयम्। अपि च त्वमेव वेत्सि मे भुवि धर्मधामानि समाधिसाधनानि योगयोग्यानि च स्थानानि स्थातुम्' इत्येवमभिधाय विरराम। रणरणकोपनीतप्रजागरा चानिमीलितलोचनैव तां निशामनयत्।

आर्द्रयति स्नेहयति। धर्मधामानि मध्यदेशादीनि। समाधिश्चित्तैकाग्रयम्। योगे हि तदुक्तम्—'आदौ समाधिमासीत पश्चाद्योगमुपाचरेत्' इति। रणरणको दुःखमरतिकृतम्।

इस प्रकार सावित्री के कहने पर मोती की भाँति सफेद आँसू के कण आँखों से टपकाती हुई सरस्वती बोली—'प्रिय सखी, ब्रह्मलोक का विरह या शापजनित शोक कोई भी पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सकेंगे, जब तक तेरे साथ मैं विचरण कर रही हू। केवल ब्रह्माजी की सेवा का सुख मेरे हृदय को पिघला रहा है। पृथिवी पर मेरे लिए धर्म के स्थान जो समाधि (चित्त की एकाग्रता) के साधन एवं योग (चित्तवृत्ति का निरोध) के उपयुक्त हैं उन्हें तू ही जानती है।' इतना कह वह चुप हो गई। मानसिक उथल-पुथल (रणरणक) के कारण उसकी नींद उचट गई और उसने आँखें बिना बंद किए उस रात को बिताया।

अन्येद्युरुदिते भगवति त्रिभुवनशेखरे खणखणायमानस्खलत्खलीनक्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेनेव पाटलितवपुष्युदयाचलचूडामणौ जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे विरोचने नातिदूरवर्ती विविच्य पितामहविमानहंसकुलपालः पर्यटन्नपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

'तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम्'॥

तच्छ्रुत्वा सरस्वती पुनरचिन्तयत्—'अहमिवानेन पर्यनुयुक्ता। भवतु। मानयामि मुनेर्वचनम्' इत्युक्त्वोत्थाय कृतमहीतलावतरणसंकल्पा परित्यज्य वियोगविक्लवं स्वपरिजनं ज्ञातिवर्गमविगणय्यावगणा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्मुखं कथमप्यनुनयनिवर्तितानुयायिप्रतिप्राता ब्रह्मलोकतः सावित्रीद्वितीया निर्जगाम।

अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि। एते च कालाः संध्यादयो व्यवहारा इहत्या ब्रह्मलोक उपचरिताः। शेखर इव। शेखरो मुण्डमालकः। खलीनं कविका। क्षतजं रक्तम्। कृकवाकुः कुक्कुटः। चूडा मांसमयी शेखरिका। विविच्य विचार्य। विमानपालः स्वप्रस्तावे हंसीं यदाह तेन सरस्वती पर्यनुयोजितेवाभूत्। अपरवक्त्राख्यं वृत्तमाख्यायिकासु प्रयोज्यम्। तथा चाह भामहः—'वक्त्रं चापर-

वक्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि' इति। तरलयसीत्यादि। **अकलुषं मानसं यस्य स निर्मलचेता ब्रह्मा, मानसाख्यं च सरः। लालिता शीलिता। वापिका पुष्करिणी, उप्यन्तेऽस्यां तानि कर्माणीति वापिका, मर्त्यभूमिरपि। पङ्कजमालयो यस्य स ब्रह्मा, सरश्च। पर्यनुयुक्ता उपपत्त्या बोधिता। अवगणा केवला सावित्रीव्यतिरेकेण नान्यपरिवारा।** कथमपीति। **न मृत्यादिवत्। व्रतिव्रातस्तपस्विसमूहः।**

दूसरे दिन तीनों भुवन के शिरोमाल एवं उदयाचल के चूड़ामणि भगवान् सूर्य उदित हुए। उनका मण्डल टहाका लाल था, मानों खण-खण करते हुए लगाम की क्षति से उत्पन्न अपने घोड़ों के मुखरुधिर के फव्वारे उन पर पड़ गए हों। वृद्ध कुक्कुट की चूड़ा के समान लाल वर्ण वाला अरुण उनके आगे बैठा था। इसी समय कुछ ही दूर पर घूमते हुये ब्रह्मा जी के वाहन हंसों के रक्षक ने सोच कर ऊँचे स्वर से अपवक्त्र का गान किया—

'अरी कलहंसी, मानसरोवर के निर्मल जल में रहने वाली तू अपनी उत्सुक आँखों को क्यों चंचल कर रही है? अभी बावली में उतर जा, फिर पंकजालय (सरोवर) में जाना[1]।'

उसे सुन कर सरस्वती ने फिर सोचा—'मानों मुझसे इसने पूछा है। अच्छा, मैं मुनि दुर्वासा के वचन मानती हूँ।' यह कह कर पृथिवी पर उतरने के लिए संकल्प करती हुई उठी और वियोग से व्याकुल परिवार को छोड़, अपने बन्धु-बांधवों को न मान, ब्रह्मा जी की तीन बार प्रदक्षिणा करके, साथ आते हुए तपस्वियों को किसी प्रकार अनुनय-विनय द्वारा लौटा कर, अकेले सावित्री को साथ ले ब्रह्मलोक से निकल पड़ी।

ततः क्रमेण ध्रुवप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाघोधावमानधवलपयोधराम्, उद्धुरध्वनिम्, अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम्, आलीयमानवालखिल्यरुद्धरोधसमरुन्धतीधौततारवत्वचम्, त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतरत्तरलतरतारतारकाम्, तापसवितीर्णतरलतिलोदकपुलकितपुलिनाम्, आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपाराम्, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम्, आचमनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम्, शिवपुरपतितनिर्माल्यमन्दारदामकामनादरदारितमन्दरदरीदृषदम्, अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्,

---

१. इस श्लोक में हंसपाल सरस्वती को भी सिखावन दे रहा है कि सरस्वती, तू निर्मलचित्त ब्रह्मा जी की लाड़ली है, क्यों अपनी उत्सुक आँखें थका रही है? अभी वापिका (मर्त्यलोक) में उतर, फिर ब्रह्मा जी (पंकजालय) को प्राप्त कर लेना।

ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम्, सुषुम्णास्रुतशशिसुधाशीकरस्तबकतारकिततीराम्, धिषणाग्निकार्यधूमधूसरितसैकताम्, सिद्धविरचितवालुकालिङ्गलङ्घनत्रासविद्रुतविद्याधराम्, निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य, लीलाललाटिकामिव त्रिविष्टपविटस्य, विक्रयवीथीमिव पुण्यपण्यस्य, दत्तार्गलामिव नरकनगरद्वारस्य, अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव सुमेरुनृपस्य, दुगूलकदलिकामिव कैलासकुञ्जरस्य, पद्धतिमिवापवर्गस्य, नेमिमिव कृतयुगस्य सप्तसागरराजमहिषीं मन्दाकिनीमनुसरन्ती मर्त्यलोकमवततार। अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिष्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरसप्रस्रवणमिव दिशाम्, स्फाटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्, यं जनाः शोण इति कथयन्ति। दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतहृदया तस्यैव तीरे वासमरचयत्। उवाच च सावित्रीम्—'सखि, मधुरमयूरविरुतयः कुसुमपांशुपटलसिकतिलतरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीया रमयन्ति मां मन्दीकृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकण्ठभूमयः। पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुं मे' इति। अभिनन्दितवचना च तथेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत्। एकस्मिंश्च शुचौ शिलातलसनाथे तटलतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध। विश्रान्ता च नातिचिरादुत्थाय सावित्र्या सार्धमुच्चितार्चनकुसुमा सस्नौ। पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठितसैकतशिवलिङ्गा च भक्त्या परमया पञ्चब्रह्मपुरःसरां सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकरां ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयजमानमयीर्मूर्तीरष्टावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात्। अयत्नोपनतेन फलमूलेनामृतरसमप्यतिशिशयिषमाणेन च स्वादिम्ना शिशिरेण शोणवारिणा शरीरस्थितिमकरोत्। अतिवाहितदिवसा च तस्मिंल्लतामण्डपशिलातले कल्पितपल्लवशयना सुष्वाप। अन्येद्युरप्यनेनैव क्रमेण नक्तंदिनमत्यवाहयत्।

तत इत्यादावीदृशं मन्दाकिनीमनुसरन्ती सरस्वती मर्त्यलोकमवततारेति संबन्धः। ध्रुवं नित्यं वियत्। तस्मात्प्रवृत्ताम्। ध्रुवस्तारकाविशेषो ध्रुवाभित्यस्थानाद्वा विष्णोर्वा, ध्रुवावूरू पश्चाद्भागौ सक्थिनी ध्रुवे वा, तयोः प्रकर्षेण वृत्तां परिवर्तुलां वा।

अध इति पदेन धावनक्रियासहत्वाज्जलस्य ग्रहणं सूच्यते। अत एव धवलाः शुक्लाः पयोधरा मेघा यस्यास्ताम्। इतरत्राधोधावमानाः पयःपूर्णत्वाल्लम्बमानाः क्षीरयुतेश्च धवलाः स्तना यस्याः। अधो धावमानं वेगेन प्रसरद्धवलं पयो धारयति या ताम्, अधो धावमानो धवलो यः पयोधो वत्सस्तं राति ददाति या ताम्, धवलो वृषस्तस्मै पयो धारयति या तां वेत्यादिकाः कुल्याख्या एव। उद्धुर उद्भटः। अन्धकमथनः शिवः। आलीयमानाः श्लिष्यन्तः। वालखिल्या मुनिभेदाः। रोधस्तटम्। त्वङ्गत्तरत्। आप्लवनं स्नानम्। पितरो देवविशेषाः, आज्यपाः, सोमपाः, बर्हिषादयश्च। आचमनेत्यादिना पितामहवन्न स्नानादिनिष्ठत्वमस्योच्यते। अत एव शचीपदेन संभोगासक्तत्वमिव पोषितम्। निकायः समूहः। सुषुम्णाख्योऽमृतमयो रविरश्मिः। धिषणो बृहस्पतिः। सिद्धकृतत्वेन लिङ्गेषु भगवत्संनिधानमावेद्यते। निर्मोकः सर्पकञ्चुकः। विस्त्रंसतया शुक्लत्वेन, लहरिकावलीत्वेन च निर्मोकमुक्तिमिवेत्युत्प्रेक्षा। गगनमिवोरगः कृष्णतया। ललाटिका ललाटालंकारः। विटो भुजङ्गः। उष्णीषं शिरोवेष्टनं दिक्षु प्रसिद्धम्। दुगूलशब्दो दुकूलसमानार्थः। पद्धतिर्मार्गः। अपवर्गो मोक्षः। कृतयुगस्य रचितयुगकाष्ठस्य रथस्येत्यर्थः। यथा नेमिवशाद्रथग्रहणं तथा तद्वशात्कृताख्यस्य युगस्य। सप्तसागरराजः क्षीरसमुद्रः। चन्द्राख्यः पर्वत इति केचित्। शशिमणिश्चन्द्रकान्तः। पितामहस्येति। तद्भक्त्या तदाश्रयणम्। सिकता विद्यन्ते यस्य स सिकतिलः। मत्तशब्देन सशब्दत्वम्, वेणीपदेन च तन्त्रीसन्निवेशसादृश्यमाह। वेणी पङ्क्तिः। लिङ्ग्यतेऽनेनेति लिङ्गमाकारः। पञ्च ब्रह्माणि सद्योजातः, वामदेवः, अघोरः, तत्पुरुषः, ईशानश्चेति। मुद्राबन्धो विशिष्टकराङ्गुलिसन्निवेशः। ध्रुवाख्या विशिष्टा गीतिः। वनं तोयम्। यजमान उग्रः। अष्टौ पुष्पाण्येवाष्टपुष्पिका। तत्र गन्धप्रधानं पार्थिवम्, अर्घस्नानादिकं रसप्रधानमाप्यम्, प्रदीपाभरणप्रभादिरूपप्रधानं तैजसम्, अनुलेपनप्रभृति स्पर्शप्रधानं वायवीयम्, सुषिरातोद्यगीतादिकं शब्दप्रधानमाकाशीयम्, अनुध्यानं मानसम्, अस्ति सर्वत्रैवेश्वर इति निश्चयो बौद्धम्, अहमेवेश्वर इत्याहंकारिकम्। यद्वा,–आसनवर्गप्रवृत्तिष्वष्टसु प्रत्येकमष्टपुष्पिका। अतिशेतुमभिभवितुमिच्छतातिशिशयिषमाणेन। स्वादिम्ना मृष्टत्वेन। शरीरस्थितिमिति। न स्वातृप्तिभोजनम्। अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि।

तब क्रम से सरस्वती सात सागरों की पटरानी मंदाकिनी का अनुसरण करती हुई मर्त्यलोक में उतरी। वह मंदाकिनी ध्रुव से निकली हुई कामधेनु के समान नीचे लटकते हुए पयोधरों को धारण कर रही थी। उसकी ध्वनि गम्भीर थी। वह अंधक के शत्रु भगवान् शंकर के मस्तक की मालतीमाला थी। तट पर वालखिल्य मुनियों की भीड़–भाड़ थी। अरुन्धती वहाँ वल्कल का संमार्जन करती थी। उसकी दौड़ती हुई ऊँची लहरों पर चंचल तारे हिलोरें ले रहे थे। उसकी रेतों को तापस अपने तरल तिलोदक से

पुलकित कर रहे थे। स्नान से पवित्र ब्रह्मा जी द्वारा पितरों के लिए लुढ़काए गए पिण्डों से उसका तट उज्ज्वल हो रहा था। पास में सोये सप्तर्षियों की कुश-शय्या से सूचित हो रहा था कि उन्होंने यहाँ सूर्यग्रहण के अशौच का उपवास किया है। आचमन से पवित्र होकर इन्द्र द्वारा भेंट किए गए पूजा के फूलों से वह विविध वर्ण वाली हो रही थी। शिवपुर से गिरी मंदारमाला को वह धारण कर रही थी। आयास के बिना ही उसने मन्दराचल की कन्दराओं के चट्टान तोड़ डाले थे। अनेक दिव्याङ्गनाओं के कुचकलशों से (आहत होकर) वह डोल रही थी। घड़ियालों और चट्टानों पर निपात होने से उसके प्रवाह मुखर हो उठते थे। सूर्य की अमृत-मय रश्मिसुषुम्णा के कण, जो चन्द्रमा से उत्पन्न होते हैं, मन्दाकिनी के तीर पर तारों की तरह बिछ गए थे। बृहस्पति के यज्ञ से उत्पन्न धुवाँ नदी की रेत को धुआँसा कर रहा था। सिद्धों द्वारा बनाए गए बालू के शिवलिङ्ग का अकस्मात् लंघन हो जाने से उत्पन्न त्रास के कारण विद्याधर इधर-उधर छटपटा रहे थे। मानों वह मंदाकिनी गगन-सर्प की उज्ज्वल लहराती हुई केंचुल हो, त्रिभुवन-रूपी विट (धूर्त) की लीला-ललाटिका (ललाट का अलंकार) हो, पुण्यरूप सौदे की बाजार-गली हो, नरक रूपी नगर के द्वार को बन्द करने वाली आगल (अर्गला) हो, सुमेरु पर्वत रूपी राजा की अंशुक नामक महीन वस्त्र की उष्णीष (पगड़ी) पर बंधी हुई लम्बी पाट हो, कैलास रूपी हाथी की रेशमी पताका हो, मोक्ष का मार्ग हो, सतयुग के रथ की धुरा हो। आकाश में उतरी हुई सरस्वती ने भगवान् पितामह के अपत्य हिरण्य-वाह नामक महानद को देखा जो वरुण देवता के हार के समान था, जो चन्द्र-पर्वत से झरता हुआ अमृत-निर्झर के समान था, जो विन्ध्य पर्वत से बहता हुआ चन्द्रकान्त मणि के प्रवाह के सदृश था, जो दण्डकारण्य के कर्पूर वृक्ष से बहते हुए कपूरी प्रवाह के समान था। दिशाओं के लावण्यरस का वह जैसे सोता था। मानों वह आकाश लक्ष्मी के शयन के लिए गढ़ा हुआ स्फटिक का शिलापट्ट (पाटा) हो। वह महानद स्वच्छ, शिशिर और सुरस (स्वादिष्ट) जल से भरा था, उसे लोग शोण भी कहते हैं। शोण को देख कर सरस्वती का हृदय उसकी रमणीयता में रम गया और उसने वहीं डेरा डाला। उसने सावित्री से कहा—'सखी, इस महानद के तटवर्ती कछार में मोर मधुर ध्वनि करते है। वृक्षों के नीचे फूलों की रज बालू की तरह ढेर हो जाती है। फूलों की गन्ध से मतवाले भौंरे वीणा के समान गुंजार कर रहे हैं। इसके सामने मन्दाकिनी भी कुछ नहीं। मेरा मन यहीं रम रहा है, मेरा हृदय भी इसी स्थान में रहने के पक्ष में है।' सावित्री ने 'तथा' कह कर सरस्वती की बात का समर्थन किया। तब सरस्वती उसे लेकर उस महानद के पश्चिमी तीर पर उतरी। वहीं एक पवित्र शिलातल से युक्त लतामण्डप को घर मान कर ठहर गई। कुछ देर तक विश्राम करने के बाद उठी और सावित्री के साथ पूजा के फूल चुन कर स्नान किया। तब उसने नदी के किनारे रेत में बैठ कर बालू का शिवलिंग प्रतिष्ठित किया और पञ्चब्रह्म की स्तुति के अनन्तर सम्यक् प्रकार से कई

मुद्राबंध किए और ध्रुवागीति के साथ पृथिवी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और यजमानमयी शिव की आठ मूर्तियों का देर तक ध्यान करती हुई आठ फूलों को अर्पित किया। किसी यत्न के बिना ही मिले हुए अमृत-रस से भी बढ़ कर मीठे फल-फूल से और शोण के ठण्डे जल से उसने शरीर की रक्षा मात्र के लिए अत्यल्प भोजन किया। इस प्रकार उस दिन को बिता उसी लतामण्डप के शिलातल पर पत्तों की सेज बनाकर लेट गई। दूसरे दिन इसी क्रम से उसने रात-दिन गुजारे।

एवमतिक्रामत्सु दिवसेषु गच्छति च काले याममात्रोद्गते च रवावुत्तरस्यां ककुभि प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं गम्भीरतारतरं तुरङ्गहेषितह्लादमशृणोत्। उपजातकुतूहला च निर्गत्य लतामण्डपाद्विलोकयन्ती विकचकेतकीगर्भपत्रपाण्डुरं रजःसङ्घातं नातिदवीयसि संमुखमापतन्तमपश्यत्। क्रमेण च सामीप्योपजायमानाभिव्यक्ति तस्मिन्महति शफरोदरधूसरे रजसि पयसीव मकरचक्रं प्लवमानं पुरः प्रधावमानेन, प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटकेन, धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसिततकपोलभित्तिना, पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कच्छुरणकृष्णशबलकषायकञ्चुकेन, उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना, अनवरतव्यायामकृतकर्कशशरीरेण, वातहरिणयूथेनेव मुहुर्मुहुः खमुड्डीयमानेन, लङ्घितसमविषमावटविटपेन, कोणधारिणा, कृपाणपाणिना, सेवागृहीतविविधवनकुसुमफलमूलपर्णेन, 'चल चल, याहि याहि, अपसर्पापसर्प, पुरः प्रयच्छ पन्थानम्' इत्यनवरतकृतकलकलेन युवप्रायेण, सहस्रमात्रेण पदातिजनेन सनाथमश्ववृन्दं संददर्श।

यामः प्रहरः। नक्तंदिनशब्देन तत्कालनिवर्तनीयं कर्मैव लक्ष्यते। गम्भीरश्चिरकालस्थितः। तारतरो दूरदेशश्रूयमाणः। हेषितमश्वशब्दः, तद्रूपो ह्लादो ध्वनिस्तम्। क्रमेणेत्यादावश्ववृन्दं संददर्शेति संबन्धः। शफरा मत्स्याः। तदुदरवत्तैश्च धूसरे। प्रलम्बेत्यादिना सजत्वमुक्तम्। कचाः केशाः। सौकुमार्यात्पल्लवानीव। घटितललाटजूटता दाक्षिणात्येषु वेषः। दन्तपत्रिका कर्णाभरणभेदः। पिनद्धो बद्धः। कृष्णागुरुणः पङ्को निर्घृष्टं कृष्णागुरुः, तस्य शुष्कस्य सतः कल्कश्चूर्णः, तच्छुरणात्कृष्णेन गुणेन शबलं कषायं साधिवासितं कञ्चुकं वारबाणं यस्य। उत्तरीयेत्यादिना। सकक्षतां धर्मादिप्रसङ्गं चाह। वामेत्यनेनाश्रमिस्वभाववर्णना शृङ्गारिता चोक्ता। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। हाटकं स्वर्णम्। यदेव द्विगुणाऽत एव

गाढग्रन्थिसहस्त्वम्। ग्रथिताविस्रंसिनी। असिधेनुश्छुरिका। वातहरिणो यो वाताभिमुखं धावति। अवट उन्मार्गः। कोणो लगुडः।

इस तरह कई दिन कट गए, समय बहुत चला गया। एक रोज एक पहर दिन चढ़ गया, तब सावित्री को उत्तर दिशा की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट भरी आवाज सुन पड़ी, वह अपने शब्दों से वन की धांधियों को भर रही थी और अत्यन्त गम्भीर एवं तीखी थी। सरस्वती के मन में कुतूहल हुआ तो लतामण्डप से निकल आई और उसने सामने थोड़ी ही दूर पर खिले हुए केवड़े के पत्तेदार गर्भ के समान सफेद उड़ती हुई धूलराशि को देखा। क्रम से जब वह और भी समीप आ गई तो मछली के पेट के समान धूसर वर्ण वाले उस धूलि-पटल में एक सहस्र प्रायः युवकों की पैदल सेना के साथ घोड़े इस तरह चलते हुए दिखाई पड़े मानों जल में झुण्ड के झुण्ड मगर तैर रहे हों। पैदल सेना के वे हजार जवान आगे की ओर दौड़ते आ रहे थे। उनके सिर पर लम्बे और घुँघराले बालों का बँधा हुआ जूड़ा था। उनके कपोलों पर हाथीदाँत के बने पत्ते हँसी की चमक उत्पन्न कर रहे थे। वे काले अगुरु की बुंदकियों के छींटे वाले लाल रंग के कंचुक कसे हुए थे। उन्होंने अपने सिर पर चादर की पगड़ी बाँध ली थी। उनके बाएँ हाथ की कलाइयों में सोने के कड़े थे। उनकी कमर में कपड़े की दोहरी पेटी की मजबूत गाँठ थी और उसमें छुरी खोंसी हुई थी। निरन्तर व्यायाम करने से उनका बदन पतला, पर गठा हुआ था। हवा से बात करने वाले हिरनों की तरह वे मानों आकाश में उड़ते चल रहे थे। वे ऊबड़-खाबड़ जमीन, खाइयों और झाड़ियों को डाँकते जाते थे। कुछ सैनिक मुँगरी या डंडे लिए थे और कुछ के हाथ में तलवारें थीं। सहायता के लिए उन्होंने बनैले फूल, फल, मूल और पत्ते ले लिए थे। 'चलो चलो', 'जाओ जाओ', 'बढ़ो बढ़ो', 'आगे रास्ता दो' इस तरह हमेशा वे शोर-गुल मचा रहे थे।

मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविधरत्नखण्डखचितेन शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं लक्ष्मीं दातुमागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतच्छायम्, अच्छाच्छेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवालेनानुगम्यमानम्, आनितम्बविलम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकलभुवनविजयार्जितया रूपपताकयेव विराजमानम्, उत्सर्पिभिः शिखण्डखण्डिकापद्मरागमणेररुणैरंशुजालैरदृश्यमानवनदेवताविधृतैर्बालपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्गरेणुपरुषवपुषम्, बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण कुटिलकुन्तलस्तबकमालिना मौलिना मीलितातपं पिबन्तमिव दिवसम्, पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य मनःशि-

लापङ्कपिङ्गलेन लावण्येन लिम्पन्तमिवान्तरिक्षम्, अभिनवयौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य चक्षुषः प्रथिम्ना विकचकुमुदकुवलयकमलसरःसहस्रसंछादितदशदिशं शरदमिव प्रवर्तयन्तम्, आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन ललाटतटशशिमणिशिलातलगलितेन कान्तिसलिलस्रोतसेव द्राघीयसा नासावंशेन शोभमानम्, अतिसुरभिसहकारकर्पूरकक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलमुचा मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण मुखेन सनन्दनवनं वसन्तमिवावतारयन्तम्, आसन्नसुहृत्परिहासभावनोत्तानितमुखमुग्धहसितैर्दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः पुनःपुनर्नभसि संचारिणं चन्द्रालोकमिव कल्पयन्तम्, कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य प्रेङ्खतः प्रभया समुत्सर्पन्त्या कृतसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंसमिवोपलक्ष्यमाणम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्, भुजयुगलमुद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव मकरकेतुकेतोः दण्डद्वयं दधानम्, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतःसंदानितमिव मन्दरं देहमुद्वहन्तम्, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव कान्ताकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनोरःस्थलेन स्थूलभुजायामपुञ्जितम्, पुरो विस्तारयन्तमिव दिक्चक्रम्, पुरस्तादीषदधोनाभिनिहितैककोणकमनीयेन पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतःसंवलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्, अनवरतश्रमोपचितमांसकठिनविकटमकरमुखसंलग्नजानुभ्यामतिविशालवक्षःस्थलोपलवेदिकोत्तम्भनशिलास्तम्भाभ्यां चारुचन्दनस्थासकस्थूलतरकान्तिभ्यामूरुदण्डाभ्यामुपहसन्तमिवैरावतकरायामम्, अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव[1] तनुतरजङ्घाकाण्डम्, कल्पपादपपल्लवद्वयस्येव पाटलस्योभयपार्श्वावलम्बिनः पादद्वयस्य दोलायमानैर्नखमयूखैरश्वमण्डनचामरमालामिव रचयन्तम्, अभिमुखमुखैरुदञ्चद्भिरतिचिरमुपरिविश्राम्यद्भिरिव वलितविकटं पतद्भिः खुरैः खण्डितभुवि प्रतिक्षणदशनविमुक्तखणखणायितखरखलीने दीर्घघ्राणलीनलालिके ललाटलुलितचारुचामीकरचक्रके शिञ्जानशातकौम्भायानशो-

---

१. अतिभरितोरुभागभर।

भिनि मनोरंहसि गोलाङ्गूलकपोलकालकायलोम्नि नीलसिन्धुवारवर्णे वाजिनि महति समारूढम्, उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्यामासन्नपरिचारकाभ्यां दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम्, अग्रतः पठतो बन्दिनः सुभाषितमुत्कण्टकितकपोलफलकेन लग्नकर्णोत्पलकेसरपद्मशकलेनेव मुखशशिना भावयन्तम्, अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तरमारचयन्तम[1], शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्तयन्तम्, आकर्षणाञ्जनमिव चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः, स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असंतोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोगमिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौवनस्य, एकराज्यमिव रामणीयकस्य, कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूलकोशमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमाङ्कुरमिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिव विभ्रमस्य, यशःप्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीत्।

मध्य इत्यादौ। तस्य च मध्येऽष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। क्षीरोदस्याप्यर्धचन्द्रादि सर्वं योज्यम्। छाया कान्तिरपि। चक्रवालेन समूहेन। नितम्बशब्दो मुख्यार्थः। 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः' इत्यमरः। [2]शिखण्डखण्डिका चूडाभरणम्। प्रमृज्यमानेति। वर्तमानकालोऽत्र विवक्षितः। बकुलेत्यादिना निर्पीयमानातपतुल्यवस्तुनिर्देशः। कुन्तलः केशहस्तः, स एव स्तबकः। पुष्पस्तबकः पुष्पसंघातः। सहजाऽकृत्रिमा, सहोत्पन्ना च। लक्ष्मीः शोभना, श्रीश्च। लावण्यमत्र कान्तिः। अवष्टम्भो गर्वः। द्राघीयसा दीर्घतरेण। सहकारः सुगन्धद्रव्यभेदः सहकारफलेनैव क्रियते। पारिजातकोऽनेकद्रव्यसंस्कृतो मुखवासविशेषः, देववृक्षश्च। वसन्तश्चैवंविधेनैव मुखेन प्रारम्भेनोपलक्षितो भवति। रत्नत्रितयेन कृतं त्रिकोणकण्टकाख्यं कर्णाभरणम्। मृगमदः कस्तूरिका। संदानितं बद्धम्। वेष्टितमित्यर्थः। कुचावत्र कान्तासंबन्धिनावेव चक्रवाकयुगलं तस्य कृते पुलिनसदृशम्। कोणः पल्लवः। पृष्ठतः पश्चाद्भागे कक्ष्यायाः परिवलनादधिकस्तुतिरित्युक्तः। क्षिप्तो लम्बमानः पल्लवो यस्य तत्। संवलनं संकोचनम्। हारीतः पक्षिभेदः। हरिता नीलेन। मकरमुखं जानुनोरुपरिभागः। उत्तम्भनं धारणम्। स्थासकश्चन्द्रकः। आयामो दैर्घ्यम्। न केवलमायामं शुक्लत्वमप्युपहसन्तम्। धर्मयोरेकनिर्देशोऽन्यसंविस्सा-

१. मार्गान्तरमानयन्तं। २. शिखंडश्चूडामरणं.

हृदयत्वात्। 'अनिभरितोरूभारवहनेन' इति पाठः। ऊरू एव भारः। प्रशस्ता जङ्घा जङ्घाकाण्डम्। कल्पपादपसम्बन्धितया न केवलं लौहित्यं सौकुमार्यमुच्यते। याव-त्सकलसंपत्फलप्रदत्वादिप्रकर्षान्तरम्। अतिचिरमित्यादिनाकुलत्वमुच्यते। यदु-क्तम्—'आवृताः कुञ्चिताः स्थूलदलपाल्यग्रसंस्थिताः। विवर्ज्याश्चाकुलपदन्यासेन गमनेन च॥' इति। विकटं चित्रम्। खुरैरिति। तद्व्यापारवैचित्र्याद्बहुत्वमग्रिमयो-रेव। एवंविधसंनिवेशसंभवात्। खलीनं कविका। लालिका कविकाशेखरम्। आयानं हयमण्डनमाला। गोलाङ्गूलः कृष्णमुखो वानरः। नीलेत्यादौ कुमुदकुन्दमृणालगौर इत्यादिवन्न पौनरुक्त्यम्। महतीति। उक्तं च—'सर्वलक्षणहीनोऽपि महाकायः प्रशस्यते' इति। आसन्नेत्यनेन विश्वसनीयत्वमुक्तम्। अनङ्गयुगेति। अनङ्गजन्मना यदुपलक्षितं युगं कालविशेषस्तस्य नूतनमदनसादृश्यात्। यद्वा—अनङ्गयोर्युगं तद-वतारमिव। द्वित्वसंख्यापूर्वकत्वात्। चन्द्रमयीमिवेति कान्तिमयत्वेन। आकर्षणाञ्जनं वशीकरणार्थं कज्जलम्। अमंतोपमिवेति। यस्यैनं प्राप्य कौतुकं न निवर्तते, तस्य संतोष एव नास्ति। केषांचिदेव द्रव्याणां संबन्धी यो न कदाचित्कार्ये व्यभि-चरति स सिद्धयोगः। सौभाग्यं तावत्सर्वं किंचन वशीकुरुते, एवं चास्य तदेव सिद्धयोग इव तदाश्रयणेन निःशेषलोकवशीकरणक्षमत्वम्। जन्मदिवसमिति। तद्गो-चरपतितानां कामोत्पत्तेः। रसायनमिवेति। यथा रसायनवशात्कश्चित्परिपूर्णश्च स्थिरश्च भवति, तद्वदेतदाश्रयेण यौवनम्। ईषदसमाप्तोऽष्टादशवर्षोऽष्टादशवर्षदे-शीयस्तम्। न परेण संश्लिष्टस्तुरङ्गो यस्य तम्। दधीचस्य तु पर्याणश्लिष्टायुक्तम्। परिणतवयस्त्वेन सत्यवादिना सावित्रीसरस्वत्यौ प्रति च विस्रम्भकारित्वमुच्यते। अन्यथोपक्रम एव संभाषणमात्रं न प्रवर्तते।

सरस्वती ने घोड़ों की उस टुकड़ी के बीच में अट्ठारह वर्ष के एक अश्वारोही युवक को देखा। अर्धचन्द्र से युक्त, मोतियों की मालाओं वाला, अनेक प्रकार के रत्नों से खचित, शंख और दूध के फेन की तरह उजला छत्र उस पर छाया कर रहा था, मानों लक्ष्मी को उसे स्वयं अर्पित करने के लिये क्षीरसमुद्र ही आकाश में लहरा रहा हो। आभूषणों की निर्मल किरणें इस तरह उसका पीछा कर रही थीं मानों उसके दर्शन के अनुराग से सारी दिशाएँ एकत्र होकर अनुसरण कर रही हों। मालती की शेखरस्रज उसके नितम्ब तक लटक रही थी, मानों वह समस्त भुवनों की विजय करने से प्राप्त रूप की पताका से विरा-जमान हो। शिखण्ड-खण्डिका नामक उसके शिरोभूषण में जड़ी हुई पद्मराग मणि की लाल किरणें फैल रही थीं, मानों दृष्टिपथ में न आने वाली वनदेवता बाल पल्लवों द्वारा मार्ग की धूल से उसकी रूखर देह को झाड़ती हो। मौलसिरी के कुड्मलों से बनी हुई मुण्डमाला से मनोहर एवं घुँघराले बालों के गुच्छों से भरे हुए अपने सिर से दिन के आतपको मन्द करता हुआ वह मानों दिनको पी रहा था। उसका ललाट शिवके ललाट के मुकुटचन्द्र के दूसरे खण्ड से मानों बना हुआ था और उसमें स्वाभाविक शोभा थी, मानों

वह मनःशिला के पंकसदृश लाल-पीले अपने ललाट के लावण्य से सारे अन्तरिक्ष को लीप रहा था। वह नई जवानी के आरम्भ में गर्वीले और उद्धत दृष्टिपात करने वाली अपनी आँखों से सारे संसार को तृण के बराबर समझ रहा था, ऐसी आँखों की दीर्घता से मानों वह कुमुद, कुवलय और कमल से भरे हुए हजारों सरोवरों से समस्त दिशाओं को ढकने वाली शरत् को प्रवर्तित कर रहा था। उसका नासावंश मानों दीर्घ नयनों की नदी के सीमान्त में बनाया गया पुल का बाँध हो, या उसके ललाट रूपी चन्द्रकान्तमणि के शिलातल से चू कर बहता हुआ कान्ति का प्रवाह हो, ऐसे वह अपने नासावंश से सुशोभित था। सहकार, कर्पूर, कक्कोल, लवङ्ग और पारिजातक इन पाँच सुगन्धित पदार्थों की गंध उसके मुख से निकल रही थी, उस पर मतवाले भौंरे गुञ्जार रहे थे, मानों वह चन्दन वन के सहित वहाँ वसन्त को उतार रहा था। वह जब कभी अपने पास के मित्रों के साथ परिहास की भावना से मुँह ऊँचा करके हँसता था तो समस्त दिशाएँ उसके दाँतों की चाँदनी में घुल जाती थीं और मानों वह आकाश में बार बार संचरण करने वाले चन्द्रलोक का निर्माण कर रहा था। उसके कान में त्रिकंटक नाम का गहना था, जो कदम्ब के कुड्मल के समान दो स्थूल मोतियों के बीच में पन्ने का जड़ाव करके बनाया गया था, ऐसे त्रिकंटक की प्रभा फैल रही थी, मानों उस युवक ने फूल के सहित कुन्द के हरे पल्लवों को कर्णावतंस बना लिया हो। सुगन्धित कस्तूरी के पंक की बनी हुई पत्ररेखाओं से उसके दोनों हाथ चमक रहे थे, मानों कामदेव की पताका के बड़े बड़े मकरों से आक्रान्त शिखर वाले दो डंडे हों। मानों समुद्रमथन से क्रुद्ध गंगा की धाराओं से जकड़े हुए मन्दराचल के समान श्वेत यज्ञोपवीत से वेष्टित शरीर को वह धारण कर रहा था। कर्पूर के चूर्ण की मूठों से धूसरित उसकी छाती कान्ता के ऊँचे स्तन रूपी चक्रवाक युगल के लिए चौड़ी रेतीली जमीन थी, ऐसी छाती से वह मानों अपनी स्थूल भुजाओं के आयाम में पुञ्जीभूत दिशाओं को फैला रहा था। हारीत पक्षी के समान नील वर्ण का कस कर बँधा हुआ अधोवस्त्र उसकी पतली कमर को विभाजित कर रहा था, सामने की ओर नाभि से कुछ नीचे उसका एक कोना बहुत अच्छा लग रहा था, उस अधोवस्त्र का कच्छ भाग पीछे की ओर पल्ला खोंसने के बाद भी कुछ ऊपर निकला रहता था। दोनों ओर शरीर के मोड़ने से दाहिनी जांघ का कुछ भाग दिखाई दे जाता था। वह अपने ऊरुदण्डों से ऐरावत की सूँड़ का मानों उपहास कर रहा था, दोनों जांघों का मांस हमेशा व्यायाम करते रहने से बढ़ गया था, वे ऐसी लगती थीं मानों कठिन और विकट मगर के मुख में फँस गई हों, वे चौड़ी छाती के चबूतरे को धारण करने के लिए शिलास्तम्भ थीं। चन्दन के सुन्दर थप्पे से उसकी जाँघों में कान्ति और भी निखर उठी थी। हद से ज्यादा उभरी हुई जाँघों के भार-वहन करने से खिन्न होकर मानों उसकी टाँगें पतली हो गई थीं। कल्पवृक्ष के दो पल्लवों के समान ललछहू रंग के दोनों ओर लटकते हुए पैरों के नखों की किरणें डोलती हुई मानों घोड़ों का चामरमाला नामक अलंकार बना रही थीं।

मन के समान वेग वाले, लंगूर के मुँह की तरह काले रोंगटे वाले, सिन्धुवार जैसे नीले, तगड़े घोड़े पर वह सवार था। वह घोड़ा अपने खुरों से जो सामने देर तक उठे रह जाते और विकट रूप में टेढ़े होकर गिरते, जमीन को कोड़ रहा था। वह काँटेदार लगाम को प्रतिक्षण अपने दाँतों से छोड़ता तो खड़-खड़ आवाज होती। घोड़े की नाक पर सामने की ओर लगाम का कमानीदार हिस्सा और माथे पर सोने का पदक झूल रहा था। आवाज करती हुई सुवर्ण की आयान नामक माला से वह घोड़ा सुशोभित हो रहा था। अपने अश्व के पलान का एक हाथ से सहारा लेकर उसके दोनों ओर दो आसन्न परिचारक चँवर झल रहे थे। आगे आगे जो बंदीजन सुभाषित पाठ कर रहे थे उसे सुन कर उसके मुख-चन्द्र के दोनों कपोलभाग रोमाञ्चित हो रहे थे मानों उसके कर्णोत्पल का पराग झर गया हो। मानों वह अनङ्ग युग का अवतार दिखला रहा था, सारी सृष्टि को चन्द्रमय बना रहा था, सारे प्राणिलोक को विलासमय कर रहा था, राग के राज्य का प्रवर्तन कर रहा था। मानों वह नेत्र का आकर्षणाञ्जन, मन का वशीकरणमंत्र, इन्द्रियों को विवश करने वाला चूर्ण, कुतूहल का असन्तोष, सौभाग्य का सिद्धियोग, कामदेव का पुनर्जन्मदिन, यौवन का रसायन, सौन्दर्य का एकच्छत्र राज्य, रूप का कीर्तिस्तम्भ, लावण्य का मूल कोश, संसार के सारे पुण्यकर्मों का परिणाम, कान्ति रूपी लता का पहला अंकुर, ब्रह्मा जी के सृष्टिनिर्माण के अभ्यास का फल-स्वरूप, विभ्रम का प्रताप और वैदग्ध्य का यशःप्रवाह था।

पार्श्वे च तस्य द्वितीयमपरसंश्लिष्टतुरङ्गम, प्रांशुमुत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्, परिणतवयसमपि व्यायामकठिनकायम्, नीचनखश्मश्रुकेशम्, शुक्तिखलतिम्, ईषत्तुन्दिलम्, रोमशोरःस्थलम्, अनुल्बणोदारवेषतया जरामपि विनयमिव शिक्षयन्तम्, गुणानपि गरिमाणमिवानयन्तम्, महानुभावतामपि शिष्यतामिवानयन्तम्, आचारस्याप्याचार्यकमिव कुर्वाणम्, वलक्षवारबाणधारिणम्, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं पुरुषम्।

शुक्तिखलतिं शुक्त्याकारखल्वाटम्। तुन्दिलं लम्बोदरम्। अत एवास्य विकुक्षिरिति नाम। अनुल्बणोऽनुद्धतः। उदारः श्रेष्ठः। जरामिति। जरा किल सर्वं विनयं शिक्षयति। महानुभावता महाशयता। अनुभावयति कार्यमकार्यं वा बोधयतीत्यनुभावः। शिष्यतामिति। परशासनदक्षकर्म महानुभावतया तत एवावसीयत इत्युक्तं भवति। आचारः शास्त्रकारप्रदर्शिता विशिष्टा नीतिः। स च सर्वस्मिन्नाचार्यकमवलम्बते। संस्कारातिशयमापादयतीत्यर्थः। वलक्षः शुक्लः। वारबाणः कञ्चुकः। मौलयः केशाः।

उस नवयुवक के बगल में एक दूसरे पुरुष को देखा। वह भी घोड़े पर सवार था।

उसकी कद लम्बी थी। उसकी आकृति तपे हुए सोने के खम्भे के समान थी। अवस्था अधेड़ होने पर भी उसका शरीर व्यायाम से गँठा हुआ था। उसके दाढ़ी, मूँछ और नाखून साफ-सुथरे कटे हुए थे। बाल झड़ जाने से बिलकुल सितुहे-जैसा लगता था। उसकी तोंद निकल आई थी। छाती में बाल जम गए थे, वेष सौम्य और श्रेष्ठ था, मानों वह अपनी वृद्धावस्था को भी विनय की सीख दे रहा था, गुणों में भी गौरव भर रहा था, महानुभावता को भी शिष्य बना रहा था, आचारों का भी आचार्य हो रहा था। वह उज्ज्वल कंचुक पहने हुए और धुली हुई दुकूलपट्टिका बाँधे हुए था।

अथ स युवा पुरोयायिनां यथादर्शनं प्रतिनिवृत्यातिविस्मितमनसां कथयतां पदातीनां सकाशादुपलभ्य दिव्याकृतितत्कन्यायुगलमुपजातकुतूहलः प्रतूर्णतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपोद्देशमाजगाम। दूरादेव च तुरगादवततार। निवारितपरिजनश्च तेन द्वितीयेन साधुना सह चरणाभ्यामेव सविनयमुपससर्प। कृतोपसंग्रहणौ तौ सावित्री समं सरस्वत्या किसलयासनदानादिना सकुसुमफलार्घ्यावसानेन वनवासोचितेनातिथ्येन यथाक्रममुपजग्राह। आसीनयोश्च तयोरासीना नातिचिरमिव स्थित्वा तं द्वितीयं प्रवयसमुद्दिश्यावादीत्—'आर्य, सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणमशालीनता, विशेषतो वनमृगीमुग्धस्य कुलकुमारीजनस्य। केवलमियमालोकनकृतार्थाय चक्षुषे स्पृहयन्ती प्रेरयत्युदन्तश्रवणकुतूहलिनी श्रोत्रवृत्तिः। प्रथमदर्शने चोपायनमिवोपनयति सज्जनः प्रणयम्। अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनोमध्विव वाचालयति। अयत्नेनैवातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोपयति विस्रम्भः। जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्ट्यतिशयाः। यतस्त्रिभुवनाभिभावि रूपमिदमस्य महानुभावस्य। सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानांप्रियस्यातिभद्रता कारयति कथां न तु युवतिजनसहोत्था तरलता। तत्कथयागमनेनापुण्यभाक्तमो विजृम्भितविरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः? क्व वा गन्तव्यम्? को वायमपहृतहरहुंकाराहंकारोऽपर इवानन्यजो युवा? किंनाम्नो वा समृद्धतपसः पितुरयममृतवर्षी कौस्तुभमणिरिव हरेर्हृदयमाह्लादयति? का चास्य त्रिभुवननमस्या विभातसंध्येव महतस्तेजसो जननी? कानि वास्य पुण्यभाञ्जि भजन्त्यभिख्यामक्षराणि? आर्यपरिज्ञानेऽप्ययमेव

क्रमः कौतुकानुरोधिनो हृदयस्य' इत्युक्तवत्यां तस्यां प्रकटितप्रश्रयोऽसौ प्रतिव्याजहार—'आयुष्मति, सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या। न केवलमाननं हृदयमपि च ते चन्द्रमयमिव सुधाशीकरशीतलैराह्लादयति वचोभिः। सौजन्यजन्मभूमयो भूयसा शुभेन सज्जननिर्माणशिल्पकला इव भवादृश्यो दृश्यन्ते। दूरे तावदन्योन्यस्याभिलपनमभिजातैः सह दृशोऽपि मिश्रीभूता महतीं भूमिमारोपयन्ति। श्रूयताम्—अयं खलु भूषणं भार्गववंशस्य भगवतो भूर्भुवःस्वस्त्रितयतिलकस्य, अदभ्रप्रभावस्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भस्य, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपङ्केरुहस्य, निजतेजःप्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य बहिःप्राणजीवितं दधीचो नाम तनयः। जनन्यप्यस्य जितजगतोऽनेकपार्थिवसहस्रानुयातस्य शर्यातस्य सुता राजपुत्री त्रिभुवनकन्यारत्नं सुकन्या नाम। तां खलु देवीमन्तर्वत्नीं विदित्वा वैजनने मासि प्रसवाय पिता पत्युः पार्श्वात्स्वगृहमानाययत। असूत च सा तत्र देवी दीर्घायुषमेनम्। अवर्धतानेहसा च तत्रैवायमानन्दितज्ञातिवर्गो बालस्तारकराज इव राजीवलोचनो राजगृहे। भर्तृभवनमागच्छन्त्यामपि दुहितरि नासेचनकदर्शनमिममसुञ्चन्मातामहो मनोविनोदनं नप्तारम्। अशिक्षतायं तत्रैव सर्वा विद्याः सकलाश्च कलाः। कालेन चोपारूढयौवनमिममालोक्याहमिवासावप्यनुभवतु मुखकमलावलोकनानन्दमस्येति मातामहः कथंकथमप्येनं पितुरन्तिकमधुना व्यसर्जयत्। मामपि तस्यैव देवस्य सुगृहीतनाम्नः शर्यातस्याज्ञाकारिणं विकुक्षिनामानं भृत्यपरमाणुमवधारयतु भवती। पितुः पादमूलमायान्तं मया साभिसारमकरोत्स्वामी। तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम्। उत्तमानां च चिरंतनता जनयत्यनुजीविन्यपि जने कियन्मात्रमपि मन्दाक्षम्। अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्। इतश्च गव्यूतिमात्रमिव पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः। तदवधिरेवेयं नौ यात्रा। यदि च वो गृहीतक्षणं दाक्षिण्यमनवहेलं वा हृदयमस्माकमुपरि भूमिर्वा प्रसादानामयं जनः श्रवणार्हो वा, ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः प्रणयः कुतूहलस्य। वयमपि शुश्रूषवो वृत्तान्तमायुष्मत्योः। नेयमाकृतिर्दिव्यतां व्यभिचरति। गोत्रनामनी तु श्रोतुमभिलषति नौ

हृदयम्। तत्कथय कतमो वंशः स्पृहणीयतां जन्मना नीतः। का चेयमत्रभवती भवत्याः समीपे समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्। तथा हि, संनिहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलोचना च, बालातपप्रभाधारा कुमुदहासिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च, कमलकोमलकरा हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा च, करभोरुर्विलम्बितगमना च, अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च' इति।

अथेति। ननु गतागतिकतया सर्वचेतनाभिप्रायेण सौन्दर्यमेतयोरभिव्यज्यते। प्रतिनिवृत्य न पुनः प्रसङ्गत उपेत्य। कन्यकात्वादेतन्नानुचितम्। प्रतूर्णो वेगगामी। साधुना विनीतेन। 'उपसंग्रहणं धीराः कथयन्त्यभिवादनम्'। आतिथ्यमेवोपजग्राहापूजयत्। 'प्रवयाः स्यात्परिणतः'। अशालीनता धृष्टता। वनशब्देन मृगोसामान्येऽपि जनसंपर्काद्यभावमाह। उपायनं ढौकनिका। उपनयति ढौकयति। प्रगल्भमित्यादि। मनःकर्तृ अप्रगल्भमपि जनं वाचालयति। कीदृशम्? प्रभवता स्वामिना प्रश्रयेण प्रत्यर्पितं दत्तमेवंविधमस्मदीयं युष्मासु मन इति बहिः प्रकाशितं यश्च परतश्च केनापि प्रभावशीलेन ढौकितं मध्वप्रगल्भमपि जनं कुलयोषित्प्रायं वाचालयति किंचन जल्पयति। अत्रापि प्रश्रयेणेति साभिप्रायम्। तथा च—'अन्ययान्यवनितागतचित्तं चित्तनाथमभिशङ्कितवत्या। पीतभूरिसुरयापि न मोदे निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतोः॥' इत्युक्तम्। नम्रे प्रह्वे, कुब्जे च। गुणो विनयादिः, ज्या च। कोटिः प्रकर्षः, धनुःशिखा च। देवानांप्रियस्येति पूजावचनम्। षष्ठ्या अलुक्। अत्रागमनेत्यादिना ब्रह्मोक्तशापबुद्ध्या दधीचस्य तद्भर्तृयोग्यतया कतम इति देशोत्कर्षकुलादिकं पृच्छति—कथयेति। देवस्य। सिद्धा देवाः। अनन्यजः कामः। महतस्तेजस इति। महश्च तेजः सूर्याख्यम्। अभिख्या नाम। अयमेव क्रम इति। यथास्योत्पत्त्यादिकं तद्वद्भवतोऽपीत्यर्थः। कला उपायः। भूरिति रेफान्तो भूवाची। भुव इति रेफान्तः पातालवाची। भूश्च भुवश्च स्वश्च भूर्भुवःस्वः, एषां त्रयमिति समासः। अदभ्रोऽनल्पः। जम्भारिरिन्द्रः। स ह्यश्विभ्यां यज्ञभागभुजौ कुर्वावामिति चिरं प्रार्थितः। तथेति प्रतिपद्य ताभ्यां भागं दददिन्द्रेणोद्यतवज्रेण रोषितः। ततस्तेनास्य सवज्रः स्तम्भितो भुज इति। दुर्ललितोऽलभ्यविषयः। पुलोम्न इति। अनवरतं रुदत्यां दुहितरि कोपान्मात्रा गृहाणेमामिति पुलोम्नो राक्षसस्योक्तम्। ततस्तां प्रतिगृह्य तत्रैव स्थापयित्वा क्वापि गते रक्षसि सा भृगुणा विवाहिता। ततः सगर्भा सती पुलोम्नागत्यापह्रियमाणतया च्यवनं गर्भमत्याक्षीत्। तेन चान्वर्थनाम्ना तद्वंशो वृद्धैवादह्यत। अन्तर्वत्नीं गर्भिणीम्। वैजनने मासि प्रसवमासे। दीर्घायुषमिति साभिप्रायम्। रूपकुलाद्युत्कर्षे वर्णिते सत्येतदेव वरगुणवर्णनमवशिष्यते। अनेहसा परिपूर्णेन कालेन। 'न जायते यत्र तृप्तिस्तदासेचनकं विदुः'।

नसारं पौत्रम्। साभिसारं ससहायम्। मन्दाक्षमुपरोधम्। गव्यूतिः क्रोशद्वयम्। यात्रा प्रस्थानम्। गोत्रं वंशः। समवाय एकत्रस्थितिः। बालेषु केशेष्वन्धकारं तम इति यस्या बालं प्रत्यग्रम्। भास्वती मूर्तिमती, भास्वत आदित्यस्य च मूर्तिः। न कदाचित्सन्निहितबालान्धकारा भवतीति विरोधः। पुण्डरीकं पद्मम्, सिंहश्च यस्या मुखं तत्र कथं हरिणस्य लोचने स्त इति विरोधः। पयोधरौ स्तनौ, मेघाश्च पयोधराः। कलहंसानां स्वनो यस्यां सा। सरित्कथं प्रावृड् भवतीति विरोधः। करो हस्तः, रश्मिश्च। शिला वातवज्रीभूतं हिमम्। यत्र च हिमगिरिशिलाभिः पृथुर्मध्यभागस्तत्र कथं पद्मकोमलकान्तिः। हिमस्पर्शे पद्मनाशात्। 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' करभश्चोष्ट्रः। विलम्बितं सविलासम्, लम्बितश्च करभो यस्याः। करभोरुः कथं विगतकरभगमनेति विरोधः। कुमारभावो बाल्यम्, कुमारे च भावो भक्तिः। स्निग्धो रम्यः, प्रतीतश्च। तारकाऽक्ष्णोः कनीनिका, दैत्यभेदश्च तारकः स्कन्देन यो हतः।

उस युवक ने देखकर लौटे हुए अग्रगामी पैदल सैनिकों से दिव्य आकृति वाली कन्या के विषय में सुनते ही कुतूहल से भर कर देखने के लिये उत्सुक हो घोड़े को एँड़ लगाई और शीघ्र उस लतामण्डप के समीप पहुँच गया। कुछ ही दूर पर घोड़े से उतर गया। अपने और साथियों को उसने वहीं रोक दिया, लेकिन उस सज्जन पार्श्वचर को साथ लेकर पैदल ही विनीत भाव से आया। सरस्वती के साथ सावित्री ने उन दोनों का अभिवादन किया और वनवास के योग्य फूल, फल एवं अर्घ्य आदि से उनका क्रम से आतिथ्य-सत्कार किया। दोनों पूर्ण रूप से स्थिर हुए तो वह स्वयं बैठी और कुछ ही देर ठहर कर उस दूसरे वृद्ध सज्जन से बोली—'आर्य, सहजलज्जाशील नारियों का पहले पहल बोल बैठना बड़ी धृष्टता होती है, विशेष कर तो उनका जो वन्य मृगी की भाँति मुग्ध कुलकुमारियाँ हैं। आँखें तो देखकर कृतार्थ हो गईं, पर केवल कर्णेन्द्रिय की वृत्ति वृत्तान्त सुनने के लिए कुतूहल से प्रेरित कर रही है। प्रथम दर्शन में ही सज्जन व्यक्ति उपहार के रूप में प्रणय को समर्पित करता है। प्रभावशाली विनय से अर्पित किया हुआ मन मद्य के समान अधृष्ट जन को भी वाचाल बना देता है। अत्यन्त नम्र स्वभाव वाले सज्जन में बिना यत्न के ही विश्वास अधिक हो जाता है, जैसे धनुष के अग्रभाग तक उसका गुण बढ़ जाता है। पहले कभी नहीं देखे गए फिर देखे जाने वाले विधाता के उत्कृष्ट निर्माण अत्यन्त धीर लोगों में आश्चर्य को उत्पन्न कर देते हैं। बात यह है कि इन महानुभाव का रूप त्रिभुवन को अभिभूत कर देने वाला है। देवानांप्रिय की सौजन्य से भरी यह अतिभद्रता ही मुझे बोलने के लिए तत्पर कर रही है, युवतियों में स्वभावतः होने वाली चंचलता नहीं। तो कहिए इन्होंने किस पुण्यहीन देश को अपनी विरह-व्यथा के द्वारा सूना कर दिया है। ये कहाँ जाँयगे? ये मानों दूसरे कामदेव हैं जो शिव के हुंकारजनित अहंकार को न मानकर उत्पन्न हो गया है। कौन हैं ये? बढ़ी हुई तपस्या

वाले किस पिता के अमृतवर्षी स्वभाव से ये हृदय को आह्लादित करते हैं जैसे कौस्तुभ-मणि विष्णु के हृदय को ? त्रिभुवन द्वारा नमन करने योग्य और महान् तेजस्वी को उत्पन्न करने वाली प्रभात की सन्ध्या के समान कौन इनकी जननी है ? कौन से पुण्य-वान् अक्षर इनके नाम में जुटते हैं ? आर्य के सम्बन्ध में जानने के लिए इस कुतूहल भरे हृदय के प्रश्न क्रमशः ये ही हैं।' सावित्री के इतना पूछने पर विनय प्रकट करते हुए पार्श्वचर ने उत्तर दिया—'आयुष्मती, प्रिय बोलना तो सज्जनों की कुलविद्या है। केवल तुम्हारा मुख ही नहीं, प्रत्युत हृदय भी चन्द्रमय है, क्योंकि वह अमृत के शीतल फुहारों के सदृश वचनों से आह्लादित कर रहा है। आपके सदृश लोग जो सौजन्य की जन्मभूमि हैं बड़े ही शुभकर्मों से मिलते हैं, क्योंकि वे सज्जनों के निर्माण की शिल्प-विद्या के स्वरूप हैं। ऐसे कुलीन लोगों के साथ परस्पर बातचीत करना तो दूर है इनके साथ आँखें ही मिलकर अलौकिक भूमि में पहुँचा देती हैं। तो सुनिए—यह भार्गववंश का कुलभूषण, महर्षि च्यवन का पुत्र दधीच है। इसके पिता भगवान् च्यवन पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से इन्द्र की भुजशक्ति को भी स्तम्भित कर दिया है। उनके चरण-कमल सुर-असुरों की मुकुटमणियों से अभ्यर्चित हैं। अपने तेज से उन्होंने पुलोमा नामक दैत्य को भस्म कर डाला है। ऐसे पिता के पुत्र इस दधीच की जननी का नाम सुकन्या है जो जगद्विजयी सहस्रों नृपतियों से अनुगत शर्याति की सुता, राजपुत्री एवं त्रिभुवन की कन्याओं में रत्न के समान है। देवी सुकन्या को गर्भिणी जान उसके पिता दसवें महीने में प्रसव के लिए उसे पति के पास से अपने घर ले गए। वहीं उसने चिरंजीवी दधीच को उत्पन्न किया। राजा के घर में राजीवलोचन यह चन्द्रमा के समान बांधवों को आनन्दित करता हुआ समय के साथ बढ़ा। पुत्री सुकन्या अपने पति के घर आने लगी, तब भी नाना ने नेत्र के सुखद और मन बहलाने वाले नाती को नहीं छोड़ा। इसने ननिहाल में ही समस्त विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्राप्त की। समय से इसे जवान देख और 'मेरे समान इसके पिता भी इसके मुखकमल को देखकर आनन्द का अनुभव करें' यह सोच इसके नाना ने किसी-किसी प्रकार पिता के पास भेजा है। उन्हीं सुगृहीतनामा देव शर्याति का आज्ञाकारी विकुक्षि नामक एक तुच्छ भृत्य मुझे समझें। मेरे मालिक ने पिता के पास आते हुए इसके साथ मुझे लगा दिया। वह राजकुल मेरी वंशपरम्परा द्वारा सेवित है। सम्बन्ध के पुराने हो जाने पर उत्तम लोग अपने भृत्य के प्रति कुछ लज्जा का अनुभव करते हैं। महान् लोगों की उदारता का भण्डार कभी नहीं घटता। यहाँ से दो कोस आगे सोन पार भगवान् च्यवन का निवास च्यवनाश्रम है, जो चैत्ररथ नामक कुबेर के उद्यान के सदृश है। हम दोनों की यात्रा वहीं तक है। यदि आप दोनों का हमारे ऊपर क्षणिक सौजन्य है या हृदय में किसी प्रकार की अवज्ञा नहीं, या यह जन प्रसाद को प्राप्त करने योग्य है तो हमारे प्रणय का यह कुतूहल भी उपेक्षा के योग्य नहीं।

आप दोनों का वृत्तान्त हम सुनना चाहते हैं। तो कहिए—किस वंश को आपने जन्म लेकर स्पृहणीय बनाया ? आपके समीप यह कौन हैं जो बहुत से विरोधी पदार्थों के समवाय की भाँति लग रही हैं। जैसा कि इनके बाल अन्धकार के समान सन्निहित हैं, फिर भी सूर्य के समान इनकी मूर्ति देदीप्यमान है। पुण्डरीक (व्याघ्र या श्वेत कमल) के समान इनका मुख है (फिर भी) आँखें हरिण के समान हैं। उगते हुए सूर्य की प्रभा के समान इनका अधर है (फिर भी) कुमुद के सदृश इनकी मुसकान है। मतवाले हंस के समान इनकी आवाज है (फिर भी) इनके पयोधर (स्तन या मेघ) उठे हुए हैं। कमल के समान कोमल इनके हाथ हैं (फिर भी) हिमालय की चट्टान के समान मोटे इनके नितम्ब हैं। ऊँट के समान इनकी दोनों जाँघ हैं (फिर भी) चाल धीमी चलती हैं। कुमारभाव (बाल्यकाल या कार्तिकेय का भाव) इन्होंने नहीं छोड़ा है (फिर भी) इनकी आँखों के तारक (पुतले या तारकासुर) स्नेह को व्यंजित कर रहे हैं।'

सा त्ववादीत्—'आर्य, श्रोष्यसि कालेन। भूयसो दिवसानत्र स्थातुमभिलषति नौ हृदयम्। अल्पीयांश्चायमध्वा। परिचय एव प्रकटीकरिष्यति। आर्येण न विस्मरणीयोऽयमनुषङ्गदृष्टो जनः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। दधीचस्तु नवाम्भोभरगभीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्वनलताभवनभाजो भुजंगभुजः सुधीरमुवाच—'आर्य, करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना। पश्यामस्तावत्तातम्। उत्तिष्ठ। व्रजामः' इति। तथेति च तेनाभ्यनुज्ञातः शनकैरुत्थाय कृतनमस्कृतिरुच्चचाल। तुरगारूढं च तं प्रयान्तं सरस्वती सुचिरमुत्तम्भितपक्ष्मणा निश्चलतारकेण लिखितेनेव चक्षुषा व्यलोकयत्। उत्तीर्य च शोणमचिरेणैव कालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम। गते च तस्मिन्सा तामेव दिशमालोकयन्ती सुचिरमतिष्ठत्। कृच्छ्रादिव च संजहार दृशम्।

परिचयः संस्तवः। अनुषङ्गः प्रसङ्गः। विकुक्षिप्रार्थितयापि सावित्र्या कौतुकनिवृत्तिर्मा भूदित्यात्मस्वरूपं नोक्तम्। अत एवोत्तरत्र तदनुबन्ध एवोक्तः—भूयसो दिवसानित्यादिना। स्वरूपोक्तौ च ज्ञातसरस्वतीकत्वेनापत्यजननकार्यभङ्गो भवेत्। भारती वाक्। भुजङ्गभुजो मयूरान्, भुजग इव भुजावस्येति च। उच्चचाल गन्तुं प्रवृत्तः। उत्तम्भितान्युच्छ्रितानि।

सावित्री ने कहा—'आर्य, समय पर सब मालूम हो जायगा। हम दोनों के मन में यहाँ बहुत दिनों तक अभी रहने की इच्छा है। यह रास्ता बहुत थोड़ा है। परिचय बढ़ने से सब बात खुल जायगी। इस बहाने मिले हुए इस जन को आर्य न भूलेंगे।' इतना कह वह चुप हो गयी। जल भर जाने से गम्भीर आवाज वाले नये मेघ की भाँति लता-भवन

के मयूरों को नचाते हुए धीर स्वर में दधीच बोल उठे—'आर्य, अवश्य ही आराधना करने पर आर्या प्रसन्न होंगी। तब तक हम पिता जी के दर्शन करें। उठिए, चलें।' पार्श्वचर के स्वीकार करने पर दधीच धीरे से उठे और नमस्कार करके चल दिए। घोड़े पर सवार होकर जाते हुए उन्हें सरस्वती निश्चल आँखें फाड़ कर देर तक देखती रही। सोन पार करके कुछ ही देर में दधीच च्यवनाश्रम पहुँचे। उनके चले जाने पर सरस्वती उसी दिशा को देर तक निहारती हुई बैठी रही। बड़ी कठिनाई से वह अपनी आँखें मोड़ सकी।

अथ मुहूर्तमात्रमिव स्थित्वा स्मृत्वा च तां तस्य रूपसंपदं पुनः—पुनर्व्यस्मयतास्या हृदयम्। भूयोऽपि चक्षुराचकाङ्क्ष तद्दर्शनम्। अवशेव केनाप्यनीयत तामेव दिशं दृष्टिः। अप्रहितमपि मनस्तेनेव सार्धमगात्। अजायत च नवपल्लव इव बालवनलतायाः कुतोऽप्यस्या अनुरागश्चेतसि। ततः प्रभृति च सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमनयत्। अस्तमुपयाति च प्रत्यक्पर्यस्तमण्डले लाङ्गलिकास्तबकताम्रत्विषि कमलिनीकामुके कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि सावित्रे त्रयीमये तेजसि, तरुणतरतमालश्यामले च मलिनयति व्योम व्योमव्यापिनि तिमिरसंचये, संचरत्सिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि च मन्दं मन्दं मन्दाकिनीहंस इव समुत्सर्पति शशिनि गगनतलम्, कृतसंध्याप्रणामा निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ। सावित्र्यपि कृत्वा यथाक्रियमाणं सायंतनं क्रियाकलापमुचिते शयनकाले किसलयशयनमभजत। जातनिद्रा च सुष्वाप।

कुतोऽपि कस्मादपि न ज्ञायत इत्यर्थः। मनुष्यतस्तथाविधस्तादृश्याः कथमनुराग इति। कथमेतदस्या उपपद्यत इति न वाच्यम्। यदाह मुनिः—'शापभ्रंशात्तु दिव्यानां तथा चापत्यलिप्सया। कार्यो मानुषसंयोगः शृङ्गाररससंश्रयः॥' इति। अन्यत्र—कुतः चितेर्नवपल्लवोऽनुरागहतो लतायाो जायत इत्येवमभिलाषरूपं प्रथमं दशान्तरमालभ्येत्यादिना द्वितीयचिन्तनरूपमाह। अनयत् कष्टेनात्यवाहयत्। अस्तमित्यादौ पल्लवशयने तस्थाविति संबन्धः। प्रतीच्यां पश्चिमायाम्। लाङ्गलिका फलिनी। मयूरशिखौषधिरित्यपरे, रक्तिकेत्यन्ये। कमलिनीकामुक इति सरस्वतीदयिताभिप्रायेणोक्तम्। कठोरो जरठः। सारसो लक्ष्मणः। शोणो लोहितः। शोचिर्दीप्तिः। 'ऋग्यजुःसामनामानि त्रयो वेदास्त्रयी स्मृता। वेदे च पठ्यते सैषा'। त्रय्येव विद्या तपतीति। 'कृत-' इत्यादिना 'तस्थौ' इत्यन्तेन क्रियान्तरत्यागेन वैमनस्यमावेद्यते। 'वेपते श्वसते चैव मनोरथविचिन्तनैः। प्रद्वेषेणान्यकार्याणाम-

नुस्मृतिरपीष्यते ॥' निशामुख एवेति । न पुनरुचिते शयनकाले विमुक्ताङ्गीत्यनेन निःसहाङ्गत्वमस्या दर्श्यते । तस्थाविति । न पुनर्निद्रामलभत । यथाक्रियमाणमित्यनेन च सरस्वतीतोऽस्या व्यतिरेकं दर्शयन्सरस्वत्या एवानङ्गावस्थामाह ।

अब सरस्वती का हृदय कुछ देर तक ठहर उस दधीच के रूप-लावण्य का स्मरण करके बार बार आश्चर्य से भरने लगा । बार बार उसकी आँखें दधीच के दर्शनों के लिए उत्सुक होने लगीं । मानों उसकी बेसुध नजर को कोई उसी दिशा की ओर फेर लेता था । बिना भेजे ही मन दधीच के साथ ही चला गया । सुकुमार वनलता में नये पल्लव के समान उसके चित्त में अनुराग अंकुरित होने लगा । उसी समय से अलसाई-सी, शून्य सी, निंदियाई सी उसने दिन को व्यतीत किया । जब पश्चिम में ढलते हुए मण्डल वाले, आङ्गलिका नामक फूलों के गुच्छों के समान कान्ति वाले, कमलिनियों को चाहने वाले तथा वृद्ध सारस के सिर के समान ललाई वाले सूर्य का वेदमय तेज अस्त हो रहा था, विशाल तमाल वृक्ष के समान काला, आकाशव्यापी प्रगाढ़ अंधकार आकाश को मलिन कर रहा था तथा चलती-फिरती सिद्धाङ्गनाओं के नूपुरों की ध्वनि का अनुसरण करने वाले आकाशगंगा के हंस के समान चन्द्रमा आकाश में धीरे धीरे उदित हो रहा था उस समय सायं-सन्ध्यावन्दन करके सरस्वती रात के आरम्भ होते ही अपने अङ्गों की सुध-बुध भूल पल्लव के शयन पर पड़ रही । सावित्री भी सायंकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर सोने के समय पल्लवशयन पर पहुँची और नींद आते ही सो गई ।

इतरा तु मुहुर्मुहुरङ्गवलनैर्विलुलितकिसलयशयनतला निमीलितनयनापि नालभत निद्राम् । अचिन्तयच्च—'मर्त्यलोकः खलु सर्वलोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि भवन्ति त्रिभुवनभूषणानि सकलगुणग्रामगुरूणि रत्नानि । तथा हि—तस्य मुखलावण्यप्रवाहस्य निष्यन्दबिन्दुरिन्दुः । तस्य च चक्षुषो विक्षेपाः कुमुदकुवलयकमलाकराः । तस्य चाधरमणेर्दीधितयो विकासितबन्धूकवनराजयः । तस्य चाङ्गस्य परभागोपकरणमनङ्गः । पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंषि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रैणानि, येषामसावविषयो दर्शनस्य । क्षणं नु दर्शयता च तमन्यजन्मजनितेनेव मे फलितमधर्मेण । का प्रतिपत्तिरिदानीम् ?' इति चिन्तयन्त्येव कथंकथमप्युपजातनिद्रा चिरात्क्षणमशेत । सुप्तापि च तमेव दीर्घलोचनं ददर्श । स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना चाकर्णाकृष्टकार्मुकेण मनसि निर्दयमताड्यत मकरकेतुना । प्रतिबुद्धाया मदनशराहतायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम । तथा हि—ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलाभिर्वनलताभिर-

ताडितापि वेदनामधत्त। मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिरदूषितलोचनाप्यश्रुजलं मुमोच। हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातविततैः शोणशीकरैरसिक्ताप्यार्द्रतामगात्। प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनाभिरनूढाप्यघूर्णत वनकमलिनीकल्लोलदोलाभिः। विघटमानचक्रवाकयुगलविमुष्टैरस्पृष्टापि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः। पुष्पधूलिधूसरैरदष्टापि व्यचेष्टत मधुकरकुलैः।

विलुलितं विपर्यासितम्। मर्त्यलोक इत्यादिना गुणकीर्तनम्। चतुर्थमवस्थाविशेषमाह। तदुक्तम्—'अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टासहितेक्षणैः। नास्त्यन्यः सदृशस्तेन तदेतद्गुणकीर्तनम्॥' इति। गुणा वैदग्ध्यादयः, सूत्राणि च। तद्वशेन गुरूणि बहुमानभाञ्जि। इतरत्र तु तिष्ठतु तावदेकः। गुणग्रामस्यापि गुणिरूपितेनापि दुर्वहानीति यावत्। तस्येति। पूर्वानुभूतस्य बिन्दुरिति न केवलं लावण्यप्रवाहाभिप्रायेण यावत्संनिवेशसादृश्यात्। विक्षेपाः परतः प्रेरणानि। कुमुदेत्याद्युक्तम्। शुक्लकृष्णरक्तरुचित्वाच्चक्षुषो दीधितय इति मणिशब्दाभिप्रायेण। विकसितशब्देन लौहित्यातिशयमाह। अङ्गानि विद्यन्ते यस्य तदङ्गं शरीरम्। परभागो वर्ण्यस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः। स्त्रैणानि स्त्रीसंबन्धीनि। का प्रतिपत्तिः किमनुष्ठेयम्? मदन—इत्यादिनोद्वेगरूपं पञ्चममवस्थाभेदमाह। यदुक्तम्—'आसने शयने वापि न हृष्यति न तुष्यति। नित्यमेवोत्सुका च स्यादुद्वेगस्थानमाश्रिता॥ चिन्तानिःश्वासखेदेन हृदाहाभिनयेन च। कुर्यात्तदेवमत्यन्तमुद्योगाभिनयेन च॥' इति। दश किल कामावस्थाः। तदुक्तम्—'प्रथमे त्वभिलाषः स्याद्द्वितीये चिन्तनं भवेत्। अनुस्मृतिस्तृतीये तु चतुर्थे गुणकीर्तनम्॥ उद्वेगः पञ्चमे प्रोक्तः प्रलापः षष्ठ उच्यते। उन्मादः सप्तमे चैव भवेद्व्याधिस्तथाष्टमे॥ नवमे जडता प्रोक्ता दशमे मरणं भवेत्॥' इति। अरतिर्दुःखासिका हि कामवधूप्रतिपक्षभूतेति तदागमनाभिधानम्। हंसपक्षा इव तालवृन्तं व्यजनम्। आर्द्रतां सस्नेहताम्, क्लिन्नतां च। प्रेङ्खद्दोलायमानम्। कादम्बाः कृष्णहंसाः। श्यामता शृङ्गाररसाविष्कारिवैवर्ण्यम्। यदुक्तम्—'शृङ्गारदेवो भगवान्मुरारिः संगीयते श्यामवपुर्मुरारिः। श्यामो मनाक्स्निग्धतरश्च तेन शृङ्गारशंसी मुखराग उक्तः॥' अथ श्यामता सधूमता। श्यामत्वेऽपि सधूमता इति विरोधाभासः।

लेकिन सरस्वती बार बार करवट बदलने लगी, अपने पल्लवशयन को मसल डाला, आँखें मूँद लीं, फिर भी नींद नहीं आई। सोचने लगी—'निश्चय ही मर्त्यलोक समस्त लोकों में बढ़ा-चढ़ा है, जहाँ त्रिभुवन के भूषण, समस्त गुणों के गौरव से भरे, ऐसे ऐसे रत्न पड़े हैं। जैसा कि—चन्द्रमा उसके लावण्य प्रवाह का चूआ हुआ एक बिन्दु ही तो है। उसके नेत्रों के विलास ही तो सफेद, काले और लाल कमलों के आकर हैं। उसके अधरमणि की कान्ति ही तो बन्धूक की खिली हुई वनराजि है। कामदेव

इसके अंग के शोभातिशय का साधन है। उन युवतियों की आँखें, चित्त एवं यौवन पुण्यवान् हैं जिन्होंने इसके दर्शन नहीं किए। मानों दूसरे जन्म का उत्पन्न अधर्म फलित हो गया, जो मैंने क्षण भर इसके दर्शन किए। इस समय क्या करूँ?' यह सोच ही रही थी कि किसी किसी तरह बहुत देर बाद नींद आ गई और क्षण भर सोई रही। सोने पर भी उसी दीर्घलोचन दधीच को देखा। स्वप्न में उसने दूसरी बार दधीच को देखा तो मानों कामदेव ने उसे बड़ी निर्दयता से कान तक खींच कर बाण मारा। जब काम के बाण से घायल सरस्वती को नींद खुली तब उसकी खबर लेने के लिए मानों अरति (वैराग्य) आई। तब वह पुष्पपराग से उज्ज्वल वनलताओं द्वारा ताड़ित न होकर भी वेदना अनुभव करने लगी। मंद मंद हवा से काँपते हुए फूलों की रज उसकी आँखों में न भी पड़ती तो भी वह आँसू बहाती। हंस पक्षियों के पंखों की हवा से फैलते हुए सोन (नदी) के फुहारों द्वारा सिक्त न होने पर भी (पसीने से) तर होने लगी। काले हंसों की जोड़ियों से युक्त वन की कमलिनी की दोलाओं पर न बैठी हुई भी चकराने लगी। विघटित होते हुए जोड़े चक्रवाकों के विरहजन्य निश्वास-धूम से स्पृष्ट न होने पर भी श्यामता (कालिख) को प्राप्त करने लगी। फूल की धूल में लोट पोट करने वाले भौरों से न काटे जाने पर भी वह उद्विग्न होने लगी।

अथ गणरात्रापगमे निवर्तमानस्तेनैव वर्त्मना तं देशं समागत्य तथैव निवारितपरिजनश्छत्रधारद्वितीयो विकुक्षिर्डुढौके। सरस्वती तु तं दूरादेव संमुखमागच्छन्तं प्रीत्या ससंभ्रममुत्थाय वनमृगीवोद्ग्रीवा विलोकयन्ती मार्गपरिश्रान्तमस्नपयदिव धवलितदशदिशा दृशा। कृतासनपरिग्रहं तु तं प्रीत्या सावित्री पप्रच्छ—'आर्य, कच्चित्कुशली कुमारः?' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मति, कुशली। स्मरति च भवत्योः। केवलममीषु दिवसेषु तनीयसीमिव तनुं बिभर्ति। अविज्ञायमाननिमित्तां च शून्यतामिवाधत्ते। अपि च। अन्वक्षमागमिष्यत्येव मालतीति नाम्ना बाणिनी वार्तां वो विज्ञातुम्। उच्छ्वसितं हि सा कुमारस्य' इति। तच्छ्रुत्वा पुनरपि सावित्री समभाषत—'अतिमहानुभावः खलु कुमारो येनैवमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचितिमनुबध्नाति। तस्य हि गच्छतो यदृच्छया कथमप्यंशुकमिव मार्गलतासु मानसमस्मासु मुहूर्तमासक्तमासीत्। अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः। अलसः खलु लोको यदेवं सुलभसौहार्दानि येन केनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि। सोऽयमौदार्यातिशयः कोऽपि महात्मनामितरजनदुर्लभो

येनोपकरणीकुर्वन्ति त्रिभुवनम्' इति। विकुक्षिस्तूच्चावचैरालापैः सुचिरमिव स्थित्वा यथाभिलषितं देशमयासीत्।

गणरात्रं निशाबहुत्वः। तेनैव वर्त्मनेति। अनेन तस्य यदृच्छया तदाश्रयमागमनमिति दर्शयति। प्रधानप्रकृतेः स्थवीयसस्तथाविधव्यापारविनियोगायनौचित्यात्। अत एव वक्ष्यति—'यथाभिलषितं देशमयासीत्'। इतीके इत्यनेन निमित्तपरतन्त्रतया संनिकृष्टमेवैनमालुलोकेति प्रदर्शितम्। यदुक्तम्—'पटुता धार्ष्ट्यंता इङ्गिताकारज्ञानं प्रतारणे देशकालज्ञता कार्येषु विषक्तबुद्धित्वं लघ्वी प्रतिपत्तिः सापाया च इति दूतीगुणाः'। भरतमुनिरपि—'विज्ञानगुणसंपन्ना कथिनी लिङ्गिनी तथा। रङ्गोपजीविनी चापि प्रतिपत्तिविचक्षणा॥ प्रोत्साहनैककुशलेत्यादिदूतीगुणैर्युता॥' इति। अत एवागृह्याकारतःप्रभृतीत्यादि वक्ष्यते। अन्वक्षं प्रत्यक्षम्। वाणिनी दूती। उच्छ्वसितमित्यनेनातिविस्रम्भवत्ता ख्याता। उच्छ्वसितं प्राण इति वा। यदृच्छया यथाकथंचित्। यश्च तथागच्छति यस्य निरवधानतया क्वचिदंशुकादि गलति। आभिजात्येन महाकुलीनत्वेनोपकरणीकुर्वन्त्यायततां नयन्ति। उच्चावचैः प्रकृतत्रस्वसंस्पर्शिभिः, विचित्रैरिति वा।

इस तरह कई रातें गुजर गईं। एक दिन उसी मार्ग से लौटता हुआ विकुक्षि परिजनों को बाहर रोक छत्रवाहक को साथ ले पहुँचा। सरस्वती ने दूर ही से सामने आते हुए उसे देखा और प्रेम से फड़क उठी। वह हिरनी की तरह गर्दन ऊँची उठाकर देखने लगी मानों मार्ग में थके हुए विकुक्षि को दिशाओं को धवलित करने वाली दृष्टि से स्नान कराने लगी। जब वह आकर आसन पर बैठ गया तब सावित्री ने प्रीतिपूर्वक पूछा—'आर्य, क्या कुमार दधीच कुशल से हैं?' उसने कहा—'आयुष्मती, कुमार सकुशल हैं। आप दोनों का स्मरण करते हैं। इन दिनों उनका शरीर क्षीण होता जा रहा है। पता नहीं क्यों, शून्य-शून्य से लगते हैं। और भी, मालती नाम की दूती समाचार लेकर सामने आने वाली है। कुमार का उसे प्राण ही समझना।' यह सुनकर फिर सावित्री बोली—'कुमार सचमुच बड़े ही महानुभाव हैं, जो अज्ञातजन में भी क्षण भर की देखा-देखी में ही अपना परिचय-सम्बन्ध जोड़ रहे हैं। वे जाने लगे तो उनका मन हम लोगों में क्षण भर इस तरह लग गया जैसे मार्ग की लताओं में अंशुक फँस जाता है। आपके स्वामिपुत्र दधीच में कुलीनता के साथ सौजन्य भी है। दुनिया वाले बड़े आलसी होते हैं जो सुलभ सौहार्द वाले महापुरुषों के मन को जिस किसी वस्तु से खरीदते नहीं। महापुरुषों में ही इस तरह बढ़कर उदारता होती है जो इतर लोगों में नहीं होती और जिससे वे लोग त्रिभुवन को अपने वश में कर लेते हैं।' विकुक्षि भी लम्बी बातचीत करके अपने अभिलषित देश की ओर चला गया।

अपरेद्युरुद्यति भगवति द्युमणावुद्दामद्युतावभिद्रुततारके तिरस्कृततमसि तामरसव्यासङ्गव्यसनिनि सहस्ररश्मौ शोणमुत्तीर्यायान्ती, तरलदेहप्रभावितानच्छलेनात्यच्छं सकलं शोणसलिलमिवानयन्ती, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तबकसमत्विषि सटाले महति मृगपताविव गौरी तुरंगमे स्थिता, सलीलमुरोबन्धारोपितस्य तिर्यगुत्कर्णतुरगाकर्ण्यमाननूपुरपटुरणितस्यातिबहलेन पिण्डालक्तकेन पल्लवितस्य कुङ्कुमपिञ्जरितपृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितैः प्रभाप्रवाहैरुभयतस्ताडनदोहदलोभागतानि किसलयितानि रक्ताशोकवनानीवाकर्षयन्ती, सकलजीवलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव रशनया शिञ्जानजघनस्थला, धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदीनेन कञ्चुकेन तिरोहिततनुलता, छातकञ्चुकान्तरदृश्यमानैराश्यानचन्दनधवलैरवयवैः स्वच्छसलिलाभ्यन्तरविभाव्यमानमृणालकाण्डेव सरसी, कुसुम्भरागपाटलं पुलकबन्धचित्रं चण्डातकमन्तःस्फुटं स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमादधाना, हारेणामलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रहगणशारा, शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः, कुचपूर्णकलशयोरुपरि रत्नप्रालम्बमालिकामरुणहरितकिरणकिसलयिनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवनमालिकामिव बद्धां धारयन्ती, प्रकोष्ठनिविष्टस्यैकैकस्य हाटककटकस्य मरकतमकरवेदिकासनाथस्य हरितीकृतदिगन्ताभिर्मयूखसंततिभिः स्थलकमलिनीभिरिव लक्ष्मीशङ्कयानुगम्यमाना, अतिबहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेनाधरसंपुटेन मुखशशिपीतं ससंध्यारागं तिमिरमिव वमन्ती, विकचनयनकुवलयकुतूहलानिलीयमानयालिकुलसंहत्या नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धार्धवदना, नीलीरागनिहितनीलिम्ना शिखिगलशितिना वामश्रवणाश्रयिणा दन्तपत्रेण कालमेघपल्लवेन विद्युदिव द्योतमाना, बकुलफलानुकारिणीभिस्तिसृभिर्मुक्ताभिः कल्पितेन बालिकायुगलेनाधोमुखेनालोकजलवर्षिणा सिञ्चन्तीवातिकोमले भुजलते, दक्षिणकर्णावतंसितया केतकीगर्भपलाशलेखया रजनिकरजिह्वालतयेव लावण्यलोभेन लिह्यमानकपोलतला, तमालश्यामलेन मृगमदामोदनिष्यन्दिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती, ललाटलासकस्य सीमन्तचुम्बिनश्चटुलतिलकमणेरुदञ्चता चटुलेनांशुजालेनेव रक्तांशुकेनेव कृतशिरोवगुण्ठना, पृष्ठप्रेङ्खदनादरसंयमन-

शिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावचूलिनीव चूडामणिमकरिकासनाथा, मकरकेतुपताकेव कुलदेवतेव चन्द्रमसः, पुनःसंजीवनौषधिरिव पुष्पधनुषः, वेलेव रागसागरस्य, ज्योत्स्नेव यौवनचन्द्रोदयस्य, महानदीव रतिरसामृतस्य, कुसुमोद्गतिरिव सुरततरोः, बालविद्येव वैदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य, बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानाम्, मनस्वितेव महानुभावतायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया पाटलाधरया कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया कमलकोमलकरया बकुलसुरभिनिःश्वसितया चम्पकावदातदेहया कुसुममय्येव ताम्बूलकरण्डवाहिन्या महाप्रमाणाश्वतरारूढयानुगम्यमाना, कतिपयप्रतिचारकपरिकरा मालती समदृश्यत। दूरादेव च दधीचप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवोत्कलिकाभिः, आलिङ्गितेवोत्कण्ठया, अन्तःप्रवेशितेव हृदयेन, स्नापितेवानन्दाश्रुभिः, विलिप्तेव स्मितेन, वीजितेवोच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा, अभ्यर्चितेव वदनपुण्डरीकेण, सखीकृतेवाशया सविधमुपययौ। अवतीर्य च दूरादेवानतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्। आलिङ्गिता च ताभ्यां सविनयमुपाविशत्। सप्रश्रयं ताभ्यां संभाषिता च पुण्यभाजनमात्मानममन्यत। अकथयच्च दधीचसंदिष्टं शिरसि निहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्। अगृह्णाच्चाकारतः अभृत्यग्राम्यतया तैस्तैरतिपेशलैरालापैः सावित्रीसरस्वत्योर्मनसी।

अपरं रित्यादावीदृशी मालती समदृश्यतेति संबन्धः। दिवि मणिरिव द्युमणिः। वियद्भूषणं सूर्यः। अभिद्रुता न्यक्कृता। तामरसं पद्मम्। व्यासो विकासः। अतिमुक्तकं पुष्पभेदः। केचिन्मालतीलताकुसुममाहुः। सटास्ति यस्येति। 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्'। गौरी गौराङ्गी, पार्वती च। सजलतुरङ्गाङ्गस्पर्शपरिजिहीर्षयोरोवध्रेत्याद्युक्तम्। प्रियमधुरशब्दत्वादश्वानामाकर्ण्यमानेत्युक्तम्। पिण्डालक्तकः कथितोऽलक्तकरसः। दोहदोऽभिलाषः। वाद्यविशेषानुगताङ्कयघोषणा। रशना मेखला। शिञ्जानं शब्दायमानम्। निर्मोकः सर्पत्वक्। आप्रपदं प्राप्नोत्याप्रपदीनः पादं यावत्। छातस्तनुः। कुसुम्भं पद्मकम्। नानावर्णबिन्दुन्यासः पुलकबन्धः, मणिविशेषाश्च पुलकाः। चण्डातकमर्धोरुकम्। कुचावेव कस्यापि पुण्यवत इवेति वक्ष्यमाणाभिप्रायेण पूर्णकलशौ। कस्यापीत्यलौकिकस्य। वनमाला पत्रपुष्पयोजिता स्रक्। सापि पूर्णकलशयोरुपरि बध्यते। प्रकोष्ठः प्रकुञ्चनकः। वेदिका रत्न-

१. तुरगाद्दूरादेवावनतेन।

प्रतिष्ठापीठिका । बहुलं पौनःपुन्येन कृतम् । कृष्णिका कृष्णलेखा । मुखमेव तमःपारप्रतिपिपादयिषया शशी । ताम्बूलकारणत्वेन लौहित्यमेव सम्भवतीति ससन्ध्यारागमित्युक्तम् । नीलयोषधिभेदः । शितिर्नीलः । पल्लवः पिण्डः । बालिका कर्णोपवेधेऽलंकारः । अधोमुखेन वटादिना जलवर्षिणा लता सिच्यते । मृगमदः कस्तूरिका । तिलकबिन्दुः परिवर्तुलस्तिलकः । लासको नर्तकः । 'सुवर्ण-शृङ्खलाबद्धो नानारत्नौघमण्डितः । ललाटलम्ब्यलंकारश्चटुलातिलको मतः ॥' अव-चूलं चिह्नम् । मकरिका मकराकारं रूपम् । वेला यथा सागरं क्षोभयति तद्वदेवेयं रागम् । क्षोभेन यथा सागरो दुरुत्तर एवमेतयापि रागः । यथा ज्योत्स्नया विना चन्द्रोदयो भवन्नपि न क्वापि विलसन्विभाव्यते तथैतया विना यौवनं सविलासम-न्यत्र न दृश्यते । रतिप्रधानो रसः शृङ्गार एव । माधुर्यातिशययोगित्वात्प्रकृष्टत्वाच्च । ह्लादनममृतम् । यदुक्तम्—'शृङ्गार एव परमः परः प्रह्लादनो रसः' इति । संप्रयोगो रतं रहःशयनं मोहनमिति पर्यायाः । बालविद्या न कंचन मुञ्चति, तद्वदेष वैद-ग्ध्यम् । कौमुदीति । तथाविधकान्त्यतिशयसंभवात् । ध्रियते येन धृतिः । अस्यां सत्यां धैर्यमपि । यद्वा—धृतिः प्रवेशरक्षणम् । यथा प्रविशन्कश्चिद्राजनिकटं ध्रियते केनचित्तथा धैर्यं तावत्प्रसरति । यावदेषा न दृष्टा एतस्यां दृष्टायां सर्वं धैर्यशून्या इति । 'समानविद्यावित्तशीलबुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठीमन-स्विता' इत्यनेनैतस्या महानुभावताया व्यभिचारित्वमुच्यते । यस्माद्यत्र मनस्विता तत्र महाशयत्वमेवावश्यं सम्भावयतीति स्थितमेव । तृप्तिरिवेति । यथा कश्चित्संजा-ततृप्तिर्नान्यत्किंचित्पुनरपेक्षते तद्वदासादितमालतीकं तारुण्यम् । एतदाश्रयणेन परिपूर्णवैषयिकोपभोगप्राप्तिस्तारुण्यस्येत्यर्थः । कुसुममय्येवेति । कुवलयादिभिर्न-यनादीनां विधानम् । तरुणोऽश्वोऽश्वतरः । 'वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वम्' इति तनुत्वे तरप् । अत्र च व्याख्यातम्—'तनुत्वं द्वितीयवयःप्राप्तिः' इति । अश्वतरो वा गर्दभेनाश्वायां जातः । मालतीति । एवं दधीचपरिवारभूतया मालत्या गुणवर्णन-द्वारेण सरस्वत्या एव निःसामान्यगुणातिशयो ध्वन्यते । लुण्ठितेवेति । वक्ष्यमाणं प्रार्थनादि । तया मनोरथैरुत्प्रेक्ष्य स्वीकृतमित्यतस्तैर्लुण्ठितेवेत्युक्तम् । लुण्ठनं च पाथेयाभिवितरणमेवमन्यत् । उत्कलिका हल्लहिका । सविधं समीपम् । अपि च यः स्निग्धो दूरात्सविधमायाति, तस्य लुण्ठनादिसर्वमर्चनावसानं क्रियत इति ध्वनिः । पेशलैर्हृद्यैः ।

अगले दिन आकाश के रत्न, प्रखर किरणों वाले, तारों को भगा देने और अंधकार को हटा देने वाले, कमलों को विकसित करने के शौकीन भगवान सूर्य के उदित होते ही सोन पार करके आती हुई मालती दिखाई पड़ी । अपने शरीर की तरल प्रभा से सोन के जल को वह और भी निर्मल कर रही थी । वह बड़े तुरंगम पर सवार थी, जिसका वर्ण माधवी के फूल की भाँति था, और उसकी गर्दन पर झालर जैसी अयाल थी । मालती

विशाल सिंह पर आरूढ़ गौरी की भाँति लग रही थी। लीला से उसने अपने चरण रकाब पर रखे थे; जब पैर के नूपुर बजते तो उसका घोड़ा कान खड़े करके गर्दन टेढ़ी किए सुनता। आलते से उसके पैर रञ्जित थे। तलवे में कुंकुम लगा हुआ था। उसके पैरों की टहाका लाल कान्ति दोनों ओर फैल रही थी, मानों वह ताड़न की अभिलाषा से रक्ताशोक के हरे-भरे वनों को खींचती आ रही थी। उसके कटि प्रदेश में करधनी बज रही थी, मानों वह जीवलोक के सारे लोगों के मन को हठपूर्वक हरने के लिए घोषणा कर रही हो। उसका सारा शरीर धुले सफेद रेशम के पैरों तक लटकते हुए झीने, साँप की केंचुली की तरह हल्के और बारीक कंचुक से ढँका हुआ था। झीने कंचुक के भीतर चन्दन के सूख जाने से उसके उज्ज्वल अंग दिखाई पड़ रहे थे जैसे सरसी के निर्मल जल के भीतर मृणाल की डंठल झलकती दिखाई देती है। झीने कंचुक के नीचे कुसुंभी रंग का लाल लहँगा झलक रहा था जिस पर रंग-बिरंगी बुंदकियाँ पड़ी हुई थीं, मानों स्फटिक की जड़ाव में मोतियाँ जड़ी हों। आँवले-जैसे बड़े बड़े मोतियों का हार गले में लटक रहा था, वह तारों भरे शरत्काल के आकाश जैसी लग रही थी जिसमें कहीं कहीं सफेद मेघ के टुकड़े घिरे रहते हैं। उसके स्तन रूपी कलश पर रत्नों की प्रालम्ब माला लटक रही थी, मानों किसी पुण्यवान् के हृदय में प्रवेश करने के स्वागत में मङ्गलार्थ घट में वनमाला बँधी हो। उसके एक हाथ की कलाई में सोने का कड़ा था जिसके गाहामुखी सिरों पर पन्ने जड़े हुए थे, उनकी हरित किरणें दिशाओं में फैल रही थीं, मानों स्थल-कमलिनियाँ उसे लक्ष्मी समझ कर पीछे लग गई थीं। उसके अधर पर पान चबाने से काली रेखा पड़ गई थी, मानों उसका मुखचन्द्र पिए हुए संध्याराग के सहित अन्धकार को उगल रहा हो। भौंरे उसके नेत्रों को खिले हुए कुवलय समझ कर छा रहे थे मानों उसका मुख नीले अंशुक की नकाब से ढँका हुआ था। उसके बायें कान का दन्तपत्र नीली राग द्वारा रँग कर नीला कर दिया गया था, उसका वर्ण मयूर की गर्दन की तरह था। मानों विस्तृत नीले मेघ में बिजली के समान मालती शोभ रही थी। मौलसिरी के फल जैसे लम्बोतरे तीन मोती वाली उसके कानों में एक एक बाली थी, जो नीचे लटक कर अपने आलोक के जल से भुज रूपी लता को सींच रही थी। उसके दाहिने कान पर केतकी का नुकीला टौंसा लगा हुआ था, मानों उसके लावण्य का लोभी चन्द्र अपनी जीभ से उसके कपोल को चाट रहा था। माथे पर कस्तूरी का तिलकबिन्दु तमाल की भाँति श्याम था। कामदेव का सर्वस्व होने के कारण उसके मुँह पर तिलक रूप में जैसे राजकीय मोहर लगी थी। ललाट पर सामने माँग से लटकती हुई चट्ठला तिलक नामक मणि ऊपर उठती हुई किरणों के रूप में मानों उसके सिर पर लाल अंशुक की पगड़ी बँधी थी। उसके बालों का जूड़ा पीठ पर ठीक से न बाँधने के कारण ढीला होकर लटक रहा था। नीले कमल के समान चूड़ामणि मकरिका उसके सामने केशों में लगी हुई थी। वह कामदेव की पताका, चन्द्रमा

की कुल देवता, काम को फिर से जीवित कर देने वाली संजीवन बूटी, प्रेम के समुद्र की तटी, यौवन रूपी चन्द्रोदय की चाँदनी, रति रस के अमृत की महानदी, सुरत वृक्ष की पुष्पोद्गति, वैदग्ध्य की बाल विद्या, कान्ति की कौमुदी, धैर्य की धृति, गौरव की बड़ी शाला, विनय की बीजभूमि, गुणों की गोष्ठी, महानुभावता की मनस्विता और जवानी की तृप्ति थी। उसके साथ एक बड़े अश्व पर बैठी हुई उसकी ताम्बूलकरंकवाहिनी आ रही थी जिसके अंग-अंग मानों फूल से बने थे, क्योंकि कुवलय की माला-सी बड़ी-बड़ी आँखें, पाटल पुष्प-सा अधर, कुन्द की कलियों जैसे दाँत, शिरीषमाला जैसी सुकुमार दोनों भुजाएँ, कमल जैसे हाथ, मौलसिरी की गन्ध जैसी सरस और चम्पा के समान दमकती देह थी। सरस्वती ने दधीच के प्रेम से मालती को दूर से ही मानों मनोरथ द्वारा लूट लिया, कुतूहल से खींच लिया, मन की तरङ्गों से अगवानी की, उत्कण्ठा से आलिङ्गन किया, हृदय के भीतर रख लिया, आनन्द के आँसू से नहला दिया, स्मित के चन्दन से चर्चित किया, उच्छ्वसितों द्वारा पंखे झलने लगी, आँखों से ढँक दिया, मुख के कमल से पूजा की और आशा से उसे अपनी सखी बना लिया। तब मालती आई और आकर दूर ही से झुककर प्रणाम किया। दोनों से वह अँकवार कर मिली और तब विनयपूर्वक बैठी। सरस्वती ने भी मालती से जब विनयपूर्वक सम्भाषण किया तो उसने अपने आप को धन्यभाग समझा। मालती ने दधीच के सन्देश रूप में 'सिर से हाथ टेककर प्रणाम' को कहा। सावित्री और सरस्वती के मन को उसने अपने अग्राम्य आकार और अतिमधुर बातचीत से हर लिया।

क्रमेण चातीते मध्यंदिनसमये शोणमवतीर्णायां सावित्र्यां स्नातुमुत्सारितपरिजना साकूतेव मालती कुसुमस्रस्तरशायिनीं समुपसृत्य सरस्वतीमावभाषे—'देवि, विज्ञाप्यं नः किंचिदस्ति रहसि। यतो मुहूर्तमवधानदानेन प्रसादं क्रियमाणमिच्छामि' इति। सरस्वती तु दधीचसंदेशाशङ्किनी किं वक्ष्यतीति स्तननिहितवामकरनखरकिरणदन्तुरितमुद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरमिव हृदयमुत्तरीयदुकूलवल्कलैकदेशेन संछादयन्ती, गलतावतंसपल्लवेन श्रोतुं श्रवणेनेव कुतूहलाद्धावमानेनाविरतश्वाससंदोहदोलायितां जीविताशामिव समासन्नतरुणतरुलतामवलम्बमाना, समुत्फुल्लस्य मुखशशिनो लावण्यप्रवाहेण शृङ्गाररसेनेवाप्लावयन्ती सकलं जीवलोकम्, शयनकुसुमपरिमललग्नैर्मधुकरकदम्बकैर्मदनानलदाहश्यामलैर्मनोरथैरिव निर्गत्य मूर्तैरुत्क्षिप्यमाणा, कुसुमशयनीयात्स्मरशरसंज्वरिणी, मन्दं मन्दमुदगात्। 'उपांशु कथय' इति कपोलतलप्रतिबिम्बितां लज्जया कर्णमूलमिव मालतीं प्रवेशयन्ती मधुरया गिरा सुधीरमुवाच—'सखि

मालती, किमर्थमेवमभिदधासि ? काहमवधानदानस्य शरीरस्य प्राणानां वा ? सर्वस्याप्रार्थितोऽपि प्रभवत्येवातिवेलं चक्षुष्यो जनः। सा न काचिद्या न भवसि मे स्वसा सखी प्रणयिनी प्राणसमा च। नियुज्यतां यावतः कार्यस्य क्षमं क्षोदीयसो गरीयसो वा शरीरकमिदम्। अनवस्करमाश्रवं मे त्वयि हृदयम्। प्रीत्या प्रतिसरा विधेयास्मि ते। व्यावृणु वरवर्णिनि, विवक्षितम्' इति। सा त्ववादीत्—'देवि, जानास्येव माधुर्यं विषयाणाम्, लोलुपतां चेन्द्रियग्रामस्य, उन्मादितां च नवयौवनस्य, पारिप्लवतां च मनसः। प्रख्यातैव मन्मथस्य दुर्निवारता। अतो न मामुपालम्भेनोपस्थातुमर्हसि। न च बालिशता चपलता चारणता वा वाचालतायाः कारणम्। न किंचिन्न कारयत्यसाधारणा स्वामिभक्तिः। सा त्वं देवि, यदैव दृष्टासि देवेन तत एवारभ्यास्य कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः, मलयमरुदुच्छ्वासहेतुः, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु, संतापः परमसुहृत्, प्रजागर आप्तः, मनोरथाः सर्वगताः, निःश्वासा विग्रहाग्रेसराः, मृत्युः पार्श्ववर्ती, रणरणकः संचारकः, संकल्पा बुद्ध्युपदेशवृद्धाः। किंच विज्ञापयामि। अनुरूपो देव इत्यात्मसंभावना, शीलवानिति प्रक्रमविरुद्धम्, धीर इत्यवस्थाविपरीतम्, सुभग इति त्वदायत्तम्, स्थिरप्रीतिरिति निपुणोपक्षेपः, जानाति सेवितुमित्यस्वामिभावोचितम्, इच्छति दासभावमामरणात्कर्तुमिति धूर्तालापः, भवनस्वामिनी भवेत्युपप्रलोभनम्, पुण्यभागिनी भजति भर्तारं तादृशमिति स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य मृत्युरित्यप्रियम्, अगुणज्ञासीत्यधिक्षेपः, स्वप्नेऽप्यस्य बहुशः कृतप्रसादासीत्यसाक्षिकम्, प्राणरक्षार्थमर्थयत इति कातरता, तत्र गम्यतामित्याज्ञा, वारितोऽपि बलादागच्छतीति परिभवः। तदेवमगोचरे गिरामसीति श्रुत्वा देवी प्रमाणम्' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्।

आकूतमभिप्रायः। रहस्येकान्ते। सरस्वतीत्यादौ। सरस्वती कुसुमशयनीयादुद्वृगादुदतिष्ठदिति संबन्धः। अवतंसपल्लवेन गलतेतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। संदोहः समूहः। संज्वरः संतापः। उपांश्वनुच्चम्। अतिवेलमतिमात्रम्। 'अतिपेशलः' इति पाठे पेशलः। सुन्दरः। चक्षुष्योऽनुकूलः। त्वमिव व्यक्तम्। चक्षुष्य इति भङ्ग्या दृधीच इति ध्वनति। स्वसा भगिनी। प्रणयिनी विश्वस्ता। अतिशयेन क्षुद्रमल्पं क्षोदीयः। 'ज्ञेयं गुह्यमवस्करम्'। आश्रवं वचसि स्थितम्। प्रतिसरानुकूला। विधेया

वश्या । व्याकृणु प्रकटय । वरवर्णिनि वरारोहे । लोलुपतां साभिलाषत्वम् । 'चलार्थकौ निगद्येते पारिप्लवपरिप्लवौ' । बालिशोऽज्ञः । चारणता धूर्तता । असाधारणानन्यसदृशी । देवी देवेनेति च परस्परसमगुणयोगित्वमभिव्यनक्ति । गुरुर्गरीयान्, उपदेष्टा वा । तद्वशवर्तित्वात् । यश्च देवस्तस्य गुरुराचार्यः कश्चिदवश्यं सम्भवति । जीवितस्येश्वरः स्वामी जीवितेशः । शिशिरतया मदनदाहप्रशमनहेतुत्वात् । अमृतमयत्वेन च जीवितसन्धारणशक्तत्वात् । अथ च जीवितेशो मृत्युः । चन्द्रादयो ह्यापातत एव तापं शमयन्ति, अनवरतं सेव्यमानाः पुनः कामोद्दीपकत्वेन मृत्युं दिशन्ति । राजपक्षे जीवितेशः कश्चित्पुरोहितप्रायः । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तत्र हेतुः । अथ च श्वासोत्क्रान्तौ कारणम्, इतरत्र सचिवप्राया विश्वसनीयाः । आधयश्चित्तपीडाः । अत एवान्तरङ्गमन्तःशरीरं यानि स्थानानि तेषु, इतरत्रान्तरङ्गान्तर्वंशिकस्तत्स्थानेषु विश्वसनीयजनाधिकारेषु । परं प्रकृष्टम् । असुहृरोऽमित्रो वा । अन्यत्र—परमसुहृन्मित्रं च । आप्तः प्राप्तो बान्धवप्रायः कश्चित । सर्वंगताश्चारा अपि संस्थाख्याः । विग्रहो विरोधः, देहश्च । मृत्युरिति । स्वदनङ्गीकारेण निश्चितं म्रियते । राज्ञोऽपि पार्श्वे मृत्युस्तिष्ठत्येव । रणरणको दुःखमरतिकृतम् । अत एव संचारक एकत्र नरे सम्भवदितरत्र संचारयति, चरितं वस्तु यः प्रापयते सः । द्विविधा हि चाराः—संस्थाः, संचारकाश्च । वृद्धा महान्तः, स्थविराश्च । अनुरूप इत्यादिनेदमिदं तत्रास्तीति वक्रोक्त्या सातिशयं मालती वैदग्ध्येनाह । प्रक्रम आरम्भः । निपुणोपक्षेपो बुद्धिमत्प्रक्रमः । धूर्तालापः प्रतारणावचनम् । यागिन इति । भवत्येवेत्यर्थात् ।

बातचीत में दिन चढ़ गया । तब सावित्री उधर शोण में स्नान करने उतरी । इधर मौका पाकर मालती परिजनों को वहाँ से अलग करके फूल के बिस्तर पर लेटी हुई सरस्वती के पास आकर बोली—'देवि, एकान्त में कुछ मुझे आपको सूचित करना है, इसलिए चाहती हूँ कि क्षणभर आप प्रसन्नता से ध्यान देकर सुनें ।' दधीच के संदेश की आशंका से 'न मालूम क्या कहेगी' सरस्वती यह सोचने लगी । छाती पर रखे हुए उसके बायें हाथ के नख की किरणें ऐसी लग रही थीं मानों कुतूहल का अंकुर हृदय से निकल रहा हो । वह ऐसे हृदय को दुकूल वल्कल के अँचरे के खूँट से ढँक रही थी । कान में लगा हुआ पल्लव गिरने लगा, मानों उसका कान ही सुनने के कुतूहल से दौड़ पड़ा हो । निरन्तर साँस के झूले पर बैठी हुई जीविताशा को समीप के तरुण वृक्ष पर मानों अवलम्बित करने के लिए सहारा ले रही थी । खिलखिलाए हुए मुखचन्द्र के लावण्य की धारा से शृङ्गार रस के रूप में प्रवाहित करके मानों समस्त जीवलोक को भरने लगी । शय्या के फूल के रस पीने में लगे हुए, मदनाग्नि से जले उसके मनोरथ के रूप में श्यामवर्ण वाले भौंरों ने उसे झटका दिया और कामज्वर से पीड़ित वह अपने

पुष्पशयन से धीरे धीरे उठी। 'धीरे बोल' यह कहती हुई सरस्वती अपने कपोल पर प्रतिबिम्बित मालती को लज्जा से मानों अपने कानों में पहुँचाती हुई मधुर आवाज से धीरतापूर्वक बोली—'सखी मालती, कैसी बात कर रही है? मैं क्या अवधान देकर सुनूँ? शरीर और प्राण पर भी मेरा वश नहीं। प्रार्थना के बिना ही प्रियजन का प्रभुत्व सब पर व्याप्त हो रहा है। तू तो मेरी सब कुछ है, बहन तू, सखी तू, प्रणयिनी तू, और प्राणसमा भी तू। छोटे-बड़े किसी योग्य काम के लिए इस शरीर को नियुक्त कर। मेरा हृदय तेरे प्रति निर्मल और बात पर अटल रहने वाला है। तू प्रेम से मुझे अनुकूल और अपने वश में कर ले। री मालती, कह, क्या कहना चाहती है?' वह बोली—'देवि, तू जानती ही है कि विषय मधुर लगते हैं, इन्द्रियाँ लोलुप होती हैं, नई जवानी मतवाली होती है, मन चञ्चल रहता है। काम को रोकना कठिन है यह बात प्रसिद्ध ही है। तो मुझे तू उपालम्भ न देना। मेरी इस वाचालता का कारण मूर्खता, चपलता या धूर्तता नहीं है। स्वामी की भक्ति क्या नहीं कराती? जब से तुम्हें उन्होंने देखा है तभी से कामदेव उनका आचार्य बन बैठा है, चन्द्रमा उनके प्राणों का अधिपति हो गया, मलयानिल उनके उच्छ्वास का कारण बन गया, मन की व्यथाएँ अन्तरंग बन गईं, सन्ताप परममित्र बन गया, जागरण आत्मीय हो गया, मनोरथ अव्यवस्थित हो गए, निश्वास विरह के आगे चलने लगे, मृत्यु पार्श्वचर हो गई, मानसिक दुःख ही सचारक बने, संकल्प ही बुद्धि के उपदेशक वृद्ध बने। और क्या कहूँ? अगर कहती हूँ 'देव दधीच सुयोग्य हैं, तो अपने सम्मान की बात होती है; 'वे सुशील हैं' तो बात प्रसंग के विरुद्ध होती है; 'धीर हैं' यह बात मदनावस्था से विपरीत है, 'सुभग हैं' यह तो तुम कह सकती हो; 'उनकी प्रीति स्थिर है' यह चतुरता की बात होती है; 'सेवा करना वे जानते हैं' यह कहना स्वामी के लिए उचित नहीं; 'मरने तक तुम्हारी दासता चाहते हैं' यह प्रलोभन हुआ; 'धन्यभाग नारी ही ऐसे पति को प्राप्त करती है' यह स्वामी के प्रति मेरा पक्षपात करना है; 'तू उसकी मृत्यु है' यह बात अप्रिय होती है; 'तू गुणों को नहीं समझती' यह निन्दा की बात होती है; 'स्वप्न में भी तुमने इस पर बहुत बार प्रसन्नता की' इस बात में कोई साक्षी नहीं; 'अपने प्राणों की भीख माँगता है' यह कातरता है; 'वहाँ जाओ' यह आज्ञा होती है; 'रोकने पर भी हठपूर्वक आता है' यह अनादर की बात है। इस प्रकार तुमसे मैं कुछ नहीं कह पाती। बस मुझे यही कहना है।' यह कहकर मालती चुप हो गई।

अथ सरस्वती प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा प्रत्यवादीत्—'अयि, न शक्नोमि बहु भाषितुम्। एषास्मि ते स्मितवादिनि वचसि स्थिता। गृह्यन्ताममी प्राणाः' इति। मालती तु 'देवि, यदाज्ञापयसि, अतिप्रसादाय' इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण ततार शोणम्।

अगाच्च दधीचमानेतुं च्यवनाश्रमपदम्। इतरा तु सखीस्नेहेन सावित्रीमपि विदितवृत्तान्तामकरोत्। उत्कण्ठाभारभृता च ताम्यता चेतसा कल्पायितं कथंकथमपि दिवसशेषमनैषीत्, अस्तमुपगते च भगवति गभस्तिमति, स्तिमिततरमवतरति तमसि, प्रहसितामिव सितां दिशं पौरंदरीं दरीमिव केसरिणि मुञ्चति चन्द्रमसि सरस्वती शुचिनि चीनांशुकसुकुमारतरे तरङ्गिणि दुगूलकोमलशयने इव शोणसैकते समुपविष्टा स्वप्रकृतप्रार्थना पादपतनलग्नां दधीचचरणनखचन्द्रिकामिव ललाटिकां दधाना, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बितेन 'चारुहासिनि, अयमसावाहृतो हृदयदयितो जनः' इति श्रवणसमीपवर्तिना निवेद्यमानमदनसंदेशेवेन्दुना, विकीर्यमाणनखकिरणचक्रवालेन वालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव करेण वीजयन्ती स्वेदिनं कपोलपट्टम्, 'अत्र दधीचादृते न केनचित्प्रवेष्टव्यम्' इति तिरश्चीनं चित्तभुवा पातितां विलासवेत्रलतामिव बालमृणालिकामधिस्तनं स्तनयन्ती कथमपि हृदयेन वहन्ती प्रतिपालयामास। आसीच्चास्या मनसि—'अहमपि नाम सरस्वती यत्रामुना मनोजन्मना जानत्येव परवशीकृता। तत्र का गणनेतरासु तपस्विनीष्वतितरलासु तरुणीषु' इति।

प्रजविनेति साभिप्रायम्। अस्तमित्यादौ सरस्वती प्रतिपालयामासेति संबन्धः। गभस्तिमान्रविः। पौरंदर्यैन्द्री। दरी गुहा। चीनेत्यादि सैकतविशेषणम्। उपमानस्य तु दुगूलकोमल इत्युक्तम्। तरङ्गिणी प्रतिदिनं क्षीयमाणेन वारिणा कृतलेखे भङ्गियुक्ते च। चन्द्रिका कान्तिरत्र। ललाटालंकारो ललाटिका। चक्रवालं समूहः। बालव्यजनं चामरम्। स्तनमध्ये प्रवेशाभावात्तिरश्चीनमित्युक्तम्। यश्च वेत्री प्रवेशनिषेधननिमित्तं वेत्रलतां पातयति स तिरश्चीनः। स्तनयोरधिस्तनम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। कुचपृष्ठ इत्यर्थः। स्तनयन्ती कलयन्ती। स्तनिः शब्दार्थश्चौरादिकः। 'स्तनन्ती' इति वा पाठः। तपस्विनीषु वराकीषु।

तब सरस्वती उसे प्रसन्नता से घूर कर देखती हुई बोली—'सखी मालती, मैं बहुत बात नहीं कर सकती। मैं तेरी बात मान जाती हूं। मेरे प्राणों को तू ग्रहण कर।' मालती ने कहा—'देवि, आपकी प्रसन्नता के लिए आज्ञा शिरोधार्य है।' मालती यह कह और अपने तेज घोड़े पर चढ़ सोन के उस पार चली गई और दधीच को लाने के लिए च्यवनाश्रम पहुँची। सरस्वती ने इस वृत्तान्त को सखी के स्नेह से सावित्री को भी सुना दिया। चित्त में उत्सुकता का बोझ लिए किसी-किसी प्रकार खिन्न होकर दिन को व्यतीत किया।

जब भगवान् सूर्य अस्त हो गए, धीरे धीरे अन्धकार भी उतरने लगा और चन्द्रमा जैसे सिंह गुफा से निकलता है वैसे ही हँसती हुई उज्ज्वल पूर्व दिशा को छोड़ने लगा, तब सरस्वती पवित्र चीनांशुक के समान कोमल, और तरंगों के चिन्ह वाली मानों चादर से युक्त कोमल शय्या के सदृश सोन की रेत पर आकर बैठी और प्रतीक्षा करने लगी। वह ललाट का आभूषण धारण कर रही थी, मानों वह स्वप्न में प्रार्थना करने के लिए पैरों पर गिरने से दधीच के नखों की ज्योत्स्ना हो। उसके गालों के आइने में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित हो रहा था, मानों वह उसके कान के पास आकर काम का यह संदेश उसे सुना रहा था कि 'हे चारुहासिनी, देख, मैंने तेरे हृदय दयित दधीच को तेरे पास पहुंचा दिया।' हाथ के नखों की किरणें चारों ओर फैल रही थीं, मानों उसने चन्द्र की कलाओं को ही चंवर बना दिया हो, ऐसे हाथ को वह पसीने से तर अपने गालों पर झल रही थी वह अपने स्तनों पर किसी प्रकार बाल मृणालिकाओं को धारण किए थी। 'यहाँ दधीच के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रवेश न करे' इसलिए काम ने मानों अपनी वेत्रलता वहाँ छोड़ दी थी। उसने मन में सोचा—'सरस्वती होकर भी मैं जब इस काम द्वारा सब कुछ समझते हुए भी परवश कर दी गई, तो उन बेचारी अतिचपल स्वभाव वाली तरुण नारियों की क्या गणना ?'

आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवाहः, हंस इव कृतमृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः, मलयानिल इवाहितसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः, कृष्यमाण इव कृतकरकचग्रहेण ग्रहपतिना, प्रेर्यमाण इव कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण दक्षिणानिलेन, उह्यमान इवोत्कलिकाबहुलेन रतिरसेन, परिमलसंपातिना मधुपपटलेन पटेनेव नीलेनाच्छादिताङ्गयष्टिः, अन्तःस्फुरता मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन प्रतिमेन्दुना प्रथमसमागमविलासविलक्षस्मितेनेव धवलीक्रियमाणैककपोलोदरो मालतीद्वितीयो दधीचः। आगत्य च हृदयगतदयितानूपुररवविमिश्रयेव हंसगद्गदया गिरा कृतसंभाषणो यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथा विदग्धताध्यापयति, यथानुरागः शिक्षयति, तथा तामभिरामां रामग्रमद्मयत्। उपजातविस्रम्भा चात्मानमकथयदस्य सरस्वती। तेन तु सार्धमेकदिवसमिव संवत्सरमधिकमनयत्।

आजगामेत्यादौ आजगामेति सम्बन्धः। सुरभिगन्धवाहो वातः सुरभिगन्धं च यो वहति। धृतिर्धारणम्, प्राणयात्रा च। घनः। सरसं सान्द्रं यच्चन्दनं तेन धवलया तनुलतयाहितत्रप उत्कम्पः कामधर्मो यस्य। अन्यत्र–चन्दनांश्च धवांश्च

क्लान्ति श्रयन्ति यास्तन्व्यो लतास्तासामाहित उत्कम्पः कम्पनं येनेति। कृष्यमाण इत्युद्दीपनकारणत्वात्। करा रश्मयः, हस्तश्च करः। हस्तस्य कर्षणं समुचितम्। ग्रहपतिश्चन्द्रः। प्रेर्यमाण इति। अनिलस्योचितमेतत्कर्म। उह्यमान इति। जलस्योचितमेतत्। उत्कलिका रुहरुहिका, ऊर्मयश्च। रसोऽभिलाषः, जलं च। परिमल आमोदः। पटलं समूहः। प्रतिमा प्रातिच्छन्दकम्। यथा मन्मथ इति। मन्मथस्य प्रभवनशीलत्वेनाज्ञादानमुचितम्। एवं सर्वत्रोपदिशतीति। इत्थमित्थं वर्तस्वेत्युपदेशः। देवताविषयं सम्भोगशृङ्गारवर्णनमनुचितमिति न तत्र विस्तरः प्रवर्तते। कुमारीत्वे च गान्धर्वविवाहो विस्तरेण न तथा वर्णितः शापनिर्वाहणमात्रपरत्वादिति। वृत्तस्यान्यथा निजभर्तृत्यागो दोषावहः किमर्थं कृत इत्यादिकाः कुविकल्पा उत्पद्येरन्निति।

तब वसन्त के समान सुगन्धि से भरे हुए, हंस के समान मृणाल धारण किए हुए, मयूर के समान घन (दृढ़ या मेघ में) प्रीति करने वाले, मलयानिल के समान सरस चन्दन के लेप से उज्ज्वल काँपते हुए शरीर वाले दधीच मालती के साथ आए। मानों चन्द्र उन्हें किरण रूपी हाथों से बाल पकड़ कर खींच लाया हो। काम को उद्दीत करने वाले दक्षिणानिल ने मानों उन्हें प्रेरित किया हो। अभिलाषाओं की तरंगों से भरा रतिरस मानों उन्हें ढो लाया हो। सुगन्ध पर लुभाते हुए भौंरे उन पर छा रहे थे, मानों उनको अङ्ग नीले वस्त्र से ढँक रहे हों। उनके एक कपोल के भीतर चन्द्र प्रतिबिम्बित होकर चमक रहा था, मानों मतवाले मदन रूपी हाथी के कान का वह शङ्ख हो। या प्रथम मिलन के विलास स्वरूप स्मित से उनके कपोल के मध्यभाग की कान्ति और भी निखर गई थी। आकर उन्होंने हृदय में पहुँची हुई प्रिया के नूपुर की आवाज से मिली हुई हंस के समान गद्गद वाणी से बातचीत की। काम जो आज्ञा देता, यौवन जो उपदेश देता, अनुराग जो शिक्षा देता, विदग्धता जो समझाती, उसी प्रकार अपनी प्रियतमा के साथ वे विहार करने लगे। जब पूरा विश्वास हो गया तब सरस्वती ने अपने आपको उनसे स्पष्ट कह दिया (कि मैं दुर्वासा के शाप से ग्रस्त होकर मर्त्यलोक में आई हुई सरस्वती हूं)। दधीच ने सरस्वती के साथ-साथ रह कर एक वर्ष से अधिक समय को एक दिन के समान व्यतीत किया।

अथ दैवयोगात्सरस्वती बभार गर्भम्। असूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामं तनयम्। तस्मै च जातमात्रायैव 'सम्यक्सरहस्याः सर्वे वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कला मत्प्रभावात्स्वयमाविर्भविष्यन्ति' इति वरमदात्। सद्भर्तृश्लाघया दर्शयितुमिव हृदयेनादाय दधीचं पितामहादेशात्समं साविज्या पुनरपि ब्रह्मलोकमारुरोह। गतायां च तस्यां

दधीचोऽपि हृदये ह्रादिन्येवाभिहतो भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालाभिधानां मुनिकन्यकामात्मसूनोः संवर्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात्। यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती। तौ तु सा निर्विशेषं सामान्यस्तन्यादिना शनैः शनैः शिशू समवर्धयत्। एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत्, अपरोऽपि वत्सनामासीत्। आसीच्च तयोः सोदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः।

अनेहसा कालेन। रहस्यं ज्ञानभागः। ह्रादिनी वज्रम्।

तत्पश्चात् दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय से सब लक्षणों वाले सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया। जन्म लेते ही सरस्वती ने उसे वर दिया—'मेरे प्रभाव से इसमें सम्यक् प्रकार से रहस्यों के साथ वेद, समस्त शास्त्र, समस्त कलाएँ स्वयं आविर्भूत हों।' उत्तम पति के गौरव से दिखाने के लिए हृदय में दधीच को रख कर ब्रह्मा जी के आदेश के अनुसार फिर सरस्वती सावित्री के साथ ब्रह्मलोक को चली गई। उसके चले जाने से दधीच के हृदय पर गहरा वज्रपात-सा हुआ। तब दधीच ने अपने पुत्र को पालने-पोसने के लिए भार्गववंश में उत्पन्न किसी ब्राह्मण भाई की पत्नी अक्षमाला नामक मुनिकन्या के पास रख दिया और स्वयं सरस्वती के विरह में आतुर होकर तपस्या करने के लिये वन में चले गए। जब सरस्वती ने पुत्र पैदा किया था तभी अक्षमाला को भी एक पुत्र हुआ था। उन दोनों को एक भाव से दूध पिलाकर उसने पाला पोसा और बढ़ाया। उनमें से एक का नाम सारस्वत रखा गया और दूसरे का नाम वत्स। दोनों में भाई के समान प्रेम भाव स्पृहणीय रहा।

अथ सारस्वतो मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्यासंभारस्तस्मिन्सवयसि भ्रातरि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि वत्से वाङ्मयं समस्तमेव संचारयामास। चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम्। आत्मनाप्याषाढी, कृष्णाजिनी, अक्षवलयी, वल्कली, मेखली, जटी च भूत्वा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम्। W

वाक्प्रस्तुता यत्र तद्वाङ्मयम्। 'आषाढसंज्ञो दण्डः स्यात्पालाशो व्रतचारिणाम्। तरुत्वङ्निर्मितं वस्त्रं वल्कलं समुदाहृतम्॥' मेखला मुञ्जतृणादिरचितं कटिसूत्रम्। जटा रूक्षसंहतकेशाः।

माता के प्रभाव से सारस्वत में यौवन के आरम्भ होते ही सारी विद्याएँ प्रकट हो गईं तो उसने प्राण के समान प्रिय अपने समवयस्क भाई और मित्र वत्स में भी समस्त

वाङ्मय को उड़ेल दिया और वत्स का विवाह करा उसी प्रदेश में प्रीतिकूट नाम का निवास बनवाया। और खुद वह पलाश का डंडा, कृष्ण मृगचर्म, अक्षवलय, वल्कल, मेखला और जटा धारण करके तपस्या में लगे हुए पिता दधीच के पास चला गया।

अथ वत्सात्प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिनिर्गतप्रघोषः, परमेश्वरशिरोधृतः, सकलकलागमगम्भीरः, महामुनिमान्यः, विपक्षक्षोभक्षमः, क्षितितललब्धायतिः, अस्खलितप्रवृत्तो भागीरथीप्रवाह इव पावनः प्रावर्तत विमलो वंशः। यस्मादजायन्त वात्स्यायना नाम गृहमुनयः, आश्रितश्रौता अप्यनालम्बितालीकबककाकवः, कृतकुक्कुटव्रता अप्यबैडालवृत्तयः, विवर्जितजनपङ्क्तयः, परिहृतकपटकौरुकुचीकूर्चाकूताः, अगृहीतगह्वराः, न्यक्कृतनिकृतयः, प्रसन्नप्रकृतयः, विहतविकृतयः, परपरीवादपराचीनचेतोवृत्तयः, वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः, धीरधिषणाः, विधूताध्येषणाः, असङ्कसुकस्वभावाः, प्रणतप्रणयिनः, शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः, उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः, कवयः, वाग्मिनः, विमत्सराः, परसुभाषितव्यसनिनः, विदग्धपरिहासवेदिनः, परिचयपेशलाः, नृत्यगीतवादित्रेष्वबाह्याः, ऐतिह्यस्यावितृष्णाः, सानुक्रोशाः, सर्वातिथयः, सर्वसाधुसंमताः, सर्वसत्त्वसाधारणसौहार्दद्रवार्द्रीकृतहृदयाः, तथा सर्वगुणोपेता राजसेनानभिभूताः, क्षमाभाज आश्रितनन्दनाः, अनिस्त्रिंशा विद्याधराः, अजडाः कलावन्तः, अदोषास्तारकाः, अपरोपतापिनो भास्वन्तः, अनुष्माणो हुतभुजः, अकुसृतयो भोगिनः, अस्तम्भाः पुण्यालयाः, अलुप्तक्रतुक्रिया दक्षाः, अव्यालाः कामजितः, असाधारणा द्विजातयः।

अथेत्यादौ। वत्सात्प्रावर्तत विमलो वंश इति संबन्धः। प्रवर्धमानाः संतानादिना वृद्धिं गच्छन्तो य आदिपुरुषाः पूर्वबान्धवाः शुक्राद्यास्तैः कृताः स्वेषां चरणानां कठादिशाखाध्यायिनामुन्नतिरुत्कर्षो यस्य सः। अन्यत्र–प्रवर्धमानस्तु वामनरूपो य आदिपुरुषो हरिस्तेन जनिता स्वपदोन्नतिर्माहात्म्यं यस्य स इति। किल त्रैलोक्याक्रान्तिकाले ब्रह्मलोकप्राप्ताद्विष्णुपदाद्ब्रह्मणा कमण्डलुजलक्षालिता गङ्गा समभवदिति वार्ता। प्रघोषो यशः, शब्दश्च। परमेश्वरो राजा, हरश्च। सकलानां कलानां नृत्ताद्यानामागमस्तेन सहकलकलेन च सकुलकलं यदागमनं तेन च। महामुनिर्जह्नुरपि। विपक्षाः शत्रवः, शैलाश्च। वीनां पक्षिणां वा पक्षच्छेदेषु सहिष्णुः। आयतिः प्रतापः, विस्तारश्च। स्खलितं स्वाचारच्युतिः। प्रवृत्तः प्रकृष्टवृत्तः। अस्खलितं असंरुद्धं कृत्वा गतश्च। श्रौतं वेदभवम्, चिरवृत्तं च। 'भिन्नो भयाद्वा शोकाद्वा

ध्वनिः काकुरुदाहृता'। अत्र च छद्म लक्ष्यते। बकस्य काकुः। बकच्छद्म यैश्च चिरवृत्तमाश्रितं ते छद्मचारित्वादाश्रितबककाकवो भवन्त्येव। अमी तु न तथेति विरोधः। कुक्कुटव्रतं नियमविशेषः। यत्र कुक्कुटाण्डप्रमाणग्रासभोजनम्। न बैडाली हिंसावृत्तिर्येषां तैः, विरोधे तु कुक्कुटानां व्रतं भक्षणं येन कृतं स कथं बिडालवृत्तिर्न स्यात्? पङ्क्तिर्लोकप्रसिद्धो व्यवहारः, पाको वा। कपटो व्याजवृत्तिः। कूर्चाः स्फुटाः। आत्ममहिम्ना व्यवहारः, समूह इत्यन्ये। एतेष्वाकूतं परिहृतं यैः। गह्वरं पापम्। निकृतिः शाठ्यम्। प्रकृतिः स्वभावः। पराचीनं पराङ्मुखम्। अन्धोऽज्ञम्। धीरा स्थिरा। धिषणा बुद्धिः। अध्येषणा याच्ञा। असङ्कसुकः स्थिरः, मृदुर्वा। शाखाः कठाद्याः। संशीतिः संशयः। ग्रन्थिर्दुर्बोधः प्रदेशः। परिहासं विदन्ति, न तु स्वयं कुर्वन्ति। परिचयः संस्तवः। सुकुमाराः, अद्वन्द्वकूटा इत्यर्थः। अवाह्याः, न तु तदेकनिष्ठाः। ऐतिह्यमागमः। अनुक्रोशो दया। संमता इष्टाः। सौहार्दं प्रीतिः। सर्वे गुणा धैर्याद्याः। राज्ञां सेनया चानभिभूता ये च सर्वैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्युक्तास्ते कथं राजसेन गुणेनानभिभूता भवन्तीति विरोधः। एवमुत्तरत्र विरोध उन्नावनीयः। क्षमा क्षान्तिः, भूश्च। आश्रितानां नन्दना नन्दयितारः, देवोद्यानं नन्दनं च। न निस्त्रिंशा अक्रूराः। विद्यां धारयन्तीति विद्याधराः पण्डिताः, निस्त्रिंशाश्च खड्गा एव। ये च विद्याधरा देवभूतास्ते सखड्गा एव। न त्वनिस्त्रिंशा इति मालाखड्गगुलिकाञ्जनादिना भेदेन भिन्नानामपि विद्याधराणां खड्गहस्तत्वं न व्यभिचरति। अजडा अमन्दधियः, अशीताश्च। कलावन्तो गीताभिज्ञाः, कलावांश्चन्द्रः स चाजडोऽशीत इति विरोधः। दोषा द्वेषाद्याः, रात्रिश्च। तारयन्तीति तारका आचार्याः, नक्षत्राणि च। उपतापः पीडा, उष्णत्वं च। भास्वन्तस्तेजस्विनः, आदित्याश्च। ते परांस्तापयन्ति। ऊष्मा स्मयः, दाहिकाशक्तिश्च। हुताशशब्देन हुतमिष्टमुच्यते। हुतं भुञ्जते हुतभुजः, आहिताग्नयो वह्नयश्च। कुसृतिः शाठ्यम्, कौ भूमौ सृतिः सरणम्। भोगिनः सुखिनः, सर्पाश्च। स्तम्भः स्तब्धता, सात्त्विको भावभेदश्च, अप्रणतिर्वा, गृहधारणकाष्ठं च। पुण्यालयाः सुकृतिनः, मठादिस्थानानि च। दक्षाश्चतुराः, प्रजापतिभेदश्च दक्षः। स च लुप्तक्रतुक्रियो हररोषजेन वीरभद्रेण। व्यालाः शठाः, सर्पाश्च। कामजितः संतुष्टाः, हरश्च कामजित्। असाधारणाः सर्वोत्कृष्टाः। द्विजातयो विप्राः। येषां च द्वे जाती तेषां कथं नासादृश्यम्।

वत्स से विमल वंश का प्रादुर्भाव हुआ। वैदिक शाखाओं का अध्ययन करने वाले सर्वत्र फैले हुए अपने पूर्वपुरुषों से वह वंश उत्कृष्ट था। सम्राट् उसका सम्मान करते थे। महामुनियों का भी वह मान्य था। विरोधियों को क्षुब्ध करने में वह समर्थ था। सारी पृथिवी में वह फैल गया था। उसके कार्यों में कोई स्खलन नहीं था। इस प्रकार वह गंगा के प्रवाह के समान था। उस वंश में वात्स्यायन नामक गृह मुनि अर्थात् गृहस्थ होते हुए

भी मुनिवृत्ति रखने वाले असाधारण ब्राह्मण उत्पन्न हुए। श्रौत आचारों का उन्होंने आश्रय लिया था। झूठ और छल-छद्म को पास न आने देते थे। कुक्कुट के अंडे की मात्रा के अनुसार भोजन करते थे। उनमें बैडाली वृत्ति (अर्थात् हिंसा की भावना) न थी। उन्होंने समाज के व्यवहार या पंक्ति भोजन को छोड़ रखा था। कपट, कुटिलता और शेखी बघारने की आदत उनमें न थी। पापों से वे बचते थे। शठता को दूर करके अपने स्वभाव को प्रसन्न रखते थे। उनमें किसी तरह का विकार न था। दूसरे की निन्दा करने में उनकी चित्तवृत्ति पराङ्मुख रहती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों से अलग स्वयंपाकी होकर विशुद्ध भोजन करते थे। उनमें धीरता थी, अतः किसी से याचना नहीं करते थे। स्वभाव के मृदु और प्रणयिजनों में अनुकूल थे। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी जो शंकाएँ उठाई जाती थीं उनका समाधान भी वे करते थे। समस्त ग्रन्थों में जो अर्थ की ग्रन्थियाँ थीं उनको उद्घाटित करते थे। वे कवि, वाग्मी, सरस भाषण में प्रीति रखने वाले, विदग्धों के अनुरूप हास-परिहास में चतुर, मिलने-जुलने में कुशल, नृत्य गीत-वादित्र को अपने जीवन में स्थान देने वाले, इतिहास में अतृप्त रुचि रखने वाले, दयावान्, सत्य से निखरे हुए, साधुओं को इष्ट, सब तत्त्वों के प्रति सौहार्द और करुणा से द्रवित, रजोगुण से अस्पृष्ट, क्षमावन्त, कलाओं में विज्ञ, दक्ष एवं अन्य सब गुणों से युक्त थे।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु, संसरति च संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे कलौ, वहत्सु वत्सरेषु, व्रजत्सु वासरेषु, अतिक्रामति च काले प्रसवपरम्पराभिरनवरतमापतति विकाशिनि वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेरनामा वैनतेय इव गुरुपक्षपाती द्विजो जन्म लेभे। तस्याभवन्नच्युत ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्राह्मतेजोजन्यमानप्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सचक्रनन्दकास्तनयाः। तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद्भूभार इवाचलकुलस्थितिः स्थिरश्चतुरुदधिगम्भीरोऽर्थपतिरिति नाम्ना समग्राग्रजन्मचक्रचूडामणिर्महात्मा सूनुः। सोऽजनयद्भृगुं हंसं शुचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं चित्रभानुं त्र्यक्षं महिदत्तं विश्वरूपं चेत्येकादश रुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छुरितमुखान्पवित्रान्पुत्रान्। अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्। स बाल एव बलवतो विधेर्वशादुपसंपन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्। अवर्धत च तेनाधिकतरमाध्रीयमानधृतिर्धाम्नि निजे।

काल इति पूर्वोक्ते। अन्यथैतत्पुनरुक्तं स्यात्। पक्षपातो भक्तिर्यस्यास्ति सः, पक्षैश्च यो शालि सः। द्विजो विप्रः, विधुः, पक्षी च। युगारम्भा अपि चत्वारः। ब्रह्म वेदादि, स्रष्टा च ब्रह्मा। सच्चक्रस्य साधुवृन्दस्य नन्दकास्तोषयितारः। चक्रं सुदर्शनं च। नन्दकः खड्गश्च। बाहवोऽपि चत्वारः। अचलकुलस्थितिरभिन्नवर्षमर्यादः। अचलानां गिरीणां कुलैर्वृन्दैः स्थितिर्यस्य। चतुरुदधिवत्तैश्च गम्भीरः। अग्रजन्मानो द्विजाः। सोमस्तृणभेदः, इन्दुश्च। उपसंपन्ना मृता। निजे धाम्नि स्वे गृहे।

इस प्रकार उस वंश में ब्राह्मण उत्पन्न होने गए, संसार-चक्र सरकता गया, युग बीते, कलिकाल आया, साल के साल गुजरे, दिन बीते, समय बहुत चला गया। वात्स्यायन कुल निरन्तर विकसित होता गया। इसी क्रम में गुरु में पक्षपात करने वाले कुबेर नामक ब्राह्मण गरुड़ के समान हुए। उनके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत, जो चार युगारम्भ के समान थे, जिनके ब्राह्म तेज से सन्तति चारों ओर फैल रही थी, जो साधु वृन्द को सन्तुष्ट करते थे। उनमें पाशुपत के एक ही अर्थपति नामक पुत्र हुए जो कुल-मर्यादा को अचल रखने वाले, स्थिर, समुद्र की भाँति गम्भीर, समस्त ब्राह्मणों के चूड़ामणि एवं महात्मा थे। अर्थपति ने रुद्रों के समान ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, महिदत्त और विश्वरूप। जो सोमरस के शीकर से सिक्त मुख वाले और पवित्र थे। उनमें से चित्रभानु ने राजदेवी नामक ब्राह्मणी में बाण नामक पुत्र को पाया। दैवयोग से बाण बाल्यकाल में ही माता के मर जाने से मातृहीन हो गया। पिता ने ही स्नेहपूर्वक बड़े यत्न से उसे पाल-पोसकर बड़ा किया। वह अपने ही घर पर धीरतापूर्वक रहता हुआ बढ़ा।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चास्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगमत्। संस्थिते च पितरि महता शोकेनामीलमनुप्राप्तो दिवानिशं दह्यमानहृदयः कथंकथमपि कतिपयान्दिवसानात्मगृह एवानैषीत्। गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव। अभवंश्चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहायाश्च। तथा च। भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसौ वारबाणवासबाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः प्राकृतकुलपुत्रो वायुविकारः, बन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ, कात्यायनिका चक्र-

चाकिका, जाङ्गुलिको मयूरकः, ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः, हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वोपाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका केरलिका, लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहंगमः, दार्दुरिको दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूडकः। स एभिरन्यैश्चानुगम्यमानो बालतया निघ्नतामुपगतो देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगात्। अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम्।

उपनयनं मेखलादानम्। समावृत्तो निष्पादितवृत्तः। स्नातक इत्यर्थः। वेदवेदाङ्गपाठक इत्यन्ये। ईषदसमाप्तश्चतुर्दशवर्षश्चतुर्दशवर्षदेशीयः। 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'। दशामुपेतो दशमीस्थ उदाहृतः, न दशमीस्थः। अपूर्णायुरित्यर्थः। संस्थितो मृतः। आभीलं कष्टम्। इत्वरो गमनशीलः। 'अभवंश्च' इत्यादिनात्मनस्तथाभूतकलावित्संपर्कमैश्वर्यातिशयं दर्शयति। पारशवो द्विजः शूद्रायां जातः। 'परस्त्री परश्वम्' इति विद्यात्म परश्वादेशश्च। भाषागेयवस्तुवाचस्तेषु वर्णकविः। गाथादिषु गीतिद इत्यर्थः। अपभ्रष्टगीतविद्यः। 'पञ्चाशद्वर्षदेशीयां वीरां संस्थितभर्तृकाम्। वदन्ति कात्यायनिकां घृतकाषायवाससम्'॥ जाङ्गुलिको गारुडिकः। भिषग्वैद्यः। 'स्वर्णकारः कलादः स्यात्तदभ्यधस्तु हैरिकः'। पुस्तकृल्लेप्यकारः। 'प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री स्ववशा स्मृता'। संवाहिका या पादादिमर्दनं विधत्ते। लासको नर्तयति यः। युवेत्यादिना वयसः समानत्वमुच्यते। अक्षैर्दीव्यतीत्याक्षिको द्यूतकारः। कितवो धूर्तः। शैलाली स्वयं यो नृत्यति नटः। पाराशरी भिक्षुः। असुरविवरव्यसनी पातालाभिलाषी। धातुवादविद्रसवादज्ञः। मस्करी परिव्राट्। निघ्नतामस्वातन्त्र्यम्। कौतुकेति। न पुनरर्थाभिलिप्सया। एतदेव सत्स्वपीत्यादिना प्रकाशयति। निरवग्रहः स्वतन्त्रः। ग्रहवान्भूतगृहीतः। स्वैरिणा स्वतन्त्रेण।

बाण के उपनयन आदि संस्कार ब्राह्मण जाति की प्रथा के उचित और श्रुति-स्मृति के विधानों के अनुसार हुए और उसका समावर्तन-संस्कार भी हो चुका। बाण की आयु चौदह वर्ष की भी पूरी नहीं होने पाई थी कि उसके पिता भी बिना वृद्धावस्था को प्राप्त हुए गत हो गए। पिता के मरने से उसे महान् शोक के कारण कष्ट हुआ और दिन-रात हृदय में खौलते हुए उसने अपने घर पर कुछ दिन बिताए। धीरे धीरे जब उसका शोक कम हुआ तब उसे वह स्वतंत्रता मिल गई जिससे अविनय या अनुशासनहीनता बढ़ती गई। लड़कपन में स्वभाव से ही बहुत से कुतूहल उत्पन्न हो जाते हैं। यौवन का आरम्भ धैर्य को नहीं रहने देता। फलतः बाण शैशव-काल के उचित अनेक चपलताओं में पड़ कर आवारा (इत्वर) हो गया। अब तो उसके बहुत से सुहृद् और सहायक मिल गए जो उसकी अवस्था के थे और उसी के समान आवारा थे। उसका मित्र-मण्डल चवालीस व्यक्तियों का बना जिनके नाम इस प्रकार हैं—चन्द्रसेन और मातृषेण, जो शूद्रा माता से उत्पन्न द्विजपुत्र थे, इनसे बाण का भाईचारे का सम्बन्ध था; भाषा कवि ईशान, जो बाण का परम मित्र था; रुद्र और नारायण, जो बाण के स्नेही थे; वर्ण कवि वेणी भारत; प्राकृत भाषा में रचना करने वाला कुलपुत्र वायुविकार; अनङ्ग बाण और सूची बाण, जो बन्दीजन थे; कात्यायनिका (बौद्धभिक्षुणी) चक्रवाकिका; जाङ्गुलिक (विषवैद्य या गारुड़ी) मयूरक; पान की खिल्ली लगा कर देने वाला चंडक, भिषक्पुत्र मन्दारक, पुस्तकवाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर, सुनारों का अध्यक्ष या हीरा काटने वाला सिन्धुषेण, लेखक गोविन्दक, चित्रकार वीरवर्मा, मिट्टी के खिलौने बनाने वाला (पुस्तकृत) कुमारदत्त, मृदंग बजाने वाला जीमूत, गायक सोमिल और ग्रहादित्य, सैरन्ध्री (प्रसाधिका) कुरंगिका, वांशिक (वंशी बजाने वाले) मधुकर और पारावत, गान्धर्वोपाध्याय दर्दुरक, संवाहिका केरलिका, नृत्य करने वाला ताण्डविक, आक्षिक (पासा खेलने वाला) शिखंडक, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी (संन्यासी) सुमति, क्षपणक (जैन साधु) वीरदेव, कथक (कथावाचक) जयसेन, शैव वक्रघोण, मन्त्रसाधक कराल, पाताल में घुस कर यक्ष या राक्षस को सिद्ध करने वाला लोहिताक्ष, रसायन बनाने की विद्या जानने वाला विहंगम, दर्दुर नामक घटवाद्य बजाने वाला दामोदर, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष, मस्करी (परिव्राजक) ताम्रचूड़। ये मित्र तथा कुछ और भी लोग बाण के साथ चलते थे। उसने अपनी बालसुलभ प्रकृति के कारण अपने आपको इन मित्रों के ऊपर छोड़ रखा था। उसके मन में देशान्तरों को देखने की बड़ी उत्कण्ठा थी। यद्यपि पिता-पितामह द्वारा उपार्जित ब्राह्मणजन के उचित धन-सम्पत्ति उसके घर थी और विद्या का अविच्छिन्न प्रसंग भी प्राप्त था तथापि वह घर से निकल पड़ा। जैसे किसी पर ग्रहों की बाधा सवार हो वैसे ही स्वच्छन्द मन और नवयौवन के कारण वह बिलकुल स्वतंत्र हो गया। गाँव के बड़े-बड़े लोगों ने भी इसकी खिल्ली उड़ाई।

अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिमनोहृन्ति बृहन्ति राजकुलानि वीक्षमाणः, निरवद्यविद्याविद्योतितानि गुरुकुलानि च सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः, स्वभावगम्भीरधीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत्। महतश्च कालात्तमेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रममात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमत्। तत्र च चिरदर्शनादभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैराप्तैरुत्सवदिवस इवानन्दितागमनो बालमित्रमण्डलमध्यगतो मोक्षसुखमिवान्वभवत्।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते वात्स्यायनवंशवर्णनं नाम प्रथम उच्छ्वासः।



अत्युदारेत्यादिः प्रकृतोपयोगी, यस्मात्कविना तथाविधवस्तुवेदिनावश्यमेव भवितव्यम्। वीक्षमाण इत्यनेनात्मनः किमपि प्रकृष्टमुत्कर्षातिशययोगित्वमाह। अथ च वीक्षमाणो न तु गुरुकुलवत्सेवमानः। गाहमान इत्यनेन तेजस्वित्वमाहात्मनः। वैपश्चितीं विद्वज्जनोचिताम्। संस्तव आदरः। ज्ञातीनां कर्म ज्ञातेयं बन्धुत्वम्। 'कपिज्ञात्योर्ढक्'। आप्तैरिति। बन्धुभिर्योगिभिश्च। योगिपक्षे बाल इव बालो मित्रो रविर्निस्तेजस्त्वात्। उक्तं च—'तपस्यन्तं रविं दृष्ट्वा निस्तेजा जायते रविः। मोक्षमार्गप्रयत्ने तु तेजो नैवास्य विद्यते॥' इति। मित्रं सखा, सूर्यश्च मित्रः। मण्डलं समूहः। बिम्बम्। मोक्षसुखमपि सूर्यबिम्बगतैरनुभूयत इति। आख्यायिकासु कविभिर्निजवंशवर्णनं कानने तथा वंशः ख्यापितः स्यादिति। आत्मनश्च विटवर्णनम्। सकलकलाकौशलं ममास्तीति हर्षस्य चरिते च वर्णयितव्ये नाप्रस्तुतं चैतदिति शिवम्॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते प्रथम उच्छ्वासः।



तब उसने धीरे-धीरे चारों ओर घूम कर बड़े-बड़े राजकुलों को देखा जिनमें होने वाले उदार व्यवहारों ने उसके मन को हर लिया। अनिन्द्य विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन से उद्भासित गुरुकुलों में रहा। बड़ी-बड़ी गोष्ठियों में बैठने लगा जहां गुणी जन

बहुमूल्य और गम्भीर आलाप करते थे। बाण स्वयं स्वभाव से गम्भीर था। उसने राजकुलों से श्री और विद्वानों के बीच रह कर सरस्वती को प्राप्त किया। अन्त में फिर वह अपने कुल और खान्दान के योग्य विद्वान् बन गया। बहुत समय के बाद फिर वह अपनी जन्मभूमि और वात्स्यायन वंशी ब्राह्मणों के गांव प्रीतिकूट में पहुँचा। बहुत दिनों के बाद आए हुए बाण को देख कर उसके बालमित्रों के स्नेह और सद्भाव हृदय में उमड़ आए और अपना-अपना सबने परिचय दिया। इस प्रकार अपने बचपन के साथियों के बीच में उत्सव के दिन की तरह अपने आगमन से आनन्दित करता हुआ बाण मानों मोक्ष सुख का अनुभव करने लगा।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त।



द्वितीय उच्छ्वासः

अतिगम्भीरे भूपे कूप इव जनस्य निरवतारस्य।
दधति समीहितसिद्धिं गुणवन्तः पार्थिवा घटकाः ॥ १ ॥
रागिणि नलिने लक्ष्मीं दिवसो निदधाति दिनकरप्रभवाम्।
अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम् ॥ २ ॥

अथ तत्रानवरताध्ययनध्वानमुखराणि, भस्मपुण्ड्रकपाण्डुरललाटैः कपिलशिखाजालजटिलैः कृशानुभिरिव क्रतुलोभागतैर्बटुभिरध्यास्यमा-

---

अतीत्यादि। यस्य क्रोधादिभाववर्गणं इङ्गितादिना परेण न चेत्यते स गम्भीरः। उक्तं च–'यस्य प्रसादादाकाराःक्रोधहर्षभयादयः। भावस्थानोपलभ्यन्ते तद्गाम्भीर्यमुदाहृतम् ॥' इति। अगाधश्च। अवतरणमवतारः, प्रवेशनम्। अवतरन्ति येनेत्यवतारः, सोपानादिश्च। समीहितसिद्धिं राजगृह आत्मनः प्रवेशलक्षणम्, जलग्रहणलक्षणं च। गुणा औदार्यादयः, आकर्षणरज्जवश्च। पार्थिवा राजानः, पृथ्वीविकाराश्च। घटयन्ति वाञ्छितेन प्रयोजयन्तीति घटकाः, कुम्भाश्च। अनेन तादृशे राज्ञि बाणस्य कृष्ण एव समीहितसिद्धीराध्यास्यत इति सूचितम् ॥ १ ॥

रागिणि रक्ते, विषयाभिषङ्गिणि च। लक्ष्मीं शोभाम्, समृद्धिं च। अत्र नलिनादिकमप्रस्तुतम्, बाणाद्यास्तु प्रस्तुताः। अनेन कृष्ण ईदृशे बाणे राजप्रभवां श्रियं निधास्यतीत्युक्तम् ॥ २ ॥

अथेत्यादि। बाणो बान्धवानां भवनानि भ्रमन्सुखमतिष्ठदिति संबन्धः। शिखा चूडा, ज्वाला च। सोमो यज्ञियं द्रव्यम्। केदारिका स्वल्पं क्षेत्रम्। प्रघटनेषु तथोचितत्वात्। अहरिता हरिताः संपद्यमाना हरितायमानाः लोहितादित्वात्क्यष्।

जैसे किसी गहरे कुँए से जल लेने के लिए सोपान आदि के अभाव में उतरना कठिन है ऐसी स्थिति में डोर के साथ घड़े की सहायता से ही जल निकालते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाले राजा के पास न पहुंच पाया हुआ व्यक्ति गुणवान् संयोजक लोगों की सहायता से ही अपनी इष्ट-सिद्धि कर पाता है ॥ १ ॥

राग से भरे हुए कमल में दिन सूर्य से उत्पन्न शोभा-सम्पत्ति को आहित कर देता है। दूसरे का उपकार करना सज्जनों का एक स्वाभाविक व्यसन होता है, जिसमें वे किसी के गुण-दोष की ओर ध्यान नहीं देते ॥ २ ॥

वहाँ तब बाण स्नेहपूर्वक अपने चिरदृष्ट बन्धु-बान्धवों के घर जा-जाकर मिलता हुआ

नानि, सेकसुकुमारसोमकेदारिकाहरितायमानप्रघनानि, कृष्णाजिनविकीर्णशुष्यत्पुरोडाशीयश्यामाकतण्डुलानि, बालिकाविकीर्यमाणनीवारबलीनि, शुचिशिष्यशतानीयमानहरितकुशपूलीपलाशसमिन्धि, इन्धनगोमयपिण्डकूटसंकटानि, आमिक्षीयक्षीरक्षारणीनामग्निहोत्रधेनूनां खुरवलयैर्विलिखिताजिरवितर्दिकानि, कमण्डलव्यमृत्पिण्डमर्दनव्यग्रयतिजनानि, वैतानवेदीशङ्कव्यानामौदुम्बरीणां शाखानां राशिभिः पवित्रितपर्यन्तानि वैश्वदेवपिण्डपाण्डुरितप्रदेशानि, हविर्धूमधूसरिताङ्गणविटपिकिसलयानि, वत्सीयबालकलालिततलत्तरलतर्णकानि, क्रीडत्कृष्णसारच्छागशावकप्र-

---

प्रघनान्यङ्गनानि। 'उशन्ति प्रघनाभिख्यामेकदेशे तु वेश्मनः'। पुरोडाशीयेत्यादि सहितेत्यर्थे ईयः। बालिकाः कुमार्यः। नीवारा अकृष्टपच्या व्रीहयः। कूटो राशिः। आमिक्षीयमिति। तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवामिक्षा। 'आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः' इति। तस्यै हितमामिक्षीयम्। आमिक्षाप्रकृतित्वमस्य च योग्यत्वात्। अग्निहोत्रेषु तस्या अनाम्नातत्वात्, यद्वा,—यदन्नस्य जुहुयादिति। तस्या अपि हवनं भवत्येव। वलयैः समूहैः वितर्दिका वेदिका। कमण्डलुर्मुनिकरकस्तस्मै हिताः कमण्डलव्याः। 'उगवादिभ्यो यत्'। यतीनां निष्किंचनत्वादादरत्वाच्च स्वयंकरणम्। वितानो यज्ञः, तत्र भवा वैतानी यज्ञाग्निकार्यभूः। शङ्कुः कीलकः, तस्मै हितः शङ्कव्यः। औदुम्बरीणामिति। तासां यज्ञियत्वात्। वत्सेभ्यो हिता वत्सीयाः वत्सपरिचर्याचतुराः। तर्णकाः सद्योजाता वत्साः। कृष्णसारेति छाग-

---

सुख से रहने लगा। ब्राह्मणों के वे घर निरन्तर अध्ययन की ध्वनि से मुखरित हो रहे थे। त्रिपुण्ड भस्म से मस्तक को उज्ज्वल किए हुए सोमयज्ञों के लोभी वटु वहाँ इकट्ठा थे जो कपिल वर्ण वाली ज्वाला की जटाओं से शोभित अग्नि के समान प्रतीत होते थे। घरों के सामने सोम की क्यारियाँ सींचने से हरी हो रही थीं। बिछे हुए कृष्णाजिन पुरोडाश बनाने के लिए साँवा पसार कर सुखाया जा रहा था। कुमारी कन्याएँ बिना जोत के पके हुए नीवारों की बलि से पूजा कर रही थीं। सैकड़ों शिष्य पवित्र होकर कुशा की हरी आँटियाँ और पलाश की समिधाएँ इकट्ठी कर रहे थे। जलावन के लिए गोबर के कंडों का ढेर लगा था। आमिक्षा बनाने के योग्य दूध देने वाली गौएँ अपने खुरों से आँगन की वेदियाँ कोड़ रही थीं। यती लोग कमण्डलुओं को मिट्टी से मलने में व्यग्र थे। वैतान अग्नियों की वेदी में लगाए जाने वाले शंकुओं के लिए गूलर की शाखाएँ किनारे रखी थीं। स्थान-स्थान पर वैश्वदेवों के उजले पिण्डे रख दिए गए थे। आँगन के पेड़ के पत्ते यज्ञ-धूम से बिलकुल धूमिल हो रहे थे। देख-रेख करने वाले लड़के उचकते हुए सद्योजात

कटितपशुबन्धप्रबन्धानि, शुकसारिकारब्धाध्ययनदीयमानोपाध्यायविश्रान्तिसुखानि, साक्षात्त्रयीतपोवनानीव चिरदृष्टानां बान्धवानां प्रीयमाणो भ्रमन्भवनानि, बाणः सुखमतिष्ठत् ।

तत्रस्थस्य चास्य कदाचित्कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः संफुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः । प्रत्यग्रनिर्जितस्यास्तमुपगतवतो वसन्तसामन्तस्य बालापत्येष्विव पयःपायिषु नवोद्यानेषु दर्शितस्नेहो मृदुरभूत् । अभिनवोदितश्च सर्वस्यां पृथिव्यां सकलकुसुमबन्ध-

---

विशेषणम् । तदुक्तम्—'लोहितसारङ्गः कृष्णसारङ्गो वा' इति; सारङ्गशब्दः शबले वर्तते । कृष्णसारा मृगा इति केचित् । तत्तु न । तेषां तद्दानुपयुक्तत्वात् । पशुबन्धा यज्ञाः ।

कुसुमसमयो वसन्तः, स एव युगं कल्पस्तल्लक्षणं वा युगं मासद्वयम् । समुत्फुल्लमल्लिकाभिर्धवला अट्टा विक्रयस्थानानि तेषां विकासो यत्र, अन्यत्र–तद्वदट्टहास उद्धतं हसितं यस्य । शब्दशक्तिमूलानुरणनव्यङ्ग्यरूपो ध्वनिश्च । प्रकृतवर्णने ह्यन्यदप्यत्र प्रतीयते । न वाच्यतया । तथा च—महाकालः साट्टहासः कल्पमुपसंहरञ्जृम्भते मुखं च विदारयति । महान्कालो ग्रीष्माख्यः, भैरवश्च । पयो जलम्, क्षीरं च । बालापत्यपक्षे—नवमुद्यानमुद्गमनं येषां तेषु । इदम्प्रथमतयागमनप्रवृत्तेष्वित्यर्थः दर्शितस्नेह इत्यनेनास्य विजिगीषुव्यवहार आरोपितः । निर्जितस्य च पुनः प्रतिष्ठापनमेव युक्तम् । स्नेहः आर्द्रता, प्रीतिश्च । मृदुरकठोरः, सदयश्च । अभिनवोदित इति साधारणं विशेषणम् । वासन्तिकपुष्पाभिप्रायेण सकलपदबन्धनं वृन्तकारी च । प्रतपन्प्रकर्षेण तपन्; अन्यत्र,–शत्रुहृदयेषु प्रतापं जनयन् । अभिनवोदितश्च राजा बन्धनमोक्षं करोति । उक्तं हि—'युवराजाभिषेके वा परचक्रावरोपणे । पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥' इति । आदरप्रतिपादनाय

बछड़ों को प्यार कर रहे थे । किलोल करते हुए काले छाग शावक को देखकर वहाँ पशुबंध की तैयारी मालूम हो रही थी । शुक-सारिकाएँ स्वयं अध्ययन कराकर गुरुओं को विश्राम का सुख दे रही थीं, मानों ब्राह्मणाधिवास के वे भवन त्रयीविद्या के साक्षात् तपोवन हो रहे थे ।

वहाँ बाण के रहते हुए वसन्त के दो महीनों का उपसंहार करता हुआ महाकाल ग्रीष्म फूली हुई चमेली के अट्टहास के साथ जंभाई लेने लगा । अभी अभी पराजित होकर अस्तंगत होते हुए वसन्त रूपी सामन्त के दुधमुँहे बाल-बच्चों के समान जल से सींचे जाने वाले नये-नये उद्यानों पर वह ग्रीष्म स्नेह दिखलाता हुआ मृदु व्यवहार करने लगा और समस्त पृथिवी पर नवोदित होकर उसने फूलों के बन्धन खोले, जैसे राजा बन्दीगृह से

नमोऽक्षमकरोत्प्रतपत्तरुणसमयः। स्वयमृतुराजस्याभिषेकार्द्राश्चामरकलापा इवागृह्यन्त कामिनीचिकुरचयाः कुसुमायुधेन, हिमदग्धसकलकमलिनी-कोपेनेव हिमालयाभिमुखीं यात्रामदादंशुमाली।

अथ ललाटंतपे तपति तपने चन्दनलिखितललाटिकापुण्ड्रकैरलकचीरचीवरसंवीतैः स्वेदोदबिन्दुमुक्ताक्षवलयवाहिभिर्दिनकराराधननियमा इवागृह्यन्त ललनाललाटेन्दुद्युतिभिः। चन्दनधूसराभिरसूर्यंपश्याभिः कुमुदिनीभिरिव दिवसमसुप्यत सुन्दरीभिः। निद्रालसा रत्नालोकमपि नासहन्त दृशः, किमुत जरठमातपम्। अशिशिरसमयेन चक्रवाकमिथुना-

---

स्वयंशब्दः। अभिषेकः स्नानम्। अन्यत्र,–मङ्गलजलपातनं तत्संपर्कवशाच्चार्द्रत्वम्। चिकुराः केशाः। ते हि तदा स्नानार्द्रतया संयमनात्सुन्दरतया विशेषतः शृङ्गारमुद्दीपयन्ति। तथा च महाकवेः कालिदासस्य—'स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु। कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे रतिमङ्गनानाम्'॥ यथा वा राजशेखरस्य—'तदा ते स्नातानां दरदलितमल्लीमुकुरिणाम्' इत्यादि। हिमाभिप्राये च हिमालयग्रहणम्। अंशून्मलति धारयतीत्यनेन हिमं प्रतिभवनशीतलत्वमस्योच्यते।

ललाटं तपतीति ललाटंतपः इति खश्। खरतर इत्यर्थः। ललाटेऽलंकारो ललाटिका। 'कर्णललाटात्कनलंकारे'। ललाटिकैव पुण्ड्रकं तिलकमिति सर्वत्र रूपकम्। संवीतैः प्रावृतैः। चन्दनेन च तद्धूसराः। असूर्यंपश्याभिरिति। आतपासहिष्णुतया। अन्यत्र,–स्वभावात्। दिवसं सुप्यत इति अकर्मकर्मणि लादिविधानात्कर्मणि द्वितीयैव। भावे लः। यदा तु कर्माप्याख्याततया विवक्ष्यते तदा दिवसः सुप्यत इति भाष्यमिति निर्णीतम्। स्वापो निद्रा, मुकुलता च। जरठं कठोरम्। यतो ग्रीष्मेण तनूकृता अत आह—चक्रवाकेत्यादि। रात्रौ किल

बन्दियों को छोड़ता है। ऋतुराज वसन्त के अभिषेक द्वारा आर्द्र हुए सुन्दरियों के चामरकलाप के समान केशपाश में कुसुमायुध कामदेव ने साक्षात् निवास किया। सूर्य ने मानों हिम के कारण जली-कटी समस्त कमलिनियों के कोप से हिमालय की ओर यात्रा की।

अब सूर्य का ताप तीखा हो गया। कमलिनियों के ललाट रूपी चन्द्रमा चन्दन के तिलक लगा, बालों के वल्कखण्ड पहन और पसीना के कणों की मुक्ता से बनी जपमालिका धारण कर सूर्य की नियमित रूप से उपासना करने लगे। चन्दन के लेप से धूसर वर्ण वाली सुन्दरियाँ कुमुदिनियों के समान सूर्यातप के न सहन करने से दिन में ही शयन करने लगीं। निद्रा से अलसाई हुई आँखें रत्नों के तेज को भी नहीं सहन कर सकती थीं, कठोर आतप की तो बात ही क्या? ग्रीष्मकाल में चक्रवाक पक्षियों के जोड़ों से अभि-

भिनन्दिताः सरित इव तनिमानमानीयन्त सोडुपाः शर्वर्यः। अभिनव-पटुपाटलामोदसुरभिपरिमलं न केवलं जलम्, जनस्य पवनमपि पातु-मभूदभिलाषो दिवसकरसंतापात्।

क्रमेण च खरखरमयूखे, खण्डितशैशवे, शुष्यत्सरसि, सीदत्स्रोतसि, मन्दनिर्झरे, झिल्लिकाझांकारिणि, कातरकपोतकूजितानुबन्धबधिरितविश्वे, श्वसत्पतत्त्रिणि, करीषंकषमरुति, विरलवीरुधि, रुधिरकुतूहलिकेसरिकिशोरकलिह्यमानकठोरधातकीस्तबके, ताम्यत्स्तम्बेरमयूथवमथुतिम्यन्महामहीधरनितम्बे, दिनकरदूयमानद्विरददीनदानाश्यानदानश्यामिकालीनमूकमधुलिहि, लोहितायमानमन्दारसिन्दूरितसीम्नि, सलिलस्यन्दसंदोहसंदेहमुह्यन्महामहिषविषाणकोटिविलिख्यमानस्फुटत्स्फाटिकदृषदि, धर्म-

---

चक्रवाकानां वियोगो भवतीत्यल्पतया तैस्ता अभिनन्द्यन्ते। सरितश्च वृत्तिकारिकास्तेषामिति तदभिनन्दनम्। उडुपः शशी, प्लवश्च।

क्रमेण चेत्यादौ। एवंविधे निदाघकाले कठोरीभवति सत्युन्मत्ता मातरिश्वानः प्रावर्तन्तेति संबन्धः। खगो रविः। शुष्यदिति साभिप्रायम्। स्रोतसश्च प्रसरणधर्मत्वादाह—सीददिति। समन्तादावेगगामिनः। झिल्लिका चीरीनामकः प्राणी यो वर्षासु तरुषु सीत्कारमुच्चैः करोति। कातरेति। कपोता हि मेदोमयत्वात्नितान्तं घर्मासहाः। अत एव पतत्त्रित्वेऽपि पृथगुपादानम्। पतत्त्रित्वाभिप्रायेण श्वासमित्येतावदेव समुचितम्। एषां तथाभूतरुजाभावात्। करीषो गोमयम्। वीरुत्सपर्णशाखाजटिलं कुप्यकादि। किशोरकेति। बालत्वेन तृष्णाद्यसहिष्णुता, मुग्धतातिशयश्च द्योत्यते। धातकी लताभेदः। स्तवकः पुष्पगुच्छः। स्तम्बेरमो हस्ती। वमथुः करिकरशीकरः। तिम्यन्त आर्द्रीभवन्तः। नितम्बाः सानवः। द्विरदाः करिणः। दीनं क्षीणम्। आश्याना अप्रसरणधर्मकत्वादीषच्छुष्कश्यामिका मदलेखासंबन्धिनी। लीना अतितर्षाच्छिलष्टाः। मूका गुञ्जितहीनाः। अलोहिता लोहिता भवन्तो लोहितायमानाः। मन्दाराः पारिभद्रद्रुमाः। सिन्दूरिता आहितसि-

---

नन्दित तारों भरी रातें नदियों की भाँति छोटी होने लगीं। सूर्य का सन्ताप इतना बढ़ गया कि लोग न केवल नए खिले हुए पाटल के पुष्पों से सुगन्धित जल को पीना चाहते थे, बल्कि इस तरह की सुगन्ध से भरी हवा को भी पीते थे।

क्रमशः निदाघकाल कठोर होता गया। सूर्य तीखा होने लगा। तालाब सूखने लगे। प्रवाह क्षान्त होने लगे। झरने मन्द पड़ गए। झिल्लियाँ झंकारने लगीं। कपोतों के निरन्तर आर्त स्वर से सारा विश्व भर गया। पक्षी हाँफने लगे। कूड़ा-कर्कट बटोरने वाली हवाएँ

मर्मरितगर्मुति, तप्तपांशुकुकूलकातरविकिरे, विवरशरणश्वाविधे, तटार्जुनकुररकूजाज्वरविवर्तमानोत्तानशफरशारपंकशोषपल्वलाम्भसि, दावजनितजगन्नीराजने, रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले, प्रतिदिशमाटीकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकटलुण्ठकाः, प्रपक्वकपिकच्छु-

---

न्दूरा इव। लोहितत्वात्। ग्रामस्य ग्रामान्तरेण मर्यादा सीमा। स्यन्दः स्रुतिः। विलिख्यमाना विपाट्यमानाः। मर्मरिताः शुष्कत्वेन शब्दायमानाः। गर्मुतो लताः। कुकूलं तुषाग्निः। विकिराः कुक्कुटाद्याः। श्वाविधः शल्लाः सेहिकाख्या हिंस्राः प्राणिनः। तटशब्देन नैकट्यमाह। अर्जुनाः ककुभवृक्षाः। कुररा: क्रौञ्चपक्षिणः। कूजा शब्द एव संतापकारित्वाज्ज्वरस्तेन स्फुरन्तः शफरा मत्स्यास्तैः। शारं सितोदरत्वात्। पल्वले नड्वले। कुररास्तटस्था यदा कूजन्ति तदा मत्स्याः पीडिताः सन्त उत्प्लवन्तीति वस्तुधर्मोऽयम्। नीराजनमिति। नीराजनं शान्तिकर्म। राजयक्ष्मा क्षयव्याधिः। शनैः शनैरपचयकारित्वात्। मातरिश्वानः कीदृशाः प्रावर्तन्तेत्याह—प्रतिदिशमित्यादि। आटीकमाना उच्चैर्भ्रमन्तः। साभिप्रायमेतत्। रजोवशादेतेषां तथाविधसंनिवेशात्। ग्रीष्मे ह्येवंविधा मारुताः प्रावर्तन्तेति कालधर्मः। उन्मत्तपक्षे—आटीकमाना इत्यादि सर्वं वक्ष्यमाणयोग्यतया योजनीयम्। उद्धतभ्रमणाद्या ह्युन्मादस्यानुभावाः। तदुक्तम्—'अनिमित्तहसितरुदितोत्कृष्टाबद्धप्रलापशयनोत्थितप्रधावितनृत्तगीतपठितस्मितपांसववधूननिर्माल्यचीरघटवक्त्रशरावाभरणस्पर्शनोपभोगैरन्यैश्चाव्यवस्थितचेष्टानुकरणादिभिरनुभावैरभिनयेत्' इति। ऊषरं सिकताबहुलो रूक्षो देशः। प्रपा सत्रम्। वाटः कुनालम्। पटलं छदिः। कपिकच्छुः

चलने लगीं। लताएँ कहीं कहीं बच रही थीं। धातकी के लाल-लाल गुच्छों को रुधिर के भ्रम से शेर के बच्चे चाटने लगे। घाम की गर्मी से उफने हुए हाथी अपनी सूँड़ से गाज उछालकर पर्वत के मध्यभाग को सींचने लगे, गर्मी से सूखती हुई गाजों की काली मदलेखाओं पर भौंरे प्यास के मारे चुप होकर बैठ गए। मन्दार के सिन्दूरिया फूलों से सीमाएँ लाल हो गईं। प्यासे भैंसे पानी के भ्रम से स्फटिक की शिलाओं पर सींग मारने लगे। लताएँ घाम से सूख कर खरखराने लगीं। भूसे की आग के समान तपती धूल से मुर्गे आदि व्याकुल हो उठे। सेही बिल में घुसने लगे। किनारे के अर्जुन वृक्षों पर बैठे हुए क्रौञ्च पक्षी कड़ी आवाज में बोलने लगे, जिससे डरकर सूखते हुए तालाबों की मछलियाँ तड़फड़ा उठती थीं। वनाग्नियाँ इस तरह लगने लगीं जैसे सारे जगत् की आरती उतर रही हो। वह निदाघकाल रात्रि का क्षय रोग बन गया और वह घटने लगी। चारों ओर अंधड़ के रूप में हवा चल पड़ी। बलुहट सीवानों में ऊँची उड़ान भरने लगी। पनसाले और राह की कुटियों की खपड़पोश छानें हवा में उड़ने लगीं।

गुच्छच्छटाच्छोटनचापलैरकाण्डकण्डूला इव कर्षन्तः शर्करिला कर्करस्थलीः स्थूलदृषच्चूर्णमुचः, मुचुकुन्दकन्दलदलनदन्तुराः, संततपनतापमुखर-चीरीगणमुखशीकरशीक्यमानतनवः, तरुणतरतरणितापतरले तरन्त इव तरङ्गिणि मृगतृष्णिकातरङ्गिणीनामलोकवारिणि, शुष्यच्छमीमर्मरमारव-मार्गलङ्घनलाघवजवजङ्घालाः, रैणवावर्तमण्डलीरेचकरासरसरभसारब्ध-नर्तनारम्भारभटीनटाः, दावदग्धस्थलीमषीमिलनमलिनाः, शिक्षितक्षपण-

---

कण्डूदायको द्रव्यभेदः। अत एवाह—कर्षन्त इति। शर्कराः पाषाणकणिका विद्यन्ते यासु ताः शर्करिलाः। पिच्छादित्वादिलच्। कर्करस्थली ऊषरभूः पाषाणभूः। अत एवाह—स्थूलेत्यादिना। मुचुकुन्दं पुष्पभेदः। कन्दलं नवनालम्। दन्तुरा इति। कपिकच्छूस्पर्शचालनेन च ये कण्डूलास्तादृशाश्चूर्णमुचः प्रकटदन्ताः परुषं कषन्ति। शीक्यमानाः सिच्यमानाः। तरुणतरः प्रौढः। तरणिरादित्यः। तरन्त इवेति। वालुकावशात्तथा लक्ष्यमाणत्वात्। मृगतृष्णिका मरीचिका। तृषितमृगाणां रविरश्मिखचितासु सिकतासु नीलत्वदर्शनाज्जलबुद्धिः। वारिणीति। सतरङ्गे वारिणि ये सभीकास्ते सतापं देशं तरन्ति। उन्मत्तपक्षेऽपि विचित्तत्वेनैवंकारित्वम्। शम्योऽग्निगर्भा वल्लीभेदाः। लाघवं नैपुणम्। सव्यायामाश्च विषमं मार्गं लाघवेन तरन्ति। जङ्घाला वेगवन्तः। रैणवावर्ताः पांसुसंबन्धिन आवर्तनरूपाः संनिवेशास्तेषां मण्डली समूहः। रेचयति पृथक्करोतीति रेचकम्। रैणवावर्तमण्डल्या रेचकं तथा रासे रसिते यो रसस्तेन यो रभसस्तद्वशेनारब्धं यन्नर्तनमिव नर्तनं तदारम्भे विषय आरभटीनटा इव आरभटीनटाः। ईरयन्तीति अराः। अराश्च ते भटा अरभटाः। तेषामियमारभटी नटजातिविशेषो वीररसप्रधानः। उक्तं च—'प्लुष्टावपातप्लुतगर्जितानि च्छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्। चित्राणि यूथानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति॥' इति; नृत्तपक्षे—आवर्ता

पके किवाच के गुच्छों के साथ छेड़छाड़ करने की गुस्ताखी के कारण उठी हुई खाज की छटपटाहट से भुइयाँलोट हवा कंकरीली धरती में मानों अपनी देह रगड़ रही थी। पत्थरों के मोटे मोटे कण बरसने लगे। मुचुकुन्द और कन्दल की कलियाँ छँट-छँट कर गिरने लगीं। सूर्य की गर्मी से व्याकुल होकर चिल पक्षी मुँह से गाज गिराने लगे। मृग-तृष्णिका रूपी नदियों के झूठे बहते हुए प्रवाह में मानों निदाघकाल की हवा सूर्य के अधिक ताप के कारण तैर रही थी। शमी के सूखे पत्ते मरुभूमि के मार्गों पर बिछे हुए थे जिन पर मर्मर करती हवा दौड़ लगा रही थी। धूल के बवंडर जगह बदलते हुए ऐसे लगते थे मानों आरभटी नृत्य में नट नाच रहे हों। दाव से जली हुई भूमियों में रगड़ मारने से हवा कुछ स्याह हो गई थी। जैन साधुओं के समान हवा वन-मयूरों के पंख

कवृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुबिन्वन्तः, सप्रयाणगुञ्जा इव शिञ्जानजरत्करञ्जमञ्जरीबीजजालकैः, सप्ररोहा इवातपातुरवनमहिषनासानिकुञ्जस्थूलनिःश्वासैः, सापत्या इवोड्डीयमानजवनवातहरिणपरिपाटीपेटकैः, सभ्रुकुटय इव दह्यमानखलधानबुसकूटकुटिलधूमकोटिभिः, सावीचिवीचय इव महोष्ममुक्तिभिः, लोमशा इव शीर्यमाणशाल्मलिफलतूलतन्तुभिः, दद्रुणा इव शुष्कपत्रप्रकराकृष्टिभिः, शिराला इव तृणवेणीविकरणैः, उच्छ्मश्रव इव धूयमाननवयवशूकशकलशङ्कुभिः, दंष्ट्राला इव चलितशलल-

---

आवृत्तयः। यदाह मुनिः—'यदा नृत्तवशादङ्गं भूयोभूयो निवर्तते। तत्राद्यमभिनेयं स्याच्छेषं नृत्ते नियोजयेत् ॥' इति। मण्डलीनृत्तं हल्लीशकम्। यदाह—'मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीशकमिति स्मृतम्। एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥' इति। रेचकास्त्रयः—कटीरेचकः, हस्तरेचकः, ग्रीवारेचकश्चेति। रासलक्षणम्—'अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद्यत्र नृत्यन्ति नायकाः। पिण्डीबन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम् ॥' इति। अस्यैव तु हलीमकाद्या विशेषाः। क्षपणकवृत्तय इवेति। क्षपणकाश्च मषीमलिना बर्हिपिच्छानि शास्त्रचोदनया वहन्ति। उन्मत्तपक्षे—निर्विवेकतया मयूरपिच्छचय इत्युक्तं प्राक्। गुञ्जन्तीति गुञ्जा ढक्काभेदाः। उन्मत्तानां नृत्तावसरे सर्व एव करतलादि वादयन्ति। शिञ्जानाः शब्दायमानाः। करञ्जो वृक्षभेदः। प्ररोहोऽङ्कुरः। उन्मत्ता अपि खेदान्निःश्वसन्ति। सापत्या इवेति। उन्मत्ता अपि श्वभ्रादिपतनभयादपत्यानि न त्यजन्ति। पेटकैर्यूथैः। सभ्रुकुटय इवेति। दह्यमानाभिप्रायेणोक्तम्। उन्मत्ता अपि क्रोधप्राया एव। क्रोधस्य भ्रुकुट्यादयोऽनुभावाः। खलधानं क्षोदादिदेशः। धुप्यमानं धान्यमित्यन्ये। सस्यस्य ज्वालाभावाद्धूमवर्णनं समुचितम्। कुटिलपदेन च भ्रुकुटीसादृश्यमाह। अवीचिर्नरकभेदस्तस्य वीचय इव वीचयो ज्वालाः। महोष्मेति। उन्मत्ता अपि खेदादिवशादूष्मायन्ते। लोमशा इवेति। उन्मत्ता अपि क्षुरकर्म विना लोमशाः। तूलं कार्पासः। दद्रुः कुष्ठविकारः। साऽस्यास्तीति दद्रुणः। 'दद्र्वा ह्रस्वत्वं च' इति नः। उन्मत्ता अप्युद्वर्तनं विना

उखाड़कर पहनने लगी। करंज नामक वृक्ष की मंजरियों के बीज हवा से इस प्रकार बजने लगे मानों प्रस्थान का डंका बज उठा हो। घाम से पीड़ित बनैले भैंसों की नासा से मोटे निश्वास इस तरह निकल रहे थे मानों उस हवा के प्ररोह फूट रहे हों। भूसे की जलती हुई ढेर की टेढ़ी धूमरेखा से ऐसा लगता था मानों हवा ने अपनी भौंहें टेढ़ी की हों। गर्मी इस तरह बरसती थी मानों अवीचि नामक नरक की ज्वाला हो। सेमल के कोयों के फटने से रुई बिखर रही थी, मानों हवा के रोंगटे हों। दाद के रोगी की भाँति हवा सूखे

सूचीशतैः, जिह्वाला इव वैश्वानरशिखाभिः, उत्सर्पत्सर्पकञ्चुकैर्जटाला इव ब्रह्मस्तम्भरसाभ्यवहरणाय कवलग्रहमिवोष्णैः कमलवनमधुभिरभ्यस्यन्तः सकलसलिलोच्छोषणघर्मघोषणाघोरपटहैरिव शुष्कवेणुवनास्फोटनपटुरवैस्त्रिभुवनबिभीषिकामुद्भावयन्तः, च्युतचपलचाषपक्षश्रेणीशारितसृतयः, त्विषिमन्मयूखलतालातप्लोषकल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफलस्फुलिङ्गाङ्गाराङ्किताङ्गाः, गिरिगुहागम्भीरभांकारभोषणभ्रान्तयः, भुवनभ-

---

दमूयुक्ता भवन्ति। शिरालाः प्रकटस्नायवः। उन्मत्ता अपि कृशत्वाच्छिराला भवन्ति। वेणी पङ्क्तिः। शिरासादृश्यप्रतिपादनाय वेणीपदम्। श्मश्रुः कूर्चः। शुकाः किंशारवः। उन्मत्ता अपि केशवपनाभावाद्दीर्घश्मश्रवः। दंष्ट्रा बहिर्निर्गता दन्ताः। शललः श्वावित्। सूची दीर्घकण्टकरूपाणि रोमाणि, अन्ये तु—दंष्ट्रालाः शललाः, श्वाविधः पक्षाश्च शलला उच्यन्ते। तथा च—'श्वाविधः शललैरिव' इति महाभारते दृश्यत इत्याहुः। उन्मत्ता अप्येवमादिविकारेण सर्वं भीषयन्ते। एवं जिह्वाला अपि। एवमेव स्नानादिना विनोन्मुक्तचूडत्वादुत्सर्पदित्यादि। कञ्चुकं त्वक्। ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डः। रसाभ्यवहरणं शोषणम्, रसानां च मधुरादीनां भोजनम्। 'असञ्चार्यो मुखे पूर्णे गण्डूषः कवलोऽन्यथा'। अभ्यस्यन्त इति। एवमिदं शोषयिष्याम इति। घर्मो ग्रीष्मः। घोषणा श्रावणा। बिभीषिकामिति। ये सगर्वा जगद्ग्रसनशीलास्ते त्रिभुवनेऽपि भयमुत्पादयन्ति। चाषः किकीदिविः पक्षिभेदः। उन्मत्तपक्षे—विस्मरणशीलत्वाच्च्युतेत्यादि योज्यम्। सृतिर्मार्गः। त्विषिमान् रविः। अलातमुल्मुकम्। कल्माषं रक्तकृष्णम्। गुञ्जा रक्तिका। उपलानि लोहितकृष्णानि भवन्ति। स्फुलिङ्गा अग्निकणाः। अङ्गाराङ्कितानीवाङ्गाराङ्कितानि दग्धान्यङ्गानि। ये च साङ्गारास्ते मलिनशरीरा भवन्ति। उन्मत्ता अप्यग्निस्कन्धश्वभ्रादिषु बलादति-

---

पत्तों को खुजाने के लिए बटोरने लगी। हवा की शिराओं के समान तिनके उड़ने लगे। जब की नुकीली शिखाएँ हवा के बढ़े हुए बाल के समान हिल रही थीं। उड़ते हुए शललों के सैकड़ों काँटेदार रोंगटे हवा के दाँत के समान थे। आग की लपटें हवा की जीभ हो रही थीं। साँप के केंचुल हवा में बिखरे हुए बालके समान उड़ने लगे। ब्रह्माण्ड के सारे रस को चाट जाने के लिए हवा मानों कमल के मधु का ग्रास बनाकर अभ्यास कर रही थीं। बाँसों के चटखने की तीखी आवाज होने लगी मानों सारे जलों को सोख लेने वाले आतपों का घोषणा-पटह बज रहा हो। इस प्रकार हवा ने तीनों लोकों को भयभीत कर दिया। चाष पक्षी के पंख झड़कर मार्ग को ढँक रहे थे। हवा का शरीर मानों सूर्य की किरणों के जलते अङ्गारों से झुलस कर कुछ काला और लाल (कल्माष) हो गया था। चटखते हुए गुंजाफलों के समान अग्निकणवाही अंगारों से हवा के अङ्ग-अङ्ग भर गए। पहाड़ की

स्मीकरणाभिचारचरुपचनचतुराः, रुधिराहुतिभिरिव पारिभद्रद्रुमस्तबक-वृष्टिभिस्तर्पयन्तस्तारवान्वनविभावसून्, अशिशिरसिकतातारकितरंहसः, तप्तशैलविलीयमानशिलाजतुरसलवलिप्तदिशः, दावदहनपच्यमानचटकाण्डखण्डखचिततरुकोटरकीटपटलपुटपाकगन्धकटवः, प्रावर्तन्तोन्मत्ता मातरिश्वानः।

सर्वतश्च भूरिभल्लासहस्रसंघुक्षणक्षुभिता इव जरठाजगरगम्भीरगल-गुहावाहिवायवः, क्वचित्स्वच्छन्दतृणचारिणो हरिणाः, क्वचित्तरुतलवि-

---

पतन्ति। भांकारभीषणा भ्रमन्ति च॥ अभिचार उच्चाटनम्। अभिचारिणश्चोच्चाटनमारणाद्यर्थं चरुपचनं कुर्वन्ति, रक्तेन चाग्नीन्प्रीणयन्ति। पारिभद्रा निम्बाः। मदना इत्यन्ये। उन्मत्ता अपि निर्विवेकतया रक्तादि यत्किंचिदशुचिप्रायमग्निषु निक्षिपन्ति, तत एव विश्वस्य दोषाय पर्यवस्यन्ति। तारकितमिव रंहो वेगो येषां ते। शिलाजतु अश्मसारः। दावदहनेन पच्यमानानि यानि चटकाण्डानि तेषां विदारणवशात्स्फुटिता ये खण्डाः कपालानि तैः। दोलावदुपरिपतितैः खचितानि कषायमानानि यानि तरुकोटरेषु कीटपटलानि क्रिमिसमूहास्तेषामतिपेशलत्वेन यत एव तद्वैः खण्डैरुपर्याच्छादकतया स्थितैः पुटपाकैः प्रलवधूमोऽभ्यन्तरपाकस्तद्गन्धेन कटव उद्वेजकाः। अत्राग्निपाकेन खण्डत्वं खण्डेभ्यो रसनिःसरणात्खचितत्वं कीटानाम्। उन्मत्ता इति। ये चोन्मत्तास्ते सिकताभ्यास्ताः कर्दमविलिप्तदिशो गन्धकटवः शाटीकराद्याः पूर्वोक्ताः क्रियाः प्रायेण कुर्वत इति। सर्वत्रात्र महावाक्ये ध्वनिच्छायान्वेष्या। मातरिश्वानो वायवः।

सर्वतश्चेत्यादौ। दावाग्नयः प्रत्यदृश्यन्तेति संबन्धः। भल्ला इतिः। संधुक्षणमु-

---

गुफाओं में गंभीर झंकार भर कर हवा ने भयानक भ्रम उत्पन्न कर दिया। संसार को भस्म करने के अभिचार (वेदविहित हिंसात्मक कर्म) में चरु पकाने में चतुर हवा ने नीम के गुच्छों को इस तरह बरसाया मानों रुधिर की आहुति दे रही हो, हवा ने इस प्रकार वृक्षों में लगी हुई आग को तृप्त किया। हवा के वेग में आतप के तेज से बालू तारे की तरह चमकने लगे। गर्म चट्टानों से शिलाजीत का रस बह बह कर फैलने लगा। वन में लगी हुई आग की गर्मी से चिड़ियों के अंडे फूट कर पेड़ों के कोटरों में बिछ गए थे जिनमें झुलसे हुए कीड़ों से मिलकर पकने से पुटपाक की उग्र गन्ध उठ रही थी।

चारों ओर भीषण वनाग्नियाँ दिखाई पड़ने लगीं। मानों वे अग्नियाँ हजारों धौंकनियों के चलाने से क्षुभित होकर बढ़ती ही जा रही थीं। पुराने अजगर-साँप के गले की मोटी गुहा से निकलने वाली वायु उन्हें उत्तेजित कर रही थी। कहीं हिरनों की भाँति अग्नि

वरविवर्तिनो बभ्रवः, कचिज्जटावलम्बिनः कपिलाः, कचिच्छकुनिकुल-कुलायपातिनः श्येनाः, कचिद्विलीनलाक्षारसलोहितच्छवयोऽधराः, कचि-दासादितशकुनिपक्षकृतपटुगतयो विशिखाः, कचिद्दग्धनिःशेषजन्महेतवो निर्वाणाः, कचित्कुसुमवासिताम्बरसुरभयो रागिणः, कचित्सधूमोद्गारा मन्दरुचयः, कचित्सकलजगद्ग्रासघस्मराः सभस्मकाः, कचिद्वेणुशिख-रलग्नमूर्तयोऽत्यन्तवृद्धाः, कचिदचलोपयुक्तशिलाजतवः क्षयिणः, कचि-त्सर्वरसभुजः पीवानः, कचिद्दग्धगुग्गुलवो रौद्राः, कचिज्ज्वलितनेत्रदह-

---

दीपनम्। जरठाजगरा वृद्धसर्पाः। गला एव गुहा गलगुहाः। स्वच्छन्दमपविघ्नम्, यथारुचि। चरणं भक्षणम्, गमनं च। हरिणः शुक्लाः, मृगाश्च। बभ्रवः कपिलाः, नकुलाश्च। इतरत्र,—जटा मूलानि च। कपिलाः पिङ्गलाः। कपिलाख्यमुनिव्रतग्र-हणान्मनुष्या एवाभेदोपचारेण कपिलाः। एते च जटावल्कलधारिणः। कुलाया नीडाः। श्येनाः शुक्लाः, पक्षिकाश्च। अधरा धर्तुमशक्याः, अधोभवा वा। लाक्षाया विलीनतया पीतत्वात्। ओष्ठाश्चाधराः। आ समन्तात्सादिता आहताः, स्वी-कृताश्च। स्निग्धतया नीरसतया च। शकुनीनां पक्षेषु कृतपटुगतयः, निःसारतया कालस्थापितत्वात्। विगता शिखा ज्वाला येषां ते, विविधशिखाः शराश्च। निःशेषाः समस्ताः, प्राक्तनजन्मान्तरसंचिता अपि। जन्महेतवस्तृणाद्याः, कर्माणि च। निर्वाणाः शान्ताः, मोक्षगामिनश्च। कुसुमं धूमः, पुष्पं च। अम्बरं नभः, वस्त्रं च। रागिणो लोहिताः, शृङ्गारिणश्च। अजीर्णकृतोऽपि धूमोद्गारः। रुचिर्दीप्तिः, भोज-नाभिलाषश्च। जगदेव ग्रासः कवलं तद्भक्षणशीलाः। भस्मभूरिकश्चात्यशनव्याधिः। वृद्धा वृद्धिं गताः, स्थविराश्च। ते वेणुशिखरमवलम्बन्ते यष्टिं गृह्णन्ति। अचलाः पर्वताः। अन्यत्र,—वयस्य दीर्घकालपर्यवसायित्वादचलमविच्छिन्नं भक्षितशिलाह्वयाः। उक्तं च—'शिलाधातुप्रयोगाद्वा प्रसादाद्वाथ शांकरात्। अजामूत्रप्रयोगाद्वा क्षयः क्षीयेत नान्यथा॥' इति। क्षयो विनाशः, व्याधिभेदश्च यक्ष्माख्यः। रसः सलि-

---

ग्रामों में स्वच्छन्द विचरण करतीं, कहीं नेवलों की तरह वृक्षों के नीचे विवरों में घुस पड़तीं, कहीं तपस्वियों की तरह शिखाओं की पीली जटाएं धारण करतीं, कहीं बाजों के समान पक्षियों के घोंसलों पर टूट पड़तीं, कहीं द्रवित होकर बहते हुए लाक्षारस से अधर के समान लाल हो जातीं, कहीं पक्षियों के पंख पाकर बाणों की भाँति शीघ्र बढ़ जातीं, कहीं अपने जन्म के हेतु तृण और काष्ठ आदि को जलाकर बुझने लगतीं, फूलों की सुगन्ध से बसे वस्त्र पहनने वाले रागी की भाँति कहीं धुएँ से आकाशमंडल को वासित करतीं, कहीं अग्नि के मारे रस का उपभोग करके स्थूल हो जातीं, रुद्रगण के समान कहीं भीषण होकर गुग्गुलु जलातीं, कहीं लपटों से पुष्पित शर और मदन आदि वृक्षों को

नदग्धसकुसुमशरमदनाः कृतस्थाणुस्थितयः, चटुलशिखानर्तनारम्भारभटीनटाः, क्वचिच्छुष्ककासारसृतिभिः स्फुटन्नीरसनीवारबीजलाजवर्षिभिर्ज्वालाञ्जलिभिरर्चयन्त इव घर्मघृणिम्, अघृणा इव हठहूयमानकठोरस्थलकमठवसाविस्रगन्धगृध्नवः, स्वमपि धूममम्भोदसमुद्भूतिभियेव भक्षयन्तः सतिलाहुतय इव स्फुटद्बहलबालकीटपटलाः कक्षेषु, श्वित्रिण इव प्लोषविचटद्वल्कलधवलशम्बूकशुक्तयः, शुष्केषु सरःसु, स्वेदिन इव विलीयमानमधुपटलगोलगलितमधूच्छिष्टवृष्टयः काननेषु, खलतय इव

लादिः। अत एव पीवानः। अन्यथा कथं सलिलादिभक्षणशक्तित्वममीषां प्रसज्येत। ये च मधुरादिसर्वरसानुपभुञ्जते ते स्थूला भवन्ति। रौद्रा भीषणाः, रुद्रभक्ताश्च। नेत्राणां मूलानां दहनेन दग्धाः सकुसुमाः काण्डानि मदना वृक्षभेदाश्च यैः। स्थाणुश्छिन्नशाखो वृक्षः, शिवश्च। स्थितिः स्थानम्, व्यवहारश्च। स्थाणुनापि नयनाग्निना सकुसुमशरः कामो दग्धः। चटुलत्वेन नर्तनाम्भः, रवश्च। शुष्कत्वाद्बटुलादेरारभटीग्रहणम्। कासाराणि नड्वलास्तेषु याः सृतयः। क्वचित् 'स्मृतयः' इति पाठः। इतरत्र तु—शुष्ककं शुष्कगीतं मुण्ठुमादि। आसार्यन्त इत्यासाराः। आसारितानि यद्यपि गीयन्त एव, तथापि 'वर्धमानमथापीह ताण्डवं यत्र योज्यते' इति। ताण्डवं ह्यारभटीप्रधानम्। अर्चयन्त इवेति। तेषां तदभिमुखत्वात्। घर्मघृणिः सूर्यः। अघृणा अजुगुप्साः। कमठः कूर्मः। 'विस्रं स्यादामगन्धि यत्' गृध्नवो लम्पटाः। समुद्भूतिः संभारः। धूमात्किल मेघोत्पत्तिर्मेघाः शमयन्ति। कीटाः कृमयः। प्लोषो दाहः। वल्कलशब्दस्त्वगुपलक्षणार्थः। शम्बूकाः शुक्तिमन्तः प्राणिभेदाः। मधुपटलगोलो माक्षिककरण्डः। मधूच्छिष्ट सिक्थकम्। खलतयः खल्वाटाः।

जलातीं, स्थाणुओं में लगतीं, चंचल शिखाओं को फैलाकर आरभटी नृत्य का प्रदर्शन करतीं, जैसे साक्षात् शिव हों। वे दावाग्नियाँ सूखे जलाशयों में फैल कर नीरस नीवार नामक धान के लावे की तरह अपनी ज्वालाओं की अंजलियों से भगवान् सूर्य को मानों पूज रही थीं। घृणारहित होकर कठोर स्थलकमठों के पकते हुए मांस के लिए मानों लालायित हो रही थीं मानो मेघों के उठ जाने के भय से अपने धूम को खाती जा रही थीं। घासों में आग लग जाने से छोटे-छोटे कीड़े पड़क-पड़क कर फूटने लगे मानों अग्नि में जल की आहुति पड़ रही हो। सूखे हुए सरोवरों में उजले-उजले घोंघे और सीपियाँ आग से इस तरह चटक रही थीं मानों श्वेत कुष्ठ के रोगी की चमड़ी हों। जंगलों में आग मधुमक्खियों के छाते को उजाड़ रही थी, उनसे मधु की धार इस प्रकार बरसने लगी मानों आतप से पीड़ित की भाँति पसीना बहने लगा। विस्तृत बञ्जुहट प्रान्तों में

परिशोर्यमाणशिखासंहतयो महोषरेषु, गृहीतशिलाकवला इव ज्वलितसूर्यमणिशकलेषु शिलोच्चयेषु, प्रत्यदृश्यन्त दारुणा दावाग्नयः।

तथाभूते च तस्मिन्नत्युग्रे ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—'एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मन्, अविलम्बितं प्रवेशयैनम्' इति।

अथ तेनानीयमानम्, अतिदूरगमनगुरुजडजङ्घाकाण्डम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगल-

---

शिखा ज्वाला, चूडा च। ऊषरं सिकताबहलो रूक्षो देशः। शिलोच्चयो गिरिः। 'दावो वनगतो वह्निर्दावश्च वनमुच्यते'।

तथाभूतदेश इत्यादिनात्मानं प्रति तेषामादरातिशयं दर्शयति। आकुर्वत इति। न स्वप्रस्तावे। एतेन स्वस्य किमपि माहात्म्यमाह। स्वयमवसरमन्तरेण वा तस्य तदा प्रवेशाभावात्। एतदेव देवस्येत्यादिविशेषणसंदर्भमुखेन द्वारमध्यास्त इत्यनेन पोषयिष्यते। पारशवः शूद्रापुत्रः। शाणो मणिकषणम्। कोणोऽश्रिः। चक्रवर्तिनः सार्वभौमाः। धौरेयो मुख्यः। प्रज्ञाततमोऽतिप्रतीतः। एतेन च बाणं प्रति बहुमान एव गम्यते।

जडा गमनाशक्ताः। कर्दमेन रक्तं कार्दमिकम्। चेलं वस्त्रम्। चीरिका खण्डिका। उच्चण्डमुच्चम्। गाढमित्यन्ये। चण्डातकमर्धोरुकं वासः। पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्।

शिखाएं फैलने लगीं। पर्वतों में सूर्यकान्त मणियाँ जल उठीं, मानों दावाग्नियाँ शिलाओं के ग्रास बना रही थीं।

इस प्रकार ग्रीष्मकाल अत्यन्त प्रखर हो उठा। एक दिन जब बाण खा-पीकर निश्चिन्तता से लेटे थे तभी दोपहर के बाद पारशव भ्राता चन्द्रसेन ने भीतर प्रवेश कर निवेदन किया—'चारों समुद्रों के अधिपति, समस्त राजसमूह की चूड़ामणियों की रगड़ से निर्मल नखमणि वाले, समस्त चक्रवर्ती राजाओं में धुरंधर, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् हर्षदेव के भाई कृष्ण ने अत्यन्त विश्वासपात्र अपना दूत पठाया है जो द्वार पर खड़ा है।' बाण ने कहा—'आयुष्मान्, शीघ्र उसे अन्दर लाओ।'

तब बाण ने उसके द्वारा लाए गए प्रवेश करते हुए उस लेखहारक को देखा। लम्बी सफर करने से उसकी जाँघें भर गई थीं। मटियाले रंग की पेटी से उसका ऊंचा चंडातक

ग्रन्थिम्, अतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतलेखव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च दूरादेव—'भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्रभवतः कृष्णस्य ?' इति। स 'भद्रम्' इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—'एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेखः प्रहितः' इति विमुच्यार्पयत्। बाणस्तु सादरं गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—'मेखलकात्संदिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी धीमता परिहरणीयः कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासंवादनमात्रकम्'। अवधृतलेखार्थश्च समुत्सारितपरिजनः संदेशं पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—'एवमाह मेधाविनं स्वामी—जानात्येव मान्यो यथैकगोत्रता वा, समानज्ञानता वा, समानजातिता वा, सहसंवर्धनं वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतवः।

निम्नितं नमितम्। लेखमालिकेति। अन्यैरपि तद्धस्ते लेखः प्रहित इति परागतः संबन्धः। 'परिकरित-' इति पाठे वेष्टित इत्यर्थः। तत्रभवतः पूज्यस्य। नातिदूर इति। अपि तु दूर एवेति सर्वत्रैव स्वस्य प्रभावातिशयं प्रतिपादयति। फलं प्रतिबध्नाति रुणद्धीति फलप्रतिबन्धी। कालातिपातः कालात्ययः। अर्थजातमभिधेयप्रकारः। अवधृतो ज्ञातः। एकेत्यादि कारणमुत्तरोत्तरमप्रधानम्।

(पजामा) कसा हुआ था। उसकी पीठ पर जीर्ण वस्त्र का गले में बंधा अंगोछा फहरा रहा था। लेखमालिका या चिट्ठी डोरे से बीचों बीच लपेट कर बांधी गई थी जिससे वह दो भागों में बँटी हुई जान पड़ती थी, उसे उसने अपने सिर से बांध लिया था। बाण ने दूर ही से देख कर पूछा—'भद्र, सबके अकारणबन्धु तत्रभवान् कृष्ण तो कुशल से हैं?' वह 'जी हां, कुशल से हैं' यह कह कर प्रणाम करने के बाद कुछ दूरी पर बैठ गया और विश्रान्त होकर बोला—'मालिक ने यह लेख माननीय आपके पास भेजा है।' यह कह उसने सिर से खोल कर अर्पित किया। बाण ने आदर के साथ उसे लेकर स्वयं पढ़ा—'मेखलक से सन्देश समझ कर काम को बिगाड़ने वाली देरी मत करना। आप बुद्धिमान् हैं, पत्र में इतना ही लिखा जाता है, शेष मौखिक सन्देश से ज्ञात होगा।' बाण ने लेख का तात्पर्य समझ कर परिजनों को हटा दिया और मेखलक से सन्देश पूछा। मेखलक बोला—'स्वामी ने मेधावी आपसे इस प्रकार कहा है—मान्य, आप जानते ही हैं कि एक गोत्र होना, बराबर ज्ञान होना, समानजाति होना, साथ में रह कर बढ़ना, एक ही देश में निवास करना, बार-बार दर्शन होना, एक दूसरे के अनुराग को सुनना,

त्वयि तु विना कारणेनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपीन्दोरिव कुमुदाकरे। यतो भवन्तमन्तरेणाऽन्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशात्रवः। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवतः केनचिदसहिष्णुना यत्किंचिदसदृशमुदीरितम्। इतरो लोकस्तथैव तद्गृह्णाति वक्ति च। सलिलानीव गतानुगतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिनां मनांसि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चयश्च किं करोतु पृथिवीपतिः। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्— यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधीति। तथेति च स्वामिना प्रतिपन्नम्। अतो भवता राजकुलमकृतकालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकेशी-

---

अन्यथा चान्यथा चेति। एतेन किंचिदेव संभवतीति दर्शयति। अत एवाह—न च तत्तथेति। तथात्वे तु बाणस्य दुर्वृत्तता प्रसज्येत। कृष्णस्यापि तादृशः पक्षपातः स्वामिप्रतारणादि च दोषायैव भवेत्। अत एव वक्ष्यति—तत्त्वान्वेषिभिरित्यादि। ग्राहित इत्येतावति वक्तव्य आसीदित्यनेन दुर्जनाः संप्रति निरवकाशा इति प्रतिपादितम्। अत एव वक्ष्यति—तथेति च प्रतिपन्नं स्वामिनेति। सतां साधूनामपि। सतां भवताम्। उदासीनो मध्यस्थः। अपराचीनापराङ्मुखी चेतोवृत्तिर्यस्याः। अवकेशी

परोक्ष में उपकार करना, शील में समान होना ये सब स्नेह के हेतु हैं, पर तुममें तो अकारण ही मेरा हृदय भाई के समान स्नेह का पक्षपाती हो गया है। तुम दूर हो फिर भी चन्द्रमा जैसे कुमुद में स्नेह करता है उसी प्रकार मेरा हृदय भी अकारण स्नेह से भर गया है। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगों ने सम्राट् के कान भर दिए हैं, पर यह सत्य नहीं है। सज्जनों में भी कोई ऐसा नहीं है जिसके मित्र, उदासीन और शत्रु न हों। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं से चिढ़ कर कुछ उल्टा-पुल्टा कह दिया है। अन्य लोग भी वैसा ही समझते हैं और कहते रहते हैं। मन्दबुद्धियों का चित्त अस्थिर और दूसरों के कहे पर चलता है। बहुतों के मुँह से सुन कर सम्राट् ने अपना मत स्थिर कर लिया। तत्त्व को पहचानने वाले हम लोग दूर रहने वाले भी तुमको अच्छी तरह जान गए हैं। तुम्हारे लिए सम्राट् तक सिफारिश पहुँचाई गई है कि इस तरह की चपलता प्रायः सबकी आयु के प्रथम भाग में हो जाती है। सम्राट् ने इस बात को स्वीकार किया। इसलिए समय-यापन न करके आप राजकुल

वादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नपि न मे बहुमतः। न च सेवावैषम्य-विषादिना परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा वा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि—

स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे
कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः॥

तथाप्यन्ये ते भूपतयः, अन्य एवायम्। न्यक्कृतनृगनलनिषधनहुषा-म्बरीषदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमयः स्वामी। नास्या-हंकारकालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टयः, न गर्वगरगुरुगलग्रहगद्गदा गिरः, नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदर्पदाहज्वर-

---

निष्फलतरुः। स चादृष्टरविस्तरुमध्यगो न कस्यचित्प्रियः। स्वेच्छोपजाता विषया मण्डलानि यस्मात्तादृगपि देहि प्रयच्छेति वक्तुं न पार्यते। इतरत्र—स्वेच्छया स्वसंकल्पेनोपजात उत्पन्नो विषयो गोचरो यस्य। तथा चोच्यते—'काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे' इति। अथ च स्वेच्छया उपजाता विषया यस्यायं देही च शरीरवानिति वक्तुं न याति। न शक्यत इति विरोधः। कामश्चानङ्गत्वाद्देही शरीरवानिति वक्तुं न युज्यत इत्यन्यार्थः। मार्गणा याचकाः, शराश्च मार्गणाः। जीव्यतेऽनेनेति जीवनम्, ग्रामादि जीवितं च, ईश्वरो राजा हरश्च। दुर्विदग्धो दुरूढः, दुष्टत्वाद्विशेषेण दग्धश्च।

अमृतेत्यादि साभिप्रायम्। यस्मादहंकारादि कालकूटादिना रूपयति, अतश्चा-हंकारादीनामत्यन्ताभावप्रकाशनेच्छयामृतमयत्वमस्य दर्शयति। अमृतमयस्य

में पधारिए। सम्राट् से बिना मिले आपका बन्धुओं के बीच निवास करना निष्फल वृक्ष की तरह मुझे अच्छा नहीं लगता। आपको सेवा में झंझट समझ कर उदासीन न होना चाहिए और सम्राट् के पास आने में न डरना चाहिए। यद्यपि (शिव द्वारा भस्म किए गए कामदेव के समान अविवेकी राजा क्लेश का कारण होता है, क्योंकि वह अपनी इच्छा से उपभोग की सामग्री प्राप्त कर लेता है मगर किसी को अर्पित नहीं करता। अगर याचक ने 'देहि' की बार बार आवाज लगाई तो उसे डांट देता है। दोषादोष के बिना जाने ही अपने अनुजीवियों के प्राण हर लेता है। इसी प्रकार कामदेव भी कामी को पीड़ित करता है) तथापि ऐसे राजे कोई दूसरे ही होते हैं, हर्ष तो उनसे भिन्न हैं। इनके सामने नृग, नल, नहुष, निषध, अम्बरीष, दशरथ, दिलीप, नाभाग, भरत, भगीरथ, ययाति आदि क्या हैं! हर्ष तो साक्षात् देवता हैं, न तो इनकी दृष्टि अहंकार के काल-कूट विष से जली हुई क्रूर है, न इनकी वाणी दर्परोग से गला जकड़ जाने के कारण भर्राई हुई है,

वेगविक्लवा विकाराः, नाभिमानमहासन्निपातनिर्मिताङ्गभङ्गानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतौष्ठनिष्ठ्यूतानिष्ठुराक्षराणि जल्पितानि। तथा च—अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु। सर्वाभिसरे यशसि महाप्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनाभियोगः, न निजकलत्रधर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने। अपि च,—अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोप-

---

च कालकूटादिभिर्न योगः। गरं विषम्। स्मयो गर्वः। स्थानकानि स्थितयः। अर्दितं वातव्याधिभेदः। तस्मिन्सति मुखं वक्रं भवति। तथा चोक्तम्—'वायुः प्रवृद्धस्तैस्तश्च वातलरूर्ध्वमाश्रितः। वक्रीकरोति वक्त्रमुक्तं सितमीक्षितम्॥' इइति। निष्ठ्यूतानि निर्गतानि। विमलेष्वपापेषु; अन्यत्र,—सुच्छायेषु। पद्मरागादिष्विति वक्तव्ये शिलेत्यादिपदमादरार्थम्। एवमुत्तरत्रापि वाच्यम्। मुक्तवत्ताभिश्च धवलास्तेषु गुणेष्वौदार्यादिषु, सूत्रेषु च। प्रसाधनं प्रकृष्टं साधनम्, अर्जनम्, भूषणं च। दानं धनत्यागः, मदश्च। साधनं संपादनम्, सैन्यं च। साध्यतेऽनेनेति कृत्वा। करो दण्डः, पाणिश्च। आशा दिशः, चेतः, वाञ्छा च। प्रसाधनं संपादनम्, दण्डश्च। गुणो ज्या, शौर्याद्याश्च गुणाः। उपक्रियन्तेऽनेनेत्युपकरणमुपयोगः। आत्मेति। न हि मित्राणि मित्रव्यतिरेकेण बान्धवादिव

न इनकी स्थिति ऐसी है कि घमंड रूप अपस्मार रोग हो जाने से धैर्य बिलकुल समाप्त हो गया है, इनके चित्त के विकार ऐसे नहीं जिसमें उत्कट दर्प के ज्वर की व्यग्रता है, न इनकी चाल ऐसी है कि अभिमान रूप महासन्निपात हो जाने से लड़खड़ाने लगी हो, इनकी बातों में ऐसे निष्ठुर अक्षर जो ओंठ दबोच कर निकाले जाते हैं, नहीं होते। इसी प्रकार—हर्ष निर्मल चित्त वाले सज्जनों को ही रत्न समझता है, पत्थर के टुकड़ों को रत्न नहीं। मोती के समान उज्ज्वल गुणों को वह प्रसाधन समझता है, पत्थर के टुकड़ों को नहीं। श्रद्धा से ऐसे कर्म करता है जिसमें दान हो, बल्कि दानजल बहाने वाले हाथियों का संग्रह नहीं करता। सबसे बढ़े हुए यश की उसमें उत्कंठा है, सूखे तृण के समान प्राणों की नहीं। सब दिशाओं का प्रसाधन करता है जिनका उसने करग्रहण किया है, अपनी कलत्रों की चर्मपुतलियों का बनाव-सिंगार नहीं करता। वह गुण (डोरी) वाले धनुष को अपना सहायक मानता है, पेट पर पलने वाले सेवकों पर आश्रित नहीं रहता। वह अपने आपको मित्रों का उपकारक मानता है, अपने प्रभुत्व को अनुचरों का उपकारक मानता है,

करणं लक्ष्मीः, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्, द्विजोपकरणं सर्वस्वम्, सुकृतसंस्मरणोपकरणं हृदयम्, धर्मोपकरणमायुः, साहसोपकरणं शरीरम्, असिलतोपकरणं पृथिवी, विनोदोपकरणं राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्षः। नास्याल्पपुण्यैरवाप्यते सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया' इति। श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेनं समादिशत्—'कृतकशिपुं विश्रान्तसुखिनमेनं कारय' इति।

अथ गते तस्मिन्, पर्यस्ते च वासरे, संघट्टमानरक्तपङ्कजसंपुटपीयमान इव क्षयिणि क्षामतां व्रजति बालवायसास्यारुणेऽपराह्णातपे, शिथिलितनिजवाजिजवे जपापीडपाटलिम्न्यस्ताचलशिखरस्खलिते खञ्जतीव

लभ्यादि किंचिदपेक्ष्यन्ते। प्रभुत्वमिति। तस्य प्रभुत्वं सेवकादीनां दानसंपादनादि। यथाह—'यथाकालं प्रवर्तन्ते पण्डिताः' इत्यादिवैदग्ध्यमात्रापेक्षया पण्डितानां कृपणादिवदर्थादनपेक्षितया हि तेषामौचित्यं न प्रतीयते। अनेन पण्डितसामान्यात्तदभिप्रायेण स्वस्य समुचितमेव हेवाकमभिव्यनक्ति। वैदग्ध्यापेक्षित्वं दर्शयतीति यावत्। बान्धवाः कुल्याः। लक्ष्मीश्छत्रचामरादिप्रतिपत्तिरूपा छत्रादिवत्तुल्या एव लभन्तेऽन्येषामनर्हत्वात्। कृपणेत्यादि। कृपणानां पोषणमेव समुचितम्। तत्र चैश्वर्यमेव हेतुः। ऐश्वर्यमर्थवत्ता। न तु द्विजातिवदेते सर्वस्वमर्हन्ति। सर्वशब्देन दारा अप्युच्यन्ते। एवमादि तु द्विजा एव लभन्ते। तद्व्यतिरेकेणान्येषामनर्हत्वात्। एवं हृदयादि। तत्तदभिप्रायेण विचारणीयम्। सुखमेवास्वाद्यतया रस इव रसः सुखरसः। छाया कान्तिः। यद्वा,—छायावत्त्वमेषां सर्वस्य कस्यचिदाश्रयणीयत्वादुपचर्यते। अल्पेत्यादि। अभिप्रायेण पादयोः कल्पवृक्षतुल्यत्वमभिव्यज्यते। पुण्यवशात्तदवाप्तेः। एतत्पक्षे छायाऽऽतपप्रतिपक्षजातिः। 'भोजनाच्छादने सद्भिरुभे कशिपुरुच्यते'।

वायसः काकः। जपा रविप्रियं पुष्पम्। आपीडः स्तबकः। कोऽत्रास्तेत्यादि-

वैदग्ध्य को विद्वानों का उपकारक मानता है, धन-वैभव को बन्धु-बान्धवों का उपकारक मानता है, अपने सर्वस्व को ब्राह्मणों का उपकारक मानता है, उसका हृदय पुण्य के स्मरण करने में उपकरण है, उसकी आयु धर्म का उपकरण बन गई है, उसका शरीर साहस का उपकरण है, खड्गबल से पृथिवी को अपने अधीन रखता है, राजसमूह उसके विनोद का साधन है और शत्रु उसके प्रताप के साधन हैं। जिनका पुण्य अल्प है ऐसे लोग इसके पाद-पल्लव की आनन्ददायिनी छाया नहीं प्राप्त करते।' इतना सुनकर बाण ने उसी चन्द्रसेन को आज्ञा दी—'मेखलक को भोजन-आसन का प्रबन्ध करके आराम से ठहराओ।'

मेखलक चला गया। दिन भी ढल चुका था। अपराह्ण का आतप क्षीण हो रहा था

कमलिनीकण्टकक्षतपादपल्लवे पतङ्गे, पुरः परापतति प्रेङ्खदन्धकारलेशलम्बालके शशिविरहशोकश्याम इव श्यामामुखे, कृतसंध्योपासनः शयनीयमगात्। अचिन्तयच्चैकाकी—'किं करोमि। अन्यथा संभावितोऽस्मि राज्ञा। निर्निमित्तबन्धुना च संदिष्टमेवं कृष्णेन। कष्टा च सेवा। विषमं भृत्यत्वम्। अतिगम्भीरं महद्राजकुलम्। न च मे तत्र पूर्वजपुरुषप्रवर्तिता प्रीतिः, न कुलक्रमागता गतिः, नोपकारस्मरणानुरोधः, न बालसेवास्नेहः, न गोत्रगौरवम्, न पूर्वदर्शनदाक्षिण्यम्, न प्रज्ञासंविभागोपप्रलोभनम्, न विद्यातिशयकुतूहलम्, नाकारसौन्दर्यादरः, न सेवाकाकुकौशलम्, न विद्वद्गोष्ठीबन्धवैदग्ध्यम्, न वित्तव्ययवशीकरणम्, न राजवल्लभपरिचयः।

स्वरूपकथनं क्षतपादपल्लवत्वादुत्प्रेक्षणम्। खञ्जतीवेति। यश्च खञ्जति स शिखरप्राये विषमे पथि। ये पुनरस्ताचले शिखरस्खलनकारणकं खञ्जनमित्युत्प्रेक्षयन्ते तान्प्रति कमलिनीत्यादि निरर्थकम्। खञ्जतीव स्खलतीव। पुरः पूर्वस्यां दिशि। श्यामा रात्रिः, योषिच्च। मुखमारम्भः, वदनं च। निर्निमित्तेत्याद्यभिप्रायेण वक्ष्यति।

मानों मुकुलित होते हुए लाल कमलों ने उसे पी लिया हो। वह नवजात कौवे के समान ललछहूँ वर्ण का हो गया था। सूर्य ने अपने घोड़ों के वेग को कम कर दिया और जपा-पुष्प के गुच्छे के समान पाटल होकर अस्ताचल के शिखर पर गिर पड़ा मानों कमलिनी के काँटे उसके पैरों में चुभ गये जिससे वह लड़खड़ाने लगा मानों चन्द्रमा के विरह-जन्य शोक से रात्रि का मुख (आरम्भ) नीला हो गया हो, अन्धकार के लम्बे लम्बे बाल उस पर लहराने लगे। तब बाण ने सन्ध्योपासना की और शय्या पर लेट गये। फिर एकान्त में सोचने लगे—'मैं क्या करूँ? सम्राट् ने अवश्य ही मुझे कुछ दूसरा समझ लिया है। मेरे अकारणबन्धु कृष्ण ने इस तरह का सन्देश भेजा। राजाओं की सेवा कष्टकरी है, और हाजिरी बजाना और भी टेढ़ा है। राजदरबार में बड़े खतरे हैं। मेरे पुरखों की कभी न तो इसमें रुचि रही है, न मेरा दरबार से पुश्तैनी सम्बन्ध रहा है। न तो राजकुल के द्वारा किए गए उपकार का स्मरण आता है, न बचपन में राजकुल से ऐसी मदद मिली है जिसका स्नेह माना जाय; न अपने कुल का ही ऐसा कोई गौरव रहा है; न पहली मेल-मुलाकात की अनुकूलता है; न यह प्रलोभन है कि बुद्धिसम्बन्धी विषयों में आदान-प्रदान किया जाय; न यह चाह है कि जान-पहचान बढ़ाऊँ; न सुन्दर आकार से मिलने वाले आदर की चाह है; न सेवकों जैसी चापलूसी करने की आदत है; न मुझमें वैसी विलक्षण चतुराई है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लूँ; न पैसा खर्च करके दूसरों को वश में करने की आदत है; न राजा के प्रेमी जनों के साथ जान-पहचान

अवश्यं गन्तव्यञ्च। सर्वथा भगवान्भवानीपतिर्भुवनपतिर्गतस्य मे शरणम्, सर्वं सांप्रतमाचरिष्यति, इत्यवधार्य गमनाय मतिमकरोत्।

अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधवलदुकूलवासाः, गृहीताक्षमालः, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुशः समावर्त्य देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपकबहुलां विधाय परमया भक्त्या पूजाम्, प्रथमहुततरलतिलत्वग्विघटनचटुलमुखरशिखाशेखरं प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्त्वा द्युम्नं यथाविद्यमानं द्विजेभ्यः, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखीं नैचिकीम्, शुक्लाङ्गरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षा-

---

अवश्यं गन्तव्यं चेत्यादि। 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः'। इह च लक्षणया वक्रोक्तिः। सांप्रतं युक्तम्।

अथेत्यादौ। अन्यस्मिन्नहनि प्रीतिकूटाद्गिरगादिति संबन्धः। प्रस्थानं प्रयोजनं येषां तानि प्रास्थानिकानि सूक्तानि, वेदोक्ता मन्त्रविशेषाः। विरूपाक्षस्त्र्यक्षः। प्राज्यं भूरि। आज्यं घृतम्। द्युम्नं धनम्। यथाविद्यमानमित्यनेन निर्लोभतोक्ता। नैचिकीं वराङ्गीम्, होमधेनुं वा, शुक्लां वा। गिरिकर्णिकाश्वखुरी मङ्गल्यौषधिः। सिद्धार्थकाः सर्षपाः। स्वस्रा भगिन्या। महाश्वेता देवताविशेषः। रविस्थदेवते-

है। जाना तो पड़ेगा ही। त्रिभुवन-गुरु भगवान् शंकर मेरी शरण हैं, वही जाने पर सब भला करेंगे।' यही सोचकर चलने का इरादा पक्का कर लिया।

दूसरे दिन बाण उठे, प्रातःकाल ही स्नान कर लिया। श्वेत दुकूल पहनकर हाथ में अक्षमाला ली। प्रास्थानिक सूक्तों और मन्त्रों को बारबार दुहराया और देवों के देव भगवान् शंकर को दूध से स्नान कराके सुगन्धित फूल, धूप की गन्ध, ध्वज, भोग, विलेपन, प्रदीप आदि सामग्री के साथ बड़ी श्रद्धा-भक्ति से अर्चना की। अग्नि में आहुति दी। पहली बार तिल की आहुति पड़ते ही अग्नि की शिखाएँ चटकने लगीं और तब घी की आहुति पड़ते ही बढ़ गई। तत्पश्चात् बाण ने अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा दी। पूर्व की ओर खड़ी हुई उत्तम गौ की प्रदक्षिणा की। श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किया। गोरोचना लगाकर दूबनाल में गुथे हुए श्वेत अपराजिता के फूलों का कर्णफूल कान में लगाया, चोटी में पीली सरसों रखी। पिता

दिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमङ्गलः, दत्ताशीर्वादो बान्धववृद्धाभिः, अभिनन्दितः परिजनजरतीभिः, वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातो गुरुभिः, अभिवादितैराघ्रातः शिरसि कुलवृद्धैः, वर्धितगमनोत्साहः शकुनैः, मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहदः, शोभने मुहूर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठं दत्तपिष्टपञ्चाङ्गुलपाण्डुरं मुखनिहितनवचूतपल्लवं पूर्णकलशमीक्षमाणः, प्रणम्य कुलदेवताभ्यः कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः, प्रथमचलितदक्षिणचरणः, प्रीतिकूटान्निरगात्।

प्रथमेऽहनि तु घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुललम्बितलोलजिह्वालतासहस्रैः पुलकितमिवाच्छभ-

---

त्यन्ये। दत्तेत्यादिभागो बान्धववृद्धाभिप्रायेण समुचित एव। अभिनन्दित इति। प्रतिपदं द्वयमूह्यम्। जरत्यो वृद्धाः। आघ्रातः शिरसि चुम्बितः। मौहूर्तिका गणकाः। नक्षत्रदोहदं प्रतिनक्षत्रप्राशनम्, नक्षत्रविषयोऽभिलाषो वा। अजिरमङ्गणम्। स्थण्डिलं भूः। परिक्षिप्तो वेष्टितः। पिष्टपञ्चाङ्गुलमाजकोक्ताभिः पञ्चभिरङ्गुलीभिर्मङ्गलाय दीयते। अप्रतिरथं प्रास्थानिकं मन्त्रम्। निजेत्यादिना स्वस्य दातृत्वमुक्तम्।

उत्कीर्णा निखाता। कात्यायनी दुर्गा। प्रतियातना प्रतिमा। काननत्वात्पल्ल-

---

की छोटी बहन मालती ने जो माता के समान स्नेह भरे हृदयवाली, मानों भगवती महाश्वेता हो, बाण के प्रस्थान-समय के लिये उचित मङ्गलाचार किया। सगी वृद्धाओं ने आशीर्वाद दिया और परिवार की वृद्धाओं ने अभिनन्दन किया। पूजितचरण गुरुओं ने जाने की अनुमति दी और अभिवादित कुलवृद्धों ने मस्तक सूँघा। शकुनों से जाने का उत्साह बढ़ा। फिर ज्योतिषी के अनुसार नक्षत्र-देवताओं को प्रसन्न किया। इस प्रकार शुभ मुहूर्त में हरित गोबर से लिपे हुए आँगन के चौतरे पर स्थापित पूर्ण कलश के दर्शन करके कुलदेवताओं को प्रणाम करके, हाथ में फल-फूल लिए हुए और अप्रतिरथ सूक्त के मन्त्रों का पाठ करते हुए अपने पुरोहित ब्राह्मणों द्वारा अनुगत होकर बाण दाहिना पैर पहले उठाकर प्रीतिकूट से निकले।

पहले दिन चण्डिका बन पार किया और मल्लकूट नामक गाँव में पड़ाव किया। चण्डिका बन के मार्ग में घाम हो जाने के कारण बाण को चलने में कष्ट हुआ, क्योंकि

ङ्गगोलाङ्गूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासंघाते रोमाञ्चितमिव दग्ध-स्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः शनैश्चण्डिकायतनकाननमतिक्रम्य मल्ल-कूटनामानं ग्राममगात्। तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना संपादितसपर्यः सुखमवसत्। अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवतीं भागीरथीं यष्टिगृहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्। अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरमन्वजिरवति कृतसन्निवेशं समाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।

निर्वर्तितस्नानाशनव्यतिकरो विश्रान्तश्च मेखलकेन सह याममात्रावशेषे दिवसे भुक्तवति भूभुजि प्रख्यातानां क्षितिभुजां बहून्शिबिरसंनिवेशान्वीक्षमाणः शनैः शनैः पट्टबन्धार्थमुपस्थापितैश्च डिण्डिमाधिरोहणायाहूतैश्चाभिनवबद्धैश्च विक्षेपोपार्जितैश्च कौशलिकागतैश्च प्रथमदर्शनकु-

---

ञ्चितमिवेत्युत्प्रेक्षा। जिह्वेव लता, दीर्घत्वात्। गोलाङ्गूलः कृष्णमुखो वानरः। मधुगोलं माक्षिककरण्डः। सरघा मधुमक्षिकाः। अभीरुः शतावरी। कन्दलानि नवनालानि। भ्रात्रेति चन्द्रसेनेन। हृदयेत्याद्यभिप्रायेण सुखमित्युक्तम्। उपमणिपुरं पत्तनभेदम्। अन्वजिरवति नदीभेदनिकटे। संनिवेशो गृहादिरचना।

निर्वर्तितेत्यादौ राजद्वारमीदृशमगमदिति संबन्धः। निर्वर्तितेत्यादि। राजदर्शनेऽकातरत्वमात्मनः प्रतिपादयन्ति। वारणेन्द्रैः श्यामायमानमिति राजद्वारवि-

---

वहाँ कहीं जल का ठिकाना न था और न घनी छाया वाले पेड़ ही मिले। कहीं-कहीं वन के वृक्षों पर कात्यायनी की मूर्तियाँ खुदी हुई थीं जिन्हें रास्ते में आते जाते पथिक नमस्कार करते थे। वह वन सूख गया था, फिर भी श्वापद जन्तुओं की लपलपाती जीभें उस वन को मानों पल्लवित कर रही थीं। भालू और लंगूर मधुमक्खियों के छत्ते को चाटने लगते तो ये भन्नाकर उड़ने लगतीं मानों वन इस दृश्य से पुलकित हो रहा था। दावाग्नि से जली हुई वनभूमि में सतावर के पौधे इस तरह निकल आये थे मानों वह जंगल रोमाञ्चित हो उठा हो। मल्लकूट ग्राम में बाण के परममित्र और भाई जगत्पति ने उसकी आवभगत की और सुखपूर्वक ठहराया। दूसरे दिन बाण ने गङ्गा पार कर यष्टिगृहक नाम के वन गाँव में रात बिताई। फिर राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणिपुर नामक ग्राम के समीप छावनी में पहुँचा और राजभवन के पास ही ठहरा।

बाण ने स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होकर विश्राम किया और जब एक पहर दिन रहा और हर्ष भी भोजन आदि से निवृत्त हो चुके थे तब मेखलक को साथ लेकर उनसे

तूहलोपनीतैश्च नागवीथीपालप्रेषितैश्च पल्लीपरिबृढढौकितैश्च स्वेच्छायुद्ध-क्रीडाकौतुकाकारितैश्च दूतसंप्रेषणप्रेषितैश्च दीयमानैश्चाच्छिद्यमानैश्च मुच्यमानैश्च यामावस्थापितैश्च सर्वद्वीपविजिगीषया गिरिभिरिव सागरसेतुबन्धनार्थमेकीकृतैर्ध्वजपटपटुपटहशङ्खचामराङ्गरागरमणीयैः पुष्याभिषेकदिवसैरिव कल्पितैर्वारणेन्द्रैः श्यामायमानम् , अनवरतचलितखुरपुटप्रहतमृदङ्गैश्च नर्तयद्भिरिव राजलक्ष्मीमुपहसद्भिरिव सृक्किपुटप्रसृतफेनाट्टहासेन जवजडजङ्घां हरिणजातिमाकारयद्भिरिव संघट्टहेतोर्हर्षहेषितेनोच्चैरुच्चैःश्रवसमुत्पतद्भिरिव दिवसकररथतुरगरुषा पक्षायमाणमण्डनचामरमालैर्गगनतलं तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणम् , अन्यत्र प्रेषितैश्च प्रेष्यमाणैश्च प्रेषितप्रतिनिवृत्तैश्च बहुयोजनगमनगणनसंख्याक्षरावलीभिरिव वराटिकावलीभिर्घटितमुखमण्डनकैस्तारकितैरिव संध्यातपच्छेदैररुणचामरिकारचितकर्णपूरैः

शेषणम् । डिण्डिमः पटहः । विक्षेपः करः । नागवीथी हस्तिभूः । पल्ली शबरवसतिः । परिबृढः स्वामी । आकारितैराह्वानैः । आच्छिद्यमानैरपह्रियमाणैः । यत्र दिने पुष्यनक्षत्रे राजा स्नाति तद्दिनं पुष्याभिषेकाख्यम् । श्यामायमानं कालत्वमापद्यमानम् । अथ च दिवसः श्यामायति रात्रिवदाचरतीति वक्रोक्तिः । अभिषेकदिनानि च ध्वजादिरम्याणि । अनवरतेत्यादौ । तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणमिति संबन्धः । मृदोऽङ्गं मृदङ्गश्च मुरजः । सृक्किण्योष्ठपर्यन्तौ । अन्यत्रेत्यादौ—क्रमेलककुलैः कपि-

मिलने के लिए चला । वह राजाओं के अनेक शिविरों को देखता हुआ धीरे-धीरे राजद्वार के पास आया । राजद्वार पर बड़े-बड़े हाथी झूम रहे थे, कुछ पट्टबन्ध के लिए लाए गए, कुछ धौंसे चढ़ाने के लिए लाए गए, कुछ नए पकड़ कर लाए हुए, कुछ कर रूप में प्राप्त, कुछ नागवीथी या नागवन के अधिपतियों द्वारा भेजे गए, शबर बस्तियों के सरदारों द्वारा भेजे हुए, कुछ गजयुद्ध की क्रीडाओं और खेल-तमाशों के लिए बुलवाए गए या स्वेच्छा से दिए गए, कुछ तो बलपूर्वक छीने गए, कुछ बंधन से मुक्त हुए और कुछ पहरे के लिए रखे गए थे। मानो समस्त द्वीपों पर विजय पाने की इच्छा से समुद्रों में पुल बाँधने के लिए पहाड़ के पहाड़ जुटाए गए हों। ध्वजपट, पटह, शंख, चामर, अंगराग आदि से सजे हाथी दीख पड़े, मानों अभिषेक के पुण्य दिन ही एकत्र हो गए। वहाँ घोड़े लहरों के समान मचल रहे थे। उनके चंचल खुरों की टाप हमेशा मृदंग की आवाज में जमीन पर पड़ रही थी मानों राजलक्ष्मी को नचा रहे थे। थूथन तक बहते हुए मुँह के गाज के अट्टहास से वे मानों वेग से विजड़ित जाँघ वाले हरिणों का उपहास कर रहे थे। प्रसन्नता से इस तरह हिनहिना रहे थे मानों होड़ के लिए इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा को पुकार रहे हों। सूर्य के रथ के घोड़ों की मानों ईर्ष्या से वे

सरक्तोत्पलैरिव रक्तशालिशालेयैरनवरतझणझणायमानचारुचामीकरघुरुघुरुकमालिकैर्जरत्करञ्जवनैरिव रणितशुष्कबीजकोशीशतैः श्रवणोपान्तप्रेङ्खत्पञ्चरागवर्णोर्णाचित्रसूत्रजूटजटाजालैः कपिकपोलकपिलैः क्रमेलककुलैः कपिलायमानम्, अन्यत्र शरज्जलधरैरिव सद्यःस्रुतपयः पटलधवलतनुभिः कल्पपादपैरिव मुक्ताफलजालकजायमानालोकलुप्तच्छायामण्डलैर्नारायणनाभिपुण्डरीकैरिवाश्लिष्टगरुडपक्षैः क्षीरोदोद्देशैरिव द्योतमानविकटविद्रुमदण्डैः शेषफणाफलकैरिवोपरिस्फुरत्स्फीतमाणिक्यखण्डैः श्वेतगङ्गापुलिनैरिव राजहंसोपसेवितैरभिभवद्भिरिव निदाघसमयमुपहसद्भिरिव

लायमानमित्यन्वयः। वराटिकाः श्वेतिकाः। शालीनां भवनं क्षेत्रं शालेयम्। 'व्रीहिशाल्योर्ढक्'। बीजकोशी शिम्बिका। क्रमेलका उष्ट्राः। अन्यत्रेत्यादिनाऽऽतपत्रखण्डैः श्वेतायमानमित्यन्वयः। सद्य इत्याद्यभिप्रायेण शरद्ग्रहणम्। स्रुतं निर्गतम्। पयः क्षीरम्, जलं च। पटलवत्तेन च धवला तनुराकारो येषाम्। अन्यत्र,–धवलाश्च ते तनवः, क्षीणाश्च ते। पुण्डरीकग्रहणेनाकारसदृशत्वमप्युच्यते। गरुडपक्षा रत्नभेदाः, गरुडस्य चाङ्गरुहाः। क्षीरोदेति। शुक्लतया राजहंसाः मुख्यनृपाः; रक्तचञ्चुचरणा राजहंसाः। निदाघस्य तिरस्करणादभिभवद्भिरिवेत्युक्तम्—उपहस-

---

स्वयं अपनी चामरमाला को पंख बनाकर आकाश में उड़ जाना चाहते थे। ऊँटों ने राजद्वार को कपिल वर्ण में परिणत कर दिया था। कुछ ऊँट भेजे गए थे, कुछ भेजे जा रहे थे, कुछ भेजे गए थे फिर वापिस आ गए थे। उनके मुँह के चारों ओर कौड़ियाँ गूँथ कर पहना दी गई थीं जो मानों बहुत योजन पार करने पर उनकी संख्या गिनने के लिए अक्षरों की माला थीं और वे कौड़ियाँ इस तरह लगतीं मानों सायंकाल के आतप के टुकड़े हों। ऊँटों के कानों में लाल चंवरियों के फूल लगे थे मानों लाल वर्ण वाले धान के खेतों में लाल कमल उत्पन्न हों। सोने के बने घुँघुरुओं की माला हमेशा उनके गले में झनझन आवाज करती थी, ऐसा लगता था जैसे सूखे हुए करंज-वनों में उनकी गुठलियों के बीज बज रहे हों। उनके कानों के पास पंचरंगी ऊन के फुँदने लटक रहे थे। वे वानर के कपोल की भाँति कपिल वर्ण के थे। उजले उजले अनेक छत्र उस प्रदेश को श्वेत द्वीप बना रहे थे। वे छत्र पानी बरस जाने के बाद बिलकुल सफेद वर्ण वाले शरत् काल के मेघ के समान प्रतीत हो रहे थे। कल्प वृक्षों की भाँति उनमें मोतियों की झालरें लगी थीं, जिनसे उत्पन्न आलोक के द्वारा छाया मिट गई थी। उनमें गारुड रत्न पिरोए गए थे जैसे विष्णु के नाभि-कमलों में गरुड़ के पंख लगे रहते हैं। उनके दण्ड विद्रुम के बने थे, मालूम पड़ता था वह क्षीरसमुद्र का एक भाग हो गया हो। जैसे शेषनाग

विवस्वतः प्रतापमापिबद्भिरिवातपं चन्द्रलोकमयमिव जीवलोकं जनयद्भिः कुमुदमयमिव कालं कुर्वद्भिर्ज्योत्स्नामयमिव वासरं विरचयद्भिः फेनमयीमिव दिवं दर्शयद्भिरकालकौमुदीसहस्राणीव सृजद्भिरुपहसद्भिरिव शातक्रतवीं श्रियं श्वेतायमानैरातपत्रखण्डैः श्वेतद्वीपायमानम्, क्षणदृष्टनष्टाष्टदिङ्मुखं च मुष्णद्भिरिव भुवनमाक्षेपोत्क्षेपदोलायितं दिनं गतागतानीव कारयद्भिरुत्सारयद्भिरिव कुनृपतिसम्पर्ककलङ्ककालीं कालेयीं स्थितिं विकचविशदकाशवनपाण्डुरदशदिशं शरत्समयमिवोपपादयद्भिर्बिसतन्तुमयमिवान्तरिक्षमाविर्भावयद्भिः शशिकररुचीनां चलतां चामराणां सह-

---

द्भिरिवेति। प्रतापस्योपहास एव समुचितो वैयर्थ्यात्। अथ च प्रतापपदेन भङ्ग्या विवस्वत आरोपितविजिगीषुव्यवहारत्वाच्छत्रुमनःसंतापकारि यश उक्तम्। आतपं प्रकाशम्। आपिबद्भिरिति। तस्य सर्वत एवातिदर्शनात्। जीवलोकमिति। यश्च जीवानां लोकस्तत्र कथं चन्द्रलोक इति विरोधः। कुमुदमयमिवेति। कुमुदमयत्वाच्छुक्लं भवति न तु कालम्। कुमुदमयं च समयं कार्तिकादि। ज्योत्स्नेति। वासरे ज्योत्स्ना न संभवतीति विरोधः। एवं च दिवः फेनमयीत्वम्। जलदे हि फेनानामभावः। कौमुदी कुमुदिनी, कार्तिकी च ज्योत्स्ना। पूर्वं सामान्येनोक्ता इति। विशेषेण श्वेता इवाचरन्तः श्वेतायमानाः। तैस्तत्र तेषां स्वत एव श्वेतत्वाच्छ्वेतपदेन कथमुपमानतेत्युच्यते। श्वेतगुणा इवाचरन्तः श्वेतायमानाः। तेन यथा श्वेतगुणयोगादन्यत्किंचिच्छ्वेतते तद्वदेतद्योगात् राजद्वारमिति। श्वेताः स्फटिका इत्यन्ये। केचित्तु 'श्वेतमानैः' इति पठन्ति। क्षणेत्यादौ चामराणां सहस्रैर्दोलायमानमित्यन्वयः।

के फनों पर माणिक्य के टुकड़े चमकते रहते हैं उसी प्रकार इनमें भी लगे हुए थे। गंगा के श्वेत सिकतिल तटों के समान उनमें राजहंस की आकृतियाँ कढ़ी हुई थीं। मानों वे ग्रीष्मकाल पर विजय प्राप्त कर रहे थे, मानों सूर्य के प्रताप को हँस रहे थे, आतप को मानों पीते जा रहे थे, मानों जीवलोक को चन्द्रलोकमय बना रहे थे, उस ग्रीष्मकाल को कुमुदमय बना रहे थे, दिन में चाँदनी ही चाँदनी फैला रहे थे, आकाश को मानों फेनमय दिखा रहे थे, असमय में हजारों चाँदनियों का निर्माण कर रहे थे, इन्द्र की सम्पत्ति का मानों उपहास कर रहे। चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल चलते हुए चँवर भी स्कन्धावार की शोभा बढ़ा रहे थे। आठों दिशाओं को क्षणभर में ही स्पष्ट कर देते और क्षण भर में ढँक लेते मानों इस प्रकार त्रिभुवन का ही अपहरण करने लगे हों। ऊपर नीचे डोलते हुए चामरों ने सूर्य की किरणों को क्रम से छोड़ते-रोकते हुए मानों दिन का आना-जाना लगा दिया था। कुत्सित राजाओं द्वारा कलंकित कलियुग के आचारों को मानों वे झाड़ रहे थे। वे शरत्काल की छटा को उत्पन्न कर रहे थे जिसमें काश के उजले-

स्वैर्दोलायमानम्, अपि च हंसयूथायमानं करिकर्णशङ्खैः, कल्पलतावनायमानं कदलिकाभिः, माणिक्यवृक्षकवनायमानं मायूरातपत्रैः, मन्दाकिनीप्रवाहायमाणमंशुकैः, क्षीरोदायमानं क्षौमैः, कदलीवनायमानं मरकतमयूखैः, जन्यमानान्यदिवसमिव पद्मरागबालातपैः, उत्पद्यमानापराम्बरमिवेन्द्रनीलप्रभापटलैः, आरभ्यमाणापूर्वनिशमिव महानीलमयूखान्धकारैः, स्यन्दमानानेककालिन्दीसहस्रमिव गारुडमणिप्रभाप्रतानैः, अङ्गारकितमिव पुष्परागरश्मिभिः, कैश्चित्प्रवेशमलभमानैरधोमुखैश्चरणनखपतितवदनप्रतिबिम्बनिभेन लज्जया स्वाङ्गानीव विशद्भिः कैश्चिदङ्गुलीलिखितायाः क्षितेर्विकीर्यमाणकरनखकिरणकदम्बव्याजेन सेवाचाम-

---

कलेरियं कालेयी। सर्वत्राभिकलिभ्यां ढक्। पद्मरागा इव बालातपास्तैः। महानीला गरुडमणयः। पुष्परागाश्च मणिभेदाः। कैश्चिदित्यादौ शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानमित्यन्वयः। सेवेत्यादि। त्वयेदानीं चामरग्रहणेन सेवनीय इति तेषां हि क्षितिः कलत्रमतस्तद्द्वारेण सेवनेच्छा। 'हारस्य यो मध्यमणिस्तरलः स प्रकी-

---

उजले फूल चारों ओर खिल जाते हैं, मानों आकाश को मृणालसूत्रों से भर रहे थे। हाथी के कानों के शंख हंससमूह की भाँति लग रहे थे। केले के खम्भे इस तरह लगाए गए थे कि राजद्वार कल्पलतावन के समान लग रहा था। नाचते हुए मोर के बर्हमंडल की आकृति वाले मायूर आतपत्रों से वह स्थान माणिक्य के वृक्षों का वन हो रहा था। वहाँ अंशुक इस तरह लहरा रहे थे कि आकाश गंगा का प्रवाह बन गया। क्षौम वस्त्रों से क्षीर-समुद्र का दृश्य उत्पन्न हो रहा था। मरकत मणियों की हरी हरी किरणें इस तरह फैल गई थीं मानों वह केले का वन हो। पद्मराग मणियों की लाल-लाल किरणें उषाकाल की लाली के समान छिटक रही थीं मानों दूसरा दिन होने लगा हो। इन्द्रनीलमणियों की नीली प्रभा के फैलने से दूसरा आकाश उत्पन्न हो गया ऐसा लग रहा था। महानील मणियों की किरणें इस तरह फैल रही थीं मानों कोई अपूर्व रात्रि ही उत्पन्न होने वाली हो। गारुड मणियों की प्रभा इस प्रकार फैलती जा रही थी मानों यमुना के हजारों प्रवाह चल पड़े हों। पुष्पराग मणियों की रश्मियाँ अंगारे की भाँति लग रही थीं। भुजनिर्जित अनेक शत्रु महासामन्त वहाँ उपस्थित थे। कुछ तो भीतर प्रवेश नहीं पाने के कारण मुख नीचा किए हुए खड़े थे, चरण के नखों पर उनका मुख प्रतिबिम्बित हो रहा था, मानों वे लज्जा के कारण अपने ही अङ्गों में सिमटते जा रहे थे। कुछ बैठे बैठे उँगलियों से जमीन पर लिख रहे थे। अपने नख के फैलते हुए किरणजाल से महाराज की सेवा में मानों

राणीवार्पयद्भिः कैश्चिदुरःस्थलदोलायमानेन्द्रनीलतरलप्रभापट्टैः स्वामिकोपप्रशमनाय कण्ठबद्धकृपाणपट्टैरिव कैश्चिदुच्छ्वाससौरभभ्राम्यद्भ्रमरपटलान्धकारितमुखैरपहृतलक्ष्मीशोकधृतलम्बश्मश्रुभिरिवान्यैः शेखरोड्डीयमानमधुपमण्डलैः प्रणामविडम्बनाभयपलायमानमौलिभिरिव निर्जितैरपि सुमंमानितैरिवानन्यशरणैरन्तरान्तरा निष्पततां प्रविशतां चान्तरप्रतीहाराणामनुमार्गप्रधावितानेकार्थिजनसहस्राणामनुयायिनः पुरुषानश्रान्तैः पुनः पुनः पृच्छद्भिः 'भद्र ! अद्य भविष्यति भुक्तास्थाने दास्यति दर्शनं परमेश्वरः, निष्पतिष्यति वा बाह्यां कक्षाम्' इति दर्शनाशया दिवसं नयद्भिर्भुजनिर्जितैः शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानम्, अन्यैश्च प्रतापानुरागागतैर्नानादेशजैर्महामहीपालैः प्रतिपालयद्भिर्नरपतिदर्शनकालमध्यास्यमानम्, एकान्तोपविष्टैश्च जैनैरार्हतैः पाशुपतैः पाराशरिभिर्वर्णिभिः सर्वदेशजन्मभिश्च जनपदैः सर्वाम्भोधिवेलावनवलयवासिभिश्च म्ले-

---

र्तितः'। चपलो वा। शेखरं मुण्डमालिकम्। मौल्यः केशाः। निर्जितैः पुरस्कृतन्यक्कृतैः, राजसेवाप्राप्तैः, संमानितैः पूजितैरिव। अनुयायिन इति। तेषां स्वयं सुलभत्वात्। जैनैः शाक्यैः। आर्हतैर्नग्नक्षपणकैः। पाशुपतैः शैवभेदैः। पराशरेण

चँवर अर्पित कर रहे हों। कुछ के वक्ष पर लटकते हुए इन्द्रनील की प्रभा तरल हो रही थी मानों उन्होंने महाराज के क्रोध को शान्त करने के लिए अपने–अपने कंठ में कृपाण बाँध लिए थे। कुछ के मुख पर उच्छ्वास की सुगन्ध से भौंरे छा गए थे, मानों लक्ष्मी के अपहरण कर लिए जाने के शोक से उन्होंने बड़ी लम्बी दाढ़ी बढ़ा रखी थी। उनके मस्तक के ऊपर भौंरे मँडरा रहे थे, मानों प्रणाम करने के लिए झुकने के तिरस्कार के भय से उनके धम्मिल्ल उड़े जा रहे थे। वे पराजित थे, फिर भी सम्मानित के समान थे। उनका कोई दूसरा आश्रय नहीं था। बीच-बीच में अन्तःपुर से द्वारपाल निकलते तो उनके पीछे-पीछे अनेक याचक दौड़ पड़ते, आगे जानेवाले पुरुषों से ये शत्रुसामन्त बिना थकते पूछते रहते थे कि 'भद्र, सजाए जाते हुए भुक्तास्थानमंडप में सम्राट् आज दर्शन देंगे या वे बाहरी आस्थानमंडप में निकल कर आएँगे?' इस प्रकार सम्राट् के दर्शनों की आशा में दिन बिताते थे। भिन्न-भिन्न देशों के दूसरे राजे जो प्रताप के अनुराग से पधारे हुए थे, महाराज के दर्शनों के अवसर की प्रतीक्षा में वहाँ विराजमान थे। एक ओर बौद्ध, जैन, शैव, संन्यासी, ब्रह्मचारी, अनेक देशों के लोग, समुद्रों के तटवर्ती जंगलों के निवासी म्लेच्छ, अनेक देशों के आए हुए राजदूत वहाँ वर्तमान थे। वह राजद्वार मानों प्रजा-

च्छजातिभिः सर्वदेशान्तरागतैश्च दूतमण्डलैरुपास्यमानम्, सर्वप्रजानिर्माणभूमिमिव प्रजापतीनां लोकत्रयसारोच्चयरचितं चतुर्थमिव लोकम्, महाभारतशतैरप्यकथनीयसमृद्धिसंभारम्, कृतयुगसहस्रैरिव कल्पितसन्निवेशम्, स्वर्गार्बुदैरिव विहितरामणीयकम्, राजलक्ष्मीकोटिभिरिव कृतपरिग्रहं राजद्वारमगमत्।

अभवच्चास्य जातविस्मयस्य मनसि—'कथमिवेदमियत्प्रमाणं प्राणिजातं जनयतां प्रजासृजां नासीत्परिश्रमः, महाभूतानां वा परिक्षयः, परमाणूनां वा विच्छेदः, कालस्य वान्तः, आयुषो वा व्युपरमः, आकृतीनां वा परिसमाप्तिः' इति। मेखलकस्तु दूरादेव द्वारपाललोकेन प्रत्यभिज्ञायमानः 'तिष्ठतु तावत्क्षणमात्रमत्रैव पुण्यभागी' इति तमभिधायाप्रतिहतः पुरः प्राविशत्।

प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो यतयस्तैः। वर्णिभिर्ब्रह्मचारिभिः। सर्वप्रजेति। अत्र हि स्थित्वा यदि प्रजापतयो न सृज्येयुः तत्कथं सर्वे भावाः कारणभूता इव तत्र लभेरन्। अर्बुदं दशकोटयः। कोटिर्लक्षशतम्। इह तु बहुसंख्योपलक्षणार्थाबर्बुदकोटिशब्दौ।

परिसमाप्तिरनारम्भः। तिष्ठत्विति। विद्यायुक्ते कदाचिदनादरशङ्केत्येतदर्थमाह—पुण्यभागीति।

पतियों की सब प्रकार की प्रजाओं के निर्माण का स्थान था। तीनों लोकों के सार को इकट्ठा करके मानों कोई चौथा लोक बना दिया गया था। सैकड़ों महाभारत भी लिखे जाँय फिर भी उसके वैभव का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानों हजारों सतयुगों ने अपने अपने रहने के लिए वहाँ भवन बना लिया था। मानों करोड़ों स्वर्ग वहाँ आ टिके थे और उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। करोड़ों की संख्या में राजलक्ष्मी ने आकर उसे मानों अपना आश्रय बना लिया था।

इस दृश्य को देखकर बाण के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—'इतने प्राणियों को उत्पन्न करते हुए प्रजापतियों को कैसे नहीं थकान हुई? या पाँचों महाभूत समाप्त क्यों न हुए? परमाणुओं का विच्छेद क्यों न हुआ? समय का अन्त या आयु का खात्मा या आकृतियों की परिसमाप्ति क्यों न हुई?' इधर मेखलक को दूर से ही द्वारपालों ने देखा और पहचान लिया। 'पुण्यभागी आप क्षण भर यहीं ठहरें' बाण से यह कह मेखलक बेरोक-टोक भीतर घुस गया।

अथ स मुहूर्तादिव प्रांशुना, कर्णिकारगौरेण, वीध्रकञ्चुकच्छन्नवपुषा, समुन्मिषन्माणिक्यपदकबन्धबन्धुरवस्तबन्धकृशावलग्नेन, हिमशैलशिलाविशालवक्षसा, हरवृषककुदकूटविकटांसतटेन, उरसा चपलहृषीकहरिणकुलसंयमनपाशमिव हारं बिभ्रता, 'कथयतं यदि सोमवंशसंभवः सूर्यवंशसंभवो वा भूपतिरभूदेवंविधः' इति प्रष्टुमानीताभ्यां सोमसूर्याभ्यामिव श्रवणगताभ्यां मणिकुण्डलाभ्यां समुद्भासमानेन, वहद्वदनलावण्यविसरवेणिकाक्षिप्यमाणैरधिकारगौरवाद्दीयमानमार्गेणेव दिनकृतः किरणैः प्रसादलब्धया विकचपुण्डरीकमुण्डमालयेव दीर्घया दृष्ट्या दूरादेवानन्दयता, नैष्ठुर्याधिष्ठानेऽपि प्रतिष्ठितेन पदे पदे प्रश्रयमिवावनम्रेण, मौलिना

अथेत्यादौ। ईदृशपुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचदिति संबन्धः। अन्तराले स्वस्वन्तरादिवर्णनाभावादथेत्यादिना समनन्तरमेव निर्गमनेन पुनरादर एव प्रतीयते। अत आह—मुहूर्तादिवेति। पुरुषानुगतत्वेन चादर एव पोष्यते। वीध्रं निर्मलम्। बन्धुरं शोभनम्। वस्तं सुवर्णपट्टिकाकटिसूत्रम्। तस्य बन्धेन निवेशनेन कृशमवलग्नं मध्यं यस्य तेन। हिमशैले। हिमग्रहणं राज्ञो धवलत्वात्। हरग्रहणं जराशौक्ल्यप्रतिपादनाय पूर्ववत्। हृषीकाणीन्द्रियाणि। आनीताभ्यामिति। आनयने तस्य प्रभविष्णुता ध्वन्यते। यश्च स्रष्टुमानीयते स स्रवणं गच्छति। वेणिका

कुछ ही क्षण में मेखलक बाहर आया। उसके पीछे-पीछे एक दूसरा भी पुरुष था। वह लम्बा और कर्णिकार की भाँति पीतवर्ण का था। वह निर्मल कंचुक पहने हुए था। उसकी पतली कमर में सोने के सूत्रों की बनी हुई पेटी कसी थी। उस पेटी में माणिक्य का बना हुआ राजचिह्न पदक लगा हुआ था। उसकी छाती बर्फ की चट्टान के समान चौड़ी थी। शिव के वाहन वृषभ की पीठ के टाट के समान उसके दोनों कन्धे थे। वह अपने चंचल इन्द्रिय-हरिणों को बाँध रखने के लिये पाश के समान अपने वक्ष पर हार धारण किए हुए था। चन्द्र और सूर्य के समान मणिकुण्डल उसके कानों में शोभित हो रहे थे, मानों वे (चन्द्र और सूर्य) उन कानों से पूछ रहे थे कि 'यदि चन्द्रवंश में या सूर्यवंश में कोई हर्ष जैसा सम्राट उत्पन्न हुआ हो तो उसे बताओ।' वह दूर ही से अपनी बड़ी बड़ी आँखों द्वारा आनन्दित कर रहा था, उसकी आँखें खिले हुए पुण्डरीक की मानों मुंडमाला थी, जिसे सूर्य की किरणों ने प्रसन्न होकर मानों अर्पित किया था, क्योंकि उसके मुख की लावण्यप्रभा के प्रवाह से वे किरणें बिलकुल तिरस्कृत हो रही थीं, फिर भी सूर्य के अधिकार-गौरव को देखकर उसने उनके लिए मार्ग दे दिया था। अत्यन्त निष्ठुर पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वह स्वभाव से नम्र था। उसके झुके हुए मस्तक पर सफेद पगड़ी

पाण्डुरमुष्णीषमुद्वहता, वामेन स्थूलमुक्ताफलच्छुरणदन्तुरत्सरुं करकिसलयेन कलयता कृपाणम्, इतरेणापनीततरलतां ताडनीमिव लतां शातकौम्भीं वेत्रयष्टिमुन्मृष्टां धारयता पुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचत्— 'एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवारिकः। समनुगृह्णात्वेनमनुरूपया प्रतिपत्त्या कल्याणाभिनिवेशी' इति। दौवारिकस्तु समुपसृत्य कृतप्रणामो मधुरया गिरा सविनयमभाषत— 'आगच्छत। प्रविशत देवदर्शनाय। कृतप्रसादो देवः' इति। बाणस्तु 'धन्योऽस्मि, यद्देवमनुग्राह्यं मां देवो मन्यते' इत्युक्त्वा तेनोपदिश्यमानमार्गः प्राविशदभ्यन्तरम्।

अथ वनायुजैः, आरट्टजैः, काम्बोजैः, भारद्वाजैः, सिन्धुदेशजैः, पार-

---

प्रवाहः। वामेनेति। तदा तस्य व्यापारानुपपत्तेः। अपनीतेत्यादिनास्य नियमविधायित्वं पोष्यते। उन्मृष्टामुत्तंसिताम्। अनेन भास्वरतैव पोष्यते। अनन्तरः प्रधानम्। चक्षुष्यः प्रियः। आगच्छतेत्यादौ बहुत्वनिर्देशेनादर एवास्यापाद्यते।

अथेत्यादौ। एवंविधैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्दूरादिभधिष्ण्यागारमपश्यदिति संबन्धः। वनायुजादीनि देशविशेषेणाश्वानां नामानि। शोणैरित्यादि

थी। उसके बायें हाथ में मोतियों की जड़ाऊ मूठ वाली तलवार थी और दाहिने हाथ में तरलता से रहित विद्युल्लता के समान चमकवाली सोने की वेत्रयष्टि थी। मेखलक ने कहा—'यह महाप्रतिहारों का मुखिया, महाराज का प्रिय, पारियात्र नामक दौवारिक है। कल्याण में अभिनिवेश रखने वाले आप इसका उचित सम्मान करें।' दौवारिक पारियात्र ने पास आकर प्रणाम किया और मधुर आवाज में विनयपूर्वक बोला—'आप आइए, और महाराज के दर्शन के लिये प्रवेश कीजिए, महाराज आप पर प्रसन्न हैं।' बाण ने कहा—'मैं धन्य हूँ, जो मुझे महाराज इस प्रकार अपने अनुग्रह के योग्य समझ रहे हैं।' यह कहकर पारियात्र के द्वारा मार्ग दिखाये जाने पर बाण ने भीतर प्रवेश किया।

बाण ने भीतर प्रवेश करते ही अनेक राजवल्लभ तुरङ्गों की बनी हुई मन्दुरा (घोड़साल) देखी। वहाँ कुछ वनायुज अर्थात् वानाघाटी वजीरिस्तान में उत्पन्न घोड़े, कुछ आरट्टज अर्थात् वाहीक या पञ्जाब में उत्पन्न घोड़े, कुछ काम्बोज अर्थात् मध्य एशिया में वंक्षु नदी के पामीर प्रदेश में उत्पन्न घोड़े, कुछ भारद्वाज अर्थात् उत्तरी गढ़वाल के घोड़े, कुछ सिन्धुदेशज अर्थात् सिंधसागर या थल दोआब के उत्पन्न घोड़े, कुछ पारसीक अर्थात् सासानी ईरान के घोड़े थे। रङ्गों के हिसाब से कुछ शोण (लालकुम्मैत), कुछ श्याम (मुश्की), कुछ श्वेत (सब्जा), कुछ पिञ्जर (समंद), कुछ हरित (नीलासब्जा),

सीकैश्च, शोणैश्च, श्यामैश्च, श्वेतैश्च, पिञ्जरैश्च, हरिद्भिश्च, तित्तिरिकल्माषैश्च, पञ्चभद्रैश्च, मल्लिकाक्षैश्च, कृत्तिकापिञ्जरैश्च, आयतनिर्मांसमुखै, अनुत्कटकर्णकोशैः, सुवृत्तश्लक्ष्णसुघटितघण्टिकाबन्धैः, यूपानुपूर्वीवक्रायतोदग्रग्रीवैः, उपचयश्वसत्स्कन्धसंधिभिः, निर्भुग्नोरःस्थलैः, अस्थूलप्रगुणप्रसृ-

---

वर्णविशेषवर्णनम्। 'शोणः पद्मारुणः स्मृतः'। पिञ्जरैरीषत्कपिलैः। हरिच्छुकनिभो वर्णः। तित्तिरिः पक्षिभेदस्तद्वच्चित्रैः। 'सिताश्च यस्य वाजिनः शफाः समस्तकं मुखम्। स पञ्चभद्रनामको नृपस्य राज्यसौख्यदः'। शुक्लपर्यन्ते असिततारके नयने येषां ते मल्लिकाक्षाः। उक्तं च—'पृथुस्निग्धा समा चैव मल्लिकाकुसुमप्रभा। राजी यस्य तु पर्यन्ते परिक्षेप्ये तु लोचने॥ सह यो मल्लिकाक्षस्तु दृष्टिपर्यन्ततारकः॥' इति। तारकाः कदम्बककल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वचः कृत्तिकापिञ्जरा यतः। आयतेत्यादि। तदुक्तम्—'मुखं तन्वायतनतं चतुरस्रं समाहितम्। ऋजु चैवोपपदिष्टं च परिपूर्णं च शस्यते॥' इति। कृष्णेनाप्युक्तम्—'उज्जा अतुंगअत्थं णिम्मं संवाहिराण अच्चअणं' इति। अनुत्कटो ह्रस्वः। कोशो मध्यम्। शिरसो ग्रीवायाश्च यन्मध्यं स घण्टिकाबन्धः। यो निगाल इत्युच्यते तस्य सुवृत्तादि शस्यते। यदाह—'ग्रीवाशिरोऽन्तरश्लिष्टो दीर्घवृत्तः समाहितः। नोद्वर्तो नार्धितो नातिदुर्नाहोऽतिविधानतः॥ सुदिग्धोऽनुपदिग्धश्च निगालो गदितः शुभः॥' इति। यूपो यज्ञचिह्नं तस्येवानुपूर्वी यस्याः। तथा वक्रा आयता उदग्रा उद्धुरा ग्रीवा येषाम्। तदुक्तम्—'ग्रीवा मूलम्बिनी वृत्ता दीर्घा च सुसमाहिता। गले बद्धा विदीर्वृत्ता तथा शिरसि चोद्यता॥ निगाले स्याच्च निर्मांसा वृद्धौ साकुञ्चिता भृशम्। श्लिष्टमांसाप्रबद्धा च तुरगस्य प्रशस्यते॥' इति। उपचयेत्यादि। तदुक्तम्—'स्कन्धः सुपरिपूर्णः स्याद्व्यक्तमांसः पृथुत्रिकः। बहुमांसाङ्गसंश्लिष्टः स्थिरमांसश्च पूरितः॥' इति। निर्भुग्नं स्थूलत्वाद्बहिर्निःसृतम्। उक्तं च—'स्थूलास्थि महदच्छिद्रं पृथुलं यच्च निर्वलि। उर ईदृक्प्रशंसन्ति स्थूलक्रोडं महत्तरम्॥' इति। निर्भुग्नमुरःपञ्चद्रोणिकमिति केचित्।

कुछ तित्तिरकल्माष (तीतरपंखी) घोड़े थे। शुभ लक्षणों वाले घोड़े थे जैसे पञ्चभद्र (अर्थात् पञ्चकल्याण हृदय, पृष्ठ, मुख और दोनों पार्श्वों में पुष्पित या भौंरी वाला), मल्लिकाक्ष (शुक्ल अपांग-वाला) और कृत्तिकापंजर (तारों जैसी सफेद चित्तियों वाला, चितकाबर)। इनका मुँह लम्बा और पतला था, कान छोटे छोटे थे, घांटी (सिर और गर्दन की जोड़) गोल, चिकनी और सुडौल थी, गर्दन ऊपर उठी हुई और यूप की तरह लम्बी और टेढ़ी थी, कन्धे की जोड़ माँस से फूली हुई थी, छाती निकली हुई थी, टाँगें पतली और सीधी थीं, खुर लोहे की भाँति कड़े थे, वेग में टूटने के भय से मानों नाड़ियों

तैर्लोहपीठकठिनखुरमण्डलैः, अतिजवत्रुटनभयादनिर्मितान्त्राणीवोदराणि वृत्तानि धारयद्भिः, उन्नद्द्रोणीविभज्यमानपृथुजघनैः, जगतीदोलायमानबालपल्लवैः, कथमप्युभयतो निखातदृढभूरिपाशसंयमननियन्त्रितैः, आयतैरपि पश्चात्पाशबन्धपरवशप्रसारितैकाङ्घ्रिभिरायततरैरिवोपलक्ष्यमाणैः, बहुगुणसूत्रग्रथितग्रीवागण्डकैः, आमीलितलोचनैः, दूर्वारसश्यामलफेनलवशबलान्दशनगृहीतमुक्तान्फरफरितत्वचः कण्डूजुषः प्रदेशान्प्रचालयद्भिः, सालसवलितवालधिभिः, एकशफविश्रान्तिश्रमस्रस्तशिथिलितजघनार्धैः, निद्रया प्रध्यायद्भिश्च, स्खलितहुंकारमन्दमन्दशब्दायमानैश्च, ताडितखुरधरणीरणितमुखरशिखरखुरलिखितदमातलैर्घासमभिलषद्भिश्च, प्रकीर्यमाणयवसग्रासरसमत्सरसमुद्भूतक्षोभैश्च, प्रकुपितचण्डचण्डालहुङ्कारकातरतरतरलतारकैश्च, कुङ्कुमप्रमृष्टिपिञ्जराङ्गतया सततसन्निहितनीरा-

---

अस्थूलप्रगुणप्रस्थितैर्निर्मांसैर्ऋजुजङ्घैः। उक्तं च—'जङ्घे वृत्ते दीर्घे निर्मांसे पूजिते निगूढसिरे' इति। मण्डलशब्देन वृत्तत्वमुच्यते। तदुक्तम्—'खुरास्तुरङ्गे वृत्ताश्च ह्रस्वाश्च सुदृढा घनाः' इति। तथा शिलातलनिभैः खुरैरिति। उदराणीति। तदुक्तम्—'उदरं वृत्तमगुरु मृगस्योपचितं तथा। अच्छिद्रहृस्ववृत्ताल्पसमकुक्षि च पूजितम्॥' इति। द्रोणी शोभाविशेषः। यदाह—'पृष्ठोरःकटिपार्श्वस्थमांसोत्कर्षणनिर्मिता। द्रोणिकेति प्रशंसन्ति शोभा वाजिनि पञ्चमी॥' इति। बाला एव पल्लवाः। उभयत इति। अत्युद्दामवेगवत्त्वादुभयत्र पाशबन्धः। गण्डको भूषणभेदः। फरफरिताः पुनः पुनरीषत्कम्पिताः। वालधिः पुच्छः। शफः समुद्गयुक्तः पादः। खुरधरणी खुराधःकाष्ठपट्टाच्छादिता भूः। चण्डालोऽश्वपालः। प्रमृष्टिः प्रमार्जनम्। त्रिता-

---

से रहित और गोल उदर भाग था, पुट्ठ चौड़े और मांसल होने से उठे हुए थे, पूँछ के बाल जमीन तक लटक रहे थे। किसी किसी प्रकार अगाड़ी और पिछाड़ी दो रस्सियों से कसकर उन्हें नियन्त्रण में रखा गया था। वे लम्बे थे, फिर भी पिछाड़ी बाँधने से उनका एक पैर बिलकुल फैल गया था, इससे और भी उनकी लम्बाई बढ़ गई थी। उनके गले का गण्डक नामक अलंकार तिगुने चौगुने सूत में गुथा हुआ था। वे कुछ कुछ झपकी ले रहे थे। खुजान मिटाने के लिये अपने शरीर में दाँतों से रह-रहकर कोड़ते रहते और त्वचा को फरफराते रहते थे। उन स्थानों पर मुँह की दूब के रस की गाज लग-लग जाती थी। कभी कभी पूँछ टेढ़ी करते थे। एक ही पैर की टेक लेकर विश्राम करने से वे थक जाते और उनकी जाँघ टटाने लगती। नींद में कुछ सोच रहे थे। हुँककर धीरे धीरे हिनहिनाने लगते थे। घास की इच्छा से खुर पटककर धरती को

जनानलरक्ष्यमाणैरिवोपरिविततवितानैः, पुरः पूजिताभिमतदैवतैः, भूपालवल्लभैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्, कुतूहलाक्षिप्तहृदयः किंचिदन्तरमतिक्रान्तो हस्तवामेनात्युच्चतया निरवकाशमिवाकाशं कुर्वाणम्, महता कदलीवनेन परिवृतपर्यन्तं सर्वतो मधुकरमयीभिर्मदस्रुतिभिर्नदीभिरिवापतन्तीभिरापूर्यमाणम्, आशामुखविसर्पिणा बकुलवनानामिव विकसतामामोदेन लिम्पन्तं घ्राणेन्द्रियं दूरादव्यक्तमिभधिष्ण्यागारमपश्यत्। अपृच्छच्च—'अत्र देवः किं करोति?' इति। असावकथयत्—'एष खलु देवस्यौपवाह्यो बाह्यं हृदयं जात्यन्तरित आत्मा बहिश्चराः प्राणा विक्रमक्रीडासुहृद्दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिः। तस्यावस्थानमण्डपोऽयं

नकं रक्तकम्। देवतात्र गोविन्दः। आरचितां भूषिताम्। हस्तवामशब्दो भाष्यकृता वामहस्तमार्ग इत्यर्थे धृतः। बकुलेत्यादिना प्राशस्त्यमेव पोषयति। तदुक्तम्—'मालतीमुक्तपुंनागबकुलोपमसौरभम्। दानं पिष्टाम्बुसदृशं मुञ्चच्छ्रुतं तु शीतलम्॥' इति। श्लैष्मिका दानलक्षणम्। एवं च धर्मलक्षणे तु प्रकोपसमयेऽपि तथाविधमदवर्णनया श्लेष्मप्रकृतित्वं प्रकाशयति—'श्लेष्मप्रकृतिकं श्रेष्ठं भद्रजातिं तथैव च' इति च शास्त्रकृता दर्शितम्। धिष्ण्यं मण्डपम्। औपवाह्यः क्रीडा हस्ती। यस्मात्केचन सांनाह्याः केचिद्भद्रजातीया उभयस्वभावा भवन्ति करिणः। अस्य च यद्यपि विक्रमक्रीडासुहृदित्यनेन दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिरित्यनेन च सांनाह्यत्वमेवोक्तम्, तथाप्यौपवाह्य इति कथनेऽर्धद्वयेऽपि योग्यत्वाद्भद्रजातीयत्वं चास्य

खरोंच रहे थे। सामने घास के पड़ते ही चंचल होकर फटकने लगते थे। सईसों की डपटान सुन कर मारे डरके उनकी पुतलियाँ दीन भाव से फिरने लगती थीं। उनके अङ्ग मानों केसर से मले गए थे। उनके समीप सदा नीराजन अग्नि जलती थी। उनके ऊपर चँदोवे तने हुये थे। उनके सामने अभीष्ट देवता पूजे गये थे। मन्दुरा को देखकर बाण का हृदय कुतूहल से भर गया और कुछ आगे बढ़कर बायीं ओर अव्यक्त रूप में दूर ही से हाथीसाल को देखा, जो आकाश में बहुत ऊँचा उठा हुआ था। केलों के बन से वह चारों ओर घिरा हुआ था। सब ओर से नदियों की भाँति बहती हुई मद की धारायें थीं जिन पर भौंरे लुभा रहे थे। उसकी गन्ध दिशाओं में इस प्रकार फैल रही थी मानों मौलसिरी के फूलने की गन्ध नाक में भर रही हो। बाण ने मेखलक से पूछा—'यहाँ महाराज क्या करते हैं?' उसने कहा—'यह महाराज का क्रीड़ाहस्ती दर्पशात है, जिसे वे युद्ध में साथ ले जाते हैं। यह हाथी नहीं बल्कि महाराज का बाहरी हृदय है, दूसरे स्वरूप में आत्मा है, बहिश्चर प्राण है।' बाण ने उससे कहा—'भद्र, मैंने दर्पशात का नाम

महान्दृश्यते' इति। स तमवादीत्—'भद्र! श्रूयते दर्पशातः। यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद्वारणेन्द्रमेव। अतोऽर्हसि मामत्र प्रापयितुम्। अतिपरवानस्मि कुतूहलेन' इति। सोऽभाषत—'भवत्वेवम्। आगच्छतु भवान्। को दोषः। पश्यतु तावद्वारणेन्द्रम्' इति।

गत्वा च तं प्रदेशं दूरादेव गम्भीरगलगर्जितैर्वियति चातककदम्बकैर्भुवि च भवननीलकण्ठकुलैः कलकेकाकलकलमुखरमुखैः क्रियमाणाकालकोलाहलम्, विकचकदम्बसंवादिमदसुरासौरभभरितभुवनम्, कायवन्तमिवाकालमेघकालम्, अविरलमधुबिन्दुपिङ्गलपद्मजालकितां सरसीमिवात्यवगाढां दशां चतुर्थीमुत्सृजन्तम्,

---

निश्चीयते। जात्यन्तरितो द्वितीयां जातिं हस्तिरूपां प्राप्तः। यद्येवमिति। यदि सत्यं दर्पशातोऽयमदोषो वेति। वाशब्दश्चार्थे। यदि च न दोष इत्यर्थः। यतो रसदानादिभयेन केनचिद्द्रष्टुं न लभ्यते। कुतूहलेन परवान्कुतूहलायितः।

गत्वेत्यादौ। दूरादेव दर्पशातमपश्यदिति संबन्धः। गर्जितं बृंहितम्। चातकाः स्तोककाः। नीलकण्ठा मयूराः। केका मयूररुतानि। मेघकालमिति। मेघकालश्च चातककदम्बनीलकण्ठकुलकदम्बकसौरभादियुक्तः। अविरला घना ये मधुबिन्दव इव मधुबिन्दवो माक्षिककणास्तद्वत्पिङ्गलानि पद्मजालकानि संजातानि यस्याम्। 'पद्मकं बिन्दुजालं स्याद्गात्रकं करिणामिति'। यथा—'पद्मस्वस्तिकसंस्थानो बिन्दुभिश्च कचैस्तथा। स्वङ्किताङ्गस्तुषाराभः शावः शक्तिकरः करी॥' इत्युक्तम्। अन्ये मधुबिन्दवो मकरन्दकणास्तैः पिङ्गलानीति व्याख्येयम्। महत्सरः सरसी। अत्यवगाढामिति। परिणताम्। दशां कालावस्थाम्। चतुर्थीमिति। 'चतुर्थ्यामवगाढायां

सुना है। यदि ऐसी बात है और कोई झंझट न हो तो उस गजराज को देखूँगा। मुझे वहाँ ले चलो, मैं अपने कुतूहल के वेग से लाचार हूँ।' वह बोला—'ऐसी बात है तो आइए, झंझट क्या है? तब तक गजराज को ही देख लें।'

उस स्थान में जाकर बाण ने दूर ही से दर्पशात को देखा। उसकी गम्भीर चिग्घाड़ सुनकर आकाश में चातक पक्षी मेघ की गड़गड़ाहट समझ कर कोलाहल करने लगे और पृथिवी के गृहमयूर अपनी केका-वाणी द्वारा असमय में मुखरित हो उठे। खिले हुए कदम्ब के समान अपने मद की सुरा-सौरभ से उसने दिशाओं को भर दिया था। असमय में वर्षाकाल शरीरधारी हो गया था। उसके गण्डस्थल से निरन्तर मदजल क्षरित हो रहा था। वह अपनी चौथी दशा मदावस्था में बिलकुल परिणत हो रहा था। उसके छिटके

अनवरतमवतंसशङ्खैरामन्द्रकर्णतालदुन्दुभिध्वनिभिः पञ्चमीप्रवेशमङ्गलारम्भमिव सूचयन्तम्, अविरतचलनचित्रत्रिपदीललितलास्यलयैर्दोलायमानदीर्घदेहाभोगवत्तया मेदिनीविदलनभयेन भारमिव लघयन्तम्, दिग्भित्तितटेषु कायमिव कण्डूयमानम्, आहवायोदस्तहस्ततया दिग्वारणानिवाह्वयमानम्, ब्रह्मस्तम्भमिव स्थूलनिशितदन्तेन करपत्रेण पाटयन्तम्, अमान्तं भुवनाभ्यन्तरे बहिरिव निर्गन्तुमीहमानम्; सर्वतःसरसकिसलयलतालासिभिर्लेशिकैश्चिरपरिचयोपचितैर्वनैरिव विक्षिप्तं, सशैवलबिसविसरशबलसलिलैः सरोभिरिव चाधोरणैराधीयमाननिदाघसमयसमुचितोपचारानन्दम्, अपि च प्रतिगजदानपवनादानदूरोत्क्षिप्तेनानेकसमरविजयगणनालेखाभिरिव वलिवलयराजिभिस्तनीयसीभिस्तरङ्गितोदरेणातिस्थवीयसा हस्तार्गलदण्डेनार्गलयन्तमिव सकलं सकुलशैलसमुद्रद्वापकाननं ककुभां चक्रवालम्, एकं करान्तरार्पितेनोत्पलाशेन

लेखाविन्दुभिराचितः' इत्युक्तम्। शङ्खैः शङ्खशब्दैरित्यर्थः। कर्णेत्यादि। कर्णौ च दुन्दुभिध्वनितौ। 'कर्णौ च करिणः कार्यकारिणौ सम्प्रशंसिनौ' इति। पञ्चमी दशा त्रिपदी। एकपदोत्क्षेपे पादत्रयावस्थितिः। लयो लीलाः। आहवः संग्रामः। ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डम्। करपत्रं क्रकचं स्थूलनिशितदन्तं भवति। तच्च भेदयति स्तम्भम्। अमान्तमवर्तमानम्। लेशिकैर्घासिकैः। आधोरणैर्गजारोहैः। वल्याकारा वलिर्वलिवलयम्। अर्गलयन्तं सनाटकं कुर्वाणम्। कुमुदवनानीत्युत्प्रेक्षा। दन्तयोर्वर्णप्राशस्त्यमाह—'पयः कुमुदकुन्दाभौ केतकीकुमुदद्युती। मृगाङ्ककिरणालोकौ

हुए कानों के शंख दुन्दुभि के समान आवाज कर रहे थे, मानो वह पाँचवीं स्वास्थ्यदशा के प्रवेश का मंगलारम्भ सूचित कर रहा था। अपने तीन पैरों पर खड़ा होकर सुन्दर नृत्य की मुद्रा में स्थूल शरीर को कम्पित कर रहा था, मानों पृथिवी के धँस जाने के भय से बोझ को हल्का कर रहा हो। मानों वह झूमता हुआ दिशाओं की भीतों में अपनी देह खुजला रहा था। मानों अपनी सूँड़ उठा-उठाकर दिग्गजों को युद्ध के लिए गुहार रहा था। अपने मोटे-मोटे और तेज दाँतों के आरे से मानों ब्रह्माण्ड को फाड़ रहा था। वह संसार में न अटने के कारण बाहर निकलना चाहता था। बहुत दिनों से परिचय में आए हुए घसियारे उसके सामने पत्ते लाकर फेंकते जा रहे थे। महावत भी ग्रीष्मकाल के अनुकूल उपचार से उसे आनन्दित कर रहे थे। वह किसी अपने प्रतिद्वंद्वी गज के मद की गंध सूँघ कर सहन न करके अपनी सूँड़ फेंक रहा था। उसकी सूँड़ पर सिकोड़ने से छोटी छोटी रेखाएँ पड़ने लगीं, मानों अनेक लड़ाइयों में विजय पाने की गणना के चिह्न हों

कदलीदण्डेनान्तर्गतशीकरसिच्यमानमूलम्, मुक्तपल्लवमिवापरं लीलावलम्बिना मृणालजालकेन समररसोच्चरोमाञ्चकण्टकितमिव दन्तकाण्डमुद्वहन्तम्, विसर्पन्त्या च दन्तकाण्डयुगलस्य कान्त्या सरःक्रीडास्वादितानि कुमुदवनानीव बहुधा वमन्तम्, निजयशोराशिमिव दिशामर्पयन्तम्, कुकरिकीटपाटनदुर्विदग्धान्सिंहानिवोपहसन्तम्, कल्पद्रुमदुकूलमुखपटमिव चात्मनः कलयन्तम्, हस्तकाण्डदण्डोद्धरणलीलासु च लक्ष्यमाणेन रक्तांशुकसुकुमारतरेण तालुना कवलितानि रक्तपल्लवनानीव वर्षन्तम्, अभिनवाकसलयराशीनिवोद्गिरन्तम्, कमलकवलपीतं मधुरसमिव स्वभावपिङ्गलेन वमन्तं चक्षुषा, चूतचम्पकलवलीलवङ्गकक्कोलवन्त्येलालतामिश्रितानि ससहकाराणि कर्पूरपूरितानि पारिजातक-

---

कीर्तिकल्याणकारकौ ॥' इत्युक्तम् । रक्तांशुकेति । उक्तं च—'रक्तौष्ठतालुरसनम्' इति । स्वभावपिङ्गलेनेति । उक्तं च—'शशिसूर्यसमाभासे कलविङ्काक्षसन्निभे । प्रसन्नमधुपिङ्गे च स्थिरे चामीलने तथा ॥ अपरिस्राविणी चैव कुशाग्निनिभभास्वरे । नेत्रे शस्ते समे स्निग्धे दीर्घे चाविलपक्ष्मणी ॥' इति । चूतेत्यादिना प्रशस्तत्वमाह । यदाह—'उभयस्तुतिरप्येष विवर्णो हर्षवर्जितः । यदि स्यादपगन्धश्च तदासौ न

और कुलपर्वत, समुद्र और द्वीपों के साथ सारी दिशाओं को सूँड़ के अर्गलादण्ड से छेक रहा हो। उसने अपनी सूँड़ से उठा कर अपने दाँत पर पत्तेसहित केले का दंड रख लिया था, उसके मुँह के उड़ते हुए जल के फुहारों से वह दाँत सिंच गया था। दूसरे दाँत पर मृणाल लटक रहे थे मानों समर के प्रति राग से उसे रोमाञ्च हो रहा था। उसके दोनों दाँतों की कान्ति आगे की ओर फैल रही थी, मानों वह जलक्रीड़ा के समय चखे हुए कुमुदवनों को अनेक प्रकार से वमन कर रहा था, या अपनी यशोराशि को दिशाओं के लिए दाँत की किरणों के रूप में अर्पित कर रहा था, या उन शेरों पर हँस रहा था जो क्षुद्र गजों को विदीर्ण करके मतवाले बन जाते हैं, या वह कल्पवृक्ष के दुकूल का मुखपट (रुमाल) बना रहा था। जब वह अपनी सूँड़ लीला से उठाया करता तो उसके मुख का रक्तांशुक के समान सुकुमार तालुभाग दिखाई देने लगता था, वह मानों गटके हुए लाल कमलों को बरसाने लगा हो, या नये नये लाल पत्तों को उगल रहा हो। वह अपनी स्वाभाविक पीली आँखों से मानों कमलों के ग्रास के साथ पिए मधुरस का उद्गिरण कर रहा था। पारिजात के वन का उसने उपभोग किया था जिनमें आम, चंपक, लवली, लवंग, इलायची और सहकार के भी आस्वाद लिये थे, मानों इसीसे दोनों कपोलों से बहती हुई मदधारा के

वनानीवोपभुक्तानि पुनःपुनः करटाभ्यां बहलमदामोदव्याजेन विसृजन्तम्, अहर्निशं विभ्रमकृतहस्तस्थितिभिरर्धखण्डितपुण्ड्रेक्षुकाण्डकण्डूयनलिखितैरलिकुलवाचालितैर्दानपट्टकैर्विलभमानमिव सर्वकाननानि करिपतीनाम्, अविरलोदबिन्दुस्यन्दिना हिमशिलाशकलमयेन विभ्रमनक्षत्रमालागुणेन शिशिरीक्रियमाणम्, सकलवारणेन्द्राधिपत्यपट्टबन्धबन्धुरमिवोच्चैस्तरां शिरो दधानम्, मुहुर्मुहुः स्थगितापावृतदिङ्मुखाभ्यां कर्णतालतालवृन्ताभ्यां वीजयन्तमिव भर्तृभक्त्या दन्तपर्यङ्किकास्थितां राजल-

---

सतां मतः ॥' इति । करटाभ्यां गण्डाभ्याम् । अर्धेत्यादिनेक्षुकाण्डकस्य लेखनीसादृश्यमाह । लिखितैः कृतलेखैरप्यलिकुलेषु सत्सु वाचालितशब्दयोगो येषामित्यनेनालिकुलस्य लिप्यक्षररूपतां ध्वनयति । लिप्यक्षरेषु च सत्सु पाठ्यमानेषु वाचालता । दानपट्टकलिखितैः किंचिद्धि लभ्यते । अक्षरपाटिकैश्च तेषां हस्तस्थितिर्न क्रियते । तानि च वाच्यन्ते । यद्वा स्वहस्तेनाक्षरकरणं हस्तस्थितिः । हिमशिला वातवज्रीभूतं हिमम् । केचित्तु 'हिमानि हिमशकलानि चन्द्रकान्ताः' इत्याहुः । हिमस्य च तदा वर्णनानुचितत्वात् पर्वतेभ्यो हिमानयनं सुलभमेवेति पूर्वोक्तमेव श्रेष्ठम् । यतश्चन्द्रकान्तानां दिवा स्रुतिर्न भवतीति । नक्षत्रमाला हस्त्याभरणभेदः । उच्चैस्तरामिति । उच्चं हि शिरः करिणः शस्यते । यदुक्तम्—'समं महच्च पूर्णं च नातिस्तब्धोच्चमस्तकम् । नावाग्रं नातिपृथुलं वितानावग्रहं मृदु ॥' इति । दन्तावेव तदवस्थानसमुचितत्वात् । पर्यङ्किका च दन्तमयः पर्यङ्कः आस्त इति श्लेषः । आय-

---

व्याज से वह उन्हीं की गन्ध को फैला रहा था।[1] उसे मानों राजकीय दानपट्ट मिले थे जिनसे हाथियों के जंगलों को अपने वश में कर रखा था। उसके द्वारा तोड़े गये इक्षुकांड की लेखनी से उन पट्टों पर अक्षर खोदे गये थे, उन पर सजावट के साथ हस्ताक्षर भी बनाये गये थे और भौंरे मानों उन्हें पढ़कर सुना रहे थे। नक्षत्रमाला नाम के आभूषण से वह विभूषित था जो मानों बर्फ के टुकड़ों से बनाया गया था और उससे निरन्तर जलबिन्दु के रूप में प्रभा निकल रही थी। उसका मस्तक निम्नोन्नत और ऊँचा था मानों उसने समस्त गजों के आधिपत्य का पाट बाँध लिया था। बारबार उसके कानों के पंखे चलते रहते थे जिससे दिशायें ढकती और खुलती रहती थीं। इस प्रकार वह अपने स्वामी की भक्ति से दाँत के पलंग पर बैठी हुई राजलक्ष्मी को पंखा झल रहा था। उसके पृष्ठवंश से

१. उस समय सहकार, कपूर, कक्कोल, लवंग, पारिजातक आदि सुगन्धद्रव्य थे जिनसे मुखवास बनाया जाता था, उसी की गन्ध दर्पशात के मदजल में थी, क्योंकि जंगलों में उसने भी इनके वृक्षों का उपभोग किया था।

दर्मीम्, आयतवंशक्रमागतेन गजाधिपत्यचिह्नेन चामरेणेव चलता वालधिना विराजमानम्, स्वच्छशिशिरशीकरच्छलेन दिग्विजयपीताः सरित इव पुनःपुनर्मुखेन मुञ्चन्तम्, क्षणमवधानदाननिःस्पन्दीकृतसकलावयवानामन्यद्विरदडिण्डिमाकर्णनाङ्गवलनानामन्ते दीर्घफूत्कारैः परिभवदुःखमिवावेदयन्तम्, अलब्धयुद्धमिवात्मानमनुशोचन्तम्, आरोहाधिरूढिपरिभवेन लज्जमानमिवाङ्गुलीलिखितमहीतलम्, मदं मुञ्चन्तम्, अवज्ञागृहीतमुक्तकवलकुपितारोहारटनानुरोधेन मदतन्द्रीनिमीलितनेत्रत्रिभागम्, कथं कथमपि मन्दमन्दमनादरादाददानं कवलान्, अर्धजग्धतमालपल्लवस्रुतश्यामलरसेन प्रभूततया मदप्रवाहमिव मुखेनाप्युत्सृजन्तम्, चलन्तमिव

तवंशः, वक्रवंशः, शरवंशः, बालवंशश्चेति चत्वारो वंशाः। तेषु बालवंश आयत एव शास्त्रकृतामभिप्रेतः। तथा च—'यावत्पूरितपार्श्वश्च वंशश्चापलताकृतिः। शुभो ज्ञेयो गजेन्द्राणामायतः कुरुते सुखम् ॥' इति तैरुक्तम्। आयताद्वंशात्तत्क्रमेण गोपुच्छवदायत इति विग्रहः। समानार्हो हि वालधिः शोकं करोति। यदुक्तम्—'वक्रं स्थूलं च ह्रस्वं च पुच्छं कचविवर्जितम्। समानार्हं हि नागस्य भर्तुः शोककरं स्मृतम् ॥' इति। वंशं पृष्ठनाभि, कुलं च। क्रम आनुपूर्वी; पारम्पर्यं च। वालधिः पुच्छम्। लज्जमानमिति। यश्च लज्जते स भूमिं लिखति, दर्पं चोज्झति। अङ्गुली करिकराग्रावयवः, करशाखा च। तन्द्री आलस्यम्, गाढनिद्रा वा। चलन्तमि-

चँवर के समान पूँछ निकली थी जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह गजों का अधिपति है। वह अपने मुँह से ठण्डे और सफेद जल के फुहारे बारबार फेंकता रहता था, मानों दिग्विजय के समय सोखी हुई नदियों को उगल रहा हो। वह दूसरे हाथी के डिण्डिम घोष को सुनकर क्षण भर ध्यान से स्थिर होकर खड़ा हो जाता और अन्त में जोर से शीत्कार करते हुए मानों अपना परिभव समझ कर कष्ट व्यक्त करता था और ऐसा अपने आपको सोचता कि उसे युद्ध करने का अवसर नहीं दिया जा रहा है। दूसरे उसकी पीठ पर चढ़ते तो वह अपना परिभव महसूस करता, अपने नखों से जमीन पर कुछ लिखने लगता, लज्जित होता और मद का त्याग करने लगता। उसने कौर लेकर भी अवज्ञा से छोड़ दिया, इसपर महावत ने कुपित होकर खाने के लिये हठ किया तो उसने मद से अलसा कर आँखें बन्द कर लीं। बहुत प्रयत्न करने पर रह-रहकर अनादर से कौर ले लेता था। आधे चबाये हुए तमाल-पल्लव के रस की काली धारा धीरे धीरे मद के समान उसके मुँह से चू रही थी। दर्प से वह मानों काँप रहा था, शौर्य से जीवित

१. दलन्त।

दर्पेण, श्वसन्तमिव शौर्येण, मूर्च्छन्तमिव मदेन, त्रुट्यन्तमिव तारुण्येन, द्रवन्तमिव दानेन, वल्गन्तमिव बलेन, माद्यन्तमिव मानेन, उद्यन्तमिवोत्साहेन, ताम्यन्तमिव तेजसा, लिम्पन्तमिव लावण्येन, सिञ्चन्तमिव सौभाग्येन स्निग्धं नखेषु, परुषं रोमविषये, गुरुं मुखे, सच्छिष्यं विनये, मृदुं शिरसि, दृढं परिचयेषु, ह्रस्वं स्कन्धबन्धे, दीर्घमायुषि, दरिद्रमुदरे, सततप्रवृत्तं दाने, बलभद्रं मदलीलासु, कुलकलत्रमायत्ततासु, जिनं क्षमासु, वह्निवर्षं क्रोधमोक्षेपु, गरुडं नागोद्धृतिषु, नारदं कलहकुतूहलेषु, शुष्काशनिपातमवस्कन्देषु, मकरं वाहिनीक्षोभेषु, आशीविषं दशनकर्मसु, वरुणं हस्तपाशाकृष्टिषु, यमवागुरामरातिसंवेष्टनेषु,

त्यादि दर्पाधिकरणसमुचितक्रियाप्रतिपादनसाभिप्रायं व्याख्येयम् । स्निग्धमिति । उक्तं च—'नखाः स्निग्धाः सिताः शस्ताः' इति । परुषं निष्कृपम् । यश्च स्निग्धः प्रीतिमान्स कथं परुषः प्रीतिशून्यो भवतीति विरोधः । एवं गुरुर्विस्तीर्णः, आचार्यश्च । विनय इति । उक्तं च—'विनये मुनिभिस्तुल्याः क्रुद्धा नागाश्च राक्षसाः । निस्त्रिंशस्याधिकत्वाच्च शस्त्रं नागा महीपतेः ॥' इति । स्कन्धबन्धे ग्रीवामूले । दरिद्रः कृशः, दुर्गतश्च । दानं मदवारि, वितरणं च । बलभद्रो हलधरः । मदो दानम्, सुराकृतश्च । नागाः करिणः, सर्पाश्च । कलहो रणोऽपि । अविदितशत्रुसैन्ये पातोऽवस्कन्दः । मकरं कूर्मम् । वाहिनी सेना नदी च । दशनकर्म दन्तव्यापारः, दशनरूपा च क्रिया । हस्त एव पाशः, प्रशस्तहस्तो हस्तपाश इति वा । हस्ते च पाशः । वागुरा जालम् । परिणतिषु दन्तविदारणकर्मसु । कालं यमम् । शुभाशुभा-

था, मद से मूर्च्छित हो रहा था, जवानी से उसके अङ्ग-अङ्ग टूट रहे थे, दानजल के रूप में वह ढल रहा था, बल से मचल रहा था, मान के कारण अपने मद और भी प्रकट कर रहा था, वह अपने भड़कीले चेहरे से सबको लिप रहा था, सौभाग्य से सींच रहा था, स्निग्धता उसके नखों में थी, परुषता उसके रोमों में, गुरुता मुख में, सच्छिष्यता विनय में, मृदुता सिर में, दृढ़ता परिचय में, ह्रस्वता ग्रीवामूल में, लम्बी आयु, पेट छोटा और दान में हमेशा उसकी प्रवृत्ति थी, वह मदलीलाओं में बलभद्र, अधीनता स्वीकार करने में कुलाङ्गना, क्षमा करने में जिन, क्रोध और त्याग करने में अग्नि और वर्षा, नागों (हाथियों, सर्पों) को उठा लेने में गरुड़, झगड़े के कुतूहल में नारद, आक्रमण में शुष्क वज्रपात, वाहिनी (सेना या नदी) को क्षुभित करने में मकर, काटने में सर्प, सूँड़ से पकड़ कर खींच लेने में वरुण, शत्रुओं को घेरने में यमपाश, दाँतों का प्रहार करने में काल, सूँड़ से प्रचण्ड आघात करने में (सूर्य के ग्रहण करने में) राहु, टेढ़ी चाल में

कालं परिणतिषु, राहुं तीक्ष्णकरग्रहणेषु, लोहिताङ्गं वक्रचारेषु, अलातचक्रं मण्डलभ्रान्तिविज्ञानेषु, मनोरथसंपादकं चिन्तामणिपर्वतं विक्रमस्य, दन्तमुक्ताशैलस्तम्भनिवासप्रासादमभिमानस्य, घण्टाचामरमण्डनमनोहरमिच्छासंचरणविमानं मनस्वितायाः, मदधारादुर्दिनान्धकारं गन्धोदकधारागृहं क्रोधस्य, सकाञ्चनप्रतिमं महानिकेतनमहंकारस्य, सगण्डशैलप्रस्रवणं क्रीडापर्वतमवलेपस्य, सदन्ततोरणं वज्रमन्दिरं दर्पस्य, उच्चकुम्भकूटाट्टालकविकटं संचारिगिरिदुर्गं राज्यस्य, कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोहप्राकारं पृथिव्याः, शिलीमुखशतझांकारितं पारिजात-

दिकर्मविपाकेषु च कालमहरादिरूपम्। तीक्ष्णं कृत्वा करेण हस्तेन ग्रहणम्, रविश्च तीक्ष्णकरः। लोहिताङ्गोऽङ्गारकः। वक्रं कुटिलम्। पश्चाच्च मण्डलाकृत्या भ्रान्तेर्भ्रमणस्य विज्ञानानि कौशलातिशयगतिः। गोमूत्रिकामण्डले त्रिविधा हि गतिः। तत्रालातचक्रमुल्मुकचक्रं भ्रमणं करोति। मनोरथसंपादकमिति। शेषे षष्ठीसमासः। 'कर्मण्यण्' इति वाऽणि कृते स्वार्थे कः। दन्तौ मुक्ताशैलस्य श्वेतपाषाणस्य स्तम्भाविव यस्य। अन्यत्र,–दन्तस्य मुक्ताशैलानां च स्तम्भा यत्र। प्रतिमा दन्तकोशः, देवताकृतिश्च। महानिकेतनं साधुदेवगृहम्। गण्डावेव शैलौ तत्र प्रस्रवणं दाननिर्यासः। सह तेन वर्तते निर्झरश्च। 'महतो मुक्तपाषाणान्गण्डशैलान्प्रचक्षते'। संचारी जङ्गमः। यदाह कौटिल्यः—'हस्तिनो हि जङ्गमं दुर्गम्' इति। कृतान्यनेकानि बाणैर्विवरसहस्राणि यस्य तम्। प्राकारेषु बाणानुत्स्रष्टुं विवरसहस्राणि क्रियन्ते, त इन्द्रकोशा इति चाणक्यादिषु प्रसिद्धाः। भूनन्दनो राजा। 'देवोद्यानं च

मंगलग्रह और मण्डलाकार भ्रमण करने में अलातचक्र था। वह विक्रम का चिन्तामणि पर्वत था जो सब प्रकार के मनोरथ को सम्पन्न करने वाला था। वह अभिमान का निवास-भवन था जिसमें मुक्ताशैल के दो खम्भे दाँतों के रूप में लगे थे। वह मनस्विता का स्वेच्छाचारी विमान था जो घण्टा और चँवर के आभूषणों से सुसज्जित था। क्रोध का वह सुगन्धित जल से भरा हुआ धारा-गृह था जिससे मद की धारा के हमेशा बरसते रहने से अन्धकार छाया हुआ था। वह अहङ्कार का महानिकेतन था जिसमें सोने की मढ़ी हुई प्रतिमायें थीं। वह अवलेप का क्रीड़ापर्वत था, उसके गण्डस्थल से झरने के रूप में मद की धारा झरती रहती थी। दर्प का वह वज्रमन्दिर था जिसमें दाँतों के तोरण लगे हुए थे। वह राज्य का संचरणशील गिरिदुर्ग था, जिसके कुंभ के रूप में ऊपरी भाग में अट्टालक था। वह पृथ्वी की लौह दीवार था जिसमें बाणों की मार से हजारों छिद्र

पादपं भूनन्दनस्य, तथा च संगीतगृहं कर्णतालताण्डवानाम्, आपानमण्डपं मधुपमण्डलानाम, अन्तःपुरं शृङ्गाराभरणानाम्, मदनोत्सवं मदलीलालास्यानाम्, अक्षुण्णप्रदोषं नक्षत्रमालामण्डलानाम्, अकाल[1]प्रावृट्कालं मदमहानदीपूरप्लवानाम्, अलीकशरत्समयं सप्तच्छदवनपरिमलानाम्, अपूर्वहिमागमं शीकरनीहाराणाम्, मिथ्याजलधरं गर्जिताडम्बराणां दर्पशातमपश्यत्।

आसीच्चास्य चेतसि—'नूनमस्य निर्माणे गिरयो ग्राहिताः परमाणुताम्। कुतोऽन्यथा गौरवमिदम्। आश्चर्यमेतत्। विन्ध्यस्य दन्तावादिवराहस्य करः' इति विस्मयमानमेवं दौवारिकोऽब्रवीत्—

'पश्य,—

मिथ्यैवालिखितां मनोरथशतैर्निःशेषनष्टां श्रियं
चिन्तासाधनकल्पनाकुलधियां भूयो वने विद्विषाम्।

नन्दनम्'। कर्णतालानां ताण्डवानीव ताण्डवानि। अन्यत्र,–लाभप्रधानानि ताण्डवानि। मधुपा भ्रमराः, विटाश्च। शृङ्गारः सिन्दूरादिदानम्, रसभेदश्च। अक्षुण्णः परिपूर्णः, अभ्रादिनानावृतः, अपूर्वो वा।

ग्राहिताः प्रापिताः। मिथ्यैवेति। तस्या निःशेषनष्टत्वात्पुनरभावप्रसङ्गान्निःशेषेत्याद्यभिप्रायेणाह—मनोरथशतैरिति। तस्यां व्यापाररहितत्वाच्छून्यमनस्कत्वा-

---

थे। पृथ्वी के नन्दनवन का वह मानों पारिजात वृक्ष था जिसमें सैकड़ों भौंरे झंकार रहे थे। कानों के संचालन रूप नृत्य का वह संगीतगृह था, भौंरों का आपानमण्डप था, शृङ्गार और आभरणों का अन्तःपुर था, मदलीला के नृत्य का मदनोत्सव था, नक्षत्रमाला (एक अलंकार) का वह कभी नष्ट न होने वाला प्रदोष था, मद की महानदी के प्रवाह का वह असामयिक वर्षाकाल था, सप्तच्छदवन के सौरभों का मिथ्या शरत्काल था। जलकण के शीकरों का वह अपूर्व समागम था। गरज-तरज के आडम्बर का वह मिथ्या मेघ था।

बाण ने मन में सोचा—निश्चय ही दर्पशात के बनाने में पर्वत के परमाणु लगे होंगे, नहीं तो इसमें इतनी गुरुता कहाँ से आती? आश्चर्य होता है। यह हाथी क्या है? दाँतों वाला विन्ध्य पर्वत है। अथवा सूँड़ से युक्त भगवान् आदिवराह है।' इस तरह आश्चर्य में पड़े हुए बाण से दौवारिक ने कहा—'देखो—

पराजित होकर वनमें भागे हुए शत्रु राजा अपनी समूल नष्ट धन-सम्पत्ति को फिर

१. अकाण्डप्रावृट्।

आयातः कथमप्ययं स्मृतिपथं शून्यीभवच्चेतसां
नागेन्द्रः सहते न मानसगतानाशागजेन्द्रानपि ॥

तद्देहि। पुनरप्येनं द्रक्ष्यसि। पश्य तावद्देवम्' इत्यभिधीयमानश्च तेन मदजलपङ्किलकपोलपट्टपतितां मत्तामिव मदपरिमलेन मुकुलितां कथमपि तस्माद्दृष्टिमाकृष्य तेनैव दौवारिकेणोपदिश्यमानवर्त्मा समतिक्रम्य भूपालकुलसहस्रसंकुलानि त्रीणि कक्षान्तराणि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम्, दूरादूर्ध्वस्थितेन प्रांशुना कर्णिकारगौरेण व्यायामव्यायतवपुषा शस्त्रिणा मौलेन शरीरपरिचारकलोकेन पङ्क्तिस्थितेन कार्तस्वरस्तम्भमण्डलेनेव परिवृतम्, आसन्नोपविष्टविशिष्टेष्ट-

---

देवाह—सहत इत्यादि। मानसं मनः, सरोभेदोऽपि। आशा दिशः, अभिलाषोऽपि। देवमिति इत्यादौ। चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीदिति संबन्धः। मदजलेन पङ्किले कपोलपट्टे पतिताम्। मत्तामिवेति। मत्तश्च पतति, मुकुलितदृष्टिश्च भवति, गतिवैकल्यादन्येन कृष्यते। भोजनं भोक्तव्यम्। भुक्ते सत्यास्थानं लोकदर्शनं तदर्थं मण्डपस्तस्य। ऊर्ध्वस्थितेत्यादि साधारणम्। प्रांशुनोन्नतेन; अन्यत्र,—प्रकृष्टा अंशवो यस्य तेन। कर्णिकारमारग्वधपुष्पम्। व्यायामः श्रमः। व्यायतं विभक्तावयवम्, विशेषेण दीर्घं च। शस्त्रिणा सायुधेन, स्तम्भा अपि शस्त्रेण वध्यन्ते। मौलभृतकश्रेणिमित्रामित्राटविकभेदेन षट्प्रकाराः सहाया भवन्ति। अन्यत्र,—मूले बुध्ने भवं मौलम्। बुध्नप्रतिष्ठमित्यर्थः। पङ्क्तिस्थितेनेति साधारणम्। कार्तस्वरं सुवर्णम्, यस्योद्घृष्यमाणस्य सतः कुङ्कुमस्येव रागो जायते; सौगन्ध्यं च तद्धरिचन्दनम्।

से प्राप्त करने के सैकड़ों मनोरथों की चिन्तापूर्ण कल्पना करने लगते हैं, पर किसी प्रकार जब उन्हें दर्पशात का स्मरण हो जाता है तब अत्यन्त निराश हो जाते हैं। इस प्रकार यह गजराज मन के आशारूपी गजेन्द्रों को भी सह नहीं पाता।'

तो चलो, फिर इसे देखना। तब तक महाराज के दर्शन करो। दौवारिक के इस प्रकार कहने पर बाण ने दर्पशात के मदजल से पंकिल गण्डस्थल पर पड़ी हुई मतवाली और मद के सौरभ से कुछ अलसाई हुई अपनी दृष्टि को किसी प्रकार फेर लिया और उसके द्वारा बताये मार्ग से चलकर हजारों राजाओं से भरी ड्योढ़ियों को पार करते हुये चौथी में पहुंच कर चक्रवर्ती महाराज हर्ष को देखा। वे भुक्तास्थानमण्डप के सामने आंगन में बैठे हुए थे। कुछ दूर पर दृढ़ होकर खड़े हुए, कर्णिकार के समान गौर वर्ण वाले, व्यायाम से गठीले शरीर वाले, शस्त्रधारी पुस्तैनी अंगरक्षक उनके चारों ओर सोने के स्तम्भ के समान पंक्ति में खड़े थे। उनके समीप विशिष्ट और प्रेमी जन

लोकम्, हरिचन्दनरसप्रक्षालिते तुषारशीकरशीतलतले दन्तपाण्डुरपादे शशिमय इव मुक्ताशैलशिलापट्टशयने समुपविष्टम्, शयनीयपर्यन्तविन्यस्ते समर्पितसकलविग्रहभारं भुजे, दिङ्मुखविसर्पिणि देहप्रभावितानै विततमणिमयूखे घर्मसमयसुभगे सरसीव मृदुमृणालजालजटिलजले सराजकं रममाणम्, तेजसः परमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्, अनिच्छन्तमपि बलादारोपितमिव सिंहासनम्, सर्वावयवेषु सर्वलक्षणैर्गृहीतम्, गृहीतब्रह्मचर्यमालिङ्गितं राजलक्ष्म्या, प्रतिपन्नासिधाराधारणव्रतमविसंवादिनं राजर्षिम्,

शशिमय इति वक्ष्यमाणाभिप्रायेण। तुषारेत्यादिना शीतत्वममुष्य दर्शयति। दन्ते तद्वच पाण्डुरे पादे। रश्मयोऽपि पादाः। मुक्तेत्यादिना शुक्लतयापि शशिमय इवेत्येतदेव पोषयति। विग्रहः कायः, रणश्च। घर्मेत्यादि। मणीनां स्वभावत एव शीतत्वात्तदीया मयूखा अपि ह्लादयन्ति। यो हि बलवानारोप्यते स सर्वाङ्गेषु गृह्यते। गृहीतब्रह्मचर्यमिति। स्वदारसंतुष्ट ऋतुकालगामी। 'गृहस्थोचितव्यापारो ब्रह्मचार्येव' इति श्रुतेः। यत्त्वेवमनुश्रूयते—'यावन्मया न सकला जिता भूमिस्तावन्मे ब्रह्मचर्यम्' इति श्रीहर्षः प्रतिज्ञातवान्। द्वादशभिश्च वर्षैर्जित्वा तां महिषीमब्रवीत—'प्रतिज्ञा मे निर्व्यूढा' इति। ततो रोषात् 'अहमपि द्वादशवर्षं ब्रह्मचर्यं चरामि' इति सा प्रतिज्ञामकरोत्। इति ब्रह्मचर्येणाज्ञाकालोऽतिवाहितः। यश्च गृहीतब्रह्मचर्यः स कथं योषितालिङ्ग्यत इति विरोधः। असिधारा खड्गधारा, व्रतविशेषश्च। यत्र स्त्रीपुंसावकपटौ ब्रह्मचर्येण तिष्ठतः। यश्च प्रतिपन्नेषु विश्वासितेषु खड्गधारां पातयति स कस्मान्न विसंवदते; नान्यथा भवति कथं च राजर्षिरसावुच्यत इति विरोधः। यश्च राजर्षिरुत्तममुनिर्गृहीतासिधारो ब्रह्मचारी च

बैठे थे। संगमर्मर की चौकी पर वे विराजमान थे जो हरिचन्दन के रस से धुली हुई, बर्फ के फुहारे की तरह ठंढी, एवं हाथीदाँत के बने उजले गोड़ों वाली थी, मानों चन्द्र को गढ़ कर बनाई गई हो। शयन के सिरे की ओर टिकी हुई भुजा पर वे सारे शरीर का भार डाले थे। उनके शरीर का प्रभा-वितान दिशाओं में फैल रहा था, मानों वे कोमल मृणालों से भरे तालाब में ग्रीष्म के समय उन राजाओं के साथ स्नान का आनन्द ले रहे थे, मानों केवल तेज के परमाणुओं से उनका निर्माण हुआ था। ऐसा लगता था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें सिंहासन पर बैठने के लिए बाध्य किया गया था। उनके समस्त अंगों में सब के सब लक्षण दिखाई दे रहे थे। ब्रह्मचर्य ग्रहण करके भी राजलक्ष्मी से आलिङ्गित थे[1]। उन्होंने असिधाराव्रत लिया था और वे सदा

१. हर्ष ने राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं सम्पूर्ण भूमि की दिग्विजय न कर लूंगा तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

विषमराजमार्गविनिहितपदस्खलनभियेव सुलग्नं धर्मे, सकलभूपालपरित्यक्तेन भीतेनेव लब्धवाचा सर्वात्मना सत्येन सेव्यमानम्, आसन्नवारविलासिनीप्रतियातनाभिश्चरणनखपातिनीभिर्दिग्भिरिव दशभिर्विग्रहावर्जिताभिः प्रणम्यमानम्, दीर्घैर्दिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृतमिव प्रत्यवेक्षमाणम् मणिपादपीठपृष्ठप्रतिष्ठितकरेणोपरिगमनाभ्यनुज्ञां मृगयमाणमिव दिवसकरेण, भूषणप्रभासमुत्सारणबद्धपर्यन्तमण्डलेन प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव[1] दिवसेन, अप्रणमद्भिर्गिरिभिरपि[2] दूयमानं, शौर्योष्मणा फेनायमानमिव चन्दनधवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तमेकराज्योर्जितेन, निजप्रतिबिम्बान्यपि नृपचक्रचूडामणिधृतान्यसहमानमिव, दर्पदुःखासिकया चामरानिलनिभेन बहुधेव श्वसन्तीं राजलक्ष्मीं दधानम्,

स कयाचिदालिङ्ग्यते। विषमोऽशक्यानुष्ठानो नतोन्नतरूपः। मार्गो व्यवहारः, पन्थाश्च। विषमे पथि च स्खलति येन क्वचित्सुलग्नेन भूयते। लब्धवाचेति। सत्यस्य वागेवाश्रयणीयश्च। सर्वैस्त्यक्तः सन्भीतः संस्त्वां त्यजामीति वाचं लब्ध्वान्यं सेवते, वारविलासिनी शरीरोपचारचतुरा मुख्यललनाप्रतिबिम्बम्। दशभिरिति। नखानां दिशां च दशसंख्याकत्वात्। मणिपादेति। मणिसंबन्धप्रतिष्ठानमेव पोषयति। करो हस्तोऽपि। फेनायमानमिति। जलं संतापेन सफेनं

एकरस रहने वाले राजर्षि थे। टेढ़े-मेढ़े राजमार्ग (राजा के पद) पर पैर फिसलने के भय से मानों उन्होंने धर्म का आश्रय लिया था। मानों सत्य दूसरे राजाओं से तिरस्कृत होकर डरते-डरते वचन लेकर सब प्रकार से उन्हीं की सेवा में तत्पर था। पास में एक वेश्या (चामरग्राहिणी) खड़ी थी जिसकी परछाइयाँ उनके चरण के नखों पर पड़ रही थीं, मानों दसो दिशाएं शरीर धारण करके उनको प्रणाम कर रही हों। वे दूर तक लम्बे दृष्टिपात करते हुए मानों लोकपालों की गलती-सही देख रहे थे। सूर्य की किरणें उनके मणिमय पादपीठ पर पड़ रही थीं मानों वह आकाश में दूर जाने के लिए सम्राट् की अनुमति पाने की इच्छा से प्रार्थना कर रहा था। आभूषणों की प्रभा से उनके चारों ओर मंडल-सा बन गया था मानों दिन उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। उन्नत होने के कारण न झुकने वाले पर्वत भी मानों उनसे प्रभावित थे। वह उस चन्दन के सदृश उज्ज्वल लावण्य के समुद्र को धारण कर रहे थे जो उनके ऐकाधिपत्य के बढ़े शौर्य के प्रताप से खौल कर फेनिल हो रहा था। अपने ही प्रतिबिम्बों को जो राजाओं की चूड़ामणियों में पड़ रहे थे, सहन नहीं कर पाते थे। चंवर की हवा के

१. मिव गलितोष्मणा दिवसेन। २. मूभृद्भिर्दूयमानं।

सकलमिव चतुःसमुद्रलावण्यमादायोत्थितया श्रिया समुपश्लिष्टम्, आभरणमणिकिरणप्रभाजालजायमानानीन्द्रधनुःसहस्राणीन्द्रप्राभृतप्रहितानि विलभमानमिव, राज्ञां संभाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतमप्यमृतमुद्वमन्तम्, विस्रम्भभाषितेष्वनाकृष्टमपि हृदयं दर्शयन्तम्, प्रसादेषु निश्चलामपि श्रियं स्थाने स्थाने स्थापयन्तम्, वीरगोष्ठीषु पुलकितेन कपोलस्थलेनानुरागसंदेशमिवोपांशु रणश्रियः शृण्वन्तम्, अतिक्रान्तसुभटकलहालापेषु स्नेहवृष्टिमिव दृष्टिमिष्टे कृपाणे पातयन्तम्, परिहासस्मितेषु गुरुप्रतापभीतस्य राजकस्य स्वच्छमाशयमिव दशनांशुभिः कथयन्तम्, सकललोकहृदयस्थितमपि न्याये तिष्ठन्तम्,

---

भवति। असहमानमिवेति। कथं सामान्येन समान इति। सकलमित्यादि। सकलपदेन चतुःशब्देन च शौरेरस्य विशेषमाह। यतो लवणत्वस्य तत्राद्यापि शिष्यमाणत्वात्। अलं लावण्यमादाय। एकस्माच्च समुद्रादुत्थाय लक्ष्म्या शौरिः समुपश्लिष्टः। लावण्यं लवणता, सौन्दर्यं च। प्राभृतं ढौकनिकम्। मधु मद्यम्, अमृतं च। विस्रम्भ आश्वासः। उपांश्वप्रकटम्। अतिक्रान्ते कलहे रणे शस्त्राणां स्नेहो दीयते रुधिरादिसलिलनिवारणाय। स्वच्छं निर्मलम्। सुप्रसादमाशयं भावं, प्रकृष्टतापभीतस्य च स्वच्छो निर्मल आशयो जलाधारो दृश्यते। अत्र प्रतापेत्यादि प्रकरणसाहचर्यात्स्वच्छतान्यथानुपपत्त्या च जलशब्दं विना जलाशय एव प्रतीयते। न्याये तिष्ठन्तम्। न्यायमनुल्लङ्घन्तमित्यर्थः। य सर्वेषां हृदयस्थितः स एकस्मिन्नेव तिष्ठ-

---

बहाने दर्प के दुःख से बार-बार साँस ले छोड़ती हुई राजलक्ष्मी को धारण कर रहे थे, मानों चारों समुद्रों के लावण्य को लेकर निकली हुई श्री ने उनका आलिंगन किया था, मानों उपहार के रूप में इन्द्र द्वारा भेजे गए उनके आभरणों की प्रभा से हजारों इन्द्रधनुष बन गए थे, मानों उपहार के रूप में इन्द्र ने भेजा हो। राजाओं के साथ बातचीत के प्रसंग में छुटे हुए भी मधु (मदिरा अथवा मधुरस) की मानों वर्षा कर रहे थे। कविता की गोष्ठियों में न पिए हुए अमृत को भी मानों उगल रहे थे। विस्रंभालाप करते हुए अपने अनाकृष्ट हृदय को मानों दिखा रहे थे। प्रसन्न होकर स्थान-स्थान में अपनी निश्चल श्री को भी अर्पित कर रहे थे। वीरगोष्ठियों में उनके कपोल रोमांच से भर आए थे मानों एकान्त में रणश्री द्वारा भेजे गए अनुरागसंदेश को सुन रहे थे। बड़े-बड़े योद्धाओं की बातचीत के प्रसंग के बाद अपने प्रिय कृपाण पर दृष्टिपात कर रहे थे। हँसी-मजाक में मुस्कुराते हुए वे अपने प्रचंड प्रताप से भीत राजाओं के प्रति दाँत की किरणों से अपने स्वच्छ मनोभाव को व्यक्त कर रहे थे। सारे जन-समूह के हृदय में स्थित होकर भी न्याय में स्थिर थे। उनमें लक्ष्मी का

अगोचरे गुणानामभूमौ सौभाग्यानामविषये वरप्रदानानामशक्य आशिषाममार्गे मनोरथानामतिदूरे दैवस्यादिश्युपमानानामसाध्ये धर्मस्यादृष्टपूर्वे लक्ष्म्या महत्त्वे स्थितम्, अरुणपादपल्लवेन सुगतमन्थरोरुणा वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन वृषस्कन्धेन भास्वद्बिम्बाधरेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन कृष्णकेशेन वपुषा सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तम्, अपि च मांसलमयूखमालामलिनितमहीतले महति महार्हे माणिक्यमालामण्डितमेखले महानीलमये पादपीठे कलिकालशिरसीव सलीलं विन्यस्तवामचरणम्, आक्रान्तकालियफणाचक्रवालं बालमिव पुण्डरीकाक्षम्, क्षौमपाण्डुरेण चरणनखदीधितिप्रतानेन प्रसरता महीं महादेवीपट्टबन्धेनेव महिमानमारोपयन्तम्, अप्रणतलोकपालकोपेने-

---

तीति विरोधः। अरुणो लोहितः, अनूरुश्च। शोभनं गमनं ययोस्तौ मन्थरावूरू यस्य। बुद्धश्च सुगतः। वज्राख्यमायुधं तद्विन्निष्ठुरं कठोरं प्रकोष्ठस्य पृष्ठं यस्य तेन। इन्द्रश्चास्य वज्रमायुधम्। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। वृषो दान्तः, धर्मश्च। भास्वद्भास्वरम्, रविश्च भास्वान्। बिम्बं फलभेदः, मण्डलं च। अवलोकितं वीक्षितम्, बुद्धिभेदश्चावलोकितः। कृष्णः कालः, हरिश्च कृष्णः। कलिकालेति। कलिकालस्य मलिनत्वादेवमुत्प्रेक्षा। वामपादेन पराभवनीयत्वमेव पोष्यते। कालियो

उत्कर्ष था जो गुणों का अगोचर, सौभाग्य का अभूमि, वरदान का अविषय, आशीर्वचनों का अशक्य, मनोरथों का अमार्ग, भाग्य से भी अतिदूर, उपमानों का अविषय, एवं धर्म का असाध्य था। अपने आप को समस्त देवताओं के अवतार के रूप में प्रकट कर रहे थे, उनके पादपल्लव अरुण (लाल, सूर्य का सारथी अरुण), सुगत (बुद्ध) अर्थात् सुन्दर गमन करने वाले और मन्दगामी दोनों ऊरु, हाथ के गट्ट वज्र के समान (वज्रायुध = इन्द्र) कड़े, वृष (बैल, धर्म) के समान कंधे, चमकते हुए (भास्वत् = सूर्य) बिम्बाधर, दृष्टिपात (अवलोकितेश्वर) प्रसन्न, चन्द्र के सदृश मुख एवं केश काले (कृष्ण) थे। सम्राट् का बायाँ पैर महानीलमणि के बहुमूल्य, विविध रत्नों से मंडित पादपीठ पर रखा हुआ था जिसकी गहरी कृष्ण वर्ण की आभा चारों ओर फैल रही थी मानों उन्होंने कलिकाल के सिर पर अपना पैर रख दिया हो। अथवा बालक श्रीकृष्ण ने कालिय नाग के फनों पर आक्रमण किया हो। क्षौम वस्त्र के समान उनके चरणों के नखों की रश्मियाँ फैलती थीं मानों पृथिवी को पटबंध द्वारा राजमहिषी के पद पर प्रतिष्ठित कर रहे थे। सम्राट् के दोनों चरण प्रणत होने वाले लोकपालों पर क्रोध के कारण मानो लाल हो रहे थे, राजाओं के मुकुट में पद्मराग

वातिलोहितौ सकलनृपतिमौलिमालास्ववतिपीतं पद्मरागरत्नातपमिव वमन्तौ सर्वतेजस्विमण्डलास्तमयसंध्यामिव धारयन्तावशेषराजककुसुम-शेखरमधुरसस्रोतांसीव स्रवन्तौ समस्तसामन्तसीमन्तोत्तंसस्रक्सौरभ-भ्रान्तैर्भ्रमरमण्डलैरमित्रोत्तमाङ्गैरिव मुहूर्तमप्यविरहितौ संवाहनतत्परायाः श्रियो विकचरक्तपङ्कजवनवासभवनानीव कल्पयन्तौ जलजशङ्खमीन-मकरसनाथतलतया कथितचतुरम्भोधिभोगचिह्नाविव चरणौ दधा-नम्, दिङ्नागदन्तमुसलाभ्यामिव विकटमकरमुखप्रतिबन्धबन्धुराभ्यामु-द्वेललावण्यपयोधिप्रवाहाभ्यामिव फेनाहितशोभाभ्यां कलाचन्दनद्रुमा-भ्यामिव भोगिमण्डलशिरोरत्नरश्मिरज्यमानमूलाभ्यां हृदयारोपितभूभार-धारणमाणिक्यस्तम्भाभ्यामूरुदण्डाभ्यां विराजमानम्, अमृतफेनपिण्ड-पाण्डुना मेखलामणिमयूखखचितेन नितम्बबिम्बव्यासङ्गिना विमल-पयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा वासुकिनिर्मोकेणेव मन्दरं द्योतमानम्, अघनेन सतारागणेनोपरिकृतेन द्वितीयाम्बरेण भुव-

---

नागभेदः। पुण्डरीकाक्षमिति राज्ञो विशेषणम्। तेजस्विनो वीराः, आदित्याश्च। जलजेत्यादीनि महाराजविशेषणानि लक्षणानि। एवमादि च संभवति। मकर-मुखं जानुसंधिः, मकरमुखचिह्नितान्तकपोलश्च। उद्वेलतया लावण्यस्य समु-च्छलद्रूपत्वमाह। फेनो रससंतानः, डिण्डीरश्च। भोगिनो नृपाः, सर्पाश्च। फेनवत्तैश्च पाण्डु। मेखला रशना, पर्वतमध्यभूमिश्च। पयो जलम्, क्षीरं च। नेत्रसूत्रं पट्टसूत्रम्, मन्थनरज्जुश्च। अघनेन छातेन, अनभ्रेण च। ताराः सूत्रबिन्दवः

मणि का आतप वमन कर रहे थे, मानों समस्त तेजस्वियों के अस्त हो जाने के कारण संध्याराग को धारण कर रहे थे, समस्त राजाओं के सिर की पुष्परचित माल के मधुरस बरस रहे थे, सामन्तों के केशविन्यास की माला की सुगन्ध में लुभाए हुए भौंरे शत्रुओं के सिर के रूप में चरणों को नहीं छोड़ते, सेवा में लीन लक्ष्मी के निवास के लिए खिले हुए लाल कमलों के भवनों को मानों बना रहे थे, तलवे में कमल, शंख, मछली और मकर के चिह्न थे जिनसे व्यक्त होता था कि उन्होंने चारों समुद्रों के उपभोग के चिह्नों को प्राप्त किया था। उनकी दोनों जाँघें दिग्गजों के मुसल जैसे दाँतों के समान थीं, मकर के विकट मुह के प्रतिबंध से ऊपर-नीचे तरंगित होते हुए लावण्य-समुद्र के दो प्रवाह के सदृश थीं, जिसमें फेनों द्वारा शोभा बढ़ गई थी, कला के चन्दनवृक्ष की भाँति थीं जो भोगिमण्डल (धनिकसमूह, सर्पमण्डल) के सिर के रत्नों की रश्मियों से मूल में रंजित हो रही थीं, मानों हृदय पर पृथिवी के भार को धारण करने के लिए दो बड़े बड़े खम्भे गाड़ दिए गए हों। वासुकि सर्प के केंचुल से मंदराचल

नाभोगमिव भासमानम्, इभपतिदशनमुसलसहस्रोल्लेखकठिनमसृणे-नापर्याप्ताम्बरप्रथिम्ना विविधवाहिनीसंक्षोभकलकलसंमर्दसहिष्णुना कैला-समिव महता स्फटिकतटेनोरुणोरःकपाटेन विराजमानम्, श्रीसरस्वत्यो-रुरोवदनोपभोगविभागसूत्रेणेव पातितेन शेषेणेव च तद्भुजस्तम्भविन्य-स्तसमस्तभूभारलब्धविश्रान्तिसुखप्रसुप्तेन हारदण्डेन परिवलितकन्धरम्, जीवितावधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षाचीरेणेव हारमुक्ताफलानां किरण-निकरेण प्रावृतवक्षःस्थलम्, अजजिगीषया बालैर्भुजैरिवापरैः प्ररोहद्भि-र्बाहूपधानशायिन्याः श्रियाः कर्णोत्पलमधुरसधारासंतानैरिव गलद्भिर्भु-जजन्मनः प्रतापस्य निर्गमनमार्गैरिवाविर्भवद्भिररुणैः केयूररत्नकिरणदण्डै-रुभयतःप्रसारितमणिमयपक्षवितानमिव माणिक्यमहीधरम्, सकल-

---

नक्षत्राणि च। अम्बरं वासः, नभश्च। इभपतीत्यादि साधारणम्। अपर्याप्तमम्बरं वासो यस्य तादृक्प्रथिमा यस्य, अम्बरं च खम्। वाहिनी सेना, नदी च। अन्यपर्वतसाधारण्येऽपि छायावत्त्वादुन्नतत्वाच्च कैलासमिवेत्युक्तम्। हारेत्यादिना उरस्त्वं काठिन्यमाह। परिवलिता। 'परिवेष्टिता—' इति पाठे व्याप्तेत्यर्थः। अजो हरिः। भुजेत्यादिना सेनादिकृतं नयादिकृतं च प्रतापं व्यवच्छिनत्ति। माणिक्य-

---

पर्वत की शोभा होती है उसी प्रकार उनका अधोवस्त्र अत्यन्त महान, श्वेत फेन की तरह, मेखलामणि की किरणों से खचित, नितम्बों से सटा हुआ था और उसके ऊपर रेशम का पटका लगा हुआ था। दूसरा वस्त्र उत्तरीय था जिसमें जामदानी की भाँति छोटे छोटे तारे या सूत्रबिन्दु कढ़े हुए थे, वह सम्राट् को उस प्रकार शोभित कर रहा था जैसे तारों-भरा आसमान भुवनाभोग को। जैसे कैलास-पर्वत का स्फटिक तट ऐरावत के दाँतों के हजारों प्रहार से कठिन और चिकना हो गया है और आकाश के लिए जिसका विस्तार पर्याप्त नहीं, एवं विविध नदियों के कोलाहलपूर्ण संमर्द को जो सहता है उसी प्रकार सम्राट् का उरःकपाट भी गजों के दशनों के घात-प्रतिघात से कठिन और कोमल, एवं विविध सेनाओं के कोलाहल में भी क्षुब्ध न होने वाला था। उनका हारदंड कंधे से घिर कर लटक रहा था, मानों वह लक्ष्मी और सरस्वती के क्रम से वक्ष और मुख के उपभोग का विभाग-सूत्र था, अथवा मानों शेषनाग सम्राट् की भुजाओं पर सारे पृथिवी के भार को रख कर विश्राम की नींद ले रहे हों। हार में पिरोई हुई मुक्ताओं की किरणें फैलकर उनके वक्ष में लिपट रही थीं मानों सम्राट् ने जो प्रति पाँचवें वर्ष सर्वस्वदक्षिण महादान दिए हैं उन्हीं के दीक्षावल्कल हों। उनके बिजायठ के रत्नों की दंडाकार किरणें उनके दोनों ओर फैल रही थीं, मानों चतुर्भुज

लोकालोकमार्गार्गलेन चतुरुदधिपरिक्षेपखातशातकुम्भशिलाप्रकारेण सर्वराजहंसबन्धवज्रपञ्जरेण भुवनलक्ष्मीप्रवेशमङ्गलमहामणितोरणेनातिदीर्घदोर्दण्डयुगलेन दिशां दिक्पालानां च युगपदायतिमपहरन्तम्, सोदर्यलक्ष्मीचुम्बनलोभेन कौस्तुभमणेरिव मुखावयवतां गतस्याधरस्य गलता रागेण पारिजातपल्लवरसेनेव सिञ्चन्तं दिङ्मुखानि, अन्तरान्तरा सुहृत्परिहासस्मितैः प्रकीर्यमाणविमलदशनशिखाप्रतानैः प्रकृतिमूढाया राजश्रियाः प्रज्ञालोकमिव दर्शयन्तम्, मुखजनितेन्दुसन्देहागतानि कुमुदिनीवनानीव प्रेषयन्तम्, स्फुटस्फटिकधवलदशनपङ्क्तिकृतकुमुदवनशङ्काप्रविष्टां शरज्ज्योत्स्नामिव विसर्जयन्तम्, मदिरामृतपारिजातगन्धगर्भेण भरितसकलककुभा मुखामोदेनामृतमथनदिवसमिव सृज-

---

मुत्कृष्टो मणिः। चतुर्णामुदधीनां संबन्धी परिक्षेप एव खातं परिखा यस्य स ताहग्दार्ढ्याच्छिलाप्राकार इव तेन। परिखां कृत्वान्तरे प्राकारो दीयते इति स्थितिः।

विष्णु को जीतने की इच्छा रखने वाले सम्राट् के दो और हाथ उद्भिन्न हो रहे हों, अथवा विष्णुतुल्य सम्राट् की भुजाओं को उपधान बना कर सोने वाली लक्ष्मी के कर्णोत्पल का मधु रस धारारूप में प्रवाहित होकर चू रहा हो, मानों उनकी भुजाओं से उत्पन्न होने वाले प्रताप के निकलने के लिए वे मार्ग हों, इस प्रकार वे उन किरणदण्डों से मणिमय पक्षवितान को फैलाए हुए माणिक्यपर्वत के समान विराजमान थे। वे अपने दोनों अतिदीर्घ भुजदंडों से दिशाओं के विस्तार और दिक्पालों के प्रताप को एक काल में हर ले रहे थे, मानों उनके वे भुजदंड सारे संसार के (वीर्यशाली लोगों के) तेजमार्ग को अवरुद्ध कर देने वाले अर्गलादंड हों, मानों चारों समुद्रों के घेरे की खाई में सुवर्ण के चट्टानों को जोड़कर बनाए गए प्राकार हों; समस्त राजसमूह रूपी हंसों के रहने के लिए वज्र के पिंजड़े हों; भुवनलक्ष्मी के स्वागत के अवसर पर मंगलार्थ लगाए जाने वाले बड़े बड़े मणिमय तोरण हों। मानों उनका कौस्तुभ मणि के समान अधर अपनी बहन लक्ष्मी को चूमने के लिए मुख का अवयव बन गया हो; ऐसे अधर से पारिजातपल्लव के रस के समान द्रवित होते हुए राग से मानों वे दिशाओं को सींच रहे थे। बीच-बीच में मित्रों के साथ हँसी मजाक के प्रसंग में सम्राट् हँस पड़ते तो उनके दाँतों की निर्मल किरणें चारों ओर फैल जातीं मानों प्रकृतिमुग्धा राजलक्ष्मी की प्रज्ञा के आलोक हों, अथवा उन किरणों के रूप में मुख को चन्द्र समझ कर पहुँचे हुए कुमुदवनों को मानों वे लौटा रहे थे; स्फटिक के समान जड़े हुए दाँतों को कुमुदवन समझ कर प्रविष्ट हुई शारदी ज्योत्स्ना को मानों वापिस कर रहे थे। उनके मुख से मदिरा, अमृत और पारिजात के मुखवास की मिली हुई सुगन्ध निकल रही थी

न्तम्, विकचमुखकमलकर्णिकाकोशेनानवरतमापीयमानश्वाससौरभमिवाधोमुखेन नासावंशेन, चक्षुषः क्षीरस्निग्धस्य धवलिम्ना दिङ्मुखान्यपूर्ववदनचन्द्रोदयोद्वेलक्षीरोदोत्प्लावितानीव कुर्वाणम्, विमलकपोलफलकप्रतिबिम्बितां चामरग्राहिणीं विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनीं सरस्वतीं दधानम्, अरुणेन चूडामणिशोचिषा सरस्वतीर्ष्याकुपितलक्ष्मीप्रसादनलग्नेन चरणालक्तकेनेव लोहितायतललाटतटम्, आपाटलांशुतन्त्रीसंतानवलयिनीं कुण्डलमणिकुटिलकोटिबालवीणामनवरतचलितचरणानां वादयतामुपवीणयतामिव स्वरव्याकरणविवेकविशारदम्, श्रवणावतंसमधुकरकुलानां कलक्वणितमाकर्णयन्तम्, उत्फुल्लमालतीमयेन राजलक्ष्म्याः कचग्रहलीलालग्नेन नखज्योत्स्नावलयेनेव मुखशशिपरिवेषमण्डलेन मुण्ड-

---

राजहंसा राजोत्तमाः, हंसभेदाश्च। आयतिर्दैर्घ्यम्, प्रतापश्च। कर्णिका कोशः, चक्रं च। आपीयमानं श्वाससौरभं यस्य तम्। अधोमुखेनेति। अनेन सुलभत्वं सौरभस्य तथाऽऽपीयमानानुमतिं दर्शयति। अंशुरेव तन्त्रीसंतानः स एव वलयाकारस्वाद्वलयं विद्यते यस्यास्ताम्। कुण्डलमणिकुटिलकोटिमेव बालवीणां सप्ततन्त्रीकां विपञ्चीं वादयताम्। अनवरतेत्यादिना व्यापारसादृश्येनोक्तम्। अद-(वादय)तामिति। वीणयोपगायतामुपवीणयतामिति गानस्य प्राधान्यं प्रतिपा-

---

जिससे व्यक्त हो रहा था कि अमृतमथन के दिन को पुनः प्रतिष्ठित कर रहे थे। सम्राट् का खिले हुए मुख-कमल के बीज कोश के सदृश अधोमुख नासावंश था जिससे वे निरन्तर सुगन्ध से भरी साँस ले रहे थे। क्षीर के समान स्निग्ध अपनी आँखों की सफेदी द्वारा मुख रूपी चन्द्र के उदित होने से क्षीरसमुद्र में होने वाली खलबली का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। उनके निर्मल कपोलफलक पर समीप में खड़ी चामरग्राहिणी (चँवर डुलाने वाली स्त्री) प्रतिबिम्बित हो रही थी मानों शरीरिणी होकर मुख में निवास करने वाली सरस्वती को वे धारण कर रहे थे। उनके चौड़े ललाट पर चूड़ामणि की अरुण किरणें छिटक रही थीं, मानों सरस्वती की ईर्ष्या से कुपित हुई लक्ष्मी के प्रसादन के लिए पैर पड़ते हुए इनके ललाट पर उसका आलता लग गया हो। उनके कर्णावतंस पर बैठकर भौंरे कुंडलमणि की बाल वीणा के कुछ लाल वर्ण वाले किरण रूपी तारों पर स्वर का विस्तार और विवेक करते हुए जो गा रहे थे उसे वे ध्यान से सुन रहे थे। उनके बालों में मुंडमाला बँधी थी जिसमें खिले हुए मालती के फूल थे, मानों कचग्रह के अवसर पर राजलक्ष्मी के नखों की कुछ किरणें वहाँ फँस कर रह गई हों, अथवा वह मानों इनके मुख-चन्द्र के चारों ओर घिरी हुई परिधि हो। उनके शिखंडा-

मालागुणेन परिकलितकेशान्तम्, शिखण्डाभरणभुवा मुक्ताफलालोकेन मरकतमणिकिरणकलापेन चान्योन्यसंवलनवृजिनेन प्रयागप्रवाहवेणिकावारिणेवागत्य स्वयमभिषिच्यमानम्, श्रमजलविलीनबहलकृष्णागुरुपङ्कतिलककलङ्ककल्पितेन कालिम्ना प्रार्थनाचाटुचतुरचरणपतनशतश्यामिकाकिणेनेव नीलायमानललाटेन्दुलेखाभिः क्षुभितमानसोद्गतैरुत्कलिकाकलापैरिव हारैरुल्लसद्भिरवष्टभ्यमानाभिर्विलासवल्गनचटुलैर्भ्रूलताकल्पैरीर्ष्यया श्रियमिव तर्जयन्तीभिरायामिभिः श्वसितैरविरलपरिमलैर्मलयमारुतमयैः पाशैरिवाकर्षन्तीभिर्विकटबकुलावलीवराटकवेष्टितमुखैर्बृहद्भिः स्तनकलशैः स्वदारसंतोषरसमिवाशेषमुद्धरन्तीभिः

दयति। स्वरव्याकरणविशारदमित्यादिना गानं दर्शयति। परिवेषः परिधिः। वृजिनेन शकलेन, कलुषेण वा। प्रयागो गङ्गायमुनासंगमः। तत्प्रवाहस्य वेणिकारूपेण वारिणेव। श्रमजलेत्यादौ वारविलासिनीभिः सर्वतो विलुप्यमानमसौभाग्यमिवेति संबन्धः। प्रार्थनाचाटिवत्यादौ प्रार्थनादीनि सर्वाणि श्रीहर्षविषयाणि ज्ञेयानि। मानसं सरः, चेतश्च। उत्कलिका, रुहरुहिकाः, वीचयश्च। अविरलेत्यादिना धारणं आकर्षणं वशीकरणम्, समीपप्रापणं च। विकटेत्यादिनोद्दीपनभावमेव पोषयति। वराटको रज्जुः। बृहद्भिरिति। बृहत्त्वेन हृद्यत्वमेषामाह। बृहत्त्वादेव च वक्ष्यति—अशेषमिति। स्तनकलशैरिति। कलशैः किल रज्जुवेष्टितमुखै रसो जलमु-

---

भरण में मोती और मरकत दोनों लगे थे, दोनों की किरणें परस्पर मिल कर उन पर पड़ रही थीं, मानों प्रयाग से गंगा और यमुना के जल स्वयं आकर उनका अभिषेक कर रहे हों। वहाँ गणिकाएँ थीं जो उनके सौभाग्य को बढ़ा रही थीं। उनके ललाट की चन्द्रलेखा पसीने से पसीज कर बहते हुए कृष्णागुरु की धार से काली पड़ गई थी, मानों प्रिय वचन बोलकर प्रार्थना करने में चतुर होने के कारण सैकड़ों बार प्रिय के चरण पर सिर पटकने से वहाँ दाग पड़ गया हो। उनके वक्ष पर हार उल्लसित हो रहे थे मानों वे उनके उथल-पुथल होते हुए मानस की वीचियाँ हों। वे इस प्रकार विलास के साथ अपनी भौंहें मटकाती थीं मानों जैसे ईर्ष्या से लक्ष्मी पर तरक रही हों। मलयानिल की तरह निरन्तर निकलती हुई सुगन्धित लम्बी साँसें लेतीं तो मालूम होता कि साँसों की डोर से कुछ खींच रही हों। बकुलमाला की लम्बी-लम्बी डोर से उनके स्तन रूपी कलश बँधे हुए थे जिनसे अपनी पत्नियों में होने वाले सम्राट् के सन्तोष-रस को मानों वे रिक्त कर रही थीं। हाँफने से हिलते हुए उनके स्तन पर हार की तरल मणियों की किरणों से मानों वे सम्राट् के हृदय को खींच कर हठात् अपने में प्रविष्ट

कुचोत्कम्पिकाविकारप्रेङ्खितानां हारतरलमणीनां रश्मिभिराकृष्य हृदय-मिव हठात्प्रवेशयन्तीभिः प्रभामुचामाभरणमणीनां मयूखैः प्रसारितै-र्बहुभिरिव बाहुभिरालिङ्गन्तीभिर्जृम्भानुबन्धबन्धुरवदनारविन्दावरणी-कृतैरुत्तानैः करकिसलयैः सरभसप्रधावितानि मानसानीव निरुन्धती-भिर्मदनान्धमधुकरकुलकीर्यमाणकर्णकुसुमरजःकणकूणितकोणानि कुसुम-शरशरनिकरप्रहारमूर्च्छामुकुलितानीव लोचनानि चतुरं संचारयन्ती-भिरन्योन्यमत्सरादाविर्भवद्भङ्गुरभ्रुकुटिविभ्रमक्षिप्तैः कटाक्षैः कर्णेन्दी-वराणीव ताडयन्तीभिरनिमेषदर्शनसुखरसराशि मन्थरितपक्ष्मणा चक्षुषा पीतमिव कोमलकपोलपालीप्रतिबिम्बितं वहन्तीभिरभिलाषलीलानि-र्निमित्तस्मितैश्चन्द्रोदयानिव मदनसहायकाय संपादयन्तीभिरङ्गभङ्गवल-नान्योन्यघटितोत्तानकरवेणिकाभिः स्फुटनमुखराङ्गुलीकाण्डकुण्डली-क्रियमाणनखदीधितिनिवहनिभेनाकिंचित्करकामकार्मुकाणीव रुषा भञ्ज-

---

द्भ्रियते। रसोऽभिलाषः, जलं च। बन्धुरं हृद्यम्। कूणितः संकोचितः। मदनादि-शब्दे विद्यमानेऽपि मदनान्धेत्यभिप्रायेण कुसुमसरग्रहणम्। अत्रपक्षे कर्णपदं त्य-ज्यते। अनिमेषदर्शनसुखरसराशिमिव श्रीहर्षम्। प्रतिबिम्बितमिति। अथ च रसो जलादिः विमले मणिभाजनादावन्तर्वर्त्यपि प्रतिबिम्बितो लक्ष्यते। करवेणिका

कर रही थीं। उनके चमचमाते हुए आभूषणों की किरणें इस प्रकार फैल रही थीं मानों वे सम्राट् के आलिङ्गन के लिए अनेक भुजाएँ पसार रही हों। जंमाई लेते हुए अपने उतान हाथों से मुँह ढँक कर मानों वे वेग से निकल भागते हुए अपने चित्त को रोक रही थीं। वे बड़ी चतुरता से आँखे मटका रही थीं, मानों मदांध भौरें उनके कर्ण-फूल की रज उड़ाकर आँखों में भरते या मानों काम के निरन्तर प्रहार से मूर्च्छित होकर वे अपनी आँखे मुकुलित करतीं। आँखों से परस्पर मत्सर के कारण भौंहें ऐंच कर छोड़े गए कटाक्षों से मानों अपने कर्णोत्पलों का ताड़न कर रही हों। सम्राट् के निरन्तर दर्शन-सुख की राशि जिसे उन्होंने अपनी निश्चल आँखों से पी रखा था उनके कपोल पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। मानों काम की सहायता करने के लिए अभिलाषाओं के कुतूहल से निर्निमित्त हँसी हँसकर बहुत से चन्द्रों को उदित कर रही थीं। कभी कभी अपने अङ्गों की तोड़-मरोड़ करते हुए हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर हथेली ऊपर उठाए हुए नाचती थीं। उँगलियाँ चटका कर नखों की किरणों को कुंडलाकार बनाते हुए मानों काम की निकम्मी धनुहियों को क्रोध से तोड़ रही थीं। सम्राट पास में खड़ी चामरग्राहिणी को जो काम के पसीने से हाथ के भींग जाने और काँपने के कारण

न्तीभिर्वारविलासिनीभिर्विलुप्यमानमसौभाग्यमिव, सर्वतःस्पर्शस्विन्न-वेपमानकरकिसलयगलितचरणारविन्दां चरणग्राहिणीं विहस्य कोणेन लीलालसं शिरसि ताडयन्तम्, अनवरतकरकलितकोणतया चात्मनः प्रियां वीणामिव श्रियमपि शिक्षयन्तम्, निःस्नेह इति धनैः, अनाश्रयणीय इति दोषैः, निग्रहरुचिरितीन्द्रियैः, दुरुपसर्प इति कलिना, नीरस इति व्यसनैः, भीरुरित्ययशसा, दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा, स्त्रीपर इति सरस्वत्या, षण्ढ इति परकलत्रैः, काष्ठामुनिरिति यतिभिः, धूर्त इति वेश्याभिः, नेय इति सुहृद्भिः, कर्मकर इति विप्रैः, सुसहाय इति

परस्परानुबन्धस्थितकरद्वयाङ्गुलिविन्यासः। विलुप्यमानसौभाग्यादिना ताः। इत्यर्थः। कोणो वीणादिवादनभाण्डम्। प्रियामिति। वीणायाः श्रियाश्च विशेषणम्। निःस्नेह इत्यादौ। एतैरेकमप्यनेकधा गृह्यमाणमिति संबन्धः। षण्ढः प्रजनना-क्षमः। काष्ठा पराधारा, तत्प्रधानो मुनिः काष्ठामुनिरतिशयवांस्तपस्वी। नेयः परवशः। शन्तनुर्नाम राजा भीष्मस्य पिता वाहिन्या गङ्गायाः पतिः, अयं तु तस्मादपि महतीनां वाहिनीनां सेनानां पतिः शन्तनुरिति। 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी। भीष्मो जितकाशी जितेन्द्रियः। यतस्त्वयि त्वत्पुत्रे वा सत्यस्मद्दौहित्रस्य कुतो राज्यमिति। यदा हि दाशाधिपतिना स्वसुता मत्स्योदरोद्गता मत्स्यावली नामास्मै पित्रर्थमर्थ्यते न दत्ता, तदैतेन प्रतिज्ञातम्—'नाहं राज्यं विवाहं वा करिष्यामि' इति। अत एव ब्रह्मचार्येवाभूत्। राजा च ततोऽपि जितकाशितमः, जितकाशी वा। जितेन जयेन काशते शोभते यः। तथा हि भीष्मेण रामो जितः। सर्वराजमहितं काशिराजं च जित्वा भ्रात्रर्थमम्बादिकन्यात्रयमनैषीत्। राजा तु

उनके चरणों पर गिरती जा रही थीं, हँसते हुए अपने वीणादण्ड द्वारा उसके सिर पर धीरे से ठोंका। निरन्तर वे अपने वीणादंड को अपने हाथ में लिए रहते थे, इस प्रकार अपनी प्रिया वीणा के समान श्री को भी शिक्षा देते रहते थे। धन उन्हें समझते कि इनमें हमारे प्रति स्नेह कुछ भी नहीं; दोष कहते कि हमारे ये आश्रय के योग्य नहीं हैं; इन्द्रियाँ कहतीं कि सम्राट हमें निगृहीत रखना चाहते हैं; कलि कहता कि इनके समीप जाना कठिन है; व्यसन कहते कि ये नीरस हैं; अयश चिल्लाता कि सम्राट डरपोक हैं; काम समझता कि इनकी चित्तवृत्ति दुर्ग्रह है; सरस्वती कहती कि ये स्त्रैण हैं; परकीया स्त्रियाँ कहतीं कि ये नपुंसक हैं; यती लोग कहते कि ये पहुँचे हुए तपस्वी हैं; वेश्याएँ उन्हें धूर्त कहतीं; सुहृद्वर्ग कहता कि ये नेय हैं अर्थात् इनकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती है, ब्राह्मण कहते कि ये हमारे भृत्य हैं; शत्रु कहते कि बहुत से दूसरे इनके सहायक हैं। इस प्रकार एक ही सम्राट को लोग अनेक प्रकार से

शत्रुयोधैः, एकमप्यनेकधा गृह्यमाणम्, शन्तनोर्महावाहिनीपतिम्, भीष्माज्जितकाशितमम्, द्रोणाच्चापलालसम्, गुरुपुत्रादमोघमार्गणम्, कर्णान्मित्रप्रियम्, युधिष्ठिराद्बहुक्षमम्, भीमादनेकनागायुतबलम्, धनंजयान्महाभारतरणयोग्यम्, कारणमिव कृतयुगस्य, बीजमिव विबुधसर्गस्य, उत्पत्तिद्वीपमिव दर्पस्य, एकागारमिव करुणायाः, प्रातिवेशिकमिव पुरुषोत्तमस्य, खनिपर्वतमिव पराक्रमस्य, सर्वविद्या-संगीतगृहमिव सरस्वत्याः, द्वितीयामृतमन्थनदिवसमिव लक्ष्मी-समुत्थानस्य, बलदर्शनमिव वैदग्ध्यस्य, एकस्थानमिव स्थितीनाम्, सर्वस्वकथनमिव कान्तेः, अपवर्गमिव रूपपरमाणुसर्गस्य, सकलदुश्च-रितप्रायश्चित्तमिव राज्यस्य, सर्वबलसंदोहावस्कन्दमिव कन्दर्पस्य,

---

ततोऽपि जितकाशितमः। द्रोणश्चापाचार्यः। स हि चापे धनुषि लालसः। चापलं न करोतीत्यर्थः। यद्वा चः समुच्चये। अपगता लालसा यस्य सोऽपलालसः। निर-भिलाष इत्यर्थः। गुरुपुत्रोऽश्वत्थामा तस्य सफलशरता। तथा शस्त्रोपसंहारो-ऽक्षमया याचितोऽपि कस्यचिदेकस्य मारणमन्तरेण न तदुपसंजहार। तत उत्तराया उदरस्थे परीक्षिति पातिते तस्मिंस्तदुपसंहृतवान्। अन्यत्र,—अमोघा मार्गणा याचका यस्येति। मित्रः सूर्यः, सुहृच्च मित्रम्। क्षमा क्षान्तिः, भूश्च। अनेकानि बहूनि, अनन्यसदृशानि च। एकशब्दस्य च साधारणार्थं तृच्। बलं सामर्थ्यम्, सैन्यं च। धनंजयोऽर्जुनः। महाभारतानां कुरूणां यो रणः संग्रामः। अन्यत्र,— महतो भारस्य कार्यधुरायास्तरणं निर्वाहणम्। प्रातिवेशिकं प्रतिबिम्बम्। खनि-राकरः। अपवर्गः समाप्तिः। संदोहः समूहः। अवभृथो यज्ञान्तः। गम्भीरं प्रसन्नं चेति परस्परापेक्षं बोद्धव्यम्। तथा च सति गम्भीरत्वे प्रसन्नत्वं ऋजुत्वं चेन्न स्यात्ततो

ग्रहण करते थे। शन्तनु केवल वाहिनीपति (अर्थात् गंगा के पति) थे, उनकी अपेक्षा ये सम्राट महावाहिनी (अर्थात् महासेना) के पति थे। भीष्म की अपेक्षा वे अधिक जितेन्द्रिय थे। द्रोण की अपेक्षा वे अधिक चापलालस (अर्थात् धनुष के प्रेमी अथवा चपलता से शून्य या निरभिलाष) थे। अश्वत्थामा की अपेक्षा वे अधिक बाण चलाने में निपुण (अमोघमार्गण) थे। कर्ण की अपेक्षा अधिक वे अपने मित्रों के प्रिय थे। युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक क्षमावान् थे अथवा विस्तृत पृथिवी के स्वामी थे। भीम की अपेक्षा अधिक हाथियों का उनमें बल था। अर्जुन की अपेक्षा अधिक वे महाभारत के युद्ध के योग्य थे, अथवा कार्य के बड़े बोझ को सम्हालने में निपुण थे। मानों वे सतयुग के कारण, विद्वानों की सृष्टि के बीज, दर्प के उत्पन्न होने के द्वीप, करुणा के एकागार, पुरुषोत्तम विष्णु के पड़ोसी, पराक्रम की

उपायमिव पुरंदरदर्शनस्य, आवर्तनमिव धर्मस्य, कन्यान्तःपुरमिव कलानाम्, परमप्रमाणमिव सौभाग्यस्य, राजसर्गसमाप्त्यवभृथस्नानदिवसमिव सर्वप्रजापतीनाम्, गम्भीरं च, प्रसन्नं च, त्रासजननं च, रमणीयं च, कौतुकजननं च, पुण्यं च, चक्रवर्त्तिनं हर्षमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा चानुगृहीत इव निगृहीत इव साभिलाष इव तृप्त इव रोमाञ्चमुचा मुखेन मुञ्चन्नानन्दबाष्पवारिबिदून्दूरादेव विस्मयस्मेरः समचिन्तयत्—'सोऽयं सुजन्मा, सुगृहीतनामा, तेजसां राशिः, चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी, भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य, सकलादिराजचरितजयज्येष्ठ-

---

जिह्मप्रकृतित्वं प्रसज्येत। एवं त्रासेत्यादौ बोद्धव्यम्। तथा च कालिदासः 'भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्। अधृष्यश्चाधिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥' इति दिलीपं प्रति वर्णितवान्। कौतुकजननपुण्यत्वादपि संभाव्यते। अत आह—पुण्यमिति। गम्भीरं च प्रसन्नं चेत्यादौ सर्वत्र विरोध उद्भाव्यः। गम्भीरं सतमिलं प्रसन्नं निर्मलं न भवतीति।

अनुगृहीत इवेत्यादि। एवंविधमहीपतिप्रसादवशात्। निगृहीत इवेति। संकोचवशात्। साभिलाष इवेति। तस्य दर्शनीयत्वात्। तृप्त इवेति। तथैव तस्य कृतार्थत्वात्। विरोधो ह्यत्र सुबोधः। केदारं क्षेत्रम्। ब्रह्मस्तम्भं जगत्। फलं रत्नादि। यश्च स्तम्भस्य फलं धान्यादि, तद्भोक्ता कर्षको भवति, राजन्वती प्रशस्तराजयुता।

खान वाले पर्वत, सरस्वती की समस्त विद्या वाला संगीतकभवन, लक्ष्मी के उदय का दूसरा अमृतमथनदिवस, विदग्धता के बल का दर्शन, मर्यादाओं के एक ही स्थान, कान्ति के सर्वस्वकथन, रूपपरमाणुओं की सृष्टि के मोक्ष, राज्य के समस्त दुश्चरितों के प्रायश्चित्त, काम के सारे बलों के सहित आक्रमण, इन्द्र के दर्शनार्थ उपाय, धर्म के आवर्तन, कलाओं के कुमारीअन्तःपुर और सौभाग्य के परम प्रमाण थे। समस्त प्रजापतियों ने मानों उन्हीं का निर्माण करके राजाओं की सृष्टि का यज्ञ समाप्त कर अन्त में अवभृथस्नान कर लिया। इस प्रकार सम्राट हर्ष गम्भीर, हँसमुख, भय उत्पन्न करने वाले और रमणीय, आह्लाद उत्पन्न करने वाले और पवित्र थे।

बाण ने सम्राट हर्ष को देखकर अपने आपको अनुगृहीत, निगृहीत, साभिलाष और तृप्त-जैसा अनुभव किया। उसके मुख के रोंगटे खड़े हो गए, आँखों में आनन्द के आँसू छल-छला उठे। उसने दूर ही से चकित और प्रसन्न होते हुए मन में सोचा—'ये ही शोभन जन्मवाले, सुगृहीतनामा, तेजोराशि, चारों समुद्रों तक फैले हुए कुटुम्ब वाले, जगत् के रत्नादि फलों का उपभोग करने वाले एवं समस्त प्राचीन राजाओं के

मल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः। एतेन च खलु राजन्वती पृथ्वी। नास्य हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीण्यै-श्वर्यविलसितानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुनाः प्रवादाः, न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, न वरुणस्येव निस्त्रिंशग्राहसहस्र-रक्षिता रत्नालयाः, न धनदस्येव निष्फलाः सन्निधिलाभाः, न जिनस्ये-वार्थवादशून्यानि दर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुलदोषोपहताः श्रियः।

वृषो धर्मः, अरिष्टासुरो दान्तरूपश्च। बालेति। बाला हि विवेकहीनत्वाद्धर्मविरुद्धमा-चरन्ति। अस्य तु तस्यामपि दशायां धर्मविरोधाभावः। दक्षः कुशलः, प्राजापति-भेदश्च। महेश्वरपक्ष ऐश्वर्यशब्दो मुख्यवृत्तिः, इतरत्र गौणः। गोत्रं कुलम्, कुल-पर्वताश्च गोत्राः। अतिवल्लभानीति। अतिशब्देन युक्तदण्डत्वमाह। दण्डः करः, यमायुधं च। निस्त्रिंशग्राहाः खड्गहस्ताः; अन्यत्र,–जलचरभेदाश्च। रत्नालया भाण्डा-गाराणि, समुद्राश्च। निष्फला ऐश्वर्यादिफलप्राप्तिशून्याः, दानादिविनाकृताश्च। सन्निधिः सन्निधानम्। एतस्य दर्शनं सर्वस्य फलदायि भवतीत्यर्थः। अन्यत्र,–संनि-धयः शोभनानि निधनान्यस्य। दर्शनानि जिनस्येव नार्थवादशून्यानि। अर्थो धनं तस्य वादः, अनेनेदं लब्धमिति, तेन शून्यानि। सर्वे तद्दर्शिनोऽर्थेन युज्यन्ते। जिनस्य पुनरर्थवादशून्यानि महायानयोगाचारमाध्यमिकदर्शनानि। बहुलाः प्रभूता दोषा रागाद्याः, बहुलदोषाश्च कृष्णपक्षरात्रयः। श्रियः समृद्धयः, शोभाश्च।

चरितों को जीतने वाले, ज्येष्ठ मल्लदेव परमेश्वर हर्ष हैं। इनसे धरती राजन्वती है (अर्थात् प्रशस्त राजा से शासित है)। विष्णु के समान इनके ऐसे बालचरित नहीं जिनमें वृष (अर्थात् धर्म, विष्णुपक्ष में अरिष्टासुर) का विरोध हो। इनमें पशुपति शिव के समान ऐसे ऐश्वर्य के विलास नहीं, जिनसे दक्षजनों (चतुर जन, शिवपक्ष में दक्षप्रजापति) के मन में जरा भी उद्वेग हो। इन्द्र के समान इनके विषय में ऐसा कोई प्रवाद नहीं कि ये गोत्रों (कुलों, इन्द्रपक्षमें कुलपर्वतों) का विनाश कर डालते हैं। यम के समान दण्ड-ग्रहण (कर लेना, यमपक्षमें दण्ड नामक आयुध का ग्रहण) इन्हें अतिप्रिय नहीं। ये वरुण के समान अपने रत्नालयों (रत्न के खजाने, वरुणपक्ष में समुद्र) की रक्षा हजारों की संख्या में तैनात निस्त्रिंशग्राह (खड्गधारी सैनिक, वरुणपक्ष में जलचारी खूंखार जीव) द्वारा नहीं करते। जैसे कुबेर का सन्निधान प्राप्त करना निष्फल अर्थात् ऐश्वर्य आदि फलों से रहित एवं प्राप्ति से शून्य है उसी प्रकार इनका सन्निधान फलशून्य नहीं। जैसे बुद्ध के दर्शन (महायान के योगाचार और माध्यमिक दर्शन) सर्वथा अर्थवाद (प्राशस्त्यमूलक वाक्य) से शून्य हैं, वैसे ही इनके दर्शन धन आदि की प्राप्ति से शून्य नहीं होते। चन्द्र जैसे बहुलदोष (कृष्ण

चित्रमिदमत्यमरं राजत्वम्। अपि चास्य त्यागस्यार्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः, कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला, न पर्याप्तो विषयः। अस्मिंश्च राजनि यतीनां योगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां पादच्छेदाः, अष्टपदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः. इति समुपसृत्य चोपवीती स्वस्तिशब्दमकरोत्।

पर्याप्तः परिपूर्णः। योगपट्टका यतीनामुपकरणं पर्यङ्कबन्धनार्थम्। ते यतीनां चतुर्थाश्रमिणामेव, न पुनर्योगेन युक्ताः पट्टकाः कूटप्रधानानि लेख्यपत्राणि केषांचित्। एवमन्यत्रापि। पुस्तकर्म लेप्यम्। पार्थिवविग्रहा मृन्मयशरीराणि, राजभिः सह वैराणि च। दानग्रहणं मदजलं दानम्, ऋणव्यवहारश्च। वृत्तानां गुरुलघुनियमात्मकानां। समाश्च समविषमानां पादच्छेदा भागविरामाः, चरणकर्तनानि च। अष्टापदानां चतुरङ्गफलकानाम्। 'चत्वार्यङ्गानि सेनाया हस्त्यश्वरथपत्तयः'। तेषां कल्पना रचना, चतुर्णामङ्गानां पाणिपादस्य च छेदः। द्विजगुरुर्गरुडोऽपि। वाक्यविदां मीमांसकानामधिकरणविश्रान्तिस्थानानि। राज्ञां च धर्मनिर्णयस्थानानि। अधिकबलो वा रणः सङ्ग्राम इति केचित्। उपवीती दक्षिणावीती करः। उक्तं च—'उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः' इति।

पक्ष की रातों) में श्रीहत हो जाता है उस प्रकार ये राग आदि बहुल दोषों के कारण श्रीहत या समृद्धिहीन नहीं हुए। इस प्रकार देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा इनका प्रभुत्व है यह देख कर आश्चर्य होता है। और भी—इनका त्याग इतना है कि पर्याप्त याचक नहीं मिलते, इनकी प्रज्ञा इतनी है कि शास्त्र के विषय पर्याप्त नहीं। इस प्रकार कवित्व के सामने वाणी, बल के सामने साहस के स्थान, उत्साह के सामने व्यापार, गुणों के सामने संख्या और कौशल के सामने कला आदि पर्याप्त नहीं ठहरते। इनके शासन में यती लोग ही पर्यंकबन्ध आदि आसन में योगपट्ट नामक वस्त्रविशेष धारण करते थे, न कि इनके राज्य में जाली बनाए हुए ताम्रपत्र थे। इनके शासन में मूर्तियाँ ही मिट्टी की बनाई जाती थीं, न कि परस्पर पार्थिवविग्रह अर्थात् राजाओं के साथ लड़ाई-झगड़े होते थे। भौंरे ही हाथियों के दानजल के ग्रहण में झगड़ते, याचक लोग दान लेने के अवसर पर नहीं झगड़ते थे। वृत्त अर्थात् छन्दों के ही चरण में सम-विषम या भाग और विराम आदि छेद होते, न कि किसी पाप-विशेष के होने से पैर काट लिए जाते थे। शतरंज के खेल में ही सेना के चार अंग हस्ती-अश्व-रथ-पैदल की कल्पना थी, न कि अपराधी के दोनों हाथ और दोनों पैर काट लिए जाते थे। सर्प ही

अथोत्तरे नातिदूरे राजधिष्ण्यस्य गजपरिचारको मधुरमपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

'करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः'॥

राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च तं गिरिगुहागतसिंहबृंहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—'एष स बाणः ?' इति। 'यथा ज्ञापयति देवः। सोऽयम्' इति विज्ञापितो दौवारिकेण। 'न तावदेनमकृतप्रसादः पश्यामि' इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकशारां तिरस्करिणीमिव भ्रमयन्नपाङ्गनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो

गजपरिचारक इति। अन्यगजपरिचारकस्य स्वजातिसमुचितं वस्तु राज्ञः प्रकृतस्मारकं जातम्। तत्र करिणां स्वभावत एव रागित्वादस्यापि रागवित्त्वाद्भुजंगता स्मृतिः संजातेति। भङ्गुरो वक्रः। मृगपतिनखकोटिभङ्गुर इति। स्पष्टा व्याख्या। गुरुर्भारः, शासिता च। उपरि पृष्ठदेशे, प्रभुभावे च अङ्कुश इवाङ्कुश इत्यपि। अत आह—तच्छ्रुत्वेति। बृंहितं गर्जितम्। अंशव एवांशुकाः। अंशुकं च

द्विजगुरु गरुड से द्वेष रखते थे, न कि प्रजा के लोग ब्राह्मण और गुरु से द्वेष करते। मीमांसक लोग ही अधिकरणों अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकरणों में विचार-विमर्श करते थे, न कि धर्मनिर्णय के स्थान (फौजदारी और दीवानी की अदालतें) लगते थे।' यह सोच बाण ने आगे बढ़ कर दाहिना हाथ उठाए हुए 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया।

उसी समय दिशा की ओर कुछ ही दूर पर राजभवन के किसी महावत ने मधुर और ऊँचे स्वर में अपरवक्त्र का गान किया—

'अरे हाथी के बच्चे, तू अपनी चंचलता छोड़ दे, सिर नीचा करके नम्रतापूर्वक रह। यह अंकुश जो शेर के नखाग्र के समान टेढ़ा और कठोर है, तेरे दोषों को नहीं सह सकता।'

उसे सुनकर हर्ष ने बाण की ओर देखा और पर्वत की कन्दरा में बैठ कर दहाड़ते हुए सिंह की आवाज के समान गम्भीर स्वर से नभोभाग को भरते हुए पूछा—'वही यह बाण है ?' तब दौवारिक बोला उठा—'देव का कथन सत्य है, ये वही हैं।' 'मैं तब तक इसे नहीं देखता जब तक यह मिलने-जुलने की अनुकूलता नहीं प्राप्त कर ले' यह कह कर सम्राट् ने मुह फेर लिया, अपाङ्ग की ओर दौड़ते हुए चंचल तारों वाली आँखों की फैलती हुई प्रभा इस प्रकार इधर से उधर हुई जैसे नील और उज्ज्वल वस्त्र की बनी हुई जवनिका एक ओर से दूसरी ओर घुमा दी जाती है। सम्राट ने घूमकर

निषण्णस्य मालवराजसूनोरकथयत्—'महानयं भुजङ्गः' इति। तूष्णींभावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—'देव ! अविज्ञाततत्त्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि ? स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितुमविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादयः कृताः संस्काराः सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। कामे भुजङ्गता।

वस्त्रम्। तिरस्करिणी जवनिका। प्रेष्ठस्यातिप्रियस्य। नेयः परवशः। स्वैरिणः स्वतन्त्राः। सोमपायिनां सोमपानाम्। 'शिक्षा कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं छन्दोविचितिः' इति षडङ्गानि वेदस्य। अभ्यागारिको गृहस्थः, सम्यग्वृत्तिस्थितो वा। कामे भुजंगतेति। कामभुजंगता शृङ्गारित्वम्। कामे मदने भुजंगता ज्ञेया, न मादृशेषु। नहि मे काचिद्भुजं बाहुं गता प्राप्तेत्यर्थः। लोकद्वयेत्यादिना त्रिवर्गस्यानुपघातं दर्शयति। शास्त्रविरोधप्रसङ्गात। 'शतायुर्वै पुरुषः'; कालमन्योन्यानु-

---

पीठ की ओर बैठे हुए मालवराज के पुत्र से कहा—'यह भारी भुजंग (गुंडा या लम्पट) है।' मालवराज के पुत्र तो चुप रहे जैसे उन्हें हर्ष की बात समझ में न आई और राजसमूह भी सुनकर गुम हो गया। तब क्षणभर चुप रह कर बाण बोला—'हे देव, आप इस प्रकार की बात ऐसे कहते हैं जैसे आप को मेरे विषय में सच्ची बात का पता न हो, या मेरा विश्वास न हो, या आप की बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती है, अथवा आप स्वयं लोक के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बातें मनमानी और तरह-तरह की होती हैं। किन्तु श्रेष्ठ जनों को ठीक-ठीक देखना चाहिए। मुझे साधारण समझ कर अनाप-सनाप कल्पना न कीजिए। सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में मैं जन्मा हूँ। समय से मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों का सम्यक् प्रकार से स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण किया है। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझ में क्या भुजंगपना है[1] ? मेरी नई अवस्था की कुछ

---

१. का मे भुजङ्गता—मेरे जीवन में कौन-सी ऐसी बात है जिसे भुजंगता कहा जाय ? भुजंगता उस व्यक्ति में रहती है जो कामी है, मुझमें नहीं, मैंने किसी स्त्री को भुजंगता नहीं की अर्थात् अपनी भुजाओं में आलिंगन नहीं किया।

लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवमशून्यमासीत्। अत्रानपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम्। इदानीं तु सुगत इव शान्तमनसि मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे शासति सप्ताम्बुराशिरशनामशेषद्वीपमालिनीं महीं क इवाविशङ्कः सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं कल्पयिष्यति। आसतां च तावन्मानुष्यकोपेताः। त्वत्प्रभावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति। रथाङ्गनामानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम्। कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते। शरारवोऽपि सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुञ्जते। सर्वथा कालेन मां ज्ञास्यति स्वामी स्वयमेव। अनपाचीनचित्तवृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। भूपतिरपि 'एवमस्माभिः श्रुतम्' इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत्। संभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत्। केवलममृत-

---

बद्धं परस्परस्यानुपघातेन त्रिवर्गं सेवत इत्यत एवाह—शैशवमिति। अशून्यमिति। अनेन तदेकासक्तत्वं परिहरति। अनपलापो निरपह्नवः विप्रतीसारः पश्चात्तापः। सुगतो बुद्धः। समवर्ती यमः। मनुष्यस्य भावो मानुष्यकम्। रथाङ्गनामानश्चक्रवाकाः चपलायन्ते चपलत्वमाचरन्ति। शरारवो हिंस्राः। श्वापदगणाः प्राणिसमूहाः। पिशितं मांसम्। अनपाचीनाऽस्पृष्टा। अविपरीतेत्यर्थः निर्दोषा वा।

चपलताएँ अवश्य हैं पर ऐसा नहीं जिससे इस लोक या परलोक का कोई विरोध हो, मैं इस बात को इनकार नहीं करता। मेरे हृदय में इसी का बहुत बड़ा पश्चात्ताप है। हे देव, आप भगवान् बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान वर्णाश्रम मर्यादा के रक्षक और यम के समान दण्डधर हैं। सातों समुद्रों की करधनी और समस्त द्वीपों की माला से विराजित पृथिवी पर आपका एकछत्र शासन है। तो कौन ऐसा निडर है जो सब प्रकार से दुखद अभिनय करने की मन से भी कल्पना करता है? मनुष्यों की तो बात जाने दीजिए, आपके, प्रभाव से भौंरे भी डरते-डरते मधुपान करते हैं, चक्रवाक पक्षी भी अपनी पत्नी के प्रति अतिशय आसक्ति रूप व्यसन से लज्जित होते हैं, वानर भी शंकित होकर चपलता करते हैं, बाघ आदि हिंसक जानवर भी दयावान् होकर पश्चात्ताप करते हुए मांस का भक्षण करते हैं। समय से स्वयं आप मेरे विषय में सब कुछ जान लेंगे क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में भी विपरीत हठ नहीं रखते।' इतना कह कर बाण चुप हो गए। सम्राट ने भी 'मैंने ऐसा ही सुना था' बस इतना ही कहा। लेकिन परस्पर बातचीत, आसनदान आदि

वृष्टिभिः स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणान्तर्गतां प्रीतिमकथयत्। अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तरं प्राविशत्।

बाणोऽपि निर्गत्य धौतारकूटकोमलातपत्विषि निर्वाति वासरे, अस्ताचलकूटकिरीटे निचुलमञ्जरीभांसि तेजांसि मुञ्चति वियन्मुचि मरीचिमालिनि, अतिरोमन्थमन्थरकुरङ्गकुटुम्बकाध्यास्यमानम्रदिष्ठगोष्ठीनपृष्ठास्वरण्यस्थलीषु, शोकाकुलकोककामिनीकूजितकरुणासु तरङ्गिणीतटीषु, वासविटपोपविष्टवाचाटचटकचक्रवालेष्वालवालावर्जितसेकजलकुटेषु निष्कुटेषु, दिवसविहृतिप्रत्यागतं प्रस्नुतस्तनं स्तनंधये धयति धेनुवर्गमुद्गतक्षीरं क्षुधिततर्णकव्राते, क्रमेण चास्तधराधरधातुधुनीपूरप्लावित इव लोहितायमानमहसि मज्जति सन्ध्यासिन्धुपानपात्रे पातङ्गे मण्डले, कमण्डलुजल-

---

बाणोऽपीत्यादौ। बाणोऽप्यस्मिन्सति निवासस्थानमगादिति संबन्धः। 'रीतिः स्त्रियामारकूटम्' इत्यमरः। निर्वाति शाम्यति। निचुलो वेतसवृक्षः। भुक्तोद्गीर्णाहारचर्वणं रोमन्थः। म्रदिष्ठं मृदुतमम्। गोष्ठीपूर्वं गोष्ठीनम्। 'गोष्ठात्खञ्भूतपूर्वे'। उक्तं च—'गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गोष्ठीनं भूतपूर्वकम्' इति। कोकाश्चक्रवाकाः। तरङ्गिणी नदी। आलवालमावापः। कुटा घटाः। निष्कुटाः स्वगृहारामाः। स्तनं-

---

के प्रसाद से उसे अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेह से भरे अमृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपातमात्र से उसको नहलाते हुए उन्होंने अपने अन्तरतम की प्रीति प्रकट की। जब सूर्य अस्ताचल की ओर लटकने लगे तो सम्राट राजसमूह से विदा लेकर महल के अन्दर चले गए।

बाण भी वहाँ से निकल कर अपने निवासस्थान स्कन्धावार में लौट आया। ढलते हुए दिन के आतप का तेज साफ-सुथरे पीतल के समान मंद पड़ गया। अस्ताचल के मुकुट के सदृश सूर्य वेतस की मंजरी जैसे अपने तेजसमूह को छोड़ कर आकाश से हट रहे थे। वनभूमियों के मुलायम बथानों में झुण्ड के झुण्ड मृग बैठ कर धीरे धीरे पगुरी करने लगे। नदी के तटों पर प्रियविरह से शोकाकुल होकर चक्रवाक की पत्नियाँ करुण आवाज में टर्राने लगीं। गृह के पास वाले उपवनों में चटक नामक छोटे छोटे पक्षी पेड़ों पर बैठ कर चहचहाने लगे और वृक्ष के थल्लों में सींचने के काम में आने वाले घड़े औंध कर रख दिए गए। दिन भर चरने के बाद शाम को टहर कर आई हुई दुधार गायों के स्तन को उनके बछडे चुभलाने लगे। क्रम से अस्ताचल की गेरू आदि धातुओं के झरनों में डुबकी लगाने से लाल होकर सूर्य संध्या के समुद्र रूपी

शुचिशयचरणेषु चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु, यज्ञपात्रपवित्रपाणौ प्रकीर्णबर्हिष्युत्तेजसि जातवेदसि, हवींषि वषट्कुर्वति यायजूकजने, निद्राविद्राणद्रोणकुलकलिलकुलायेषु कापेयविकलकपिकुलेष्वारामतरुषु, निर्जिगमिषति जरत्तरुकोटरकुटीकुटुम्बिनि कौशिककुले, मुनिकरसहस्रप्रकीर्णसंध्यावन्दनोदबिन्दुनिकर इव दन्तुरयति तारापथस्थलीं स्थवीयसि तारकानिकुरम्बे, अम्बराश्रयिणि शर्वरीशबरीशिखण्डे, खण्डपरशुकण्ठकाले कवलयति बाले ज्योतिःशेषं सान्ध्यमन्धकारावतारे, तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव स्फुरन्तीषु दीपलेखासु, अररसंपुटसंक्रीडनकथितावृत्तिष्विव गोपुरेषु, शयनोपजोषजुषि जरतीकथितकथे शिशयिषमाणे शिशुजने, जरन्महिषमषीमलीमसतमसि जनितपुण्यजनप्रजा-

---

धयस्तर्णकश्च वत्सः। धुनी नदी। सिन्धुः समुद्रः। शयः करः। चैत्यमायतनम्। पाराशरिषु भिक्षुषु। हवींषि कुशाः। वषडिति दानक्रियासु मोचनमन्त्रः वषट्कुर्वति। जुह्वतीत्यर्थः। यायजूकोऽत्यर्थं यजनशीलः। निद्राणोऽलसः। द्रोणः काकः। कलिला आकुलाः। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्'। कापेयं चापलम्। कौशिका उलूकाः। स्थवीयसि स्थूलतरे। शिखण्डो जूटकः। खण्डपरशुः शिवः। करा एव शाखास्तदाकारत्वादङ्गुलयश्च करशाखाः। अररः कपाटः। संक्रीडनं शब्दः। आवृत्तिः स्थगनम्। 'गोपुरं स्यात्पुरद्वारं द्वारमात्रेऽपि गोपुरम्'। उपजोषः सुखम्, तूष्णींभावो वा। जरती वृद्धा। शिशयिषमाणे सुषुप्सति। 'यक्षाः स्युः पुण्य-

---

मद्यपात्र में डूबने लगा। भिक्षु लोग कमण्डलु के जल से अपने हाथ-पैर धोकर चैत्यों की वंदना करने लगे। स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञपात्रों को हाथ में लेकर यज्ञ करने वाले लोग कुश को बिछा कर प्रज्वलित अग्नि में वषट्कार के द्वारा हविष छोड़ने लगे। उपवन के वृक्षों पर काँव-काँव करते हुए कौवे झपकी लेने की तैयारी करने लगे और बंदर अपनी चपलता छोड़ बैठे। पुराने खंखाड़ वृक्षों के खंधरों में बैठे हुए उरुवे अब निकलना ही चाहते थे। झुग्गे के झुग्गे तारे आकाश की स्थली में छिटकने लगे मानों सन्ध्यावंदन के अवसर पर मुनियों द्वारा छींटे गए जल के बिन्दु हों। अब अन्धकार आकाश में उतरने लगा, मानों रात्रि रूपी भीलनी के केशपाश का जूड़ा हो। वह भगवान् शंकर के कंठ के समान श्याम था और संध्या के बचे हुए तेज को निगलता जा रहा था। अन्धकार के तर्जनार्थ निकली हुई मानों सूर्य के किरण रूपी हाथ की अंगुलियाँ हों ऐसी दीप लेखाएँ चमकने लगीं। गोपुर के दरवाजों के बंद होने की गड़गड़ाहट अब शान्त हो गई। छोटे छोटे बच्चे चुप्पी साध कर बूढ़ी दादी को कहानी

गरे विजृम्भमाणे भीषणतमे तमीमुखे, मुखरितविततज्यधनुषि वर्षति शरनिकरमनवरतमशेषसंसारशेमुषीमुषि मकरध्वजे, रताकल्पारम्भशोभिनि शम्भलीसुभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्याजने, सैरन्ध्रीबध्यमानरशनाजालजल्पाकजघनासु जनीषु, वशिकविशिखाविहारिणीष्वनन्यजानुप्लवासु प्रचलितास्वभिसारिकासु, विरलीभवति वरटानां वेशन्तशायिनीनां मञ्जुनि मञ्जीरशिञ्जितजडे जल्पिते, निद्राविद्राणद्राघीयसि द्रावयतीव च विरहिहृदयानि सारसरसिते, भाविवासरबीजाङ्कुरनिकर इव च विकीर्यमाणे जगति प्रदीपप्रकरे निवासस्थानमगात्। अकरोच्च चेतसि—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षः, यदेवमनेकबालचरित-

---

जनाः'। तमी रात्रिः। शेमुषी बुद्धिः। आकल्पो वेशः। शम्भली कुट्टनी। भुजिष्या दासी। सैरन्ध्री प्रसाधनोपचारज्ञा। जनी वशिका शून्या। विशिखा रथ्या। अनन्यजः कामः। अनुप्लवः सहायः। 'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका'। 'हंसस्य योषिद्वरटा'। वेशन्तः पल्वलम्। कासारमल्पसरः। मञ्जीरं

सुनते-सुनते ऊँघने लगे। बूढ़ी भैंस के शरीर की कान्ति वाला अन्धकार भीषण रूप धारण करने लगा और निशाचर जग पड़े। संसारी लोगों की बुद्धि का अपहरण करने वाला कामदेव अपना धनुष चढ़ा कर टंकार भरने लगा और बाणों की वर्षा करने लगा। वेश्याएँ कुट्टनियों के उपदेश पाकर रतकाल की वेशभूषा के गहने पहन कर शोभने लगीं। प्रसाधिकाओं द्वारा सुन्दरियों की कमर में बाँधी जाने वाली करधनी आवाज करने लगी। अभिसारिकाएँ काम की सहायता से सुनसान गलियों में पैंतरा मारने लगीं। ताल तलाइयों में शयन करने वाली हंसियों की नूपुर के समान आवाज कम पड़ने लगी। निद्रा से अलसाए हुए सारस पक्षियों की जोरदार आवाज विरहियों के हृदय को पिघलाने लगा। चारों ओर दीपक इस प्रकार जलने लगे मानो होने वाले दिन के बीजांकुर निकल आए हों। बाण मन में सोचने लगा—सचमुच देव हर्ष बड़े ही उदार हैं, क्योंकि मेरे बाल्यकाल की अनेक चपलताओं से फैले हुए जनापवाद को सुनकर कुपित होने पर भी मन में मेरे प्रति स्नेह अवश्य रखते है। यदि मैं उनकी आँखों पर चढ़ा हुआ अर्थात् कोपभाजन होता तो कैसे दर्शन देने की कृपा करते? वह मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि छोटे को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनय सिखा देते हैं। मुझे धिक्कार है यदि मैं अपने ही दोषों से अंधा होकर केवल

चापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यद्यहमक्षिगतः स्याम्, न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः। अपि च धिङ्मां स्वदोषान्धमानसमनादरपीडितमेवमति-गुणवति राजन्यन्यथा चान्यथा च चिन्तयन्तम्। सर्वथा तथा करोमि, यथा यथावस्थितं जानाति मामयं कालेन' इत्येवमवधार्य चापरेद्यु-र्निष्क्रम्य कटकात्सुहृदां बान्धवानां च भवनेषु तावदतिष्ठत्, यावदस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत्। अविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम्। स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम द्वितीय उच्छ्वासः

नूपुरम्। दक्षिणोऽनुकूलः। कौलीनं जनापवादः। अक्षिगतो द्वेष्यः। विस्रम्भ-स्याश्वासस्य। द्रविणस्य धनस्य। नर्मणः परिहासस्य॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते द्वितीय उच्छ्वासः समाप्तः।

अनादर से दुखी होकर ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ अनाप-शनाप सोचने लगूँ। अब मैं सर्वथा वही करूंगा जिससे समय से वे मुझे ठीक पहचान लें।' बाण ने ऐसा निश्चय किया और दूसरे दिन प्रातःकाल स्कन्धावार से निकल कर मित्रों और रिश्तेदारों के घर में ठहरा। तब तक सम्राट स्वयं उसके स्वभाव से परिचित होकर उस पर प्रसन्न हो गए और फिर वह राजभवन में आकर जम गया। थोड़े ही दिनों में सम्राट उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर उसे पहुँचा दिया।

द्वितीय उच्छ्वास समाप्त

---

१. चापलोपचित।

तृतीय उच्छ्वासः

निजवर्षाहितस्नेहा बहुभक्तजनान्विताः ।
सुकाला इव जायन्ते प्रजापुण्येन भूभुजः ॥ १ ॥
साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् ।
न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् ॥ २ ॥

अथ कदाचिद्विरलितवलाहके, चातकातङ्ककारिणि, कणत्कादम्बे, दर्दुरद्विषि, मयूरमदमुपि, हंसपथिकसार्थसर्वातिथौ, धौतासिनिभनभसि,

---

निजेति । निज आत्मीयः वर्षो लोकः, वृष्टिश्च । वर्षं वर्षमपि निजं समुचितकालप्राप्तम् । स्नेहः प्रीतिः, आर्द्रता च । भक्ताः अनुरक्ताः ओदनश्च । भक्तं भक्तरूपाणां भूभृतां सुकालानां च प्रजापुण्यं हेतुः । अनेन महानुभावपुण्यभूतिवर्णना सूचिता ॥ १ ॥

साधूनामित्यादिनापि भैरवाचार्योपकारकरणम् , स्वयं लक्ष्मीदर्शनम् , विहायसा गमनं भैरवाचार्यस्य, महात्मचरितश्रवणकुतूहलं च निजभ्रात्रादीनां सूचितम् ॥ २ ॥

अथेत्यादौ । एवंविधे शरत्समयारम्भे बन्धून्द्रष्टुं बाणो ब्राह्मणाधिवासमगादिति संबन्धः । विरलिताः न पुनरेकान्ततोपगताः । बलाहका मेघाः । चातकाः स्तोकाख्याः पक्षिणः । कादम्बाः कृष्णहंसाः । दर्दुरा मण्डूकाः । हंसा एव पथिकसार्थाः,

---

जब प्रजा के पुण्यों का उदय होता है तभी सुकाल की भाँति राजा भी उत्पन्न हो जाते हैं और अपने राज्य में सर्वत्र प्रेमभाव फैलाते हैं । अनेक अनुचर उनके इस पुण्यकार्य में सहायक हो जाते हैं । इस प्रकार सुकाल में जल की वर्षा से धरती गीली हो जाती है और बहुत अन्न पैदा होता है । तात्पर्य यह कि सौराज्य और सुसमय दोनों प्रजा के पुण्यों के फल-स्वरूप हैं ॥ १ ॥

सज्जनों के उपकार करने के लिए, लक्ष्मी को साक्षात् देखने के लिए, आकाश मार्ग से उड़कर चलने के लिए एवं महात्माओं के चरित सुनने के लिए किसके मन में कुतूहल पैदा नहीं होते ? ॥ २ ॥

एक समय शरद ऋतु का आरम्भ हुआ । आकाश में मेघ कहीं-कहीं छिट-पुट नजर आने लगे । चातक पक्षियों का सन्ताप बढ़ गया । कलहंस चारों ओर आवाज करने लगे । जल के सूख जाने से बेचारे मेढ़कों पर आफत पड़ गई । मोरों का नृत्य-जनित गर्व

भास्वरभास्वति, शुचिशशिनि, तरुणतारागणे, गलत्सुनासीरशरासने, सीदत्सौदामनीदाम्नि, दामोदरनिद्राद्रुहि, द्रुतवैदूर्यवर्णार्णसि, घूर्णमानमिहिकालघुमेघमोघमघवति, निमीलन्नीपे, निष्कुसुमकुटजे, निर्मुकुलकन्दले, कोमलकमले, मधुस्यन्दीन्दीवरे, कह्लाराह्लादिनि, शेफालिकाशीतलीकृतनिशे, यूथिकामोदिनि, मोदमानकुमुदावदातदशदिशि, सप्तच्छदधूलिधूसरितसमीरे, स्तबकितबन्धुरबन्धूकावध्यमानाकाण्डसंध्ये, नीराजितवाजिनि, उद्दामदन्तिनि, दर्पक्षीबौक्षके, क्षीयमाणपङ्कचक्रवाले, बालपुलिनपल्लवितसिन्धुरोधसि, परिणामश्यानश्यामाके, जनितप्रियङ्गु-

तेषां निर्मलजलदानादिना स्यात्सर्वातिथित्वम्। शुचिर्निर्मलः। सुनासीर इन्द्रः। सौदामनी विद्युत्। दामोदरो हरिः। अस्य निद्रां द्रोग्धि यस्तस्मिन्। तदा किल हरिर्विबुध्यत इति वार्ता। अर्णो जलम्। घूर्णमाना भ्रमन्ती या मिहिका नीहारस्तद्वल्लघवस्तुच्छा ये मेघास्तैर्मोघो निष्फलो मघवानिन्द्रो यत्र तस्मिन्। वर्षाभावादिन्द्रस्य मोघत्वम्। इन्द्रादेशेन हि मेघा वर्षन्ति। मेघवद्गर्जितमित्यन्ये। नीपाः कुटजाः। कन्दलाश्च वृक्षभेदाः। कह्लाराणि सौगन्धिकापरनामानि श्वेतोत्पलानि। जलकुसुमपत्रिकेत्यन्ये। शेफालिका पुष्पभेदः रात्रावेव विकसति। यूथिका हरिणिका। मोदमानानि विकसन्ति। सप्तच्छदाः सप्तपर्णाख्या वृक्षभेदाः। बन्धुरा हृद्याः। बन्धूका बन्धुजीवाख्या वृक्षभेदाः। नीराजिताः कृतशान्तिविधानाः। क्षीबाणीबौक्षकानि दान्तसमूहा यत्र तस्मिन्। चक्रवालं समूहः। बालं तत्क्षणस्नु-

भी कम पड़ गया। राही के रूप में हंस पक्षी सबके अतिथि बन कर आने लगे। पानी चढ़ाए खड्ग की भाँति आकाश निर्मल हो गया। सूर्य में चमक बढ़ गई और चन्द्रमण्डल भी निर्मल हो गया। आकाश में तारे बढ़ने लगे। इन्द्रधनुष अब बिलकुल नहीं उगता। बिजलियाँ भी कम पड़ने लगीं। भगवान् विष्णु की नींद टूटी। जल पिघले हुए वैदूर्य के समान निर्मल हो गया। इन्द्र की आज्ञा से बरसने वाले मेघ बर्फ की भाँति इधर-उधर भटकने लगे। कदम्ब के पेड़ झड़ने लगे। कुटज पुष्पों में फूल नहीं रह गए। कन्दल के वृक्षों में कलियों का निकलना बंद हो गया। कमल खिलने लगे। नीले कमल मकरन्द की वर्षा करने लगे। उजले कमल आह्लादित होने लगे। शेफालिका के फूल खिल खिलकर रात को ठंडी करने लगे। जूही की गंध फैलने लगी। कुमुदों के खिलने से दिशाएँ उज्ज्वल हो गईं। सप्तपर्ण के वृक्ष की धूल से हवा कुछ मैली बहने लगी। लाल-लाल सुन्दर बन्धूक-पुष्प खिल कर असमय में सन्ध्या का दृश्य खड़ा करने लगे। युद्ध की यात्रा में घोड़ों के शान्तिकर्म होने लगे। हाथी मद से उन्मत्त होने लगे। साँड़ गर्वीले और पागल होकर डकारने लगे। जगह-जगह के कीचड़ सूखने लगे। कुछ-कुछ भींगी रेतों पर नदियों के

मञ्जरीरजसि, कठोरितत्रपुसत्वचि, कुसुमस्मेरशरे, शरत्समयारम्भे राज्ञः समीपाद्बाणो बन्धून्द्रष्टुं पुनरपि तं ब्राह्मणाधिवासमगात्।

समुपलब्धभूपालसंमानातिशयपरितुष्टास्त्वस्य ज्ञातयः श्लाघमाना निर्ययुः। क्रमेण च कांश्चिदभिवादयमानः कैश्चिदभिवाद्यमानः, कैश्चिच्छिरसि चुम्ब्यमानः, कांश्चिन्मूर्ध्नि समाजिघ्रन्, कैश्चिदालिङ्ग्यमानः, कांश्चिदालिङ्गन्, अन्यैराशिषानुगृह्यमाणः, पराननुगृह्णन्, बहुबन्धुमध्यवर्ती परं मुमुदे। संभ्रान्तपरिजनोपनीतं चासनमासीनेषु गुरुषु भेजे। भजमानश्चार्चादिसत्कारं नितरां ननन्द। प्रीयमाणेन च मनसा सर्वांस्तान्पर्यपृच्छत्—'कच्चिदेतावतो दिवसान्सुखिनो यूयम्? अप्रत्यूहा वा सम्यक्करणपरितोषितद्विजचक्रा क्रातवी क्रिया क्रियते? यथावदविकलमन्त्रभाञ्जि भुञ्जते वा हवींषि हुतभुजः? यथाकालमधीयते वा वटवः? प्रतिदिनमविच्छिन्नो वा वेदाभ्यासः? कच्चित्स एव चिरंतनो यज्ञविद्या-

---

तजलम्। सिन्धवो नद्यः। श्यामाको नीवारः। प्रियङ्गुर्व्रीहिभेदः। त्रपुसं लाङ्कम्।

सम्भ्रान्तः सत्वरः। सत्कारं पूजाम्। कच्चिदितीष्टप्रश्ने। प्रत्यूहो विघ्नः। सम्यक्करणं यथाशास्त्रं संपादनम्। क्रतूनां यज्ञानामियं क्रातवी। अधीयत इति।

नट बनने लगे। सावाँ के धान पककर कुछ-कुछ सूखने लग गए। कंगनी की मंजरियों में पराग भर आया। त्रपुष नामक फल के छिलके कड़े हो गए। शर नामक तृणों में फूल खिल उठे। तब बाण अपने बन्धु-बान्धवों को देखने के लिए फिर राजा के पास से ब्राह्मणों के उसी (प्रीतिकूट नामक) निवासस्थान में चला आया।

सम्राट् के द्वारा अतिशय सम्मान पाकर पधारे हुए बाण को जब गाँव के भाई-बन्धुओं ने सुना तो अत्यन्त हर्ष के साथ उसके स्वागत के लिए प्रशंसा करते हुए निकल पड़े। बाण ने क्रम से कुछ का अभिवादन किया और कुछ से अभिवादित हुआ; कुछ ने उसका सिर चूमा और उसने कुछ के सिर सूँघे; कुछ ने उसका आलिङ्गन किया और कुछ से वह स्वयं गले मिला; दूसरों ने अपने आशीर्वादों से उस पर अनुग्रह किया और उसने भी कुछ लोगों को असीस कर अनुगृहीत किया। इस प्रकार बाण अपने बहुत से भाई-बन्धुओं के बीच आकर अत्यन्त हर्षित हुआ। परिजन दौड़े और शीघ्र आसन लाकर बिछा दिया। जब गुरुजन बैठ गए तब बाण भी एक आसन पर बैठा और परिजनों द्वारा पूजा-सत्कार पाकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। गद्गद मन से उसने सब लोगों से पूछा—'आप लोग इतने दिनों तक सुख से तो रहे? ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ के कार्य शास्त्र

कर्मण्यभियोगः ? तान्येव व्याकरणे परस्परस्पर्धानुबन्धावन्ध्यदिवस-दर्शितादराणि व्याख्यानमण्डलानि, सैव वा पुरातनी परित्यक्तान्यकर्तव्या प्रमाणगोष्ठी, स एव वा मन्दीकृतेतरशास्त्ररसो मीमांसायामतिरसः ? कच्चित्त एवाभिनवसुभाषितसुधावर्षिणः काव्यालापाः ?' इति ।

अथ ते तमूचुः—'तात ! संतोषजुषां सततसंनिहितविद्याविनोदानां वैतानवह्निमात्रसहायानां कियन्मात्रं नः कृत्यं सुखितया सकलभुवनभुजि भुजङ्गराजदेहदीर्घे रक्षति क्षितिं क्षितिभुजे । सर्वथा सुखिन एव वयम्, विशेषेण तु त्वयि विमुक्तकौसीद्ये परमेश्वरपार्श्ववर्तिनि वेत्रासनमधितिष्ठति । सर्वे च यथाशक्ति यथाविभवं यथाकालं च संपाद्यन्ते विप्रजनो-

---

वेदपाठो बालानामेवोचितः । प्रमाणं तर्कविद्या । मीमांसा ब्रह्मनिदर्शनम् । अत एवाह—अतिरस इति ।

तात इति पूजावचनम् । वैतानाः क्रतवः । कौसीद्यमालस्यम् । निष्प्रयत्नतेत्यर्थः ।

के अनुसार बिना किसी विघ्न-बाधा के तो होते रहे ? यज्ञ की अग्नियों में नियमानुसार मंत्र के साथ-साथ हविष भोजनार्थ तो मिल रहा है ? बटु लोगों का समय से अध्ययन तो चल रहा है ? वेदों का प्रतिदिन होने वाला अभ्यास विच्छिन्न तो नहीं होता ? यज्ञ-सम्बन्धी विद्या और कर्मों के प्रति वही पुराना भाव तो है न ? परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से निरन्तर दिन को सफल करने वाले व्याकरण-शास्त्र के वे ही व्याख्यान मण्डल तो अब भी जम रहे हैं न ? दूसरे कार्यों को छोड़-छाड़ कर न्याय शास्त्र पर विचार करने वाली गोष्ठी तो वही पुरानी आज भी चल रही है न ? दूसरे शास्त्रों के रस को फीका कर देने वाले मीमांसाशास्त्र में रस तो वही मिलता है न ? नये-नये सुभाषितों की सुधा बरसाने वाले काव्यालाप तो वही हो रहे हैं न ?'

तब वे बोले—'हे तात, जब समस्त भुवन पर शासन करने वाला और शेषनाग के समान दीर्घ शरीर वाला राजा सुखपूर्वक पृथिवी की रक्षा करने में संलग्न है तो थोड़े ही में सन्तोष कर लेने वाले, हमेशा विद्या के विनोद में लगे रहने वाले तथा केवल यज्ञ की अग्नि को अपना सहायक मानने वाले हम ब्राह्मणों का कार्य ही कितना है ? हम सब प्रकार से सुखी हैं, विशेष तो सुखी इसलिए हैं कि तुम आलस्य छोड़कर महाराजाधिराज हर्ष के नजदीक वेत्रासन पर विराजमान हो । अपनी शक्ति के अनुसार और अपने विभव के अनुसार हमलोग समय से ब्राह्मण के लिए उचित सब काम करते रहे हैं ।' इस प्रकार बातें हुईं, स्कन्धावार के सम्बन्ध की चर्चा भी छिड़ी, लड़कपन में खेले हुए खेलों की याद

चिताः क्रियाकलापाः' इत्येवमादिभिरालापैः स्कन्धावारवार्ताभिश्च शैशवातिक्रान्तक्रीडानुस्मरणैः पूर्वजकथाभिश्च विनोदितमनास्तैः सह सुचिरमतिष्ठत्। उत्थाय च मध्यंदिने यथाक्रियमाणाः स्थितीरकरोत्। भुक्तवन्तं च तं सर्वे ज्ञातयः पर्यवारयन्।

अत्रान्तरे दुगूलपट्टप्रभवे शिखण्ड्यपाङ्गपाण्डुनी पौण्ड्रे वाससी वसानः स्नानावसानसमये बन्दितया तीर्थमृदा गोरोचनया च रचिततिलकः, तैलामतकमसृणितमौलिः, अनुच्चचूडाचुम्बिना निबिडेन कुसुमापीडकेन समुद्भासमानः, असकृदुपयुक्तताम्बूलविरलाधररागकान्तिः, एकशलाकाञ्जनजनितलोचनरुचिः, अचिरभुक्तः, विनीतमार्यं च वेषं दधानः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिराजगाम। नातिदूरवर्तिन्यां चासन्द्यां निषसाद। स्थित्वा च मुहूर्तमिव तत्कालापनीतसूत्रवेष्टनमपि नख-

अत्रेत्यादौ। सुदृष्टिः पुस्तकवाचक आजगामेति संबन्धः। दुगूलेति। एकस्माद्दुगूलपट्टाद्दीर्घाच्छित्त्वा गृहीते, शिखण्ड्यपाङ्गपाण्डुत्वेन कार्कश्यमपि दर्शितम्। पौण्ड्रे पुण्ड्रदेशजे। गोरोचना रक्ताद्रव्यभेदः। मौलयः केशाः। अनुच्चेति। अदीर्घतया कुसुमापीडकस्य श्रोत्रियत्वं विनीतत्वं चास्य दर्शितम्। निबिडेन संहतपुष्पेण। रुचिरं नैर्मल्यम्। भोजनं भुक्तमचिरं भुक्तं यस्य सः। अनेन तस्यानवलिप्तत्वमुक्तम्। आसन्द्यां वेत्रपीठिकायाम्। स्थित्वेत्यादौ। पुराणं पपाठेति संबन्धः।

आई, पुराने लोगों की बातें चल पड़ीं। इस तरह बाण उन लोगों के साथ देर तक मनबहलाव की बातचीत में बैठा रहा। मध्याह्न के समय उठकर उसने सबकी भाँति स्नान-ध्यान किए। तत्पश्चात् भोजन के बाद ही सबके सब भाई-बन्धु फिर उसे घेर कर बैठ गए।

इसी बीच बाण का पुस्तक-वाचक सुदृष्टि वहाँ आ पहुँचा। वह पुंड्र देश के बने दुकूल-पट्ट के थान में से तैयार किए, मोर की आँखों के कोने की भाँति दो श्वेत वस्त्र पहने था। स्नान करने के बाद उसने माथे पर मंत्र से पवित्र तीर्थ की मिट्टी और गोरोचना से तिलक लगाया था। उसके सिर के बालों में आँवले के तेल की मालिश से चिकनाहट थी। लटकती हुई शिखा से लगी हुई फूलमाला से वह शोभित हो रहा था। हमेशा पान चबाते रहने से उसके अधर की कांति खिल उठी थी। उसकी आँखों में अंजन की बारीक रेखा खिंची हुई थी। वह अभी-अभी भोजन करके उठा था। उसका वेष विनय से भरा हुआ और सौम्य था। वह कुछ दूर रखे हुए बेंत के आसन पर बैठ गया। क्षण भर ठहर कर तत्काल उसने सूत की बेठन खोल दी, फिर भी उसके नखों की किरणें पुस्तक में सह

किरणैर्मृदुमृणालसूत्रैरिवावेष्टितं पुस्तकं पुरोनिहितशरशलाकायन्त्रके निधाय, पृष्ठतः सनीडसंनिविष्टाभ्यां मधुकरपारावताभ्यां वांशिकाभ्यां दत्ते स्थानके प्राभातिकप्रपाठकच्छेदचिह्नीकृतमन्तरं पत्रमुत्क्षिप्य, गृहीत्वा च कतिपयपत्रलघ्वीं कपाटिकाम्, क्षालयन्निव मषीमलिनान्यक्षराणि दन्तकान्तिभिः, अर्चयन्निव सितकुसुममुक्तिभिर्ग्रन्थम्, मुखसंनिहितसरस्वतीनूपुररवैरिव गमकैर्मधुरैराक्षिपन्मनांसि श्रोतॄणां गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ।

तस्मिंश्च तथा श्रुतिसुभगगीतिगर्भं पठति सुदृष्टौ नातिदूरवर्ती बन्दी सूचीबाणस्तारमधुरेण गीतिध्वनिमनुवर्तमानः स्वरेणेदमार्यायुगलमगायत्—

'तदपि मुनिगीतमतिपृथु तदपि जगद्व्यापि पावनं तदपि।

सनीडं समीपे। प्रपाठको वाचकः, प्रपठनं वा। तस्य तत्र वा छेदः। इयन्मात्रं वाचितं नान्यदिति तेन चिह्नीकृतं लक्ष्यीकृतम्। गमयन्ति रागस्वरूपमिति गमकाः। असाधारणानि स्वराणां निमीलनानि। यानि लक्ष्यज्ञेष्वान्तरमार्ग इति प्रसिद्धास्तैर्गमकैः स्वरयति विशेषैः। पवमानो वायुः।

बन्दी स्तुतिपाठकः। पृथुरादिनृपोऽपि। पवमानं वायुप्रोक्तमपि। गीतपक्षे—वंशेन वेणुनानुगमो ययोस्तौ विवादिनौ स्वरौ विश्रुत्यन्तरौ गान्धारनिषादौ स्वरौ यत्र तत्। करणमपदः। सताल आविद्धः स्वरसंनिवेशः, उच्चरणस्थानं वा। भारतं

प्रकार फैल गई मानों मृणालसूत्रों में बाँधी गई हो। पुस्तक को उसने सरकण्डों के बने पीढ़े पर रख दिया। पीछे समीप में बैठे हुए मधुकर और पारावत नामक वंशी बजाने वाले बाण के दो मित्रों ने जब अवकाश दिया, तब सुदृष्टि ने प्रभात में पढ़े हुए विराम के बीच चिह्न के रूप में लगाए हुए पन्ने को निकाल कर कुछ पन्नों के साथ हल्की दफ्ती को उठा लिया और मानों अपने दाँतों की किरणों से स्याही के अक्षरों को धोता हुआ, या अपनी मुस्कान के फूलों से ग्रन्थ की अर्चना करता हुआ, गमक नामक स्वरों से मुख में सन्निहित सरस्वती के नूपुरों की आवाज का अनुकरण करके गीत के द्वारा सुनने वालों के मन को रमाता हुआ वायुपुराण का पाठ करने लगा।

उस प्रकार जब सुदृष्टि मधुर गीत के साथ साथ पाठ कर रहा था, तभी सूचीबाण नामक बन्दी ने ऊंचे स्वर में उसी गीत की लय का अनुकरण करते हुए दो आर्या-छन्दों का गान किया—

वायु-पुराण मुनि व्यास द्वारा गीत है, अत्यन्त बड़ा भी, जगत् में विख्यात भी और

हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि मे पुराणमिदम् ॥ ३ ॥
वंशानुगमविवादि स्फुटकरणं भरतमार्गभजनगुरु ।
श्रीकण्ठविनिर्यातं गीतमिदं हर्षराज्यमिव ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा बाणस्य चत्वारः पितामहमुखपद्मा इव वेदाभ्यासपवित्रितमूर्तयः, उपाया इव सामप्रयोगललितमुखाः, गणपतिः, अधिपतिः, तारापतिः, श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातरः, प्रसन्नवृत्तयः, गृहीतवाक्याः, कृतगुरुपदन्यासाः, न्यायवादिनः, सुकृतसंग्रहाभ्यासगुरवो लब्धसाधु-

भरतमुनिकृतो ग्रन्थः। श्रीकण्ठः श्रीयुक्तः कण्ठः वैस्वर्यादिदोषाभावात्। यद्वा,—श्रीकण्ठो हर एव सर्वविद्यानां तत एवोत्पत्तेः। हर्षराज्यमपीदृशमेव। तथा च वंशं कुलमनुगच्छत्यनुसरति यत्तद्वंशानुगम्। तथाविद्यमाना विवादिनो यत्र तदविवादि सौराज्यम्। न केचित्तत्र विवदन्ते। करणमधिकरणं यत्र विद्यापरीक्षा धर्मनिर्णयो वा क्रियते, व्यापारो वा। भरतो नाम पूर्वं राजाभूत्। श्रीकण्ठो देशभेदः। गीतमपि हर्षस्य प्रमोदस्य राज्यमिव। तस्य विजृम्भमाणत्वात्। तच्छ्रुत्वेत्यादौ। बाणस्य चत्वारो भ्रातरः परस्परस्य मुखानि व्यलोकयन्निति संबन्धः। तच्छ्रुत्वेत्यादिनास्य प्रकरणस्य प्रकृतानुगुणत्वं दर्शितम्। तेषां च प्रस्ताववेदित्वम्। मुखपद्मा अपि चत्वारः सामवेदभेदाः। सान्त्वं च मुखमारम्भोऽपि। प्रसन्ना शुद्धा, सुबोद्धा च। वृत्तिर्वर्तनम्, सूत्रविवरणं च। गृहीतमादृतम्, ज्ञातार्थं च। वाक्यं विवरणम्, वार्तिकं च। यत्करणात्कात्यायनो वार्तिककार उच्यते। कृतो गुरूणां संबन्धिनि पदे स्थाने न्यासः स्थितिर्येषां ते। सर्वेणोपदेष्टृपदे स्थापितास्त इत्यर्थः। यद्वा;—कृतो गुरुणि पदे न्यासो यैः। महति पदे स्थिता इत्यर्थः। अन्यत्र,—कृतोऽभ्यस्तो गुरुपदे दुर्बोधशब्दे न्यासो वृत्तिविवरणं यैः। न्यायो युक्तम्, उपपत्त्यनुपपत्तिविचारश्च। सुकृतं पुण्यम्, सुष्ठु विहितं च। संग्रहः संचयः, व्याकरणे

पवित्र भी है, फिर भी यह पुराण मेरी समझ में हर्षचरित से अभिन्न ही प्रतीत हो रहा है ॥३॥

यह गीत हर्ष के राज्य के समान है। गीत वंशी वाद्य से अनुगत तथा राज्य वंशपरम्परागत है। गीत में दो परस्पर विरोधी गान्धार और निषाद स्वर नहीं हैं तथा राज्य में कोई विवाद करने वाला विद्रोही नहीं है। गीत के ताल और लय बिलकुल स्पष्ट हैं तथा राज्य के करण अर्थात् विद्यापरीक्षा या धर्मनिर्णय के स्थान प्रसिद्ध हैं। गीत संगीतशास्त्र के रचयिता भरत मुनि द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अनुसार होने से महनीय है तथा राज्य भरत नामक प्राचीन राजा की नीति का अनुसरण करने से महनीय है। गीत मधुर कंठ से निकला हुआ है तथा राज्य श्रीकंठ नामक स्थान से निकला हुआ है ॥४॥

दोनों आर्याओं को सुन कर बाण के चचेरे भाई—गणपति, अधिपति, तारापति

शब्दा लोक इव व्याकरणेऽपि सकलपुराणराजर्षिचरिताभिज्ञाः, महाभारतभावितात्मानः, विदितसकलेतिहासाः, महाविद्वांसः, महाकवयः, महापुरुषवृत्तान्तकुतूहलिनः, सुभाषितश्रवणरसरसायनाः, वितृष्णाः, वयसि वचसि यशसि तपसि सदसि महसि वपुषि यजुषि च प्रथमाः, पूर्वमेव कृतसंगराः, विवक्षवः, स्मितसुधाधवलितकपोलोदराः, परस्परस्य मुखानि व्यलोकयन्।

अथ तेषां कनीयान्कमलदलदीर्घलोचनः श्यामलो नाम बाणस्य

व्याडिकृतो ग्रन्थश्च। गुरवो महान्तः, उपाध्यायाश्च। साधुशब्दः साधुवादः, साधवोऽमी इत्येवंरूपो वा। साधवः संस्कृताः, शब्दाश्च। पाण्डित्यप्रकटनेनानेन द्रष्टुमिष्टस्य वस्तुन उत्कृष्टतोच्यते। सकलेत्यादिविशेषणत्रयेण द्विजराजादिवृत्तान्तेऽभिज्ञतोच्यते। महापुरुषेत्यादि। हर्षचरिते शुश्रूषाया हेतुः। सुभाषितेत्यादि। स्वकाव्यप्रशंसासूचनपरम्। सदसि सभायाम्। संगरं संकेतः।

कनीयानिति। अनेन प्रियवचनत्वमस्य दर्शितम्। ब्रूहीति दत्तसंज्ञः। तात

और श्यामल एक दूसरे को देखने लगे। ब्रह्मा के चार मुख-कमलों की भांति वे वेदाभ्यास करने से पवित्र थे। साम-दान आदि चार उपायों के समान साम अर्थात् सान्त्वनापूर्ण वचन या सामवेद का प्रयोग करने से उनके मुख सुन्दर थे। लोक के समान व्याकरण में भी उनकी वृत्ति अर्थात् जीविका शुद्ध थी या वृत्ति अर्थात् सूत्र के विवरण में सुबोध थे, वाक्य अर्थात् वचन का आदर करते थे या वाक्य अर्थात् वार्तिकों के अर्थ का ज्ञान रखते थे, गुरु पद अर्थात् श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित थे या उन्होंने दुर्बोध पदों में न्यास अर्थात् वृत्ति का अभ्यास किया था, न्याय अर्थात् युक्ति की बात बोलते थे या उपपत्ति और अनुपपत्ति का विचार रखते थे, पुण्य के संगृहीत करने के अभ्यास में प्रवीण थे या व्याडि द्वारा सुविरचित संग्रह नामक ग्रन्थ का अध्यापन करते थे, उन्हें साधुवाद प्राप्त थे या संस्कृत शब्दों का उन्होंने अभ्यास कर लिया था। समस्त पुराणों में आए हुए राजर्षियों के चरित उन्हें ज्ञात थे। उन्होंने महाभारत का अनुशीलन किया था। वे इतिहास के पंडित थे। महाविद्वान् और महाकवि थे। महापुरुषों के वृत्तान्त को सुनने के लिए उनके मन में विशेष कुतूहल था। सुभाषित के रस के वे रसायन थे (अर्थात् सुभाषितों को सुना कर आनन्दित करते थे)। उनमें तृष्णा बिलकुल न थी। वचन में, अवस्था में, यश में, तप में, सभा में, तेज में, शरीर में, यज्ञ में सर्वत्र उनकी सबसे पहले गणना होती थी। वे पहले से ही परामर्श करके वहाँ आए थे और कुछ बोलना चाहते थे। मुसकान की सुधा से उनके कपोलों के मध्यभाग धवलित हो गए थे।

तत्पश्चात् उन चारों में सबसे छोटा, कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाला श्यामल,

प्रेयान्प्राणानामपि वशयिता दत्तसंज्ञस्तैः सप्रणयं दशनज्योत्स्नास्नापितककुभा मुखेन्दुना बभाषे—'तात बाण! द्विजानां राजा गुरुदारग्रहणमकार्षीत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया दयितेनायुषा व्ययुज्यत। नहुषः परकलत्राभिलाषी महाभुजङ्ग आसीत्। ययातिराहितब्राह्मणी पाणि-

---

बाणेत्यादिना पूर्वराजदोषोद्भावनद्वारेण हर्षस्य गरीयस्तां ख्यापयति। अत्र क्वचिच्छब्दद्वारेण क्वचिदर्थद्वारेण यथायोग्यं दोष उद्भाव्यः। चन्द्रादिशब्दाभिधानेन राजत्वप्रतीतिर्न स्यादिति द्विजानां राजेत्युक्तम्। गुरुर्बृहस्पतिः, पित्राद्याश्च गुरवः। अत्र कथा—पुरा पूर्णचन्द्रमुदितं वीक्ष्य कामयमानां गुरुपत्नीं ताराख्यामभिगच्छत्। तदसहमानेन च बृहस्पतिना यदेन्द्राद्याः प्रोत्साहितास्तदानयनाय, तदा चन्द्रेण शुक्रः शरणमाश्रितः। ततः शुक्रप्रेरितैर्दैत्यैः सह तेषामन्योन्यं दिव्यं वर्षसहस्रं युद्धमासीत्। तारापि नारदबोधिता सगर्भा सती पुनर्गुरुमेवाभिगतेति। दयितेनायुषा प्रियेण जीवितेन पुत्रेणायुर्नाम्ना। कथा चात्र—पुरूरवाः पूर्वां दिशं जेतुं गच्छन्कनाप्याहृतप्रभूतधनेन विप्रेण यज्ञे निमन्त्रितो लोभाक्षिप्तस्तद्धनं जिहीर्षुस्तच्छापान्नष्टः। तस्मिन्मृते स विप्रो नृपं विना प्रजा निवर्तत इति ज्ञात्वा तदायुषा राजर्षिमायुर्नामानमजीजनदिति। भुजङ्गो विटोऽपि। पुरा वृत्रं हत्वा ब्रह्महत्यया शक्रः पलाय्य मृणालच्छिद्रान्तरे यदातिष्ठत्तदा नहुषो यज्वा शूरैश्च देवैरिन्द्रत्वं नीतो दर्पाच्छचीं प्रार्थयमानो बृहस्पत्युपदेशात्तयोक्तो यथा—'यानेनापूर्वेणागच्छ' इति। ततो ब्रह्मर्षीन्वाहनीकृत्य व्रजन्कामवशात्त्वरमाणः पादेनाताड्य, 'सर्प सर्प' इति चोदयन्नगस्त्येन 'सर्पो भव' इति शप्तः सर्पोऽभवत्। पपातेति नरकगामी बभूव, स्वाचारभ्रष्टत्वात्पतितश्चाभूत्। वृषपर्वणोऽसुरराजस्य दुहित्रा शर्मिष्ठया कलहायमाना 'अस्मद्भृत्यसुता वराकी भूत्वा स्पर्धते' इत्युक्त्वा कूपान्तःपातितां शुक्रसुतां देवयानीं ज्ञात्वा ययातिर्वनविहारी पाणिं गृहीत्वोज्जहार। गते ययातौ परिभवोद्विग्ना वन एवावसत्। अथ नारदाद्यथावृत्तं ज्ञात्वा वृषपर्वा शुक्रस्य प्रार्थनामक-

---

जो बाण के प्राणों को भी वश में रखने वाला प्रिय था, बड़ों का इशारा पाकर अपने मुखचन्द्र से प्रवाहित होने वाली दाँतों की चाँदनी से दिशाओं को नहलाता हुआ बोला—'तात बाण, द्विजों के राजा चन्द्र ने गुरुपत्नी तारा का गमन किया। पुरूरवा ब्राह्मण के धन को लोलुपता के कारण अपनी प्रिय आयु से वियुक्त हो गया। नहुष पराई स्त्री की इच्छा करने के कारण महालम्पट बना। ययाति ब्राह्मणकन्या के साथ विवाह करके पतित हुआ। राजा सुद्युम्न तो स्त्रीरूप ही बन गया था। जन्तु (जन्तु नामक पुत्र या प्राणियों) के वध करने से राजा सोमक की निर्दयता तो प्रसिद्ध ही है। राजा मान्धाता मार्गण अर्थात् याचना या युद्ध के व्यसन के कारण पुत्र-पौत्रों के साथ रसातल

ग्रहणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता। मांधाता मार्गणव्यसनेन सपुत्रपौत्रो रसातलमगात्। पुरुकुत्सः कुत्सितं कर्म तपस्यन्नपि मेकलकन्यकायामकरोत्। कुवलयाश्वो

रोत्। संदिष्टा च—'कुमारी शतपरिचारवतीयं शर्मिष्ठा यदा मे दास्यं करोति तदा-गच्छामि' इति। शुक्रशापभीतेन वृषपर्वणा संपादितमनोरथा देवयानी पुनरपि दासीभूतया शर्मिष्ठया सह वने क्रीडन्ती ययातिमायान्तं दृष्ट्वा बभाषे—'क्वाद्य मां त्यक्त्वा पाणिग्राहो महानुभावो गतोऽभूत्' इति। ततो ययातिर्ब्राह्मणीत्वादनङ्गी-कुर्वंस्तत्पित्रा शोकविधुरेण शुक्रेण 'पापं मास्तु, क्रियतामयं विधिः' इति बुद्ध्वा तां स्वीचक्रे। कालेन चासौ पपातेति। सुद्युम्नो राजा, शोभनं द्युम्नं बलमस्येति च स्त्री-मयो महिलाकृतिः, कान्तानुरक्तश्च। योऽत्र तोयमुपयोक्ष्यति स स्त्रीत्वमापत्स्यत इति भगवता भवान्याभ्यर्थितेन भवेन शप्तः सन्सरसः पीत्वा तोयं सुद्युम्नो मृगया-विहारी स्त्रीमयोऽभूदिति। जन्तुर्नाम सोमकस्य राज्ञः पुत्रः, जन्तवः प्राणिनश्च। सोमकस्य राज्ञो जन्तुर्नामैकः पुत्रोऽभूत्। स चैकपुत्रत्वादपुत्रत्वं वरमिति जानन्न-द्विग्नः पुरोधसाभ्यधायि—'बहून्पुत्रांश्चेदिच्छसि तदास्य सुतस्य वपया होमः क्रिय-ताम्। ततो यावत्यो धूममाजिघ्रन्ति ताः पुत्रैर्युज्यन्ते' इति। स चापि घृणामपहाय तथा कारितवानिति। मार्गणं याच्ञा, शराश्च मार्गणाः। मार्गणेषु व्यसनं युद्धं व्यसनम्। रसातलमगमदधस्ताज्जगाम। विनष्ट इत्यर्थः। रसातलं पातालं च। मांधाता च भुवं जित्वा स्वर्गं जेतुं गतः। शक्रेणोक्तम्—'पातालं जित्वागतस्य तव दास्यं यास्यामि'। स च तद्वचनादविचार्यैव रसातलं गतस्तत्र हरप्रसादासादित-त्रिशूलेन लवणनाम्ना दानवेन ससुतसैन्योऽन्तमनीयत' इति। मेकलकन्यका नर्मदा। पुरुकुत्सः पुरा तपश्चरन्नर्मदायां स्नानं कुर्वन्कामप्यङ्गनामालोक्य कामाविष्टो नीतिमुत्ससर्जेति। भुजङ्गाः सर्पाः, विटा अपि। अश्वतरकन्यां वडवामपि। कुवल-याश्वो राजा मृगयाक्रीडाप्रसङ्गेन घर्मातुरो मज्जनरभसेन सरसीमवतीर्णो रसातलं प्राप्तोऽश्वतराभिधां नागकन्यामूढवानिति। प्रथम आद्यः, प्रधानश्च। कुत्सितः पुरुषः

में चला गया (अर्थात् पतित हुए या पाताल में पहुँचे और मारे गए)। राजा पुरुकुत्स ने तपस्या के अवसर में किसी सुन्दरी को देखकर नर्मदा में स्नान करते हुए कुत्सित कर्म किया। राजा कुवलयाश्व ने भुजंगलोक में जाकर (लम्पट लोगों की प्रेरणा से या नागलोक में जाकर) अश्वतरा नामक नागकन्या (या घोड़ी) को भी नहीं छोड़ा। आदिराज पृथु पहला कुत्सित पुरुष है जिसने पृथिवी को अभिभूत किया। राजा नृग गिरगिट बनने पर भी वर्णसंकर (अर्थात कई रंग की मिलावट या कई ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों के वीर्य से उत्पन्न) ही बना रहा। सौदास नामक राजा ने व्याकुल पृथिवी

भुजङ्गलोकपरिग्रहादश्वतरकन्यामपि न परिजहार। पृथुः प्रथमपुरुषकः परिभूतवान्पृथिवीम्। नृगस्य कृकलासभावेऽपि वर्णसंकरः समदृश्यत। सौदासेन नरक्षिता पर्याकुलीकृता क्षितिः। नलमवशाक्षहृदयं कलिरभिभूतवान्। संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथ इष्टरा-

---

पुरुषकः। पृथुरादिनृपो भूधराक्रान्तां सर्वां गां विलोक्य चापकोट्या गिरीन् भुवः पर्यन्तेषु चिक्षेप। धरणकारणभूतभूभृत्परिभवाद्भवो विभवः। अत एवास्य कापुरुषत्वम्। विष्णुपुराणे तु—आकृष्टकार्मुकेन पृथुना 'देहि मे भर्तव्यभरणोपायम्' इत्यनुबध्यमाना भूर्भुवनानि बभ्राम। ततः शरणमलब्ध्वा सास्य सर्वाः सस्यसंपदोऽजनयदिति वर्णितम्। एतस्मात्परिभूताऽभूदिति। कृकलासः प्राणिभेदः। तद्भावेऽपि तस्यां दशायामपि किं पुना राज्यस्थस्येति निन्द्यत्वम्। वर्णः शुक्लादिः, ब्राह्मणादिश्च। नृगो राजा दानप्रस्तावे कस्यचिद्विप्रस्य संबन्धिनीं गामविज्ञायैवान्यस्मै द्विजाय ददौ। कदाचिच्च तस्या गोः स्वामी तां गां परिज्ञाय तं ययाचे। न च तस्माद्गां लेभे। ततस्तौ द्वावपि राजद्वारं राजविज्ञापनाय गतौ। ग्राम्यभोगासक्तराजदर्शनमलभमानौ च क्रोधात् 'कृकलासो भव' इति राज्ञः शापं दत्त्वा कस्मैचिद्गां वितीर्य यथागतं प्रतिजग्मतुरिति। नरान्क्षिणोतीति नरक्षिता, न पालिता च। सौदासो नाम राजा मृगयाखिन्नः पथि गच्छन्कदाचिन्मुनिं शक्तिनामानं मार्गमध्ये स्थितम् 'अपसर्प' इत्यवदत्। 'पन्था देयो ब्राह्मणाय' इति वचनान्न्यायमनुवर्तमानो यावन्न चलितस्तावद्राज्ञा कशयाभिहतः। अथ रोषावेशात् 'गच्छ मनुष्यभक्ष्यो राक्षसो भव' इति तं शशाप। वशमायत्तम्। अक्षहृदयमक्षज्ञानम्, अक्षाणीन्द्रियाणि हृदयं च। तच्च नलो राजा द्यूतव्यसनी तत्स्वरूपानभिज्ञश्च कलिनाभिभूत इति प्रसिद्धम्। मित्रो रविः, सुहृच्च मित्रम्। तपती नाम मित्रस्य रवेर्दुहिताभूत्। तस्यां संवरणो नाम राजा व्यसनी बभूव। रामो दशरथसुतः, रामा स्त्री च। दशरथो मृगयासक्तो घटपूरणरवं श्रुत्वा बृंहितशङ्कया शब्दपातिना शरेण मुनिपुत्रं व्यापादयत्। तेन च बोधितान्वयः पित्रोः समीपं तं निनाय। तद्वचनाच्छल्यमुद्धरति नृपे शिशुर्मृतः। अथ च सदारेण वृद्धतापसेन 'पुत्रादहमिव त्वमपि प्राप्स्यस्यन्तम्' इति शप्तो रामवियोगात्प्राणांस्तत्याजेति। गोनिमित्तं ब्राह्मणस्य जमदग्नेरतिपीडनम्। निधनमयासीत्। जामदग्न्येन हत

की रक्षा नहीं की। जुआ के खिलाड़ी राजा नल को कलि ने अभिभूत कर दिया। संवरण नामक राजा ने तपती नामक (सूर्य या सुहृद) की पुत्री के प्रति अपनी कामवासना प्रकट की। राजा दशरथ ने अपने प्रिय पुत्र राम के विरहोन्माद (अथवा

मोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणातिपीडनेन निधनमयासीत्[1]। मरुत्त इष्टबहुसुवर्णकोऽपि देवद्विजबहुमतो न बभूव। शंतनु-

इत्यर्थः। कार्तवीर्यो गवां कोटेरप्यधिकतरां धेनुमपहरञ्जमदग्निं व्यापादितवान्। अथ च तत्सुतेन रामेण क्रोधात्परशुच्छिन्नबाहुसहस्रोऽसौ सर्वक्षत्रियैः सह मृत्युं लेभे; इष्टः कृतः, अभिमतश्च। देवद्विजो बृहस्पतिः; अन्यत्र,—देवाश्च द्विजाश्चेति द्वन्द्वः। मरुत्तो नाम राजा बहुसुवर्णकाख्येन क्रतुनापि यक्ष्यमाणो देवपुरोधसम् 'मां याजय' इति याचमानस्तेन 'मनुष्योऽयमेव इष्टः' इति। स चोपहसति धिषणे नारदेनोक्तो यथा—'गच्छ, अस्यैव भ्राता संवर्तको नाम ग्रहगृहीतच्छद्मना वाराणस्यां स्थितः। तं प्रार्थयस्व' इत्युक्त्वा च नारदोऽग्निं विवेश। स च नारदोक्तचिह्नैस्तं भगवत्प्रमाणं कृत्वा निर्यान्तं परिज्ञाय बहुशो गालीर्ददतमप्यनुद्विजमानो याजनाय प्रार्थयामास। संवर्तकेन कथितं च—'नेदं तवोक्तं यावत्तं वक्ष्यामि। देवेभ्यश्च श्रुत्वा यज्ञभागो न दातव्यः' इति। राजा यथोक्तमनुतिष्ठंस्तेन योजितो देवद्विजस्य नाभिमतोऽभवदिति। अतिव्यसनादत्यन्तरागात्। वाहिनी नदी, सेना च। महाभिषः पुरा ब्रह्मसदसि गङ्गायाश्चामरग्राहिण्याश्चलितवाससोऽङ्गदर्शनहृतहृदयः श्रृङ्गारपदानि वदन्ब्रह्मणा शप्तः, पतित्वा क्षत्रियगृहे शन्तनुर्नामाभूत्। गङ्गापि 'मत्कृतेऽयमिमां दशां प्राप्तः' इति मत्वा सखेदमवतरन्ती धेनुहरणकुपितवसिष्ठशापसंपन्नमनुष्यलोकावतरणदुःखितैर्वसुभिर्विदितवृत्तान्तैरभ्यधायि—'तत्र नृपे चेत्तव प्रीतिः, तद्वयं त्वय्येवोत्पत्स्यामहे। जातमात्राश्च वयं त्वया स्वजले क्षेप्तव्याः' इति। सा तु तथेत्यङ्गीकृत्य वने विहरन्तं प्रार्थयमानं शन्तनुमवोचत्—'यदहं करोमि तत्र त्वया निर्बन्धो न विधेयः। न चाहं त्वया जन्म प्रष्टव्या' इति। 'तथा' इति तेनाङ्गीकृतवता बहुतरं कालमरंस्त। अथ यः कश्चित्सूनुरुदपादि सर्वस्तया स्वजले क्षिप्तः। एवं सप्तस्वतीतेषु गङ्गामासेव्य निःसंतानोऽयं मा भूदिति मन्वानैः सप्तभिरेव वसुभिः कृतात्मसंनिधिर्भीष्मो जातः। ततस्तमपि जले क्षिपन्ती शन्तनुना निषिद्धा। तेन 'सापराधो भवान्' इत्युक्त्वा सा प्रति-

प्रिय रामा अर्थात् पत्नी के उन्माद) से मृत्यु को प्राप्त किया। राजा कार्तवीर्य गौ के लिए ब्राह्मण को दुखी करने के कारण मारा गया। मरुत्त नामक राजा ने बहुसुवर्णक नामक यज्ञ किया फिर भी देवद्विज द्वारा (बृहस्पति द्वारा अथवा देवताओं और ब्राह्मणों द्वारा) सम्मान नहीं प्राप्त किया। व्यसन के अत्यन्त बढ़ जाने से राजा शन्तनु ने वाहिनी (गङ्गानदी या सेना) से वियुक्त होकर जंगल में अकेले भटकते हुए

१. इतोऽग्रे—'रामो मनोभवभ्रान्तहृदयो जनकतनयामपि न परिहृतवान्' इत्यधिकः पाठः क्वचिदुपलभ्यते।

रतिव्यसनादेकाकी वियुक्तो वाहिन्या विपिने विललाप। पाण्डुर्वनमध्यगतो मत्स्य इव मदनरसाविष्टः प्राणान्मुमोच। युधिष्ठिरो गुरुभयविषण्णहृदयः समरशिरसि सत्यमुत्सृष्टवान्। इत्थं नास्ति राजत्वमपकलङ्कमृते देवदेवादमुतः सर्वद्वीपभुजो हर्षात्। अस्य हि बहून्याश्चर्याणि श्रूयन्ते। तथा हि—अत्र बलजिता निश्चलीकृताश्चलन्तः कृतपक्षा क्षितिभृतः। अत्र प्रजापतिना शेषभोगिमण्डलस्योपरि क्षमा कृता। अत्र पुरुषोत्तमेन

जगाम। ततस्तद्वियोगविधुरधीर्बहु विललापेति व्यसननिमित्तकः सेनया वियोगेन च विलापो विजिगीषोरनुचित एव। वनं तोयम्, विपिनं च। मदनः कामः, फलविशेषश्च मदनम्। पाण्डुर्वने मृगरूपया ब्राह्मण्या सह सुरतकर्मसक्तं मृगरूपं कर्दमाख्यं मुनिं शरेण जघान; तेन च म्रियमाणेन 'स्त्रीसंभोगस्थो मरिष्यसि' इति शप्तो माद्र्या सह स्मरार्तः क्रीडन्विपन्न इति। गुरोर्द्रोणाचार्यस्य भयेन, गुरुणा महता च त्रासेन। युधिष्ठिरो बलानि दग्धुमुद्यतं द्रोणाचार्यं रणमूर्ध्नि 'अश्वत्थामा हतः' इत्युक्त्वा पुत्रशोकाकुलमसत्येनासूनत्याजयदिति। इत्थमिति। इत्थं कृतयुगादारभ्य कलिप्रारम्भपर्यन्तं राज्ञां नास्त्यपकलङ्कं राजत्वमिति। बलजित्प्रजापतिमुखाः शब्दा राज्ञि यथार्था वेदितव्याः। बलं सैन्यम्, बलाख्यश्चासुरः। निश्चलीकृता इति सहायाभावाच्छत्रुषु यानं न विदधिर इति। अन्यत्र,–स्थावरत्वं लम्भिताः। पक्षाः सहायाः, पतत्राणि च। क्षितिभृतो राजानः, गिरयश्च। प्रजापतिना राज्ञा, ब्रह्मणा च। शेषस्यावशिष्टस्य भोगिमण्डलस्य राजसमूहस्योपरि विषये क्षान्तिः कृता। अन्यत्र,–शेषाख्यस्य भोगिनो नागस्य मण्डलमाभोगस्तत्पृष्ठे भूमिर्निहिता। पुरुषोत्तमो नरोत्कृष्टो राजा, हरिश्च। सिन्धुराजो सिन्धुदेशाधिपतिः,

---

विलाप किया। मत्स्य के समान कामवासना से आविष्ट होने के कारण पाण्डु की जान गई। युधिष्ठिर ने गुरु द्रोणाचार्य से डर कर युद्ध की भूमि में सत्य का परित्याग कर दिया। इस प्रकार एकमात्र महाराजाधिराज हर्ष को छोड़ कर किसी राजा को कलंकरहित नहीं सुना है। उनके विषय में आश्चर्य की बहुत सी बातें सुनी जाती हैं। जैसा कि उन्होंने इन्द्र के समान अपने सैन्यबल से जीत कर शत्रु की ओर मिलने के लिए जाते हुए राजाओं के सहायकों को मार कर निश्चल कर दिया (बल नामक असुर को जीतने वाले इन्द्र ने भी पर्वतों के पंख काट-काट कर उन्हें निश्चल बना दिया)। प्रजापति हर्ष ने बचे हुए भोगिमण्डल अर्थात् राजाओं के ऊपर क्षमा की (और इसी प्रकार ब्रह्माजी ने भी शेषनाग के फनों पर क्षमा अर्थात् पृथिवी को आरोपित किया)। पुरुषों में श्रेष्ठ हर्ष ने सिन्धुराज के मद का मथन करके उसकी राजलक्ष्मी को अपना किया

सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता। अत्र बलिना मोचितभूभृद्वेष्टनो मुक्तो महानागः। अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः। अत्र स्वामिनैकप्रहार-प्रपतितारातिना प्रख्यापिता शक्तिः। अत्र नरसिंहेन स्वहस्तविशसिता-रातिना प्रकटीकृतो विक्रमः। अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गाया गृहीतः करः। अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः,

---

क्षीरोदधिश्च। लक्ष्मीश्छत्रचामरादिरूपा, देवताकृतिश्च। बलिना बलवता, असु-रेश्वरेण च भूभृद्राजा श्रीकुमाराख्यः। श्रीकुमारो नाम राजा किल दर्पशातेनोपजात-मदेन हस्तिना वेष्टितः। ततः श्रीहर्षेणाकृष्य खड्गं तस्मान्मोचितोऽसौ दन्ती च रोषाद्वने परित्यक्त इति वार्ता। भूभृच्च पर्वतो मन्दराख्यः। महानागो दर्प-शातः, वासुकिश्च। मोचितभूभृद्वेष्टनोऽमृतमन्थनार्थे। मन्थनार्थे कुमारः कुमार-गुप्ताख्यः, कुमारो वा यो दर्पशातान्मोचितः। कुमारो गुहः, पुत्रश्च कुमारः। स्वामी प्रभुः, कुमारश्च। अरातयः शत्रवः, तारकश्चासुराधिपतिः। शक्तिः सामर्थ्यम्, आयुधभेदश्च। नरसिंहः उत्तमो नरः, नृसिंहरूपो हरिश्च। स्वहस्तेनेति। न तु साधनबलेन। अन्यत्र तु चक्रादिनिजायुधेन। परमेश्वरेण सार्वभौमेन। न तु मण्डलमात्रस्य भोक्त्रा हरेण। दुर्गाया दुर्गमायाः, गौर्याश्च। करो दण्डः, पाणिश्च। लोकनाथो राजा, हरिः, बुद्धश्च। दिशां मुखेषु सीमासु। लोकनाथाः (लोकपालाः)

(और पुरुषोत्तम कृष्ण ने सिन्धुराज अर्थात् क्षीरसागर को मथकर लक्ष्मी को अपनाया)। पराक्रमी हर्ष ने अपने महागज दर्पशात को श्रीकुमार नामक राजा को सूंड में लेकर दबोचते हुए देख कर छुड़ाया और उसे जंगल में छुड़वा दिया (और दैत्यराज बलि ने महानाग वासुकि को मन्दराचल से लिपट कर समुद्रमथन के बाद छोड़ दिया)। देव हर्ष ने कुमार का अभिषेक किया (और देवराज इन्द्र ने कुमार कार्तिकेय को सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया)। स्वामी हर्ष ने एक ही प्रहार से शत्रुओं को मार गिरा कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। (और स्वामी कार्तिकेय ने एक ही प्रहार से तारकासुर का वध करके अपनी शक्ति (अस्त्रविशेष) प्रसिद्ध कर दिया)। नरों में केसरी हर्ष ने अपने भुजबल से शत्रु को मार कर अपना पराक्रम दिखाया (और भगवान् नृसिंह ने भी शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्ष को अपने हाथों से फाड़कर अपना पराक्रम दिखाया)। परमेश्वर हर्ष ने हिमालय के दुर्गम प्रदेश के राजाओं से भी कर लिया (और परमेश्वर शिव ने हिमालय की पुत्री पार्वती का करग्रहण किया)। राजा हर्ष ने प्रत्येक दिशा में प्रजापालकों को देखभाल के लिए नियुक्त किया (और प्रजापति ब्रह्मा ने भी इन्द्र आदि लोकपालों को प्रत्येक दिशा की रक्षा के लिए नियुक्त किया)। समस्त धन के भाण्डागारों

सकलभुवनकोशश्चाग्रजन्मनां विभक्तः, इत्येवमादयः प्रथमकृतयुगस्येव दृश्यन्ते महासमारम्भाः। अतोऽस्य सुगृहीतनाम्नः पुण्यराशेः पूर्वपुरुष-वंशानुक्रमेणादितः प्रभृति चरितमिच्छामः श्रोतुम्। सुमहान्कालो नः शुश्रूषमाणानाम्। अयस्कान्तमणय इव लोहानि नीरसनिष्ठुराणि क्षुल्लकानामप्याकर्षन्ति मनांसि महतां गुणाः, किमुत स्वभावसरसमृदूनीतरेषाम्। कस्य न द्वितीयमहाभारते भवेदस्य चरिते कुतूहलम्? आचष्टां भवान्। भवतु भार्गवोऽयं वंशः शुचिनानेन पुण्यराजर्षिचरित-श्रवणेन सुतरां शुचितरः, इत्येवमभिधाय तूष्णीमभूत्।

बाणस्तु विहस्याब्रवीत्—आर्य! न युक्त्यनुरूपमभिहितम्। अघटमानमनोरथमिव भवतां कुतूहलमवकल्पयामि। शक्याशक्यपरिसंख्यानशून्याः प्रायेण स्वार्थतृषः। परगुणानुरागिणी प्रियजनकथाश्रवणरस-

---

सीमापतयः, इन्द्राद्या दिक्पालाश्च। कोशो(गञ्जं) धनसंचयः मध्यम्, ग्रन्थभेदश्च। अग्रजन्मानो द्विजाः, आदिनृपाः, श्रमणाश्च। एवमादय इति। न स्वेतावन्त एव। प्रथमकृतयुगस्येवेति। पर्वतपक्षशातनादयो वृत्तान्ता अभवन्। मणय इवेति। मणिशब्देनोपमेयानां गुणानां रत्नत्वमुक्तम्। लोहान्यपि नीरसनिष्ठुराणि। क्षुल्लकाः खलाः। बाला इत्यन्ये। आचष्टामाख्यातु। भार्गव इति भृगुगोत्रत्वम्।

अवकल्पयामि निश्चिनोमि। शक्तमिदमित्येवंरूपेण परिसंख्यानेन गणनया स्वार्थतृषो गृध्नवः, शून्याः। शक्याशक्यविवेकं गृध्नवो न जानन्तीत्यर्थः। बहु-

---

को उन्होंने ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया (और लोकपाल भगवान् बुद्ध ने भी कोश नामक ग्रन्थ को विभक्त करके श्रमणों को अर्पित किया)। इत्यादि सतयुग के समान उनके अनेक महान् कार्य दिखाई पड़ते हैं। इसलिए प्रातःस्मरणीय पुण्यों के राशि देव हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों की परम्परा के साथ हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह इच्छा बनी है। महापुरुषों के गुण क्षुद्र लोगों के नीरस और निष्ठुर मन को इस प्रकार खींच लेते हैं जैसे चुम्बक लोहे को, और जो स्वभाव से ही सरस और कोमल स्वभाव के लोग हैं उनकी तो बात ही क्या? दूसरे महाभारत के समान उनके चरित को सुनने के लिए किस के मन में कुतूहल न होगा? अतः आप कहें। यह भार्गववंश उस पुण्यवान् राजर्षि का पवित्र चरित सुन कर और भी पवित्र बन जाय।' यह कह कर वह चुप हो गया।

बाण ने हँस कर कहा—'आर्य आपने युक्तिसंगत बात नहीं कही। मेरा निश्चय है कि इस कुतूहल में आपका मनोरथ सिद्ध न होगा। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि स्वार्थ

रभसमोहिता च मन्ये महतामपि मतिरपहरति प्रविवेकम्। पश्यत्वार्यः क्व परमाणुपरिमाणं बटुहृदयम्, क्व समस्तब्रह्मस्तम्भव्यापि देवस्य चरितम्? क्व परिमितवर्णवृत्तयः कतिपये शब्दाः, क्व संख्यातिगास्तद्गुणाः? सर्वज्ञस्याप्ययमविषयः, वाचस्पतेरप्यगोचरः, सरस्वत्या अप्यतिभारः, किमुतास्मद्विधस्य? कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम्? एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः, सज्जा वयम्। इयमधिगतकतिपयाक्षरलवलघीयसी जिह्वा कोपयोगं गमिष्यति? भवन्तः श्रोतारः। वर्ण्यते हर्षचरितम्। किमन्यत्। अद्य तु परिणतप्रायो दिवसः। पश्चाल्लम्बमानकपिलकिरणजटाभारभास्वरो भगवान्भार्गवो राम इव समन्तपञ्चकरुधिरमहाह्रदे निमज्जति संध्यारागपटले पूषा।

द्विजशिशुः। ब्रह्मस्तम्भं जगत्। पुरुषायुषेत्यादिना योग्येऽपि मयि वर्णयितरि वर्णनीयस्य भूयस्त्वम्, अल्पीयस्त्वाच्चायुषः सामास्त्येन वर्णनं न घटत इति प्रतिपादितम्। अत एवाह—एकदेश इति। संज्ञा (सज्जा?) वर्णनाभिमुखा इति। भवन्त इति? न तु यादृशतादृशाः। हर्षचरितमिति। न तु यदेव किंचित्। समन्तपञ्चकं कुरुक्षेत्रम्। तथेति एवमस्त्विति। प्रत्यपद्यन्ताङ्गीकृतवन्तः।

की चाह में लोग सामर्थ्य और असामर्थ्य की बात को ध्यान में नहीं लाते। मैं समझता हूं कि दूसरे-दूसरे के गुणों में अनुराग करने वाली और अपने प्रियजन के कथामृत का पान करने के मोह में पड़ी हुई बड़े-बड़े लोगों की बुद्धि भी तत्काल विवेक को छोड़ देती है। हे आर्य, स्वयं आप ही देखें, परमाणु की भाँति मेरे जैसे बटु का हृदय कहाँ और सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त देव हर्ष का चरित कहाँ? कुछ थोड़े से अक्षरों वाले मेरे शब्द कहाँ और देव के असंख्य गुण कहाँ? अगर कोई सर्वज्ञ भी हो तो इसे नहीं जान सकता, और तो क्या, साक्षात् बृहस्पति भी नहीं बता सकते। सरस्वती के लिए भी यह बहुत भारी बोझ है, तो हम जैसे लोगों की क्या गणना है? पूरे सौ वर्ष जीकर भी कौन उनके सारे चरित को सुनाने में समर्थ हो सकता है? यदि आपका उस चरित के एकदेश में कुतूहल है तो हम सुनाने के लिए तैयार हैं। यह मेरी छोटी-सी जिह्वा, जिसने लवमात्र कुछ अक्षरों का ग्रहण किया है, किस जगह उपयोग में आएगी? आप जैसे लोग सुनने वाले हैं। हर्षचरित का वर्णन करता हूँ। और क्या? अब तो दिन ढलने लगा है। जैसे पीली जटाओं से देदीप्यमान भगवान् परशुराम ने कुरुक्षेत्र के रुधिर-सरोवर में स्नान किया था उसी प्रकार सूर्य भी अपने पीताभ किरण-समूह को लटकाते हुए संध्या की लाली में डूबते जा

श्वो निवेदयितास्मि' इति । सर्वे च ते 'तथा' इति प्रत्यपद्यन्त । नातिचिरादुत्थाय संध्यामुपासितुं शोणमयासीत् ।

अथ मधुमदपल्लवितमालवीकपोलकोमलातपे मुकुलितेऽह्नि, कमलिनीमीलनादिव लोहिततमे तमोलिहि रवौ लम्बमाने, रविरथ तुरगमार्गानुसारेण यममहिष इव धावति नभसि तमसि, क्रमेण च गृहतापसकुटीरकपटलावलम्बिषु रक्तातपच्छेदैः सह संहृतेषु वल्कलेषु, कलिकल्मषमुषि मुष्णति गगनमग्निहोत्रधामधूमे, सनियमे यजमानजने मौनव्रतिनि, विहारवेलाविलोले पर्यटति पत्नीजने, विकीर्यमाणहरितश्यामाकशालिपूलिकासु दुग्धासु होमकपिलासु, हूयमाने वैतानतनूनपाति, पूतविष्टरोपविष्टे कृष्णाजिनजटिले जटिनि जपति बटुजने, ब्रह्मासनाध्यासिनि ध्यायति योगिगणे, तालध्वनिधावमानानन्तान्तेवासिनि अलस-

---

अथेत्यादौ । अस्मिन्नस्मिन्सति बाणस्तयैव गोष्ठ्या तस्थाविति संबन्धः । कपोलकोमलो गण्डसदृशः । मुकुलिते प्रासंकोचे । कुटीरं जरद्गृहम् । पटलं छादनम् । विहारो वह्निसंधुक्षणमग्निहोत्रार्थम् । पूलिको वरण्डः परिमाणभेदः । तनूनपाद्वह्निः । विष्टरमासनम् तालध्वनिरङ्गुलिजः शब्दः । अन्तेवासिनः शिष्याः । श्रोत्रियः

रहे हैं । इसलिए कल निवेदन करूँगा ।' तब सबने 'ऐसा ही' कहकर स्वीकार किया । बाण थोड़ी देर में सन्ध्योपासन के लिए शोण के तीर पर चले गए ।

दिन ढलते ही मधुपान करने से रक्त मालव-सुन्दरियों के कपोल की भाँति आतप कोमल हो गया । कमलिनी द्वारा आँख बंद कर लेने से मानों क्रोध से लाल होकर सूर्य लटकने लगा । अन्धकार मानों सूर्य के रथ के घोड़ों का पीछा करता हुआ यमराज के भैंसे की भाँति आकाश में भाँकने लगा । क्रम से गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने वाले तपस्वियों की कुटियों की छान्ह पर सूखने के लिए लटकाए गए वल्कल आतप के लाल टुकड़ों के साथ बटोर लिए गए । कलि के पापों को दूर करने वाला अग्निहोत्र-गृह का धुआँ आकाश में छाने लगा । याज्ञिक लोग नियम-पूर्वक मौन होकर बैठ गए । उनकी पत्नियाँ चारों ओर अग्निहोत्र के लिए आग जोरने की तैयारी में घूमने लगीं । हरे-हरे साँवा के पुआल की आँटियाँ छींट कर होमधेनुओं का दुहना आरम्भ हो गया । यज्ञ की अग्नि में हवन होने लगा । कृष्णाजिन ओढ़े, जटा बढ़ाए बटुजन पवित्र आसन पर बैठ कर जप करने लगे । योगी लोग ब्रह्मासन जमाकर ध्यान करने लगे । ताली बजते ही बहुत से शिष्य दौड़ मारने लगे । लहेड़ा स्वभाव वाले मूर्ख शिष्य ऋचाओं के उच्चारण

वृद्धश्रोत्रियानुमतेन गलद्ग्रन्थदण्डकोद्गारिणि संध्यां समवधारयति वठरविटबटुसमाजे, समुन्मज्जति च ज्योतिषि तारकाख्ये खे, प्राप्ते प्रदोषारम्भे भवनमागत्योपविष्टः स्निग्धैर्बन्धुभिश्च सार्धं तयैव गोष्ठ्या तस्थौ। नीतप्रथमयामश्च गणपतेर्भवने परिकल्पितं शयनीयमसेवत। इतरेषां तु सर्वेषां निमीलितदृशामप्यनुपजातनिद्राणां कमलवनानामिव सूर्योदयं प्रतिपालयतां कुतूहलेन कथमपि सा क्षपा क्षयमगच्छत्।

अथ यामिन्यास्तुर्ये यामे प्रतिबुद्धः स एव बन्दी श्लोकद्वयमगायत्—

'पश्चादङ्घ्रिं प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटा धूलिधूम्रा विधूय।
घासग्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण॥५॥

वेदोपाध्यायः। तदनुमतेन संध्यां स संधारयति। वदनव्यग्रत्वाद्गलतो विस्मरतः। बध्यमाने व्यग्रत्वाद्गलन्ति। विस्मरन्तं ग्रन्थदण्डकं ऋग्गणं उद्गिरति यस्तस्मिन्। वठरा मूर्खाः। विटा भुजङ्गप्रायाः। बटवो बालाश्च। गृहश्रोत्रियैर्बालाः संध्यावन्दनाय प्रवर्त्यन्ते निर्विवेकत्वात्।

तुर्यश्चतुर्थः। त्रिकं पृष्ठकटीसंधिः। द्राघयित्वा दीर्घतरीकृत्वा। आभुग्नो नमितः कण्ठो यस्य तत्। मुखमुरसि। आसज्य कृत्वा। धूम्रा धूसराः। प्रतानस्यो-

---

में भटक जाते थे, उनको आलसी वैदिक संध्यावंदन का नियम सिखाता था। धीरे-धीरे आकाश में तारे उगने लगे। शाम होने लगी तो बाण घर आ गया और वहाँ भी प्रेमी बांधवों के साथ गोष्ठी का आनन्द लेने लगा। एक पहर रात बिता कर गणपति के भवन में बिछी हुई शय्या पर सो रहा। दूसरे सब लोगों ने आँखें बंद कर लीं मगर नींद नहीं आई। जैसे कमल के वन रात भर सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार वह रात कुतूहल के कारण किसी-किसी प्रकार करवट बदल-बदल कर बीती।

रात के चौथे पहर में बंदी उठा और उसने दो श्लोकों का गान किया—

घोड़ा सोकर उठ गया, और वह पिछाड़ के पैरों को तान, पीठ की रीढ़ गढ़ा, अपने अङ्गों को जोर से फैला, गर्दन झुका, मुँह को छाती में लगा, धूल से मटमैले अयाल को झाड़, घास के कौर लेने की इच्छा से हमेशा अपनी थुथुन को लुपलुपाता हुआ और मंद मंद घुरघुराता हुआ खुरों से जमीन कुरेद रहा है॥ ५॥

कुर्वन्नाभुग्नपृष्ठो मुखनिकटकटिः कंधरामातिरश्चीं
लोलेनाहन्यमानं तुहिनकणमुचा चञ्चता केसरेण।
निद्राकण्डूकषायं कषति निबिडितश्रोत्रशुक्तिस्तुरङ्ग-
स्त्वङ्गत्पक्ष्माग्रलग्नप्रतनुबुसकणं कोणमक्ष्णः खुरेण॥ ६॥

बाणस्तु तच्छ्रुत्वा समुत्सृज्य निद्रामुत्थाय प्रक्षाल्य वदनमुपास्य च भगवतीं संध्यामुदिते च भगवति सवितरि गृहीतताम्बूलस्तत्रैवातिष्ठत्। अत्रान्तरे सर्वेऽस्य ज्ञातयः समाजग्मुः, परिवार्य चासांचक्रिरे। असावपि पूर्वोद्घातेन विदिताभिप्रायस्तेषां पुरो हर्षचरितं कथयितुमारेभे—

श्रूयताम्—अस्ति पुण्यकृतामधिवासो वासवावास इव वसुधामवतीर्णः सततमसंकीर्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थः, स्थलकमलबहलतया पोत्रोन्मूल्यमानमृणालैरुद्गीतमेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरको-

---

परि प्रोथः प्रतानमुत्तरोष्ठमध्यम्। 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्'। तुहिनमवश्यायः। केसराणि ललाटतटस्थाः केशाः, अथकृकाटिकालम्बनः केशपाशो वा। कषायमापिङ्गलम्। त्वङ्गदुच्चम्। कोणं प्रान्तम्। उद्घातः कथाप्रस्तावः।

अस्तीत्यादौ। श्रीकण्ठनामा जनपदोऽस्तीति संबन्धः। पुण्यकृतो देवा अपि। अधिवासो वसतिः। वासवावासः स्वर्गः। पोत्रं हलमुखम्। सारा उत्कृष्टाः।

जिसके कान की सीपी भरी हुई है ऐसा घोड़ा अपनी पीठ सिकोड़, मुँह के पास कमर को ला और ग्रीवा को बिलकुल टेढ़ी करके आँख के कोने को खुर से खुजला रहा है। अपनी चमकीली चंचल अयाल से पानी के फुहारे उड़ाता हुआ मुँह पर झाड़ रहा है। उसकी आँख निद्रा के आवेग से लाल हो गई है। आँख की पपनियों में भूसे की खर चिपक गई है॥ ६॥

श्लोकों को सुनकर बाण नींद छोड़ उठा और मुँह धो, भगवती संध्या की उपासना कर भगवान् सूर्य के उदित होने पर मुँह में पान का बीड़ा रख वहीं बैठा। इसी बीच उसके सब भाई-बन्धु जुट आए और घेर कर बैठ गए। बाण ने भी पहले के प्रस्ताव से उनका अभिप्राय समझ, उनके सामने हर्षचरित कहना आरम्भ किया—

सुनिए—श्रीकण्ठ नाम का एक था जनपद। वह मानों पृथिवी पर उतरा हुआ पुण्यशाली लोगों का निवास स्वर्ग था। वहाँ ब्राह्मण आदि वर्णों की मर्यादा एक में एक घुलीमिली न थी, मानों वहाँ सतयुग की व्यवस्था हो गई हो। हल से वहाँ खेत जोते जा रहे थे, स्थलकमलों के अधिक होने के कारण हल के फार से मृणाल उखाड़े जाते थे और कमलों में बैठे हुए भौंरे जब गुञ्जारने लगते तो लगता कि पृथिवी के उत्कृष्ट गुणों का

लाहलैर्हलैरुल्लिख्यमानक्षेत्रः, क्षीरोदपयःपायिपयोदसिक्ताभिरिव पुण्ड्रेक्षुवाटसंततिभिर्निरन्तरः, प्रतिदिशमपूर्वपर्वतकैरिव खलधानधामभिर्विभज्यमानैः सस्यकूटैः संकटसकलसीमान्तः, समन्तादुद्घातघटीसिच्यमानैर्जीरकजूटैर्जटिलितभूमिः, उर्वरावरीयोभिः शालेयैरलंकृतः, पाकविशरारुराजमाषनिकरकिर्मीरितैश्च स्फुटितमुद्गफलकोशीकपिशितैर्गोधूमधामभिः स्थलीपृष्ठैरधिष्ठितः, महिषपृष्ठप्रतिष्ठितगायद्गोपालपालितैश्च कीटपटललम्पटचटकानुसृतैरवटुघटितघण्टाघटीरटितरमणीयैरटद्भिरटवीं हरवृषभपीतमामयाशङ्कया बहुधाविभक्तं क्षीरोदमिव क्षीरं क्षरद्भिर्बाष्पच्छेद्यतृणतृप्तैर्गोधनैर्धवलितविपिनः, विविधमखहोमधूमान्धशतमन्युमुक्तैर्लोचनैरिव सहस्रसंख्यैः कृष्णशारैः शारीकृतोद्देशः, धवलधूलिमुचां केतकीवनानां रजोभिः

अतिमाधुर्यात्क्षीरोदेत्याद्युत्प्रेक्षा। निरन्तरो निर्विवरः। तदैव कल्पितत्वादपूर्वत्वम्। खलधानधामभिः खलपालैः। उद्घातोऽरघट्टः। जीरकोऽजाजी। जूटः समूहः। उर्वरा सर्वसस्याढ्या भूः। वरीयोभिरुरुतरैः। शालेयैः शालिक्षेत्रैः। युगपत्पाकसंभवाद्विशरारुत्वम्। किर्मीरैः शबलैः। कोशी शिम्बिका। गोधनस्य क्षतपृष्ठत्वात्कीटसंभवः। अवटुर्ग्रीवा। घण्टेव घटी घण्टाघण्टी। आमयोऽजीर्णम्। हरवृषभेण पीतं संतमजीर्णसंभावनया बहुधा विभक्तम्। बाष्पच्छेद्येति सौकुमार्यकथनपरम्। विपिनं गहनम्। मुक्तैः पतितैः। लोचनान्यपि कृष्णशाराणि सहस्रसंख्यानि च।

वर्णन कर रहे हों। चारों ओर पौड़ों के खेत फैले हुए थे, जिन्हें मानों क्षीर के समुद्र को पीकर आए मेघों ने बरस कर सींचा था। सब ओर जगह-जगह पर खलिहानों में कृत्रिम पर्वत की भाँति धान की ढेरियाँ लगती थीं। रहट के द्वारा जीरक की फसल से हरी-भरी जमीन सींची जाती। धनखर खेतों में धान लहराते थे। जगह-जगह की कृत्रिम भूमियों में पके हुए राजमाष की रंगीनी और पककर चटके हुए मूँग और गेहूं के खेत सब ओर फैले थे। चरवाहे चारों ओर जंगलों में भैंस की पीठ पर बैठ कर गीत गा रहे थे और चरती हुई गायों की देखभाल करते थे। गायों में कुकुरमच्छियाँ लपट कर उन्हें परेशान करतीं और फुदबुदी चिड़ियाँ भी उनके पीछे पड़ जातीं। गायों की घेंट में बँधी हुई घांटियाँ और छोटे छोटे घुंघरू बहुत मधुर आवाज करते थे। गायें चारों ओर जंगल में टहरती थीं। अजीर्ण होने की आशंका से शिवजी के बसहे बैल द्वारा पिए हुए क्षीरसमुद्र को मानों दूध के अनेक धार के रूप में उत्पन्न करती थीं। वे गड़ासी द्वारा छँटी घास की कुट्टी खाकर अघा जाती थीं। अनेक यज्ञों के होमधूमों से अंधे होने के कारण इन्द्र के द्वारा छोड़ी हुई आँखों के रूप में हजारों मृग उस स्थान को चित्र-विचित्र करते थे। केवड़े

पाण्डुरीकृतैः प्रथमोद्धूलनभस्मधूसरैः शिवपुरस्येव प्रवेशैः प्रदेशैरुपशोभितः, शाककन्दलश्यामलितग्रामोपकण्ठकाश्यपीपृष्ठः, पदे पदे करभपालीभिः पीलुपल्लवप्रस्फोटितैः करपुटपीडितकोमलमातुलुङ्गीदलरसोपलिप्तैः स्वेच्छाविचितकुङ्कुमकेसरकृतपुष्पप्रकरैः प्रत्यग्रफलरसपानसुखसुप्तपथिकैर्वनदेवतादीयमानामृतरसप्रपागृहैरिव द्राक्षालतामण्डपैः स्फुरत्फलानां च बीजलग्नशुकचञ्चुरागाणामिव समारूढकपिकुलकपोलसंदिह्यमानकुसुमानां दाडिमीनां वनैर्विलोभनीयोपनिर्गमः, वनपालपीयमाननारिकेलरसासवैश्च पथिकलोकलुप्यमानपिण्डखर्जूरैर्गोलाङ्गूललिह्यमानमधुरामोदपिण्डीरसैश्चकोरचञ्चुजर्जरितारुकैरुपवनैरभिरामः, तुङ्गार्जुनपालीपरिवृतैश्च गोकुलावतारकलुपितकूलकीलालैरध्वगशतशरण्यैररण्यवरुणधराबन्धैरवन्ध्यवनरन्ध्रः, करभीयकुमारकपाल्यमानैरौष्ट्रकैरौरभ्रकैश्च

कृष्णशारा मृगभेदाश्च। प्रमथा गणाः। प्रवेशैर्मार्गैः। काश्यपी भूः। करभपालीभिः। इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। करभो बालोष्ट्रः। पीलुर्वृक्षभेदः। प्रस्फोटितैर्नीराजनीकृतैः। प्रपा पानीयशालिका। उपनिर्गमनानि निर्गमनमार्गाः। उद्यानानीति केचित्। अर्जुनाः ककुभवृक्षाः। कीलालं तोयम्। धराबन्धास्तटाकानि। करभेभ्यो हिताः करभीयाः। औष्ट्रकैरुष्ट्रसमूहैः। कृतसंबाध आवृतः। किशोरका

के वनों से उड़-उड़ कर उजले पराग उस प्रकार भर कर शोभा उत्पन्न करते थे जैसे प्रमथ गणों के भस्म रमाने से भगवान् शिव के नगर-मार्ग शोभित हो जाते हैं। गाँव के गायड़े में साग के साँवले अँखुर लग रहे थे। निर्गम के मार्गों में ऊँट के बच्चे आखरोट के पत्ते तोड़कर चट कर जाते। हाथों से पचकाकर चुआए हुए मातुलुंगी के कोमल फलों के रस से लिपे, स्वेच्छा से तोड़े गए पुष्पों के पराग से भरे लतामण्डप थे जहाँ ताजे फलों को चूस कर पथिक लोग सुख-पूर्वक सोते, मानों वनदेवताओं ने अमृतरस के पनसाले के रूप में उन्हें अर्पित किया हो। और भी, वहाँ जिनके लाल लाल बीजों में मानों सुग्गे के चोंच की लाली लग गई हो ऐसे अनार के फल लगे थे। उन पर बैठे हुए वानरों के लाल-लाल गालों को देखकर फूलों का भ्रम होने लगता था। वहाँ के उपवनों में माली नारियल के फलों का पानी पीते थे। राह चलते लोग पिंड खजूर लपक लेते थे। लंगूर मधुर गंध से भरी ताड़ी को चाट जाते। चकोर आरुक नामक फलों को कुतर डालते। लम्बे-लम्बे ककुभ वृक्षों की श्रेणियों से वहाँ के जलाशय घिरे हुए थे। उनमें पशुओं के उतर कर जल पीने से किनारे का पानी मटमैला रहता था। सैकड़ों राही वहाँ आकर टिकते थे। ऊँटों के पालने वाले लोग ऊँटों के साथ-साथ भेड़ों को भी चारों ओर जुटाते थे। कहीं कहीं

कृतसंबाधः, दिशि दिशि रविरथतुरगाबिलोभनायेव विलोठनमृदितकुङ्कुमस्थलीरससमालब्धानामुत्प्रोथपुटैरुन्मुखैरुदरशायिकिशोरकजवजननाय प्रभञ्जनमिव चापिबन्तीनां वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीनां वडवानां वृन्दैर्विचरद्भिराचितः, अनवरतक्रतुधूमान्धकारप्रवृत्तैर्हंसयूथैरिव गुणैर्धवलितभुवनः, संगीतगतमुरजरवमत्तैर्मयूरैरिव विभवैर्मुखरितजीवलोकः, शशिकरावदातवृत्तैर्मुक्ताफलैरिव गुणिभिः प्रसाधितः, पथिकशतविलुप्यमानस्फीतफलैर्महातरुभिरिव सर्वातिथिभिरभिगमनीयः, मृगमदपरिमलवाहिमृगरोमाच्छादितैर्हिमवत्पादैरिव महत्तरैः स्थिरीकृतः, प्रोद्दण्डसहस्रपत्रोपविष्टद्विजोत्तमैर्नारायणनाभिमण्डलैरिव तोयाशयैर्मण्डितः,

---

वत्सा। प्रभञ्जनं वातम्। वडवा अश्वाः। धूमान्धकारप्रवृत्तैर्बाणैर्वर्धितभुवन इति विरोधच्छाया। हंसानामप्यन्धकारप्रवृत्तत्वं तमसि प्रचारात्। प्रवृत्तैराविर्भूतैः। हंसपक्षे—पलायितैः। वृत्तं चरितम्, परिवर्तुलं च गुणिभिः शौर्यादिगुणयुक्तैः, ससूत्रैश्च। फलमैश्वर्यमपि। अभिगमनीयः सेव्यः। मृगमदः कस्तूरिका। मृगरोमशब्देन तत्कृतवस्त्रमुच्यते। यस्य राङ्कवमिति संज्ञा। यथा च—'राङ्कवं मृगरोमजम्'। अन्यत्र,—मृगाणां रोमाणि। पादाः प्रत्यन्तपर्वताः। महत्तरैर्वृद्धैः, विपुलैश्च। सहस्रपत्राणि पद्मानि। द्विजोत्तमाः पक्षिश्रेष्ठाः, ब्राह्मणाश्च द्विजोत्तमाः।

दिशाओं में घोड़ियाँ मानों सूर्य के रथ के घोड़ों को लुभाने के लिए चरती थीं। कुंकुम की भूमि में मुँहलेट करने से कुंकुम का रस उनके शरीर में लग जाता था। मुँह उठा कर थुथुन को मरोड़ जब वे हवा पीतीं तो लगता कि अपने पेट के बच्चे को हवा की गति सिखाने का प्रयत्न करती हैं। वे वातहरिणियों के समान स्वच्छन्द विचरण करती थीं। निरन्तर यज्ञ-धूम के अन्धकार द्वारा फैलते हुए गुण हंसयूथ की भाँति लगते थे। वह जनपद संगीत में मृदङ्ग की आवाज पर मत्त होकर नाचते हुए मयूरों के समान अपने विभव से सारे जीवलोक को मुखरित कर रहा था। चन्द्रमा की किरणों के समान अवदात चरित वाले मुक्ता-रूप गुणिजनों से वह सुशोभित था। सैकड़ों राही जैसे किसी महान् वृक्ष के फलों को लपक-लपक कर लेने लगते हैं उसी प्रकार सब अतिथि वहाँ आकर तृप्त होते थे। कस्तूरी की सुगन्ध में बसे हुए मृगरोम द्वारा निर्मित वस्त्र को पहनने वाले, हिमालय के समीप के पर्वतों के समान वहाँ महत्त्वशाली लोग रहते थे। विष्णु के नाभि-मण्डल के समान वहाँ अनेक जलाशय थे, जिनमें खिले हुए ऊँचे कमलों पर उत्तम पक्षी[1] सुशोभित होते थे। दूध के महने से उठा हुआ महाघोष वहाँ की पृथिवी को धोता

---

१. विष्णु की नाभि के पक्ष में द्विजोत्तम अर्थात् ब्रह्माजी।

मथितपयःप्रवाहप्रक्षालितक्षितिभिः क्षीरोदमथनारम्भैरिव महाघोषैः पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः।

यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुपातजलक्षालिता इवाक्षीयन्त कुदृष्टयः। पच्यमानचयनेष्टकादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरितानि। छिद्यमानयूपदारुपरशुपाटित इव व्यदीर्यताधर्मः। मखशिखिधूमजलधरधाराधौत इव ननाश वर्णसंकरः। दीयमानानेकगोसहस्रशृङ्गखण्ड्यमान इवापलायत कलिः। सुरालयशिलाघट्टनटङ्कनिकरनिकृत्ता इव व्यदीर्यन्त विपदः। महादानविधानकलकलाभिद्रुता इव प्राद्रवन्नुपद्रवाः। दीप्यमानसत्रमहानससहस्रानलसंतापिता इव व्यलीयन्त व्याधयः। वृषविवाहप्रहतपुण्यपटहपटुरव-

---

मथितं तक्रम्, विलोडितं च। पयः क्षीरम्। उभयत्रापि मथनमन्था क्षीरोदस्य। घोषो गोष्ठः, शब्दश्च। आशा आशंसा, दिशश्च।

'दक्षिणाग्निर्गार्हपत्याहवनीयौ त्रयोऽग्नयः। अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरसिंहः। अनेकार्थवर्गेऽपि—'त्रेताग्नित्रितये युगे'। त्रेताग्निरूपोऽग्निरित्यग्निप्रकर्षार्थं त्रेतापदम्। अन्यथा तादृशस्याग्नेर्ग्रहणं प्रसज्येत। कुत्सितानि लोकायतादीनां वेदविरुद्धानि दर्शनादीनि, कुत्सिताश्च दृष्टयः कुदृष्टयः। यत्र त्रेताग्नयो हूयन्ते तत्र क्षालिता आविर्भावाद्दृष्टिर्निर्मला भवति। चयनं चित्या विशिष्टाग्निस्थानम्। घनधाराधौतो ह्यवश्यं संकीर्णवर्णो नीलादिर्नश्यति। वर्णाश्च विप्राद्याः। टङ्कः पाषाणदारणः। सत्रं सदादानम्। महानसं पाकस्थानम्। वृषविवाहो नीलवृषोत्सर्गः। यत्र चतसृभि-

---

हुआ दिशाओं में भरने लगता था, तब ऐसा लगता कि क्षीर-सागर के मंथन का आरम्भ हो गया हो।

वहां त्रिविध[1] अग्नियों से उत्पन्न धुएँ के लगने के कारण निकले हुए अश्रुजल से धुल कर मानों असत् दृष्टियां (विचार) समाप्त हो गई थीं। चयन-यज्ञ के ईंटे की अग्नियों से मानों जल कर पाप दिखाई नहीं देने लगे। यूप की छिली हुई लकड़ी में बांध कर फरसे से काटे गए पशु की भांति मानो अधर्म विदीर्ण हो गया। यज्ञ की अग्नि से उठे हुए मेघ की भाँति धुएँ की जलधार से धुल कर मानों वर्णों (जातियों) की विषमता मिट गई। दान में दी जाती हुई हजारों की संख्या में गायों के सींगों से मानों टुकड़े-टुकड़े होकर कलि भाग गया। विपत्तियां मानों देवमन्दिर के पत्थरों को छांटने वाली टाँकियों से खण्डित होकर चूर्ण हो गईं। उपद्रव मानों महादानों के समय में होने वाले कोलाहल से ऊब कर भाग गए। व्याधियाँ मानों सत्रों के रसोइयाघर

---

१. त्रिविध अग्नियाँ—दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय। इन्हें त्रेता कहते हैं।

आसिता इव नोपासर्पन्नपमृत्यवः संततब्रह्मघोषबधिरीकृता इवापजग्मु-रीतयः। धर्माधिकारपरिभूतमिव न प्राभवद्दैवम्।

तत्र चैवंविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव भुवनस्य, कुङ्कुममलनपिञ्जरितबहुमहिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव धर्मस्य, मरुदुद्धूयमानचमरीबालव्यजनशतधवलितप्रान्त एकदेश इव सुरराज्यस्य, ज्वलन्मखशिखिसहस्रदीप्यमानदशदिगन्तः शिबिरसंनि-वेश इव कृतयुगस्य; पद्मासनस्थितब्रह्मर्षिध्यानाधीयमानसकलाकुशलप्र-शमः प्रथमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य, कलकलमुखरमहावाहिनीशतसंकुलो

गोभिः सह दान्तोऽरण्ये स्वैरविहाराय परित्यज्यते। ब्रह्मघोषो वेदध्वनिः। 'अति-वृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः। अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥' इति।

तत्र चेत्यादौ। स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेष इति संबन्धः। आरामा उप-वनानि, रामाश्च भार्याः। गन्धस्य परिमलस्याभोगोऽनुभवः, संस्कारः। मलनं निवर्तनम्, समालम्भनं च। महिषी मुख्या जायापि। मरुतो वाताः, देवाश्च। शिबिरसंनिवेशः कटकबन्धः। कृतं प्रतिसमाहितं युगं द्वयं स्वपक्षपरपक्षरूपं येन स राजोच्यते; कृतयुगं वाद्यो युगभेदः। पद्मासनमासनभेदः, पद्ममेवासनं च। ब्रह्मर्षय उत्तमद्विजाः। ब्रह्मा चासावृषिश्चेति। यद्वा,—पद्मासनस्थितो ब्रह्मा च ऋषयश्चेति द्वन्द्वः। वाहिन्यो नद्यः, सेना च। विपक्षो बलम्, मेरुसमीपवासिनो जनाश्चोत्तरकुरवः। ईश्वरमार्गणो राजदण्डसाधनयाच्ञा, हरशरश्चेश्वरमार्गणः।

में जलती हुई अग्नियों के ताप से संतप्त होकर विलीन हो गईं। वृषोत्सर्ग के अवसर पर बजाए गए नगाड़ों की ध्वनि से डर कर मानों अपमृत्यु पास में नहीं फटकती थी। ईति बाधाएं मानों निरन्तर वेदध्वनि के होने से बहरी होकर चली गईं। दुर्भाग्य मानों धर्म के अधिकार से परिभूत होकर उत्पन्न ही नहीं हुआ।

इस प्रकार के उस जनपद में स्थाण्वीश्वर नाम की राजधानी थी। अनेक उपवनों में सुन्दर फूलों की फैलती हुई गन्ध से ऐसा लगता था मानों संसार के यौवन का आरम्भ होने लगा हो। कुंकुम की उबटन से हजारों सुन्दरियों अपने शरीर की श्रीवृद्धि करती थीं, मानों वह धर्म का अन्तःपुर हो। वायु से कम्पित चमरी गाय के बालों से उसके समीप का भू-भाग सफेद था, मानो वह स्वर्ग का एकदेश हो। जलती हुई हजारों अग्नियों से समस्त दिशाएं प्रकाशित थीं मानो वह सतयुग का सेनानिवेश (सेना के रहने की छावनी) हो। पद्मासन लगाकर बैठे हुए ब्रह्मर्षि सारे अकुशलों का शमन करते थे, मानो वह ब्रह्मलोक का प्रथम अवतार हो। बड़ी-बड़ी सैकड़ों नदियां

विपक्ष इवोत्तरकुरूणाम्, ईश्वरमार्गणसंतापानभिज्ञसकलजनो विजिगीषुरिव त्रिपुरस्य, सुधारससिक्तधवलगृहपङ्क्तिपाण्डुरः प्रतिनिधिरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकाशिनीभूषणरवभरितभुवनो नामाभिहार इव कुबेरनगरस्य, स्थाण्वीश्वराख्यो जनपदविशेषः।

यस्तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः, संगीतशालेति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्तामणिभूमिरित्यथिभिः, वीरक्षेत्रमिति शस्त्रोपजीविभिः, गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः, गन्धर्वनगरमिति गायनैः, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः, लाभभूमिरिति वैदेहकैः, द्यूतस्थानमिति बन्दिभिः, साधुसमागम इति सद्भिः, वज्रपञ्जरमिति शरणागतैः, विटगोष्ठीति विदग्धैः, सुकृतपरिणाम इति पथिकैः, असुर-

संतापानभिज्ञेति। ईश्वरशरेण हि सस्त्रीकं त्रिपुरं दग्धम्। योधजनास्ते हि युद्धे देवैर्हता इत्याहुः। जेताऽत्र विजिगीषुः। 'सुधा मकोलामृतयोः'। मत्तकाशिनी मुख्या स्त्री, यक्षिणी च। नामाभिहारः पर्यायान्तरम्।

लासकैर्नटैः। वैदेहकैर्वणिग्भिः। द्यूतस्थानमिति साधुभ्यो भागो दीयते तत्र।

(महावाहिनी या सेनाएं) अपनी कलकल से उसे भर देती थीं, मानो उत्तर कुरु ही वहां आ गए हों। राजा के छल-पूर्वक कर लेने की बात तो वहां के लोग जानते ही नहीं थे, मानो वह त्रिपुर के जीतने का इच्छुक है। सुधा[1] के रस से पुते हुए उजले-उजले वहां भवन थे, मानों वह चन्द्रलोक का प्रतिनिधि हो। मधुपान से मतवाली कामिनियों के गहनों की आवाज सारे भुवन में व्याप्त हो जाती थी मानो वह कुबेर की नगरी अलका का ही बदला हुआ रूप हो।

मुनि लोग उसे तपोवन कहते, वेश्याएं उसे कामायतन (कामोपभोग का स्थान) समझतीं, लासक अर्थात् नर्तक लोग समझते कि यह संगीतशाला है, शत्रु समझते कि यमनगर है, याचक समझते कि चिन्तामणि की भूमि है, शस्त्रों की जीविकावाले लोग उसे वीरक्षेत्र कहते, विद्यार्थी उसे गुरुकुल कहते, गाने वाले उसे गन्धर्वनगर समझते, वैज्ञानिक उसे विश्वकर्मा का मन्दिर समझते, वणिक् लोग कहते कि आमदनी की जगह है, बन्दी लोगों का निर्णय था कि जुआ खेलने योग्य स्थान है, सज्जन लोग उसे साधु-समागम कहते, शरणार्थी लोग उसे वज्रनिर्मित पिंजड़ा समझते, चतुर लोग विटगोष्ठी की कल्पना करते, पथिक लोग उसे अपने पुण्यों का परिणाम-स्वरूप मानते, नास्तिक लोग साधना के लिए उसे असुर-विवर समझते, भिक्षु लोग उसे बौद्धविहार मानते,

१. चूना, चन्द्रपक्ष में अमृत।

विवरमिति वातिकैः शाक्याश्रम इति शमिभिः, अप्सरःपुरमिति कामिभिः, महोत्सवसमाज इति चारणैः, वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत ।

यत्र च मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरागिण्यश्च, धवलद्विजशुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्च, चन्द्रकान्तवपुषः शिरीषकोमलाङ्ग्यश्च, अभुजङ्गगम्याः कञ्चुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो

बन्दिभ्योऽभिवाञ्छितसंपत्तेः सुकृतपरिणामता । वातिकैर्विवरव्यसनिभिराचार्यैः । शाक्यो बौद्धः । चारणैः कुशीलवैः । वसुधारा धनप्रवाहः ।

मातङ्गेत्यादयो विरोधाः । मातङ्गो हस्ती चण्डालश्च । याः प्रमदाश्चण्डालानपि गच्छन्ति ताः कथं शीलवत्य इति विरोधः सर्वत्र ज्ञेयः । गौर्यो गौराङ्ग्यः । विभव ऐश्वर्ये रक्ताः । यत्र विगतो भवस्तत्र कथं गौरी रतेति । विगतं भवे रतं यस्या वा । श्यामाः श्यामलाङ्ग्यः । पद्मरागिण्यो लोहितमणिभूषणाः । श्यामा रात्रयः कथं पद्मरागिण्यः । रात्रौ पद्मानां संकोचात् । द्विजैर्दन्तैः । शुचिवदना मदिरावन्मदिरयैव वा । आमोदी श्वसनो मुखमारुतो यासां, धवलद्विजवच्छुद्धब्राह्मणवच्छुचि वदनं ताः कथं मदिरामोदिश्वसनाः । चन्द्रवत्कान्तं वपुर्यासाम् । शिरीषपुष्पवत्सुकुमाराङ्ग्यश्चन्द्रकान्तस्येव वपुर्यासां ताः, कथं शिरीषकोमलाङ्ग्यः । भुजङ्गा विटाः, कञ्चुकं स्त्रीणां वासः, वारबाणाख्यश्च । याश्च कञ्चुकिन्यः सर्पिण्यस्ताः कथं भुजङ्गैर्न गम्याः ।

कामी लोग उसे अप्सराओं का नगर कहते, चारणों के अनुसार वह महोत्सवों का समाज था और उसे धन का प्रवाह ही समझते ।

वहां[1] की स्त्रियाँ मातङ्गगामिनी (चाण्डाल का गमन करने वाली नहीं बल्कि) अर्थात् हाथी के समान चलने वाली और शीलवती थीं । वे गौरी (पार्वती) अर्थात् गौर वर्ण वाली थीं और (पार्वती होकर भी भव अर्थात् शिव में अनुरक्त न थीं) विभव अर्थात् ऐश्वर्य में अनुराग करती थीं । श्यामा (रात्रियां) अर्थात् सांवली थीं और पद्मरागिणी (कमलों में अनुराग करने वाली, रातें कमलों में अनुराग नहीं करतीं) अर्थात् लाल मणियों के आभूषण पहनती थीं । उजले दाँतों से उनका मुख पवित्र था और मदिरा की गंध वाली सांस लेती थीं । चन्द्रमा के समान सुन्दर देहवाली थीं (या चन्द्रकान्त के समान कठोर थीं फिर भी) शिरीष के फूल के समान उनके अंग कोमल थे । भुजङ्ग अर्थात् गुंडे उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते थे और वे कञ्चुक धारण करती थीं (जो कंचुकिनी अर्थात् सर्पिणी हैं वे क्यों नहीं भुजङ्ग अर्थात् सर्पों द्वारा गम्य हैं ?), पृथु अर्थात् मोटे जघनों से सुशोभित थीं और उनका मध्य अर्थात् कटिभाग पतला था

---

१. यहां कोष्ठकों में विरोध के रूप में आभासित होने वाले अर्थ दिए गए हैं ।

दरिद्रमध्यकलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोज्ज्वलमुखरागाश्च, अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः।

यत्र च प्रमदानां चक्षुरेव सहजं मुण्डमालामण्डनं भारः कुवलयदलदामानि, अलकप्रतिबिम्बान्येव कपोलतलगतान्यक्लिष्टाः श्रवणावतंसाः पुनरुक्तानि तमालकिसलयानि, प्रियकथा एव सुभगाः कर्णालंकारा आडम्बरः कुण्डलादिः, कपोला एव सततमालोककारका विभवो [1]निशासु मणिप्रदीपाः सुरभिनिःश्वासाकृष्टं मधुकरकुलमेव रमणीयं मुखावरणं

कलत्रं जघनम्। दरिद्रं क्षामं मध्यमुदरं यासाम्। कलत्रस्य परिवारस्य पृथ्वीः श्रीस्ताः कथं दरिद्राणां निर्धनानां मध्ये कलिताः संख्याता भवन्ति। लावण्यं सौन्दर्यम्; मधुरं हृद्यम्। लावण्यरसवतीनां मधुरभाषितं विभाव्यते। अप्रमत्ताः प्रमादशून्याः। प्रसन्नो मनोहरः। उज्ज्वलो मनोहारी। प्रसन्ना च सुरा तयोज्ज्वलो मुखरागो यासां ताः, कथमप्रमत्ता अक्षीबाः। अकौतुका अकरकङ्कणाः। विवाहितानां हि करकङ्कणोऽवबध्यते। 'रुद्राक्षदर्पसिद्धार्थशिखिपक्षोरगत्वचः। कङ्कणौपधयश्चेति कौतुकाख्याः प्रकीर्तिताः॥'

मुण्डमालारूपं मण्डनं मुण्डमालामण्डनम्। सहजमकृत्रिमम्। अनेककुवलय-

---

(जो राजा पृथु के समान हों वे दरिद्रों के मध्य में कैसे गिनी जायेंगी ?)। वे लावण्य वाली और मधुरभाषिणी थीं (जो लावण्यवती अर्थात् नमकीन हैं वे मधुर कैसे हो सकती हैं ?)। वे प्रमादशून्य थीं और उनका वर्ण प्रसन्न एवं उज्ज्वल था (जो प्रमत्त नहीं वे प्रसन्ना अर्थात् मदिरा के कारण शृङ्गार में डूबे हुये मुखराग वाली कैसे हो सकती हैं ?)। अकौतुका अर्थात् प्रियसमागम के लिए उत्सुक न थीं और पूर्ण यौवन पर आ पहुँची थीं (जो अकौतुका अर्थात् वैवाहिक मंगलसूत्र से रहित हों वे प्रौढ़ा अर्थात् विवाहिता कैसे हो सकती हैं ?)।

वहां सुन्दरियों की आँखें ही सिर की सहज फूल-माला बन जातीं, कुवलय के फूलों की माला भार प्रतीत होती। उनके गालों पर छितराए हुए बालों के प्रतिबिम्ब ही क्लेश न देने वाले कर्णावतंस बन जाते, फिर कान में कर्णावतंस के रूप में तमालपत्र का लगाना पुनरुक्तिमात्र हो जाता। अपने प्रिय की कथा ही उनके लिए सुन्दर कान का आभूषण बन जाती, फिर भी उनका कुण्डल लगाना आडम्बरमात्र था। उनके कपोल ही निरन्तर आलोक उत्पन्न करते थे, मणियों के दीपक तो केवल वैभव के चिह्न होने के कारण रखे जाते थे। उनकी सुगन्धित सांसों पर लुभाते हुए भौंरे ही उनके मुख पर

---

[1]. निःश्वासमणिप्रदीपाः।

कुलस्त्रीजनाचारो जालिका, वाण्येव मधुरतरा वीणा वाद्यविज्ञानं तन्त्रीताडनम्, हासा एवातिशयसुरभयः पटवासा निरर्थकाः कर्पूरपांसवः, अधरकान्तिविसर एवोज्ज्वलतरोऽङ्गरागो निर्गुणो लावण्यकलङ्कः कुङ्कुमपङ्कः, बाहव एव कोमलतमाः, परिहासप्रहारवेत्रलता निष्प्रयोजनानि मृणालानि, यौवनोष्मस्वेदबिन्दव एव विदग्धाः कुचालंकृतयो हारास्तु भाराः, श्रोण्य एव विशालस्फटिकशिलातलचतुरस्रा रागिणां विश्रमकारणमनिमित्तं भवनमणिवेदिकाः। कमललोभनिलीनान्यलिकुलान्येव मुखराणि पदाभरणकानि निष्फलानीन्द्रनीलमणिनूपुराणि। नूपुररवाहृता भवनकलहंसा एव समुचिताः संचरणसहाया ऐश्वर्यप्रपञ्चाः परिजनाः।

तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधानः, मेरुमय इव

दलदामाभ्यासोत्कर्षः, न तु कुवलयदलदामसंभवेऽपि प्रतिनिधिरूपतापादनम्। भार इत्यनेनैव एवार्थः प्रकटितः। एवमक्लिष्टा इत्यादौ बोद्धव्यम्। आडम्बरः स्फुटः। जालिका शिरोवस्त्रभेदः। चतुरस्रा रम्याः। विश्रमकारणमिति गुरुत्वात्।

तत्र चेत्यादौ। तत्र पुष्यभूतिर्नाम राजासीदिति संबन्धः। वर्णा विप्राद्याः,

---

सुन्दर घूँघट-पट का काम करते थे, फिर भी प्रथा के नाते वे अपने मुख पर घूँघट का जाली डाल लेती थीं। उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी, वाद्य कला के रूप में वे तारों को छेड़ कर वीणा बजाती थीं। उनकी मुसकान ही अत्यन्त सुगन्धित पटवास का काम देती, फर कपूर की धूल निरर्थक प्रतीत होती थी। उनके अधर की फैलती हुई कान्ति ही उनके शरीर पर अंगराग का रूप धारण कर लेती, फिर बिना किसी लाभ के कुंकुम लगाना उनके लावण्य का कलंक बन जाता था। उनकी कोमल भुजाएँ ही परिहास के अवसर में ठोंकने की वेत्रलता थीं, फिर मृणालों का वहां प्रयोजन ही क्या? जवानी की गरमी से उनके स्तनों पर छूटते हुए पसीने ही सुन्दर हार के समान लगते, फिर उनके शरीर पर हार बोझ मात्र प्रतीत होते थे। उनके नितम्ब ही प्रेमी जनों के विश्राम के लिए स्फटिकमणि के विशाल गढ़े हुए शिलातल की बनी भवन वेदिका के समान थे। उनके चरणों को कमल समझ कर बैठे हुए भौंरे ही उनके चरणाभरण थे, वहां इन्द्रनील मणियों के नूपुर निष्फल थे। नूपुर की आवाज से खिंचे हुए भवन के कलहंस ही उनके घूमने के लिए योग्य साथी बनते, केवल ऐश्वर्य के प्रदर्शन के लिए उनके साथ परिजन रहा करते थे।

उस स्थाण्वीश्वर में पुष्पभूति नामक एक राजा हुआ। जैसे इन्द्र विविध प्रकार के वर्णों (रंगों) वाला धनुष धारण करता है उसी प्रकार उसने समस्त ब्राह्मण आदि वर्णों

कल्याणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, वेदमय इवाकृत्रिमालापत्वे, धरणिमय इव लोकधृतिकरणे, पवनमय इव सर्वपार्थिवरजोविकारहरणे, गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुयात्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूरः शूरसेनाक्रमणे, दक्षः प्रजाकर्मणि, सर्वादिराजतेजःपुञ्जनिर्मित इव राजा पुष्यभूतिरिति नाम्ना बभूव ।

शुक्लाद्याश्च । कल्याणं श्रेयः, सुवर्णं च । मन्दरेण श्रीराकृष्टामृतमन्थने, पुष्यभूतिना भैरवाचार्यवेतालसाधने । मर्यादाचारः, सीमा च । शब्दो यशोऽपि । प्रादुर्भावः प्रकाशता । कला गीताद्याः, लेखाश्च । अकृत्रिमः सत्ययुक्तः, अपौरुषेयश्च । धृतिर्धैर्यम्, धारणं च । पार्थिवो राजा, पृथिवीसंबन्धी च । रजोविकारा रागाद्याः, रेणुकार्याणि । गुर्वित्यादिना वक्रोक्त्याज्ञानां गुर्वादिमयत्वं सूचयति । गुरुरुपदेष्टा, गुरुर्महान् । गंभीरशब्दत्वाद्बृहस्पतिश्च । पृथुर्विपुलः, आदिराजश्च कश्चित् । विशालो विस्तीर्णः, विशालाद्याश्च नृपा अभवन् । अथ विशालो नाम बोधिसत्त्वः स एव शान्तः शान्तमना इत्यपि प्रतीतिरस्ति । जनको जनयिता, जनक इव तपस्वी च । सुयात्र इति । शोभना यात्रा यस्य सोऽपि । कर्तव्यावधारणं मन्त्रः स शोभनो यस्येति च । बुधः पण्डितः, ग्रहश्च । अर्जुनः शुक्लोऽपि । भीष्मो भयानकः, गाङ्गेयश्च । निषधो धर्षणीयः, कठिनो वा, नलस्य च पिता, गिरिभेदो वा । शूरो विक्रान्तः, यदूनां राजा च । दक्षश्चतुरः, प्रजापतिश्च ।

के नियमनार्थ धनुष धारण किया । कल्याण प्रकृति अर्थात् श्रेय की भावना से भरा होने के कारण वह मानों कल्याण (सुवर्ण) के सुमेरु से निर्मित था । वह लक्ष्मी के आकर्षण करने में मन्दराचल के समान, मर्यादा में समुद्र के समान, शब्द रूप यश को उत्पन्न करने में आकाश के समान, कलाओं के संग्रह में चन्द्र के समान, स्वाभाविक बात-चीत करने में वेद के समान, सारे लोक के धारण करने में पृथिवी के समान और पार्थिव अर्थात् राजाओं (अथवा पृथिवी सम्बन्धी) रजोविकार दूर करने में वायु के समान था । और वह वाणी में महान् या बृहस्पति था, वक्ष के सम्बन्ध में पृथु अर्थात् विपुल था या राजा पृथु के समान था, मन में विशाल था, तपस्या करने में जनक था, तेज में सुयात्र नामक राजा के समान था, रहस्य के सम्बन्ध में सुमन्त्र अर्थात् शोभन मंत्र या विचार देने वाला अथवा सुमन्त्र नामक राजा के समान था, सभा में विद्वान्, यश में अर्जुन (उज्ज्वल), धनुष में भीष्म (भयंकर), शरीर में अधर्षणीय या निषध, समर में

पृथुना गौरिवेयं कृतेति यः स्पर्धमान इव महीं महिषीं चकार। निसर्गस्वैरिणी स्वरुच्यनुरोधिनी च भवति हि महतां मतिः। यतस्तस्य केनचिदनुपदिष्टा सहजैव शैशवादारभ्यानन्यदेवता भगवति, भक्ति-सुलभे, भुवनभृति, भूतभावने, भवच्छिदि, भवे भूयसी भक्तिरभूत्। अकृतवृषभध्वजपूजाविधिर्न स्वप्नेऽप्याहारमकरोत्। अजम्, अजरम्, अमरगुरुम्, असुरपुररिपुम्, अपरिमितगणपतिम्, अचलदुहितृपतिम्, अखिलभुवनकृतचरणनतिम्, पशुपतिं प्रपन्नोऽन्यदेवताशून्यममन्यत त्रैलोक्यम्। भर्तृचित्तानुवर्तिन्यश्चानुजीविनां प्रकृतयः। तथा हि—गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशुः। ववुरस्य होमालवालानलविलीयमानबहलगुग्गुलुगन्धगर्भाः स्नपनक्षीरशीकरक्षोदक्षारिणो बिल्वपल्लवदामदलोद्वाहिनः पुण्य-

---

महिषीं महादेवीमपि। निसर्गः स्वभावः। स्वैरिणी स्ववशा। खण्डपरशुः शिवः। ववुरवहन्। होमालवालमग्निकुण्डम्। सपर्या पूजा। उपायनं ढौकनिका स्वयमानीयते। प्राभृतं कौशलिका सखिभिः प्रहीयते। करदीकृता दण्डदाः कृताः। कूटं शृङ्गम्। यत्र वस्त्रेषु पुष्पाणि सूत्रैः क्रियन्ते स पुष्पपट्टः। ज्वलन्मणिशिखरा

शत्रुघ्न (शत्रु को मारने वाला), शूर सेना या शूर की सेना पर आक्रमण करने में शूर और प्रजा के कार्य में दक्ष अर्थात् चतुर या दक्षप्रजापति के समान था। इस प्रकार वह मानों पूर्वकाल के समस्त राजाओं की तेजराशि से निर्मित हुआ था।

आदिराज पृथु ने पृथिवी को धेनु बनाया था। इसी स्पर्धा में उसने पृथिवी को अपनी महिषी (भैंस, अर्थात् पत्नी) बना दिया। बड़े लोगों की बुद्धि स्वभाव से ही स्वतन्त्र और अपनी रुचि के अनुरोध पर चलने वाली होती है। जैसा कि उस राजा की अनन्य भक्ति किसी के उपदेश के बिना ही सहज रूप में बाल्यकाल से ही भगवान् शंकर में थी, जो भक्तिद्वारा सुलभ, संसार का भरण करने वाले और मोक्ष देने वाले हैं। स्वप्न में भी वह बिना शिव की पूजा किए कुछ भी खाना-पीता न था। वह भगवान् पशुपति शंकर की शरण में प्रपन्न था, जो अज, अजर, देवों के देव, त्रिपुरारि, असंख्य प्रमथ गणों के स्वामी, पार्वती के पति, सारे संसार द्वारा वन्दित चरणों वाले हैं। वह मानता था कि शिव के अतिरिक्त इस संसार में कोई अन्य देवता नहीं। स्वामी के चित्त के अनुसार ही स्वभाव से उसके अनुजीवी लोग भी प्रवृत्त होते हैं। फलतः घर-घर में भगवान शंकर की पूजा होती थी। चारों ओर उस राजा के देश में होम के थल्ले में पड़ते हुए गुग्गुल की गंध से भरी हुई, शिवजी को दूध से नहलाने में उड़े हुए फुहारों से शीतल, एवं बेल के पत्ते की माला को उड़ाती हुई हवा बहने लगी। पुरवासी, राज्य

विषयेषु वायवः। शिवसपर्यासमुचितैरुपायनैः प्राभृतैश्च पौराः पादोपजीविनः सचिवाः स्वभुजबलनिर्जिताश्च करदीकृता महासामन्तास्तं सिषेविरे। तथा हि–कैलासकूटधवलैः कनकपत्रलतालंकृतविषाणकोटिभिर्महाप्रमाणैः संध्याबलिवृषैः सौवर्णैश्च स्नपनकलशैरर्घभाजनैश्च धूपपात्रैश्च पुष्पपट्टैश्च मणियष्टिप्रदीपैश्च ब्रह्मसूत्रैश्च महार्हमाणिक्यखण्डखचितैश्च मुखकोषैः परितोषमस्य मनसि चक्रुः। अन्तःपुराण्यपि स्वयमारब्धबालेयतण्डुलकण्डनानि देवगृहोपलेपनलोहिततरकरकिसलयानि कुसुमग्रथनव्यग्रसमस्तपरिजनानि तस्याभिलषितमन्ववर्तन्त। तथा च परममाहेश्वरः स भूपालो लोकतः शुश्राव भुवि भगवन्तमपरमिव साक्षाद्दक्षमखमथनं दाक्षिणात्यं बहुविधविद्याप्रभावप्रख्यातैर्गुणैः शिष्यैरिवानेकसहस्रसंख्यैर्व्याप्तमर्त्यलोकं भैरवाचार्यनामानं महाशैवम्। उपनयन्ति हि हृदयमदृष्टमपि जनं शील-

---

स्वर्णयष्टिर्यष्टिप्रदीपः। ब्रह्मसूत्रैर्यज्ञोपवीतैः। मुखयुक्ताः कोषा मुखकोषाः। ये लिङ्गोपरि दीयन्ते। बलये हिता बालेयाः। 'छदिरुपधिबलेर्ढञ्'। ग्रथनशब्दश्चिन्त्यः। ग्रन्थनमिति भाव्यम्। अभिलषितमन्ववर्तन्तेत्यनेन चित्तानुवृत्तिः शुद्धान्तानां वर्णिता। भुवीति। भूस्थत्वेऽप्यसुलभत्वदर्शनमस्योक्तम्। शीलसंवादाश्चारित्रसादृश्यानि। कपर्दिनि शिवे।

के कर्मचारी, मंत्री और भुजबल से पराजित होकर कर देने वाले बड़े-बड़े सामन्त भी भगवान् शिव की पूजा के उपयोग में आने वाले उपहारों से उसकी सेवा करते थे। कैलास के शिखर के समान उज्ज्वल, सोने के पत्तरों से मढ़े सींग के अग्रभाग वाले एवं विशाल आकृति वाले संध्याकालीन पूजा के बैल, स्नान कराने के लिए सोने के कलस, अर्घ्य के पात्र, धूप के पात्र, कढ़े हुए फूलदार कपड़े, मणिनिर्मित यष्टिप्रदीप, यज्ञोपवीत और शिवलिंग पर चढ़ाए जाने वाले मुखकोश को समर्पित करके लोग उसका मन सन्तुष्ट करते थे। अन्तःपुरों में भी उसकी इच्छा के अनुकूल पूजा के लिए स्वयं चावल के फटकने-बनाने का कार्य होता रहता था। देवमन्दिर को स्वयं लीपने से उनके हाथ लाल हो जाते थे। सबके सब परिजन माला गूथने में व्यग्र रहते थे। भगवान् शिव के परम भक्त उस राजा ने लोगों से सुना कि कोई भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव हैं जो साक्षात् भगवान् शंकर के दूसरे अवतार हैं और हजारों की संख्या में गुणों के समान अपने शिष्यों से सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। शीलगुण का सम्मिलन पहले कभी न देखे हुए भी व्यक्ति को हृदय के समीप कर देते हैं। क्योंकि वह राजा दूर होने पर भी साक्षात् शिवस्वरूप भैरवाचार्य के विषय में सुनते ही अत्यधिक श्रद्धा करने लगा। आँखों

संवादाः। यतः स राजा श्रवणसमकालमेव तस्मिन्भैरवाचार्ये भगवति द्वितीय इव कपर्दिनि दूरगतेऽपि गरीयसीं बबन्ध भक्तिम्। आचकाङ्क्ष च मनोरथैरप्यस्य सर्वथा दर्शनम्।

अथ कदाचित्पर्यस्तेऽस्ताचलचुम्बिनि वासरेऽन्तःपुरवर्तिनं राजानमुपसृत्य प्रतीहारी विज्ञापितवती—'देव! द्वारि परिव्राडास्ते, कथयति च भैरवाचार्यवचनाद्देवमनुप्राप्तोऽस्मि' इति। राजा तु तच्छ्रुत्वा सादरम्—'क्वासौ? आनयात्रैव, प्रवेशयैनम्' इति चाब्रवीत्। तथा चाकरोत् प्रतीहारी। न चिराच्च प्रविशन्तं प्रांशुम्, आजानुभुजम्, भैक्ष्यक्षाममपि स्थूलास्थिभिरवयवैः पीवरमिवोपलक्ष्यमाणम्, पृथूत्तमाङ्गम्, उत्तुङ्गवलिभङ्गस्थपुटललाटम्, निर्मांसगण्डकूपकम्, मधुबिन्दुपिङ्गलपरिमण्डलाक्षम्, ईषदावक्रघोणम्, अतिप्रलम्बैककर्णपाशम्, अलाबुबीजविकटोन्नतदन्तपङ्क्तिम्, तुरगानूकश्लथाधरलेखम्, लम्बचि-

---

न चिराच्चेत्यादौ। मस्करिणमद्राक्षीदिति संबन्धः। प्रांशुं दीर्घम्। जानुरूरुपर्व। उक्तं च—'जङ्घा तु प्रसृता जानूरुपर्वाष्ठीवदस्त्रियाम्'। पीवरं स्थूलम्। स्थपुटं निम्नोन्नतम्। ललाटमलिकं गोधिः। गण्डकूपोऽपाङ्गोरधोदेशः। घोणा नासिका। अलाबुस्तुम्बी। उक्तं च—'तुम्ब्यलाबू उभे समे'। तुरगानामधस्तादोष्ठोऽनूकः।

की तो बात क्या? वह केवल अपने मन के रथ पर चढ़ कर ही सर्वथा उनके दर्शन की आकांक्षा करने लगा।

किसी दिन जब अस्ताचल की ओर दिन ढलने लगा तब प्रतीहारी ने अन्तःपुर में विराजमान महाराज के पास आकर निवेदन किया—'देव, द्वार पर एक परिव्राजक पधारे हैं और कहते हैं कि भैरवाचार्य की आज्ञा से मैं महाराज से भेंट करने आया हूँ।' उसे सुनकर राजा ने बड़े आदर के साथ 'कहाँ हैं? यहीं लाओ, उन्हें प्रवेश करने दो' यह कहा। प्रतीहारी ने वैसा ही किया। थोड़ी देर में राजा ने प्रवेश करते हुए उस संन्यासी को देखा। उसका कद लम्बा था। भुजाएँ घुटनों तक थीं। भिक्षाटन के कारण वह दुबला था फिर भी मोटी हड्डियों वाले अङ्गों से वह भरा-सा प्रतीत होता था। उसका मस्तक चौड़ा था। लम्बी रेखाओं के कारण उसका ललाट नीचा-ऊँचा हो गया था। मांस के न होने से गालों में गड्ढे पड़ गए थे। पुतलियाँ शहद की बूँद की तरह पीलापन लिए थीं। नाक कुछ टेढ़ी थी। कान की एक पाली अधिक लम्बी थी। लौकी के बीज की भाँति दन्तपंक्ति निकली हुई थी। अधर घोड़े के निचले होठ की तरह लटका हुआ था। लम्बी ठुड्डी के कारण उसका मुँह लम्बोतरा जान पड़ता था। उसके कंधे से लटकता हुआ लाल योग-

बुकायततरलपनम्, अंसावलम्बिना काषायेण योगपट्टकेन विरचितवैकक्षकम्, हृदयमध्यनिबद्धग्रन्थिना च रागेणेव खण्डशः कृतेन धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासङ्गम्, पुनरुक्तबालप्रग्रहवेष्टननिश्चलमूलेन बद्धमृत्परिशोधनवंशत्वक्तितउना कौपीनसनाथशिखरेण खर्जूरपुटसमुद्गकगर्भीकृतभिक्षाकपालकेन दारवफलकत्रयत्रिकोणत्रियष्टिनिविष्टकमण्डलुना बहिरुपपादितपादुकावस्थानेन स्थूलदशासूत्रनियन्त्रितपुस्तिकापूलकेन वामकरधृतेन योगभारकेणाध्यासितस्कन्धम्, इतरकरगृहीतवेत्रासनं मस्करिणमद्राक्षीत्। क्षितिपतिरप्युपगतमुचितेन[1] चैनमादरेणान्वग्रहीत्। आसीनं च पप्रच्छ—'क्व भैरवाचार्यः?' इति। सादरनरपतिवचनमुदितमतिस्तु परिव्राट् तमुपनगरं सरस्वतीतटवनावलम्बिनि शून्यायतने स्थितमाचचक्षे। भूयश्चाबभाषे—'अर्चयति हि महाभागं भगवानाशीर्व-

---

'अधोऽधरस्य चिबुकम्'। लपनं मुखम्। उत्तरासङ्गमुपरिप्रावरणम्। पुनरुक्तं पौनःपुन्येन कृतम्। प्रग्रहो रज्जुः। तितउश्चालनी परिपवनशब्दवाच्या। कौपीनं गुह्यदेश उपचारात्, तदाच्छादनं च खर्जूराख्यस्य वृक्षस्य च संबन्धिभिः पुटैः क्लिष्टैः, पत्रैश्च समुद्गकः कपालभङ्गो भिक्षार्थे क्रियते। दारवे काष्ठसंबन्धिनि फलकत्रये त्रयः कोणास्तेषु यास्तिस्रो यष्टयस्तासु निविष्टः कमण्डलुर्यत्र तेन। योगभारकेण मात्राभारिकया। मस्करिणं परिव्राजकम्। राजतानि रौप्याणि।

पट्ट सामने वैकक्षक की तरह पड़ा हुआ था। गेरू से रँग हुए वस्त्र की चादर के रूप में वह ओढ़े था जिसकी गाँठ छाती के बीच में थी, मानों वह वस्त्र उसके द्वारा खण्ड खण्ड किए गए राग का बाह्य रूप था। एक सिरे से बाएँ हाथ में पकड़े हुए बाँस के दूसरे सिरे से उसके कंधे के पीछे लटकती हुई झोली थी। झोली का ऊपरी सिरा बालों की बटी हुई रस्सी से बँधा था। मिट्टी चालने के लिए बाँस की बनी हुई चलनी उसमें बँधी थी। उसके अग्रभाग में कौपीन लटक रहा था। झोली के भीतर खजूर के पत्ते को मोड़कर बनाया हुआ भिक्षाकपाल रखा था। लकड़ी के तीन फट्टों को जोड़ कर बने हुए त्रिकोण के भीतर कमण्डलु रखा हुआ था और उस त्रिकोण के तीन फट्टों में तीन डंडियाँ लगी थीं जिनसे वह बाँस से लटका हुआ था। झोली के बाहर खड़ाऊँ लटक रही थी। कपड़े की मोटी किनारी से बँधे हुए पोथियों के गुटके झोली में रक्खे थे। उसके दाहिने हाथ में बेंत की चटाई थी। पहुँचे हुए उस संन्यासी से राजा आदरपूर्वक मिले। उसके बैठ जाने पर राजा ने पूछा—'भैरवाचार्य कहाँ हैं?' आदर के साथ कहे हुए राजा के वचन सुनकर

---

१. मुचितेन नचैनं।

चसा' इत्युक्त्वा चोपनिन्ये। योगभारकादाकृष्य भैरवाचार्यप्रहितानि रत्नवन्ति बहलालोकलिप्तान्तःपुराणि पञ्च राजतानि पुण्डरीकाणि।

नरपतिस्तु प्रियजनप्रणयभङ्गकातरो दाक्षिण्यमनुरुध्यमानो ग्रहणलाघवं च लङ्घयितुमसमर्थो दोलायमानेन मनसा स्थित्वा चिरं कथंकथमप्यतिसौजन्यनिघ्नस्तानि जग्राह। जगाद च—'सर्वफलप्रसवहेतुः शिवभक्तिरियं नो मनोरथदुर्लभानि फलति फलानि। येनैवमस्मासु प्रीयते तत्रभगवान्भुवनगुरुर्भैरवाचार्यः। श्वो द्रष्टास्मि भगवन्तम्' इत्युक्त्वा च मस्करिणं व्यसर्जयत्। अनया च वार्तया परां मुदमवाप।

अपरेद्युश्च प्रातरेवोत्थाय वाजिनमधिरुह्य समुच्छ्रितश्वेतातपत्रः समुद्धूयमानधवलचामरयुगलः कतिपयैरेव राजपुत्रैः परिवृतो भैरवाचार्यं सवितारमिव शशी द्रष्टुं प्रतस्थे। गत्वा च किंचिदन्तरं तदीयमेवाभिमुखमापतन्तमन्यतमं शिष्यमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च—'क्व भगवानास्ते ?'

लङ्घयितुमुत्सोढुम्। निघ्नः स्ववशः।

अन्यतममपरम्। उत्तरेणोत्तरस्यां दिशि।

उस संन्यासी ने प्रसन्नतापूर्वक सूचित किया की नगर के समीप ही सरस्वती नदी के तटवर्ती जंगल के एक शून्यायतन में भैरवाचार्य हैं। और फिर बोला—'महाभाग ! आपको भगवान् भैरवाचार्य अपने आशीर्वचन द्वारा सम्मानित करते हैं।' यह कहकर उसने भैरवाचार्य द्वारा उपहार के रूप में भेजे हुए रत्नजटित चाँदी के पाँच कमलों को अर्पित किया जो सारे अन्तःपुर को आलोकित कर रहे थे।

राजा ने अपने प्रिय भैरवाचार्य के प्रेम के भङ्ग होने के भय से उदारता का अनुरोध करते हुए, दी हुई वस्तु के ग्रहण करने की छुटपन को सहने में असमर्थ, अपने दोलारूढ़ मन से कुछ देर तक ठहर कर किसी-किसी प्रकार अपने सौजन्य के विवश होते हुए उन रत्नों को ले लिया और बोले—'सब प्रकार के फलों को उत्पन्न करने वाली यह शिवभक्ति हमारे मनोरथ भी जिन्हें नहीं प्राप्त करते ऐसे फलों को उत्पन्न करती है। इसी कारण आदरणीय जगद्गुरु भैरवाचार्य हम पर प्रसन्न हैं। कल भगवान् के दर्शन करूँगा।' यह कहकर उस संन्यासी को बिदा किया। इस समाचार से वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन राजा ने सबेरे ही उठ घोड़े पर सवार हो श्वेत छत्र लगा उज्ज्वल चँवरों से विराजमान हो कुछ राजपुत्रों के साथ भैरवाचार्य के दर्शन के लिए प्रस्थान किया, मानों चन्द्रमा सूर्य की ओर बढ़ता हो। कुछ ही दूर चले कि उन्हीं के सामने आते हुए एक शिष्य को देखा और पूछा—'भगवान् कहाँ हैं ?' उसने कहा—'यहीं पुराने देवी के

इति । सोऽकथयत्—'अस्य जीर्णमातृगृहस्योत्तरेण बिल्ववाटिकामध्यास्ते' इति । गत्वा च तं प्रदेशमवततार तुरगात् । प्रविवेश च बिल्ववाटिकाम् ।

अथ महतः कार्पटिकवृन्दस्य मध्ये प्रातरेव स्नातम्, दत्ताष्टपुष्पिकम्, अनुष्ठिताग्निकार्यम्, कृतभस्मरेखापरिहारपरिकरे हरितगोमयोपलिप्तक्षितितलवितते व्याघ्रचर्मण्युपविष्टम्, कृष्णकम्बलप्रावरणनिभेनासुरविवरप्रवेशाशङ्कया पातालान्धकारावासमिवाभ्यस्यन्तम्, उन्मिषता विद्युत्कपिलेनात्मतेजसा महामांसविक्रयक्रीतेन मनःशिलापङ्केनेव शिष्यलोकं लिम्पन्तम्, जटीकृतैकदेशलम्बमानरुद्राक्षशङ्खगुटिकेनोर्ध्वबद्धेन शिखापाशेन बध्नन्तमिव विद्यावलेपदुर्विदग्धानुपरिसंचरतः सिद्धान्, धवलकतिपयशिरोरुहेण वयसा पञ्चपञ्चाशतं वर्षाण्यतिक्रामन्तम्, खालित्यक्षीयमाणशङ्खलोमलेखम्, लोमशकर्णशष्कुलीप्रदेशम्, पृथुललाटतटम्, तिरःश्यामभस्मललाटिकया बहुशः शिरोधृतदग्धगुग्गुलुसंतापस्फुटितकपालास्थिपाण्डुरराजिशङ्कामिव जनयन्तम्, सहज-

---

अथेत्यादौ । भैरवाचार्यं ददर्शेति संबन्धः । कार्पटिका व्रतिनः । अष्टपुष्पिका प्रागुक्ता । परिहारोऽत्र मर्यादा । शङ्खे ललाटास्थिन । उक्तं च—'शङ्खो निधौ ललाटास्थिन' । गुटिका खण्डिका । उपरीत्याद्यभिप्रायेणोक्तम्— ऊर्ध्वबद्धे(बुद्धे ?)नेति । प्रशस्ता शिखा शिखापाशः । अवलेपोऽहंकृतिः । खालित्यं खल्वाटता । शङ्खो

मन्दिर के उत्तर बिल्ववाटिका में आसन लगाए हैं ।' उस स्थान पर जाकर वे घोड़े से उतर गए और बिल्ववाटिका में प्रवेश किया ।

साधुओं की जमात के बीच प्रातःस्नान, अष्टपुष्पिका द्वारा शिवार्चन और अग्निहोत्र से निवृत्त होकर भस्म से पुरे चौक के बीच गोबर से लिपी जमीन पर बिछे व्याघ्र-चर्म पर विराजमान भैरवाचार्य को देखा । काले कंबल को ओढ़कर मानों वे असुर-विवर में प्रवेश करने की इच्छा से पाताल के घने अन्धकार में रहने का अभ्यास कर रहे थे । बिजली के समान पीले चमकते हुए अपने तेज से शिष्यों को मानों श्मशान का महामांस बेच कर खरीदे हुए मैनसिल के चन्दन से चर्चित कर रहे थे । एक ओर चोटी में रुद्राक्ष और शंख की गुरियों को गूंथकर लटकाये हुए और चोटी को खड़ी बाँधे हुये मानों विद्या के मद में फूलकर ऊपर-ऊपर उड़ते हुए सिद्धों को बाँध रहे थे । उनके सिर के कुछ बाल सफेद हो गये थे और अवस्था के वह पचपन साल गुजार चुके थे । उनकी गञ्जी खोपड़ी के बाल झड़ चुके थे । कान के भीतर भी बाल जम गए थे । ललाट प्रशस्त था, उसपर भस्म की टेढ़ी और साँवली रेखा से ऐसा लगता था कि उनके सिर पर आधे जले हुए

ललाटवलिभङ्गसंकोचितकूर्चभागं बभ्रुभासं भ्रूसंगत्या निरन्तरामायामिनीमेकामिव भ्रूलेखां बिभ्राणम्, ईषत्काचरकनीनिकेन रक्तापाङ्गनिर्गतांशुप्रतानेन मध्यधवलभासेन्द्रायुधेनेवातिदीर्घेण लोचनयुगलेन परितो महामण्डलमिवानेकवर्णरागमालिखन्तम्, सितपीतलोहितपताकावलिशबलम्, शिवबलिमिव दिक्षु विक्षिपन्तम्, तार्क्ष्यतुण्डकोटिकुब्जाग्रघोणम्, दूरविदीर्णसृक्कसंश्लिष्टकपोलम्, किंचिद्दन्तुरतया सदाहृदयसंनिहितहरमौलिचन्द्रातपेनेव निर्गच्छता दन्तालोकेन धवलयन्तं दिशां जालम्, जिह्वाग्रस्थितसर्वशैवसंहितातिभारेणेव मनाक्प्रलम्बितौष्ठम, प्रलम्बश्रवणपालीप्रेङ्खिताभ्यां स्फाटिककुण्डलाभ्यां शुक्रबृहस्पतिभ्यामिव सुरासुरविजयविद्यासिद्धिश्रद्धयानुबध्यमानम्, बद्धविविधौषधिमन्त्रसूत्रपङ्क्तिना सलोहवलयेनैकप्रकोष्ठेन शङ्खखण्डं पूष्णो दन्तमिव भगवता भवेन भग्नं भक्त्या भूषणीकृतं कलयन्तम्, अखिलरसकूपोदञ्च-

---

ललाटास्थि। शष्कुली कुहरम्। 'कूर्चमन्त्रो भ्रुवोर्मध्यम्'। काचरा पीतवर्णा। तुण्डं मुखम्। कोटिः प्रान्तः, चञ्चग्रम्। 'प्रान्तावोष्ठस्य सृक्किणी, प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। पूष्णो रविभेदस्य। पुरा दक्षयज्ञगतस्य हरं निन्दतः 'मद्यज्ञागते किमर्थमागतोऽसि' इति मुष्टिप्रहारेण हरेण दन्ता भग्नाः। तत्करस्पर्शेन पावनत्वात्तत्र

गुग्गुल की गरमी से फूटी कपार की खोपड़ी सफेद दिखाई दे रही थी। माथे पर सिकन पड़ने से भौंहों के बीच का हिस्सा सिकुड़ गया था और दोनों भौंहों के मिल जाने से एक भ्रूलेखा बन गई थी। आँखों की पुतली कच्चे काँच की तरह पीले रङ्ग की थी और लाल अपाङ्गों से निकलती हुई किरणें मध्य में सफेद इन्द्रायुध के दृश्य को उत्पन्न कर रही थीं। ऐसा लग रहा था कि साधना करने के लिये वे अनेक रङ्गों वाले महामण्डल की रचना कर रहे थे। सफेद, पीली, लाल झण्डियों से रङ्ग-बिरङ्ग के लग रहे थे। दिशाओं में शिव की बलि छोड़ रहे थे। गरुड़ की टोर के समान उनकी नाक का अग्रभाग झुका हुआ था। ओठ के बगल की दूर तक कटाव से उनके कपोल छोटे लग रहे थे। हमेशा उनके हृदय में सन्निहित रहने वाले भगवान् शिव के मस्तक की चन्द्रकिरणों के समान दाँतों की टेढ़ी रश्मियाँ निकलकर दिशाओं को धवलित कर रही थीं, मानों जीभ के अग्रभाग में स्थित समस्त शैवसंहिताओं के भारी बोझ से उनका ओष्ठ नीचे की ओर लटका हुआ था। कान की लम्बी पालियों में स्फटिक के कुंडल लटक रहे थे, मानों देवताओं और असुरों पर विजय पाने के लिये विद्या सीखने की श्रद्धा से शुक्र और बृहस्पति उनके पीछे लगे हों। एक हाथ में लोहे के कड़े में पिरोया हुआ शंख का टुकड़ा पहने थे, जिसमें

नघटीयन्त्रमालामिव रुद्राक्षमालां दक्षिणेन पाणिना भ्रमयन्तम् , उरसि दोलायमानेनापिङ्गलाग्रेण कूर्चकचकलापेन संमार्जयन्तमिवान्तर्गतं निजरजोनिकरम् , अतिनिबिडनीललोममण्डलविचितं च ध्यानलब्धेन ज्योतिषा दग्धमिव हृदयदेशं दधानम् , ईषत्प्रशिथिलवलिवलयबध्यमानतुन्दम् , उपचीयमानस्फिङ्मांसपिण्डकम् , पाण्डुरपवित्रक्षौमावृतकौपीनम् , सावष्टम्भपर्यङ्कबन्धमण्डलितेनामृतफेनश्वेतरुचा योगपट्टकेन वासुकिनेवाप्रतिहतानेकमन्त्रप्रभावाविर्भूतेन प्रदक्षिणीक्रियमाणम् , अरुणतामरससुकुमारतरतलस्य पादयुगलस्य निर्मलैर्नखमयूखजालकैर्जर्जरयन्तमिव महानिधानोद्धरणरसेन रसातलम् , तोयक्षालितशुचिना धौतपादुकायुगलेन हंसमिथुनेनेव भागीरथीतीर्थयात्रापरिचयागतेनामुच्यमानचरणान्तिकम् , शिखरनिखातकुब्जकालायसकण्टकेन वैणवेन विशाखिकादण्डेन सर्वविश्वासि-

भक्तिः। अखिलस्य रसस्य कूपादुदञ्चनाय घटीयन्त्रमालापि भ्राम्यते। दोलायमानत्वेन संमार्जनसंभावना। कलापग्रहणं मार्जनीसादृश्यार्थम्। रजो रागः, रेणुश्च। विचितं व्याप्तम्। तुन्दमुदरम्। स्फिजावुभयत्र प्रसिद्धे। 'स्त्रियां स्फिजौ कटिप्रोथौ' इत्यमरः। फेनवत्तैश्च श्वेता। वासुकिनेवेति। न सामान्येनेति प्रभावपरिशोधकम्। जर्जरयन्तं खण्डशः कुर्वाणम्। तोयेत्यादि। हंसमिथुनस्यापि विशेषणम्। शिखरेत्यादिनाङ्कुशसादृश्यं विशाखिकादण्डस्योक्तम्। निखात उत्कीर्णः। कालायसं शस्त्र-

अनेक औषधियाँ मन्त्र और सूत्र के अक्षर लिखकर बँधे थे, मानों उस शंख के टुकड़े के रूप में भगवान् शिव द्वारा तोड़े गए पूषा के दाँत को उन्होंने भक्ति से आभूषण बना लिया था। दाहिने हाथ में रुद्राक्ष की माला को घुमा रहे थे, मानों सारे रस को निकाल लेने के लिए रहट चला रहे थे। छाती पर पीले अग्रभाग वाली दाढ़ी लहरा रही थी, मानों हृदय के रजोविकार को झाड़ रहे थे। घने और नीले भरे रोंगटे को देखकर लगता मानों ध्यान से प्राप्त ज्योति के कारण जले हुए हृदय को धारण कर रहे हों। उदर में वलियाँ पड़ गई थीं। नितम्ब का मांस बढ़ गया था। उनका कौपीन उज्ज्वल और पवित्र क्षौम वस्त्र से ढका हुआ था। वीरासन लगाकर विराजमान उनके चारों ओर अमृतफेन के समान योगपट्ट घिरा हुआ था मानों उनके विफल न होने वाले मन्त्रों के प्रभाव से प्रकट होकर वासुकि नामक नागराज उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। लाल कमल के समान सुकुमार तलवे वाले दोनों चरणों के नखों की निर्मल किरणें फैल रही थीं, मानों बहुमूल्य निधि को निकालने के लिए पाताल को विदीर्ण कर रहे थे। पैरों के पास पानी से धुला हुआ पवित्र खड़ाउओं का जोड़ा रखा हुआ था, मानों गङ्गा के तीर्थों में विचरने के समय परिचय हो जाने से हंसों का जोड़ा साथ लग गया हो। पास में बाँस का बैसाखी डण्डा

द्धिविघ्नविनायकापनयनाङ्कुशेनेव सततपार्श्ववर्तिना विराजमानम्, अबहुभाषिणं मन्दहासिनं सर्वोपकारिणं कुमारब्रह्मचारिणम्, अतितपस्विनम्, महामनस्विनं कृशक्रोधम्, अकृशानुरोधम्, महानगरमिवादीनप्रकृतिशोभितम्, मेरुमिव कल्पतरुपल्लवराशिसुकुमारच्छायम्, कैलासमिव पशुपतिचरणरजःपवित्रितशिरसम्, शिवलोकमिव माहेश्वरगणानुयातम्, जलनिधिमिवानेकनदनदीसहस्रप्रक्षालितशरीरम्, जाह्नवीप्रवाहमिव बहुपुण्यतीर्थस्थानशुचिम्, धाम धर्मस्य, तीर्थं तथ्यस्य, कोशं कुशलस्य, पत्तनं[1] पूततायाः, शाला शीलस्य, क्षेत्रं क्षमायाः, शालेयं शालीनतायाः, स्थानं स्थितेः, आधारं धृतेः, आकरं करुणायाः, निकेतनं कौतुकस्य, आरामं रामणीयकस्य, प्रासादं प्रसादस्य, आगारं गौरवस्य, समाजं

भेदः। विशाखिका खनित्रिका। विघ्नोऽन्तरायः। विनायको गजाननः। प्रकृतिः स्वभावः, मायादिका च। राशिवत्तेन च सुकुमाराः। गणाः समूहाः, प्रमथाश्च। नदनदीष्वेकशेषो युक्तः। सहस्रेषु तैः प्रक्षालितशि(शरी ?)राः। तीर्थेषु यत्स्थानं वसनं तेन शुचिम्। तीर्थस्नानैः कनखलाद्यवस्थितिभिश्च शुचिः। शालीनता विनीतत्वम्। निकेतनं गृहम्। तत्र हि सर्वस्य कौतुकं जायते।

था जिसके सिरे पर टेढ़ा लोहे का कील जड़ा हुआ था मानो समस्त विद्याओं की सिद्धि में विघ्न पहुँचाने वाले विघ्नराज गजानन को हटाने के लिये अंकुश हो। वे बहुत कम बोलने वाले, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए, सब प्रकार के उपकारी, आजन्म ब्रह्मचारी, महातपस्वी, महामनस्वी, क्रोधरहित और समादृत थे। महानगर की भाँति उनकी प्रकृति (स्वभाव या नागरिक जन) अदीन अर्थात् दीनतारहित थी। सुमेरु के समान कल्पवृक्ष के पल्लव की भाँति उनकी कान्ति थी (सुमेरु पर कल्पवृक्ष के पत्तों की छाया रहती है)। भगवान् शिव के चरणों की धूल से उनका सिर पवित्र था जैसे कैलास पर्वत शिव की चरणधूलि से पवित्र होता है। शैव लोग उनके साथ थे जैसे शिवलोक में प्रमथगण रहते हैं। अनेक नद और नदियों में उन्होंने अपने शरीर को समुद्र की भाँति प्रक्षालित किया था। वे अनेक पुण्यतीर्थों में भ्रमण करके गङ्गा के प्रवाह की भाँति पवित्र हो चुके थे। वे धर्म के धाम, सत्य के तीर्थ, कुशल के कोश, पवित्रता के नगर, शीलगुण के गृह, क्षमा के क्षेत्र, नम्रता के निवासस्थान, मर्यादा के स्थान, धैर्य के आधार, करुणा के खान, कौतूहल के निकेतन, सौन्दर्य के उपवन, प्रसन्नता के प्रासाद, गौरव के गृह, सौजन्य के

---

१. पत्तनं पूतनायाः।

सौजन्यस्य, संभवं सद्भावस्य, कालं कलेः, भगवन्तं साक्षादिव विरूपाक्षं भैरवाचार्यं ददर्श।

भैरवाचार्यस्तु दूरादेव राजानं दृष्ट्वा शशिनमिव जलनिधिश्चचाल। प्रथमतरोत्थितशिष्यलोकश्चोत्थाय प्रत्युज्जगाम। समर्पितश्रीफलोपायनश्च जह्नुकर्णसमुद्गीर्यमाणगङ्गाप्रवाहह्रादगम्भीरया गिरा स्वस्तिशब्दमकरोत्।

नरपतिरपि प्रीतिविस्तार्यमाणधवलिम्ना चक्षुषा प्रत्यर्पयन्निव बहुतराणि पुण्डरीकवनानि ललाटपट्टपर्यस्तेन चोदंशुना शिखामणिना महेश्वरप्रसादमिव तृतीयनयनोद्गमेन प्रकाशयन्नावर्जितकर्णपल्लवपलायमानमधुकरः शिवसेवासमुन्मूलिताशेषपापलवमुच्यमान इव दूरादवनतः प्रणाममभिनवं चकार। आचार्योऽपि—'आगच्छ अत्रोपविश' इति शार्दूलचर्मात्मीयमदर्शयत्। उपदर्शितप्रश्रयस्तु राजा मत्तहंसकलगद्गदस्वरसुभगां मधुरसमयीं महानदीमिव प्रवर्तयन्वाचं व्याजहार—'भगवन्! नार्हसि

शश्यपि राजा तं च दूरादेव दृष्ट्वा जलनिधिश्चलति। गाम्भीर्याच्च जलनिधिरेवेत्युक्तम्। बिल्वं श्रीफलम्। गङ्गेत्यादिना पवित्रत्वमाह।

धवलिम्नेत्यनेन पुण्डरीकाणां धवलत्वमाह। प्राभृतपुण्डरीकाणां राजतत्वात्। आवर्जितं स्वरवच्च तेन सुभगात्। शार्दूलो व्याघ्रः।

समाज, सद्भाव के उत्पत्तिस्थान एवं काल के अन्तक थे। इस प्रकार वे साक्षात् शिव के समान लग रहे थे।

भैरवाचार्य दूर से ही राजा को देखकर उस प्रकार चल पड़े जैसे समुद्र चन्द्रमा को देखकर उमड़ उठता है। पहले ही उठे हुए शिष्यों को साथ लेकर राजा के पास पहुंचे और श्रीफल का उपहार भेंट किया। तब जह्नु के कर्णकुहर से निकलते हुए गंगा-प्रवाह की ध्वनि के समान गम्भीर वाणी द्वारा 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया।

राजा ने प्रीति से आँखों की सफेदी को बढ़ाते हुए देखा मानों बहुत से कमलवनों को उनके स्वागत में अर्पित कर रहा हो। ललाट में लगी हुई शिखामणि के ऊपर की ओर फैलती हुई किरणों से मानों भगवान् शंकर के तीसरे नेत्र से प्राप्त प्रसाद को धारण कर रहा हो। जब वह झुकने लगा तब उसके कर्णपल्लव पर बैठे हुए भौंरे उड़े मानों भगवान् शिव की सेवा करने से उसके पाप उड़े जा रहे हों। इस प्रकार उसने दूर ही से झुककर प्रणाम किया। आचार्य ने भी 'आओ, यहाँ बैठो' यह कह कर अपने व्याघ्रचर्म की ओर निर्देश किया। विनय प्रकट करते हुए राजा ने मत्त कलहंस की आवाज की भाँति सुन्दर, मधु रस की महानदी को मानों प्रवाहित करते हुए कहा—'भगवन्, मुझे आप दूसरे

मामन्यनृपस्खलितैः खलीकर्तुम्। अशेषराजकोपेक्षिताया हृतलक्ष्म्याः खल्वयं शीलापराधो द्रविणदौरात्म्यं वा यदेवमाचरति मयि गुरुः। अभूमिरयमुपचाराणाम्। अलमतियन्त्रणया। दूरस्थितोऽपि मनोरथ-शिष्योऽयं जनो भवताम्। माननीयं च गुरुवन्नोल्लङ्घनमर्हति गुरोरासनम्। आसतां च भवन्त एवात्र' इति व्याहृत्य परिजनोपनीते वाससि निषसाद। भैरवाचार्योऽपि प्रीत्यानतिक्रमणीयं नृपवचनमनुवर्तमानः पूर्ववत्तदेव व्याघ्राजिनमभजत।

आसीने च सराजके परिजने शिष्यजने च समुचितमर्घ्यादिकं चक्रे। क्रमेण च नृपमाधुर्यहृतान्तःकरणः शशिकरनिकरविमला दशन-दीधितीः स्फुरन्तीः शिवभक्तीरिव साक्षाद्दर्शयन्नुवाच—'तात! अतिनम्रतैव ते कथयति गुणानां गौरवम्। सकलसंपत्पात्रमसि। विभवानु-रूपास्तु प्रतिपत्तयः। जन्मनः प्रभृत्यदत्तदृष्टिरेवास्मि स्वापतेयेषु। यतः सकलदोषकलापानलेन्धनैर्धनैरविक्रीतं कचिच्छरीरकमस्ति। भैक्षरक्षिताः

अन्तःकरणं मनः। गौरवमुत्कर्षः, भारवत्त्वं च। अदत्तदृष्टिरिति। न तु मया धनान्यलभ्यानि। स्वापतेयेषु धनेषु। संरक्षिता इति। यदि कदाचित्क्वचिदुपयोगं

राजाओं की भाँति दोषों से भरा न समझें। समस्त राजाओं से उपेक्षित राजलक्ष्मी का यह चरित्र-दोष और धन का मद है जो मेरे लिए गुरु आप इस प्रकार व्यवहार कर रहे हैं। मैं ऐसे उपचारों का पात्र नहीं हूं। मेरे लिए यह क्लेश ठीक नहीं। दूर रहकर भी मनोरथ से आपका शिष्य बना हुआ यह जन आपका है। गुरु के समान ही माननीय इस आसन पर मैं अपना पैर नहीं रख सकता। आप ही इसपर विराजें।' यह कहकर परिजन द्वारा लाए हुए वस्त्र पर बैठे। भैरवाचार्य ने भी प्रेम से राजा की बात मान ली और पहले के समान उसी व्याघ्रचर्म पर आसीन हो गए।

राजा लोग, परिजन और शिष्य जब बैठे तो भैरवाचार्य ने अर्घ्य आदि द्वारा उचित सत्कार किया। राजा के रसीलेपन को देख हृदय से आकृष्ट हो भैरवाचार्य चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति अपने दाँतों की किरणों के रूप में भगवान् शिव की भक्ति प्रदर्शित करते हुए बोले—'राजन्, आपकी यह अत्यन्त नम्रता ही गुणों का उत्कर्ष बता रही है। सब प्रकार की सम्पत्ति के तुम पात्र हो। ऐश्वर्य के अनुरूप ही मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ होती हैं। मैंने जन्म से लेकर धन की ओर दृष्टिपात नहीं किया। दोष की अग्नियों को इंधन की भाँति भड़काने वाले धन पर यह मेरी तुच्छ देह बिकी नहीं है। भीख मांग कर

सन्ति प्राणाः। दुर्गृहीतानि कतिचिद्विद्यन्ते विद्याक्षराणि। भगवच्छिव-भट्टारकपादसेवया समुपार्जिताः कियत्योऽपि संनिहिताः पुण्यकणिकाः। स्वीक्रियतां यदत्रोपयोगार्हम्। प्रतनुगुणग्राह्याणि कुसुमानीव हि भवन्ति सतां मनांसि। अपि च, विद्वत्संमताः श्रूयमाणा अपि साधवः शब्दा इव सुधीरेऽपि हि मनसि यशांसि कुर्वन्ति। विवरं विशतः कुतूहलस्य फेनधवलैः स्रोतोभिरिवापह्रियमाणो गुणगणैरानीतोऽस्मि कल्याणिना' इति।

राजा तु तं प्रत्यवादीत्—भगवन्! अनुरक्तेष्वपि शरीरादिषु साधूनां स्वामिन एव प्रणयिनः। युष्मद्दर्शनादुपार्जितमेव चापरिमितं कुशल-जातम्। 'अनेनैवागमनेन स्पृहणीयं पदमारोपितोऽस्मि गुरुणा' इति विविधाभिश्च कथाभिश्चिरं स्थित्वा गृहमगात्।

अन्यस्मिन्दिवसे भैरवाचार्योऽपि राजानं द्रष्टुं ययौ। तस्मै च राजा सान्तःपुरं सपरिजनं सकोषमात्मानं निवेदितवान्। स च विहस्योवाच—

यास्यन्तीति। अनेन प्राणादिदानमेवोचितमित्युक्तम्। सकलसंपत्पात्रस्येयतः कियती वसुसंपत्तिर्भविष्यतीत्याशङ्क्याह—प्रतन्वित्यादि। गुणा उत्कर्षाः, तन्तवश्च। कुसुमानीवेति। कुसुमसादृश्येन मनसः सौकुमार्यमप्युक्तम्। साधवः शिष्टाः, शब्दा इव साधवः। संस्कृता विद्वत्संमताश्च। फेनवत्तैश्च धवलैर्गुणगणैः, स्रोतोभिश्च।

स्वामिन एव प्रणयिन इति। अनुक्तान्यपि शरीरादीनि प्रणयिनां स्वायत्तानीत्यर्थः।

मैंने प्राणों की रक्षा की है। विद्या के कुछ अक्षरों को कठिनाई से सीख पाया हूँ। भगवान् शिवभट्टारक की सेवा करके कुछ पुण्य संगृहीत किए हैं। यहाँ आपके उपयोग की जो वस्तु हो उसे स्वीकार कीजिए। सज्जनों के मन थोड़े से गुणों के कारण फूलों की भाँति ग्रहण करने योग्य हो जाते हैं। शब्दों के समान सुने गए विद्वानों के अभिमत शब्द सुधीर मन को भी प्रभावित कर देते हैं। कल्याणभाजन तुमने हृदय में प्रवेश करते हुए कुतूहल की फेनधवलधारा के समान अपने गुणों द्वारा तुमने खींच कर मुझे यहाँ आने के लिए विवश किया।'

राजा ने भैरवाचार्य से कहा—'जैसे शरीर बिना कहे ही अपने अधीन होता है उसी प्रकार सज्जन लोग भी प्रेमी जनों के वश में रहते हैं। आपके दर्शन से अनन्त कुशल-लाभ हुआ। आपने इस ओर पधार कर मुझे स्पृहणीय पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।' इस प्रकार देर तक ठहर कर बातचीत के बाद घर लौट आए।

दूसरे दिन भैरवाचार्य भी राजा को देखने के लिए पधारे। उनके स्वागत में राजा ने

१. कृतमनेनैवानुगमनेन।

'तात ! क्व विभवाः, क्व च वयं वनवर्धिताः ? धनोष्मणा म्लायत्यलं लतेव मनस्विता। खद्योतानामिवास्माकमियमपरोपतापिनी राजते तेजस्विता। भवादृशा एव भाजनं भूतेः' इति स्थित्वा च कंचित्कालं जगाम।

परिव्राट् तेनैव क्रमेण पञ्च पञ्च राजतानि पुण्डरीकाण्युपायनीचकार। एकदा तु श्वेतकर्पटावृतं किमप्यादाय प्राविशत्। उपविश्य च पूर्ववत्स्थित्वा मुहूर्तमब्रवीत्—'महाभाग ! भवन्तमाह भगवान्यथास्मच्छिष्यः पातालस्वामिनामा ब्राह्मणः। तेन ब्रह्मराक्षसहस्तादपहृतो महासिरट्टहासनामा। सोऽयं भवद्भुजयोग्यो गृह्यताम्' इत्यभिधायापहृतकर्पटावच्छादनात्परिवारादाचकर्ष शरद्गगनतलमिव पिण्डतां नीतम्, कालिन्दीप्रवाहमिव स्तम्भितजलम्, नन्दकजिगीषया कृष्णकोपितं कालियमिव कृपाणतां गतम्, लोकविनाशाय प्रकाशितधा-

---

खद्योताः कीटमणयः।

महाभागेति प्रस्तुतानुगुणमामन्त्रणम्। परिवारादाचकर्ष कृपाणमिति संबन्धः। पिण्डं शस्त्रम्। उक्तं च—'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी' इति। स्तम्भितं घनं रचितमन्तर्जलं यस्य तम्। किल कृपाणस्य वा पानीयं यन्त्रेण क्रियते। नन्दको विष्णुखड्गः। कालियो नागभेदः। धाराणामासारः, धारारूपश्चासारो धारासारः। दन्तमण्डलं दन्तचक्रवालम्, दशनसमूहश्च। मुष्टिः त्सरुः.

अन्तःपुर, परिजन और सम्पत्ति के साथ अपने आपको भेंट किया। उन्होंने हँस कर कहा—'राजन्, कहाँ ये सम्पत्तियाँ और कहाँ जंगल के वासी हम ! मनस्विता धन की गरमी से झुलस जाती है। खद्योतों के समान दूसरों को सन्तप्त न करने वाली यह हमारी तेजस्विता ही बहुत है। आप जैसे लोग ही ऐश्वर्य के भाजन हैं।' इस प्रकार कुछ ठहर कर चले गए।

भैरवाचार्य के शिष्य ने उसी क्रम से चाँदी के पाँच कमलों को भेंट में अर्पित किया। एक समय वह उजले वस्त्र से ढँककर कुछ लिए हुए पहुँचा। पहले की तरह बैठकर क्षण भर के बाद बोला—'महाभाग, भगवान् ने आप से कहा है कि पातालस्वामी नाम का एक ब्राह्मण मेरा शिष्य है। उसने ब्रह्मराक्षस के हाथ से अट्टहास नामक कृपाण छीना है। वह आपके हाथ में रहने योग्य है।' यह कहकर उसने ऊपर का वस्त्र हटाकर म्यान से उस कृपाण को खींच लिया, मानों आकाश ही शस्त्र बना हो, यमुना का प्रवाह ही रुक गया हो, कृष्ण के प्रति कुपित कालियनाग ने उनके नन्दक नामक खड्ग को जीतने की इच्छा से मानों कृपाण का रूप धर लिया हो। संसार के विनाश के लिए धाराजल की

रासारम्, प्रलयकालमेघखण्डमिव नभस्तलात्पतितम्, दृश्यमानविकट-दन्तमण्डलं हासमिव हिंसायाः, हरिबाहुदण्डमिव कृतदृढमुष्टिग्रहम्, सकलभुवनजीवितापहरणक्षमेण कालकूटेनेव निर्मितम्, कृतान्तकोपानलतप्तेनेवायसा घटितम्, अतितीक्ष्णतया पवनस्पर्शेनापि रुषेव क्वणन्तम्, मणिसभाकुट्टिमपतत्प्रतिबिम्बच्छद्मनात्मानमपि द्विधेव पाटयन्तम्, अरिशिरश्छेदलग्नैः कचैरिव किरणैः करालितधारम्, मुहुर्मुहुस्तडिदुन्मेषतरलैः प्रभाचक्रच्छुरितैर्जर्जरितातपम्, खण्डशश्छिन्दन्तमिव दिवसम्, कटाक्षमिव कालरात्रेः, कर्णोत्पलमिव कालस्य, ओंकारमिव क्रौर्यस्य, अलंकारमहंकारस्य, कुलमित्रं कोपस्य, देहं दर्पस्य, सुसहायं साहसस्य, अपत्यं मृत्योः, आगमनमार्गं लक्ष्म्याः, निर्गमनमार्गं कीर्तेः, कृपाणम्।

अवनिपतिस्तु तं गृहीत्वा करेणायुधप्रीत्या प्रतिमानिभेनालिङ्गन्निव सुचिरं ददर्श। संदिदेश च—'वक्तव्यो भगवान्परद्रव्यग्रहणावज्ञादुर्विदग्धमपि हि मे मनो युष्मद्विषये न शक्नोति वचनव्यतिक्रमव्यभिचारमाचरितुम्' इति। परिव्राट् तु गृहीते तस्मिन्परितुष्टः 'स्वस्ति भवते।

असुरभेदश्च। अतितीक्ष्णतयेति। तंद्वस्तु तानवाङ्कवति, तनु च परस्परस्पर्शेन क्वणति। तथा चातितीक्ष्णोऽतिदण्डप्रकृती रोषेण हुंकरोति। कचैः केशैः। करालिता व्याप्ताः।

वर्षा करता हुआ प्रलयकालीन मेघ का टुकड़ा हो। दीख पड़ती हुई दाँतियों के मण्डल वाला मानों हिंसा का ही हास हो। भगवान् कृष्ण के बाहुदण्ड के समान उसकी मूँठ दृढ़ थी। सारे संसार के प्राणों को हर लेने के लिए मानों वह विष से बना हो। यमराज की क्रोधाग्नि में तपाए हुए लोहे से मानों बनाया गया हो। उसकी धार इतनी तेज थी कि हवा के भी लगने से उसमें आवाज-सी निकलती। मणि के जड़ावों पर पड़ती हुई अपनी छाया के व्याज से मानों अपने आपके भी दो टुकड़े कर रहा हो। उसकी धार से किरणें निकल रही थीं मानों शत्रु के सिर काटने से उसमें बाल चिपट गए हों। बार-बार बिजली की तरह चमक वाली प्रभा से वह आतप को जर्जर बना रहा था, मानों दिन का खण्ड-खण्ड कर रहा हो। वह मानों कालरात्रि का कटाक्ष, काल का कर्णोत्पल, क्रूरता का ओंकार, अहंकार का अलंकार, कोप का कुलमित्र, दर्प का शरीर, साहस का सहायक, मृत्यु का वंशज, लक्ष्मी के आने का मार्ग और कीर्ति के निकलने का मार्ग था।

राजा ने उसे हाथ में लेकर आयुध के प्रति स्वाभाविक प्रेम के कारण मानों प्रतिमा के समान उसका आलिङ्गन करते हुए देखा और संदेश दिया—'भगवान् भैरवाचार्य से कहना कि दूसरे के धन को तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाला मेरा मन आपकी बात का

साधयामः' इत्युक्त्वा निरयासीत्। नृपश्च प्रकृत्या वीररसानुरागी तेन कृपाणेनामन्यत करतलवर्तिनीं मेदिनीम्।

अथ व्रजत्सु दिवसेष्वेकदा भैरवाचार्यो राजानमुपह्वरे सोपग्रहमवादीत्—'तात! स्वार्थालसाः परोपकारदक्षाश्च प्रकृतयो भवन्ति भव्यानाम्। भवादृशां चार्थिदर्शनं महोत्सवः प्रणयनमाराधनमर्थग्रहणमुपकारः। भूमिरसि सर्वलोकमनोरथानाम्। येनाभिधीयसे। श्रूयताम्। भगवतो महाकालहृदयनाम्नो महामन्त्रस्य कृष्णस्रगम्बरानुलेपनेनाकल्पेन कल्पकथितेन महाश्मशाने जपकोट्या कृतपूर्वसेवोऽस्मि। तस्य च वेतालसाधनावसाना सिद्धिः। असहायैश्च सा दुरवापा। त्वं चालमस्मै कर्मणे। त्वयि च गृहीतभरे भविष्यन्त्यपरे सहायास्त्रयः। एकः स एवास्माकं टीटिभनामा बालमित्रं मस्करी यो भवन्तमुपतिष्ठते। द्वितीयः स

साधयामः स्वकर्मसिद्धिं विदध्मः। मङ्गलत्वाद्गच्छाम इति नोक्तम्।

उपह्वरे प्रच्छन्ने। सोपग्रहं साभ्यर्थनम्। प्रणयनं याचनम्। मनोरथानामिति। रथाश्च भूमौ वहन्ति। आकल्पेन वेशेन। इतिकर्तव्यताकलापोपदेशको ग्रन्थः कल्पः। अलं पर्याप्तः। उपतिष्ठत इति संगतिकरणे तङ्। परिग्रहणं स्वीकारः।

उल्लङ्घन नहीं कर सकता।' राजा के कृपाण ले लेने पर उस परिव्राजक ने सन्तुष्ट होकर कहा—'आपका कल्याण हो, मैं चला।' यह कहकर वापिस लौट गया। स्वभाव से ही वीर रस में अनुराग करने वाले राजा ने उस कृपाण के द्वारा सारी पृथिवी को अपने हाथ में आई हुई समझा।

बहुत दिनों के बाद एक समय भैरवाचार्य ने राजा से निवेदन किया—'राजन्, सज्जन लोग स्वभाव से ही अपने कार्य में उदासीन और परोपकार करने में चतुर होते हैं। आप जैसे लोग याचकों को देखकर बड़ा उत्सव मानते हैं, उनके माँगने से अपने को सम्मानित समझते हैं और दी हुई वस्तु को उनके द्वारा ले लेने पर अपने आपको अत्यन्त उपकृत मानते हैं। जनता की समस्त इच्छाओं के आप केन्द्र हैं। इसलिए कह रहा हूँ, सुनें—शास्त्रोक्त विधि के अनुसार महाश्मशान में काली माला और काला वस्त्र पहन एवं चन्दन लगा मैंने एक कोटि जप किया है। वेताल की साधना में उस मन्त्र की सिद्धि का अन्त होता है। असहाय लोग उस सधना को नहीं कर पाते। आप इस कार्य में समर्थ हैं। अगर इस भार को स्वीकार करते हैं तो आपके तीन साथी और मिलेंगे। एक तो वही टीटिभ नाम का मेरा बचपन का सुहृद् संन्यासी जो आपके पास आता रहता है, दूसरा वह पातालस्वामी और तीसरा कर्णताल नाम का द्रविड़ देश का रहने वाला मेरा ही

पातालस्वामी। अपरो मच्छिष्य एव कर्णतालनामा द्राविडः। यदि साधु मन्यसे ततो नीयतामयं दिङ्नागहस्तदीर्घो गृहीताट्टहासो निशामेकामेकदिङ्मुखार्गलतां बाहुः।' इति कृतवचसि च तस्मिन्नन्धकारप्रविष्ट इव दृष्टप्रकाशः प्राप्तोपकारावकाशः प्रमुदितेनान्तरात्मना नरेन्द्रः समभाषत—'भगवन्! परमनुगृहीतोऽस्म्यनेन शिष्यजनसामान्येन निर्देशेन कृतपरिग्रहमिवात्मानमवैमि' इति। ननन्द च तेन नरेन्द्रव्याहृतेन भैरवाचार्यः। चकार च संकेतम्—'अस्यामेवागामिन्यामसितपक्षचतुर्दशीक्षपायामियत्यां वेलायाममुष्मिन्महाश्मशानसमीपभाजि शून्यायतने शस्त्रद्वितीयेनायुष्मता द्रष्टव्या वयम्' इति।

अथातिक्रान्तेष्वहःसु प्राप्तायां च तस्यामेव कृष्णचतुर्दश्यां शैवेन विधिना दीक्षितः क्षितिपो नियमवानभूत्। कृताधिवासं च संपादितगन्धधूपमाल्यादिपूजं खड्गमट्टहासमकरोत्। ततः परिणते दिवसे केनापि कर्मसाधनाय कृतरुधिरबलिविधानास्विव लोहितायमानासु दिक्षु, रुधिरबलिलम्पटासु च वेतालजिह्वास्विव लम्बमानासु च रविदीधितिषु, नरेन्द्रानुरागेण गृहीतापरदिशि स्वयमिव दिक्पालतां चिकीर्षति सवि-

---

दीक्षितः कृतनियमः। अधिवासो नियमदिवसादाद्येऽहनि यथाशास्त्रं विधिना मन्त्रन्यासादिः। पर्वपूजेति यावत्। तत इत्यादौ। ततोऽस्मिन्सति राजा नग-

शिष्य। यदि आप ठीक समझते हैं तो दिङ्नाग की सूँड़ के समान लम्बे अपने भुज में अट्टहास लेकर एक दिशा की रक्षा करते हुए एक रात ठहरिए।' भैरवाचार्य के इस प्रकार कहने पर अन्धकार में पड़े हुए राजा ने मानों प्रकाश को देख लिया। उपकार करने का अवसर देखकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने कहा—'भगवन्, आपने सामान्य शिष्यजन की भाँति मुझे स्वीकार करके जो आज्ञा दी इससे मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।' राजा की इस बात से भैरवाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और इशारा किया—'इसी आने वाली कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात को महाश्मशान के समीप वाले शून्यायतन में केवल हाथ में तलवार लेकर आप हमसे मिलें।'

कई दिनों के बाद उस कृष्ण चतुर्दशी के दिन राजा शैवविधि से दीक्षित होकर व्रत में लग गया और पहले दिन ही अभिमंत्रित करके गन्ध, धूप, माला आदि से अट्टहास नामक खड्ग की पूजा की। तब सन्ध्या हो गई। दिशायें इस प्रकार लाल हो गईं जैसे किसी ने वेतालसाधना के लिए रुधिर की बलि चढ़ाई हो। सूर्य की किरणें इस प्रकार लटक गईं मानों रुधिर-बलि के लिये लपलपाती हुई वेताल की जीभ हो। राजा के प्रति

तरि, यातुधानीष्विव वर्धमानासु तरुच्छायासु, पातालतलवासिषु विघ्नाय दानवेष्विवोत्तिष्ठत्सु तमोमण्डलेषु, नभसि पुञ्जीभवति, रौद्रं कर्म दिदृक्षमाण इव नक्षत्रगणे, विगाढायां शर्वर्याम् , सुप्तजने निःशब्दस्तिमिते निशीथे, राजा सान्तःपुरं परिजनं वञ्चयित्वा वामकरस्फुरत्सरुर्दक्षिणकरेणोत्खातं खड्गमट्टहासमादाय विसर्पता च खड्गप्रभापटलेन नीलांशुकपटेनेव दर्शनभयादवगुण्ठितनिखिलगात्रयष्टिरनादिष्टयाप्यनुगम्यमानो राजलक्ष्म्या पृष्ठतः परिमललग्नमधुकरवेणिव्याजेन केशेष्विव कर्मसिद्धिमाकर्षन्नेकाकी नगरान्निरगात् । अगाच्च तमुद्देशम् ।

अथ प्रत्युपजग्मुस्ते त्रयोऽपि द्रौणिकृपकृतवर्माण इव सौप्तिके संनद्धाः स्नाताः स्रग्विणो गृहीतविकटवेषाः, कुसुमशेखरसंचारिभिः क्रियमाणमन्त्रशिखाबन्धा इव गुञ्जद्भिः षट्चरणैरुष्णीषपट्टकांल्ललाटमध्यघ-

---

रान्निरगादिति संबन्धः । यातुधानीषु राक्षसीषु । पुञ्जीभवतीति । कृष्णरात्र्यां नक्षत्रगतपुञ्जीभावो लक्ष्यते । दिदृक्षवोऽपीतस्ततः पुञ्जीभवन्ति । विगाढायां घनायाम् । निशीथेऽर्धरात्रे । नीलेत्यादि सहोपमेयम् ।

सुप्तेषु भवं सौप्तिकम् । धृष्टद्युम्नाधिष्ठिताक्षौहिणीविनाशाय दुर्योधनप्रेरिताद्दिवार्जुनाधिष्ठितानां न किंचिदेषां शक्यमिति रात्रावस्कन्दमयच्छन्निति वार्ता ।

स्वाभाविक प्रेम से मानों सूर्य स्वयं पश्चिम दिशा के दिक्पाल बन रहे थे। राक्षसी स्त्रियों की भाँति वृक्षों की छाया बढ़ने लगी। विघ्न करने के लिए पातालनिवासी दानवों की तरह अन्धकार चारों ओर उठने लगे। तारे मानों उस रौद्र कर्म को देखने की इच्छा से आकाश में एकत्रित होने लगे। रात गहरी हो गई। लोग सो गए, चारों ओर निसबद छा गया। तब राजा अन्तःपुर और परिजनों को चकमा देकर नगर से अकेला निकल पड़ा। उसके बायें हाथ में खड्ग की मूठ थी और दाहिने हाथ में नङ्गी तलवार थी जिसकी प्रभा इस प्रकार निकल रही थी मानों दिखाई पड़ने के भय से नीले अंशुक से अपनी सारी देह ढक कर राजलक्ष्मी बिना आदेश के उसके पीछे चल पड़ी हो। राजा के बालों की सुगन्ध के पीछे भौंरे लूझते जा रहे थे मानों कर्म की सिद्धि ही साथ साथ खिंचती जा रही हो। राजा उसी स्थान पर पहुँचा।

उन तीनों ने राजा का स्वागत किया, जैसे महाभारत के सौप्तिक पर्व में अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले थे। वे वहाँ स्नान करके माला पहने और विकट वेष धारण किए तैयार थे। उनकी शिखा के फूलों में भौंरे गुञ्जार कर रहे थे मानों शिखाबन्ध के मन्त्र पढ़ रहे हों। उनके माथे पर उष्णीषपट्ट के बीचोबीच ऊँचा स्वस्तिकाग्रन्थि बँधी

टितविकटस्वस्तिकाग्रन्थीन्महामुद्राबन्धानिव धारयन्तो मूर्धभिः एकश्रवणविवरविततविमलदन्तपत्रप्रभालोकलेपधवलितकपोलैर्मुखैरापिबन्त इव निशाचरापचयचिकीर्षया शार्वरमन्धकारम्, इतरकर्णावलम्बिनां रत्नकुण्डलानामच्छाच्छया रुचा गोरोचनयेव मन्त्रपरिजप्तया समालब्धाङ्गाः, स्वप्रतिबिम्बगर्भान्कर्मसिद्धये दत्तपुरुषोपहारानिवोल्लासयन्तो निशितान्निस्त्रिंशान्, निस्त्रिंशांशुसंतानसीमन्तिततिमिरामात्मीयात्मीयदिग्विभागसंरक्षणाय त्रिधेव त्रियामां पाटयन्तः, सार्धचन्द्रैः कलधौतबुद्बुदावलितरलतारागणैर्निशाया इव परुषासिधारानिकृत्तैः खण्डैर्गृहीतैश्चर्मफलकैरकाण्डशर्वरीमपरां घटयन्तः, काञ्चनशृङ्खलाकलापनियमितनिबिडनिष्प्रवाणयः, बद्धासिधेनवः, टीटिभकर्णतालपातालस्वामिनो निवेदितवन्तश्चात्मानम्।

सन्नद्धः सकवचः। उक्तं च—'संनद्धो वर्मितः सज्जो दंशितो व्यूढकङ्कटः'। अपचयो हानिः। गोरोचनयेवेति सहोपमेयम्। उल्लासयन्तश्चालयन्तः। सार्धचन्द्रैरिति। निशायां खड्गेषु चन्द्रखण्डस्य संभाव्यमानत्वादेवमुक्तम्। न तु वस्तुवृत्तेन। कृष्णचतुर्दशीनिशायां चन्द्रः संभवतीति। कलधौतं हेम रौप्यं वा। बुद्बुदावलिर्बिन्दुपङ्क्तिः। चर्मफलकैः स्फटकैः। एकस्या वर्तमानत्वादाह—अपरामिति। निष्प्रवाणि नवं वस्त्रम्। उक्तं च—'अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकं च नवाम्बरे'। असिधेनुः कृपाणम्।

थी, मानों महामुद्राबंधों को धारण कर रहा हो। एक ही कान पर लटकते हुए निर्मल दन्तपत्र की प्रभा से उनके मुखकमल भर रहे थे मानों राक्षसों के विनाश की इच्छा से रात्रि के अन्धकार पीते जा रहे थे। उनके दूसरे कान में रत्नकुण्डल लटक रहे थे जिनकी किरणें अभिमन्त्रित गोरोचना की भाँति उनके अङ्गों में लग रही थीं। तेज धार वाली तलवारों में उनकी छाया पड़ रही थी मानों कर्मसिद्धि के लिए उनसे पुरुषों की बलि दी गई हो। वे तलवार की किरणों से अन्धकार को छाँट रहे थे मानों अलग-अलग अपनी अपनी दिशा की रक्षा के लिए रात को तीन भागों में बाँट रहे हों। उनके हाथ में ढाल भी थे जिन पर अर्धचन्द्र और सोने की बुंदकियाँ बनी हुई थीं मानों तलवार की तेज धार से रात के टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे और मानों दूसरी रात का निर्माण कर रहे हों। कमर में सोने की सीकरी से नया वस्त्र बँधा हुआ था और उसमें छूरी खोसी हुई थी। टीटिभ, कर्णताल और पातालस्वामी तीनों सामने आ गए।

अवनिपतिस्तु—'कोऽत्र कः ?' इति त्रीनपृच्छत्। आचचक्षिरे च स्वं स्वं नाम त्रयोऽपि ते। तैरेव चानुगम्यमानो जगाम तां बलिदीपालोकजर्जरितगुग्गुलुधूपधूमगृह्यमाणदिग्विभागतया विक्षिप्यमाणरक्षासर्षपार्धदग्धान्धकारपलायमाननिशामिव समुपकल्पितसर्वोपकरणां निःशब्दां च गम्भीरां च भीषणां च साधनभूमिम्।

तस्यां च कुमुदधूलिधवलेन भस्मना लिखितस्य महतो मण्डलस्य मध्ये स्थितं दीप्ततरतेजःप्रसरम्, पृथुपरिवेषपरिक्षिप्तमिव शरत्सवितारम्, मथ्यमानक्षीरोदावर्त्तवर्तिनमिव मन्दरम्, रक्तचन्दनानुलेपिनो रक्तस्रगम्बराभरणस्योत्तानशयस्य शवस्योरस्युपविश्य जातजातवेदसि मुखकुहरे प्रारब्धाग्निकार्यम्, कृष्णोष्णीषम्, कृष्णाङ्गरागम्, कृष्णप्रतिसरम्, कृष्णवाससम्, कृष्णतिलाहुतिनिभेन विद्याधरत्वतृष्णया

कोऽत्र क इति वाक्यैकदेशोऽयम्। अत्र कः कः स्थित इत्यर्थः। बलीत्यादिना अर्धदग्धत्वसम्भावनम्। अर्धदग्धस्य पलायनमुचितम्। न तु बहुदग्धस्य। पलायंश्च दिग्भागान्गृह्णाति। सर्षपो गौरसिद्धार्थः।

तस्यां चेत्यादौ। भैरवाचार्यमपश्यदिति संबन्धः। पृथुपरिवेषेत्यादिना भीषणीयत्वमुक्तम्। परिवेषः परिधिः। परिक्षिप्तं परिवलितम्। शरदि सविता दीप्ततरतेजःप्रसरो भवतीति शरद्ग्रहणम्। जात उत्पन्नः, न तूद्भिन्नः। प्रतिसरो हस्तसूत्रम्। दिशु काण्डसूत्रप्रतिबन्ध इति। अत्र तिलानां कृष्णत्वात्परमाणूना-

---

राजा ने उन तीनों से पूछा—'आप में कौन कौन है ?' तीनों ने अपना अपना परिचय दिया। उन्हें साथ लेकर राजा भैरवाचार्य की सुनसान, गम्भीर और भयङ्कर साधनाभूमि में पहुँचे। वहाँ बलिदीप का प्रकाश फैल रहा था, जलते हुए गुग्गुल के धुएँ की सुगन्ध दिशाओं में फैल रही थी, अग्नियों में छींटे जाते हुए रक्षासर्षप के धुँए के रूप में मानों रात भाग रही थी। इस प्रकार सब सामग्री वहाँ उपस्थित थी।

उस साधनाभूमि में कुमुद के पराग के समान भस्म से पुरे गए महामण्डल के बीच में बैठे हुए भैरवाचार्य को देखा। उनका स्वाभाविक तेज उस समय बढ़ गया था। विशाल परिधि से घिरे हुए शरत्कालीन सूर्य के समान लग रहे थे। मथे जाते हुए क्षीरसमुद्र की भँवरियों के बीच मन्दर के समान सुशोभित थे। रक्त चन्दन से चर्चित, लाल माला और लाल वस्त्र से अलंकृत, उतान पड़े हुये शव की छाती पर बैठकर उसके मुँह में अग्नि जलाकर हवन कर रहे थे। काली पगड़ी, काला अंगराग, काली राखी, काला वस्त्र पहने हुए थे। विद्याधर बनने की इच्छा से काले तिल की आहुति दे रहे थे, मानों मनुष्य के

मानुषनिर्माणकारणकालुष्यपरमाणूनिव क्षयमुपनयन्तम्, आहुतिदानपर्यस्ताभिः प्रेतमुखस्पर्शदूषितम्, प्रक्षालयन्तमिवाशुशुक्षणिं करनखदीधितिभिः, धूमालोहितेन चक्षुषा क्षतजाहुतिमिव हुतभुजि पातयन्तम्, ईषद्विवृताधरपुटप्रकटितसितदशनशिखरेण दृश्यमानमूर्तमन्त्राक्षरपङ्क्तिनेव मुखेन किमपि जपन्तम्, होमश्रमस्वेदसलिलप्रतिबिम्बिताभिरासन्नदीपिकाभिर्दहन्तमिव कर्मसिद्धये सर्वावयवान्, अंसावलम्बिना बहुगुणेन बिद्याराजेनेव ब्रह्मसूत्रेण परिगृहीतं भैरवाचार्यमपश्यत्। उपसृत्य चाकरोन्नमस्कारम्। अभिनन्दितश्च तेन स्वव्यापारमन्वतिष्ठत्।

अत्रान्तरे पातालस्वामी शातक्रतवीमाशामङ्गीचकार, कर्णतालः कौबेरीं परिव्राट् प्राचेतसीम्। राजा तु त्रैशङ्कवेन ज्योतिषाङ्कितां ककुभमलंकृतवान्।

मपि कालुष्यकथनम्। क्षतजेति। प्रस्तावनानुगुण्येन रक्ताहुतिः संभाव्यते। जपवशादीषदित्याद्युक्तम्। ईषद्विवृतत्वादेव शिखरग्रहणम्। प्रतिबिम्बादानोपपादनार्थमासन्नपदम्। गुणास्तन्तवः, गुणनं गुणाः। पौनःपुन्येनावर्तनं च। उत्कर्षो वा गुणः। विद्याराजो मन्त्रविशेषः।

शातक्रतवीं पूर्वाम्। अङ्गीचकारेत्यनेन सर्वेषां स्वरुचिपरिगृहीतत्वमुक्तम्। कौबेरीमुत्तराम्। प्राचेतसीं पश्चिमाम्। त्रिशङ्कुरिक्ष्वाकुवंश्यः शापाच्चण्डालतां प्राप्तो यज्ञेन स्वर्गमारुरुक्षुरर्धपथे देवैर्निवारितो दक्षिणस्यां दिश्युदेति। तेन त्रैशङ्कवेन ज्योतिषाङ्कितां ककुभं दिशं दक्षिणाम्। दक्षिणस्यामित्युक्तेऽनिष्टप्रतीतिरिति त्रैशङ्कवेनेत्युक्तम्।

जन्म लेने के हेतु कालुष्य के समस्त परमाणुओं का विनाश कर रहे हों। आहुति डालते समय उनके हाथ के नखों की किरणें फैल जाती थीं मानों प्रेत के मुँह के स्पर्श से दूषित अग्नि को धोकर पवित्र कर रहे थे। धुँए के लगने से उनकी आँखें लाल हो रही थीं मानों अग्नि में रक्त की आहुति डाल रहे थे। वे जप कर रहे थे, उनका अधर कुछ खुला हुआ था, उनके दाँत मूर्तिमान् मन्त्र के अक्षरों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। उनके पास में रखे हुए दीये शरीर के छूटते हुए पसीनों में झलक रहे थे, मानों वे कर्मसिद्धि के लिए अपने अङ्ग जला रहे थे। उनके कन्धे से विद्याराज नामक मन्त्र के समान बहुत गुणों वाला ब्रह्मसूत्र लटक रहा था। राजा ने भैरवाचार्य के पास जाकर नमस्कार किया। फिर राजा अपने काम में लग गए।

इसी बीच पातालस्वामी पूर्व दिशा में बैठा, कर्णताल उत्तर में और टीटिभ पश्चिम में डट गया। राजा ने दक्षिण दिशा को अलंकृत किया जो त्रिशंकु के तेज से चिह्नित है।

एवं चावस्थितेषु दिक्पालेषु दिक्पालभुजपञ्जरप्रविष्टे विस्रब्धं कर्म साधयति भैरवं भैरवाचार्येऽतिचिरं च कृतकोलाहलेषु निष्फलप्रयत्नेषु प्रत्यूहकारिषु शान्तेषु कौणपेषु गलत्यर्धरात्रसमये मण्डलस्य नातिदवीयस्युत्तरेणाकस्मादेव प्रलयमहावराहदंष्ट्राविवरमिव दर्शयन्ती क्षितिरदीर्यत। सहसैव च तस्माद्विवरादाशावारणोत्क्षिप्त इवालान लोहस्तम्भः, महावराहपीवरस्कन्धपीठो नरकासुर इव भुवो गर्भोदुद्भूतो बलिदानव इव भित्त्वोत्थितः पातालम्, इन्द्रनीलप्रासाद इवोपरिज्ज्वलितरत्नप्रदीपः, स्निग्धनीलघननिबिडकुटिलकुन्तलकान्तमौलिरुन्मीलन्मालतीमुण्डमालः, गद्गदतया स्वरस्य स्वभावपाटलतया च चक्षुषः क्षीव इव यौवनमदेन वल्गद्गलदामकः, करसंपुटमृदितया मृदा दिङ्नागकुम्भाभावंसकूटौ पुनः पुनः परिपक्कयन् सान्द्रचन्दनकर्दमदत्तैरव्यवस्थास्थासकैरतिसितजलधरशकलशारित इव शारदाकाशैकदेशः, केतकीगर्भपत्रपाण्डुरस्य चण्डातकस्योपरि

विस्रब्धमिति। एतदर्थमेव राजादीनां परिग्रहः। प्रत्यूहो विघ्नः। कौणपेषु राक्षसेषु। सहसेत्यादौ। कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगामेति संबन्धः। लोहस्तम्भ इति। लोहशब्देन सारता कृष्णता चोक्ता। गर्भान्मध्यात्, उदराच्च। घना निबिडाः। निबिडकुटिला अतिकुञ्चिताः कुन्तलाः केशाः। मौलिश्चूडा, किरीटं च। उक्तं च—'चूडा किरीटं केशाश्च संहता मौलयस्त्रयः'। स्थासकैश्चन्द्रकैः फाली कक्ष्याबन्धः।

इस प्रकार दिक्पाल होकर तीनों अपने-अपने स्थान पर डट गए। तीनों की भुजाओं के पिंजड़े में घुस कर भैरवाचार्य ने अनाकुल मन से अनुष्ठान आरम्भ किया। विघ्न करने वाले राक्षसों ने बहुत देर तक शोरगुल मचाया। जब उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ तब शान्त हो गए। आधी रात हुई तब भैरवाचार्य के घेरे से थोड़ी दूर उत्तर की ओर एकाएक धरती महावराह के दाँतों द्वारा हुए विवर का स्मरण कराती हुई फटी। सहसा उस विवर से कुवलय के समान श्याम वर्ण वाला कोई पुरुष बाहर आया। मानों किसी दिग्गज ने अपने लोहे के विशाल खूँटे को उखाड़ फेंका हो, या महावराह का ही स्थूल कन्धा निकल आया हो, या नरकासुर पृथिवी के गर्भ से निकल पड़ा हो, अथवा दैत्यराज बलि पाताल फोड़कर पहुँचा हो। उसके मस्तक पर रत्न दीपक के रूप में टिमटिमा रहा था जैसे इन्द्रनील के बने हुए कोठे पर दीपक जलता है। सिर के बाल चिकने, नीले, घने और अधिक घुमावदार थे। उस पर मालती का सिरमाल शोभ रहा था। उसकी आँखें स्वाभाविक लाल थीं। यौवन के मद से वह मतवाला-सा प्रतीत हो रहा था। उसके गले की माला हिल रही थी। दिग्गज के कुम्भ के समान अपने कन्धों पर हाथ से मिट्टी मक-

क्षामतरीकृतकुक्षिः, कक्ष्याबन्धं विधाय विलासविक्षिप्तेन धवलव्यायाम-फालीपटान्तेन धरणितलगतेन धार्यमाण इव पृष्ठतः शेषेण स्थिरस्थूलोरुदण्डः, भूमिभङ्गभयेनेव मन्थराणि स्थापयन्पदानि निर्भरगर्वगुरु कथमपि शैलमिव गात्रमुद्वहन्दर्पेण मुहुर्मुहुरुरसि द्विगुणिते दोष्णि वामे तिर्यगुत्क्षिप्ते च दक्षिणे जङ्घाकाण्डे कुण्डलिते चण्डास्फोटनटांकारैः कर्मविघ्ननिर्घातानिव पातयन्नेकेन्द्रियविकलमिव जीवलोकं कुर्वन्कुवलयश्यामलः पुरुष उज्जगाम। जगाद च विहस्य नरसिंहनादनिर्घोषघोरया भारत्या—'भो विद्याधरीश्रद्धाकामुक! किमयं विद्यावलेपः सहायमदो वा यदस्मै जनायाविधाय बलिं बालिश इव सिद्धिमभिलषसि? का ते दुर्बुद्धिरियम्? एतावता कालेन क्षेत्राधिपतिरस्य मन्नाम्नैव लब्धव्यपदेशस्य देशस्य नागतस्ते श्रोत्रोपकण्ठं श्रीकण्ठनामा नागोऽहम्? अनिच्छति

शेषेणेति। शेषो धवलः, धरणितलगतश्च। पटान्तेनापि विशेषेणावतिष्ठते। आस्फोटनं बाह्वादिशब्दाः। एकेन्द्रियम्। अर्थाच्छ्रोत्रम्। निर्घोषो दिक्षु व्याप्तिः। अत्र विद्याधरीत्यादि क्षेपणार्थमामन्त्रणम्। श्रद्धाग्रहणं फलाभावप्रतिपादनाय। अस्मायित्यादि सर्वगर्भेयमुक्तिः। बालिशो मूर्खः। अभिलषसीति फलाभावसूचनपदम्। अपस-

---

मल कर आद्र कर रहा था। शरीर मे जहाँ तहाँ गाढ़ चन्दन के थापे इस प्रकार लग रहे थे जैसे शरद्काल में उजले-उजले मेघखण्डों से रंगीन आकाश का एक भाग हो जाता है। केतकी के पत्ते-जैसे उजले चंडातक के ओढ़ने से उसका उदर कुछ क्षीण सा प्रतीत हो रहा था। कच्छ बाँध कर धरती तक नीची सफेद लम्बी पटली लटक रही थी, मानों पृथिवी पर आकर शेषनाग ने अपनी पीठ पर उसे धारण कर लिया हो। उसकी दोनों जाँघें गँसी हुई और मोटी थीं। जमीन के धँस जाने की वजह से वह अपना पैर धीरे-धीरे रख रहा था। अधिक मात्रा में गर्व के बोझ से पर्वत के समान बोझिल शरीर किसी प्रकार धारण कर रहा था। दर्प से बाँया हाथ मोड़ कर छाती पर रखे हुए, दाहिना हाथ तिरछा फेंकते हुए दाहिनी जाँघ मोड़कर उस पर थपेड़ी मारते हुए वह मानों भैरवाचार्य के कर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिए आँधी की आवाज उत्पन्न कर रहा था। मानों वह उस आवाज से सारे संसार को कर्णेन्द्रिय से रहित बना रहा था। नरसिंह के समान गरगराहट भरी आवाज में वह बोल उठा—'अरे विद्याधरी के पीछे भागने वाले, क्या यह तुझे विद्या का गर्व है या अपने सहायकों के मद में फूल गया है जो मुझे बलि बिना दिए ही मूर्ख की भाँति सिद्धि प्राप्त कर लेना चाहता है? यह तेरी कौन-सी दुर्बुद्धि है? मैं श्रीकंठ नाग हूँ। मेरे ही नाम से यह देश भी प्रसिद्ध है। अभी तूने क्या नहीं सुना था?

मयि का शक्तिर्ग्रहगणस्यापि गन्तुं गगने। भूनाथोऽप्ययमनाथस्तपस्वी यस्त्वादृशैः शैवापसदैरुपकरणीक्रियते। सहस्वेदानीं सहामुना दुर्नरेन्द्रेण दुर्नयस्य फलम्' इत्यभिधाय च निष्ठुरैः प्रकोष्ठप्रहारैस्त्रीनपि टीटिभप्रभृतीनभिमुखं प्रधावितान्सशरीरावरणकृपाणानपातयत्।

अथ पूर्वाधिक्षेपश्रवणादशस्त्रव्रणैरप्यमर्षस्वेदच्छलेनानेकसमरपीतमसिधाराजलमिव वमद्भिरवयवैरपि रोमाञ्चनिभेन मुक्तशरशतशल्यनिकरभरलघुमिवात्मानं रणाय कुर्वद्भिरट्टहासेनापि प्रतिबिम्बिततारागणेन स्पष्टदृष्टधवलदन्तमालमवज्ञया हसतेव कथ्यमानसत्त्वावष्टम्भः परिकरबन्धविभ्रमभ्रमितकरनखकिरणचक्रवालेन व्यपगमनाशङ्कया नागदमनमन्त्रमण्डलबन्धेनेव रुन्धन्दशदिशो नरनाथः सावज्ञमवादीत्—'अरे काकोदर काक! मयि स्थिते राजहंसे न जिह्रेषि बलिं याचितुम्?

दोऽधमः। दुर्नरेन्द्रेण कुराज्ञा। दुर्नरेन्द्रो मन्त्रतन्त्रानभिज्ञः। सशरीरेत्यादि। न तु नरेन्द्रवदशस्त्रान्।

अथेत्यादौ। नरनाथः सावज्ञमवादीदिति संबन्धः। कथ्यमानेत्यादि। अशस्त्रव्रणैश्चावयवैश्चाट्टहासेन च। मण्डलं गारुडशास्त्रप्रसिद्धमैन्द्रादिकम्। काकोदरः सर्पः। काकेति निन्दायाम्। काकस्य च बलियाचनमुक्तम्। राजहंसो नृपवरः, हंसभेदश्च।

मेरी इच्छा के प्रतिकूल आकाश में तारों की भी जाने की हिम्मत नहीं होती। यह पुष्पभूति राजा होकर भी अनाथ की तरह बेचारा तेरे जैसे निम्न कोटि के शैवों के फन्दे में पड़ गया है। अब तू इस दुष्ट राजा के साथ-साथ अपनी दुर्नीति का फल चख।' यह कह कर प्रचंड मुक्कों की मार से सामने वार करते हुए टीटिभ आदि को शरीर के कंचुक और तलवार आदि के साथ गिरा दिया।

राजा ने कभी ऐसी डाँट नहीं सुनी थी। मानों उसके अङ्गों में शस्त्र के प्रहार के बिना ही जैसे घाव हो गए, और अनेक युद्धों में पिए हुए तलवार के धाराजल को छोड़ने लगा। वह रोमांच के रूप में अनेक बाण छोड़-छोड़ कर मानों हल्का होकर रण के लिए तैयार हो गया। तारों के प्रतिबिम्ब के समान दाँतों को स्पष्ट दिखाते हुए जोर से हँस पड़ा, इससे अधिक उत्साह का वेग प्रतीत हो रहा था। कछाड़ बाँधते हुए उसके नखों की किरणें चारों ओर घुम गईं, मानों शत्रु के भाग जाने की शङ्का से सर्पों का दमन करने वाले गरुड़ मन्त्र से दिशाओं को बाँध रहा था। उसने उसे ललकारा—'अरे दुष्ट कौवा! तू मेरे राजहंस के रहते बलि की याचना करने में लज्जित नहीं होता? इस तरह की कठोर बातों में कुछ नहीं। पराक्रम तो भुजाओं में रहता है न कि वचन में। शस्त्र उठा।

अमीभिः किं वा परुषभाषितैः ? भुजे वीर्यं निवसति, न[1] वाचि। प्रतिपद्यस्व शस्त्रम्। अयं न भवसि। अगृहीतहेतिष्वशिक्षितो मे भुजः प्रहर्तुम्' इति। नागस्त्वनादृततरम्—'एहि, किं शस्त्रेण ? भुजाभ्यामेव भनज्मि भवतो दर्पम्' इत्यभिधायास्फोटयामास। नरपतिरपि निरायुधमायुधेन युधि लज्जमानो जेतुमुत्सृज्य सचर्मफलकमट्टहासमसिमधोरुकस्योपरि बबन्ध बाहुयुद्धाय कक्ष्याम्। युयुधाते च निर्दयास्फोटनस्फुटितभुजरुधिरशीकरसिच्यमानौ शिलास्तम्भैरिव पतद्भिर्बाहुदण्डैः शब्दमयमिव कुर्वाणौ भुवनं तौ। न चिराच्च पातयामास भूतले भुजङ्गमं भूपतिः। जग्राह च केशेषु। उच्चखान च शिरश्छेत्तुमट्टहासम्। अपश्यच्च वैकक्षकमालान्तरेणास्य यज्ञोपवीतम्। उपसंहृतशस्त्रव्यापारश्चावादीत्—दुर्विनीत! अस्ति ते दुर्नयनिर्वाहबीजमिदम्। यतो विश्रब्धमेवाचरसि चापलानि' इत्युक्त्वोत्ससर्ज च तम्। अनन्तरं च सहसैवातिबहलां ज्योत्स्नां ददर्श। शरदि विकसतां कमलवनानामिव च घ्राणावलेपिनमामोदमजिघ्रत्। झटिति च नूपुरशब्दमशृणोत्। व्यापारयामास च शब्दानुसारेण दृष्टिम्।

हेतिरायुधम्। आस्फोटयामास बाहौ करघातमकार्षीत्। असिमिति प्रशंसार्थः सामान्यपदप्रयोग इति रुद्रटः। वैकक्षमालान्तरितत्वेन, पूर्वमदर्शनं यज्ञोपवीतस्याह।

अगर नहीं उठाता तो मेरी भुजा ने शस्त्रहीनों पर वार करना नहीं सीखा है।' नाग ने अनादर के साथ कहा—'अरे, आ तो जा, शस्त्र से क्या ? हाथों से ही तेरा घमण्ड चूर करता हूँ।' यह कहकर उसने ताल ठोंका। निरायुध के साथ आयुध लेकर लज्जा का अनुभव करते हुए राजा ने ढाल के साथ तलवार फेंक दी और जाँघिया तक कछा कड़ बाँध लिया। दोनों निर्दय होकर थाप से मारने लगे और एक दूसरे का खून बहाने लगे। इस प्रकार की आवाज से संसार भर रहा था। देर तक लड़कर भी वह उस नाग को नहीं गिरा सका। तब उसके बालों को पकड़ा। उसका सिर उड़ा देने के लिए तलवार खींच ली। तब उसकी वैकक्षक माला के भीतर जनेऊ पर राजा की दृष्टि पड़ी। शस्त्र के वार को रोककर उसने कहा—'दुर्विनीत, अनीति करके बच निकलने का बीज यह तेरे पास है। तभी तू इतना निर्भीक होकर चपलता कर रहा है।' यह कहकर उसे छोड़ दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यधिक प्रकाश को देखा। शरत्काल में कमल-वनों की जैसी नाक में भर जाने वाली गन्ध को सूँघा और तभी नूपुर की आवाज सुन पड़ी। शब्द की ओर उसने आँखें फैलाई।

१. न वाचि सताम्.

अथ करतलस्थितस्याट्टहासस्य मध्ये तडितमिव नीलजलधरोदरे स्फुरन्तीं प्रभया पिबन्तीमिव त्रियामाम्, तामरसहस्ताम्, कोमलाङ्गुलिरागराजिजालकानि च चरणलग्नानि वेलाबालविद्रुमलतावनानीवाकर्षन्तीम्, करपङ्कजसंकोचाशङ्कया शशाङ्कमण्डलमिव खण्डशः कृतं निर्मलचरणनखनिवहनिभेन बिभ्रतीम्, गुल्फावलम्बिनूपुरपुटतया स्थितनिबिडकटकावलिबन्धनादिव परिभ्रश्यागताम् बहुविधकुसुमशकुनिशतशोभितात्पवनचलिततनुतरङ्गादतिस्वच्छादंशुकादुदधिसलिलादिवोत्तरन्तीम्, उदधिजन्मप्रेम्णा त्रिवलिच्छलेन त्रिपथगयेव परिष्वक्तमध्याम्, अत्युन्नतस्तनमण्डलाम्, दृश्यमानदिङ्नागकुम्भामिव ककुभम्, मदलग्नैरावतकरशीकरनिकरमिव शरत्तारागणतारं हारमुरसा दधानाम्, धवलचामरैरिव च मन्दमन्दनिःश्वासदोलायितैर्हारकिरणैरुपवीज्यमानाम्, स्वभावलोहितेन मदान्धगन्धेभकुम्भास्फालनसंक्रान्तसिन्दूरेणेव करद्वयेन द्योतमानाम्, हरशिखण्डेन्दुद्वितीयखण्डेनेव कुण्डलीकृतेन ज्योत्स्नामुचा

अथेत्यादौ। अट्टहासस्य मध्ये स्फुरन्तीं स्त्रियमपश्यदिति सम्बन्धः। तामरसं पद्मम्। बहुविधेति। प्रकृते कुसुमानि शकुनयश्च सूत्रमयानि। तरङ्गा मुष्टिदानचता भङ्गयः, वीचयश्च। अतिस्वच्छत्वमंशुकस्योदधिसलिलेन। उत्तरन्तीमिति। अंशुका-

---

एक स्त्री को देखा जो हाथ में रखे हुए अट्टहास नामक तलवार के बीच में इस प्रकार चमक रही थी जैसे नीले मेघ के बीच में बिजली चमकती है। शरीर की कांति से रात को पीती जा रही थी। उसके हाथ कमल के समान थे। उसके चरणों की अँगुलियों में राग की जाली इस प्रकार लग रही थी मानो समुद्रतट के छोटे विद्रुम लताओं के वनों को खींचती चली आ रही हो। हाथरूपी कमल के मुकुलित हो जाने की शङ्का से मानों उसने चन्द्रमा के टुकड़े टुकड़े करके अपने चरण के निर्मल नखों के रूप में धारण कर लिया हो। ठिगनी तक लटके हुए नूपुर से ऐसा लगता था कि वह सैनिकों के बीच जेल के घेरे से भाग निकल आई हो। उसके वस्त्र पर अनेक प्रकार के फूल और पक्षी कढ़े हुए थे, वह हवा से फहर रहा था, और अति स्वच्छ था, मानों वह समुद्र से निकली हो। समुद्र से जन्म लेने के प्रेम के कारण मानों त्रिवलि के बहाने त्रिपथगा गङ्गा ने उसे अँकवार लिया था। उसके स्तन ऊँचे-ऊँचे थे, वह दिशा के समान प्रतीत हो रही थी, जिसके बीच दिग्गज के कुम्भस्थल दिखाई पड़ते थे। शरत्काल के तारों के समान झलकते हुए हार को वह अपने वक्ष पर धारण कर रही थी मानों मतवाले ऐरावत की सूँड़ के फुहारे उड़कर लग गए हों। सफेद चँवर के समान उसकी मन्द-मन्द साँस से हिलती हुई हार

दन्तपत्रेण विभ्राजमानाम्, कौस्तुभगभस्तिस्तबकेनेव च श्रवणलग्नेनाशोककिसलयेनालंकृताम्, महता मत्तमातङ्गमदमयेन तिलकेनादृश्यच्छत्रच्छायामण्डलेनेवाविरहितललाटाम्, आपादतलादासीमन्ताच्च चन्द्रातपधवलेन चन्दनेनादिराजयशसेव धवलीकृताम्, धरणितलचुम्बिनीभिः कण्ठकुसुममालाभिः सरिद्भिरिव सागराधिष्ठात्रीभिरधिष्ठिताम्, मृणालकोमलैरवयवैः कमलसंभवत्वमनक्षरमाचक्षाणां स्त्रियमपश्यत्। असंभ्रान्तश्च पप्रच्छ—'भद्रे! कासि, किमर्थं वा दर्शनपथमागतासि?' इति। सा तु स्त्रीजनविरुद्धेनावष्टम्भेनाभिभवन्तीवाभाषत तम्—'वीर! विद्धि मां नारायणोरःस्थलीलीलाविहारहरिणीम्, पृथुभरतभगीरथादिराजवंशपताकाम्, सुभटभुजजयस्तम्भविलासशालभञ्जिकाम्, रणरुधिरतरङ्गिणीतरङ्गक्रीडादोहददुर्ललितराजहंसीम्, सितनृपच्छत्रषण्डशि-

च्छादितयोदक्षन्त्या उत्तरणमिवांशुकाक्षन्दयत इति। वर्ण्याभिप्रायेण त्रिपथगेति नाम। मदे दाने लग्नः सक्तः। समद इत्यर्थः। श्रीर्हस्तिपृष्ठेन यातीति मदान्धेत्याद्युक्तम्। हस्तिवाहित्वाल्लक्ष्म्या एवमुक्तम्। धरणितलचुम्बिनीभिर्मालाभिः, सरिद्भिश्च। हरिणीमिति। हरिणी किल स्थाल्या लीलया विहरति। वंशोऽन्वयेऽथ वंशे वेणौ पताकोत्क्षिप्यते। सुभटेत्यादिविशेषणेन वीरानुरागित्वमस्या दर्शितम्। स्तम्भे च शालभञ्जिकोत्कीर्णपुत्रिका क्रियते। षण्डो वनम्, तत्र शिखण्डिनी मयूरी।

की किरणें उस पर डोल रही थीं। उसके हाथों में स्वाभाविक लालिमा थी लेकिन ऐसा लगता था कि वह मतवाले गजराज के मस्तक पर रहने वाले चन्द्र का दूसरा टुकड़ा हो। कान में अशोक का किसलय कौस्तुभमणि की किरणों के गुच्छे की भाँति लग रहा था। हाथी के मद का तिलक उसके ललाट पर तिरोहित छत्र की छाया के समान प्रतीत हो रहा था। पैर से ललाट तक चाँदनी के समान उज्ज्वल चन्दन से चर्चित होकर आदिराज मनु के यश के समान धवल हो रही थी। फूल की मालाएँ उसके कण्ठ से जमीन तक लटक रही थीं, मानों वह समुद्र पर्यन्त जाने वाली नदियों से युक्त हो। मृणाल के समान कोमल अपने अङ्गों से बिना शब्द के अपने को कमल से उत्पन्न बता रही थी। उसके विषय में स्थिर होकर राजा ने पूछा—'भद्रे, तुम कौन हो, क्यों सामने आई हो?' वह स्त्री-जाति के विरुद्ध गर्व से अभिभूत करती हुई सी बोली—'वीर, तू मुझे नारायण के वक्षःस्थल में हरिणी के रूप में लीलाविहार करने वाली लक्ष्मी समझ। मैं पृथु, भरत, भगीरथ, मनु आदि के वंशों की पताका हूँ। योद्धाओं की भुजाओं के जयस्तम्भ में विलसित होने वाली शालभञ्जिका (पत्थर की उत्कीर्ण मूर्ति) हूँ। युद्ध में बहती हुई रक्त की नदियों की तरङ्गों में क्रीडा का सुख अनुभव करने वाली मैं राजहंसी हूँ। राजाओं

खण्डिनीम्, अतिनिशितशस्त्रधारावनभ्रमणविभ्रमसिंहीम्, असिधाराजलकमलिनीं श्रियम्। अपहृतास्मि तवामुना शौर्यरसेन। याचस्व। ददामि ते वरमभिलषितम्' इति।

वीराणां त्वपुनरुक्ताः परोपकाराः। यतो राजा तां प्रणम्य स्वार्थविमुखो भैरवाचार्यस्य सिद्धिं ययाचे। लक्ष्मीस्तु देवी प्रीततरहृदया विस्तीर्यमाणेन चक्षुषा क्षीरोदेनेवोपरि पर्यस्तेनाभिषिञ्चन्ती भूपालम् 'एवमस्तु' इत्यब्रवीत्। अवादीच्च पुनः—'अनेन सत्त्वोत्कर्षेण भगवच्छिवभट्टारकभक्त्या चासाधारणया भवान्भुवि सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय इवाविच्छिन्नस्य प्रतिदिनमुपचीयमानवृद्धेः शुचिसुभगमान्यसत्यत्यागशौर्यशौण्डपुरुषप्रकाण्डप्रायस्य महतो राजवंशस्य कर्ता भविष्यति। यस्मिन्नुत्पत्स्यते सर्वद्वीपानां भोक्ता हरिश्चन्द्र इव हर्षनामा चक्रवर्ती त्रिभुवनविजिगीषुर्द्वितीयो मांधातेव यस्यायं करः स्वयमेव कमलमपहाय ग्रहीष्यति चामरम्' इति वचसोऽन्ते तिरोबभूव।

अपुनरुक्ता भूयो भूयः क्रियमाणापि चेत्यर्थः। परोपकारकरणपरत्वेन प्रीतत्वम्। अभिषिञ्चन्तीति। अभिषेको राज्ञ उचितः। शौण्डः प्रसक्तः। प्रकाण्डशब्दः प्रशंसावाची। द्वितीयः स्पर्धावान्।

के उज्ज्वल आतपत्रों में मढ़ी जाने वाली मैं मोरनी हूँ। शस्त्रों की तेज धारा के वनों में विहरण करने वाली सिंहिनी हूँ। तलवारों के धाराजल में खिलने वाली मैं कमलिनी हूँ। तेरे इस पराक्रम को देखकर खिंच आई हूँ। माँग, तुझे अभिलषित वर दूँगी।'

वीर परोपकार की प्रतिज्ञा करके कभी नहीं मुकरते। स्वार्थ से विमुख होकर राजा ने प्रणाम करके भैरवाचार्य की सिद्धि के लिए वर माँगा। लक्ष्मी प्रसन्न होकर एकटक उसे देखने लगी और मानों दूध से अभिषेक करती हुई राजा से बोली—'यही हो।' और फिर कहा—'राजन्, अपने बल के इस उत्कर्ष से और भगवान् शिव भट्टारक की असाधारण भक्ति से तेरा महान् राजवंश होगा जो सूर्य और चन्द्रमा के बाद तीसरा स्थान प्राप्त करेगा। अविच्छिन्न चलता हुआ प्रतिदिन बढ़ता ही जायगा और उस वंश में प्रायः पवित्र, सुभग, मान्य, सत्य, त्याग और वीरता में समर्थ पुरुष होंगे। उसी वंश में हरिश्चन्द्र के समान समस्त द्वीपों पर राज्य करने वाला चक्रवर्ती हर्ष उत्पन्न होगा जो दूसरे मान्धाता के समान त्रिभुवन को जीत लेने की इच्छा रखने वाला होगा। स्वयं मेरा यह हाथ कमल को छोड़कर उसका चँवर उठाएगा।' यह कहकर लक्ष्मी अन्तर्हित हो गई।

भूमिपालस्तु तदाकर्ण्य हृदयेनातिमात्रमप्रीयत । भैरवाचार्योऽपि तस्या देव्यास्तेन वचसा कर्मणा च सम्यगुपपादितेन सद्य एव कुन्तली किरीटी कुण्डली हारी केयूरी मेखली मुद्गरी खड्गी च भूत्वावाप विद्याधरत्वम् । प्रोवाच च—'राजन्! अदूरव्यापिनः फल्गुचेतसामलसानां मनोरथाः । सतां तु भुवि विस्तारवत्यः स्वभावेनैवोपकृतयः । स्वप्नेऽप्यसंभावितां दातुमिमां दक्षिणां क्षमः कोऽन्यो भवन्तमपहाय । संपत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति । त्वदीयैर्गुणैरुपकरणीकृतस्य त्वत्त एव च लब्धात्मलाभस्य निर्लज्जतेयमस्य मूढहृदयस्य । तदिच्छामि येन केनचित्कार्यलवोपपादनोपयोगेन स्मरयितुमात्मानम्' इति । प्रत्युपकारदुष्प्रवेशास्तु भवन्ति धीराणां हृदयावष्टम्भाः । यतस्तं राजा 'भवत्सिद्ध्यैव परिसमाप्तकृत्योऽस्मि । साधयतु मान्यो यथासमीहितं स्थानम्' इति प्रत्याचचक्षे ।

तथोक्तश्च भूभुजा जिगमिषुः सुदृढं समालिङ्ग्य टीटिभादीन् कुवलयवनेनेवावश्यायशीकरस्राविणा सास्रेण चक्षुषा वीक्षमाणः क्षितिपतिं

कुण्डलं कर्णवेष्टनम् । हारो मुक्ताहारः । केयूरमङ्गदं दोर्भूषा । फल्ग्वसारम् । प्रत्याचचक्षे पर्यहार्षीत् ।

यह सुनकर राजा हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुआ । लक्ष्मी के उस वचन से और अपने भली भाँति किए कर्म से भैरवाचार्य भी शीघ्र सुन्दर बाल, मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, करधनी, मुद्गर, दण्ड और खड्ग धारण करके विद्याधर-योनि को प्राप्त हुआ । भैरवाचार्य ने राजा से कहा—'राजन्, सारहीन चित्त वाले मन्द लोगों के मनोरथ दूर तक नहीं होते, लेकिन सज्जनों के उपकार पृथिवी में फैले हुए होते हैं । जिसकी सम्भावना स्वप्न में भी नहीं की जा सकती ऐसी दक्षिणा आपके अतिरिक्त कौन दे सकता था ? सम्पत्ति के कण को पाकर तराजू के समान छोटी प्रकृति वाले लोग ऊपर उठ जाते हैं । आपके ही गुणों को उपकरण बनाकर आपसे ही जो मैं लाभवान् बना उससे ही मूढहृदय होकर निर्लज्ज बन गया हूँ । इसलिए अपने आपको स्मरण रखने के लिए थोड़ा भी कार्य करना चाहता हूँ ।' धीर पुरुषों के हृदय की गम्भीरता में प्रत्युपकार का प्रवेश करना कठिन होता है । जैसा कि राजा ने उत्तर दिया—'आपकी सिद्धि हो जाने में ही मैं कृतकृत्य हो गया । अब आप अपने अभिलषित स्थान में जाँय ।'

इस प्रकार राजा के कहने पर भैरवाचार्य जाने के लिए तैयार हो गया । टीटिभ आदि का आलिङ्गन करके ओस टपकाते हुए कुवलयवन के समान आँसू से भरी आँखों

पुनरुवाच—'तात ! ब्रवीमि यामीति न स्नेहसदृशम्। त्वदीयाः प्राणा इति पुनरुक्तम्। गृह्यतामिदं शरीरकमिति व्यतिरेकेणार्थकरणम्। तिलशः क्रीता वयमिति नोपकारानुरूपम्। बान्धवोऽसीति दूरीकरणमिव। त्वयि स्थितं हृदयमित्यप्रत्यक्षम्। त्वद्विरहानुकारिणी कारणेयं न सिद्धिरित्यश्रद्धेयम्। निष्कारणस्तवोपकार इत्यनुवादः। स्मर्तव्या वयमित्याज्ञा। सर्वथा कृतघ्नालापेष्वसज्जनकथासु च चेतसि कर्तव्योऽयं स्वार्थनिष्ठुरो जनः' इत्यभिधाय वेगच्छिन्नहारोच्छलितमुक्ताफलनिकरताडिततारागणं गगनतलमुत्पपात। ययौ च सीमन्तितग्रहग्रामः सिद्धयुचितं धाम। श्रीकण्ठोऽपि—'राजन्! पराक्रमक्रीतः कर्तव्येषु नियोगेनानुग्राह्यो ग्राहितविनयोऽयं जनः' इत्यभिधाय राजानुमोदितस्तदेव भूयो भूविवरं विवेश।

यामीत्यादिवक्रोक्त्या चेतः स्थितं सर्वं व्याहरति—न स्नेहसदृशमिति। स्नेहानुरूपनिषेधेन स्नेह इव सुतरामाविष्कृत एव। उक्तं हि—'प्रतिषेध इवेष्टस्य यद्विशेषाभिधित्सया। आक्षेप इति तं सन्तः शंसन्ति कवयः सदा॥' इति। एवं त्वदीयाः प्राणा इत्यादौ। व्यतिरेकः पृथग्भागः। आवां किलैक एवार्थः। तिलश इति। यावान्किलायमुपकारो बहुगुणस्तावन्तो नावयवास्तिलशो विभागेनास्माकम्। कारणा यातना। सीमन्तितो द्विधाकृतः। ग्रामः समूहः।

से देखता हुआ राजा से फिर बोला—'तात, अगर कहूं कि जाता हूं तो यह स्नेह के सदृश बात नहीं है। 'ये प्राण तुम्हारे हैं' इसमें पुनरुक्ति है। 'इस तुच्छ शरीर को स्वीकार करो' यह तो भिन्नता की बात हो जाती है। 'हमें तुमने तिल-तिल खरीद लिया' यह बात उपकार के अनुरूप नहीं, 'तुम हमारे बान्धव हो' यह तो और भी दूर कर देता है। 'यह हृदय तुम्हीं में है' इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं। 'तुम्हारा विरह कर देने वाली हमारी यह सिद्धि यातना ही हो गई' यह बात श्रद्धा के योग्य नहीं। 'तुमने बिना किसी कारण के मेरा उपकार किया' यह तो वही बात हुई। 'हमें याद रखना' यह आज्ञा हो जाती है। जब कृतघ्नों की चर्चा होगी और असज्जनों की कथा का प्रसङ्ग उपस्थित होगा तब स्वार्थ से निष्ठुर इस जन को अवश्य ध्यान में लाना।' यह कहकर भैरवाचार्य जोर से आकाश की ओर उड़ा। उसके हार के मोती टूटकर तारों में आघात करने लगे। तारों के समूह को दो भागों में बाँटता हुआ वह अपनी सिद्धि के उचित स्थान में चला गया। श्रीकण्ठ नाग ने कहा—'राजन्, पराक्रम से वश में करके नम्र किए गए इस जन को समय समय पर कार्यों में नियुक्त करके अनुगृहीत करेंगे।' यह कहकर और राजा का अनुमोदन प्राप्त करके उसने उसी विवर में प्रवेश किया।

नरपतिस्तु क्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां, प्रवातुमारब्धे प्रबुध्यमानकमलिनीनिःश्वाससुरभौ, वनदेवताकुचांशुकापहरणपरिहासस्वेदिनीव सावश्यायशीकरे परिमलाकृष्टमधुकृति कुमुदनिद्रावाहिनि निशापरिणतिजडे तुषारलेशिनि वनानिले, विरहविधुरचक्रवाकचक्रनिःश्वसितसंतापितायामिवापरजलनिधिमवतरन्त्यां त्रियामायां, साक्षादागतलक्ष्मीविलोकनकुतूहलिनीष्विव समुन्मीलन्तीषु नलिनीषु, उन्निद्रपक्षिणि क्षरति कुसुमविसरमिव तुहिनकणनिकरं मृदुपवनलासितलते कानने, कमललक्ष्मीप्रबोधमङ्गलशङ्खेष्विव रसत्स्वन्तर्बद्धध्वनन्मधुकरेषु मुकुलायमानेषु कुमुदेषु, उज्जिहानरविरथवाजिविसृष्टैः प्रोथपटुपवनैः प्रोत्सार्यमाणास्विव वारुण्यां ककुभि पुञ्जीभवन्तीषु श्यामालताकलिकासु तारकासु, मन्दरशिखराश्रयिणि मन्दानिललुलितकल्पलतावनकुसुमधूलिविच्छुरित इव धूसरीभवति सप्तर्षिमण्डले, सुरवारणाङ्कुश इव च्युते गलति तारामये मृगे त्रीनपि टीटिभादीन्गृहीत्वा नागयुद्धव्यतिकरमलीमसानि शुचिनि वनवापीपयसि

वनेस्यादौ। अस्मिन्नस्मिन्सति नरपतिर्नगरं विवेशेति सम्बन्धः। क्षीणभूयिष्ठायां बहुतरं क्षीणायाम्। तुषारस्य शीतस्य लेशाः सन्ति तत्र तस्मिन्नीषच्छीतले। संतापितायामिवेति। संतापितश्च शीतलं स्थानमवतरन्ति। कुसुमविसरमिवेति समोपमा। लासिता नर्तिताः। उज्जिहान उद्गच्छन्। श्यामा रात्रिः, सैव लता व्रततिः।

अब तक रात बहुत ढल चुकी थी। जागती हुई कमलिनी के निश्वास की सुगन्ध से भरी हुई, वनदेवता के स्तन के वस्त्र को उड़ा लेने के परिहास में तर बतर हुई सी और तुषार के फुहारों से युक्त, सुगन्ध से भौंरों को खींचती हुई और कुमुदों को सुलाती हुई, रात्रि के अवसान में ठण्ढी वन की हवा बहने लगी। विरह से पीड़ित चक्रवाकों के निःश्वास से सन्ताप का अनुभव करती हुई रात पश्चिम समुद्र में उतरने लगी। मानों साक्षात् आई हुई लक्ष्मी को देखने के कुतूहल से कमलिनियाँ आँखें खोलने लगीं। जंगल के पक्षी जग पड़े। फूल के रूप में ओस पड़ रही थी। हल्की हवा से लताएँ नृत्य करने लगीं। कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी के जागरण के लिए मंगल शंख के समान भीतर में बँधे हुए भौंरे गुंजार रहे थे। कुमुद बन्द होने लगे। श्यामा लता की कली के समान तारे ऊपर आते हुए सूर्य के रथ के घोड़ों की थुथुन की तेज हवा से उड़ाये गए की तरह पश्चिम दिशा में पुञ्जीभूत होने लगे। मन्दराचल के शिखर पर पहुँचा हुआ सप्तर्षिमण्डल मन्द हवा से काँपती हुई कल्पलता के फूलों की धूल से धूसरित होने लगा। ऐरावत के अङ्कुश के समान मृगशिरा नक्षत्र नीचे चला गया। तब राजा ने

प्रक्षाल्याङ्गानि नगरं विवेश । अन्यस्मिन्नहनि तेषामात्मशरीरानन्तरं स्नानभोजनाच्छादनादिना प्रीतिमकरोत् ।

कतिपयदिवसापगमे च परिव्राड् भूभुजा वार्यमाणोऽपि वनं ययौ। पातालस्वामिकर्णतालौ तु शौर्यानुरक्तौ तमेव सिषेवाते। संपादितमनोरथातिरिक्तविभवौ च सुभटमण्डलमध्ये निष्कृष्टमण्डलाग्रौ समरमुखेषु प्रथममुपयुज्यमानौ कथान्तरेषु चान्तरान्तरा समादिष्टौ विचित्राणि भैरवाचार्यचरितानि शैशववृत्तान्तांश्च कथयन्तौ तेनैव सार्धं जरामाजग्मतुरिति ।

इति महाकविश्रीबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम तृतीय उच्छ्वासः ।



प्रियङ्कुलतिका मकरिका। तारामयो मृगशीर्षस्थितारोऽङ्कुशाकारः। आत्मशरीरानन्तरं स्नानेति। आत्मशरीरमनन्तरं यस्य तादृशेन स्नानभोजनाच्छादिना। तेषु कृत्वा पश्चादात्मनः करोतीत्यर्थः।

शौर्यानुरक्ताविति न भोगलोलुभौ। अतिरिक्तोऽधिकः। मण्डलाग्रः खड्गः। अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये। कथयन्ताविति स्थिरप्रीतिसिद्धये॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते तृतीय उच्छ्वासः।



टीटिभ आदि तीनों को साथ लेकर नाग से युद्ध करने के कारण मलिन अङ्गों को वन की बावली के पवित्र जल में साफ कर नगर में प्रवेश किया। दूसरे दिन अपने से पहले उन्हें स्नान, भोजन और वस्त्र आदि से प्रसन्न किया।

कुछ दिनों के बाद राजा के रोकने पर भी परिव्राजक टीटिभ वन में चला गया। उसकी वीरता में अनुराग करने वाले पातालस्वामी और कर्णताल दोनों राजा के पास ही रह गए। राजा ने उन दोनों के लिए इच्छा से ज्यादा धन दिया। सुभट मण्डल के बीच में उत्कृष्ट खड्ग धारण करने वाले और सेना के प्रधान नियुक्त हो गए। बातचीत के अवसर पर बीच बीच में राजा के पूछने पर भैरवाचार्य के विचित्र कार्य और बाल्यकाल के वृत्तान्त कहते रहते थे। क्रम से राजा के साथ वे दोनों भी बूढ़े हो गए।

हर्षचरित तृतीय उच्छ्वास समाप्त।



चतुर्थ उच्छ्वासः

योगं स्वप्नेऽपि नेच्छन्ति कुर्वते न करग्रहम्।
महान्तो नाममात्रेण भवन्ति पतयो भुवः॥ १॥
सकलमहीभृत्कम्पकृदुत्पद्यत एक एव नृपवंशे।
विपुलेऽपि पृथुप्रतिमो दन्त इव गणाधिपस्य मुखे॥ २॥

अथ तस्मात्पुष्यभूतेर्द्विजवरस्वेच्छागृहीतकोषो नाभिपद्म इव पुण्डरीकेक्षणात्, लक्ष्मीपुरःसरो रत्नसंचय इव रत्नाकरात्, गुरुबुधकविक-

---

योगमित्यादिना प्रसिद्धात्प्रत्युद्गतवैलक्षण्यमुच्यते। भूपतीनां योगो युक्तिः। गूढप्रत्याहाररसादनादिच्छद्मेत्यर्थः, संबन्धश्च। करग्रहो दण्डग्रहणम्, विवाहश्च। नाममात्रेणेति। नामैव तेषां श्रुत्वा भुवनं कम्पत इत्यर्थः। अर्थशून्येन सकलेनेत्यादिना भाविनी हर्षोत्पत्तिः सूचिता॥ १॥

महीभृद्भिरपि कम्पो वेपथुः, चलनं च। पृथुरादिराजः विस्तीर्णश्च। प्रतिमा सादृश्यम्, दन्तकोशश्च। दन्त इवेति। दन्तोऽप्येको गणाधिपस्य मुखे, समूहाधिपत्यप्रदाने च॥ २॥

अथेत्यादौ। राजवंशो निर्जगामेति संबन्धः। द्विजवरा विप्रोत्तमाः। ब्रह्मा च द्विजोत्तमः। कोशो गर्भः, कर्णिका च। पुण्डरीकेक्षणः कमललोचनः, विष्णुश्च। लक्ष्मीः पुरःसरा यस्य लक्ष्मीपुरःसरः। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते'। मणयश्च रत्नानि। गुरव उपदेष्टारः। बुधाः पण्डिताः। कवयः काव्यकृतः। कला-

---

महान् लोग स्वप्न में भी योग अर्थात् शत्रु से छल-कपट की युक्ति नहीं सोचते और कर अर्थात् दण्ड भी नहीं देते। इस प्रकार वे नाममात्र ही पृथ्वी के पति हो जाते हैं। (पति होकर स्वप्न में भी योग अर्थात् मिलन नहीं चाहते और करग्रहण अर्थात् विवाह नहीं करते। इस प्रकार केवल नाम से पति बन जाते हैं)॥ १॥

बहुत बड़े राजवंश में पृथु सदृश एक ही कोई उत्पन्न हो जाता है जो समस्त राजाओं को भय से कम्पित कर देता है। जैसे गणेशजी का एक ही विशाल दाँत सारे पर्वतों को उखाड़ फेंकता है॥ २॥

जैसे विष्णु से ब्रह्मा जी द्वारा स्वेच्छा से अधिष्ठित मध्य भाग वाला नाभि-कमल (ब्राह्मणश्रेष्ठों द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण की गई धन-सम्पत्ति वाला राजवंश) निकला। जैसे समुद्र से लक्ष्मी को आगे करके रत्नसमूह (लक्ष्मी से युक्त राजवंश) निकला। जैसे उदयाचल से गुरु (बृहस्पति), बुध, कवि (शुक्र), कलाभृत (चन्द्र

लाभृत्तेजस्विभूनन्दनप्रायो ग्रहगण इवोदयस्थानात् महाभारवाहनयोग्यः सागर इव सगरप्रभावात्, दुर्जयबलसनाथो हरिवंश इव शूराभिर्जगाम राजवंशः। यस्मादविनष्टधर्मधवलाः प्रजासर्गा इव कृतमुखात्, प्रतापाक्रान्तभुवनाः किरणा इव तेजोनिधेः, विग्रहव्याप्तदिङ्मुखा गिरय इव भूभृत्प्रवरात्, धरणिधारणक्षमा दिग्गजा इव ब्रह्मकरात्, उदधीन्पातुमुद्यता जलधरा इव घनागमात्, इच्छाफलदायिनः कल्पतरव इव नन्दनात्, सर्वभूताश्रया विश्वरूपप्रकारा इव श्रीधरादजायन्त राजानः।

वन्तो गीतादिज्ञाः। तेजस्विनः शूराः। भूनन्दना राजानः; इतरत्र,–गुरुर्बृहस्पतिः। उदयः प्रभावोऽपि। महाभारो भूपालनरूपो विजयरूपो वा तस्य निर्वहणे योग्यः। सगरवत्प्रभावो यस्य तस्माद्राज्ञः, सगराणां च यः प्रभावस्तस्मात्। 'प्रभवात्' इति पाठे सगरवत्प्रकृष्टो भव उत्पत्तिर्यस्य तस्मात्; अन्यत्र,–सगरस्य यः प्रभवस्तस्मादिति व्याख्या। दुर्जयो दुरभिभवः। बलं प्राणाः सैन्यं वा तेन युक्तः। ततः कर्मधारयः; अन्यत्र,–दुर्जयोऽजितो विष्णुः, बलो हलधरः, ताभ्यां सनाथा। शूराद्विक्रान्तात्, शूरश्च यदूनां राजा तस्मात्। अविनष्टेन पूर्णेन। धवलाः शुक्लाः। अविनष्टधर्मान्धवांश्चान्तीति वा। कृतमुखात्संस्कृतात्, कृतयुगादेश्च। प्रताप आतपः, रिपुभयजननी वार्ता च। विग्रहो विरोधः, देहश्च। भूभृतां राज्ञाम्, भूधराणां च। धारणं पालनम्, उद्वहनं च। ब्रह्म करोतीति ब्रह्मकरस्तस्मात्। सामानि गायतो ब्रह्मणः करात्करिण उत्पन्ना इति वार्ता। पातुं रक्षितुम्, ग्रासीकर्तुं च। घन आगम उपदेशो यस्य, घनागमश्च वर्षाकालः। नन्दयतीति नन्दनः, देवोद्यानं च। सर्वेषां भूतानां प्राणिनामाश्रया आश्रयणीयाः, सर्वस्य वा भूतस्याश्रयाः, सर्वेषां वा भूताः पारमार्थिका अत एवाश्रयणीयाः। श्रीधरो हरिरपि।

तेजस्वी (सूर्य), भूनन्दन (मंगल) आदि ग्रहों का समुदाय निकला (उपदेश देने वाले गुरु, विद्वान्, कवि, कलावन्त, शूर और पृथिवी को आनन्दित करने वाले राजाओं आदि से युक्त राजवंश) निकला। जैसे राजा सगर के प्रभाव से भारवान् वस्तुओं का वहन करने वाला सागर (पृथिवी के पालनरूप महान् भार का वहन करने वाला राजवंश) निकला। जैसे शूर नामक यदुराज से दुर्जय अर्थात् विष्णु और बल अर्थात् बलराम से युक्त हरिवंश (अजेय सैन्य-बल वाला राजवंश) निकला। वैसे ही पुष्पभूति से एक राजवंश[1] चला। विनष्ट न होने वाले धर्म द्वारा उज्ज्वल प्रजा के निर्माण जैसे सतयुग से हुए, अपने प्रताप से सारे संसार को आक्रान्त करने वाली किरणें जैसे सूर्य से हुईं, अपने विस्तार में सारी दिशाओं में फैलने वाले पर्वत जैसे प्रधान पर्वत से हुए, पृथिवी के धारण

---

१. राजवंश के पक्ष में घटित होनेवाले श्लिष्ट शब्दों के अर्थ कोष्ठक में दिए गए हैं।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु क्रमेणोदपादि हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गूर्जरप्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रतापशील इति प्रथितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः। यो राज्याङ्गसङ्गीन्यभिषिच्यमान एव मलानीव मुमोच धनानि। यः परकीयेनापि कातरवल्लभेन रणमुखे तृणेनेव धृतेनालज्जत जीवितेन। यः करधृतधौतासिप्रतिबिम्बितेनात्मनाप्यदूयत समितिषु सहायेन रिपूणां पुरः प्रधनेषु धनुषापि नमता यो मानी मानसेनाखिद्यत। यश्चान्तर्गतापरिमितरिपुशस्त्रशल्यशङ्कुकीलितामिव निश्चलामुवाह

हूणादयो जनपदभेदाः। प्रजागरो निद्राक्षयः। 'स्वेदं मूत्रं पुरीषं च मज्जा चैवं मतङ्गजाः। यस्याघ्राय विमाद्यन्ति तं विद्याद्गन्धहस्तिनम्॥' कूटपाकलो हस्तिज्वरः। यतो हूणाद्युन्मूलकोऽत एव प्रथितापरनामा राजा। राज्याङ्गान्यमात्याद्याः। अभिषिच्यमानो राज्ये प्रतिष्ठाप्यमानो यस्याभितः सिच्यते सोऽङ्गसङ्गीनि मलानि मुञ्चति। कातरेति। तृणं कातरैर्मुखे ध्रियते। तृणेनेति सहोपमा मुखे तृणधारणमनौचित्यमेव पोषयति। धौतपदेन बिम्बस्वीकारसामर्थ्यमुक्तम्। समिदिन्धनं संग्रामश्च। निश्चलामनपायिनीम्। समीकृतास्तटावटा यैर्विटपाटवीयुक्तैस्तरुभिस्तथा

करने में समर्थ दिग्गज जैसे ब्रह्माजी के हाथ से उत्पन्न हुए, समुद्रपान करने के लिये तत्पर मेघ जैसे वर्षाकाल से उत्पन्न हुए, इच्छानुसार फल देने वाले कल्पवृक्ष जैसे नंदनवन से उत्पन्न हुए, समस्त भूतों पर आश्रित रहने वाले संसार के दृश्यमान रूप जैसे विष्णु से उत्पन्न हुए उसी प्रकार उस राजवंश से अनेक राजा उत्पन्न हुए।

इन राजाओं के उत्पन्न होने के क्रम में प्रभाकरवर्धन नाम का राजाधिराज हुआ। उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। वह हूणरूपी हिरन के लिए सिंह, सिन्धुदेश के राजा के लिए ज्वर, गुर्जर को चैन से न सोने देने वाला उन्निद्र रोग, गान्धारराज रूपी मस्त हाथी के लिए जलता हुआ बुखार, लाट देश की चालाकी का अन्त करने वाला, मालव देश की लक्ष्मीरूपी लता को काट डालने वाला कुठार था। उसने अभिषेक के अवसर में ही राज्य के अङ्गों में लगे हुए मल के समान धन-सम्पत्तियों को धो डाला। दुर्बलों के प्रिय अपने जीवन को निरन्तर परोपकार में लगे रहने पर भी रण-मुख में तृण की भाँति धारण किए समझ कर वह अपने आप में लज्जित होता था। युद्धों में वह अपने हाथ की तलवार में प्रतिबिम्बित अपने आपको भी अपना सहायक समझ कर मानसिक सन्ताप का अनुभव करता था। मानी वह युद्धों में नत होते हुए अपने धनुष को देखकर मन से खिन्न होता था। उसने शत्रुओं द्वारा बाणों की कील ठोंककर निश्चल बनाई गई

राजलक्ष्मीम् । यश्च सर्वासु दिक्षु समीकृततटावटविटपाटवीतरुतृणगुल्मवल्मीकगिरिगहनैर्दण्डयात्रापथैः पृथुभिर्भृत्योपयोगाय व्यभजतेव वसुधां बहुधा । यं चालब्धयुद्धदोहदमात्मीयोऽपि सकलरिपुसमुत्सारकः परकीय इव तताप प्रतापः । यस्य च वह्निमयो हृदयेषु, जलमयो लोचनपुटेषु, मारुतमयो निःश्वसितेषु, क्षमामयोऽङ्गेषु आकाशमयः शून्यतायां पञ्चमहाभूतमयो मूर्त इवादृश्यत निहतप्रतिसामन्तान्तःपुरेषु प्रतापः । यस्य चासन्नेषु भृत्यरत्नेषु प्रतिबिम्बितेव तुल्यरूपा समलक्ष्यत लक्ष्मीः । तथा च यस्त प्रतापाग्निना भूतिः, शौर्योष्मणा सिद्धिः, असिधाराजलेन वंशवृद्धिः, शस्त्रव्रणमुखैः पुरुषकारोक्तिः, धनुर्गुणकिणेन करगृहीतिरभवत् । यश्च वैरमुपायनं विग्रहमनुग्रहं समरागमं महोत्सवं शत्रुं निधिदर्शनमरि-

---

तृणादिभिश्च गहनैः । विटपाः शाखाः । अटवी समूहः । गुल्मा जालकानि । वल्मीकः पिपीलककृतो मृत्कूटः । दण्डश्चतुरङ्गबलम् । तस्य यात्रापथैर्गमनमार्गैः । सीमास्थानीयैर्व्यभजत खण्डशो व्यलभत । भूशय्यादिवशेन पांसुमृतत्वात्काठिन्याच्च क्षमामयः शून्यतायां निश्चेष्टत्वे । आमत्रं ध्विति । आसन्नानि प्रतिबिम्बं गृह्णन्ति, भूतिः सम्पत्, भस्म च । ऊष्मा चान्नदाहिका शक्तिः । सिद्धिः पाकोऽपि । वंशो वेणुरपि । व्रणानां मुखान्यग्राणि । गुणान्येव वा मुखान्याननानि । मुखैः किलोक्तिर्भवति । करगृहीतिर्दण्डग्रहणम् । किणश्च व्यायामहस्त एव भवति । अज्ञातः शत्रुष्वभिगमोऽ-

---

राजलक्ष्मी को धारण किया । उसने सब दिशाओं में नदियों के किनारे, गड्ढे, वन, वृक्ष, तृण, झाड़ी, वल्मीक, पहाड़ आदि को समतल बनाकर भृत्यों के आने-जाने के लिए दूर तक विस्तृत सैन्यमार्ग बनवाकर पृथिवी को मानों कई भागों में विभक्त कर दिया । शत्रु को नष्ट करने वाला उसका अपना प्रताप भी युद्ध की इच्छा के न पूर्ण होने पर उसे ही परकीय के समान होकर जलाता था । हृदयों में अग्नि होकर जलन पैदा करता हुआ, आँखों में आँसू का जल बना हुआ, साँसों में हवा का रूप धारण किए, अङ्गों में धूल भरने के कारण पृथिवी के रूप में परिणत और शून्यता अर्थात् विरह या मूर्च्छा की अवस्था में आकाश बना हुआ, मारे गये शत्रु राजाओं के अन्तःपुरों में उसका प्रताप पाँच महाभूतों के रूप में दिखाई पड़ा । उसकी लक्ष्मी समीप में स्थित भृत्यरूपी रत्नों में समान रूप से प्रतिबिम्बित हुई सी लगती थी । उसके प्रताप की अग्नि से ऐश्वर्य हुआ, शौर्य की गरमी से सिद्धि हुई, तलवार के धाराजल से वंश की वृद्धि हुई, शस्त्रों के घाव से पौरुष समझा गया, धनुष के गुण की रगड़ के घट्टे से कर की वसूली हुई । वह शत्रु द्वारा किए गए विरोध को उपहार के रूप में स्वीकार करता, उसके साथ युद्ध को उसका ही अनुग्रह मानता, संग्राम में उपस्थित होने को महोत्सव समझता, शत्रु को देखकर उसे

बाहुल्यमभ्युदयमाहवाह्वानं वरप्रदानमवस्कन्दपातं दिष्टवृद्धिं शस्त्रप्रहारपतनं वसुधारारसममन्यत। यस्मिंश्च राजनि निरन्तरैर्यूपनिकरैरङ्कुरितमिव कृतयुगेन, दिङ्मुखविसर्पिभिरध्वरधूमैः पलायितमिव कलिना, ससुधैः सुरालयैरवतीर्णमिव स्वर्गेण, सुरालयशिखरोद्धूयमानैर्धवलध्वजैः पल्लवितमिव धर्मेण, बहिरुपरचितविकटसभासत्रप्रपाप्राग्वंशमण्डपैः प्रसूतमिव ग्रामैः, काञ्चनमयसत्रोपकरणैर्विभवैर्विशीर्णमिव मेरुणा, द्विजदीयमानैरर्थकलशैः फलितमिव भाग्यसंपदा।

तस्य च जन्मान्तरेऽपि सती पार्वतीव शंकरस्य, गृहीतपरहृदया

वस्कन्दः। दिष्टवृद्धिरानन्दवर्धनम्। धूमेनोत्प्रेक्षा कार्ष्ण्यात्। सुधा मक्कोलम्, अमृतं च। सभासदः। उक्तं च–'समज्या परिषद्गोष्ठीसभासमितिसंसदः। आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः॥' सत्रं सदादानम्। 'सत्रमाच्छादने यज्ञे सदादाने वनेऽपि च' इत्युक्तम्। प्रपा यत्र तोयदानम्। प्राग्वंशः पत्नीशाला। उक्तं च 'प्राग्वंशः प्राग्घविर्गेहात्' इति। बहिरुपपादिता विकटाः सभासत्रप्रपाप्राग्वंशरूपा यैस्तैः।

तस्येत्यादौ। तस्य च महादेवी यशोमती नामाभूत्सा यस्य वक्षसि ललासेति सम्बन्धः। सती साध्वी, शोभना वा। जन्मान्तरे श्यामायाः संज्ञैषा। शंकरस्येत्या-

---

खजाने देख लेने की प्रसन्नता होती, शत्रु के बाहुल्य को अपना अभ्युदय मानता, युद्ध के लिए गुहार को आशीर्वाद समझता, आकस्मिक आक्रमण को अपनी भाग्यवृद्धि मानता और शस्त्र के प्रहार से शत्रु के गिरने पर धन की वर्षा का आनन्द अनुभव करता। उस राजा के शासनकाल में निरन्तर यज्ञों में यूप (यज्ञ की विशेष लकड़ी) के गाड़े जाने पर मानों सतयुग अंकुरित हो गया था। दिशाओं में फैलते हुए यज्ञधूम से ऊबकर मानों कलि भाग पड़ा था। चूने से पुते हुए मन्दिरों से मानों स्वर्ग उतर आया था। देवमन्दिरों के शिखरों पर फहराती हुई उज्ज्वल पताकाओं से मानों धर्म पल्लवित हो गया था। नगर के बाहर बड़े-बड़े सभाभवन, दानगृह, पानशाला, होमगृह और मण्डप आदि से मानों गाँव के गाँव बस गए थे। सोने की बनी हुई सामग्री के भरे रहने से ऐसा लगता कि मेरु ही वहां ला दिया गया हो। ब्राह्मणों के लिये दान में समर्पित होने वाले धन से भरे कलशों से मानों सौभाग्य की सम्पत्ति फली-फूली नजर आती थी।

यशोवती नाम की उस राजा की पटरानी थी। जन्मान्तर में मिली हुई पतिव्रता धर्मपत्नी वह भगवान् शंकर की पत्नी पार्वती के समान, विष्णु की दूसरों के हृदय में

लक्ष्मीरिव लोकगुरोः, स्फुरत्तरलतारका रोहिणीव कलावतः, सर्वजन-जननी बुद्धिरिव प्रजापतेः, महाभूभृत्कुलोद्गता गङ्गेव वाहिनीनायकस्य, मानसानुवर्तनचतुरा हंसीव राजहंसस्य, सकललोकार्चितचरणा त्रयीव धर्मस्य, दिवानिशममुक्तपार्श्वस्थितिररुन्धतीव महामुनेः, हंसमयीव गतिषु, परपुष्टमयीवालापेषु, चक्रवाकमयीव पतिप्रेम्णि, प्रावृण्मयीव पयोधरोन्नतौ, मदिरामयीव विलासेषु, निधिमयीवार्थसंचयेषु, वसुधारामयीव प्रसादेषु, कमलमयीव कोशसंग्रहेषु, कुसुममयीव फलदानेषु, संध्यामयीव वन्द्यत्वे, चन्द्रमयीव निरूष्मत्वे, दर्पणमयीव प्रतिप्राणिग्रहणेषु, सामुद्र-

---

दीनि महामुनिशब्दान्तानि राज्ञि योज्यानि। गृहीतमावर्तितम्। परहृदयं चेतः, वक्षश्च। लोकगुरोर्हरेश्च। तारका कनीनिका, नक्षत्राणि च तारकाः। जननी माता, जन्यतेऽनयेति जननी च। भूभृद्गिरिरपि। कुलं समूहोऽपि। वाहिनी सेना, नदी च। मानसं चेतः, सरश्च। चरणौ पादौ, कण्वादिशाखाश्च चरणाः। धर्मोऽस्ति यस्य स धर्मः। अर्शआदित्वादच्। यद्वा,-साक्षादेव धर्मः। महामुनी राजर्षि, वसिष्ठश्च। प्रावृट् वर्षा पयोधरौ स्तनौ, मेघाश्च पयोधराः। वसुधारा धनवृष्टिः। कोशो गञ्जः कर्णिका च। ऊष्मा गर्वः, औष्ण्यं च। प्राणिनि प्राणिनि प्रतिप्राणि सर्वजन्तुविषये ग्रहणेष्वावर्जनेषु, प्रतिबिम्बोत्पादनेषु च। सामुद्रं समुद्रकृतं शास्त्रम्। येनान्यस्व-

---

निवास करने वाली लक्ष्मी के समान, चन्द्र की चमकते हुए चञ्चल तारों वाली रोहिणी के समान, ब्रह्मा की सब लोगों को उत्पन्न करने वाली बुद्धि के समान, वाहिनीपति अर्थात् समुद्र की हिमालय के कुल में उत्पन्न गङ्गा के समान (वाहिनीपति अर्थात् सेनापति राजा की विशाल राजकुल में उत्पन्न पत्नी यशोवती), राजहंस की मानस (मानसरोवर या चित्त) में निवास करने में चतुर हंसी के समान, धर्म की सारे संसार से पूजित चरणों (वैदिक शाखाओं अथवा पैरों) वाली वेदविद्या के समान, महामुनि वशिष्ठ की दिनरात पास में रहने वाली अरुन्धती के समान, मन्द चाल चलने में हंस के समान, बोलने में कोयल के समान, पति के प्रति प्रेमभाव में चक्रवाकी के समान, पयोधरों (दोनों स्तनों अथवा मेघों) की ऊँचाई में वर्षाकाल के समान, विलासों में मदिरा के समान, धन के सञ्चय करने में निधि के समान, प्रसन्नता के अवसर पर धन की वृष्टि के समान, कोष अर्थात् भण्डारों की रक्षा करने में कमल के समान (कमल भी अपने कोष या बीजकोश का संग्रह करता है), फल देने में फूल के समान (फूलों के बाद फल ही उत्पन्न होते हैं), वन्दनीय होने में संध्या के समान, स्वभाव की शीतलता में चन्द्र के समान, सब लोगों को अपने में धारण करने में दर्पण के समान, दूसरों के चित्त की अवस्था परख लेने में सामुद्रिक शास्त्र के समान, सब जगह अपने प्रभाव से व्याप्त हो जाने में ईश्वर के समान,

मयीव परचित्तज्ञानेषु, परमात्ममयीव व्याप्तिषु, स्मृतिमयीव पुण्यवृत्तिषु, मधुमयीव संभाषणेषु, अमृतमयीव तृष्यत्सु, वृष्टिमयीव भृत्येषु, निर्वृतिमयीव सखीषु, वेतसमयीव गुरुषु, गोत्रवृद्धिरिव विलासानाम्, प्रायश्चित्तशुद्धिरिव स्त्रीत्वस्य, आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य, व्युत्थानबुद्धिरिव रूपस्य, दिष्टवृद्धिरिव रतेः, मनोरथसिद्धिरिव रामणीयकस्य, दैवसंपत्तिरिव लावण्यस्य, वंशोत्पत्तिरिवानुरागस्य, वरप्राप्तिरिव सौभाग्यस्य, उत्पत्तिभूमिरिव कान्तेः, सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य, आयतिरिव यौवनस्य, अनभ्रवृष्टिरिव वैदग्ध्यस्य, अयशःप्रमृष्टिरिव लक्ष्म्याः, यशःपुष्टिरिव चारित्रस्य, हृदयतुष्टिरिव धर्मस्य, सौहार्दस्य भाग्यरूपपरमाणुसृष्टिरिव प्रजापतेः, शमस्यापि शान्तिरिव, विनयस्यापि विनीतिरिव, आभिजात्यस्याप्यभिजातिरिव, संयमस्यापि संयतिरिव, धैर्यस्यापि धृतिरिव, विभ्रमस्यापि विभ्रान्तिरिव, यशोमती नाम महादेवी प्राणानां प्रणयस्य

भावो ज्ञायते। परमात्मनि व्याप्तिः सर्वगतत्वमनुष्ठेयकार्यम्, ज्ञानं चान्यत्र। अमृतं सुधा, तोयं च। वेतसमयीवेति नम्रत्वात्। प्रायश्चित्तशुद्धिरिति। स्त्रीत्वं तयोज्ज्वलितं पवित्रितं वेत्यर्थः। व्युत्थानं समाधेश्चालनम्। आयतिः प्रतापः। अनभ्रवृष्टिरिवेति। यथा ह्यनभ्रवृष्टिराश्चर्यहेतुस्तथा वैदग्ध्यं तस्यामाश्चर्यम्। शमस्यापीति। शमे हि कश्चाशान्तो भवति। शमं संप्राप्य लब्धात्मलाभो जायते। इत्येवमुत्तरत्रापि

पुण्यकर्मों के अनुष्ठान में स्मृतिशास्त्र के समान, बातचीत करने में मधु के समान, सबको तृप्त करने में अमृत के समान, भृत्यों के लिये धन की वर्षा के समान, सखियों के लिये सुख का ही रूप धारण करने वाली, सारे विलासों की वंशवृद्धि के समान, स्त्रीत्व के समस्त प्रायश्चित्तों की शुद्धि के समान, कामदेव की आज्ञा की सिद्धि के समान, रूप के अभ्युदय की वृद्धि के समान, रति की भाग्यवृद्धि के समान, सौन्दर्य की मनोरथसिद्धि के समान, लावण्य की दैवी सम्पदा के समान, अनुराग की वंशोत्पत्ति के समान, कान्ति की वरप्राप्ति के समान, सौन्दर्य की अध्यायसमाप्ति के समान, यौवन की परिपूर्णता के समान, विदग्धता की मेघशून्य वर्षा के समान, लक्ष्मी के चञ्चलता रूप अयश के मार्जन के समान, चारित्र्य के यश की पुष्टि के समान, धर्म की हृदयतुष्टि के समान, प्रजापति द्वारा की हुई सौभाग्य के परमाणुओं की सृष्टि के समान, शम की भी शान्ति, विनय की भी विनम्रता, कुलीनता की भी कुलीनता, संयम की भी संयति, धैर्य की भी धृति और विभ्रम की भी विभ्रान्ति के समान थी। वह राजा के प्राण, प्रेम, विश्वास, धर्म और

विस्रम्भस्य धर्मस्य सुखस्य च भूमिरभूत्। यास्य वक्षसि नरकजितो लक्ष्मीरिव ललास।

निसर्गत एव च स नृपतिरादित्यभक्तो बभूव। प्रतिदिनमुदये दिनकृतः स्नातः सितदुकूलधारी धवलकर्पटप्रावृतशिराः प्राङ्मुखः क्षितौ जानुभ्यां स्थित्वा कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके पवित्रपद्मरागपात्रीनिहितेन स्वहृदयेनेव सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्घं ददौ। अजपच्च जप्यं सुचरितः प्रत्युषसि मध्यंदिने दिनान्ते चापत्यहेतोः प्राध्वं प्रयतेन मनसा जञ्जपूको मन्त्रमादित्यहृदयम्।

भक्तजनानुरोधविधेयानि तु भवन्ति देवतानां मनांसि। यतः स राजा कदाचिद्ग्रीष्मसमये यदृच्छयासितकरकरसितसुधाधवलस्य हर्म्यस्य पृष्ठे सुष्वाप। वामपार्श्वे चास्य द्वितीयशयने देवी यशोमती शिश्ये। परिणतप्रायायां तु श्यामायाम्, आसन्नप्रभातवेलाविलुप्यमानलावण्ये

व्याख्याक्रमः। आभिजात्यस्य कुलोचितत्वस्य। नरको नामासुरः, यातनास्थानानि च नरकाः।

स्वहृदयेनेवेति। स्वहृदयमपि सूर्यानुरक्तम्। प्राध्वं प्रह्वः। जञ्जपूकशब्दो जपासक्ततां लक्षयति।

द्वितीयेत्यादिनास्य सदाचारनिष्ठोक्ता। उक्तं हि—'नाश्नीयाद्भार्यया साकं न च सुप्यात्तया समम्' इति। परिणतेत्यादावस्मिन्सति देवी यशोमत्युदतिष्ठदिति

सुख की भूमि थी। जैसे विष्णु के वक्ष पर लक्ष्मी निवास करती है उसी प्रकार वह भी उसके हृदय में निवास करती थी।

वह राजा स्वभाव से ही भगवान् सूर्य का भक्त था। प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्नान करके, श्वेत दुकूल पहनकर, सिर पर सफेद वस्त्र ढककर, पूर्व की ओर घुटनों के बल बैठकर रक्तकमल से जो पद्मराग मणि के पवित्र थाल में सूर्य के प्रति अनुरक्त उसके हृदय के रूप में रखा हुआ था, कुङ्कुम के पंक से बनाए हुए सूर्यमण्डल में अर्घ देता था। शोभन चरित वाला वह प्रातःकाल, दोपहर और सायंकाल पुत्र के लिये पवित्र और विनत होकर शुद्ध मन से जप के योग्य आदित्य-हृदय मन्त्र का बारबार जप करता था।

देवताओं के मन निरन्तर अपने भक्तों के अनुरोध के वश में होते हैं। बात यह है कि किसी समय वह राजा अपनी इच्छा से चन्द्रमा की चाँदनी से धुले हुए अपने कोठे पर सो रहा था। उसी के बगल में दूसरी शय्या पर रानी यशोवती भी सो रही थी।

लिलम्बिषमाणे सीदत्तेजसि तारकेश्वरे, कराग्रस्पृष्टकुमुदिनीप्रमोदजन्मनि शशधरस्वेद इव गलत्यतिशीतलेऽवश्यायपयसि, मधुमदमत्तप्रसुप्तसीमन्तिनीनिःश्वासाहतेषु संक्रान्तमदेष्विव घूर्णमानेष्वन्तःपुरप्रदीपेषु, राजनि च विमलनखप्रतिबिम्बिताभिः संवाह्यमानचरण इव तारकाभिः, विस्रब्धप्रसारितैर्दिगङ्गनानामिवार्पितैरङ्गैर्मधुसुगन्धिभिः स्वहस्तकमलतालवृन्तवातैरिव श्वसितैर्मुखश्रिया वीज्यमाने विमलकपोलस्थलस्थितेन सितकुसुमशेखरेणेव रतिकेलिकचग्रहलम्बितेन प्रतिमाशशिबिम्बेन विराजिते स्वपति देवी यशोमती सहसैव 'आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व' इति भाषमाणा भूषणरवेण व्याहरन्तीव परिजनमुत्कम्पमानाङ्गयष्टिरुदतिष्ठत्।

अथ तेन सर्वस्यामपि पृथिव्यामश्रुतपूर्वेण किमुत देवीमुखे परित्रायस्वेति ध्वनिना दग्ध इव श्रवणयोरेकपद एव निद्रां तत्याज राजा। शिरो-

संबन्धः। तारकेश्वरे। करा रश्मयः, हस्तश्च करः। सीमन्तिनी ललना। संवाह्यमानानुपपद्यमाना। अङ्गैरितीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। मधु मद्यम्। तद्वत्। मधु मकरन्दः। तालवृन्तमुत्क्षेपकः। सितग्रहणेन चन्द्रसादृश्यमाह।

एकपदे तत्क्षणम्। शिरोभागाच्चेत्यादौ राजा वेगेनोत्पपातेति संबन्धः।

रात प्रायः ढल चुकी थी। प्रभात के निकट होने से चन्द्रमा की चमक प्रायः कम पड़ती जा रही थी और वह धीरे धीरे लटकता जा रहा था। कुमुदिनी को कराग्र से छूने के आनन्द में चन्द्रमा के पसीने के रूप में अत्यन्त ठंढी ओस पड़ने लगी। अन्तःपुर के दीपक मधुपान के नशे में सोई हुई सुन्दरियों की सांसों के सम्पर्क से स्वयं मतवाले होकर जैसे घूर्णित होने लगे। तारिकायें राजा के निर्मल नखों में प्रतिबिम्बित होकर मानों उनके पैर दाबने लगीं, मानों राजा की मुखश्री दिगङ्गनाओं द्वारा विश्वास के साथ फैलाकर अर्पित किए गए अङ्गों के समान अपने हस्तकमल के पंखे की मधु से सुगन्धित साँसों की हवा से धीरे-धीरे उन्हें झल रही थी, मानों रतिकेलि के समय किए गये कचग्रह से लटका हुआ चन्द्रबिम्ब उनके निर्मल कपोल पर सफेद पुष्प की माला की भाँति झलक रहा था। राजा सो रहे थे कि रानी यशोवती एकाएक चौंककर 'आर्यपुत्र, बचाओ' यह कहते कहते अपने गहनों की आवाज से अन्तःपुर के परिजनों को जगाती और कांपती हुई उठ गई।

सारी पृथिवी में कहीं भी पहले जो 'बचाओ' यह आवाज न सुन पड़ी थी उसे देवी के मुख से सुनकर कानों में जले हुये की भाँति राजा की नींद टूट गई। अपने सिरहाने, से कोप से काँपते हुए दाहिने हाथ से कर्णोत्पल के समान उसने अपनी तलवार खींच ली

भागाच्च कोपकम्पमानदक्षिणकराकृष्टेन कर्णोत्पलेनेव निर्गच्छताच्छधारेण धौतासिना सीमन्तयन्निव निशाम्, अन्तरालव्यवधायकमाकाशमिवोत्तरीयांशुकं विक्षिपन्वामकरपल्लवेन, करविक्षेपवेगगलितेन हृदयेनेव भयनिमित्तान्वेषिणा भ्रमता दिक्षु कनकवलयेन विराजमानः, सत्वरावतारितवामचरणाक्रान्तिकम्पितप्रासादः, पुरःपतितेनासिधारागोचरगतेन शशिमयूखखण्डेनेव खण्डितेन हारेण राजमानः, लक्ष्मीचुम्बनलग्नतास्बूलरसरञ्जिताभ्यामिव निद्रया कोपेन चातिलोहिताभ्यां लोचनाभ्यां पाटलयन्पर्यन्तानाशानाम्, बद्धान्धकारया त्रिपताकया भ्रुकुट्या पुनरिव त्रियामां परिवर्तयन् 'देवि ! न भेतव्यं न भेतव्यम्' इत्यभिदधानो वेगेनोत्पपात। सर्वासु च दिक्षु विक्षिप्तचक्षुर्यदा नाद्राक्षीत्किंचिदपि तदा पप्रच्छ तां भयकारणम्।

अथ गृहदेवतास्विव प्रधावितासु यामिकिनीषु, प्रबुद्धे च समीपशायिनि परिजने, शान्ते च हृदयोत्कम्पकारिणि साध्वसे सा समभाषत—

सीमन्तयन्द्विधाकुर्वन्। त्रिपताकया त्रिरेखया।
यामकिनीषु जागरिकासु।

जिसकी निकलती हुई स्वच्छ धारा से रात मानों दो भागों में बट गई। बीच में व्यवधान बनते हुए आकाश के समान उत्तरीय अंशुक को उसने अपने बांये हाथ से फेंक दिया। झटके से हाथ फेंकने के कारण उसका कनकवलय निकलकर दूर उड़ गया मानों उसका हृदय ही रानी के डर के कारण को ढूँढ़ने के लिए दिशाओं में चक्कर काटने लगा हो। उसने शय्या से अपने बायें पैर को ज्यों ही नीचे रखा त्यों ही भवन का प्रासाद जैसे हिल गया। उसका हार टूटकर आगे बिखर गया, मानों उसकी तलवार के सामने पड़कर चन्द्रमा की किरणें टूक टूक हो गईं। मानों लक्ष्मी द्वारा चुम्बन किए जाने पर पान से भरे उसके मुख की लाली उनकी आँखों में संक्रान्त हो गई हो ऐसी क्रोध और निद्रा के कारण टहाका लाल अपनी आँखों से क्षितिज को प्रभा से लाल बना रहा था। क्रोध की अंधेरी लिए हुए तीन रेखाओं से भरी अपनी भौंह के द्वारा वह रात को फिर से आरम्भ कर रहा था। 'देवी, डरो मत, डरो मत' यह कहता हुआ झट से उठकर खड़ा हो गया। उसने चारों ओर दिशाओं में अपनी आँखें फैलायीं, लेकिन कहीं कुछ नहीं देखा, तब उससे डरने का कारण पूछा।

उसी समय गृहदेवताओं के समान रात को अन्तःपुर में पहरा देने वाली स्त्रियाँ दौड़ीं। समीप के सोने वाले परिजन भी जग गए। जब हृदय को कम्पित कर देने वाला

'आर्यपुत्र ! जानामि स्वप्ने भगवतः सवितुर्मण्डलान्निर्गत्य द्वौ कुमारकौ, तेजोमयौ, बालातपेनेवापूरयन्तौ दिग्भागान्, वैद्युतमिव जीवलोकं कुर्वाणौ, मुकुटिनौ, कुण्डलिनौ, अङ्गदिनौ, कवचिनौ, गृहीतशस्त्रौ, इन्द्रगोपकरुचा रुधिरेण स्नातौ, उन्मुखेनोत्तमाङ्गघटमानाञ्जलिना जगता निखिलेन प्रणम्यमानौ, कन्ययैकया च चन्द्रमूर्त्येव सुषुम्णरश्मिनिर्गतयानुगम्यमानौ, क्षितितलमवतीर्णौ। तौ च मे विलपन्त्याः शस्त्रेणोदरं विदार्य प्रवेष्टुमारब्धौ। प्रतिबुद्धास्मि चार्यपुत्र ! विक्रोशयन्ती वेपमानहृदया' इति।

एतस्मिन्नेव च कालक्रमे राजलक्ष्म्याः प्रथमालापः प्रथयन्निव स्वप्नफलमुपतोरणं रराण प्रभातशङ्खः। भाविनीं भूतिमिवाभिदधाना दध्वनुरमन्दं दुन्दुभयः। चकाण कोणाहतानन्दादिव प्रत्यूषनान्दी। जयजयेति प्रबोधमङ्गलपरिपाठकानामुच्चैर्वाचोऽश्रूयन्त। पुरुषश्च वल्लभतुरङ्गमन्दुरामन्दिरे मन्दमन्दं सुप्तोत्थितः सप्तीनां कृतमधुरहेषारवाणां

मुकुटिनौ मौलियुक्तौ। अङ्गदिनौ सकेयूरौ। इन्द्रगोपकः कीटविशेषः (भाषायां 'वीरबहूटी' इति ख्यातः)। सुषुम्णाख्योऽमृतमयो रविरश्मिः।

कोणो वादनभाण्डम्। नान्दी भेरी। वल्लभेत्यादिना पुरुषस्य नैकट्यमाह।

वह भय शान्त हुआ तब देवी यशोवती ने कहा—'आर्यपुत्र, स्मरण करती हूँ कि स्वप्न में भगवान् सूर्य के मण्डल से निकल कर दो तेजस्वी कुमार अपने तेज से दिशाओं को भरते हुए, सारे जीवलोक को तडिन्मय बनाते हुए, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, हाथ में बिजायट, शरीर पर कवच और शस्त्र लिए हुए, इन्द्रगोपक नामक कीट की भाँति अपने तेज की लाल प्रभा में स्नान किए हुए, उन्मुख होकर और अञ्जलि बांधे सारे संसार द्वारा प्रणाम किए गए, सुषुम्ना नाम की रश्मि से निकली हुई चन्द्रमूर्ति के समान एक कन्या द्वारा अनुगत होकर पृथिवी पर उतरे। उन दोनों ने अपने शस्त्र से रोती हुई मेरे उदर को फाड़कर प्रवेश करना आरम्भ किया। आर्यपुत्र, तब मैं जग गई, चिल्ला पड़ी और मेरा हृदय कांपने लगा।'

इसी बीच तोरण के समीप राजलक्ष्मी के प्रथम आलाप के समान, रानी के स्वप्न का फल मानों व्यक्त करता हुआ प्रभातकालीन शंख बज उठा। दुंदुभियाँ भी होने वाली समृद्धि को बताती हुई ध्वनित हो उठीं। भेरियां भी डण्डे से आहत होकर मानों उस खुशी में कड़कने लगीं। जागरणकाल में मङ्गलपाठ करने वालों के ऊंचे स्वर में जय-जयकार सुन पड़ने लगे। कोई अश्वपाल राजा के घोड़साल में सोकर धीरे धीरे उठा और मधुर

पुरश्च्योतत्तुषारसलिलशीकरं किरन्मरकतहरितं यवसं वक्त्रापरवक्त्रे पपाठ—

'निधिस्तत्र विकारेण सन्मणिः स्फुरता धाम्ना।
शुभागमो निमित्तेन स्पष्टमाख्यायते लोके ॥ ३ ॥
अरुण इव पुरःसरो रविं पवन इवातिजवो जलागमम्।
शुभमशुभमथापि वा नृणां कथयति पूर्वनिदर्शनोदयः' ॥ ४ ॥

नरपतिस्तु तच्छ्रुत्वा प्रीयमाणेनान्तःकरणेन तामवादीत्—'देवि! मुदोऽवसरे विषीदसि। समृद्धास्ते गुरुजनाशिषः। पूर्णा नो मनोरथाः। परिगृहीतासि कुलदेवताभिः। प्रसन्नस्ते भगवानंशुमाली। न चिरेणैवातिगुणवदपत्यत्रयलाभेनानन्दयिष्यति भवतीम्' इति। अवतीर्य च यथाक्रियमाणाः क्रियाश्चकार। यशोमत्यपि तुतोष तेन पत्युर्भाषितेन।

सप्तयोऽश्वाः। यवसं घासम्। 'नान्धाः प्रायोऽम्बुधेर्वक्रम्' इति वक्त्रलक्षणम्। अपरवक्त्रं प्रसिद्धम्। तत्र विकारेणेति। यत्राधोनिधिस्तत्र परिणाहोद्गताधोमुखशाखामूलादिभाजो वृक्षा भवन्ति। निदर्शनं निमित्तम्। समृद्धाः परिपूर्णाः। परिगृहीता अङ्गीकृता।

स्वर में हिनहिनाते हुए घोड़ों के सामने मरकत के समान हरी हरी घास जिनसे पानी की बूँदें टपक रही थीं, डालते हुए उसने वक्त्र और अपवक्त्र नामक छन्दों को पढ़ा—

'लोक में जैसे वृक्ष की शाखा के झुक जाने आदि विकार से भूगर्भ में छिपी हुई निधि का पता चलाया जाता है और स्फुरित होते हुए तेज से मणि का सद्भाव मालूम किया जाता है उसी प्रकार किसी प्रकार के निमित्त (शुभसूचक स्वप्न आदि) से होने वाला मङ्गल समझा जाता है।'

'जैसे आगे उदित होने वाला अरुण सूर्य को और हवा का झकोरा जल की वर्षा को सूचित करता है उसी प्रकार पहले देखा गया शुभ या अशुभ लक्षण मनुष्यों के होने वाले शुभ या अशुभ को कह देता है।'

राजा ने उसे सुनकर हृदय से प्रसन्न होते हुए रानी से कहा—'देवी, प्रसन्न होने के अवसर में क्यों मन को दुखाती हो? तुम्हारे गुरुजनों के आशीर्वाद सफल हो गए। हमारे मनोरथ पूरे हुए। कुलदेवताओं ने तुम्हारी बात मान ली। तुम पर भगवान् सूर्य प्रसन्न हैं। वे कुछ ही समय में अत्यन्त गुणशाली तीन सन्तान देकर आनन्दित करेंगे।' यह कहकर राजा कोठे से उतरकर नियमानुसार अपने कार्य में लग गए। रानी यशोवती पति की इस बात से बहुत सन्तुष्ट हुई।

ततः समतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्कालांशे देव्यां च यशोमत्यां देवो राज्यवर्धनः प्रथममेव संबभूव गर्भे। गर्भस्थितस्यैव च यस्य यशसेव पाण्डुतामादत्त जननी। गुणगौरवक्लान्तेव गात्रमुद्वोढुं न शशाक। कान्तिविसरामृतरसतृप्तेवाहारं प्रति पराङ्मुखी बभूव। शनैः शनैरुपचीयमानगर्भभरालसा च गुरुभिर्वारितापि वन्दनाय कथमपि सखीभिर्हस्तावलम्बेनानीयत। विश्राम्यन्ती सालभञ्जिकेव समीपगतस्तम्भभित्तिष्वलक्ष्यत। कमललोभनिलीनैरलिभिरिव वृतावुद्धर्तुं नाशकच्चरणौ। मृणाललोभेन च चरणनखमयूखलग्नैर्भवनहंसैरिव संचार्यमाणा मन्दमन्दं बभ्राम। मणिभित्तिपातिनीषु निजप्रतिमास्वपि हस्तावलम्बनलोभेन प्रसारयामास करकमलम्, किमुत सखीषु। माणिक्यस्तम्भदीधितीरप्यालम्बितुमाचकाङ्क्ष, किं पुनर्भवनलताः। समादेष्टुमप्यसमर्थासीद्गृहकार्याणि, कैव कथा कर्तुम्। आस्तां नूपुरभारखेदितं चरणयुगलं मनसापि नोदसहत सौधमारोढुम्। अङ्गान्यपि नाशक्नोद्धारयितुं दूरे भूषणानि। चिन्तयित्वापि क्रीडापर्वताधिरोहणमुत्कम्पितस्तनी तस्तान। प्रत्युत्थानेपूभयजानुशिखरविनिहितकरकिसलयापि गर्वादिव गर्भेणाधार्यत। दिवसं चाधोमुखी स्तनपृष्ठसंक्रान्तेनापत्यदर्शनौत्सुक्यादन्तःप्रविष्टेनेव मुखकमलेनैवं प्रीयमाणा ददर्श गर्भम्। उदरे तनयेन हृदये च भर्त्रा तिष्ठता द्विगुणितामिव लक्ष्मीमुवाह। सख्युत्सङ्गमुक्तशरीरा च

कुछ समय के बीतने पर देवी यशोमती के गर्भ में पहले पहल राज्यवर्धन हुआ। गर्भ में स्थित उसके यश से मानों जननी ने पीलापन धारण किया। उसके गुणों के भार से क्लान्त होकर मानों अपने शरीर को ढोने में वह असमर्थ होने लगी। उसकी कान्ति के अमृत रस से तृप्त होकर मानों वह भोजन से विमुख होने लगी। धीरे-धीरे गर्भ के भारी हो जाने से वह अलसाकर चलने लगी और गुरुओं के मना करने पर भी सखियों द्वारा हाथ का सहारा देकर प्रणाम करने के लिए पहुँचाई जाने लगी। जब वह थक जाने पर विश्राम के लिए समीप के किसी खम्भे का सहारा लेकर टिकती तो सालभंजिका की भाँति प्रतीत होती, मानों कमल समझ कर बैठे हुए भौंरों से व्याप्त अपने चरणों को वह उठा नहीं पा रही थी, मानों उसके चरण के नख की किरणों को मृणाल समझ कर उसी के लोभ से हंस उसे मंद मंद चाल से चला रहे थे। मणि की दीवालों में पड़ती हुई अपनी छाया के ऊपर भी हाथ का सहारा लेने के लोभ से वह अपना हाथ फैला देती, सखियों के सहारे की तो बात ही क्या। माणिक्य के खम्भों की किरणों पर भी वह टिकं जान-

शरीरपरिचारिकाणामङ्केषु सपत्नीनां तु शिरःसु पादौ चकार। अवतीर्णे च दशमे मासि सर्वोर्वीभृत्पक्षपाताय वज्रपरमाणुभिरिव निर्मितम्, त्रिभुवनभारधारणसमर्थं शेषफणामण्डलोपकरणैरिव कल्पितम्, सकलभूभृत्कम्पकारिण दिग्गजावयवैरिव विहितमसूत देवं राज्यवर्धनम्। यस्मिंश्च जाते जातप्रमोदा नृत्यमय्य इवाजायन्त प्रजाः। पूरितासंख्यशङ्खशब्दमुखरं प्रहतपटहशतपटुरवं गम्भीरभेरीनिनादनिर्भरभरितभुवनं प्रमोदोन्मत्तमर्त्यलोकमनोहरं मासमेकं दिवसमिव महोत्सवमकरोन्नरपतिः।

उर्वीभृतो राजानः, पर्वताश्च। पक्षाः समूहाः, पतत्राणि च। पातः पतनम्, शातनं च।

चाहती थी, भवनलता के सहारे की तो बात ही क्या। घर के कामों को बढ़ाने में भी वह असमर्थ थी, बातचीत करना तो दूर रहा। नूपुरों के बोझ से भी खिन्न हो जाने से उसके दोनों चरण थक जाते थे, ऐसी स्थिति में मन से भी कोठे पर चढ़ने का साहस नहीं कर पाती थी। वह अपने अङ्गों को भी धारण नहीं कर सकती थी, गहने तो दूर रहे। अपने क्रीड़ापर्वत पर जब केवल वह सोचते हुए ही चढ़ती तो उसके दोनों स्तन काँपने लग जाते। जब वह उठने का प्रयत्न करती तब अपनी दोनों जाँघों के अग्रभाग पर हाथ टेकती, फिर भी मानों गर्भ द्वारा अपनी गुरुता के गर्व से फिर बैठा दी जाती थी। दिन में वह अपना मुख नीचा किए रहती, स्तन पर उसके मुख का प्रतिबिम्ब संक्रान्त हो रहा था मानों अपने पुत्र को देखने की उत्सुकता से वह अपने मुख-कमल के भीतर प्रवेश करके प्रसन्न होती हुई गर्भ देखती थी। उदर में बच्चा एवं हृदय में पति के निवास करने से वह मानों दुगुनी शोभा धारण कर रही थी। वह सखियों की गोद में अपने आपको छोड़ देती थी। परिचारिकाओं के अङ्क में और अपनी सौतों के सिर पर उसने अपने चरण रखे।दसवें मास में उसने देव राज्यवर्धन को पैदा किया, मानों वह सारे पर्वतों के पक्ष काट फेंकने के लिए (अथवा सारे राजाओं में पक्षपात करने के लिए) वज्र के परमाणुपुंज से बना था या त्रिभुवन का बोझ धारण करने में समर्थ शेष नाग के फणामण्डल के निर्माण की सामग्री से बना था या सारे पर्वतों (अथवा राजाओं) को कँपा देने वाले दिग्गज के अङ्गों से बना था। उसके उत्पन्न होने की खुशी में सारी प्रजा नाचने लग गई। राजा ने महीने भर बड़ी धूम-धाम के साथ पुत्रजन्मोत्सव मनाया जो ऐसा लगा कि एक दिन में बीत गया। असंख्य शंखों की आवाज चारों ओर भर गई। सैकड़ों पटहों की कड़कड़ाहट गूँज गई। भुवन में भेरियों का गंभीर नाद भर गया। आनन्द से सारा संसार उन्मत्त होकर मनोहर लगने लगा।

अथान्यस्मिन्नतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्काले कन्दलिनि कुड्मलितकदम्बतरौ रूढतोक्मतृणस्तम्बे स्तम्भिततामरसे विकसितचातकचेतसि मूकमानसौकसि नभसि मासि देव्या देवक्या इव चक्रपाणिर्यशोमत्या हृदये गर्भे च सममेव संबभूव हर्षः। शनैः शनैश्चास्याः सर्वप्रजापुण्यैरिव परिगृहीता भूयोऽप्यापाण्डुतामङ्गयष्टिर्जगाम। गर्भारम्भेण श्यामायमानचारुचूचुकचूलिकौ चक्रवर्तिनः पातुं मुद्रिताविव पयोधरकलशौ बभारोरःस्थलेन। स्तन्यार्थमानननिहिता दुग्धनदीव दीर्घस्निग्धधवला माधुर्यमधत्त दृष्टिः। सकलमङ्गलगणाधिष्ठितगात्रगरिम्णेव गतिरमन्दायत। मन्दं-मन्दं संचरन्त्या निर्मलमणिकुट्टिमनिमग्नप्रतिबिम्बनिभेन गृहीतपादपल्लवा पूर्वसेवामिवारेभे पृथिव्यस्याः दिवसमधिशयानायाः शयनीयमपाश्रयपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिमा विमलकपोलोदरगता प्रसवसमयं प्रतिपालयन्ती लक्ष्मीरिवालक्ष्यत। क्षपासु सौधशिखराग्रगताया गर्भोन्माथमु-

कन्दलानी लताभेदः। नीरं तोयम्। मानसौकसो हंसाः। नभसि श्रावणे। यशोवत्या देव्याः। चक्रपाणिः कृष्णः, रेखाकारं च चक्रं पाणौ यस्य। देवक्या अपि यशोवत्याः। प्रमोदो हर्षः। पुण्यैरिवेति। पुण्यानां स्वभावशुद्धित्वात्। स्तनयोर्भवं

कुछ समय के बाद सावन के महीने में कंदली लताएँ बढ़ गईं, कदम्ब के वृक्षों में कोंढ़ियाँ उग आईं, तोम नामक घास के हरे हरे गुच्छे उत्पन्न हो गए, कमल निश्चल हो गए, चातक पक्षियों का मन खिल गया और हंस चुप हो गए तब देवकी के गर्भ में कृष्ण के समान यशोवती के हृदय और गर्भ में साथ ही साथ हर्ष उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे उसकी अङ्गयष्टि मानों प्रजा के पुण्यों से मिलकर पीली पड़ गई। गर्भ के आरम्भकाल से ही उसके स्तनकलश के काले-काले चुचुक और भी काले पड़ गए, मानों चक्रवर्ती के पीने के लिए उन पर मुद्रा (अर्थात् राजकीय सील-मोहर) लगी हो। मानों स्तन के दूध के लिए उसके मुँह में निहित दुग्धनदी के समान दीर्घ, स्निग्ध और उज्ज्वल उसकी दृष्टि में मिठास भर गई। सारे मंगलों से अधिष्ठित होने के कारण शरीर पर बोझ होने से मानों उसकी गति मन्द पड़ गई। इधर से उधर जब वह मन्द मन्द संचरण करती तब जो चरण-युगल निर्मल मणिकुट्टियों पर पड़ता तो ऐसा मालूम होता कि पृथिवी उसके चरणपल्लव ग्रहण करके अभी से सेवा करने लग गई हो। दिन में पलंग पर सोती हुई उसके कपोलतल में उपधान पर की पत्रभग के साथ पुतलियाँ प्रतिबिम्बित हो जाती थीं, मानों प्रसवसमय की प्रतीक्षा में लक्ष्मी विराजमान हो। रात्रियों में जब वह कोठे के अग्रभाग पर जाकर बैठती तो उसके गर्भखेद से स्रस्त अंशुक वाले स्तनों पर पड़ता हुआ

क्तांशुके स्तनमण्डले संक्रान्तमुडुपतिमण्डलमुपरि गर्भस्य श्वेतातपत्रमिव केनापि धार्यमाणमदृश्यत। सुप्ताया वासभवने चित्रभित्तिचामरग्राहिण्योऽपि चामराणि चालयांचक्रुः। स्वप्नेषु करविधृतकमलिनीपलाशपुटसलिलैश्चतुर्भिरपि दिक्करिभिरक्रियताभिषेकः। प्रतिबुध्यमानायाश्च चन्द्रशालिकासालभञ्जिकापरिजनोऽपि जयशब्दमसकृदजनयत्। परिजनाह्वानेष्वादिशेत्यशरीरा वाचो निश्चेरुः। क्रीडायामपि नासहताज्ञाभङ्गम्। अपि च चतुर्णामपि महार्णवानामेकीकृतेनाम्भसा स्नातुं वाञ्छा बभूव। वेलावनलतागृहोदरपुलिनपरिसरेषु पर्यटितुं हृदयमभिललाष। आत्ययिकेष्वपि कार्येषु सविभ्रमं भ्रूलता चचाल। संनिहितेष्वपि मणिदर्पणेषु मुखमुत्खाते खड्गपट्टे वीक्षितुं व्यसनमासीत्। उत्सारितवीणाः स्त्रीजनविरुद्धा धनुर्ध्वनयः श्रुतावसुखायन्त। पञ्जरकेसरिषु चक्षुररमत। गुरुप्रणामेष्वपि स्तम्भितमिव शिरः कथमपि ननाम। सख्यश्चास्याः

स्तन्यं क्षीरम्। अपाश्रयः पर्यङ्कः। उन्माथः खेदः। चन्द्रशाला धवलगृहस्योपरि प्रासादिकायामन्तर्धारणीत्युच्यते। गर्भस्थजनचित्तवृत्त्यनुसारेण गर्भिण्या अपि चित्तवृत्तिर्भवति। यतो वार्ता श्रूयते ततश्चतुर्णामित्युक्तम्। परिसरः पर्यन्तः। आत्ययिकेष्ववश्यकर्तव्येषु।

चन्द्र-मण्डल का प्रतिबिम्ब मानों गर्भ के ऊपर किसी के द्वारा धारण किया गया श्वेत आतपत्र के समान लगता था। जब वह अपने वास-भवन में सोती तो भित्तियों पर बनी हुई चामरग्राहिणी स्त्रियाँ भी उसके ऊपर चँवर डुलाती जान पड़ती थीं। जब वह सो जाती तब स्वप्नों में चारों दिशाओं के दिग्गज अपनी कमलिनी के खदोने में जल लेकर उसका अभिषेक करते। जब वह सोकर उठती तो चन्द्रशालिका में उत्कीर्ण शालभंजिका रूपी स्त्रियाँ भी उसकी मानों जयजयकार करती थीं। जब अपने परिजनों को पुकारती तो 'आज्ञा दो' यह आवाज आकाश से भी आती। वह खेल-खिलवाड़ में भी अपनी आज्ञा का भङ्ग होना न सह सकती थी। वह चारों समुद्रों के एक में मिले जल से स्नान करने की इच्छा प्रकट करती थी। समुद्रतट के वन के लतागृहों की रेतों में घूमने का मन होता। आवश्यक कार्यों में भी वह केवल विलास के साथ अपनी भौंह ही मटकाती रहती थी। पास में मणिदर्पणों के रहने पर भी वह खींची हुई तलवार पर ही अपना मुँह देखने का शौक करती थी। वीणा की आवाज के बदले स्त्रियों के स्वभाव के विरुद्ध उसे धनुष का टंकार ही सुखद प्रतीत होती। उसकी आँखें पिंजड़े के शेरों पर टिकती थीं। गुरुजनों को प्रणाम करते समय उसका निश्चल सिर किसी-किसी प्रकार झुकता था।

प्रमोदविस्फारितैर्लोचनपुटैरासन्नप्रसवमहोत्सवधियेव धवलयन्त्यो भवनं विकचकुमुदकमलकुवलयपलाशवृष्टिमयं रक्षाबलिविधिमिवानवरतं विदधाना दिक्षु क्षणमपि न मुमुचुः पार्श्वम्। आत्मोचितस्थाननिषण्णाश्च महान्तो विविधौषधिधरा भिषजो भूधरा इव भुवो धृतिं चक्रुः। पयोनिधीनां हृदयानीव लक्ष्म्या सहागतानि ग्रीवासूत्रग्रन्थिषु प्रशस्तरत्नान्यबध्यन्त।

ततश्च प्राप्ते ज्येष्ठामूलीये मासि बहुलासु बहुलपक्षद्वादश्यां व्यतीते प्रदोषसमये समारुरुक्षति क्षपायौवने सहसैवान्तःपुरे समुदपादि कोलाहलः स्त्रीजनस्य। निर्गत्य च ससंभ्रमं यशोवत्याः स्वयमेव हृदयनिर्विशेषा धात्र्याः सुता सुपात्रेति नाम्ना राज्ञः पादयोर्निपत्य 'देव! दिष्ट्या वर्धसे द्वितीयसुतजन्मना' इति व्याहरन्ती पूर्णपात्रं जहार।

अस्मिन्नेव च काले राज्ञः परमसंमतः शतशः संवादितातीन्द्रियादेशः,

---

महान्तः प्रभाविताः, उच्छ्रिताश्च। विविधा ओषधीर्धारयन्ति ये ते विविधा ओषधयो यासु ताः धरा भूमयो येषां ते च। धृतिर्धैर्यम्, धारणं च। लक्ष्म्या सहेति। लक्ष्मीर्हि पयोधिमुना। प्रशस्तरत्नानीति कर्मधारयः, अन्यत्र बहुव्रीहिः।

ज्येष्ठामूलीयो मासो ज्येष्ठः। बहुलासु कृत्तिकासु। बहुलपक्षः कृष्णपक्षः। पूर्णपात्रं यथापरिहृतवस्त्रादि। उक्तं च—'आनन्ददो हि सौहार्दादेत्य वस्त्रादिकं बलात्। अजानतो हरत्येव पूर्णपात्रं तु तत्स्मृतम्॥' इति।

संवादितः प्रत्यक्षीकृतः। अतीन्द्रियादेशो भाविकथनम्। संकलितो गणनाज्ञः।

उसकी सखियाँ निकट भविष्य में होने वाले पुत्र-जन्म के महोत्सव के लिए मानो आनंद से विस्फारित आँखों द्वारा भवनों को बनाती हुई और खिले कुमुद, कमल, कुवलय, पलाश की वर्षा के रूप में दिशाओं में रक्षाबलि चढ़ाती हुई उसे क्षण भर भी अकेली न छोड़ती थीं। अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठे हुए पर्वत के समान नाना प्रकार की औषधि लिए हुए बड़े बड़े वैद्य भी उस प्रसव-भूमि को सिर पर लिए रहते थे। बहुमूल्य रत्न उसकी गर्दन के सूत्र में गुथे हुए लटक रहे थे, मानों लक्ष्मी के साथ निकल कर आए हुए समुद्र के हृदय हों।

तब जेठ महीने के कृत्तिका नक्षत्र में कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन सन्ध्या के बीतने पर जब रात चढ़ रही थी तभी अन्तःपुर में एकाएक स्त्रियों ने शोरगुल मचाया। रानी यशोमती की अत्यन्त प्रिय धात्री की लड़की सुपात्रा स्वयं बड़ी तेजी से निकली और राजा के पैरों पर गिरकर 'देव, दूसरे पुत्र का जन्म हुआ है, आप भाग्यवान् हैं' यह कह कर इनाम के रूप में वस्त्र आदि (पूर्णपात्र) प्राप्त किया।

इस समय तारक नाम का पूजा करने वाला ज्योतिषी राजा का परम-प्रिय था,

दर्शितप्रभावः संकलिती, ज्योतिषि सर्वासां ग्रहसंहितानां पारदृश्वा, सकलगणकमध्ये महितो हितश्च त्रिकालज्ञानभाग्भोजकस्तारको नाम गणकः समुपसृत्य विज्ञापितवान्—'देव ! श्रूयते मांधाता किलैवंविधे व्यतीपातादिसर्वदोषाभिषङ्गरहितेऽहनि सर्वेषूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेष्वीदृशि लग्ने भेजे जन्म। अर्वाक्ततोऽस्मिन्नन्तराले पुनरेवंविधे योगे चक्रवर्तिजनने नाजनि जगति कश्चिदपरः। सप्तानां चक्रवर्तिनामग्रणीश्चक्रवर्तिचिह्नानां महारत्नानां च भाजनं सप्तानां सागराणां पालयिता सप्ततन्तूनां सर्वेषां प्रवर्तयिता सप्तसप्तिसमः सुतोऽयं देवस्य जातः' इति।

पारदृश्वा पर्यन्तदर्शी। (भोजको रविमर्चयित्वा, पूजका हि भूयसा गणका भवन्ति। ये मगा इति प्रसिद्धाः) भागवता इत्यन्ये। व्योम्नि चन्द्रार्कौ राशिषट्के यदैकमार्गस्थितौ भवतः स व्यतीपातः। उक्तं च लाटाचार्येण—'गगने हिमकरसूर्यौ युगपत्स्यातां यदैकमार्गस्थौ। भगणार्धेऽर्कश्च यदा शशी च स भवेद्व्यतीपातः ॥' इति। अभिषङ्गः संबन्धः। अर्वाक्पश्चात्। चक्रवर्तिनामिति। 'भरतार्जुनमांधातृभगीरथयुधिष्ठिराः। सगरो नहुषश्चैव सप्तैते चक्रवर्तिनः ॥' 'कूर्मोर्णो जालहस्तित्वं पद्मादि जालचरणत्व'मित्यादि चक्रवर्तिचिह्नानि। 'मण्यश्वकरिचक्राणि वरा स्त्री परिनायकः। षडेतानि तु रत्नानि कीर्तितानि मनीषिभिः ॥' परिनायकः सेनापतिः। गृहनायको गजाध्यक्षः। सप्ततन्तूनां यज्ञानाम्। सप्तसप्तिः सूर्यः।

पहुँचा। विद्या के बल से उसने सैकड़ों बार इन्द्रियातीत विषय को सबके सामने प्रत्यक्ष कराया था। इस प्रकार वह अपना प्रभाव दिखा चुका था। वह गणित के अनुसार फल देखता था। ज्योतिष शास्त्र की सारी ग्रहसंहिताओं का वह पारंगत विद्वान् था। समस्त ज्योतिषियों के बीच में उसकी प्रतिष्ठा थी। स्वयं भी वह आदमी अच्छा था और त्रिकालज्ञ था। उसने महाराज के पास आकर निवेदन किया—'राजन्, सुना जाता है इसी प्रकार सारे व्यतीपात आदि दोषों से रहित दिन में जब सारे ग्रह अपने ऊँचे स्थान पर विराजमान थे तभी इसी प्रकार के शुभ-लग्न में मान्धाता का जन्म हुआ था। इसके बाद इस बीच चक्रवर्ती के उत्पन्न होने वाले ऐसे योग में अब तक कोई उत्पन्न नहीं हुआ। यह तुम्हारा पुत्र प्रसिद्ध सात चक्रवर्ती राजाओं (भरत, अर्जुन, मान्धाता, युधिष्ठिर, सगर और नहुष) में आगे रहने वाला, शंख, चक्र आदि चक्रवर्ती के चिह्नों और महारत्नों को प्राप्त करने वाला, सात समुद्रों पर शासन करने वाला, समस्त यज्ञ करने वाला एवं सप्तसप्ति (सूर्य) के सदृश उत्पन्न हुआ है।

अत्रान्तरे स्वयमेवानाध्माता अपि तारमधुरं शङ्खा विरेसुः। अताडितोऽपि क्षुभितजलनिधिजलध्वनिधीरं जुगुञ्जाभिषेकदुन्दुभिः। अनाहतान्यपि मङ्गलतूर्याणि रेणुः। सर्वभुवनाभयघोषणापटह इव दिगन्तरेषु बभ्राम तूर्यप्रतिशब्दः। विधुतकेसरसटाश्च साटोपगृहीतहरितदूर्वापल्लवकवलप्रशस्तैर्मुखपुटैः समहेषन्त हृष्टा वाजिनः। सलीलमुत्क्षिप्तैर्हस्तपल्लवैर्नृत्यन्त इव, श्रवणसुभगं जगर्जुर्गजाः। ववौ चाचिराच्चक्रायुधमुत्सृजन्त्या लक्ष्म्या निःश्वास इव सुरामोदसुरभिर्दिव्यानिलः यज्वनां मन्दिरेषु प्रदक्षिणशिखाकलापकथितकल्याणागमाः प्रजज्वलुरनिन्धना वैतानवह्नयः। भुवस्तलात्तपनीयश्रृङ्खलाबन्धबन्धुरकलशीकोशाः समुदगुर्महानिधयः। प्रहतमङ्गलतूर्यप्रतिशब्दनिभेन दिक्षु दिक्पालैरपि प्रमोदादक्रियतेव दिष्टवृद्धिकलकलः। तत्क्षण एव च शुक्लवाससो ब्रह्ममुखाः कृतयुगप्रजापतय इव प्रजावृद्धये समुपतस्थिरे द्विजातयः। साक्षाद्धर्म इव शान्त्युदकफल-

---

अनाध्माता मुखानिलेनापूरिताः। दुन्दुभिरानकः। तूर्याणि वादित्राणि घोषणश्रावणा। ग्रीवारोमवल्लयस्त एव सटाः। कवलो ग्रासः। यज्वनां यज्ञयाजिनाम्। विताने यज्ञे भवा वैतानाः। तपनीयं सुवर्णम्। बन्धुरो हृद्यः। कोश आवरणम्। ब्रह्ममुखा वेदवदना अपि।

इसी समय मुँह से फूँके न जाने पर भी शंख ऊँची और मधुर आवाज में बज उठे। अभिषेक की दुन्दुभि बिना बजाए ही क्षुभित समुद्र की भाँति धीर स्वर में गूँज उठी। आहत न होने पर भी मंगलतूर्य गरज उठे। उनका प्रतिशब्द सारे भुवन को अभयदान करने वाला घोषणापटह के समान दिग्दिगन्त में चक्कर मारने लगा। घोड़े प्रसन्न होकर अपनी अयाल झाड़ते हुए हपस-हपस कर उठाई हुई हरी दूब के कौर से भरे मुँह से हिनहिनाने लगे। लीला के साथ अपनी सूँड़ को उठाकर मानो नाचते हुए हाथी चिग्घाड़ने लगे। थोड़ी ही देर में मानों विष्णु को छोड़ती हुई लक्ष्मी के विरहजन्य निःश्वास के समान मदिरा की मादक गन्ध वाली दिव्य हवा चलने लगी। याज्ञिक लोगों के घर में बिना इन्धन के ही यज्ञ की अग्नियाँ अपना दक्षिणामुख शिखाओं से शुभागम का सन्देश व्यक्त करते हुए धधक उठीं। सोने की सिकड़ियों में बँधे हुए घड़ों की बड़ी बड़ी निधियाँ भूगर्भ से निकलने लगीं। बजाए जाते हुए मंगलतूर्यों के प्रतिशब्द के रूप में दिशाओं में मानों दिक्पाल आनन्दित होकर भाग्यवृद्धि के होने से धूमधाम मचाने लगे। उसी समय श्वेत वस्त्र धारण किये हुए वैदिक ब्राह्मण उपस्थित होने लगे, मानों प्रजावृद्धि के

हस्तस्तस्थौ पुरः पुरोधाः ! पुरातन्यः स्थितय इवादृश्यन्तागता बान्धववृद्धाः। प्रलम्बश्मश्रुजालजटिलाननानि बहलमलपङ्ककलङ्ककालकायानि नश्यतः कलिकालस्य बान्धवकुलानीवाकुलान्यधावन्त मुक्तानि बन्धनवृन्दानि। तत्कालापक्रान्तस्याधर्मस्य शिबिरश्रेणय इवालक्ष्यन्त लोकविलुण्ठिता विपणिवीथ्यः। विलसदुन्मुखवामनकबधिरवृन्दवेष्टिताः साक्षाज्जातमातृदेवता इव बहुबालकव्याकुला ननृतुर्वृद्धधात्र्यः। प्रावर्तत च विगतराजकुलस्थितिरधःकृतप्रतीहाराकृतिरपनीतवेत्रिवेत्रो निर्दोषान्तःपुरप्रवेशः समस्वामिपरिजनो निर्विशेषबालवृद्धः समानशिष्टाशिष्टजनो दुर्ज्ञेयमत्तामत्तप्रविभागस्तुल्यकुलयुवतिवेश्यालापविलासः प्रनृत्तसकलकटकलोकः पुत्रजन्मोत्सवो महान्।

अपरेद्युरारभ्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यः स्त्रीराज्यानीवावर्जितानि, असुरविवराणीवापावृतानि, नारायणावरोधानीव प्रस्खलितानि, अप्सरसामिव

पुरोधाः पुरोहितः। विपणिवीथ्यो वणिक्पथपङ्क्तयः। जातमातृदेवताः मार्जाराननाः ब्रह्मपुत्रपरिवारा सूतिकागृहे स्थाप्यते। अवरोधोऽन्तःपुरम्।

अपरेद्युरित्यादौ। इदमिदं बिभ्राणेन परिजनेनानुगम्यमानानि सामन्तान्तःपुर-

लिए पधारे हुए सत्युगीन प्रजापति हों। साक्षात् धर्म के समान पुरोहित ब्राह्मण हाथ में शान्तिकर्म के लिए जल और फल लिए खड़े हो गए। बड़े-बूढ़े रिश्तेदार पुरानी मर्यादाओं के समान एकत्र हुए। दाढ़ी के बढ़ जाने से विकट मुँह वाले गले के बैठ जाने से काले चिकट शरीर वाले बन्दी कारागार से मुक्त कर दिए गए और आकुल होकर इस प्रकार भागने लगे मानों नष्ट होते हुए कलिकाल के भाई-बन्धु हों। प्रसन्न हुए लोगों ने मारे खुशी के बनियों की दुकानें लूट लीं जो भागते हुए अधर्म की पैंठ सी जान पड़ती थीं। राजमहल में ऊपर मुँह किए हुए बौने और बहरों से घिरी हुई साक्षात् जातमातृकासंज्ञक देवियों के समान बालकों से अकुलाई जाती हुई बूढ़ी धात्रियाँ नाचने लगीं। राजकुल के नियम शिथिल कर दिए गए, प्रतीहार लोगों ने अपना वेष और डंडे उतार कर रख दिए और सब लोग बेरोक-टोक राजा की हवेली में घुसने लगे, मालिक और नौकर में कोई भेद नहीं रहा, बाल और वृद्ध सब एक हो गए, शिष्ट और अशिष्ट का भी अन्तर नहीं के बराबर हो गया, कुलयुवतियों और वेश्याओं की बातचीत में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहा। शिविर में रहने वाले लोग भी नाचने लगे। इस प्रकार धूम-धाम से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया।

दूसरे दिन सामन्तों की स्त्रियाँ राजकुल में आती हुई दिखाई पड़ीं, मानों सब

महीमवतीर्णानि कुलानि, परिजनेन पृथुकरण्डपरिगृहीताः स्नानीयचूर्णावकीर्णकुसुमाः सुमनःस्रजः, स्फटिकशिलाशकलशुक्लकर्पूरखण्डपूरिताः पात्रीः, कुङ्कुमाधिवासभाञ्जि भाजनानि च मणिमयानि, सहकारतैलतिम्यत्तनुखदिरकेसरजालजटिलानि चन्दनधवलपूगफलफालीदन्तुरदन्तशफरुकाणि, गुञ्जन्मधुकरकुलपीयमानपारिजातपरिमलानि पाटलानि पाटलकानि च, सिन्दूरपात्राणि च पिष्टातकपात्राणि च बाललतालम्बमानविटकवीटकांश्च ताम्बूलवृक्षकान्बिभ्राणेनानुगम्यमानानि चरणनिकुट्टनरणितमणिनूपुरमुखरितदिङ्मुखानि नृत्यन्ति राजकुलमागच्छन्ति समन्तात्सामन्तान्तःपुरसहस्राण्यदृश्यन्त ।

शनैः शनैर्व्यजृम्भत च क्वचिन्नृत्तानुचितचिरंतनशालीनकुलपुत्रकलोकलास्यप्रथितपार्थिवानुरागः, क्वचिदन्तःस्मितक्षितिपालापेक्षितक्षीबक्षुद्र-

---

सहस्राण्यदृश्यन्तेति संबन्धः। स्त्रीराज्यानीति बहुलत्वम्। असुरविवराणीवेत्युज्ज्वलत्वात्। नारायणेत्यादिगौरवत्वाद्बहुलत्वाच्च। स्नानीयं स्नानहितम्। खदिरकेसर खदिरसारम्। फाली खाता। शफरुकाणि समुद्गाः। पारिजातं सुगन्धिद्रव्यचूर्णम्। 'पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरसिंहः। स च मङ्गलार्थः। विटकवीटकं पञ्चाशत्ताम्बूलपत्रैः क्रियते।

शनैःशनैरित्यादौ। व्यजृम्भतोत्सवामोद इति संबन्धः। शालीनमधृष्टता।

दिशाओं से स्त्रियों के राज्य ही खिचकर चले आ रहे हों, या पाताल के विवर ही खुल गए हों, या भगवान् कृष्ण के अन्तःपुर ही टपक पड़े हों, या अप्सराएँ जत्थे के जत्थे पृथिवी पर उतर आई हों। उनके पीछे अनेक नौकर-चाकर थे जो चौड़ी चंगेलियों में स्नानीय चूर्णों से छिड़की हुई फूलों की मालाएँ, तश्तरियों में स्फटिकमणि के टुकड़ों के समान कपूर के खण्ड, कुंकुम से सुगन्धित अनेक प्रकार के मणिमय पात्र, हाथीदाँत की छोटी मजूषा में चन्दन से धवलित पूगफल और आम्र के तैल से सिक्त खदिर के केसर, सुगन्धित द्रव्यों के चूर्ण से भरी हुई लाल थैलियाँ, सिन्दूर के सिन्होरे, पिष्टातक या पटवासकचूर्ण से भरे पात्र और लटकते हुए पचास बीड़ों से लदे हुए छोटे-छोटे ताम्बूल के झाड़ लिए हुए थे। वे आकर अपने मणिनूपुरों की आवाज से दिशाओं को मुखरित करती हुई नाचने लगीं।

शनैः शनैः उत्सव में कुछ और गमक पैदा हुई। कहीं नृत्य का अभ्यास न होने पर भी बड़े ही शर्मालु कुलपुत्र राजा के प्रेम से नाचने लगे। कहीं मतवाली क्षुद्रदासियाँ

दासीसमाकृष्यमाणराजवल्लभः, क्वचिन्मत्तकटककुट्टनीकण्ठलग्नवृद्धार्यसामन्तनृत्तनिर्भरहसितनरपतिः, क्वचित्क्षितिपाक्षिसंज्ञादिष्टदुष्टदासेरकगीतसूच्यमानसचिवचौर्यरतप्रपञ्चः, क्वचिन्मदोत्कटकुटहारिकापरिष्वज्यमानजरत्प्रव्रजितजनितजनहासः, क्वचिदन्योन्यनिर्भरस्पर्धोद्धुरविटकचेटकारब्धावाच्यवचनयुद्धः, क्वचिन्नृपाबलाबलात्कारकृष्टनर्त्यमाननृत्तानभिज्ञान्तःपुरपालभावितभुजिष्यः, सपर्वत इव कुसुमराशिभिः, सधारागृह इव सीधुप्रपाभिः, सनन्दनवन इव पारिजातकामोदैः, सनीहार इव कर्पूररेणुभिः, साट्टहास इव पटहरवैः, सामृतमथन इव महाकलकलैः, सावर्त इव रासकमण्डलैः, सरोमाञ्च इव भूषणमणिकिरणैः, सपट्टबन्ध इव चन्दनललाटिकाभिः, सप्रसव इव प्रतिशब्दकैः, सप्ररोह इव प्रसाददानैकृतसवामोदः।

दास्या अपत्यं दासेरकः। 'क्षुद्राभ्यो वा' इत्यारक्। सचिवो मन्त्री। रतं सुरतम्। कुटहारिका कुम्भदासी। गायकनर्तकभुजिष्याजनरचितः समूहश्चेटकः। अवाच्यवचनानि गाल्यः। भाविताः कथं नृत्यन्तीत्यवलोकिताः। भुजिष्या दास्यः। रासकमण्डलैःस्थ्यस्त्रभ्रान्तनृत्तवृन्दैः। ललाटेऽलंकारो ललाटिका। 'कर्णललाटात्कनलंकारे'। प्ररोहोऽङ्कुरः।

मंद हँसी के साथ राजा का इशारा पाकर सम्राट् के प्रिय-पात्रों को अपनी ओर खींच लेती थीं। कहीं मतवाली बूढ़ी छिनाल स्त्रियाँ बूढ़े आर्य सामन्तों के गले में हाथ डाल देतीं, इस दृश्य को देख महाराज भी हँस पड़ते। कहीं पाजी छोकरे राजा की आंख का इशारा पाकर सचिवों के गुप्त प्रेम की पोल खोलने लगे। कहीं मस्तानी पनिहारिनें बूढ़े संन्यासियों से लिपट कर लोगों को हँसाने लगीं। कहीं एक दूसरे से चखाचखी करने में चालाक बदतमीज नौकर गाली-गलौज करते हुए भिड़ गए। कहीं नृत्य में अनभिज्ञ रनिवास की महिलाओं द्वारा जबर्दस्ती खींचकर नचाए गए अन्तःपुर के प्रतिहारी दासियों के साथ नृत्य में सम्मिलित हो गए। पर्वत के समान जगह-जगह फूलों की ढेरें थीं। धारागृहों की भाँति मदिरा के पनसाले बन गए। पारिजात की सुगन्धि नन्दनवन के समान भरने लगी। ओस जैसी कपूर की धूल भर गई। अट्टहास के समान पटह आवाज करने लगे। अमृत-मथन के समान लोग शोरगुल करने लगे। भँवरियों के समान रासमण्डलियाँ बन गईं। गहनों की मणियों की किरणें रोमाञ्च के सदृश मालूम पड़ीं। माथे पर चंदन के खौर कपड़े की बँधी पट्टी जैसे लगने लगे। बच्चों की केहों-केहों के समान प्रतिध्वनि होने लगी। प्रसन्नता से दिए जाने वाले दान अंकुर की भाँति लगातार बढ़ने लगे।

स्कन्धावलम्बमानकेसरमालाः काम्बोजवाजिन इवास्कन्दन्तः, तरलतारका हरिणा इवोड्डीयमानाः, सगरसुता इव खनित्रैर्निर्दयैश्चरणाभिघातैर्दारयन्तो भुवम्, अनेकसहस्रसंख्याश्चिक्रीडुर्युवानः। कथमपि तालावचरचारणचरणक्षोभं चक्षमे क्षमा। क्षितिपालकुमारकाणां च खेलतामन्योन्यास्फालैराभरणेषु मुक्ताफलानि फेलुः। सिन्दूररेणुना पुनरुत्पन्नहिरण्यगर्भगर्भशोणितशोणाश्मिव ब्रह्माण्डकपालमभवत्। पटवासपांसुपटलेन प्रकटितमन्दाकिनीसैकतसहस्रमिव शुशुभे नभस्तलम्। विप्रकीर्यमाणपिष्टातकपरागपिञ्जरितातपा भुवनक्षोभविशीर्णपितामहकमलकिञ्जल्करजोराजिरञ्जिता इव रेजुर्दिवसाः। संघट्टविघटितहारपतितमुक्ताफलपटलेषु चस्खाल लोकः।

स्थानस्थानेषु च मन्दमन्दमास्फाल्यमानालिङ्ग्यकेन शिञ्जानमञ्जु-

---

केसराणि बकुलानि, ग्रीवारोमवल्लयश्च। काम्बोजा बाह्लिकदेशजाः। आस्कन्दन्त आक्रमन्तः। तालैरवचरन्ति तालावचराः। तालावचरणयुक्तं भ्रमणम्। स्फुटितालिकाशतैर्युक्तं चारणजनस्य कैश्चिक्रमणम्। तत्कांस्यतालिकयाराडाशिष्टापञ्चकुलमारिवकाः दक्षिणापथे तालावा इति प्रसिद्धाः। खेलतां क्रीडताम्। फेलुर्बिभिदुः। शोणाश्मं लोहितदिक्कम्।

स्थानस्थानेष्वित्यादौ। एवंविधेनातोद्येनानुगम्यमानाः पण्यविलासिन्यः प्रानृत्य-

---

हजारों नवयुवक कम्बोज देश के घोड़ों की तरह मौलसिरी की माला कंधे पर लटकाए कुदक्का मारने लगे और खन्ती से पृथ्वी को खन देने वाले सगर के पुत्रों के समान अपने निर्दय चरण के प्रहारों द्वारा पृथिवी को मानों विदीर्ण कर रहे थे। ताल के साथ नृत्य करते हुए चरण के प्रहारों को पृथिवी किस प्रकार सहन कर पाती थी। खेलते हुए राजकुमारों के परस्पर धक्कामुक्की करने से आभूषणों के मोती टूट कर बिखर गए। सिन्दूर की धूल इस प्रकार दिशाओं में फैल गई मानों ब्रह्माण्ड का कपाल फिर से हिरण्यगर्भ के गर्भ से उत्पन्न हो रहा है और उस गर्भ के खून से लदफद है। पटवास की धूल से आकाश मन्दाकिनी की हजारों रेतों को प्रकट करता हुआ शोभित हो रहा था। दिन के आतप पिष्टातक के पीले पराग के उड़ने से पिञ्जरित हो गए, मानों सारे भुवन को आनन्द से कम्पित करने वाले ब्रह्माजी के कमल की धूल से रञ्जित हों। टक्कर लगने से टूटे हुए हार के बिखरे मुक्ताफलों पर पैर पड़ते ही लोग फिसल कर गिरने लगे।

जगह-जगह पर वेश्यायें नृत्य करने लगीं। आलिङ्ग्यक नाम का एक विशेष प्रकार

वेणुना झणझणायमानझल्लरीकेण ताड्यमानतन्त्रीपटहिकेन वाद्यमानानुत्तालालाबुवीणेन कलकांस्यकोशीक्वणितकाहलेन समकालदीयमानानुत्तालतालिकेनातोद्यवाद्येनानुगम्यमानाः, पदे पदे झणझणितभूषणरवैरपि सहृदयैरिवानुवर्तमानताललयाः, कोकिला इव मदकलकाकलीकोमलालापिन्यो विटानां कर्णामृतान्यश्लीलरासकपदानि गायन्त्यः, समुण्डमालिकाः, सकर्णपल्लवाः, सचन्दनतिलकाः, समुच्छ्रिताभिर्वलयावलावाचालाभिर्बाहुलतिकाभिः सवितारमिवालिङ्गयन्त्यः, कुङ्कुमप्रमृष्टिरुचिरकायाः काश्मीरकिशोर्य इव वल्गन्त्यः, नितम्बबिम्बलम्बिविकटकुरण्टकशेखराः प्रदीप्ता इव रागाग्निना, सिन्दूरच्छटाच्छुरितमुखमुद्राः शासनपट्टपङ्क्तय

क्विति संबन्धः। आलिङ्गयको मुरजभेदः। तन्त्री। पटहिका पटहभेदः। न उत्ताला अनुत्ताला अनुद्भटशब्दाः। कांस्यकोशी शय्या। काहलेन व्याप्तेन। काहलं कांस्यद्वयाभिघातः। आतोद्यमिति। उक्तं च—'ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्। वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्। चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम्॥' इति। लयशब्देन ताल एव मानविधानं यतीनामवच्छेदेन विधिं निवर्तयमानो द्रुतमध्यविलम्बिताख्यमानवर्तनविधौ। स एव तालस्तु यस्यवच्छेदमलङ्घयमानः स्यात्। व्यपदेशो लय लति ख्यात इति। मदेन कलो हृष्टः। काकली कलसूक्ष्ममधुरगीतध्वनिः। अश्लीलानि ग्राम्याणि। कुङ्कुमेन परिमृष्टिः परिमार्जनमुद्वर्तनादि। अन्यत्र,—कुङ्कुमप्रमृष्टिः कुङ्कुमस्थलीषु लोटनात्। कुरण्टका अम्लातकानि। तेषां रक्तत्वमाह—प्रदीप्ता इति। मुखमुद्रा वक्त्रटङ्कः। शासनपट्टानां मुखेऽग्रे या

का मृदङ्ग धीरे धीरे बजाया जा रहा था। वंशी भी सुरीली तान में बज रही थी। झांझ भी झड़झड़ा रही थी। तन्त्री पटहिका नामक एक ताशेनुमा छोटा बाजा टुनटुनाया जा रहा था। नीचे की तुम्बी वाली अलाबुकी वीणा बजाई जा रही थी। कांस्यकोशी काहल नाम का वाद्य भी बज रहा था। एक ही समय में ताल के अनुसार तालियां भी बजाई जा रही थीं और इन सबके सम्मिलित नौबत बजती हुई उनके पीछे चल रही थी। डग-डग पर उनके गहने बज उठते थे। मानों सहृदय लोग उनके पीछे ताल और लय का अनुसरण करते चल रहे हों। कोयल के समान वे काकली के अव्यक्त मधुर स्वर में अलापती थीं। सुनने में विटों को प्रिय लगने वाले गाली भरे गीत गा रही थीं। सिर पर पुष्पमाला, कानों में पल्लव और माथे पर चन्दन-तिलक लगाये थीं। वलयों को खनकाती हुई अपनी भुजलताओं को इस प्रकार उठाती मानों सूर्य का आलिङ्गन कर रही हों। कुंकुम से मसले हुए अपने अङ्गों से काश्मीर की नवेलियों के समान मचल रही थीं। उनके नितम्ब पर कुरंटक पुष्प की मालायें लटक रही थीं। मानो राग की अग्नि से जल उठी हों। सिन्दूर

इवाप्रतिहतशासनस्य कंदर्पस्य, मुष्टिप्रकीर्यमाणकर्पूरपटवासपांसुला मनोरथसंचरणरथ्या इव यौवनस्य, उद्दामकुसुमदामताडिततरुणजनाः प्रतीहार्य इव तरुणमहोत्सवस्य, प्रचलत्पत्रकुण्डला लसन्त्यो लता इव मदनचन्दनद्रुमस्य, ललितपदहंसकरवमुखराः समुल्लसन्त्यो वीचय इव शृङ्गाररससागरस्य, वाच्यावाच्यविवेकशून्या बालक्रीडा इव सौभाग्यस्य, घनपटहरवोत्कण्टकितगात्रयष्टयः केतक्य इव कुसुमधूलिमुद्गिरन्त्यः, कमलिन्य इव दिवसमुत्फुल्लाननाः, कुमुदिन्य इव रात्रावनुपजातनिद्राः, आविष्टा इव नरेन्द्रवृन्दपरिवृताः, प्रीतय इव हृदयमपहरन्त्यः, गीतय इव रागमुद्दीपयन्त्यः, पुष्टय इवानन्दमुत्पादयन्त्यः, मदमपि मदयन्त्य इव, रागमपि रञ्जयन्त्य इव, आनन्दमपि आनन्दयन्त्य इव, नृत्यमपि नर्त-

---

मुद्रा दीयन्ते ता अपि ससिन्दूराः। मनोरथेत्यादि। रथाश्च रथ्यासु संचरन्ति। ता अपि तद्वशात्पांसुला भवन्ति। उद्दामेति। प्रतीहार्यश्च। ता अप्येवंविधा भवन्ति। प्रचलन्ति नृत्तवशाद्दोलायमानानि पत्राणि विशेषकानि तथा कुण्डलानि यासाम्, अन्यत्र,—पत्राणि पल्लवाः। कुण्डलानि समूहाः। ललितेषु पदेषु हंसका नूपुराः। 'पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्। हंसकः पादकटकः' इति। यद्वा,—ललितानि पदानि यासां ताश्च ता हंसकरवमुखराश्च। ता ललितपदाश्च ते हंसा एव हंसकाश्चेति वा। बालक्रीडाश्च विवेकशून्याः। घनो निरन्तरः, मेघश्च। केतक्योऽपि सकेतकरजस्काः। निद्रा स्वापः, संकोचश्च। आविष्टा भूतादिगृहीताः। नरेन्द्रो राजा, मन्त्री च। रागोऽभिष्वङ्गः, हिङ्गुलकादिश्च। मदमपि मदयन्त्य इवे-

---

से उनके मुंह की मुद्रा दमक रही थी, मानो अमोघ शासन वाले कामदेव के शासनपट्ट पर लगी हुई सिन्दूर की मुद्रा हो। साड़ियों पर कपूर की धूल की मूंठ छिड़कने से वे इस प्रकार धूल-धूल हो रही थीं मानों स्वेच्छा से विहार करने के लिये यौवन का गलियां हों। बड़ी बड़ी फूल मालाओं से नवयुवकों पर प्रहार करर ही थीं मानो युवकों के महोत्सव की रक्षा करने के लिए नियुक्त प्रतीहारियां हों। उनके पल्लवों के साथ कुण्डल हिलते हुए इस प्रकार शोभित हो रहे थे मानों वे मदनरूपी चन्दनवृक्ष की लताएं हों। अच्छी और बुरी बात का विवेक बिलकुल नहीं कर रही थीं, मानों सौभाग्य की बालक्रीड़ाएं हों। पटह की गम्भीर आवाज से उनके शरीर में रोमाञ्च भर आते थे मानों पराग भरती हुई केतकी के फूल हों। दिन में खिली हुई कमलिनियों के समान और रात में विकसित कुमुदिनियों के समान लग रही थीं। भूतों से आविष्ट की भांति नरेन्द्रों अर्थात् ओझैतों (अथवा राजाओं) से घिरी थीं। प्रीति की तरह हृदय को हर ले रही थीं। गीति

-यमाना इव, उत्सवमप्युत्सवयन्त्य इव, कटाक्षेक्षितेषु पिबन्त्य इवापाङ्ग-शुक्तिभिः, तर्जनेषु संयमयन्त्य इव नखमयूखपाशैः, कोपाभिनयेषु ताड-यन्त्य इव भ्रूलताविभागैः, प्रणयसंभाषणेषु वर्षन्त्य इव सर्वरसान्, चतुर-चङ्क्रमणेषु विकिरन्त्य इव विकारान्, पण्यविलासिन्यः प्रानृत्यन्।

अन्यत्र वेत्रिवेत्रवित्रासितजनदत्तान्तरालाः, ध्रियमाणधवलातपत्रवना वनदेवता इव कल्पतरुतलविचारिण्यः, काश्चित्स्कन्धोभयपालीलम्बमान-लम्बोत्तरीयलग्नहस्ता लीलादोलाधिरूढा इव प्रेङ्खन्त्यः, काश्चित्कनककेयूर-कोटिविपाट्यमानपट्टांशुकोत्तरङ्गास्तरङ्गिण्य इव तरच्चक्रवाकसीमन्त्यमान-स्रोतसः, काश्चिदुद्धूयमानधवलचामरसटालग्नत्रिकण्टकत्रलितविकटकटा-क्षाः, सरस्य इव हंसाकृष्यमाणनीलोत्पलवनाः, काश्चिच्चलचरणच्युतालक्त-

---

त्यादि। मदेन हि सर्वो मत्तो भवति, मदस्तु ता आश्रित्य मत्तः। एवमुत्तरत्र।

अन्यत्रेत्यादौ। राजमहिष्यो विलेसुरिति संबन्धः। ध्रियमाणधवलातपत्रवना इत्यादौ वाक्यार्थोपमा विचार्या। पाली पङ्क्तिः। कनककेयूरेणेति। कनकग्रहणेन चक्र-वाकसादृश्यमाह। तरङ्ग उत्तरीयम्। सीमन्त्यमानानि द्विधाक्रियमाणानि। त्रिक-

---

की तरह राग (स्वरलय, या स्नेह) को उद्दीप्त कर रही थीं। आनन्द उत्पन्न करने में स्फूर्ति के समान थीं। मानों मद को भी मतवाला बना रही थीं, राग को भी रंजित कर रही थीं, आनन्द को भी आनन्दित कर रही थीं, नृत्य को भी नचा रही थीं, उत्सव को भी उत्सव में लीन कर रही थीं। इस प्रकार कटाक्षों से देखती मानों अपाङ्ग की सीपों से पान कर रही थीं। जब कोप का अभिनय करतीं तो लगता कि अपनी भौहें चला-चलाकर ताड़न करती हैं। प्रणय की बातचीत में तो मानों सारे रसों को उड़ेल कर रख देतीं। नृत्य की चक्करदार मुद्राओं में मानों कामजनित विकारों को छींट रही थीं।

दूसरी ओर राजमहिषियां भी नृत्य में कूद पड़ीं। दर्शनार्थी लोगों को द्वारपालों ने डण्डे से बाहर रोक रखा। तब इन्हें नाचने का अवकाश मिल गया। सिर पर लगे हुए धवल छत्र के साथ नाच रही थीं, मानों कल्पवृक्षों के नीचे विचरण करने वाली वनदेवता हों। कुछ के दोनों तरफ कन्धों से उत्तरीय के लम्बे छोर लटक रहे थे मानों हिंडोले पर बैठकर झूल रही हों। कुछ के अंशुक केयूर के नुकीले अग्रभाग में लगकर चर-से फट जाते और फहराने लगते थे, मानों नदियों के समान थीं जिनकी लहरें चक्रवाक पक्षी के तैरने से दो भागों में विभक्त हो जाती हैं। कानों के त्रिकंटक में डोलते हुए चंवर के बालों के फंस जाने से कुछ अपने कटाक्ष सिमट ले रही थीं, यह दृश्य ऐसा लगता मानों हंस तालाब के नीले कमलों को खींच रहे हों। कुछ अपने चञ्चल पैर में लगे हुए आलते से,

कारुणस्वेदशीकरसिच्यमानभवनहंसाः, संध्यारागरज्यमानेन्दुबिम्बा इव कौमुदीरजन्यः, काश्चित्कण्ठनिहितकाञ्चनकाञ्चीगुणाञ्चितकञ्चुकिविकारा-कुञ्चितभ्रुवः, कामवागुरा इव प्रसारितबाहूपाशा राजमहिष्यः प्रारब्ध-नृत्ता विलेसुः।

सर्वतश्च नृत्यतः स्त्रैणस्य गलद्भिः पादालक्तकैररुणिता रागमयीव शुशोण क्षोणी। समुल्लसद्भिः स्तनमण्डलैर्मङ्गलकलशमय इव बभूव महोत्सवः। भुजलताविक्षेपैर्मृणालवलयमय इव रराज जीवलोकः। समु-ल्लसद्भिर्विलासस्मितैस्तडिन्मय इवाक्रियत कालः। चञ्चलानां चक्षुषामं-शुभिः कृष्णसारमया इवासन्वासराः। समुल्लसद्भिः शिरीषकुसुमस्तबक-कर्णपूरैः शुकपिच्छमय इव हरितच्छायोऽभूदातपः। विस्रसमानैर्धम्मि-ल्लतमालपल्लवैः कज्जलमयमिवालक्ष्यतान्तरिक्षम्। उत्क्षिप्तैर्हस्ताकिसलयैः

पटकः कर्णाभरणभेदः। 'त्रिकण्टकस्तु त्र्यस्रः स्यात्त्रिभी रत्नैश्च भूषणम्'। कौमुदी कार्तिकज्योत्स्ना। तद्युक्ता रजन्यो रात्रयः। आकुञ्चित आकृष्टः। विलेसुश्चिक्रीडुः।

स्त्रीणां समूहः स्त्रैणं तस्य। शुशोण शोणाभूत्। कालो होरादिलक्षणः, कालश्च कृष्णः। कथं तडिन्मयो रक्तवर्ण इति विरोधच्छाया। धम्मिल्लाः संयताः केशाः।

जो देह से टपकते हुए पसीने की बूँदों को लाल कर रहा था, भवन के हंसों को रँग रहा थीं मानों सन्ध्या की लाली से नहाये हुए चन्द्र से युक्त कार्तिक की चांदनी भरी रातें हों। कुछ अपनी सोने की करधनी को बूढ़े कंचुकियों के गले में डालकर उनके विकृत भावों को भौंहें नचा-नचाकर निहार रही थीं। इस प्रकार कामदेव की युवक लोगों को बांधने वाली डोरी के समान अपने भुजपाशों को फैलाकर उन्होंने नाचना शुरू किया।

चारों ओर नाचती हुई स्त्रियों के पैर के आलते से पृथिवी रागमयी की भांति लाल हो गयी। उनके उभरते हुए स्तनमण्डलों से महोत्सव में केवल मङ्गलकलश ही दिखाई पड़ते थे। सारा संसार उनकी भुजलताओं के विक्षेप से मानों मृणालों से भरा प्रतीत होने लगा। वह उनकी कौंधती हुई मुस्कानों से समय मानों बिजलियों से भर गया। चंचल आंखों की रश्मियों से मानों दिन मृगों से भरे प्रतीत होने लगे। शिरीष पुष्प के गुच्छों के कनफूल इतने समुल्लसित हो गए कि आतप की छाया ही प्रतीत हो गई और ऐसा लगा कि सुग्गे के हरे हरे पंख बिछ गए। बधे हुए केशपाश में खोंसे गए तमालपल्लव इस प्रकार खुलकर चूने लगे मानों आकाश में काजल भरने लगा। ऊपर उत्क्षिप्त हाथों से सृष्टि कमलिनियों से भरी जैसी शोभित होने लगी। माणिक्य के बने इन्द्रायुधों की किरणों से सूर्य की रश्मियां चाषपक्षी के पंख के समान शोभित हुईं। गहनों की झनझनाहट की प्रतिध्वनि

कमलिनीमय्य इव बभासिरे सुभ्रुवः। माणिक्येन्द्रायुधानामर्चिषा चाषपत्रमया इव चकाशिरे रविमरीचयः। रणतामाभरणगणानां प्रतिशब्दकैः किङ्किणीमय्य इव शिशिञ्जिरे दिशः। जरत्योऽप्युन्मादिन्य इव रमण्यो रेणुः। वर्षीयांसोऽपि ग्रहगृहीता इव नापत्रेपिरे। विद्वांसोऽपि मत्ता इवात्मानं विसस्मरुः। निनर्तिषया मुनीनामपि मनांसि विपुस्फुलुः। सर्वस्वं च ददौ नरपतिः। दिशि दिशि कुबेरकोषा इवालुप्यन्त लोकेन द्रविणराशयः।

एवं च वृत्ते तस्मिन्महोत्सवे, शनैः शनैः पुनरप्यतिक्रामति काले, देवे चोत्तमाङ्गनिहितरक्षासर्षपे, समुन्मिषत्प्रतापाग्निस्फुलिङ्ग इव गोरोचनापिञ्जरितवपुषि, समभिव्यज्यमानसहजक्षात्रतेजसीव हाटकबद्धविकटव्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डितग्रीवके हृदयोद्भिद्यमानदर्पाङ्कुर इव, प्रथमाव्यक्तजल्पितेन सत्यस्य शनैःशनैरोंकारमिव कुर्वाणे, मुग्धस्मितैः कुसुमैरिव मधुकरकलानि बन्धुहृदयान्याकर्षति, जननीपयोधरकलशपयःसीकरसेकादिव जायमानैर्विलासहसिताङ्कुरैर्दशनकैरलंक्रियमाणमुखकमलके चारित्र

बभासिरेऽशोभन्त। माणिक्यमुत्कृष्टं रत्नम्। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। शिशिञ्जिरे सशब्दा अभवन्। रेणुः स्तनितवत्यः। वर्षीयांसो वृद्धतराः। अपत्रेपिरे लज्जामभजन्त। विपुस्फुलुश्चेरुः।

एवं चेत्यादौ। देवी यशोमती राज्यश्रियमधत्तेति संबन्धः। हाटकं सुवर्णम्।

इस प्रकार उठी मानों दिशाओं में किंकिणियां बजने लगीं। बूढ़ी स्त्रियां भी युवतियों के समान ठमकने लगीं। बड़े-बूढ़े भी इस प्रकार निर्लज्ज हो गए मानों उनपर कोई ग्रह सवार हो। पढ़े लिखे भी लोग मतवाले होकर अपने आपको भूल बैठे। नाचने की इच्छा से मुनियों के मन में भी खलबली मचने लगी। राजा ने अपना सब कुछ लुटा दिया। कुबेर के खजानों की भांति धनराशियों को लोगों ने लूट लिया।

इस प्रकार वह महोत्सव समाप्त हुआ। धीरे धीरे फिर समय बीतने लगा। हर्ष भी बढ़ने लगा। उसके मस्तक पर रक्षा के लिये सरसों रखी जाती थी। गोरोचना की उबटन से उसकी देह पीली हो गयी थी, मानों फूटकर निकली हुई प्रतापाग्नि के कण छा गए हों। उसकी ग्रीवा में बाघ के नखों की पंक्ति सोने में जड़वाकर पहना दी गयी थी, मानों उसका स्वाभाविक क्षत्रिय तेज अभिव्यक्त हो रहा था। सत्ययुग का धीरे धीरे आरम्भ करता हुआ सा ओंकार के समान पहले पहल वह तुतलाती आवाज में बोलने लगा, मानों उसके हृदय में पनपते हुए दर्प का अंकुर हो। फूल जैसे भौरों को अपनी ओर खींच लेते

इवान्तःपुरस्त्रीकदम्बकेन पाल्यमाने, मन्त्र इव सचिवमण्डलेन रक्ष्यमाणे, वृत्त इव कुलपुत्रकलोकेनामुच्यमाने, यशसीवात्मवंशेन संवर्ध्यमाने, मृगपतिपोत इव रक्षिपुरुषशस्त्रपञ्जरमध्यगते, धात्रीकराङ्गुलिलग्ने पञ्चषाणि पदानि प्रयच्छति हर्षे, षष्ठं वर्षमवतरति च राज्यवर्धने देवी यशोमती गर्भेणाधत्त नारायणमूर्तिरिव वसुधां देवीं राज्यश्रियम् ।

पूर्णेषु च प्रसवदिवसेषु दीर्घरक्तनालनेत्रामुत्पलिनीमिव सरसी, हंसमधुरस्वरां शरदमिव प्रावृट्, कुसुमसुकुमारावयवां वनराजिमिव मधुश्रीः, महाकनकावदातां वसुधारामिव द्यौः, प्रभावर्षिणीं रत्नजातिमिव वेला, सकलजननयनानन्दकारिणीं चन्द्रलेखामिव प्रतिपत्, सहस्रनेत्रदर्शनयोग्यां जयन्तीमिव शची, सर्वभूभृदभ्यर्थितां गौरीमिव मेना प्रसूतवती

ओंकारम् । ओमिति यावत् । पयोधरौ स्तनौ, पयोधराश्च मेघाः । पयः क्षीरम्, जलं च । पञ्च वा षड् वा पञ्चषाणि ।

पूर्णेष्वित्यादौ । देवी दुहितरं प्रसूतवतीति संबन्धः । रक्तनाले रक्ते एव नेत्रे यस्याः, रक्तानि नालानि नेत्राणि मूलानि च यस्याः । हंसवत्तैश्च मधुरः । अवयवा अङ्गानि, विभागाश्च । माधवो वसन्तः । महाकनकं तिलसुवर्णम् । वसुधारा धनवृष्टिः । इयं च महाभ्युदयसूचनाय दिवा पतति । वेला जलविकृतिः । इन्द्रोऽपि सहस्रनेत्रः । जयन्तः शक्रपुत्रः । भूभृतो राजानः, पर्वताश्च । मेना हिमवन्महिला ।

हैं वैसे ही वह अपनी मुसकान से बन्धुओं के मन हर लेता था । माता के स्तनकलश की दूधधार से सींचने से उत्पन्न विलासपूर्ण हँसी के अंकुर के समान उसके दांत मुखकमल को अलंकृत कर रहे थे । अन्तःपुर की स्त्रियां चारित्र्य की भांति उसका पालन करती थीं । सचिव लोग यन्त्र की भांति उसकी रक्षा में तत्पर रहते थे । कुलीन राजपुत्र सदाचार की भांति उसे कभी नहीं छोड़ते थे । यश की भांति वह अपने वंश के साथ बढ़ने लगा । शेर के बच्चे की भांति उसके चारों ओर शस्त्र लिये हुये रक्षि पुरुष तैनात रहने लगे । जब वह धाय की उंगली पकड़कर पांच छः कदम चलने लगा और जब राज्यवर्धन ने भी छठे वर्ष में पदार्पण किया तब देवी यशोमती ने राज्यश्री को गर्भ में उस प्रकार धारण किया जैसे नारायण की मूर्ति पृथिवी को धारण करती है ।

जब प्रसव के दिन पूरे हो गए तब रानी ने पुत्री को पैदा किया । सरसी से उत्पन्न कमलिनी की भाँति उसके बड़े और लाल नेत्र थे । प्रावृट् से उत्पन्न शरद् की भाँति हंसों जैसा उसका स्वर था । वसन्त की श्री से उत्पन्न वनराजि की भाँति उसके अंग फूल की भाँति कोमल थे । आकाश से होने वाली सुवर्णवृष्टि के समान वह सोने जैसे अवदात

दुहितरम्। यया द्वयोः सुतयोरुपरि स्तनयोरिवैकावलीलतया नितरामराजत जननी।

अस्मिन्नेव तु काले देव्या यशोमत्या भ्राता सुतमष्टवर्षदेशीयमुद्भूयमानकुटिलकाकपक्षकशिखण्डं खण्डपरशुहुंकाराग्निधूमलेखानुबद्धमूर्धानं मकरध्वजमिव पुनर्जातम्, एकेनेन्द्रनीलकुण्डलांशुश्यामलितेन शरीरार्धेनेतरेण च त्रिकण्टकमुक्ताफलालोकधवलितेन संपृक्तावतारमिव हरिहरयोर्दर्शयन्तम्, पीनप्रकोष्ठप्रतिष्ठितपुष्पलोहवलयं परशुराममिव क्षत्रक्षपणक्षीणपरशुपाशचिह्नितं बालताङ्गतम्, कण्ठसूत्रग्रथितभङ्गुरप्रवालाङ्कुरं हिरण्यकशिपुमिवोरःकाठिन्यखण्डितनरसिंहनखरखण्डम्, गृही-

---

ययेत्यादौ। यया दुहित्रा। द्वयोः सुतयोरुपरि जातया यशोमती नितरामराजतेति संबन्धः।

अस्मिन्नित्यादौ। देव्या यशोमत्या भ्राता स्वतनयं भण्डिनामानं कुमारयोरनुचरमर्पितवानिति संबन्धः। काकपक्षकश्चूडा एव शिखण्डः पिच्छम्। पुष्पलोहं मणिभेदः। मृताग्निहोत्रं रथचक्रमिति केचित्। रणहतवीरकायशातनवशात्परशोः

वर्णन की थी। जैसे समुद्र की वेला रत्नों को छिटका देती है वैसे ही वह अपनी कान्ति फैला रही थी। प्रतिपदा से उत्पन्न चन्द्रलेखा की भाँति वह सबके नयन आनन्दित करती थी। इन्द्राणी से उत्पन्न जयन्ती की भाँति वह सहस्र नेत्रों (अथवा सहस्र नेत्र इन्द्र) द्वारा देखने योग्य थीं। मेना से उत्पन्न पार्वती की भाँति समस्त भूभृत् (राजा या पर्वत) उसका लाड़-प्यार करते थे। जैसे दोनों स्तनों के ऊपर एकावली लता सुशोभित होती है उसी प्रकार रानी यशोमती दोनों पुत्रों के बाद उस पुत्री से अत्यन्त सुशोभित हुई।

इसी समय यशोमती के भाई ने आठ वर्ष की उम्र वाले भण्डि नामक अपने पुत्र को राज्यवर्धन और हर्ष के संगी-साथी के रूप में रहने के लिए भेजा। उसकी शिखा मोर-पंख की भाँति लहरा रही थी, मानों शिवजी की क्रोधाग्नि की धूमलेखा को सिर से लिए हुए कामदेव फिर उत्पन्न हो गया हो। उसके शरीर का एक अर्धभाग इन्द्रनीलमणि के कुंडल की किरणों से श्याम वर्ण का हो रहा था और दूसरा भाग त्रिकंटक में पिरोई हुई मोती की आभा से सफेद हो गया था, मानों विष्णु और शिव के सम्मिलित अवतार का दृश्य उपस्थित कर रहा हो। उसकी मोटी कलाई में पुखराज का कड़ा पड़ा था, मानों क्षत्रियों का विनाश करने में घिसे हुए परशु से चिह्नित भगवान् परशुराम ही बालक रूप में उत्पन्न हों। गले में सूत्र में बँधा हुआ मूंगे का टेढ़ा टुकड़ा सिंहनख की तरह लग रहा था मानों हिरण्यकशिपु जिसकी कड़ी छाती पर भगवान् नृसिंह के नख का खण्ड टूट कर

तज्जन्मान्तरम् शैशवेऽपि सावष्टम्भं बीजमिव वीर्यद्रुमस्य भण्डिनामानम-नुचरं कुमारयोरर्पितवान् ।

अवनिपतेस्तु तस्योपरि पुत्रयोस्तृतीयस्य नेत्रयोरिवेश्वरस्य तुल्यं दर्शनमासीत् । राजपुत्रावपि सकलजीवलोकहृदयानन्ददायिनौ तेन प्रकृतिदक्षिणेन मधुमाधवाविव मलयमारुतेनोपेतौ नितरां रेजतुः । क्रमेण चापरेणेव भ्रात्रा प्रजानन्देन सह वर्धमानौ यौवनमवतेरतुः । स्थिरोरुस्तम्भौ च पृथुप्रकोष्ठौ दीर्घभुजार्गलौ विकटोरःकवाटौ प्रांशुसालाभिरामौ महानगरसंनिवेशाविव सर्वलोकाश्रयक्षमौ बभूवतुः ।

अथ चन्द्रसूर्याविव स्फुरज्ज्योत्स्नायशःप्रतापाक्रान्तभुवनावभिरामदु-

---

पाशावशेषता । भङ्गुरः कुटिलः । बीजमिवेति । शैशवाद्बीजावस्थोत्प्रेक्षते, न तु द्रुमावस्था ।

अवनीत्यादौ । अवनिपतेस्तु तस्योपरि पुत्रयोस्तुल्यं दर्शनमालोकनमिति संबन्धः । अन्यत्र,–दर्शनं दृष्टिः । तृतीयस्येति च । ईश्वरस्येति साधारणम् । सकलेत्यादि साधारणम् । दक्षिणोऽनुकूलः, दाक्षिणात्यश्च । मधुमाधवौ चैत्रवैशाखौ । ऊरुस्तम्भाविव उरवः महान्तश्च स्तम्भाः । 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः' । स्थानविशेषो वा । कवाटो द्वारपट्टः । सालो वृक्षभेदः, प्राकारश्च । सर्वलोकेत्यादि साधारणम् ।

अथेत्यादौ । तौ सर्वस्यामेव पृथिव्यां प्रकाशतां जग्मतुरिति संबन्धः । स्फुरज्ज्योत्स्नाजालं यद्यशस्तथा प्रतापस्ताभ्याम्; अन्यत्र,–ज्योत्स्नायश इव भुवनाक्रमण-

---

लग गया हो, फिर से उत्पन्न हो गया । इस शैशवकाल में भी वह तेजस्वी के सदृश लग रहा था । पराक्रम के वृक्ष का मानों वह बीज था ।

भण्डि के ऊपर राजा की दृष्टि दोनों पुत्रों के बीच शिवजी के तीसरे नेत्र के समान थी । समस्त जीवलोक को आनन्दित करने वाले दोनों राजपुत्र भी स्वभाव से दक्षिण (अनुकूल) उस भण्डि से अत्यन्त घुल-मिल गए, जैसे चैत्र और वैशाख दक्षिण की ओर से बहने वाले मलयानिल के साथ हो जाते हैं । क्रमशः दूसरे भाई के समान प्रजाओं के आनन्द के समान बढ़ते हुए यौवन को प्राप्त हुए । उनके स्तम्भ की भाँति स्थिर दो-दो ऊरु दण्ड, द्वार प्रकोष्ठ की भाँति सुगठित प्रकोष्ठ, अर्गलादण्ड की भाँति दीर्घ भुजाएँ, किवाड़ के पल्ले की भाँति चौड़ी छाती और प्राकार की भाँति ऊँचा आकार ऐसा लगता था मानों सारे संसार के आश्रय के योग्य किसी महानगर की रचना हुई हो ।

राज्यवर्धन और हर्ष दोनों का यश थोड़े ही समय में अन्य द्वीपों में भी फैल गया । चन्द्र की ज्योत्स्ना और सूर्य के प्रताप के समान उनके भी यश और प्रताप सारे संसार

निरीदयौ, अग्निमारुताविव समभिव्यक्ततेजोबलावेकीभूतौ, शिलाकठिनकायबन्धौ हिमवद्विन्ध्याविवाचलौ, महावृषाविव कृतयुगयोग्यौ, अरुणगरुडाविव हरिवाहनविभक्तशरीरौ, इन्द्रोपेन्द्राविव नागेन्द्रगतौ, कर्णार्जुनाविव कुण्डलकिरीटधरौ, पूर्वापरदिग्भागाविव सर्वतेजस्विनामुदयास्तमयसंपादनसमर्थौ, अमान्ताविवातिमानेनासन्नवेलार्गलनिरोधसंकटे कुकुटीरके, तेजःपराङ्मुखीं छायामपि जुगुप्समानौ, स्वात्मप्रतिबिम्बेनापि पादनखलग्नेन लज्जमानौ, शिरोरुहाणामपि भङ्गेन दुःखमवतिष्ठमानौ,

---

समर्थत्वम्। प्रताप आयतिः, आतपश्च। तेजस्तैक्ष्ण्यम्, प्रकाशश्च। बलं सामर्थ्यम्। उभयत्राप्येकीभूतावन्योन्यानुवर्तिनौ, मिलितौ च। शिलावत्ताभिश्च कठिनः। अचलावकम्पौ, गिरी चाचलौ। कृतयुगमाद्ययुगभेदः, मूर्धन्यकाष्ठं च। योग्यावुचितौ, योग्या च शिक्षा। यद्वा,-कृतयुगे तत्र शकटादौ समर्थौ। हरयोऽश्वाः, सूर्यविष्णू च हरी। उक्तं च—'यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु। शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु॥' इति। विभक्तं स्कन्धमध्यादिविभागेन स्थितम्, परिकल्पितं च नाग ऐरावणः, शेषश्च। नागेन्द्रवद्गतं ययोः, नागेन्द्रे वा गतावारूढौ। तेजस्विनो वीराः, आदित्याश्च। उदयो वृद्धिः, आविर्भावश्च। अस्तमयो नाशः, तिरोधानं च। अमान्ताविव वर्तमानौ। वेला जलनिधेः, जलमर्यादा। कुर्भूमिरेव कुटीरकं

पर छा गए और दोनों (चन्द्र के समान) अभिराम एवं (सूर्य के समान) दुर्धर्ष हो गए। अग्नि और वायु के समान दोनों में तेज और बल बराबर अभिव्यक्त हुए और दोनों जैसे एक हो गए। हिमालय और विन्ध्याचल के समान दोनों अडिग हुए और उनके शरीर की गठन शिला जैसी कड़ी थी। दो महावृषभ के समान कृतयुग अर्थात् सतयुग के उचित (जुआठ धारण करने योग्य) थे। अरुण और गरुड़ के समान दोनों अलग-अलग घोड़े की सवारी करते थे (अरुण पक्ष में-सूर्य के वाहन अर्थात् सारथि के रूप में, और गरुड पक्ष में-विष्णु के वाहन रूप में विभक्त शरीर वाले)। कर्ण और अर्जुन के समान कुण्डल और किरीट धारण करते थे। पूर्व और पश्चिम दिग्भाग के समान समस्त तेजस्वियों (सूर्य और चन्द्र) का उदय और अस्त करने में समर्थ थे। उन्होंने अपना इतना विस्तार कर लिया कि पृथिवी की कुटिया के संकीर्ण स्थान में अँट नहीं पा रहे थे, जिसमें समुद्रतट की अर्गला लगा दी गई थी। तेज से अलग होकर रहने वाली छाया को भी वे हीन दृष्टि से देखते थे। अपने पैर के नखों में गिरकर लगे हुए अपने शरीर के प्रतिबिम्ब से भी वे लज्जा का अनुभव करते थे। सिर के बालों को काटने से भी उन्हें दुःख का अनुभव होता। अपनी चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित होते हुए अपने ही छत्र को दूसरा समझकर

चूडामणिसंक्रान्तेनापि द्वितीयेनातपत्रेणापत्रपमाणौ, भगवति षण्मुखेऽपि स्वामिशब्देनासुखायमानश्रवणौ, दर्पणदृष्टेनापि प्रतिपुरुषेण दूयमाननयनौ, संध्याञ्जलिघटनेष्वपि शूलायमानोत्तमाङ्गौ, जलधरधृतेनापि धनुषा दोधूयमानहृदयौ, आलेख्यक्षितिपतिभिरप्यप्रणमद्भिः संतप्यमानचरणौ, परिमितमण्डलसंतुष्टं तेजः सवितुरप्यबहुमन्यमानौ, भूभृदपहृतलक्ष्मीकं सागरमप्युपहसन्तौ, बलवन्तमकृतविग्रहं मारुतमपि निन्दन्तौ, हिमवतोऽपि चमरीवालव्यजनवीजितेन दह्यमानौ, जलधीनामपि शङ्खैः खिद्यमानौ, चतुःसमुद्राधिपतिमपरं प्रचेतसमप्यसहमानौ, अनपहृतच्छत्रानपि विच्छायानवनिपालान्कुर्वाणौ, माधुष्वप्यसेवितप्रसन्नौ, मुखेन मधु

जरद्गृहम् । भङ्गः कुञ्चितत्वम्, युद्धे पलायनं च । अपत्रपमाणौ लज्जन्तौ । स्वामी कुमारः, प्रभुश्च । प्रतिपुरुषेणेति । स्पर्धायां प्रतिशब्दः । दोधूयमानं संतप्यमानम् । मण्डलं बिम्बम्, विषयश्च । तेजः प्रकाशः, तैक्ष्ण्यं च । भूभृदत्र प्रकरणान्मन्दरः, राजानश्च भूभृतः । लक्ष्मीः समृद्धिरपि । विग्रहं वैरम्, देहश्च । अनपहृतेत्यादि वर्ण्यमानवयोवस्थाभिप्रायेणोक्तम् । छाया कान्तिः, आतपप्रतिपक्षजातिश्च । सति छत्रे विच्छायत्वं न भवतीति विरोधः । माधुष्विति । साधूनां सेवाव्यतिरेकेण प्रसादायोग्यत्वम् । प्रसन्नौ प्रसादवन्तौ, सुरापि प्रसन्ना । मधु माधुर्यम्, मद्यं च । असेवितप्रसन्नश्च कथं मुखेन मधु क्षरतीति विरोधः । ऊष्मा स्मयः, तापश्च ।

लज्जित होते थे । भगवान् कार्तिकेय के लिए भी स्वामी शब्द का व्यवहार करना उनके कानों को सुखकर नहीं लगता । दर्पण में अपने ही प्रतिबिम्ब को किसी दूसरे प्रतिस्पर्धी का समझकर उनकी आँखों को कष्ट होता । संध्या को प्रणाम करने के लिए हाथ जोड़ते ही उनके सिर में पीड़ा होने लगती । उनके सामने मेघ भी जब धनुष धारण करता तो उनके हृदय में कँपकँपी होने लगती । सिर नहीं झुकाते हुए चित्रलिखित राजाओं को देखकर उनके पैर मारे क्रोध के थरथराने लगते । सूर्य के मण्डल में घिरे हुए तेज को भी वे बहुत नहीं मानते थे । हरी हुई लक्ष्मी वाले समुद्र की भी वे हँसी उड़ाते थे । बलवान् होकर भी युद्ध नहीं करने वाले (अथवा शरीर से रहित) वायु की भी वे निन्दा करते थे । हिमालय को भी चमरी के बालों से झले जाते देखकर वे भीतर-भीतर जलते थे । समुद्रों के भी शंखों (शंख संज्ञक निधियों) को देखकर खिन्न होते थे । चारों समुद्रों पर आधिपत्य करने से दूसरे वरुण को भी सह नहीं पाते थे । छत्र छीन कर भी राजाओं को छायारहित (कान्तिहीन) कर देते थे । सज्जनों पर सेवा के बिना ही प्रसन्न रहते (अथवा प्रसन्ना अर्थात् मदिरा के न सेवन करने पर भी) और मुख से उनके प्रति मीठी बात बोलते (अथवा मधु अर्थात् मदिरा को मुँह से उगलते) । दुष्ट राजाओं के वंश को अपनी गर्मी

क्षरन्तौ, दुष्टराजवंशानूष्मणा दूरस्थितानपि म्लानिमानयन्तौ, अनुदिवसं शस्त्राभ्यासश्यामिकाकलङ्कितमशेषराजकप्रतापाग्निनिर्वपणमलिनमिव करतलमुद्वहन्तौ, योग्याकालेषु धीरैर्धनुर्ध्वनिभिरभ्यर्णोपभोगाद्दिग्वधूभिरिवालपन्तौ राज्यवर्धन इति हर्ष इति सर्वस्यामेव पृथिव्यामाविर्भूतशब्दप्रादुर्भावौ, स्वल्पीयसैव कालेन द्वीपान्तरेष्वपि प्रकाशतां जग्मतुः।

एकदा च तावाहूय भुक्तवानभ्यन्तरगतः पिता सस्नेहमवादीत्—'वत्सौ ! प्रथमं राज्याङ्गं, दुर्लभाः सद्भृत्याः। प्रायेण परमाणव इव समवायेष्वनुगुणीभूय द्रव्यं कुर्वन्ति पार्थिवं क्षुद्राः। क्रीडारसेन नर्तयन्तो मयूरतां नयन्ति बालिशाः। दर्पणमिवानुप्रविश्यात्मीयां प्रकृतिं संक्राम-

---

ऊष्मणा च दाहशक्त्या। वंशा वेणवः। निकटस्थो म्लानीक्रियते न तु दूरस्थ इति विरोधः। निर्वपणं शमनम्। योग्या अभ्यासः। अभ्यर्णः प्रत्यासन्नः शब्दः। प्रादुर्भावः ख्यातिः।

प्रथमं प्रधानभूतम्। प्रायेणेति। क्षुद्राः प्रायेण समवायेषु मन्त्रेष्वनुगुणीभूय यथा क्षुद्रा अल्पपरिमाणाः परमाणवः पार्थिवं पृथिव्यादिजातीयं घटादिद्रव्यं कुर्वन्ति। कथं समवायेष्वनुगुणीभूयायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानामिह प्रत्ययहेतुः। संयोगः समवायः। यथा तन्तुषु पट इति। कार्यस्य द्रव्यस्यावयविन आरम्भं प्रतियोगीभावोऽनुगुणत्वम्। मयूरो धूर्तजनयोग्यो हासो वा, शिखण्डी च। बालिशा धूर्ताः, कुमाराश्च। बालका हि क्रीडारसेन मयूरं नर्तयन्ते। अनुप्रविश्य

से दूर से ही म्लान कर देते थे। प्रतिदिन शस्त्र के अभ्यास करने से दाग पड़े हुए और समस्त राजाओं की प्रतापाग्नि को बुझाने से मलिन अपने दोनों करतलों को धारण करते थे। अभ्यास-काल में धनुष की गम्भीर टंकार से मानों निकट में उपभोग की भावना से दिगङ्गनाओं के साथ बातचीत करते थे। राज्यवर्धन और हर्ष इन दोनों शब्दों का प्रादुर्भाव सारी पृथिवी में हो गया।

एक समय भोजन करने के बाद दोनों पुत्रों को पिता ने बुलाकर स्नेह के साथ कहा—'बच्चे, अच्छे सचीव ही राज्य के प्रधान अङ्ग होते हैं। 'जैसे छोटे-छोटे परमाणु समवाय सम्बन्ध से एकत्र होकर पार्थिव द्रव्य को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार क्षुद्र प्रकृति के लोग खुशामद की बात करके राजा को साधारण जन बना देते है। धूर्त लोग विविध क्रिड़ाओं के आनन्द में उसे फँसाकर मयूर के समान उसे नचाने लगते हैं। चट्टे-नट्टे लोग दर्पण के समान उसमें प्रवेश करके अपनी प्रकृति को उसमें संक्रान्त कर देते हैं। ठग विद्या में निपुण लोग झूठ-मूठ की बातों को दिखाकर उसकी बुद्धि को खराब कर

यन्ति पल्लविकाः। स्वप्ना इव मिथ्यादर्शनैरसद्बुद्धिं जनयन्ति विप्रलम्भकाः। गीतनृत्यहसितैरुन्मत्ततामावहन्त्यपेक्षिता विकारा इव वातिकाः। चातका इव तृष्णावन्तो न शक्यन्ते ग्रहीतुमकुलीनाः। मानसे मीनमिव स्फुरन्तमेवाभिप्रायं गृह्णन्ति जालिकाः। यमपट्टिका इवाम्बरे चित्रमालिखन्त्युद्गीतकाः। शल्यं हृदये निक्षिपन्त्यतिमार्गणाः। यतः सर्वैरेभिर्दोषाभिषङ्गैरसंगतौ बहुधोपधाभिः परीक्षितौ शुची विनीतौ विक्रान्तावभिरूपौ मालवराजपुत्रौ भ्रातरौ भुजाविव मे शरीरादव्यतिरिक्तौ कुमारगुप्तमाधव-

---

चित्तरञ्जनां कृत्वा, आसाद्य च प्रकृतिं स्वभावम्, शरीरं च। पल्लविका विटाः, किसलयानि च। मिथ्यादर्शनैरसदागमैः, अलीकवस्तुप्रकाशनैश्च। असतीमशोभनां बुद्धिम्, असत्यविद्यमाने च बुद्धिः। विप्रलम्भकाः प्रतारकाः। वातिका धूर्ताः, वातोत्थिताश्च। तृष्णा धनगर्धा, पिपासा च। ग्रहीतुमावर्जयितुम्, अवष्टब्धुं च। अकुलीना अकुलोद्भूताः। कौ भूमौ न निलीनाश्चाकाशचारित्वात्। मानसे चित्ते, सरोभेदे च। स्फुरन्तमुत्पद्यमानम्। अनुत्पन्नाभिभवमिति यावत्। सति कार्ये हि सर्व एवाभिप्रायं लक्षयति। एतेऽत्र प्रागेव। अन्यत्र,—च चलन्तम्। जालिकाः कौसृतिकाः, कैवर्ताश्च। यमपट्टिका गृहीतपट्टलिखितसपरिवारधर्मराजाः। अम्बर आकाशे, वस्त्रे चाम्बरे। चित्रमालिखन्तीति। असंभाव्यमानानर्थानारभन्त इति यावत्। अन्यत्र,—चित्रमालेख्यम्। उद्गीतका उच्चतरत्वादुच्चैर्गीतं येषां ते च। शल्यमिव शल्यं पीडा, फलिका च। अतिमार्गणा अतिक्रम्य ये संश्रयन्ते, अन्यथा महाभागिनोऽस्य वक्तुरनुचितेयमुक्तिः स्यात्। तेनानुरूपसंभवमविच्छिन्नं च। मार्गणमतिमार्गणम्, मार्गणाः शराश्च। हृदये शल्यं फलिकामर्पयन्ति। अभिषङ्गः संपर्कः। उपधा भृत्यस्य धर्मादिविषयः परीक्षणोपायः। उक्तं च—'उपेत्याधीयते यस्मादुपधेति ततः स्मृता। उपाय उपधा ज्ञेया तया भृत्यान्परीक्षयेत्॥' इति। विक्रान्तौ शूरौ। अभिरूपौ सुन्दरौ।

डालते हैं। अपेक्षित होने पर वायुजन्य व्याधि के समान ये धूर्त नाच, गाना और हँसी-मजाक से पागल बना देते हैं। चातकों के समान धन के प्यासे ये ऐरे-गैरे लोग साथ नहीं देते। ये चालबाज लोग मानस में मत्स्य के समान ऊपर की ओर उचकते ही अभिप्राय पकड़ लेते हैं। यमदूतों के समान ये उचक्के लोग आकाश में चित्रकारी करते हैं अर्थात् बिना किसी सम्भावना के एकाएक अनिष्ट कर बैठते हैं। बाणों के समान छिद्रान्वेषी प्रकृति के ये लोग हृदय में पीड़ा उत्पन्न करते हैं। इसलिए इन सब दोषों के लगाव से सर्वथा दूर रहने वाले, बहुत प्रकार के उपायों से परीक्षित, पवित्र, विनम्र,

गुप्तनामानावस्माभिर्भवतोरनुचरत्वार्थमिमौ निर्दिष्टौ। अनयोरुपरि भवद्भ्यामपि नान्यपरिजनसमवृत्तिभ्यां भवितव्यम्,' इत्युक्त्वा तयोराह्वानाय प्रतीहारमादिदेश।

न चिराद्द्वारदेशनिहितलोचनौ राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तम्, अग्रतो ज्येष्ठमष्टादशवर्षवयसं नात्युच्चं नातिखर्वमतिगुरुभिः पदन्यासैरनेकनरपतिसंचरणचलां निश्चलीकुर्वाणमिवोर्वीम्, अनवरताभ्यस्तलङ्घनघनोपचयकठिनमांसमेदुरादूरुद्वयान्निष्पतेवानुल्बणजानुग्रन्थिप्रसूतेन तनुतरजङ्घाकाण्डयुगलेन भासमानम्, उल्लिखितपार्श्वप्रकाशितकशिम्ना मन्दरमिव सुरासुरभसभ्रमितवासुकिकषणक्षीणेन मध्येन लक्ष्यमाणम्, अतिविस्तीर्णेनोरसा स्वामिसंभावनानामपरिमितानामवकाशमिव प्रयच्छन्तम्, प्रलम्बमानस्य भुजयुगलस्य निभृतललितैर्विक्षेपैरतिदुस्तरं तरन्तमिव यौवनोदधिम्, वामकरकटकमाणिक्यमरीचिमञ्जरीजालिन्या समुद्भिद्यमानप्रतापानलशिखापल्लवयेव चापगुणकिणलेखयाङ्कितपीवरप्रकोष्ठम्, आलोहिनीमुभांसतटावलम्बिनीमस्त्रग्रहणव्रतविधृतां रौरवीमिव

न चिरादित्यादौ। राज्यवर्धनहर्षौ प्रतीहारेण सह प्रविशन्तमग्रतो ज्येष्ठं कुमारगुप्तं पृष्ठतश्च तस्य कनीयांसं नीतिमत्त्वं प्रकाशितम्। खर्वं वामनम्। मेदुरात्पुष्टात्। अनुल्बणोऽनुद्धतः। उल्लिखितमिवोल्लिखितं तनूकृतम्। रुरुमृगभेदस्तस्येयं

शूर, सुन्दर, मालवराज के पुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त नाम के दो भाई, जो मेरी दोनों भुजाओं के समान मेरे शरीर से अलग नहीं, मैंने तुम्हारे अनुचर के रूप में नियुक्त किये हैं। इन दोनों के साथ आप लोग भी सामान्य परिजनों जैसा व्यवहार नहीं रखेंगे।' यह कहकर राजा ने उन दोनों को बुला लाने के लिये आदेश दिया।

कुछ ही देर में द्वार की ओर आँख लगाये राज्यवर्धन और हर्ष ने आगे आगे अट्ठारह वर्ष की अवस्था के जेठे, न अधिक नाटे न अधिक लम्बे, प्रतिहार के साथ प्रवेश करते हुये कुमारगुप्त को देखा। वह मानों अनेक राजाओं के चलने से हिलती हुई पृथिवी को गम्भीर पदविन्यास से निश्चल बना रहा था। हमेशा लांघने के अभ्यास से उसके दोनों ऊरुकाण्ड भर जाने से कड़े और गंसे हुये थे। उसके सुघड़ ठेहुने से निकली हुयी पतली सी छरहरी जाँघें शोभित हो रही थीं। उसका मध्य भाग देवता और दानवों द्वारा घुमाये गये वासुकि सर्प की रगड़ खाकर मन्दराचल के समान कृश लग रहा था मानों खराद पर चढ़ाया गया हो। अपनी चौड़ी छाती से वह मानों स्वामी के अपरिचित स्नेह सद्भाव के रहने के लिये अवकाश दे रहा था। लम्बी-लम्बी सुघड़ अपनी दोनों

त्वचं कर्णाभरणमणेः प्रभां बिभ्राणम्, उत्कोटिकेयूरपत्रभङ्गपुत्रिकाप्रतिबिम्बगर्भकपोलं मुखं चन्द्रमसमिव हृदयस्थितरोहिणीकमुद्वहन्तम्, अचपलस्तिमिततारकेणाधोमुखेन चक्षुषा शिक्षयन्तमिव लक्ष्मीलाभोत्तानितमुखानि पङ्कजवनानि विनयम्, स्वाम्यनुरागमिवाम्लातकमुत्तंसीकृतं शिरसा धारयन्तम्, निर्दयया कङ्कणभङ्गभीतसकलकार्मुकार्पितामिव नम्रतां प्रकाशयन्तम्, शैशव एव निर्जितैरिन्द्रियैररिभिरिव संयतैः शोभमानम्, प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं कुलपुत्रतामनुवर्तमानम्, तेजस्विनमपि शीलेनाह्लादकेन सवितारमिव शाशनान्तर्गतेन विराजमानम्, अचलानामपि कायकार्कश्येन गन्धनमिवाचरन्तम्, दर्शनक्रीतमानन्दहस्ते विक्रीणानमिव जनं सौभाग्येन कुमारगुप्तम्, पृष्ठतस्तस्य कनीयांसमतिप्रांशुतया

रौरवी ताम्। अम्लातकं पुष्पभेदम्, कुरण्टिकापुष्पभेदं वा। उत्तंसीकृतं शेखरतां नीतम्। शीलेनाभ्यन्तर्गतेन। एतेन चास्या दाम्भिकत्वमुक्तम्। गन्धनं मर्दनम्; उद्घाहनं वा। दृष्टमेव जनं वश्यमेव सर्वं करोतीति दर्शनक्रीतता। क्रीतमावर्जितम्। पुनश्चानन्दोत्पादनद्वारेणानन्दवन्तं तच्छरणं करोतीति। तत्र विक्रियोत्प्रेक्षा—यत्तु वस्तु केनचिदर्थेन क्रीतं तदप्यन्यस्य विक्रीयत इत्युक्तम्। विक्रीणानमिति।

भुजाओं को हिलाते हुये वह मानों अत्यन्त दुस्तर यौवन रूपी समुद्र पर तैर रहा था। उसके बायें हाथ में धनुष की डोर से रगड़ पड़ने के कारण काली-सी रेखा थी जिस पर उस हाथ के विजायट के रत्न की किरणें पड़ रहीं थीं, मानों प्रकट होते हुये प्रतापानल को पल्लवाकार शिखा हो। ऊँचे कन्धे से लटकती हुयी कान के आभरण-मणि की लाल प्रभा को धारण कर रहा था मानो अस्त्र ग्रहण करने के लिये धारण की गयी रुरु मृग के चमड़े की पेटी हो। खड़ी कोर वाले केयूर में पत्रलता सहित पुतली की छाया से गर्भित कपोल वाला मुख रोहिणी को हृदय में लिये हुये चन्द्रमा की भाँति धारण कर रहा था। उसकी आँखें झुकी हुयी और पुतलियाँ स्थिर थीं, मानों लक्ष्मी के लोभ से सिर ऊँचा किये कमलों को विनय की सीख दे रहा था। अम्लातक नामक लाल पुष्प को उत्तंस बनाकर सिर से स्वामी के अनुराग के रूप में धारण कर रहा था। निर्दयता के कारण कंकण के टूट जाने के कारण डरे हुये धनुष की नम्रता को प्रकाशित कर रहा था। बाल्यकाल में ही शत्रुओं के समान जीते जाने पर संयत हुई इन्द्रियों से शोभित हो रहा था। प्रेयसी के समान विश्वास करने योग्य अपनी कुलीनता को व्यक्त कर रहा था। जैसे चन्द्रमा सूर्य को अपने अन्तर्गत कर लेता है उसी प्रकार तेजस्वी होकर भी वह अपने आह्लादक शील गुण से शोभ रहा था। उसकी देह इतनी कड़ी थी कि पहाड़ों को

गौरतया च मनःशिलाशैलमिव संचरन्तम्, अनुल्बणमालतीकुसुमशेखर-निभेन निर्जिगमिषता गुरुणा शिरशि चुम्बितमिव यशसा परस्परविरुद्ध-योर्विनययौवनयोश्चिरात्प्रथमसंगमचिह्नमिव भ्रूसंगतकेन कथयन्तम्, अति-धीरतया हृदयनिहितां स्वामिभक्तिमिव निश्चलां दृष्टिं धारयन्तम्, अच्छा-च्छचन्दनरसानुलेपनशीतलं संनिहितहारोपधानं वक्षःस्थलमनन्तसामन्त-संक्रान्तिश्रान्तायाः श्रियो विशालं शशिमणिशिलापट्टशयनमिव बिभ्राणम्, चक्षुः कुरङ्गकैर्घोणावंशं वराहैः स्कन्धपीठं महिषैः प्रकोष्ठबन्धं व्याघ्रैः पराक्रमं केसरिभिर्गमनं मतङ्गजैर्मृगयाक्षपितशेषैर्भीतैरुत्कोचमिव दत्तं दर्शयन्तं माधवगुप्तं ददृशतुः।

प्रविश्य च तौ दूरादेव चतुर्भिरङ्गैरुत्तमाङ्गेन च गां स्पृशन्तौ नमश्च-

---

गौरतयेतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। शेखरस्यानुल्बणत्वं विनयं वक्ति। गुरुणा भूयि-ष्ठेन। चुम्बितमधिष्ठितम्। गुरुणा च पित्रा निर्गच्छता पुनः शिरसि चुम्ब्यते। भ्रूसंगतकं विनयम्, उपधानं गण्डकम्। विशालं प्रशस्तम्। विशाले चाङ्गानि प्रसार्यन्ते। शीतलत्वाच्चाङ्गनिर्वृतिः। घोणा नासिका एव स्पष्टत्वाद्वंशस्तम्। उत्को-चमिवेति। दण्डमित्यर्थः।

चतुर्भिरङ्गैरिति। जानुभ्यां हस्ताभ्यां चोत्तमाङ्गेन मूर्ध्ना। भूमिं तौ च।

भी मसल डालने की क्षमता रख रहा था। दर्शन देकर खरीदे गये की तरह अपने वश में हुये लोगों को सौभाग्य के द्वारा आनन्द के हाथ मानों बेंच रहा था। उसके पीछे पीछे अवस्था में छोटे लेकिन उसकी अपेक्षा लम्बे और गोरे मैनसिल के पर्वत के समान आते हुये माधवगुप्त को देखा। वह सुन्दर मालती के फूलों के शेखर के रूप में, निकलते हुए यश की भाँति अपनी भौंहों के संगतक (सम्मेलन) से मानों परस्पर विरुद्ध विनय और यौवन के पहले-पहल हुए एकत्र संगम को व्यक्त कर रहा था। हृदय में निहित स्वामी की भक्ति के रूप में अत्यन्त धीर स्वभाव के कारण निश्चल दृष्टि को धारण कर रहा था। सफेद चन्दन के रस से शीतल और लटकते हुए मोटे हार से युक्त वक्षःस्थल को मानों वह अनेक सामन्तों पर संक्रमण करने से थकी हुई लक्ष्मी के विश्राम के लिए गोल तकिए की तरह हार से युक्त शिलापट्ट के पलंग के समान धारण कर रहा था। आखेट में मारे जाने से बचे हुए मृगों ने घूस के रूप में मानों उसे आँखें, वराहों ने नाक, भैंसों ने स्कन्धपीठ, बाघों ने कलाई, शेरों ने पराक्रम, गजों ने चाल आदि दिए थे, जिन्हें वह दिखा रहा था।

प्रवेश करके उन दोनों ने दूर ही से अपने चार अङ्गों के साथ सिर से पृथिवी का

ऋतुः। स्निग्धनरेन्द्रदृष्टिनिर्दिष्टामुचितां भूमिं भेजाते। मुहूर्तं च स्थित्वा भूपतिरादिदेश तौ—'अद्यप्रभृति भवद्भ्यां कुमारावनुवर्तनीयौ' इति। 'यथाज्ञापयति देवः' इति मेदिनीदोलायमानमौलिभ्यामुत्थाय राज्यवर्धनहर्षौ प्रणेमतुः। तौ च पितरम्। ततश्चारभ्य क्षणमपि निमेषोन्मेषाविव चक्षुर्गोचरादनपयान्तावुच्छ्वासनिःश्वासाविव नक्तंदिवमभिमुखस्थितौ भुजाविव सततपार्श्ववर्तिनौ कुमारयोस्तौ बभूवतुः।

अथ राज्यश्रीरपि नृत्तगीतादिषु विदग्धासु सखीषु सकलासु कलासु च प्रतिदिवसमुपचीयमानपरिचया शनैः शनैरवर्धत। परिमितैरेव दिवसैर्यौवनमारुरोह। निपेतुरेकस्यां तस्यां शरा इव लक्ष्यभुवि भूभुजां सर्वेषां दृष्टयः। दूतसंप्रेषणादिभिश्च तां ययाचिरे राजानः।

कदाचित्तु राजान्तःपुरप्रासादस्थितो बाह्यकक्ष्यावस्थितेन पुरुषेण स्वप्रस्तावागतां गीयमानामार्यामशृणोत्—

पितरमिति। तौ च राज्यवर्धनहर्षौ लब्धानुचरावभिवन्दनाय पितरं प्रणेमतुरित्यर्थः।

विदग्धासु प्रवीणासु, ग्राम्यासु च।

स्पर्श करते हुए पश्चात् प्रणाम किया। तब राजा की स्नेह भरी दृष्टि से दिखाए गए उचित स्थान पर बैठे। क्षण भर ठहर कर राजा ने उनको आदेश दिया—'आज से आप दोनों राजकुमारों के अनुगामी हुए।' 'आपकी जो आज्ञा' यह कहकर पृथिवी की ओर सिर झुकाते हुए दोनों ने उठकर राज्यवर्धन और हर्ष को प्रणाम किया। इन दोनों ने भी अपने पिता को प्रणाम किया। उसी समय से लेकर पलक के निमेष-उन्मेष के समान क्षण भर भी वे दोनों राजकुमारों की आँखों से ओझल नहीं होते, उच्छ्वास और निःश्वास के समान रात दिन अभिमुख रहते और भुजाओं के समान हमेशा अगल बगल में निवास करते।

इधर राज्यश्री भी नृत्य और गीत आदि कलाओं में निपुण अपनी सखियों के बीच समस्त कलाओं में प्रतिदिन अपना परिचय बढ़ाती हुई शनैः शनैः बढ़ने लगी और कुछ ही दिनों में यौवन को प्राप्त हुई। जैसे बाण एक ही लक्ष्य पर गिरते हैं उसी प्रकार उसके ऊपर समस्त राजाओं की आँखें पड़ गईं। अपने अपने दूत आदि पठाकर राजा लोग उसकी याचना करने लगे।

एक दिन जब राजा प्रभाकरवर्धन अपने अन्तःपुर के कोठे पर विराजमान थे, तभी उन्होंने बाहरी ड्योढ़ी पर नियुक्त किसी पुरुष के द्वारा अपनी बातचीत के प्रसङ्ग में गायी गयी आर्या को सुना—

'उद्वेगमहावर्ते पातयति पयोधरोन्नमनकाले।
सरिदिव तटमनुवर्षं विवर्धमाना सुता पितरम् ॥ ५ ॥'

तां च श्रुत्वा पार्श्वस्थितां महादेवीमुत्सारितपरिजनो जगाद—'देवि! तरुणीभूता वत्सा राज्यश्रीः। एतदीया गुणवत्तेव क्षणमपि हृदयान्नापयाति मे चिन्ता। यौवनारम्भ एव च कन्यकानामिन्धनीभवन्ति पितरः संतापानलस्य। हृदयमन्धकारयति मे दिवसमिव पयोधरोन्नतिरस्याः। केनापि कृता धर्म्या नाभिमता मे स्थितिरियं यदङ्गसंभूतान्यङ्कलालितान्यपरित्याज्यान्यपत्यकान्यकाण्ड एवागत्यासंस्तुतैर्नीयन्ते। एतानि तानि खल्वङ्कनस्थानानि संसारस्य। सेयं सर्वाभिभाविनी शोकाग्नेर्दाहशक्तिर्यदपत्यत्वे समानेऽपि जातायां दुहितरि दूयन्ते सन्तः। एतदर्थं जन्मकाल एव कन्यकाभ्यः प्रयच्छन्ति सलिलमश्रुभिः साधवः। एतद्भयाद्कृतदारपरिग्रहाः परिहृतगृहवसतयः शून्यान्यरण्यान्यधिशेरते मुनयः। को हि नाम सहेत सचेतनो विरहमपत्यानाम्। यथा यथा समापतन्ति दूता

उद्वेगो मानसी पीडा तस्यावर्त्तनमावर्तो जलभ्रमणम्। तत्र पयोधरशब्दः स्तनमेघयोः। अनुवर्षं वर्षे, प्रावृषि च। असंस्तुतैरपरिचितैः। दौःशील्यं चिह्नम्। वराकी तपस्विनी। अभिजनं कुलम्। सकलेत्यादि साधारणम्।

'नदी जैसे वर्षाकाल में मेघों के झुकने पर अपने तट को गिरा देती है वैसे ही स्तनों के बढ़ने के अवसर में यौवन को प्राप्त हुई कन्या पिता को चिन्ता में ढकेल देती है।'

उसे सुनकर राजा ने परिजनों को हटाकर बगल में बैठी हुयी महारानी से कहा—'देवी, वत्सा राज्यश्री अब यौवन को प्राप्त हुयी। इसके गुणों के समान इसकी चिन्ता मेरे हृदय से नहीं जा रही है। यौवन के आरम्भ होते ही पिता कन्याओं के सन्ताप की अग्नि के ईन्धन बन जाते हैं। जैसे मेघ आकाश में उठकर दिन को अन्धकार से भर देते हैं वैसे ही इसके स्तनों की उन्नति मेरे हृदय को अन्धकार से भर रही है। जिस किसी द्वारा की हुयी इसके पति होने की धार्मिक मर्यादा मुझे अच्छी नहीं लगती क्योंकि असमय में आकर ही ऐसे अपरिचित लोग अपने अङ्ग से उत्पन्न, गोद में रख पाली-पोसी हुयी, न त्यागने के योग्य सन्तानों को उठाकर ले जाते हैं। सचमुच ये सब कुरीतियाँ इस युग के कलंक हैं। इसी कारण सबको अभिभूत कर देने वाली शोकाग्नि की जला डालने वाली शक्ति है जो कि सन्तान की दृष्टि से बराबर होने पर भी अच्छे लोग कन्या के उत्पन्न होने पर खुशी नहीं मनाते। इसी कारण सज्जन लोग जन्म लेते ही कन्याओं को अपने आँसू के जल ही समर्पित करते हैं। इसी डर से स्त्री का पाणिग्रहण किये बिना ही घर-द्वार

वराणां वराकी लज्जमानेव चिन्ता तथा तथा नितरां प्रविशति मे हृदयम्।¹ किं क्रियते। तथापि गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः। प्रायेण च सत्स्वप्यन्येषु वरगुणेष्वभिजनमेवानुरुध्यन्ते धीमन्तः। धरणीधराणां च मूर्ध्नि स्थितो माहेश्वरः पादन्यास इव सकलभुवननमस्कृतो मौखरो वंशः। तत्रापि तिलकभूतस्यावन्तिवर्मणः सूनुरग्रजो ग्रहवर्मा नाम ग्रहपतिरिव गां गतः पितुरन्यूनो गुणैरेनां प्रार्थयते। यदि भवत्या अपि मतिरनुमन्यते ततस्तस्मै दातुमिच्छामि' इत्युक्तवति भर्तरि दुहितृस्नेहकातरतरहृदया साश्रुलोचना महादेवी प्रत्युवाच—'आर्यपुत्र! संवर्धनमात्रोपयोगिन्यो धात्रीनिर्विशेषा भवन्ति खलु मातरः कन्यकानाम्। दाने तु प्रमाणमासां पितरः। केवलं कृपाकृतविशेषः सुदूरेण तनयस्नेहादतिरिच्यते दुहितृस्नेहः। यथा नेयं यावज्जीवमावयोरार्तितां प्रतिपद्यते तथार्यपुत्र एव जानाति' इति।

राजा तु जातनिश्चयो दुहितृदानं प्रति समाहूय सुतावपि विदितार्था-

---

¹ आर्तिता मनःपीडात्वम्।

छोड़-छाड़कर मुनि लोग सुनसान जङ्गलों में शयन करते हैं। कौन ऐसा सचेतन प्राणी है जो अपनी सन्तानों के विरह सहे। जैसे-जैसे वरों के दूत पर दूत आते जा रहे हैं यह वराकी चिन्ता वैसे-वैसे ही लजाती हुयी की तरह मेरे हृदय में घर करती जा रही है। तो फिर क्या किया जाय? तब भी गृहस्थ होने के कारण समाज के नियमों के पीछे चलना पड़ता है। बुद्धिमान् लोग वर के गुणों में प्रायः कुलीनता पसन्द करते हैं। शिवजी के चरणन्यास की भाँति सब राजाओं का सिरमौर और सब लोगों द्वारा नमस्कृत मौखरि क्षत्रियों का वंश है। उसमें भी सबसे बड़े अवन्तिवर्मा हैं जिनका प्रथम पुत्र ग्रहवर्मा सूर्य के समान है। वह अपने पिता से गुणों में कम नहीं। उसने राज्यश्री के लिये प्रार्थना की है। यदि तुम भी स्वीकार करो तो मैं उसे सौंपना चाहता हूँ।' पति के ऐसा कहने पर पुत्री के स्नेह से अधीर हृदय वाली महादेवी ने रोते हुए कहा—'आर्यपुत्र, मातायें केवल धाय की भाँति कन्याओं को बढ़ाने मात्र के उपयोग में आती हैं। कन्यादान में तो उनके पिता ही प्रमाण हैं। केवल बिछुड़ जाने की दया के कारण पुत्रस्नेह से कन्यास्नेह दूर बढ़ जाता है। जिस उपाय से यह हम दोनों के जीते जी मानसिक व्यथा नहीं बन रही है वह उपाय आर्यपुत्र ही जानते हैं।'

राजा ने अपना निश्चय कर लिया और कन्यादान को बात अपने दोनों पुत्रों को भी बुलाकर सुना दी और तब शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मा के द्वारा कन्या की प्रार्थना के लिए भेजे

चकार्षीत्। शोभने च दिवसे ग्रहवर्मणा कन्यां प्रार्थयितुं प्रेषितस्य पूर्वागतस्यैव प्रधानदूतपुरुषस्य करे सर्वराजकुलसमक्षं दुहितृदानजलमपातयत्।

जातमुदि कृतार्थे गते च तस्मिन्नासन्नेषु च विवाहदिवसेषूद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोकम्, सकलदेशादिश्यमानशिल्पिसार्थागमनम्, अवनिपालपुरुषगृहीतसमग्रग्रामीणानीयमानोपकरणसंभारम्, राजदौवारिकोपनीयमानानेकनृपोपायनम्, उपनिमन्त्रितागतबन्धुवर्गसंवर्गणव्यग्रराजवल्लभम्, लब्धमधुमदप्रचण्डचर्मकारकरपुटोल्लालितकोणपटुविघट्टनरणन्मङ्गलपटहम्, पिष्टपञ्चाङ्गुलमण्ड्यमानोलूखलमुसलशिलाद्युपकरणम, अशेषाशामुखाविर्भूतचारणपरम्परापूर्यमाणप्रकोष्ठप्रतिष्ठाप्यमानेन्द्राणीदैवतम्, सितकुसुमविलेपनवसनसत्कृतैः सूत्रधारैरादीयमानविवाहवेदीसूत्रपातम्, उत्कूर्चककरैश्च सुधाकर्पूरस्कन्धैरधिरोहिणीसमारूढैर्धवैर्धवलीक्रियमाणप्रासादप्रतोलीप्राकारशिखरम्, क्षु-

---

जातमुदीत्यादौ। एवं राजकुलमासीदिति संबन्धः। ग्रामीणा ग्राम्याः। राजदौवारिका दूताः। संवर्गणमावर्तनम्। पिष्टमातर्पणम्। चारणाः कुशीलवाः। प्रकोष्ठं बहिर्द्वारम्। सूत्रधारैः स्थपतिभिः। अधिरोहिणी निःश्रेणिः। धवैः पुरुषैः। क्षुण्णश्लू-

---

जाने पर पहले से ही आये हुए प्रधान दूत के हाथ पर समस्त राजकुल की उपस्थिति में कन्यादान का जल गिराया।

वह दूत प्रसन्न और कृतकृत्य होकर लौट गया। विवाह के दिन भी निकट आए। राजकुल की ओर से आम तौर पर सब लोगों की खातिर के लिए पान के बीड़े, कपड़े की सुगन्धि और फूल बाँटे जाने लगे। दूसरे देशों से कारीगर बुलाहट पर आने लगे। राजा के नियुक्त सैनिक गाँव वालों को पकड़-पकड़कर उनसे सब सामग्री उठवाकर लाने लगे। राजा के दौवारिक अनेक राजाओं के दिए हुए तरह-तरह के उपहारों को लाकर रखने लगे। निमन्त्रित होकर आए हुए रिश्तेदारों को आदरपूर्वक राजा के प्रिय पात्र लोग ठहराने के काम में व्यस्त थे। शराब के नशे में धुत्त होकर ढोल बजाने वाला चमार डंका लिए हुए धमाधम ढोल पीट रहा था। ओखली, मूसर और सिल आदि पत्थर की सामग्री जुटाकर उन पर ऐपन के थापे दिए जाने लगे। अनेक दिशाओं से दूर दूर से आए हुए चारण लोग जिस कोठरी में जमा थे उसमें इन्द्राणी की मूर्ति के रूप में दई-देवता पधराए गए थे। सफेद फूल, चन्दन और वस्त्र पाकर आदर पाए हुए सूत्रधार (मिस्त्री लोग) विवाह की वेदी बनाने में सूत से नाप-तौल करने लगे। पोतने वाले

ण्णक्षाल्यमानकुसुम्भसंभारारम्भःप्लवपूररज्यमानजनपादपल्लवम् , निरू-
प्यमाणयौतकयोग्यमातङ्गतुरङ्गतरङ्गिताङ्गनम् , गणनाभियुक्तगणकगणगृह्य-
माणलग्नगुणम् , गन्धोदकवाहिमकरमुखप्रणालीपूर्यमाणक्रीडावापीसमू-
हम् , हेमकारचक्रप्रक्रान्तहाटकघटनटाङ्कारवाचालितालिन्दकम् , उत्था-
पिताभिनवभित्तिपात्यमानबहलवालुकाकण्ठकालेपाकुलालेपकलोकम् , च-
तुरचित्रकरचक्रवाललिख्यमानमङ्गल्यालेख्यम् , लेप्यकारकदम्बकक्रियमाण-
मृन्मयमीनकूर्ममकरनारिकेलकदलीपूगवृक्षकम् , क्षितिपालैश्च स्वयमाबद्ध-
कक्ष्यैः स्वाम्यर्पितकर्मशोभासंपादनाकुलैः सिन्दूरकुट्टिमभूमीश्च मसृणय-
द्भिर्विनिहितसरसातर्पणहस्तान्विन्यस्तालक्तकपाटलांश्च चूताशोकपल्लवला-
ञ्छितशिखरानुद्वाहवितर्दिकास्तम्भानुत्तम्भयद्भिः प्रारब्धविविधव्यापारम् ,
आसूर्योदयाच्च प्रविष्टाभिः सतीभिः सुभगाभिः सुरूपाभिः सुवेशाभिरविध-

---

र्णितः । कुसुम्भकं पद्मकम् । प्लवः पूरः । यौतकं सुदायः । प्रणालं वाप्यादिपूर-
णार्थं मकरमुखं कुर्वन्ति । लग्नो मेषादिः । अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः । कण्ठकाः

मजदूरे हाथ मे कूँची लिए, कन्धों से चूने की हँडी लटकाए, सीढ़ी पर चढ़कर राजमहल, पौरी, चहारदीवारी और शिखरों पर सफेदी कर रहे थे। पीसे जाते हुए कुंकुम के धोने से बहते हुए जल में आने जाने वाले के पैर रँग रहे थे। दहेज में देने योग्य हाथी-घोड़े आँगन में भरे हुए थे, उन्हें जाँचा जा रहा था। गणना में लगे हुए ज्योतिषी विवाह योग्य सुन्दर लग्न शोध रहे थे। मगर के मुँह की नली से गन्धजल बहकर क्रीड़ा की बौलियों में भर रहा था। राजद्वार की ड्योढ़ी के बाहर सोना गढ़ने में जुटे हुए सोनारों की ठक-ठक वहाँ भर रही थी। जो नई दीवारें वहां उठायी गयी थीं उन पर बालू मिले हुए मसाले का पलस्तर करने वाले मजदूरों के शरीर बालू के कण गिरने से सन गये थे। चित्रकारी में प्रवीण चित्रकार लोग मांगलिक चित्र बना रहे थे। खिलौने बनाने वाले कुम्हार मछली, कछुआ, मगर, नारियल, केला, सुपारी के वृक्ष आदि तरह तरह के मिट्टी के खिलौने बना रहे थे। कुछ बाँधकर स्वयं राजा लोग मालिक के द्वारा मिले हुए काम को आकुलता के साथ कर रहे थे, जैसे कुछ सिंदूरी रंग के फर्श को माँजकर चमका रहे थे, कुछ ब्याह की बेदी के खम्भों को अपने हाथ से खड़ा कर रहे थे, कुछ ने उन्हें गीले ऐपन के थापों, आलता के रङ्ग में रंगे लाल कपड़ों और आम एवं अशोक के पल्लवों से सजाया था। इस प्रकार वे अनेक कामों में लग गए थे। सामन्तों की सती रूपवती स्त्रियाँ सुहावने वेश पहने और माथे पर सेन्दुर लगाए, सौभाग्य से अलंकृत होकर सूर्योदय से ही लेकर राजमहल के काम-काज में लग गयी थीं, कुछ वर-वधू के नाम ले-लेकर मङ्गलाचार के

वाभिः सिन्दूररजोराजिराजितललाटाभिर्वधूवरगोत्रग्रहणगर्भाणि श्रुतिसुभगानि मङ्गलानि गायन्तीभिर्बहुविधवर्णकादिग्धाङ्गुलीभिर्ग्रीवासूत्राणि च चित्रयन्तीभिश्चित्रलतालेख्यकुशलाभिः कलशांश्च धवलितान्शीतलशाराजिरश्रेणीश्च मण्डयन्तीभिरभिन्नपुटकर्पासतूलपल्लवांश्च वैवाहिककङ्कणोर्णासूत्रसंनाहांश्च रञ्जयन्तीभिर्बलाशनाघृतघनीकृतकुङ्कुमकल्कमिश्रितांश्चाङ्गरागांल्लावण्यविशेषकृन्ति च मुखालेपनानि कल्पयन्तीभिः कक्कोलमिश्राः सजातीफलाः स्फुरत्स्फीतस्फाटिककर्पूरशकलखचितान्तराला लवङ्गमाला रचयन्तीभिः समन्तात्सामन्तसीमन्तिनीभिर्व्याप्तम्, बहुविधभक्तिनिर्माणनिपुणपुराणपौरपुरंध्रिबध्यमानैर्बद्धैश्चाचारचतुरान्तःपुरजरतीजनितपूजाराजमानरजकरज्यमानै रक्तैश्चोभयपटान्तलग्नपरिजनप्रेङ्खोलितैश्छायासु

कणाः। आबद्धकक्ष्यैः कृतोद्योगैः। मसृणयद्भिश्चिक्कणीकुर्वद्भिः। आतर्पणं पिष्टम्। उत्तम्भयद्भिरूर्ध्वीकुर्वद्भिः। गोत्रं नाम। दिग्धा उपलिप्ताः। शीतलमपक्वम्। शाराजिरं शरावम्। अभिन्नपुटो वंशादिमयश्चतुष्कोणः पाटलाकृतिर्जालकैः क्रियते। तच्छिद्रान्तरपूरणाय कर्पासतूलपल्लवा रच्यन्ते। कङ्कणः प्रतिसरः। बलाशना पुष्पाख्यौषधिः तत्पक्वं घृतं रक्षार्थं क्रियते। स्फाटिककर्पूराख्यः कर्पूरभेदः। भक्तिर्विच्छित्तिः। कुटिलः क्रमो येषां तैः। भुजिष्यैश्चेटैः। भज्यमानत्वं मुष्टिदानम्।

गीत गा रही थीं, कुछ तरह-तरह के रङ्गों में उंगलियाँ बोर कर कण्ठियों के डोरों पर भाँति-भाँति की बिन्दियाँ लगा रही थीं, चित्र-विचित्र फूल-पत्तियों के काम करने में चतुर कुछ स्त्रियाँ सफेदी किए हुए कलसों पर और सरइयों पर चित्र लिख रही थीं, कुछ बाँस की तीलियों या सरकण्डे के बने खारे को सजाने के लिये कपास के छोटे-छोटे गुल्ले और ब्याह के कंगनों के लिए ऊनी और सूती लच्छियाँ रँग रही थीं, कुछ बलाशना नामक औषधि घी में पकाकर और उसे पिसे हुए कुङ्कुम में मिलाकर उबटन एवं सुन्दरता बढ़ाने वाले मुखालेपन तैयार कर रही थीं, कुछ कक्कोल-जायफल और लौंग की मालायें बीच-बीच में स्फटिक जैसे श्वेतकपूर की चमकदार बड़ी डलियां पिरोकर बना रही थीं। बहुत प्रकार की भक्तियों के निर्माण में नगर की वृद्ध चतुर स्त्रियाँ या पुरखिनें बांधनू की रंगाई के लिए कपड़ों को बाँध रही थीं, कुछ कपड़े बाँधे जा चुके थे। अन्तःपुर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के द्वारा रंगने वालों को जो नेग या पूजा-भेंट दी जा रही थी उससे प्रसन्न होकर वे लोग उन वस्त्रों को रँग रहे थे, एवं जो रँगे जा चुके थे उन्हें दोनों सिरों पर पकड़कर परिजन लोग झकझोर कर छाया में सुखा रहे थे और कुछ सूख गए थे। एक

शोष्यमाणैः शुष्कैश्च कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लवपरभागैरपरैरारब्धकुङ्कुमपङ्कस्थासकच्छुरणैरपरैरङ्गुजभुजिष्यभज्यमानभङ्गुरोत्तरीयैः क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संछादितम्, उज्ज्वलनिचोलकावगुण्ठ्यमानहंसकुलैश्च शयनीयैस्तारामुक्ताफलोपचीयमानैश्च कञ्चुकैरनेकोपयोगपाट्यमानैश्चापरिमितैः पट्टपटीसहस्रैरभिनवरागकोमलदुकूलराजमानैश्च पटवितानैः स्तवरकनिवहनिरन्तरच्छाद्यमानसमस्तपटलैश्च मण्डपैरुच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैरुज्ज्वलं रमणीयं चौत्सुक्यदं च मङ्गल्यं चासीद्राजकुलम्।

देवी तु यशोमती विवाहोत्सवपर्याकुलहृदया हृदयेन भर्तरि, कुतूहलेन

क्षौमैः क्षुमाविकारैः। बादरैः कार्पासैः। लालातन्तुजैः कौशेयैः। नेत्रैः पृङ्गैः (?)। निचोलकैर्वस्तुरूपकविशेषैः। स्तवरकं वस्त्रभेदः। वितानकं करकम्। पटलं छादनम्। उज्ज्वलं भ्राजिष्णु।

कोने से दूसरे कोने तक टेढ़ी, ठप्पों से बनाई जाने वाला फूल-पत्तियों की रेखाकृतियाँ एक रङ्ग की पृष्ठभूमि पर दूसरे रंग में तैयार होने लगीं। कुछ वस्त्रों को गीले कुङ्कुम में रंगे हाथ से चित्तियाँ छापकर मांगलिक बनाया जा रहा था। कुछ को सेवक लोग उठे हुए हाथों से चुटकी दबाकर उत्तरीय या उपरने की तरह प्रयुक्त वस्त्रों में चुन्नट डालकर उन्हें मरोड़ी देकर देख रहे थे। क्षौम, बादर (कपास के बने कपड़े), दुकूल, लालातंतुज (रेशमी) अंशुक और नेत्र आदि कई प्रकार के वस्त्र थे, जो साँप की केचुली के समान हल्के केले के खम्भे की भीतरी पात के समान कोमल, साँस की हवा से भी उड़ जाने वाले एवं केवल छूकर ही अनुमान करने योग्य थे। हजारों इन्द्रायुध के समान ऐसे वस्त्रों से राजकुल ढंक रहा था। दान-दहेज के लिए बनाये गये पलंग पर सफेद चादरें बिछाई गयी थीं और हंसों की पंक्तियाँ लकड़ी में खोदकर बनायी गयीं थीं। पहनने के लिये जो कंचुक तैयार किये जा रहे थे, उन पर चमकीले मोतियों से कढ़ाई का काम किया गया था। अनेक प्रकार के उपयोग में आने वाली बहुत सी कपड़ों की पट्टियां चीर-चीर कर बनायी जा रही थीं। कपड़े के चन्दोवे में नये एकरङ्ग के दुकूल लगाये जा रहे थे। मड़वे की छाजन फूल-पत्तियों से ढँक गयी थी। मण्डप के खम्भों में रंगीन नेत्र नामक वस्त्र लपेटकर बाँधे जा रहे थे। इस प्रकार राजकुल का यह दृश्य चकमक, रमणीय, भाँति-भाँति के कुतूहलों से भरा हुआ और मांगलिक हो गया था।

रानी यशोवती को विवाह के बहुविध कामों में चैन नहीं मिलती थी। वह पति

जामातरि, स्नेहेन दुहितरि, उपचारेण निमन्त्रितस्त्रीषु, आदेशेन परिजने, शरीरेण संचरणे, चक्षुषा कृताकृतप्रत्यवेक्षणेषु, आनन्देन महोत्सवे, एकापि बहुधा विभक्तेवाभवत्। भूपतिरप्युपर्युपरि विसर्जितोष्ट्रवामीजनितजामातृजोषः सत्यप्याज्ञासंपादनदक्षे मुखेक्षणपरे परिजने समं पुत्राभ्यां दुहितृस्नेहविक्लवः सर्वं स्वयमकरोत्।

एवं च तस्मिन्नविधवामय इव भवति राजकुले, मङ्गलमय इव जायमाने जीवलोके, चारणमयेष्विव लक्ष्यमाणेषु दिङ्मुखेषु, पटहरवमय इव कृतेऽन्तरिक्षे, भूषणमय इव भ्रमति परिजने, बान्धवमय इव दृश्यमाने सर्गे, निर्वृतिमय इवोपलक्ष्यमाणे काले, लक्ष्मीमय इव विजृम्भमाणे महोत्सवे, निधान इव सुखस्य, फल इव जन्मनः, परिणाम इव पुण्यस्य, यौवन इव विभूतेः, यौवराज्य इव प्रीतेः, सिद्धिकाल इव मनोरथस्य वर्तमाने, गण्यमान इव जनाङ्गुलीभिः, आलोक्यमान इव मार्गध्वजैः, प्रत्युद्गम्यमान इव मङ्गल्यवाद्यप्रतिशब्दकैः, आहूयमान इव मौहूर्तिकैः,

---

उष्ट्रवाम्युष्ट्रभार्या। केचिद्वामीद्वयमन्ये वेसरीमन्ये गुर्वीमाहुः। जोषः सुखम्। एवमित्यादौ। अस्मिन्सत्याजगाम विवाहदिवस इति सबन्धः। निधान इव सुखस्येत्यादौ वर्तमान इत्यनेन संगतिः। मौहूर्तिकैर्गणकैः। अनिबद्धो बाह्यः।

के लिए हृदय के रूप में, दामाद के लिए कुतूहल के रूप में, पुत्री के लिए स्नेह के रूप में, बुलावे पर आई हुई स्त्रियों के लिए आवभगत के रूप में, परिजन के लिए आदेश के रूप में, चलने-फिरने में शरीर के रूप में, किए या न किए कार्यों की देख ताक के लिए आँख के रूप में, महोत्सव के लिए आनन्द के रूप में, इस प्रकार मानों एक से अनेक रूप में हो गई। राजा ने भी जामाता की प्रसन्नता के लिए एक के ऊपर एक ऊँट और घोड़ियों की ढेर लगा दी। आज्ञा पालन करने में चतुर और मुँह ताकते हुए खड़े रहने वाले नौकर-चाकर के होने पर भी वे अपने दोनों पुत्र के साथ पुत्री के स्नेह में व्याकुल होकर सब काम स्वयं निपटाते थे।

इस प्रकार राजकुल में चारों ओर सुहागिन स्त्रियां दिखाई देती थीं। सारा संसार मंगलमय लग रहा था। दिशाएं चारणों से भरी हुई दीख पड़ने लगीं। आकाश में पटह की आवाज गूंजने लगी। गहनों से लदे हुए परिजन घूमते रहते थे। सारी सृष्टि ही बान्धवमय प्रतीत हो रही थी। सारा समय परम-आनन्दमय हो रहा था। महोत्सव

---

१. तस्मिन्नविधवाधव।

आकृष्यमाण इव मनोरथैः, परिष्वज्यमान इव वधूसखीहृदयैराजगाम विवाहदिवसः। प्रातरेव प्रतीहारैः समुत्सारितनिखिलानिबद्धलोकं विविक्तमक्रियत राजकुलम्।

अथ महाप्रतीहारः प्रविश्य नृपसमीपम् 'देव! जामातुरन्तिकात्ताम्बूलदायकः पारिजातकनामा संप्राप्तः' इत्यभिधाय स्वाकारं युवानमदर्शयत्। राजा तु तं दूरादेव जामातृबहुमानाद्दर्शितादरः 'बालक! कच्चित्कुशली ग्रहवर्मा?' इति पप्रच्छ। असौ तु समाकर्णितनराधिपध्वनिर्धावमानः कतिचित्पदान्युपसृत्य प्रसार्य च बाहू सेवाचतुरश्चिरं वसुंधरायां निधाय मूर्धानमुत्थाय 'देव! कुशली यथाज्ञापयस्यर्चयति च देवं नमस्कारेण' इति व्यज्ञापयत्। आगतजामातृनिवेदनागतं च तं ज्ञात्वा कृतसत्कारं राजा 'यामिन्याः प्रथमे यामे विवाहकालात्ययकृतो यथा न भवति दोषः' इति संदिश्य प्रतीपं प्राहिणोत्।

यथा न भवति दोष इत्यत्र तथा कार्यमित्यर्थलभ्यम्।

मानो लक्ष्मीमय बन रहा था। वह अवसर मानों सुख का निधान, जन्म का फल, पुण्य का परिणाम, ऐश्वर्य का यौवन, प्रीति का यौवराज्य, मनोरथ का सिद्धिकाल था। विवाह के दिन को लोग उंगलियों पर गिनने लगे। उसे मार्ग के ध्वज मानों निहारने लगे। माङ्गलिक गाजे बाजे की ध्वनियां मानों उसकी आगवानी लेने पहुंचीं। ज्योतिषी लोग उसे गुहारने लगे। मानोरथ उसे खींचने लगे। वधू की सखियां मानों उसका आलिङ्गन करने लगीं। इस प्रकार विवाह का दिन आ पहुँचा। प्रातःकाल ही प्रतीहारों ने फालतू सब लोगों को हटा कर राजकुल को खाली कर दिया।

महाप्रतीहार ने राजा के समीप आकर निवेदन किया—देव, जामाता के समीप से तम्बोली (ताम्बूलदायक) पारिजातक आया है।' यह कह कर अपने ही आकार के एक युवक को दिखाया। राजा ने दूर ही से दमाद के सम्मान के कारण उसके प्रति आदर व्यक्त करते हुए पूछा—'बालक, ग्रहवर्मा तो कुशल से है।' सेवा में चतुर उसने राजा की आवाज सुनते ही जल्दी से कुछ डेग आगे बढ़, दोनों हाथ फैला, देर तक जमीन में सिर झुका और उठ कर निवेदन किया—'देव, कुशल से हैं और प्रणामपूर्वक आप की अर्चना करते हैं।' राजा ने यह जान कर कि जामाता विवाह के लिए आए हैं; उसका सत्कार करते हुए कहा—'रात्रि के पहले पहर में विवाह-लग्न साधनी चाहिए जिससे दोष न हो' और उसे वापिस भेजा।

अथ सकलकमलवनलक्ष्मीं वधूमुख इव संचार्य समवसिते वासरे, विवाहदिवसश्रियः पादपल्लव इव रज्यमाने सवितरि, वधूवरानुरागलघूकृतप्रेमलज्जितेष्विव विघटमानेषु चक्रवाकमिथुनेषु, सौभाग्यध्वज इव रक्तांशुकसुकुमारवपुषि नभसि स्फुरति संध्यारागे, कपोतकण्ठकर्बुरे वरयात्रागमनरजसीव कलुषयति दिङ्मुखानि तिमिरे, लग्नसंपादनसज्ज इवोज्जिहाने ज्योतिर्गणे, विवाहमङ्गलकलश इवोदयशिखरिणा समुत्क्षिप्यमाणे वर्धमानधवलच्छाये ताराधिपमण्डले, वधूवदनलावण्यज्योत्स्नापरिपीततमसि प्रदोषे, वृथोदितमुपहसत्स्विव रजनिकरमुत्तानितमुखेषु कुमुदवनेष्वाजगाम मुहुर्मुहुरुल्लासितस्फारस्फुरितारुणचामरैर्मनोरथैरिवोत्थितरागाग्रपल्लवैः पुरोधावमानैः पादातैरुत्कर्णकटकहयप्रतिहेषितदीयमानस्वागतै-

---

अथेत्यादौ। एतस्मिन्नेतस्मिन्सत्याजगामेति संबन्धः। कपोतेत्यसाधारणम्। कर्बुर आपाण्डुरे। रजसीवेति। रजोऽपि मुखानि कलुषयति। लग्नेत्यादि साधारणम्। उज्जिहान उद्गच्छति। ज्योतिर्गणैस्तारानिकरैः, गणकैश्च। वर्धमानेत्यादि संध्यारागहितत्वात्। वर्धमानं शरावः तेन च धवलच्छायम्। तद्धि मकोललिप्तं विवाहे क्रियते इत्याचारः। स्फारः स्फोटकः। पुरोधावमानैरिति साधारणम्। पादातैः पदातिसमूहैः।

सारे कमलवन की लक्ष्मी को वधू राज्यश्री के मुख में मानों अर्पित करके दिन ढल गया। विवाह-दिवस की श्री के चरण-पल्लव से मानों सूर्यबिम्ब लाल हो गया। वधू और वर के अनुराग के सामने प्रेम भाव के हल्के होने के कारण लज्जित होकर चक्रवाक के जोड़े पृथक् होने लगे। रक्तांशुक की भाँति कोमल संध्याराग सौभाग्यध्वज के समान आकाश में स्फुरित होने लगा। कबूतर के कंठ के सदृश अन्धकार आकाश को कलुषित कर रहा था, मानो बरात की चढ़त से धूल उड़कर भरने लगी हो। शुभ लग्न को ठीक करने में तारे मानों निकल कर तैयार होने लगे। उदयाचल द्वारा सिर पर उठाए गए विवाह के मंगलकलश के समान चन्द्रमण्डल की उज्ज्वल कान्ति बढ़ने लगी। वधू राज्यश्री के लावण्य की चाँदनी से प्रदोषकाल का अन्धकार जब दूर हो गया तो फिर व्यर्थ उदित हुए चन्द्रमा को देखकर मुँह ऊँचा किए कुमुद मानों हँसने लगे। तभी लग्न के समय बरात लेकर ग्रहवर्मा उपस्थित हुआ। पैदल चलने वाले बराती बार-बार अपनी लाल ध्वजा को फटकारते चले आ रहे थे, मानों राजा के पल्लव वाले आगे दौड़ते हुए उनके मनोरथ हों। कान खड़े किए छावनी के घोड़ों की हिनहिनाहट के साथ किए जाने वाले स्वागत को स्वीकार करते हुए बराती घोड़े भी उस दिग्भाग को भरने लगे। हिलते

रिव वाजिनां वृन्दैरापूरितदिग्विभागः, चलकर्णचामराणां चामीकरमय-सर्वोपकरणानां वर्णकलम्बिनां बलिनां घण्टाटाङ्कारिणां करिणां घटाभिः घटयन्निव पुनरिन्दूदयविलीनमन्धकारम्, नक्षत्रमालामण्डितमुखीं करिणीं निशाकर इव पौरंदरीं दिशमारूढः प्रकटितविविधविहगविरुतैस्तालावचरचारणैः पुरःसरैर्बालो वसन्त इवोपवनैः क्रियमाणकोलाहलो गन्धतैलावसेकसुगन्धिना दीपिकाचक्रवालालोकेन कुङ्कुमपटवासधूलिपटलेनेव पिञ्जरीकुर्वन्सकलं लोकम्, उत्फुल्लमल्लिकामुण्डमालामध्याध्यासितकुसुमशेखरेण शिरसा हसन्निव सपरिवेषपक्षपाकरं कौमुदीप्रदोषम्, आत्मरूपनिर्जितमकरकेतुकरापहृतेन कार्मुकेणेव कौसुमेन दाम्ना विरचितवैकक्षकविलासः कुसुमसौरभगर्वभ्रान्तभ्रमरकुलकलकलप्रलापसुभगः पारिजात इव जातः श्रिया सह पुनरवतारितो मेदिनीम्, नववधूवदनावलोकनकुतूहलेनेव कृष्यमाणहृदयः पतन्निव मुखेन प्रत्यासन्नलग्नो ग्रहवर्मा त्वरितमाजगाम।

राजा तु तमुपद्वारमागतं चरणाभ्यामेव राजचक्रानुगम्यमानः ससुतः

हुए कान पर चँवर लिए, सोने के समस्त उपकरणों से सजाए गए, भाँति-भाँति के बलवान् हाथी घंटा की टंकार करते चले आ रहे थे मानों चन्द्रमा के उदय होने से विलीन अन्धकार को फिर जुटाने लगे। ग्रहवर्मा नक्षत्रमाला नामक आभरण से सुसज्जित हथिनी पर चढ़ा हुआ उस प्रकार लग रहा था जैसे चन्द्रमा ताराओं से शोभित पूर्व दिशा में ऊपर की ओर चढ़ा हो। उसके आगे-आगे चारण लोग तालयुक्त गान करते चल रहे थे जिससे चिड़ियों के चहचहाने जैसा शब्द हो रहा था। गन्ध तैल पड़ने से सुगन्धित दीपक जल रहे थे, मानों कुंकुम और पटवास की धूलि सब ओर सब लोगों को पिञ्जरित कर रही थी। ग्रहवर्मा विकसित मालतीकुसुमशेखर की माला सिरपर धारण कर रहा था, मानों परिवेष के साथ उदित हुए चन्द्रवाले चन्द्रिकायुक्त प्रदोषकाल पर हँस रहा था। अपने रूप के सामने हारे हुए कामदेव के हाथ से छीन कर लिए गए धनुष के समान उसका पुष्पदाम का बना हुआ वैकक्षक शोभ रहा था। भौंरे उसके फूलों पर गुंजारते हुए लुभा रहे थे, मानों पारिजात ही श्री के साथ उतर आया हो। नई वधू राज्यश्री का मुखड़ा देखने के कुतूहल से खिंचे जाते हुए हृदय वाला वह मानों मुँह की ओर से दौड़ कर आया।

राजाओं और दोनों राजकुमारों के साथ पैदल ही चल कर द्वार के समीप पहुँचे हुए

प्रत्युज्जगाम। अवतीर्णं च तं कृतनमस्कारं मन्मथमिव माधवः प्रसारितभुजो गाढमालिलिङ्ग। यथाक्रमं परिष्वक्तराज्यवर्धनहर्षं च हस्ते गृहीत्वाभ्यन्तरं निन्ये। स्वनिर्विशेषासनदानादिना चैनमुपचारेणोपचचार।

न चिराच्च गम्भीरनामा नृपतेः प्रणयी विद्वान्द्विजन्मा ग्रहवर्माणमुवाच—'तात! त्वां प्राप्य चिरात्खलु राज्यश्रिया घटितौ तेजोमयौ सकलजगद्गीयमानबुधकर्णानन्दकारिगुणगणौ सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखरवंशौ। प्रथममेव कौस्तुभमणिरिव गुणैः स्थितोऽसि हृदये देवस्य। इदानीं तु शशीव शिरसा परमेश्वरेणासि वोढव्यो जातः' इति।

एवं वदत्येव तस्मिन्नृपमुपसृत्य मौहूर्तिकाः 'देव! समासीदति लग्नवेला। व्रजतु जामाता कौतुकगृहम्' इत्यूचुः। अथ नरेन्द्रेण 'उत्तिष्ठ, गच्छ' इति गदितो ग्रहवर्मा प्रविश्यान्तःपुरं जामातृदर्शनकुतूहलिनीनां

राज्यश्रिया नृपतिलक्ष्म्यापि। घटितौ योजितौ, मुक्तौ च। बुधकर्णौ पण्डितश्रोत्रे, सोमसूर्यसूनू च। गुणैरुत्कर्षैः, तन्तुभिश्च। हृदये चेतसि, वक्षसि च। देवस्य राज्ञः, विष्णोश्च। परमेश्वरेण राज्ञा, हरेण च।

कौतुकगृहं विवाहमङ्गलवेश्म।

उसका स्वागत किया। जैसे वसन्त कामदेव से मिलता है उसी प्रकार उन्होंने हाथ फैलाकर हथिनी से उतार कर झुके हुए उसका आलिङ्गन किया। क्रम से राज्यवर्धन और हर्ष भी जब गले मिले तो राजा हाथ से पकड़ कर उसे भीतर ले गए। अपने समान आसन आदि उपचारों से उसका सम्मान किया।

उसी समय गम्भीर नामक राजा के प्रिय विद्वान् ब्राह्मण ने ग्रहवर्मा से कहा—'हे तात, राज्यश्री के साथ तुम्हें सम्बन्धित पाकर आज पुष्पभूति और मुखर दोनों के वंश तेजस्वी, सारे संसार के लोगों को आनन्दित करने वाले सोम और सूर्य वंश के समान धन्य हुए। पहले से ही देव प्रभाकरवर्धन ने कौस्तुभमणि के समान तुम्हें धारण किया है। इस समय जैसे शिवने चन्द्र को अपने मस्तकपर धारण किया है उसी प्रकार तुम भी उनके शिरोधार्य हो रहे हो।

ब्राह्मण गम्भीर यह कह ही रहे थे कि ज्योतिषियों ने आकर कहा—'राजन्, लग्न का समय निकट है। जामाता कौतुकगृह में चलें।' राजा के 'उठो, जाओ' कहने पर ग्रहवर्मा ने अन्तःपुर में प्रवेश किया और वर को देखने के कुतूहल में स्त्रियों की खिले-

स्त्रीणां पतितानि लोचनसहस्राणि विकचनीलकुवलयवनानीव लङ्घयन्ना-ससाद कौतुकगृहद्वारम् । निवारितपरिजनश्च प्रविवेश ।

अथ तत्र कतिपयाप्तप्रियसखीस्वजनप्रमदाप्रायपरिवाराम्, अरुणांशुकावगुण्ठितमुखीं प्रभातसंध्यामिव स्वप्रभया निष्प्रभान्प्रदीपकान्कुर्वाणाम्, अतिसौकुमार्यशङ्कितेनेव यौवनेन नातिनिर्भरमुपगूढाम्, साध्वसनिरुध्यमानहृदयदेशदुःखमुक्तैर्निभृतायतैः श्वसितैरपयान्तं कुमारभावमिवानुशोचन्तीम्, अत्युत्कम्पिनीं पतनभियेव त्रपया निष्पन्दं धार्यमाणाम्, हस्तं तामरसप्रतिपक्षमासन्नग्रहणं शशिनमिव रोहिणीं भयवेपमानमानसामवलोकयन्तीम्, चन्दनधवलतनुलताम्, ज्योत्स्नादानसंचितलावण्यात्कुमुदिनीगर्भादिव प्रसूताम्, कुसुमामोदनिर्हारिणीं वसन्तहृदयादिव निर्गताम्, निःश्वासपरिमलाकृष्टमधुकरकुलां मलयमारुतादिवोत्पन्नाम्, कृतकंदर्प-

अथेत्यादौ । तत्र वधूमपश्यदिति संबन्धः । अरुणांशुकं लोहितं वस्त्रम् । अरुणस्याल्पांशवोंऽशुकाः । निभृतैर्गुप्तैः । प्रतिपक्षस्तुल्यः, शत्रुश्च । ग्रहणं हस्तस्य स्वीकारः, शशिनश्च ग्रहणं समासन्नं भवति । उद्गमनं सौरभमित्यन्ये । प्रभावीनां कौस्तुभादिभिर्यथासंख्यम् । बालिका ऊर्मिका, कौमारी च । विनोदयन्तीं प्रथयन्तीम् । हारिणीं रम्याम्, मार्गा च ।

हुए कुवलय के समान गिरती हुई आँखों को लांघते हुए कौतुकगृह के द्वार पर पहुंचा । अन्य लोग द्वार पर ही रोक दिए गए और उसने भीतर प्रवेश किया ।

तब उसने वहाँ वधूवेश में राज्यश्री को देखा । वह कुछ मान्य और प्रियसखियों से और स्वजन स्त्रियों से घिरी हुई थी । प्रभात काल की संध्या के समान लाल अंशुक का घूंघट डाले अपनी प्रभा से दीपों को निष्प्रभ कर रही थी । मानों यौवन ने उसे अत्यन्त सुकुमार जान कर कस कर नहीं दबाया था । भय के कारण रुंधे हुए हृदयदेश से वह कठिनता से लम्बी सांस लेती थी, मानों अब छोड़ कर जाते हुए कुमारभाव के बारे में चिन्ता कर रही थी । वह कांप रही थी, फिर भी गिर जाने के भय से उसे लज्जा ने मानों पकड़ रखा था । भय से कांपते हुए मन वाली वह कमल के प्रतिपक्षी अपने हाथ को देख रही थी, मानों ग्रहणसमय निकट होने पर कातर होकर रोहिणी चन्द्रमा को देख रही हो । चन्दन के लगाने से उसकी देह और भी सफेद हो रही थी, मानों चन्द्र के द्वारा दी गई ज्योत्स्ना के लावण्य से भरे हुए कुमुदिनी के गर्भ से उत्पन्न हुई हो । फूल की गन्ध से वह और भी मनोहर लग रही थी, मानों वसन्त के हृदय से निकली हो । उसके निश्वास के परिमल में भौंरे खिंचते जा रहे थे, मानों वह

नुसरणां रतिमिव पुनर्जाताम्, प्रभालावण्यमदसौरभमाधुर्यैः कौस्तुभशशिमदिरापारिजातामृतप्रभवैः सर्वरत्नगुणैरपरामिव सुरासुररुषा रत्नाकरेण कल्पितां श्रियम्, स्निग्धेन बालिकालोकेन सितसिन्दुवारकुसुममञ्जरीभिरिव मुक्तादीधितिभिः कल्पितकर्णावतंसाम्, कर्णाभरणमरकतप्रभाहरितशाद्वलेन कपोलस्थलीतलेन विनोदयन्तीमिव हारिणीं लोचनच्छायाम्, अधोमुखं वरकौतुकालोकनाकुलं मुहुर्मुहुः कृतमुखोन्नमनप्रयत्नं सखीजनं हृदयं च निर्भर्त्सयन्तीं वधूमपश्यत्।

प्रविशन्तमेव तं हृदयचौरं वध्वा समर्पितं जग्राह कंदर्पः। परिहासस्मेरमुखीभिश्च नारीभिः कौतुकगृहे यद्यत्कार्यते जामाता तत्तत्सर्वमतिपेशलं चकार। कृतपरिणयानुरूपवेशपरिग्रहां गृहीत्वा करे वधूं निर्जगाम। जगाम च नवसुधाधवलां निमन्त्रितागतैस्तुषारशैलोपत्यकामिव त्र्यम्ब-

---

मृगलोचनच्छायां नीलशाद्वलेन स्थलीतले क्रीडति। कौतुकालोकनाकुलं द्वयमपि साधारणम्।

वध्वा राज्यश्रिया। अथ वेदीं जगामेति संबन्धः। उपत्यकाद्रेः समासन्ना भूः।

मलयमारुत से उत्पन्न हो। वह कामदेव का अनुसरण कर रही थी, मानों रति ने फिर जन्म लिया हो। वह अपनी प्रभा, लावण्य, मद, सौरभ, माधुर्य आदि गुणों से दूसरी लक्ष्मी के समान मालुम पड़ रही थी, मानों जिसे कौस्तभमणि, चन्द्र, मदिरा, पारिजात और अमृत से उत्पन्न समस्त रत्न के उन गुणों के साथ समुद्र ने देवता और असुरों पर क्रोध करके फिर से उत्पन्न किया हो। उसके कानों में मोती की वालियों की किरणें उजले सिन्धुवार पुष्प की मंजरी की भांति अवतंस बन रही थीं। पन्ने के कर्णाभरण की हरी प्रभा उसके कपोलों पर पड़ रही थी, मानों वह आँखों की सुन्दर कान्ति को व्यक्त कर रही थी। दिखाने के लिए प्रयत्न में लगी हुई सखियां उसके झुके हुए मुंह को बार-बार उठाने का प्रयत्न कर रही थीं, वह उन्हें और अपने हृदय को भी कोस रही थी।

प्रवेश करते ही राज्यश्री के द्वारा दिए गए अपने हृदय के चोर उस ग्रहवर्मा को कामदेव ने पकड़ लिया। हँसी-मजाक करने वाली नवेलियों ने कोहबर में जो-जो करने के लिए कहा ग्रहवर्मा ने बिना जिद के सब किया। विवाह के अनुकूल वेषभूषा में सुसज्जित वधू का हाथ पकड़ कर वह निकला और वेदी के पास पहुंचा। वह (वेदी) चूने से ताजी पोती हुई थी, मानों शिव-पार्वती के विवाह में निमंत्रण पर आए हुए

काम्बिकाविवाहाहूतैर्भूभृद्भिः परिवृताम्, सेकसुकुमारयवाङ्कुरदन्तुरैः पञ्चास्यैः कलशैः कोमलवर्णिकाविचित्रैरमित्रमुखैश्च मङ्गल्यफलहस्ताभिरञ्जलिकारिकाभिरुद्भासितपर्यन्ताम्, उपाध्यायोपधीयमानेन्धनधूमायमानाग्निसंधुक्षणाक्षणिकोपद्रष्टृद्विजाम्, उपक्लृप्तानुनिहितानुपहतहरितकुशाम्, संनिहितदृषदजिनाज्यस्रुक्समित्पूलीनिवहाम्, नूतनशूर्पार्पितश्यामलशमीपलाशमिश्रलाजहासिनीं वेदीम्। आरुरोह च तां दिवमिव सज्योत्स्नः शशी। समुत्ससर्प च वेल्लितारुणशिखापल्लवस्य शिखिनः कुसुमायुध इव रतिद्वितीयो रक्ताशोकस्य समीपम्। हुते च हुतभुजि प्रदक्षिणावर्तप्रवृत्ताभिर्वधूवदनावलोकनकुतूहलिनीभिरिव ज्वालाभिरिव सह प्रदक्षिणं बभ्राम। पात्यमाने च लाजाञ्जलौ नखमयूखधवलिततनुरदृष्टपूर्ववधूवररूपविस्मयस्मेर इवादृश्यत विभावसुः।

भूभृन्नृपः, गिरिश्च। वर्णिका खटिका। अमित्रमुखै रूप्यमयैः, शत्रुमुखैश्च। अञ्जलिकारिकाभिर्मृन्मयप्रतिमाभिः, सालभञ्जिकाभिर्वा। अक्षणिको व्यग्रः। उपद्रष्टा साक्षी उपदेश्य इति केचित्। स्रुग्घोमपात्रम्। वेल्लिता वलिताः। शिखा ज्वाला, शिखाग्राणि च। पल्लवाः प्रान्ताः, किसलयानि च। शिखिनो वृक्षस्यापि। उक्तं च—'अग्निः शिखीति च प्रोक्तः शिखी वृक्षो निगद्यते। बर्हिणश्च शिखी प्रोक्तः क्वचित्स्यात्कुक्कुटः शिखी॥' इति च।

अनेकों पर्वतों से भरी हुई हिमालय की तराई हो। चारों ओर पास में चौड़े मुँह के कलसे रखे हुए थे, पानी की तरी से नए यवांकुर उनमें उग गए थे। उनपर हल्की बनी की खरिया पुती हुई थी और उन्होंने सूर्य का मुख नहीं देखा था। मंगलार्थ फल को हाथ में लिए मिट्टी की मूरतें खड़ी थीं। ईन्धन देने से धुंवा उगलती हुई अग्नि को प्रज्वालित करने में साक्षी रूप बैठे हुए ब्राह्मण व्यग्र हो रहे थे। अग्नि के समीप ही हरे-हरे लम्बे कुश रखे हुए थे। अश्मारोहण के लिए सिल, कृष्ण मृगचर्म, घृत, स्रुवा और समिधाएं रखी हुई थीं। जैसे ज्योत्स्ना के साथ चन्द्र आकाश में चढ़ता है उसी प्रकार ग्रहवर्मा भी वधू राज्यश्री के साथ विवाहवेदी पर चढ़े और जैसे कामदेव रति को साथ लेकर रक्ताशोक के समीप पहुंचता है उसी प्रकार हिलती हुई लाल शिखा से युक्त अग्नि के पास आए। हवन करने के पश्चात् दक्षिण की ओर मुड़ती हुई मानों वधू का मुखड़ा देखने के कुतूहल वाली ज्वालाओं के साथ उन दोनों ने अग्नि के चारों ओर भांवरे लीं और लाजाञ्जलियाँ छोड़ीं। तब वर और वधू की नखकिरणों से और भी

अत्रान्तरे स्वच्छकपोलोदरसंक्रान्तमनलप्रतिबिम्बमिव निर्वापयन्ती स्थूलमुक्ताफलविमलबाष्पबिन्दुसंदोहदर्शितदुर्दिना निर्वदनविकारं रुरोद वधूः। उदश्रुविलोचनानां च बान्धववधूनामुदपादि महानाक्रन्दः। परिसमापितवैवाहिकक्रियाकलापस्तु जामाता वध्वा समं प्रणनाम श्वशुरौ। प्रविवेश च द्वारपक्षलिखितरतिप्रीतिदैवतं प्रणयिभिरिव प्रथमप्रविष्टैरलिकुलैः कृतकोलाहलम्, अलिकुलपक्षपवनप्रेङ्खोलितैः कर्णोत्पलप्रहारभयप्रकम्पितैरिव मङ्गलप्रदीपैः प्रकाशितम्, एकदेशलिखितस्तबकितरक्ताशोकतरुतलभाजाधिज्यचापेन तिर्यक्कूणितनेत्रत्रिभागेण शरमृजूकुर्वता कामदेवेनाधिष्ठितम्, एकपार्श्वन्यस्तेन काञ्चनाचामरुकेणेतरपार्श्ववर्तिन्या च दान्तशफरुकधारिण्या कनकपुत्रिकया साक्षाल्लक्ष्म्येवोद्दण्डपुण्डरीकहस्तया सनाथेन सोपधानेन स्वास्तीर्णेन शयनेन शोभमानम्, शयनशिरोभाग-

---

निर्वापयन्ती गमयन्ती। प्रविवेशेत्यादौ। जामाता वासगृहमिति संबन्धः। पक्षः पार्श्वम्। कूणितः संकोचितः।

प्रकाशमान अग्निदेव मानों पहले कभी नहीं देखे हुए इस प्रकार वर-वधू के रूप को देखकर आश्चर्य के साथ प्रसन्न दीख पड़े।

इसी बीच वधू राज्यश्री मानों अपने स्वच्छ कपोलों में पड़ती हुई अग्नि की छाया को बुझाती हुई, और स्थूल मुक्ताफल जैसे निर्मल आँसुओं से दुर्दिन का दृश्य उपस्थित करती हुई मुख की विकृति के बिना ही रोने लगी। बान्धव-बन्धुओं की आँखें भी आँसू से छल-छला उठीं और तब एक प्रकार का शोरगुल मचा। इधर विवाह का विधि विधान समाप्त करके जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया और वासगृह में प्रविष्ट हुआ। उस वासगृह के दोनों पक्खों पर एक ओर रति और दूसरी ओर प्रीति (कामदेव की दोनों स्त्रियों) के चित्र बनाए गए थे। प्रेमी के समान पहले ही घुसकर भौंरों ने कोलाहल शुरू किया। भौंरों के पंख की हवा से हिलते हुए मानों कर्णोत्पल के प्रहार के भय से कांपते हुए मंगलदीप उस गृह को प्रकाशित कर रहे थे। एक ओर फूलों से लदे रक्ताशोक के नीचे धनुष पर बाण रखकर तिरछी ऐंची हुई मिचमिचाती आँख से निशाना साधते हुए कामदेव का चित्र बना था। अन्दर सफेद चादर से ढंका हुआ पलंग बिछा था जिसके सिरहाने तकिया रखा था। उसके एक पार्श्व में सोने की एक झारी रखी थी और दूसरी ओर हाथीदाँत का डिब्बा लिए हुए सोने की पुतली

स्थितेन च कृतकुमुदशोभेन कुसुमायुधसाहाय्यकायागतेन शशिनेव निद्राकलशेन राजतेन विराजमानं वासगृहम् ।

तत्र च ह्रीताया नववधूकायाः पराङ्मुखप्रसुप्ताया मणिभित्तिदर्पणेषु मुखप्रतिबिम्बानि प्रथमालापाकर्णनकौतुकागतगृहदेवताननानीव मणिगवाक्षकेषु वीक्षमाणः क्षणदां निन्ये । स्थित्वा च श्वशुरकुले शीलेनामृतमिव श्वश्रूहृदये वर्षन्नभिनवाभिनवोपचारैरपुनरुक्तान्यानन्दमयानि दश दिनानि, दत्त्वा च राजदौवारिकमिव राजकुले रणरणकं यौतकनिवेदितानीव शम्बलान्यादाय हृदयानि सर्वलोकस्य कथंकथमपि विसर्जितो नृपेण वध्वा सह स्वदेशमगमदिति ।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते चक्रवर्तिजन्मवर्णनं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः ।



क्षणदां रात्रिम् । दश दिनानि स्थित्वेति संगतिः । यौतकं सुदायः ।

इति श्रीशंकरविरचिते हर्षचरितसंकेते चतुर्थ उच्छ्वासः ।



खड़ी थी । नीचे पलंग के सिरहाने कुमुदों से शोभित मानों कामदेव की सहायता के लिए पहुंचे हुए चन्द्रमा के समान चाँदी का निद्रा-कलश रखा हुआ था ।

वहाँ लज्जित होकर पराङ्मुख सोई हुई नववधू राज्यश्री के मुखड़े के प्रतिबिम्बों को मणिभित्ति में लगाए गए दर्पणों में देखने लगा, वे प्रतिबिम्ब मानों पहली मुलाकात की बातचीत सुनने के कुतूहल से मणिगवाक्षों में खड़ी होकर ताक झांक करती हुई गृहदेवताओं के मुख हों । इस प्रकार उसने रात बिताई । इस प्रकार ग्रहवर्मा श्वशुरकुल में अपने शील से सास के हृदय में अमृत की वर्षा करता हुआ नित्य नये-नये उपचारों से दस दिनों तक आनन्द के साथ रहा और द्वारपाल के समान राजकुल में अपना विच्छेदजनित उद्वेग देकर दहेज में मिली हुई सामग्री के साथ सब लोगों के हृदय को भी लेते हुए किसी-किसी प्रकार राजा के द्वारा विसर्जित हुआ वधू राज्यश्री को विदा करा अपने स्थान को लौट गया ।

हर्षचरित चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

पञ्चम उच्छ्वासः

नियतिर्विधाय पुंसां प्रथमं सुखमुपरि दारुणं दुःखम् ।
कृत्वा लोकं तरला तडिदिव वज्रं निपातयति ॥ १ ॥
पातयति महापुरुषान्सममेव बहूननादरेणैव ।
परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः ॥ २ ॥

अथ कदाचिद्राजा राज्यवर्धनं कवचहरमाहूय हूणान्हन्तुं हरिणानिव हरिर्हरिणेशकिशोरमपरिमितबलानुयातं चिरंतनैरमात्यैरनुरक्तैश्च महासामन्तैः कृत्वा साभिसरमुत्तरापथं प्राहिणोत् ।

प्रयान्तं च तं देवो हर्षः कतिचित्प्रयाणकानि तुरङ्गमैरनुवव्राज । प्रविष्टे च कैलासप्रभाभासिनीं ककुभं भ्रातरि वर्तमानो नवे वयसि त्रिक-

---

नियतीत्यादि । नियतिर्दैवम् । लोकं जनम् । तडिद्विद्युत् । तडिदपि तरलाऽऽलोकं कृत्वा वज्रम् निपातयति ॥ १ ॥

अनन्तः पर्यन्तरहितः, शेषभट्टारकश्च ॥ २ ॥

आर्यायुगलेनानेन भाविनी राजविपत्तिः सूचिता ।

कवचहर इति वयसि निरयम् । बलं सैन्यम्, सामर्थ्यं च । साभिसरं ससहायम् ।

जैसे चंचल बिजली क्षण भर अपनी चमक दिखाकर बार-बार वज्रपात करने लग जाती है उसी प्रकार नियति भी पहले-पहल लोगों पर सुख की चमक दिखाती है और फिर वज्र के समान भीषण दुःख ही दुःख गिराने लग जाती है ॥ १ ॥

करवट बदलता हुआ यह कालचक्र अनेक महापुरुषों को भी बिना किसी लगाव के एक साथ बिलट डालता है, जैसे प्रलय के समय में पृथिवी को सहस्र फणों पर धारण करने वाला शेषनाग सुस्ताने के लिए बोझा बदलता है तो बड़े-बड़े पहाड़ उलट-पुलट जाते हैं ॥२॥

किसी समय राजा प्रभाकरवर्धन ने कवच पहनने की आयु वाले अपने पुत्र राज्यवर्धन को बुलाकर हूणों से युद्ध करने के लिए उत्तरापथ की ओर भेजा, जैसे सिंह हरिणों को मारने के लिए अपने बाल सिंह को भेजता है। पुराने मन्त्रियों और अपने में मिले हुए महासामन्तों की देख-रेख में अपरिमित सेना को भी उसके साथ किया ।

युद्ध के लिए प्रयाण करते हुए राज्यवर्धन को देखकर देव हर्ष भी कुछ पड़ावों तक घोड़ों के साथ पीछे-पीछे गए। कैलास पर्वत की उज्ज्वल प्रभा से उद्भासित होने वाली

मरसानुरोधिनि केसरिशरभशार्दूलवराहबहुलेषु तुषारशैलोपकण्ठेषूत्कण्ठमानवनदेवताकटाक्षांशुशारितशरीरकान्तिः क्रीडन्मृगयां मृगलोचनः कतिपयान्यहानि बहिरेव व्यलम्बत। चकार चाकर्णान्ताकृष्टकार्मुकनिर्गतभासुरभल्लवर्षी स्वल्पीयोभिरेव दिवसैर्निःश्वापदान्यरण्यानि।

एकदा तु वासतेय्यास्तुरीये यामे प्रत्युषस्येव स्वप्ने चटुलज्वालापुञ्जपिञ्जरीकृतसकलककुभा दुर्निवारेण दवहुतभुजा दह्यमानं केसरिणमद्राक्षीत्। तस्मिन्नेव च दावदहने समुत्सृज्य शावकानुत्प्लुत्य चात्मानं पातयन्तीं सिंहीमपश्यत्। आसीच्चास्य चेतसि—'लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति' इति। प्रबुद्धस्य चास्य मुहुर्मुहुर्दक्षिणेतरमक्षि पस्पन्दे। गात्रेषु चाकस्मादेव वेपथुर्विपप्रथे। निर्निमित्तमेवान्तर्बन्धनस्थानाच्चचालेव

केसरिणः सिंहाः। अष्टपादाः प्राणिविशेषाः शरभाः। शार्दूला व्याघ्राः। वराहाः सूकराः। क्रीडन्मृगयामिति। 'कालभावाध्वगन्तव्या कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्' इति भावार्थरूपाया मृगयायाः कर्मभावः।

वासतेयी रात्रिः। तुरीये चतुर्थेऽहनि। संवाह्यमानं भ्राम्यमाणम्। लुलितं व्याप्तम्।

उत्तर दिशा में जब बड़े भाई राज्यवर्धन ने प्रवेश किया तो पराक्रम के रस का अनुरोध करने वाली नई अवस्था को प्राप्त हुए, उत्कण्ठित वन-देवताओं के कटाक्षों से रंगीन कान्ति वाले, मृग सदृश नेत्र वाले हर्ष सिंह, शरभ, वराह आदि से भरी हुई हिमालय की तराइयों में आखेट करते हुए कुछ दिन तक बाहर ही रुक गए। उन्होंने धनुष की डोर को कान तक खींच कर तीखे बाणों की वर्षा करके थोड़े ही दिनों में तराई के जंगलों को खूंखार जानवरों से शून्य कर दिया।

वहीं एक दिन रात के चौथे प्रहर में जब पौ फटने को हुई तो हर्ष ने स्वप्न में देखा कि दिशाओं को अपने ज्वालापुञ्ज से पिंजरित करती हुई अत्यन्त भीषण वनाग्नि में एक शेर जल रहा है और अपने बच्चों को छोड़ कर उसी अग्नि में शेरनी छलांग मार कर कूद रही है। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—'सचमुच संसार में स्नेह के बन्धन-पाश लोहे से भी बढ़ कर सख्त होते हैं, जिनसे आकृष्ट होकर तिर्यक् जीव भी इस प्रकार कर डालते हैं।' जब वे जगे तो उनकी बाईं आंख बार-बार फरकने लगी। एकाएक उनके अङ्गों में कंपकपी होने लगी। बिना कारण ही हृदय बाहर निकला आ रहा था। दुःख का वेग बिना कारण ही बहुत बढ़ गया। यह क्या बात है? इस प्रकार

हृदयम्। अकारणादेव चाजायत गरीयसी दुःखासिका। किमिदमिति च समुत्पन्नविविधविकल्पविमथितमतिरपगतधृतिश्चिन्तावनमितवदनः स्तिमिततारकेण चक्षुषा समुद्भिद्यमानस्थलकमलिनीवनामिव चकार चकोरेक्षणः क्षणं क्षोणीम्। अह्नि च तस्मिञ्शून्येनैव च चेतसा चिक्रीड मृगयाम्। आरोहति च हरितहये मध्यमह्नो भवनमागत्योभयतो मन्द-मन्दं संवाह्यमानतनुतालवृन्तः क्षितितलवितताममतिशिशिरमलयजरसलवलुलितवपुषमिन्दुधवलोपधानधारिणीं वेत्रपट्टिकामधिशयानः साशङ्क एव तस्थौ।

अथ दूरादेव लेखगर्भया नीलीरागमेचकरुचा चीरचीरिकया रचितमुण्डमालकम्, श्रमातपाभ्यामारोप्यमाणकायकालिमानम्, अन्तर्गतेन शोकशिखिनाऽङ्गारतामिव नीयमानम्, अतित्वरागमनद्रुततरपदोद्धूयमानधूलिराजिव्याजेन राजवार्ताश्रवणकुतूहलिन्या मेदिन्येवानुगम्यमानम्, अभिमुखपवनप्रेङ्खत्प्रविततोत्तरीयपटप्रान्तवीज्यमानोभयपार्श्वमतित्वरया

अथेत्यादौ। दूरादेव कुरङ्गकनामानमध्वगमापतन्तमद्राक्षीदिति संबन्धः। नीली-नामौषधिः। बर्हिकण्ठसमानो मेचकः। आरोप्यमाणः क्रियमाणः।

उनके मस्तिष्क में अनेक विकल्पों का मंथन शुरू हुआ, उनका धैर्य जाता रहा, केवल चिन्ता से सिर झुकाए हुए पृथिवी की ओर चकोर के समान एकटक से देखने लगे, मानों जमीन से स्थल-कमलिनियों का समूह निकल रहा हो। उस दिन उदास मन से ही आखेट किया। जब दिन चढ़ गया तब लौट कर निवासस्थान पर आए और जमीन पर बिछी हुई बेंत की शीतलपाटी पर जो अत्यन्त ठंडे चन्दन रस के छिड़काव से भीगी हुई थी और जिसके सिरहाने धवल उपधान (तकिया) रखा था, चिन्तित होकर बैठ गए। उनके दोनों ओर ताड़ के पंखे मंद-मंद झले जा रहे थे।

तभी उन्होंने दूर से ही कुरंगक नाम के लेखहारक को आते हुए देखा। उसके सिर पर नील में रँगी हुई पट्टी माला के समान बँधी हुई थी जिसके भीतर लेख था। एक तो चलने की थकान और उस पर कड़ाके की धूप दोनों से उसकी देह स्याह हो गई थी। हृदय के भीतर जलती हुई शोक की अग्नि के कारण अंगार-सा बन रहा था। वह बड़ी तेजी से चल रहा था। उसके पैर से लग कर धूल उड़ रही थी, मानों राजा का समाचार सुनने के कुतूहल से पृथिवी उसके पीछे पीछे चली आ रही थी। सामने की ओर से बहती हुई हवा से उसके उत्तरीय के छोर दोनों बगल में छहरा रहे थे, मानों वह पंख बांध कर शीघ्र दौड़ता हुआ चला आ रहा था। मानों उसे स्वामी का आदेश पीछे से

कृतपक्षमिवाशु परापतन्तम्, प्रेर्यमाणमिव पृष्ठतः स्वाम्यादेशेनाकृष्यमाणमिव पुरस्तादायतैः श्रमश्वासमोक्षैः स्विद्यल्ललाटतटघटमानप्रतिबिम्बकेन कार्यकौतुकादपह्रियमाणलेखमिव भास्वता संभ्रमभ्रष्टैरिवेन्द्रियैः शून्यीकृतशरीरम्, लेखार्पितप्रयोजनगौरवादिव समेऽपि वर्त्मनि शून्यहृदयतया स्खलन्तम्, कालमेघशकलमिव पतिष्यतो दुर्वार्तावज्रस्य, धूमपल्लवमिव ज्वलिष्यतः शोकज्वलनस्य, बीजमिव फलिष्यतो दुष्कृतशालेरनिमित्तभूतदीर्घाध्वगं कुरङ्गकनामानमायान्तमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा च पूर्वनिमित्तपरम्पराविभावितभीतिरभिद्यत हृदयेन। कुरङ्गकस्तु कृतप्रणामः समुपसृत्य प्रथममाननलग्नं विषादमुपनिन्ये, पश्चाल्लेखम्। तं च देवो हर्षः स्वयमेवादायावाचयत्। लेखार्थेनैव च समं गृहीत्वा हृदयेन संतापमवग्रहरूपोऽभ्यधात्—'कुरङ्गक! किं मान्द्यं तातस्य?' इति। स चक्षुषा बाष्पजलबिन्दुभिर्मुखेन च खञ्जाक्षरैः क्षरद्भि-

---

इन्द्रियैरिति। शून्यत्वं तेषां जडत्वाप्तेः। शकलं खण्डम्।

प्रेरित कर रहा था। श्रम के कारण लम्बी सांस छोड़ने से वह मानों आगे की ओर खिंचता जा रहा था। पसीने से तर उसके ललाट पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था मानों 'किस कार्य से जा रहा है?' यह जानने के कौतुक से सूर्य उसके माथे पर खोंसे हुए लेख को चुराने की कोशिश कर रहा था। कार्य की व्यग्रता के कारण इन्द्रियां मानों शरीर से पृथक् हो गई थीं। लेख की बात इतनी गम्भीर थी कि वह समतल मार्ग पर भी हृदयशून्य होकर गिरता-पड़ता आ रहा था। थोड़ी ही देर में अकुशल समाचार के गिरने वाले वज्र का वह मानों काला मेघखण्ड था। ज्वलित होने वाले शोकानल का वह मानों धुवां के समान था। फलने वाले दुःखरूपी धान का वह मानों बीज था। वह अनिमित्त की सूचना देने वाला दीर्घाध्वग (दूरगामी) था।

स्वप्न की बात से उत्पन्न भय के कारण उसे देख कर हर्ष का हृदय जैसे फट गया। कुरंगक ने आकर प्रणाम किया और पास आकर पहले अपने मुख में लगे विषाद को अर्पित किया और फिर लेख को। हर्ष ने स्वयं ही उसे लेकर बाँचा। लेख की बात जानते ही सन्तप्त हृदय को किसी प्रकार थाम कर उन्होंने स्तब्ध होते हुए कहा—'कुरंगक, पिताजी को कौन-सी बीमारी है?' वह एक ही बार आँख से आँसू और मुख से टूटी हुई आवाज को निकालते हुए बोला—'देव, महान् दाहज्वर है।' इस समाचार को सुनते ही उनका हृदय मानों हजारों टुकड़ों में विदीर्ण हो गया। फिर उन्होंने पिताजी

युगपदाचचक्षे—'देव ! दाहज्वरो महान्' इति। तच्चाकर्ण्य सहसा सहस्रधेवास्य हृदयं पफाल। कृताचमनश्च जनयितुरायुष्कामोऽपरिमितमणिकनकरजतजातमात्मपरिबर्हमशेषं ब्राह्मणसादकरोत्। अभुक्त एवोच्चचाल। 'दापय वाजिनः पर्याणम्' इति च पुरःस्थितं शिरःकृपाणं बिभ्राणं बभाण युवानम्। वेपमानहृदयश्च ससंभ्रमप्रधावितपरिवर्धकोपनीतमारुह्य तुरङ्गमेकाक्येव प्रावर्तत।

अकाण्डप्रयाणसंज्ञाशङ्खक्षुभितं तु संभ्रमात्सज्जीभूतमुद्भूतमुखरखुररवभरितसकलभुवनविवरमागत्यागत्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यो धावमानमश्वीयमढौकत। प्रस्थितस्य चास्य प्रदक्षिणेतरं प्रयान्तो विनाशमुपस्थितं राजसिंहस्य हरिणाः प्रकटयांबभूवुः। अशिशिररश्मिमण्डलाभिमुखश्च हृदयमवदारयन्निव दावशुष्के दारुणि दारुणं रराण वायसः। कज्जलमय इव बहुदिवसमुपचितबहलमलपटलमलिनिततनुरभिमुखमाजगाम शिखिपिच्छ-

---

पफाल पुस्फोट। जातेति शब्दः प्रकारे। परिबर्हो भोजनादिपरिच्छदः। ब्राह्मणसाद्ब्राह्मणाधीनम्। न भुक्तमस्येत्यभुक्तः। शिरोदेशे स्थापितः कृपाणः। परिवर्धकोऽश्वपालः। प्रावर्ततेत्यर्थाद्गन्तुम्।

अश्वीयमश्वसमूहः। सिंहशब्दः प्रशंसायाम्। हरिणा इति। मृगा हि स्वैरं चरन्तः

की आयु की कामना से आचमन करके बहुत से मणि, सुवर्ण और रजत एवं अपने खाने-पहरने की सब चीजों को ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया। स्वयं बिना भोजन किए ही उठ खड़े हुए। 'घोड़े पर जीन कसवाओ' यह अपने सामने खड़े हुए कृपाणधारी युवक को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही घबड़ाहट के साथ अश्वपाल के द्वारा लाए हुए घोड़े पर सवार हुए और अकेले ही चल पड़े। उनका हृदय काँप रहा था।

उसकी टुकड़ी में अचानक कूच को सूचित करने वाला शंख बजा दिया गया। सुनते ही घबड़ा कर घोड़े कसे जाने लगे और थोड़ी ही देर में टापों की आवाज से संसार को भरते हुए चारों ओर से दौड़ते हुए आ-आकर भर गए। जब उन्होंने प्रस्थान किया तब बाईं ओर से हिरन निकल कर महाराज के होने वाले मरण की सूचना देने लगे। कौवा सूर्यमण्डल की ओर मुँह करके जङ्गल की आग से झुलस कर सूखे हुए पेड़ पर बैठ कर हृदय विदीर्ण करता हुआ काँव-काँव की रट लगाने लगा। बहुत दिन का मैला कुचैला शरीर वाला काला-कलूट कोई साधु हाथ में मोरछल लिए सामने आ गया। इन असगुनों के होने से यात्रा को विघ्नित जानकर वे बहुत शंकित हुए। पिता के प्रति स्नेह

लाञ्छनो नग्नाटकः। दुर्निमित्तैरनभिनन्द्यमानगमनश्च नितरामशङ्कत। हृदयेन पितृस्नेहाहितम्रदिम्ना च तत्तदुपेक्षमाणस्तुरङ्गमस्कन्धबद्धलक्ष्यं चक्षुरविचलं दधानो दुःखमवसितहसितसंकथस्तूष्णींभूतेन भूपाललोकेनानुगम्यमानो बहुयोजनसंपिण्डितमध्वानमेकेनैवाह्ना समलङ्घयत्।

उपलब्धनरेन्द्रमान्द्यवार्ताविषण्ण इव नष्टतेजस्यधोमुखीभवति भगवति भानुमति भण्डिप्रमुखेन प्रणयिना राजपुत्रलोकेन बहुशो विज्ञाप्यमानोऽपि नाहारमकरोत्। पुरःप्रवृत्तप्रतीहारगृह्यमाणग्रामीणपरम्पराप्रकटितप्रगुणवर्त्मा च वहन्नेव निन्ये निशाम्।

अन्यस्मिन्नहनि मध्यंदिने विगतजयशब्दम्, अस्तमिततूर्यनादमुपसंहृतगीतम्, उत्सारितोत्सवम्, अप्रगीतचारणम्, अप्रसारितापणपण्यम्, स्थानस्थानेषु पवनबलकुटिलाभिः कोटिहोमधूमलेखाभिरुल्लसन्तीभिर्यममहिषविषाणकोटिभिरिवोल्लिख्यमानम्, कृतान्तपाशवागुराभिरिव वेष्ट्य-

---

सिंहस्य विनाशमभावं सूचयन्ति। नग्नाटको नग्नक्षपणकः। तुरङ्गमेति चक्षुर्विशेषणम्। दुःखेन समवसिता निवृत्ता संकथा कथनं यस्य सः। संपिण्डितं संकलितम्।

प्रगुणं स्पष्टम्। वहन्नविश्रान्तिं गच्छन्।

अन्यस्मिन्नित्यादौ। स्कन्धावारं समाससादेति संबन्धः। आपणेषु हट्टेषु। पण्यं

से उनका हृदय द्रवित था, अतः सब की उपेक्षा करते हुए केवल घोड़े के कन्धे पर ही दृष्टि गड़ाकर दुःख के कारण सारी हँसी और गपशप को भूलकर कई योजन के मार्ग को एक ही दिन में तय किया। उनके पीछे मौन होकर राजसमूह चल रहा था।

भगवान् सूर्य मानों राजा की बीमारी का समाचार सुनने से दुखी होकर तेजरहित और अधोमुख होने लगे। भण्डि आदि मित्र राजकुमारों ने बहुत बार समझाया फिर भी हर्ष ने भोजन नहीं किया। केवल आगे चलते हुए दौवारिक द्वारा गाँव वालों को पकड़-पकड़ कर रास्ता पूछे जाने और उनके द्वारा दिखाए जाने पर रात में भी बराबर चलते रहे।

अगले दिन दोपहर के समय स्कन्धावार पहुँचे। वहाँ जय-जयकार की आवाज बिलकुल बन्द थी। तूर्य बजाया नहीं जा रहा था, और गीत भी बन्द था। उत्सव उठा दिया गया था। चारण नहीं गा रहे थे। बेचने के लिए बाजार में वस्तुएँ फैलाई नहीं गई थीं। जगह-जगह पर करोड़ों यज्ञों की धूमलेखाएँ हवा से टेढ़ी-मेढ़ी निकल रही थीं, मानों यमराज के भैंसों के सींगों के अग्रभाग हों या यमराज की फाँस ही जैसे चारों

मानम्, उपरि कालमहिषालंकारकालायसकिङ्किणीभिरिव कटु क्वणन्तीभिर्दिवसं वायसमण्डलीभिर्भ्रमन्तीभिरावेद्यमानप्रत्यासन्नाशुभम्, क्वचित्प्रतिशायितस्निग्धबान्धवाराध्यमानाहिर्बुध्नम्, क्वचिद्दीपिकादह्यमानकुलपुत्रकप्रसाद्यमानमातृमण्डलम्, क्वचिन्मुण्डोपहारहरणोद्यतद्रविडप्रार्थ्यमानामर्दकम्, क्वचिदान्ध्रोध्रियमाणबाहुवप्रोपयाच्यमानचण्डिकम्, अन्यत्र शिरोविधृतविलीयमानगलद्गुग्गुलुविकलनवसेवकानुनीयमानमहाकालम्, अपरत्र निशितशस्त्रीनिकृत्तात्ममांसहोमप्रसक्ताप्तवर्गम्, अपरत्र प्रकाशनरपतिकुमारकक्रियमाणमहामांसविक्रयप्रक्रमम्, उपहतमिव श्मशानपांशुभिरमङ्गलैरिव परिगृहीतम्, यातुधानैरिव विध्वस्तम्, कलिकालेनेव कवलितम्, पापपटलैरिव संछादितम्, अधर्मविक्षेपैरिव लुण्ठितम्, अनित्यताधिकारैरिवाक्रान्तम्, नियतिविलासैरिवात्मीकृतम्, शून्यमिव सुप्तमिव मुषितमिव विलक्षितमिव छलितमिव मूर्च्छितमिव स्कन्धावारं समाससाद।

विक्रेयं वस्तु। कालो यमः। कालायसं लोहजातिभेदः। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टिकाः। प्रतिशायिता उपोषिताः। अहिर्बुध्नो हरः। मुण्डं शिरः। द्रविडा आन्ध्राश्च जनपदभेदाः। आमर्दको वेतालः। रौद्रदेवताभेद इत्यन्ये।

ओर घिर रही थी। होने वाले असगुन की सूचना देते हुए झुण्ड के झुण्ड कौवे काँव-काँव करते हुए ऊपर मंडरा रहे थे, मानों यमराज के भैंसे की गर्दन में लगी हुई लोहा के घुंघुरुओं की माला बज रही थी। कहीं राजा के स्नेही बान्धव लोग उपासे रहकर भगवान् शङ्कर की आराधना कर रहे थे। कहीं राजघरानों के कुलपुत्र दियाली जलाकर सप्त मातृकाओं को प्रसन्न कर रहे थे। कहीं पाशुपतमतानुयायी द्रविड़ मुण्डोपहार चढ़ाकर वेताल को प्रसन्न करने की तैयारी में था। कहीं आंध्र देश का पुजारी अपनी भुजा उठाकर चण्डिका के लिए मनौती मान रहा था। एक ओर नए सेवक सिर पर गुग्गुल जला कर उसकी पीड़ा की विकलता में महाकाल को प्रसन्न कर रहे थे। एक ओर आप्त वर्ग के लोग तेज छुरी से अपना मांस काट-काट कर होम कर रहे थे। एक ओर राजकुमार लोग खुलेआम महामांस बेचने की तैयारी कर रहे थे। वह स्कन्धावार मानों श्मशान की धूल से दूषित हो गया हो, अमङ्गल चारों ओर घिर रहे हों, राक्षसों ने उसे विध्वंस कर दिया हो, कलिकाल उसे निगल गया हो, पापपटल उस पर छा गया हो, अधर्म के कार्यों ने उसे लूट लिया हो, अनित्यता के अधिकार उस पर आक्रान्त हों, नियति के

प्रविशन्नेव च विपणिवर्त्मनि कुतूहलाकुलबहलबालकपरिवृतमूर्ध्वयष्टिविष्कम्भवितते वामहस्तवर्तिनि भीषणमहिषाधिरूढप्रेतनाथसनाथे चित्रवति पटे परलोकव्यतिकरमितरकरकलितेन शरकाण्डेन कथयन्तं यमपट्टिकं ददर्श। तेनैव च गीयमानं श्लोकमशृणोत्—

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
युगे युगे व्यतीतानि कस्य ते कस्य वा भवान्॥ ३॥ इति।

तेन चाधिकतरमवदीर्यमाणहृदयः क्रमेण राजद्वारं प्रतिषिद्धसकललोकप्रवेशं ययौ। तुरगादवतीर्णश्चाभ्यन्तरान्निष्क्रामन्तमप्रसन्नमुखरागमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः सुषेणनामानं वैद्यकुमारकमद्राक्षीत्। कृतनमस्कारं च तमप्राक्षीत्—'सुषेण ! अस्ति तातस्य विशेषो न वा ?' इति। सोऽब्रवीत्—'नास्तीदानीं यदि भवेत्कुमारं दृष्ट्वा' इति। मन्दं मन्दं द्वारपालैः प्रणम्य-

---

विष्कम्भोऽवष्टम्भः। वितताः प्रसारिताः। व्यतिकरो वृत्तान्तः। यमपट्टेन जीवति यमपट्टिकः।

मन्दं मन्दमित्यादौ राजकुलं विवेशेति संबन्धः। अमृतचरुः शान्त्यर्थं चरुः। 'प्रजापतये स्वाहा' इति षण्णां देवतानां नाम गृहीत्वा षण्णामेवाहुतीनां प्रक्षेपः षडाहुतिहोम उच्यते। दधिघृते एकीकृत्य पृषदाज्यम्। 'पृषदाज्यं

विलासों ने अपने अधीन कर लिया हो। वह बिलकुल सुनसान-सा, सुप्त-सा, लुटा हुआ-सा, लज्जित, ठगा-सा, मूर्च्छित सा हो रहा था।

बाजार में घुसते ही उन्होंने यमपट्टिक को देखा। तमाशा देखने के कुतूहल से सड़क के बहुत से लड़कों ने उसे घेर रखा था। उसने बायें हाथ में ऊँची लाठी के ऊपरी सिरे पर चित्रपट फैला रखा था जिसमें भयङ्कर भैंसे पर सवार यमराज का चित्र लिखा था। वह दूसरे हाथ में सरकण्डा लिए हुए लोगों को चित्र दिखाता और परलोक में मिलने वाली नरकयातनाओं का बखान कर रहा था। उसी के द्वारा गाए गए श्लोक को सुना—

'हजारों माता-पिता और सैकड़ों पुत्र कलत्र युग-युग में हुए और बीत गए। हमेशा के लिए वे किसके हुए और आप किसके हैं ?'

उसे सुन कर उनका हृदय मानों विदीर्ण हो गया। क्रम से सब लोगों के प्रवेश को रोककर राजद्वार पर पहुँचे। जैसे ही घोड़े से उतरे, भीतर से निकलते हुए सुषेण नामक वैद्यकुमार को देखा, जिसका मुख अप्रसन्न था और इन्द्रियाँ बिलकुल काम न कर रही थीं। नमस्कार के बाद उससे पूछा—'सुषेण, पिताजी की हालत में सुधार है या नहीं ?' वह बोला—'अभी तो नहीं है, आपके मिलने से कदाचित् हो जाय।' द्वारपाल उन्हें प्रणाम

मानञ्च दीयमानसर्वस्वम्, पूज्यमानकुलदेवतम, प्रारब्धामृतचरुपचनक्रियम्, क्रियमाणषडाहुतिहोमम्, हूयमानपृषदाज्यलवलिप्तप्रचलद्दूर्वापल्लवम्, पठ्यमानमहामायूरीप्रवर्त्यमानगृहशान्तिनिर्वर्त्यमानभूतरक्षाबलिविधानम्, प्रयतविप्रप्रस्तुतसंहिताजपं जप्यमानरुद्रैकादशीशब्दायमानशिवगृहम्, अतिशुचिशैवसंपाद्यमानविरूपाक्षक्षीरकलशसहस्रस्नपनम्, अजिरोपविष्टैश्चानासादितस्वामिदर्शनदूयमानमानसैरभ्यन्तरनिष्पतितनिकटवर्तिपरिजननिवेद्यमानवार्तैर्वार्तीभूतस्नानभोजनशयनैरुज्झितात्मसंस्कारमलिनवेशैर्लिखितैरिव निश्चलैर्नरपतिभिर्नीयमाननक्तंदिवं दुःखदीनवदनेन च प्रघणेषु बद्धमण्डलेनोपांशुव्याहृतैः केनचिच्चिकित्सकदोषानुद्भावयता, केनचिदसाध्यव्याधिलक्षणपदानि पठता, केनचिद्दुःस्वप्नानावेदयता,

---

सदध्याज्ये' इति कोशः। महामायूरी बौद्धविद्या। शैवमन्त्र इति केचित्। संहिता संहितारूपो वेदपाठः। रुद्रैकादशी शिवमन्त्रः। वार्तात आगतं वार्तीभूतम्। प्रघणो बहिर्द्वारैकदेशः। कार्तान्तिको दैवज्ञः। उपलिङ्गान्युत्पाताः। अपवदता निन्दता।

करने लगे और धीरे धीरे उन्होंने राजकुल में प्रवेश किया। वहां सब कुछ दान में दिया जा रहा था। कुलदेवताओं की पूजा हो रही थी। शान्ति के लिए चरु पकाने का कार्य आरम्भ किया जा रहा था। छह आहुतियों वाला हवन किया जा रहा था। दही और घी का पृषदाज्य हवन किया जा रहा था जिसके छींटे दूबों पर पड़ गए थे। महामायूरी नामक बौद्धों की विद्या का पाठ चल रहा था। गृहशान्ति का विधान हो रहा था और भूतों से रक्षा के लिए बलि दी जा रही थी। पवित्र ब्राह्मण संहितामन्त्रों का जप करने में लगे थे। शिव के मन्दिर में रुद्र-एकादशी का जप बैठाया गया था। अत्यन्त पवित्र होकर शैव लोग भगवान् शङ्कर को दूध के हजार घड़ों से स्नान कराने में लगे थे। राजकुल के बाहर आँगन में राजा लोग दिन-रात चित्रलिखित की भाँति निश्चल होकर जमा रहते थे। महाराज के दर्शन न पाने से उनका मन खिन्न था। भीतर से निकलते हुए परिजनों द्वारा महाराज की खबर पाते थे। नहाना, सोना, खाना, सब कुछ भूल चुके थे। प्रसाधन के छूट जाने से उनका वेश मलिन हो गया था। दुःख से मुर्झाए हुए काम करने वाले नौकर द्वार से सटे हुए कोठों में एक जगह जुट कर कष्ट में पड़े हुए राजा की हालत के बारे में कानाफूसी कर रहे थे। कोई कहता, वैद्यों से ठीक-ठीक चिकित्सा न हो सकी; कोई व्याधि को असाध्य कह कर उसके लक्षण बताता; कोई अपने खराब-खराब स्वप्नों की चर्चा करता; कोई सुनाता कि पिशाच ने राजा को धरा है; कोई

केनचित्पिशाचवार्तां विवृण्वता, केनचित्कार्तान्तिकादेशान्प्रकाशयता, केनचिदुपलिङ्गानि गायता, अन्येनानित्यतां भावयता, संसारं चापवदता, कलिकालविलसितानि च निन्दता, दैवं चोपालभमानेनापरेण धर्माय कुप्यता, राजकुलदेवताश्चाधिक्षिपता, अपरेण क्लिष्टकुलपुत्रकभाग्यानि गर्हयता, बाह्यपरिजनेन कथ्यमानकष्टपार्थिवावस्थं राजकुलं विवेश।

अविरलबाष्पपयःपरिप्लुतलोचनेन पितृपरिजनेन वीक्ष्यमाणो विविधौषधिद्रव्यद्रवगन्धगर्भमुत्क्वथतां क्वाथानां सर्पिषां तैलानां च प्रपच्यमानानां गन्धमाजिघ्रन्नवाप तृतीयं कक्ष्यान्तरम्।

तत्र चातिनिःशब्दे गृहावग्रहणीग्राहिबहुवेत्रिणि, त्रिगुणतिरस्करिणीतिरोहितसुवीथीपथे, पिहितपक्षद्वारके, परिहृतकवाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, दूयमानपरिचारके, चरणताडनस्वनत्सोपानप्रकुपितप्रतीहारे, निभृतसंज्ञानिर्दिश्यमानसकलकर्मणि, नातिनिकटोपविष्टकञ्चुकिनि, कोणस्थिताह्वानचकिताचमनकग्राहिणि, चंद्रशालिकालीनमूकमौलिलोके, महा-

---

द्रवो रसः।

तत्रेत्यादौ। तत्र चैवंविधे धवलगृहे स्थितमीदृशं पितरमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। गृहावग्रहणी देहलीद्वारारम्भदेशः। वेत्रिणो द्वाःस्थाः। तिरस्करिणी जवनिका। सुवीथी धवलगृहस्याभ्यन्तरीकृता। 'प्रच्छन्नमन्तर्द्वारं यत्पक्षद्वारं तदुच्यते'। घटितो रचितः। निभृतं गुप्तम्। आचमनवाही पानीयहारकः। चन्द्रशालिका धवलगृह-

---

दैवज्ञों की कही हुई बात सुनाता; कोई उत्पातों की चर्चा करता; कोई कहता जीवन अनित्य है; कोई संसार को दुःखमय बताता; कोई कलिकाल के कार्यों की निन्दा करता; कोई दैव को दोषी ठहराता; कोई धर्म को ही उलाहना देता; कोई राजकुल के देवताओं की निन्दा करता; कोई कष्ट में पड़े हुए कुलपुत्रों के भाग्य की निन्दा करता।

आँसू से भरे नेत्र वाले पिता के परिजनों द्वारा देखे गए, अनेक प्रकार की औषधि के द्रव की गन्ध से मिले हुए, औटाए जाते हुए क्वाथों और पकाए जाते हुए तेल की गन्ध सूँघते हुए देव हर्ष तीसरी ड्योढ़ी में जा पहुँचे।

वहाँ हर्ष ने पिताजी को धवलगृह में पड़े हुए देखा। धवलगृह की देहली पर अनेक वेत्रधारी पुरुष कड़ाई के साथ पहरा दे रहे थे। उसके भीतर की लम्बी-चौड़ी वीथियाँ तिहरे पर्दे से पीछे छिपी थीं। भीतर प्रवेश करने का पक्षद्वार बन्द था। सावधानी से किवाड़ लगाए-खोले जाते थे जिससे आवाज न हो। हवा से रक्षा के लिए खिड़कियाँ बन्द थीं। सेवा में लगे हुए परिचारक दुखी थे। सीढ़ियों पर चढ़ने-उतरने से किसी

धिविधुरबान्धवाङ्गनावर्गगृहीतप्रच्छन्नप्रग्रीवके, संजवनपुञ्जितोद्विग्नपरिजने, प्रविष्टकतिपयप्रणयिनि, गम्भीरज्वरारम्भभीतभिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, मन्दायमानपुरोधसि, सीदत्सुहृदि, विद्राणविपश्चिति, संतप्ताप्तसामन्ते, विचित्तचामरग्राहिणि, दुःखक्षामशिरोरक्षिणि, क्षीयमाणप्रसादवित्तकमनोरथसंपदि, स्वामिभक्तिपरित्यक्ताहारहीयमानबलविकलवल्लभभूभृति, क्षितितलपतितसकलरजनीजागरूकराजपुत्रकुमारके, कुलक्रमागतकुलपुत्रनिवहोह्यमानशुचि, शोकसंकुचितकञ्चुकिनि, निरानन्दनन्दिनि, निःश्वसन्निराशासन्नसेवके, निःसृतताम्बूलधूसराधरवारयोषिति, विलक्षवैद्योपदिश्यमानपथ्याहरणावहितपौरोगवे, अनुजीविपीयमानोच्चचषकधारावारिविनोद्यमानास्यशोपरुजि, राजाभिलाषभोज्यमानबहुभुजि, भेषजसामग्रीसंपादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि, मुहुर्मुहुराहूयमानतोयकर्मान्तिकानुमितघोरातुरतृषि, तुषारपरिकरितकरकशिशिरीक्रियमाणोदश्विति,

---

स्योपरि प्रासादिका। 'आधिर्ना मानसी पीडा'। 'सजवनं चतुःशाला'। विपश्चित्पण्डितः। आप्ता आश्वस्ताः। प्रसादेन वित्ताः प्रख्याताः प्रसादवित्ताः। जागरूका जागरणशीलाः। विलक्षो लज्जितः। पौरोगवो महानसाध्यक्षः। उच्चचषकमपगतपानभाजनम्। भेषजमौषधम्। तोयकर्मान्तिका तोयकर्मशाला। करको जलभाण्डम्।

के पैरों की आवाज होती तो प्रतीहार झला पड़ते। सारा काम-काज केवल इशारे के सहारे किया जा रहा था। राजा का निजी अंगरक्षक कुछ हटकर बैठा था। आचमन का पात्र लिए हुए सेवक कोने में खड़ा था। पुराने मन्त्री लोग धवलगृह के कोठे पर चुप मारे बैठे थे। बान्धव स्त्रियाँ अत्यन्त विषादयुक्त अवस्था में सुरक्षित प्रग्रीवक (मुखशाला, उठने-बैठने का कमरा) में बैठी थीं। दुखी मन से सेवक लोग चतुःशाल पर एकत्र थे। कुछ ही प्रेमी लोगों ने भीतर प्रवेश किया था। ज्वर-ताप के अधिक बढ़ जाने से वैद्य लोग डर गए थे। मन्त्री लोग घबराए हुए थे। पुरोहित का बल भी फीका पड़ गया था। मित्र, विद्वान्, सामन्त—सभी दुःख में डूबे थे। चंवर झलने वाला सेवक व्यग्र था। प्रधान अंगरक्षक भी दुःख से कृश था। राजा की प्रसन्नता से धन कमाने वालों के मनोरथ भी क्षीण हो रहे थे। प्रिय राजा लोग स्वामी की भक्ति में भोजन छोड़ने से दुर्बल हो गए थे। रातभर जागे रहने की हैरानी से राजपुत्र लोग जमीन पर पड़ कर सो गए थे। पुश्तैनी कुलपुत्र भी शोक से संतप्त थे। कंचुकी शोक से संकुचित था। बन्दीगण भी आनन्दरहित थे और आसन्न-सेवक निराश होकर सांस ले रहे थे। गणिकाओं के अधर ताम्बूल छोड़ देने से झुरा गए थे। प्रधान रसोइए अपनी असफलता से

श्वेतार्द्रकर्पटार्पितकर्पूरपरागशीतलीकृतशलाके, नाश्यानपङ्कलिप्यमाननवभाण्डगतगण्डूषग्रहणमस्तुनि, तिम्यत्कोमलकमलिनीपलाशप्रावृतमृदुमृणालके, सनालनीलोत्पलपूलीसनाथसलिलपानभाजनभुवि, धारानिपातनिर्वाप्यमाणक्वथिताम्भसि, पटुपाटलशर्करामोदमुचि, मञ्चकाश्रितसिकतिलकर्करीविश्रान्तान्तरचक्षुषि, सरलशैवालवलयितगलद्गोलयन्त्रके, गल्वर्कशालाजिरोल्लासितलाजसक्तुनिपीतमसारपारीपरिगृहीतकर्कशशर्करे, शिशिरौषधरसचूर्णावकीर्णस्फटिकशुक्तिशङ्खसंचये, संचितप्रचुरप्राचीनामलकमातुलुङ्गद्राक्षादाडिमादिफले, प्रतिग्राहितविप्रविप्रकीर्यमाणशान्त्युदकविप्रुषि, प्रेष्याप्रेष्यमाणललाटलेपोपदिग्धदृषदि धवलगृहे स्थितम्, परलोक-

शलाकाः पाषाणकणिकाः। मुखपूरणं गण्डूषः। निर्वाप्यमाणं शीतलीक्रियमाणम्। पाटला शर्कराविशेषः। मञ्चक आधारभेदः। कर्करी वारिधानी। गोलयन्त्रकं बहुच्छिद्रं जलभाण्डम्। उल्लासिता विस्तारिताः। प्रतिग्राहिताः प्रतिग्रहं ग्राहिताः। प्रेष्या

लजाए हुए वैद्यों द्वारा बताए पथ्य की बात ध्यान से सुन रहे थे। नौकर राजा की प्यास मिटाने के लिए अपने मुँह में गिलास ऊँचा करके अपने मुँह में पानी की धार पीते थे। राजा की तृप्ति के लिए उनके सामने बहुत भोजन करने वालों को खिलाया जा रहा था। दूकानदार अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ जुटाने में लगे थे। पीने के लिए पानी लाने वाले की बार-बार पुकार होने से रोगी की घोर प्यास का अनुमान लगाया जा रहा था। तक्र की मटकियों को बरफ में लपेट कर ठण्डा किया जा रहा था। भींगे हुए सफेद कपड़े में कपूर की चूर रखकर सलाइयाँ ठण्डी की जा रही थीं। नए बर्तनों के चारों ओर गीली मिट्टी लथेड़ कर उसमें कुल्ला करने के लिए दही की पिलोर रखी हुई थी। कमलिनी के सूखते हुए पत्तों मे बाँध कर कोमल मृणाल रखे गए थे। जहाँ पानी पीने के बर्तन थे वहाँ डंठल के साथ नीले कमलों की आँटियाँ रखी गई थीं। खौल कर उबलते हुए पानी को छींटे देकर शान्त किया जा रहा था। लाल रङ्ग की कच्ची शक्कर की गन्ध उठ रही थी। एक ओर घड़ौंची पर पानी भरी हुई सुराही रखी हुई थी, जिस पर रोगी की दृष्टि पड़ने से उसे कुछ शान्ति मिलती थी। पानी में भींगी हुई सिरवाल घास में लपेटी हुई गोलें छींकों पर टँगी हुई थीं। गल्वर्क की सरैयों में भुजिया के सत्तू भरे हुए थे और पीले मसार की प्याली में सफेद शक्कर रखी हुई थी[1]। ठण्ड पहुँचाने वाली औषधों का रस और चूर्ण स्फाटिक की शुक्तियों में और शंखों में भर दिया गया था। पुराने आँवले,

१. गल्वर्क से शाराजिर और मसार की पारी, ये उस समय के रत्नपात्र थे। देखें हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ ९४।

विजयाय नीराज्यमानमिव ज्वरज्वलनेनावरतपरिवर्तनैस्तरङ्गिणि शयनीये शेषमिव विषोष्मणा क्षीरोदन्वति विचेष्टमानम्, मुक्ताफलवालुकाधूलिधवलितं जलधिमिव क्षयकाले शुष्यन्तम्, कालेन कैलासमिव दशाननेनोद्ध्रियमाणम्, अविरतचन्दनचर्चापराणां परिचारिकाणामत्युष्णावयवस्पर्शभस्मीभूतोदरैरिव धवलैः करैः स्पृश्यमानं लोकान्तरप्रस्थितम्, स्थास्नुना स्वयशसेव चन्दनानुलेपनच्छलेनापृच्छ्यमानम्, अविच्छिन्नदीयमानकमलकुमुदेन्दीवरदलम्, कालकटाक्षपतनशबलमिव शरीरमुद्वहन्तम्, निबिडदुकूलपट्टनिपीडितकेशान्तकथ्यमानकष्टवेदनानुबन्धं मूर्धानं धारयन्तम्, दुर्धरवेदनोन्नमन्नीलशिराजालककरालेन च कालाङ्गुलिलिख्यमानलेखाख्यातमरणावधिदिवससंख्यानेनेव ललाटफलकेन भयमुपजनयन्तम्, आसन्नयमदर्शनोद्वेगादिव च किंचिदन्तःप्रविष्टतारकं चक्षुर्दधानम्, शुष्यद्दशनपङ्क्तिप्रसृतधूसरदीधितितरङ्गिणीं मृततृष्णिकामिवो-

---

दासी। कालेन यमेन, कृष्णेन च। दशाननो व्याधिः, राक्षसश्च। आपृच्छ्यमानं व्योक्रियमाणम्। रसना जिह्वा। नेदिष्ठमन्तिकतमम्।

नीबू और द्राक्षा के फल बटोर कर रखे गए थे। ब्राह्मण लोग दक्षिणा लेकर शान्ति के जल छींट रहे थे। दासियाँ ललाट में लगाने के लिए सिल-बट्टे पर रगड़ कर लेप तैयार कर रही थीं। ज्वर की अग्नि मानों परलोक की विजय के लिए प्रयाण करते हुए राजा की आरती उतार रही थी। राजा पीड़ा के कारण शय्या पर हमेशा करवट बदलते हुए व्याकुल पड़े थे। चादर तरङ्ग की भाँति सिकुड़ गई थी, मानों क्षीर-समुद्र में विष की गर्मी से छटपटाते हुए शेषनाग हों। मुक्ता की धूल से धवल होकर प्रलयकाल में सूखते हुए समुद्र के समान लग रहे थे। जैसे रावण ने कैलास को उठा लिया उसी प्रकार काल उन्हें उठाए जा रहा था। परिचारक लोग हमेशा चन्दन का लेप दाहज्वर से हाथ के जलने पर भी उनके शरीर में लगाते थे, मानों परलोक में प्रस्थान करने वाले राजा को उनका चिरकाल तक रहने वाला यश चन्दनलेप के व्याज से बिदा दे रहा था। हमेशा लाल कमल, कुमुद और नील कमल उन पर डाले जा रहे थे, मानों यम के कटाक्षों के गिरने से भिन्न-भिन्न वर्णवाला शरीर धारण कर रहे थे। उनके सिर में बालों के साथ कसकर दुकूल बाँधा गया था, जिससे प्रतीत होता था कि उनके सिर में दर्द है। दुःसह वेदना के कारण उनके ललाट पर के काले काले नस उठ जाते, जिन्हें यह जानकर भय होता कि मरने के दिन के समाप्त होने की गणना की जा रही है जिससे अङ्गुलि की काली काली रेखा पड़ रही है। समीप में ले जाने के लिए खड़े यमराज को मानों देखकर

ष्णां निःश्वासपरम्परामुद्वहन्तम्, अत्युष्णनिःश्वासदग्धयेव श्यामायमानया रसनया निवेद्यमानदारुणसन्निपातारम्भम्, उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिकहारचन्दनचन्द्रकान्तम्, कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमिवात्मानं कुर्वाणम्, अङ्गभङ्गवलनोत्क्षिप्तभुजयुगलम्, पर्यस्तहस्तनखमयूखैर्धारागृहमिव तापशान्तये रचयन्तम्, नेदिष्ठसलिलमणिकुट्टिमादर्शोदरेषु निपतद्भिः प्रतिबिम्बैरपि संतापातिशयमिव कथयन्तम्, स्पृशन्तीं प्रणयिनीमिव विश्वासभूमिं मूर्च्छामपि बहु मन्यमानम्, अन्तकाह्वानाक्षरैरिव सभयभिषग्दृष्टैररिष्टैराविष्टम्, महाप्रस्थानकाले स्वसंतापसंतानमाप्तहृदयेषु सञ्चारयन्तम्, अरतिपरिगृहीतमीर्ष्ययेव छायया विमुच्यमानम्, उद्योगमिवोपद्रवाणाम्, सर्वाक्रमोक्षमिव क्षामतायाः, हस्तीकृतं विहस्ततया, विषयीकृतं वैषम्येण, क्षेत्रीकृतं क्षयेण, गोचरीकृतं ग्लान्या, दृष्टं दुःखासिकया, आत्मीकृतम-

---

अरिष्टैर्दुर्लक्षणैः। अरतिरेकत्रानवस्थितिः। छाया कान्तिः। विहस्तोऽक्षमः।

उनकी आँखें कुछ-कुछ भीतर धँसा जा रही थीं। गरम साँसों के साथ उनके सूखते हुए दाँतों से धूसर वर्ण की किरणें मृगतृष्णा के समान फैल रही थीं। उनकी जीभ अत्यन्त उष्ण श्वासों से जलकर काला पड़ती जा रही थी। लगता था कि कठोर सन्निपात ने उन पर आक्रमण कर लिया हो। मणि और मुक्ता के हार, चन्दन और चन्द्रकान्त, ठण्डक के लिए उनके वक्ष पर रखे गए थे, मानों इस प्रकार वे अपने आपको यमराज के दूतों के देखने योग्य बना रहे थे। अङ्गों की तोड़-मरोड़ करते थे और भुजाओं को ऊपर की ओर फेंकते थे। उनके हाथ के नखों की किरणें निकल कर फैल रही थीं, मानों अपने सन्ताप की शान्ति के लिए धारागृह का निर्माण कर रहे हों। समीप में जल से भींगे हुए मणिकुट्टियों के आइनों में उनके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे, मानों वे बढ़े हुए अपने सन्ताप को व्यक्त कर रहे थे। प्रेयसी के समान विश्वास के पात्र, स्पर्श करती हुई मूर्च्छा को भी वे अपने लिए बहुत समझते थे। वैद्य लोग यमराज की बुलाहट के अक्षरों के समान उनके मरणचिन्हों को डरते-डरते देख रहे थे। महाप्रस्थान के समय अपने सन्तापसमूह को स्वजनों के हृदय में सञ्चारित कर रहे थे। बिलकुल अरति के हो जाने से मानों ईर्ष्या के कारण उन्हें उनकी कान्ति छोड़ती जा रही थी। वे मानों उपद्रवों के उपक्रम हो रहे थे। क्षीणता ने उन पर सब प्रकार से प्रहार किया था। व्याकुलता ने उन्हें वश में कर रखा था। विषमता ने उन्हें पा लिया था। क्षय ने उन्हें अपना क्षेत्र बना लिया था। ग्लानि ने उन्हें अपना विषय बनाया था। दुःख की अनुभूति से वे दष्ट थे, अस्वास्थ्य ने

स्वास्थ्येन, विधेयीकृतं व्याधिना, क्रोडीकृतं कालेन, लक्ष्यीकृतं दक्षिणाशया, पीतमिव पीडाभिः, जग्धमिव जागरेण, निगीर्णमिव वैवर्ण्येन, ग्रासीकृतमिव गात्रभङ्गेन, ह्रियमाणमिव विपद्भिः, वण्ट्यमानमिव वेदनाभिः, लुण्ठ्यमानमिव दुःखैः, आदित्सितं दैवेन, निरूपितं नियत्या, समाघ्रातमनित्यत्वेन, अभिभूयमानमभावेन, परिकलितं परासुतया, दत्तावकाशं क्लेशस्य, निवासं वैमनस्यस्य, समीपे कालस्य, अन्तिकेऽन्त्योच्छ्वासस्य, मुखे महाप्रवासस्य, द्वारि दीर्घनिद्रायाः, जिह्वाग्रे जीवितेशस्य वर्तमानम्, विरलं वाचि, चलितं चेतसि, विह्वलं वपुषि, क्षीणमायुषि, प्रचुरं प्रलापे, संततं श्वसिते, जितं जृम्भिकाभिः, पराधीनमाधिभिः, अनुबद्धमनुबन्धिकाभिः, पार्श्वोपविष्टया चानवरतरोदनोच्छूननयनया गृहीतचामरिकयापि निःश्वसितैरेव वीजयन्त्या विविधौषधिधूलिधूसरितशरीरया मुहुर्मुहुः 'आर्यपुत्र ! स्वपिषि' इति व्याहरन्त्या देव्या यशोमत्या शिरसि वक्षसि च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत् ।

लक्ष्यीकृतम् । आघ्रातमित्यर्थः । वण्ट्यमानं भागीक्रियमाणम् । जीवितेशो यमः । अनुबन्धिका गात्रसन्धिपीडा ।

उन्हें विवश कर दिया था। रोग ने उन्हें अधीन कर रखा था। काल ने अपने अङ्क में उन्हें कर लिया था। यमराज की दक्षिण दिशा ने उन्हें अपना लक्ष्य बना लिया था। पीड़ाओं ने मानों उन्हें पी लिया था। जागरण उन्हें खा गया था। विवर्णता उन्हें निगल गई थी। अङ्गों की ऐंठनी ने उन्हें ग्रस लिया था। विपत्तियों ने उन्हें हर लिया था। वेदनाओं ने उन्हें ठग लिया था। दुःखों ने उन्हें लूट लिया था। भाग्य ने उन्हें पकड़ रखा था। नियति ने उन्हें पहचान लिया था। अनित्यता ने उन्हें सूँघ लिया था। अभाव ने उन्हें अभिभूत कर दिया था। मृत्यु ने उन्हें ग्रास बना लिया था। क्लेश ने टिकने के लिए उन्हें स्थान बना लिया था। वैमनस्य के समीप थे। काल के सन्निकट थे। अन्तिम सांस ही लेने वाले थे। महाप्रवास के मुख में पहुँच चुके थे। दीर्घनिद्रा के द्वार पर खड़े थे। यमराज की जीभ के अग्रभाग पर अड़े थे। उनकी आवाज टूटती जा रही थी, चित्त वश में नहीं था, शरीर व्यग्र हो रहा था, आयु कम थी, बड़बड़ाहट बढ़ गई थी, सांस निकलती ही रहती थी, जंभाई ने जीत लिया था, मानसिक व्यथाओं ने पराधीन कर दिया था, अङ्गों की प्रत्येक गांठ में भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई थी। रानी यशोमती उनके बगल में बैठी हुई थी। हमेशा रोते ही रहने से उसकी आँखें उबल आई थीं। चँवरी लिए थी, पर अपनी साँसों से ही उन्हें झल रही थी। अनेक प्रकार की

दृष्ट्वा च प्रथमदुःखसंपातमथ्यमानमतिराशङ्कित इव भागधेयेभ्यः समभवत्। अन्तकपुरवर्तिनमेव च पितरममन्यत। निराकृत इव चान्तःकरणेन क्षणमासीत्। अवधूतश्च धैर्येण, क्षेत्रीकृतः क्षोभेण, रिक्तीकृतो रत्या, विपयीकृतो विषादेन, पावकमयमिव हृदयमुद्वहन्, विषमविषदूषितानीव मुह्यन्तीन्द्रियाणि बिभ्राणः, तमसा रसातलमपि विशेषयन्, शून्यत्वेनाकाशमप्यतिशयानो नाविन्दत कर्तव्यम्। पस्पर्श च हृदयेन भियमुत्तमाङ्गेन च गाम्।

अवनिपतिस्तु दूरादेव दृष्ट्वातिदयितं तनयं तदवस्थोऽपि निर्भरस्नेहावर्जितः प्रधावमानो मनसा प्रसार्य भुजौ 'एह्येहि' इत्याह्वयन् शरीरार्धेन शयनादुदगात्। ससंभ्रममुपसृतं चैनं विनयावनम्रमुन्नमय्य बलादुरसि निवेश्य, विशन्निव प्रेम्णा निशाकरमण्डलमध्यम्, मज्जन्निवामृतमये महासरसि, स्नापयन्निव महति हरिचन्दनरसप्रस्रवणे, अभिषिच्यमान इव तुषाराद्रिद्रवेण, पीडयन्नङ्गैरङ्गानि, कपोलेन कपोलमवघट्टयन्, निमीलयन्पद्माप्रग्रथिताजस्रास्रविस्राविणी विलोचने विस्मृतज्वरसंज्वरः सुचिर-

---

भागधेयेभ्यो देवेभ्यः। अन्तःकरणेन मनसा।

प्रस्रवणे निम्ने। द्रवो रसः। सज्वरः संतापः।

औषधियों के चूर से उसकी देह मलिन थी। 'आर्यपुत्र, क्या आप सो रहे हैं?' यह बार बार उनसे पूछ रही थी और उनके सिर तथा वक्ष पर हाथ फेर रही थी।

पिताजी की ऐसी अवस्था देखकर पहले पहल दुःख के अनुभव के कारण हर्ष के मन में बहुत बड़ी खलबली मची। वे अपने भाग्य पर भी सन्देह प्रकट करने लगे। पिताजी को यमराज के नगर में पहुँचे हुए ही समझने लगे। ऐसा सोचते ही क्षण भर के लिए उनका अन्तःकरण उनसे अलग हो गया। धैर्य उन्हें छोड़कर हट गया, क्षोभ ने अपना प्रभाव डाला, राग से रहित हो गए, विषाद ने उन्हें पकड़ा। अग्नि के समान जलते हुए अपने हृदय को धारण किया। दारुण विष के पी लेने से मानों उनकी इन्द्रियां मूर्च्छित होने लगीं। पाताल से भी बढ़कर (मोह के) अन्धकार में पड़ गए और निर्णय नहीं कर सके कि उन्हें अब क्या करना चाहिए?

राजा ने दूर ही से अपने प्रिय पुत्र को देखा और उसी हालत में अत्यन्त स्नेह के के कारण मन से दौड़ पड़े। हाथ फैला कर 'आओ आओ' कह कर बुलाते हुए शय्या से उठने की कोशिश करने लगे। दौड़कर जल्दी से आए हुए और विनय से झुके हुए हर्ष को उठाया और जोर से आलिङ्गन किया। प्रेम से मानों चन्द्रमा के मण्डल के बीच

मालिलिङ्ग। कथंकथमपि चिराद्विमुक्तमपसृत्य कृतनमस्कारं प्रणतजननी-कमुपागतमासीनं च शयनान्तिके पिबन्निव विगतनिमेषनिश्चलेन चक्षुषा व्यलोकयत्। पस्पर्श च पुनःपुनर्वेपथुमता पाणितलेन क्षयक्षामकण्ठश्च कृच्छ्रादिवावादीत्—'वत्स! कृशोऽसि' इति। भण्डिस्त्वकथयत्—'देव! तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य' इति।

तच्छ्रुत्वा बाष्पवेगगृह्यमाणाक्षरं कथंकथमप्यायतं निःश्वस्योवाच—'वत्स! जानामि त्वां पितृप्रियमतिमृदुहृदयम्। ईदृशेषु विधुरयति धीमतोऽपि धियम्। अतिदुर्धरो बान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। यतो नार्हस्यात्मानं शुचे दातुम्। उद्दाममहादाहज्वरदग्धोऽपि दह्ये खल्वहमधिकतरमनेनायुष्मदाधिना। निशितमिव शस्त्रं तक्ष्णोति मां त्वदीयस्तनिमा। सुखं च राज्यं च वंशश्च प्राणाश्च परलोकश्च त्वयि मे स्थिताः। यथा मम तथा सर्वासां प्रजानाम्। त्वद्विधानां पीडाः पीडयन्ति सकलमेव भुवनतलम्।

घुसने का प्रयत्न करने लगे। अमृत के सरोवर में डुबकी मारने लगे। हरिचन्दन रस के सोते में स्नान करने लगे। हिमालय के घुलकर बहते हुए बर्फ के जल में अभिषेक करने लगे। हर्ष के अङ्गों को अपने अङ्गों से दबाने लगे। कपोल से कपोल रगड़ने लगे। लगातार पपनियों में गुँथी हुई आँसू की बूँदों से भरी आँखों को आनन्द से निमीलित करने लगे और ज्वर का सन्ताप भूलकर हर्ष का गाढ़ आलिङ्गन किया। किसी प्रकार देर से जब उन्होंने छोड़ा तब हर्ष ने खिसक कर माता को प्रणाम किया और समीप में आकर बैठे। राजा अपलक आँखों से मानो पीते हुए उन्हें निहारने लगे और काँपता हुआ हाथ बार बार उन पर फेरते हुए कमजोरी से गले के रुँध जाने के कारण बड़ी कठिनाई से बोले—'वत्स, दुबले लग रहे हो।' तब भण्डि ने कहा—'देव, आज तीन दिन बीत गए, इन्होंने आहार नहीं किया।'

यह सुन कर राजा की आँखों में आँसू भर आए और किसी किसी प्रकार लम्बी साँस लेकर टूटते हुए शब्दों में बोले—'वत्स, पिता के स्नेही और अत्यन्त मृदुल स्वभाव वाले तुम्हें जानता हूं। इस तरह के आपत्तिकाल में बुद्धिमान् की भी मति व्यग्र हो जाती है। बांधव का स्नेह अत्यन्त दुःखदायी और दुःसह होता है, अतः तुम्हें अपने आपको शोक के अधीन नहीं करना चाहिए। यद्यपि मुझे दाहज्वर का ताप जलाए जा रहा है तथापि तुम्हारी इस मानसिक व्यथा से और भी मैं सन्तप्त हो रहा हूँ। तुम्हारा यह दुबलापन तेज शस्त्र की भाँति मुझे खोर रहा है। मेरे सुख, राज्य, वंश, प्राण और परलोक सबके सब तुम्हीं से चलते हैं। जिस तरह मेरे उसी तरह समस्त प्रजाओं के भी।

न ह्यल्पपुण्यभाजां वंशमलंकुर्वन्ति भवादृशाः। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः। करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये। भिषगनुरोधः पाययति मामौषधम्। अपि च वत्स! सर्वप्रजापुण्यैः सकलभुवनतलपरिपालनार्थमुत्पत्स्यमानानां भवादृशां जन्मग्रहणोपायः पितरौ। प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः। तदुत्तिष्ठ। कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे च त्वय्यहमपि स्वयमुपयोक्ष्ये पथ्यम्' इत्येवमभिहितस्य चास्य धक्ष्यन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे। क्षणमात्रं च स्थित्वा पित्रा पुनराहारार्थमादिश्यमानो धवलगृहादवततार। चकार च चेतसि—'अकाण्डे खल्वयं समुपस्थितो महाप्रलयो व्यभ्र इव वज्रपातः। सामान्योऽपि तावच्छोकः, सोच्छ्वासं मरणम्, अनुपदिष्टौषधो महाव्याधिः, अभस्मीकरणोऽग्निप्रवेशः, अनुपर-

तुम्हारे सदृश लोगों की पीड़ा सारे संसार को दुःखी बना डालती है। तुम्हारे सदृश लोग अल्प पुण्य वालों के वंश में उत्पन्न नहीं होते। अनेक जन्म-जन्मान्तरों में किए गए पुण्य-कर्मों के फल के रूप में उत्पन्न हो। तुम्हारे ये लक्षण बताते हैं कि चारों समुद्रों का आधिपत्य तुम्हारी हथेली पर होगा। मैं तुम्हारे जन्म से ही कृतकृत्य हूँ। अब जीवित रहने की मेरी इच्छा नहीं। वैद्यों के अनुरोध से विवश होकर औषध का सेवन कर लेता हूँ। और भी, वत्स! पिता-माता तो सारे संसार के पालन के लिए उत्पन्न होने वाले तुम्हारे जैसे लोगों के जन्म लेने के लिए केवल उपाय बन जाते हैं। सचमुच राजा तो प्रजाओं से अपने आपको बन्धुमान समझते हैं न कि पिता आदि सगोत्र जनों से। इसलिए उठो, फिर से सब कार्य करो। तुम भोजन कर लोगे तो मैं भी पथ्य सेवन करूँगा।' जब राजा ने यह कहा तब उनका शोकानल हृदय को भस्म करता हुआ और उद्दीप्त हो उठा। क्षणभर ठहर कर पिता के द्वारा फिर भोजनार्थ आज्ञा देने पर वे धवलगृह से नीचे उतरे और मन में सोचने लगे—'निश्चय ही असमय में यह महाप्रलय बिना मेघ के वज्रपात के समान उपस्थित हुआ। साधारण भी शोक वह मरण है जिसमें उच्छ्वास होता है; वह महाव्याधि है जिसकी कोई दवा नहीं; वह अग्नि-प्रवेश है जिसमें जलता हुआ भस्म नहीं हो जाता, वह नरकवास है जो बिना मरे ही प्राप्त होता है, वह अङ्गार की वर्षा है जिसमें ज्योति नहीं निकलती; वह आरे से फाड़ना है जिसमें खण्ड-खण्ड नहीं होते, वह वज्रसूचीपात है जिससे कोई व्रण नहीं होता। अगर वह शोक की आग किसी विशेष व्यक्ति पर आधारित हो तो क्या कहना! अब मैं क्या करूँ?'

तस्यैव नरकवासः, निर्ज्योतिरङ्गारवर्षमशकलीकरणं क्रकचदारणमव्रणो वज्रसूचीपातः। किमुत विशेषश्रितः। किमत्र करवाणि' इति।

राजपुरुषेणाधिष्ठितश्च गत्वा स्वधाम धूममयानिव कृताश्रुपातान्, अग्निमयानिव जनितहृदयदाहान्, विषमयानिव दत्तमूर्च्छावेगान्, महापातकमयानिवोत्पादितघृणान्, क्षारमयानिवानीतवेदनान्, कतिचित्कवलानगृह्णात्। आचामंश्च चामरग्राहिणमादिदेश—'विज्ञायागच्छ कथमास्ते तातः' इति। गत्वा च प्रतिनिवृत्त्य च 'देव! तथैव' इति विज्ञापितस्तेनागृहीतताम्बूल एवोत्ताम्यता मनसास्ताभिलाषिणि सवितरि सर्वानाहूयोपह्वरे वैद्यान्, 'किमस्मिन्नेवंविधे विधेयमधुना?' इति विषण्णहृदयः पप्रच्छ। ते तु व्यज्ञापयन्—'देव! धैर्यमत्रलम्बस्व। कतिपयैरेव वासरैः पुनः स्वां प्रकृतिमापन्नं स्वस्थं श्रोष्यसि पितरम्' इति।

तेषां तु भिषजां मध्ये पौनर्वसवो युवाऽष्टादशवर्षदेशीयस्तस्मिन्नेव

सूची शलाका।

धूममयानिवेति। धूमः किलाश्रु मोचयति। घृणा जुगुप्सा। उपह्वरे रहसि। स्वां प्रकृतिममन्दत्वम्, अव्यक्तरूपत्वं च, पृथिव्यादिषु वा लीनम्। स्वस्थं व्याधिविनिर्मुक्तं, स्वर्गस्थं च। यतः—'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥' इत्युक्तम्।

पुनर्वसोरपत्यं पौनर्वसवः। पुनर्वसुना मुनिना प्रोक्तमायुर्वेदमधीते पौनर्वसव

राजपुरुष के साथ वे अपने स्थान पर पहुँचे और उन्होंने दो चार कौर खाए, मानों वे कौर धूममय थे जिससे उनके आँसू आ गए; अग्निमय थे जिससे उनका हृदय जल उठा; विषमय थे जिससे मूर्च्छा का एक झटका-सा लगा; महापातकमय थे जिससे उन्हें घृणा हुई; क्षारमय थे जिससे अधिक वेदना उन्हें महसूस हुई। खाकर उन्होंने चामरग्राही पुरुष को आदेश दिया—'पता लगाकर आवो, पिताजी की क्या हालत है?' वह जाकर लौटा और निवेदन किया—'देव, हालत वही है।' सुनकर ताम्बूल बिना लिए ही उद्विग्न होते हुए सन्ध्या के समय एकान्त में समस्त वैद्यों को बुलवाया। 'अब ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए?' हृदय में दुखी होकर उनसे पूछा। उन वैद्यों ने समझाया—'देव, धैर्य धारण करें। कुछ ही दिनों में पिताजी को आप प्रकृतिस्थ और स्वस्थ सुनेंगे।'

उन्हीं वैद्यों के बीच पुनर्वसु का पुत्र अट्ठारह वर्ष की अवस्था वाला, उसी राजकुल में कुलक्रम से सन्बन्धित, अष्टाङ्ग आयुर्वेद का पारङ्गत विद्वान्, राजा के द्वारा पुत्र के

हाजकुले कुलक्रमागतो गतः परम्पारमष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य भूभुजा सुतनिर्विशेषं लालितः प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रज्ञया यथावद्विज्ञाता व्याधिस्वरूपाणां रसायनो नाम वैद्यकुमारकः सास्रस्तूष्णीमधोमुखोऽभूत्। पृष्टश्च राजसूनुना—'सखे रसायन! कथय तथ्यं यदसाध्विव पश्यसि' इति। सोऽब्रवीत्—'देव! श्वः प्रभाते यथावस्थितमावेदयितास्मि' इति।

अत्रैव चान्तरे भवनकमलिनीपालः कोकमाश्वासयन्नपरवक्त्रमुच्चैरपठत्—

विहग! कुरु दृढं मनः स्वयं त्यज शुचमास्स्व विवेकवर्त्मनि।
सह कमलसरोजिनीश्रिया श्रयति सुमेरुशिरो विरोचनः॥ ४॥

तच्चाकर्ण्य वाङ्निमित्तज्ञः पितरि सुतरां जीविताशां शिथिलीचकार। गतेषु च भिषक्षु क्षतधृतिः क्षपामुखे क्षितिपालसमीपमेव पुनरारुरोह। तत्र च—'दाहो महान्। आहर हारान्हरिणि! मणिदर्पणान्मे देहे देहि वैदेहि! हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति! घनसारक्षोदधूलीर्निधेहि धवलाक्षि! निक्षिप चक्षुषि चन्द्रकान्तं कान्तिमति! कपोले कलय

इति। अष्टाङ्गमिति। उक्तं च—'कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्रजरावृषान्। अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा तेषु संश्रिता॥' इति। आयुर्वेदस्य वैद्यशास्त्रस्य।

कोकश्चक्रवाकः। विरोचनो रविः। तत्र चेत्यादौ। तत्र च क्षितिपालसमीप इत्यादीन्भृत्यकलापालापानाकर्णयन्निशामनैषीदिति संबन्धः। घनसारः कर्पूरः।

समान लालित, स्वभाव से ही अत्यन्त प्रखर बुद्धि से ठीक ठीक निदान के द्वारा व्याधि के स्वरूप को जान लेने वाला रसायन नाम का वैद्यकुमार चुपचाप मुँह नीचे करके डबडबाने लगा। तब राजकुमार ने पूछा—'मित्र रसायन, ठीक ठीक बताओ, क्या गड़बड़ी देखते हो?' वह बोला—'देव, कल प्रातःकाल ठीक ठीक निवेदन करूँगा।'

इसी बीच भवन की कमलिनियों के रक्षक पुरुष ने चक्रवाक पक्षी को आश्वासन देते हुए ऊँचे स्वर से अपरवक्त्र छन्द का गान किया—

'हे चक्रवाक, तू अपने मन को दृढ़ कर, शोक न कर एवं विवेक के मार्ग पर आ। इस समय सूर्य कमल और सरोजिनी की श्री के साथ सुमेरु के शिखर पर पहुँच रहा है।'

हर्ष ने यह सुना और तात्पर्य समझ कर पिताजी के जीने की प्रबल आशा को शिथिल कर दिया। वैद्यों के लौट जाने पर संध्या के समय हर्ष पिता के सामने फिर गए। वहाँ वे इस प्रकार बड़बड़ा रहे थे—'बड़ी तेज जलन है। हरिणी, हारों को ला। वैदेही, मेरे शरीर पर मणिदर्पण रख। लीलावती, ललाट पर बर्फ का जल छिड़क। धवलाक्षी, कपूर की धूल डाल। कान्तिमती, आँखों पर चन्द्रकान्त मणि रख। कलावती, कपोल पर

कुवलयं कलावति! चन्दनचर्चां रचय चारुमति! पाटय पटमारुतं पाटलिके! मन्दय दाहमिन्दुमति! अरविन्दैर्जनय जलार्द्रया मुदं मदिरावति! समुपनय मृणालानि मालति! तरलय तालवृन्तमावन्तिके! मूर्धानं धावमानं बधान बन्धुमति! कन्धरां धारय धारणिके! उरसि सशीकरं करं कुरु कुरङ्गवति! संवाहय बाहू बलाहिके! पीडय पादौ पद्मावति! गृहाण गाढमङ्गमनङ्गसेने! का वेला वर्तते विलासवति! नैति निद्रा, कथाः कथय कुमुद्वति!' इत्येवंप्रायान्पितुरालापाननवरतमाकर्णयन्दूयमानहृदयो दुःखदीर्घां जाग्रदेव निशामनैषीत्।

उषसि चावतीर्य राजद्वारदेशोपसर्पिणा परिवर्धकेनोपस्थापितेऽपि तुरङ्गे चरणाभ्यामेवाजगाम स्वमन्दिरम्। तत्र च त्वरमाणो भ्रातुरागमनार्थमुपर्युपरि क्षिप्रपातिनो दीर्घाध्वगानतिजविनश्चोष्ट्रपालान्प्राहिणोत्। प्रक्षालितवदनश्च परिजनेनोपनीतमपि प्रतिकर्म नाग्रहीत्। अग्रतः स्थितानां राजपुत्रयूनां विमनसां 'रसायनो रसायनः' इति जल्पितमव्य-

---

पाटय पट्टुं कुरु। कन्धरां ग्रीवाम्। संवाहय मर्दय। कुमुद्वतीत्यादयः सुशब्दत्वात्साधवः।

परिवर्धकोऽश्वपालः। प्रतिकर्म प्रसाधनम्। कार्तस्वरं हेम। तदपि ज्वलन-

---

कुवलय फैला। चारुमती, चन्दन लगा। पाटलिके, कपड़े की हवा कर। इन्दुमती, जलन कम कर। मदिरावती, कमलों का ठंडा पंखा बना कर झल। मालती, मृणालों को जुटा। आवन्तिका, जोर से पंखा झल। बन्धुमती, उड़े जाते हुए मेरे मस्तक को पकड़। धारणिके, कन्धे को सम्हाल। कुरङ्गवती, अपना भींगा हाथ मेरे वक्ष पर रख। बलाहिका, मेरी भुजाओं को दबा। पद्मावती, पैर दबा। अनङ्गसेना, जोर से मेरे अङ्गों को पकड़। विलासवती, क्या समय हो रहा है? कुमुद्वती, नींद नहीं आ रही है, कहानी सुना।' इस प्रकार के आलाप सुनते हुए, दुःख के कारण बढ़ी हुई रात को जागते ही व्यतीत किया।

प्रातःकाल होने पर धवलगृह से उतर कर राजद्वार तक आए। वहां अश्वपाल घोड़ा लिए उपस्थित था, फिर भी पैदल ही अपने मन्दिर को लौटे। वहां उन्होंने शीघ्रता से अपने भाई राज्यवर्धन को बुलाने के लिए तेज दौड़ने वाले दीर्घाध्वग संदेशहरों को और वेगगामी सांड़नी सवारों कोताबरतोर दौड़ाया। मुंह धोने के बाद परिजनों द्वारा लाए गए भी प्रसाधन को ग्रहण नहीं किया। तभी आगे खड़े हुए शोक से भरे युवक राजपुत्रों की 'रसायन-रसायन' इस तरह की अस्पष्ट बातचीत सुनी और उनसे पूछा—

क्तमश्रौषीत्। पर्यपृच्छच्च तान्—'भद्राः! किं रसायन' इति। पृष्टाश्च ते सर्वे सममेव तूष्णींबभूवुः। भूयोभूयश्चानुबध्यमाना दुःखेन कथंकथमप्याचचक्षिरे—'देव! पावकं प्रविष्टः' इति। तच्च श्रुत्वा प्लुष्ट इवान्तस्तापेन सद्यो विवर्णतामगात्। उत्पाट्यमानमिव च न शशाक शोकान्धं धारयितुं हृदयम्। आसीच्चास्य चेतसि—कामं स्वयं न भवति न तु श्रावयत्यप्रियं वचनमरतिकरमितर इवाभिजातो जनः। कृच्छ्रे च यथानेनानुष्ठितमुज्ज्वलीकृतमधिकतरं ज्वलनप्रवेशेन कल्याणप्रकृति कार्तस्वरमिव कौलपुत्रमस्येति। पुनश्चाचिन्तयत्—'समुचितमेवाथवा स्नेहस्येदम्। किमस्य तातो न तातः, किं वाऽम्बा न जननी, वयं न भ्रातरः। अन्यस्मिन्नपि तावत्स्वामिनि दुर्लभीभवति भवन्त्यसवो ध्रियमाणा ह्रीहेतवो लोके किमुतामृतमयेऽनुजीविनां निर्व्याजबान्धवेऽवन्ध्यप्रसादे सुगृहीतनाम्नि ताते। संप्रति सांप्रतमाचरितमनेनात्मानं दहता। किं वास्याकल्पमवस्थितस्य स्थेयसो यशोमयस्य दह्यते पतितः स केवलं दहने। दग्धास्तु वयम्। धन्यः खल्वसावग्रणीः पुण्यभाजाम्। अपुण्यभाक्त्विदमेव राजकुलं

प्रवेशेनाधिकतरमुज्ज्वलम्। सांप्रतं युक्तम्। अतिशयेन स्थिरं स्थेयस्तस्य।

'भद्र, रसायन की क्या बात है?' इस प्रकार उनके पूछने पर सबके सब चुप हो गए। बार-बार पूछे जाने पर दुःख से किसी-किसी प्रकार उन सबों ने कहा—'देव, रसायन ने अग्नि में प्रवेश कर लिया।' यह सुनते ही हृदय के सन्ताप से मानों जल कर फक् पड़ गए। शोक से अन्धभूत उखड़े हुए से अपने हृदय को वश में न रख सके। मन में सोचने लगे—'कुलीन व्यक्ति स्वयं नहीं रहना अच्छा समझता है, परन्तु नीच के समान अप्रिय और अरति उत्पन्न करने वाली बात मुंह से नहीं निकालता। क्लेश के अवसर में रसायन ने वही किया। अग्नि में प्रवेश करने से कल्याण से पूर्ण प्रकृति वाला उसका कुलपुत्र-भाव सुवर्ण के समान और भी निखर गया।' हर्ष ने फिर सोचा—'अथवा यह उसके स्नेह के उचित ही है। पिता जी क्या उसके पिता नहीं? मेरी माता क्या उसकी माता नहीं? हम लोग क्या उसके भाई नहीं? दूसरे भी मालिक जब इस प्रकार दुर्लभ होने लगते हैं तो उनके अनुजीवियों के द्वारा धारण किए गए प्राण संसार में लज्जा उत्पन्न करते हैं और फिर अमृत के समान, बिना छल-कपट के बांधव निष्फल न जाने वाली प्रसन्नता करने वाले, सुगृहीतनाम पिता जी की तो बात ही क्या? उसने अपने आप को दग्ध करके बहुत ठीक किया। केवल अपने को अग्नि में डाल कर जो कल्पान्त तक अपने यशःशरीर से स्थिर हो गया, क्या जल गया? जले तो हम लोग। पुण्यवानों में अग्रणी

कुलपुत्रेण यत्तादृशा वियुक्तम्। अपि च ममापि कः खल्वेतेषां प्राणानां कार्यातिभारः कृत्यशेषो वा, का वा व्यापृतता येन नाद्यापि निष्ठुराः प्राणाः प्रतिष्ठन्ते। को वान्तरायो हृदयस्य येन सहस्रधा न दलतीति। दुःखार्तश्च न जगाम राजसद्म। समुत्ससर्ज च सर्वकार्याणि। शयनीये निपत्योत्तरीयवाससा सोत्तमाङ्गमात्मानमवगुण्ठ्यातिष्ठत्।

इत्थंभूते च देवे हर्षे राजनि च तदवस्थे सर्वस्यैव लोकस्य कपोलेषु कीलिता इव कराः, लोचनेषु लेप्यमय्य इवाश्रुस्रुतयः, नासाग्रेषु ग्रथिता इव दृष्टयः, कर्णपूत्कीर्णा इव रुदितध्वनयः, जिह्वासु सहजानीव हा कष्टानि, लपनेषु पल्लवितानीव श्वसितानि, अधरेषु लिखितानीव परिदेवितपदानि, हृदयेषु निधानीकृतानीव दुःखान्यभवन्। उष्णाश्रुदाहभीतेव नाभजत नेत्रोदराणि निद्रा। निःश्वासवातविधूता इव व्यलीयन्त हासाः। निरवशेषदग्धेव च संतापेन न प्रवर्तत वाणी। कथास्वपि नाश्रूयन्त परिहासाः। काप्यगमन्निति नाज्ञायन्त गीतगोष्ठ्यः। जन्मान्तरातीतानीव नास्मर्यन्त लास्यानि। स्वप्नेऽपि नागृह्यन्त प्रसाधनानि। वार्तापि नाल-

व्यापृतता व्यग्रता। प्रष्ठा अग्रगामिनः। प्रतिष्ठन्ते प्रतिष्ठां कुर्वते।

वह धन्य है। यह राजकुल ही अपुण्यवान् है जो उस प्रकार के कुलपुत्र से रहित हो गया। मेरे प्राणों को अब कौन सा काम का बोझ आ गया है या कौन काम बच गया है या कौन-सी व्यग्रता है जिससे आज ये निष्ठुर प्राण प्रस्थान नहीं करते। कौन-सा ऐसा बीच में विघ्न आ पड़ा है जो मेरे हृदय के हजार टुकड़े नहीं हो रहे हैं।' इस प्रकार दुःखार्त होने के कारण उस दिन राजभवन में नहीं गए और सब काम त्याग बैठे। केवल उत्तरीय वस्त्र से सिर तक अपने को ढंक कर पलंग पर पड़े रहे।

इस प्रकार देव हर्ष के दुःखी होने पर और महाराज को उस अवस्था में पड़े देख कर लोगों का कष्ट बढ़ गया। वे कील के समान हाथ पर कपोल रख कर बैठ गए। उनकी आँखों से लेप के समान आँसू की धार बहने लगी। उनकी जीभ पर 'हा, क्या हो गया ?' यह आवाज सहज हो गई। मुंह में सांस उभड़ गई। अधरों पर विलाप के शब्द लिख गए। हृदय में दुःख ने घर कर लिया। निद्रा मानों गरम आँसू में जलने के डर से आँखों में नहीं आई। उनकी हँसी सांस की हवा से मानों उड़ कर विलीन हो गई। संताप से बिलकुल जल जाने के कारण उनकी वाणी मानों प्रवृत्त नहीं होती थी। गीत की गोष्ठियाँ मानों कहीं चली गईं। नृत्य के प्रसंग जन्मान्तर की अतीत वस्तु की भाँति स्मृति पर नहीं आते थे। स्वप्न में भी लोगों ने प्रसाधन ग्रहण नहीं किया। उपभोगों की

भ्यतोपभोगानाम्। नामापि नाकीर्त्यताहारस्य। खपुष्पप्रतिमान्यासन्ना-पानमण्डलानि। लोकान्तरमिवानीयन्त बन्दिवाचः। युगान्तर इवावर्तन्त निर्वृत्तयः। पुनरिवादह्यत शोकाग्निना मकरकेतुः। दिवापि नामुच्यन्त शयनानि। शनैः शनैश्च महापुरुषविनिपातपिशुनाः समं समन्तात्समुद्-भवन्भुवने भूयांसो भूपतेरभावाय भयमुत्पादयन्तो भूतानां महोत्पाताः।

तथा हि दोलायमानसकलकुलाचलचक्रवाला पत्या सार्धं गन्तुकामेव प्रथममचलद्धरित्री। धान्वन्तरेरिवान्तरे तस्मिन्स्मरन्तः परस्परास्फालन-वाचालवीचयो विजुघूर्णिरेऽर्णवाः। भूभृदभावभीतानां विततशिखिकलाप-विकटकुटिलाः केशपाशा इवोर्ध्वीबभूवुर्धूमकेतवः ककुभाम्। धूमकेतु-करालितदिङ्मुखं दिक्पालारब्धायुष्कामहोमधूमधूम्रमिवाभवद्भुवनम्। भ्रष्ट-भासि तप्तकालायसकुम्भबभ्रुणि भानुमण्डले भयंकरकबन्धकायव्याजेन कोऽपि पार्थिवप्राणितार्थी पुरुषोपहारमिवोपजहार। ज्वलितपरिवेषमण्ड-

---

शिखी मयूरोऽपि। धूमकेतव उत्पातशंसिनः, अग्नयश्च। करालितानि भीषणी-कृतानि, व्याप्तानि च। बभ्रु कपिलम्। श्वेतभानुश्चन्द्रः। प्रसाधिता आवर्जिताः,

---

बात तक नहीं चलती। भोजन का नाम भी नहीं लिया जाता। समीप के पानागार आकाश-पुष्प के समान हो गए। बन्दी जनों की बातें मानों परलोक पहुँच गईं। मानों सुख के युग ही बदल गए। मानों कामदेव शोक की अग्नि में फिर से जलने लगा। दिन में भी पलंग नहीं छोड़े जाते। शनैः शनैः राजा के अभाव व्यक्त करने से भय उत्पन्न करते हुए, महापुरुष के समाप्त होने की सूचना देने वाले महाभूतों के उपद्रव एक ही बार संसार में उत्पन्न हो गए।

पहले पृथिवी मानों पतिके साथ जाने की इच्छा से कुलपर्वतों को कम्पित करती हुई डोलने लगी। समुद्र मानों धन्वन्तरि के अभाव का स्मरण करते हुए परस्पर तरंगों के आघात-प्रत्याघात द्वारा विकलता से घूर्णित होने लगे। राजा के अभाव से डरी हुई दिशाओं के मोर के पंख के समान फैले हुए कुटिल केशपाश के रूप में धूमकेतु तारे आकाश में उठ गए। धूमकेतुओं से दिशाएं भीषण हो गईं, मानों सारे संसार में दिक्पालों ने राजा की आयु की कामना से जो यज्ञ किया उसी का धूम सर्वत्र फैल गया। सूर्य का मण्डल निष्प्रभ और तपे हुए लोहे के समान हो गया, मानों किसी ने सिर कट जाने पर छटपटाते हुए शरीर के व्याज से राजा के जीवन की कामना से पुरुष का बलिदान किया हो। चन्द्रमण्डल का घेरा चारों ओर से जलने लगा, मानों

लाभोगभास्वरो जिघृक्षाजृम्भमाणस्वर्भानुभयादुपरचिताग्निप्राकार इव प्रत्यदृश्यत श्वेतभानुः। अवनिपतिप्रतापप्रसाधिताः प्रथमतरकृतपावकप्रवेशा इवादह्यन्तानुरक्ता दिशः। स्रुतशोणितशीकरासारारुणिततनुरनुमरणाय पर्याकुला प्रावृतपाटलांशुकपटेवादृश्यत वसुधावधूः। नराधिपविनाश-संभ्रमभीतैर्लोकपालैरिव कालायसकवाटपुटैरकालकालमेघपटलैररुध्यन्त दिग्द्वाराणि। प्रेतपतिप्रयाणप्रहताः पटवः पटहा इवारटन्तो हृदयस्फोटनाः पस्फायिरे निपततां निर्घातानां घोरा घननिर्घोषाः। निकटीभवद्यम-महिषखुरपुटोद्धूता इव द्युमणिधाम धूसरीचक्रुः क्रमेलककचकपिलाः पांशु-वृष्टयः। विरसविराविणीनामुन्मुखीनां शिखिनो ज्वालाः प्रतीच्छन्त्य इव पतन्तीरुल्का नभसो ववाशिरे शिवानां राजयः। राजधामनि धूमायमान-कबरीविभागविभावितविकाराः प्रकीर्णकेशपाशप्रकाशितशोका इव प्राक्रा-शन्त प्रतिमाः कुलदेवतानाम्। उपसिंहासनमाकुलं कालरात्रिविधूयमान-वृजिनवेणीबन्धविभ्रमं बिभ्राणं बभ्राम भ्रामरं पटलम्। अटतामन्तःपुर-स्योपरि क्षणमपि न शशाम व्याक्रोशी वायसानाम्। श्वेतातपत्रमण्डल-

---

भूषिताश्च। कचाः केशाः। शिवानां मृगादीनाम्। कबरीशब्देनात्र कचा लक्ष्यन्ते। व्याक्रोशी परस्पराह्वानशब्दः। वायसानां काकानाम्।

चन्द्रमा ने पकड़ने की तैयारी में जंभाई लेते हुए राहु के डर से अपनी रक्षा के लिए अग्नि की दीवार खड़ी कर दी हो। अनुराग से भरी हुई दिशाओं ने राजा के प्रताप में अपने को प्रसाधित करके मानों पहले ही अग्निप्रवेश कर लिया और जलने लगीं। पृथिवी रूपी वधू बहती हुई रक्त की धारा से लाल होकर अनुमरण के लिए लाल वस्त्र पहन कर तैयार हुई-सी प्रतीत होने लगी। राजा के विनाश से अकस्मात् डरे हुए लोकपालों ने असमय में लोहे के किवाड़ों के समान काले-काले मेघों के रूप में मानों दिशाओं के द्वार बन्द कर दिए। हृदय को तोड़ देने वाले अन्तरिक्ष से उत्पन्न वायु के घोर आघातजन्य शब्द इस प्रकार बढ़ गए मानों राजा को लेने के लिए प्रस्थान के अवसर पर पटह बजाए जा रहे हों। आकाश में ऊँट के रोंगटे के समान वर्ण वाली धूल मानों राजा के निकट आते हुए यमराज के भैंसों के खुरों से उड़ कर सूर्यमण्डल को धूसर करने लगी। सियारियाँ आकाश की ओर मुंह करके जोर-जोर से चिल्लाने लगीं, मानों अग्नि की ज्वाला के रूप में आकाश से गिरती हुई उल्काओं की प्रतीक्षा कर रही हों। राजमन्दिर में धुँवे के समान बाल बिखर रहे थे मानों कुल-देवताओं की प्रतिमाएँ अपने केशपाश को बिखेर कर अपना शोक प्रकट कर रही हों।

मध्याज्जीवितमिव राज्यस्य सरसपिशितपिण्डलोहितं चञ्चच्चञ्चुरुच्चैरुच्चखान खण्डं माणिक्यस्य कूजज्जरद्गृध्रो महोत्पातदूयमानश्च कथमपि निनाय निशाम् ।

अन्यस्मिन्नहनि समीपमस्य राजकुलाद्द्रुतगतिवशविशीर्यमाणालंकारझांकारिणी विजयघोषणेव विषादस्याकुलचरणचलत्तुलाकोटिकणितवाचालिताभिरुद्ग्रीवाभिः, किं किमेतदिति पृच्छ्यमानेव दूरादेव भवनहंसीभिः, स्खलितविशालश्रोणिशिञ्जानरशनानुराविणीभिश्च बाष्पान्धा समुपदिश्यमानमार्गेव गृहसारसीभिः अदृष्टकवाटपट्टसंघट्टस्फुटितललाटपट्टरुधिरपटलेन पटान्तेनेव रक्तांशुकस्य मुखमाच्छाद्य प्ररुदती, संतापबलविलीनकनकवलयरसधारामिव वेत्रलतामुत्सृजन्ती, मुखमरुत्तरङ्गिता-

---

अन्यस्मिन्नित्यादौ । समीपस्था यशोमत्याः प्रतीहार्याजगामेति संबन्धः । तुलाकोटिर्नूपुरम् । चीरचीवरं वृक्षत्वक्, चीरवासः ।

भौंरे राजसिंहासन के पास केशपाश के रूप में मँडराने लगे, मानों कालरात्रि चँवर झलने लगी हो । अन्तःपुर के ऊपर-ऊपर उड़ते हुए कौवों की कांव-कांव क्षण भर भी बंद न हुई । कराता हुआ गीध श्वेत आतपत्र के बीच जड़े हुए राज्य के प्राण के समान माणिक्य को खून से लाल मांस का लोथा समझ कर उखाड़ ले भागा । इस प्रकार के भयंकर उत्पातों से दुखी होकर हर्ष ने किसी प्रकार रात बिताई ।

दूसरे दिन वेला नाम की यशोमती की प्रतीहारी राजकुल से हर्ष के समीप पहुंची । तेज दौड़ने के कारण उसके अलंकार टूट-टूट कर झन-झना रहे थे, मानों विषाद की विजय-घोषणा होने लगी । उसके अस्तव्यस्त नूपुर की आवाज सुन कर भवन की हंसियाँ गर्दन उठाकर टर्राने लगीं, मानों 'क्या बात है ? क्या बात है ?' यह उससे पूछ रही हों । बाष्प से उस की आँखें भर गई थीं, जब वह गिर पड़ती तो उसकी विशाल श्रोणि में लगी हुई करधनी बज उठती और उस आवाज से गृहसारसियाँ जोर से चिल्लाने लगीं, मानों उसे रास्ता बता रही हों । आगे न देखने के कारण किवाड़ से टक्कर खा जाने से उसके ललाट से रक्त की धारा बह रही थी, मानों रक्तांशुक के अग्र भाग से मुंह ढंक कर रो रही हो । संताप के कारण उसके हाथ के कनकवलय की रसधारा ही मानों वेत्रलता के रूप में हाथ से छूट गई । श्वास की हवा से उड़कर फहराते हुए अपने उत्तरीय को उस प्रकार समेटती जा रही थी जैसे सर्पिणी अपने केंचुल को सम्हालती है । उसके झुके हुए कंधे पर केशपाश, जो शोक के अवसर

मुत्तरीयांशुकपटीं स्फुरन्तीं फणिनीव निर्मोकमञ्जरीमाकर्षन्ती, नम्रांसस्रंसिनानिलविलोलेन नीलतमेन तमालपल्लवचीरचीवरेणेव शोकोचितेन धम्मिल्लरचनारहितेन शिरोरुहसंचयेन चञ्चता प्रावृतकुचा, कुचताडनपीडया समुच्छूनाताम्रश्यामतलं मुहुर्मुहुरत्युष्णाश्रुप्रमार्जनप्रदग्धमिव करकिसलयं धुनाना, चक्षुर्निर्झरे शीर्यति स्नपयन्तीव शोकाग्निप्रवेशाय स्वकपोलतलप्रतिबिम्बितमासन्नलोकं, लोललोचनप्रवृत्तैस्तरलैस्तारकांशुभिः श्यामायमानमात्मदुःखेन दिवसमपि दहन्तीव 'क कुमारः क कुमारः ?' इति प्रतिपुरुषं पृच्छन्ती, वेलेति नाम्ना यशोमत्याः प्रतीहार्याजगाम। विषण्णलोकलोचनप्रत्युद्गता चोपसृत्य कुट्टिमन्यस्तहस्तयुगला गलन्तीभिः सिञ्चन्तीव शुष्यन्तं दशनदीधितिधाराभिराधूसरमधरमधोमुखी विज्ञापितवती—'देव ! परित्रायस्व परित्रायस्व। जीवत्येव भर्तरि किमप्यध्यवसितं देव्या' इति।

ततस्तदपरमाकर्ण्य च्युत इव सत्त्वेन, द्रुत इव दुःखेन, आचान्त इव चिन्तया, तुलित इव तापेन, अङ्गीकृत इवाङ्गेनाप्रतिपत्तिरासीत्। आसीच्चास्य चेतसि—प्रतिपन्नसंज्ञस्य बहुशोऽपि हृदये दुःखाभिषङ्गो निपतन्न-

---

अप्रतिपत्तिः किंकर्तव्यतामूढः। हृदयेऽतिकठिने।

के अनुकूल एवं बनाव-सिंगार से रहित था, खुलकर नीले तमालपल्लव के उत्तरीय के समान स्तनों पर लटक आया था। स्तनों पर पीटने से उसका हाथ लाल हो गया था, मानों बार-बार अत्यन्त गरम आँसुओं के पोंछने से जल गया हो। शोक की अग्नि में प्रवेश करने के लिए अपने कपोलतल पर प्रतिबिम्बित होते हुए समीप के लोगों को वह मानों अपने आँसुओं की धारा में नहला रही थी। चंचल आँखों के तारों से निकलती हुई किरणों से श्याम वर्ण के दिन को भी मानों दग्ध कर रही थी। 'कुमार कहाँ हैं ? कुमार कहाँ हैं ?' यह प्रत्येक से पूछ रही थी। विषाद में पड़े हुए लोगों की आँखें उसकी ओर लग गईं। समीप में आकर वह कुट्टिम पर हाथ रखकर अपने दाँतों की किरण-धारा से झुराए हुए अधर को सींचती हुई-सी मुंह नीचा किए हुए बोली—'देव, बचाओ-बचाओ। पति के जीते जी देवी कुछ करने जा रही हैं।'

शोक के उस दूसरे कारण को सुनकर कुमार हर्ष किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए, मानों सत्त्व से च्युत, दुःख से द्रुत, चिन्ता से निपीत, ताप से लघुभूत और आतंक से आक्रान्त हो गये।

श्मनीव लोहप्रहारः कठिने हुतभुजमुत्थापयति न तु भस्मसात्करोति मे निरनुक्रोशस्य कायम्' इति। उत्थाय च त्वरमाणोऽन्तःपुरमगात्। तत्र च मर्तुमुद्यतानां राजमहिषीणामश्रृणोद्दूरादेव 'तात चूत! चिन्तयात्मानं प्रवसति ते जननी। वत्स जातीगुच्छ! गच्छाम्यापृच्छस्व माम्। मया विनाद्यानाथा भवसि भगिनि भवनदाडिमलते! रक्ताशोक! मर्षणीयाः पादप्रहाराः कर्णपूरपल्लवभङ्गापराधाश्च। पुत्रक! अन्तःपुरबालबकुलक वारुणीगण्डूषग्रहणदुर्ललित! दृष्टोऽसि। वत्से प्रियङ्गुलतिके! गाढमालिङ्ग मां दुर्लभा भवामि ते। भद्र भवनद्वारसहकारक! दातव्यो निवापतोयाञ्जलिरपत्यमसि। भ्रातः पञ्जरशुक! यथा न विस्मरसि माम्, किं व्याहरसि दूरीभूतास्मि ते? शारिके! स्वप्ने नः समागमः पुनर्भूयात्। मातः! मार्गलग्नं कस्य समर्पयामि गृहमयूरकम्? अम्ब! सुतवल्लालनीयमिदं हंसमिथुनं मन्दपुण्यया मया न संभावितोऽस्य चक्रवाकयुगलस्य विवाहोत्सवः। मातृवत्सले! निवर्तस्व गृहहरिणिके! समुपनय

अनुक्रोशो दया। तत्रेत्यादौ राजमहिषीणामित्येवंप्रायानालापानश्रृणोदिति संबन्धः। आपृच्छस्व ज्योत्कुरु। वारुणी सुरानिवापो मृतमुद्दिश्य दीयते जलादिकम्।

उन्होंने अपने मन में सोचा—'कठोर पत्थर पर जैसे लोहे का प्रहार पड़कर अग्नि उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार संज्ञावान् मेरे कठिन हृदय पर बहुत प्रकार के इन दुःखों का आघात अग्नि उत्पन्न कर देता है, पर निष्ठुर मेरे शरीर को जलाकर राख नहीं कर देता। वे उठकर शीघ्रता से अन्तःपुर में पहुंचे और वहाँ दूर ही से मरणोद्यत राजमहिषियों की बातें सुनीं—'तात चूत, तू अपनी चिन्ता कर, तेरी जननी प्रवास कर रही है। वत्स जातीगुच्छ, जाती हूं, बिदा दो। बहन दाडिमलता, मेरे बिना तू आज अनाथ हो रही है। रक्ताशोक, जो मेरे चरण-प्रहार हैं और कर्णपूर बनाने के लिये तुम्हारे पल्लव तोड़े हैं उन अपराधों को माफ करना। हे प्रियपुत्र, अन्तःपुर के छोटे बकुल, मदिरा के गण्डूष लेने में दुर्ललित, अब तेरा अन्तिम दर्शन है। वत्सा प्रियंगुलतिका, मुझे कसकर अंकवार ले, दुर्लभ हो रही हूँ। हे भद्र भवनद्वार के सहकार, तुझे मैंने अपत्य समझा है, जलाञ्जलि देना। भाई पञ्जरशुक, मुझे भूलना मत, क्या कह रहे हो? मैं दूर जा रही हूँ। शारिके, स्वप्न में हमारा-तुम्हारा मिलन होगा। हाय मा, रास्ता रोके हुए गृहमयूर को किसे समर्पित कर जाऊँ? अंबे, पुत्र के समान हंस के इस जोड़े को पालना। मन्दपुण्य वाली मैं चक्रवाक के जोड़े का विवाहोत्सव न रचा सकी। मातृवत्सले गृहहरिणिके, लौट जाओ। हे कंचुकी, प्यारी वीणा को लाओ तब तक उसे आलिङ्गन कर

सौविदल्ल ! वल्लभवल्लकीं परिष्वजे तावदेनाम् । चन्द्रसेने ! सुदृष्टः क्रियतामयं जनः । बिन्दुमति ! इयं तेऽन्त्या वन्दना । चेटि ! मुञ्च चरणौ । आर्ये कत्यायनिके ! किं रोदिषि नीतास्मि दैवेन । तात कञ्चुकिन् ! किं मामलक्षणां प्रदक्षिणीकरोषि । धात्रेयि ! धारयात्मानं किं पादयोः पतसि । भगिनि ! गृहाण मामपश्चिमां कण्ठे । कष्टं न दृष्टा प्रियसखी मालयवती । कुरङ्गवति ! अयमामन्त्रणाञ्जलिः । सानुमति ! अयमन्त्यः प्रमाणः । कुवलयवति ! एष तेऽवसानपरिष्वङ्गः । सख्यः ! क्षन्तव्याः प्रणयकलहाः,' इत्येवंप्रायानालापान् ।

दह्यमानश्रवणश्च तैः प्रविशन्नेव निर्यान्तीं दत्तसर्वस्वापतेयां गृहीतमरणप्रसाधनाम्, जानकीमिव जातवेदसं पत्युः पुरः प्रवेक्ष्यन्तीम्, प्रत्यग्रस्नानार्द्रदेहतया श्रियमिव भगवतीं सद्यः समुद्रादुत्थिताम्, कुसुम्भबभ्रुणी वाससी दिवमिव तेजसी सांध्ये दधानाम्, ताम्बूलदिग्धरागान्धकाराधरप्रभापटपाटलं पट्टांशुकमिव विधवामरणचिह्नमङ्गलग्नमुद्वहन्तीम्, रक्तकण्ठसूत्रेण कुचान्तरावलम्बिना स्फुटितहृदयविगलितरुधिरधाराशङ्कां

लूँ। चन्द्रसेना, इस जन को जी भर के देख ले। बिन्दुमती, यह तेरे प्रति आखिरी वन्दन है। चेटी, मेरे पैर छोड़ दे। आर्ये कात्यायनिके, क्यों रो रही हैं? दैव मुझे ले जा रहा है। तात कञ्चुकिन्, मुझ अभागिन को क्यों घेर रहे हो? धात्रेयी, तू सम्हल, क्यों मेरे पैर पड़ती है? भगिनी, फिर लौट कर न आने वाली मेरे कण्ठ में लग जा। हाय, प्रिय सखी मलयवती को नहीं देखा। कुरङ्गवती, यह प्रस्थान की हथजोरी है। सानुमती, यह अन्तिम प्रणाम है। कुवलयवती, यह अन्त का आलिङ्गन है। सहेलियो, प्रेम के झगड़ों को क्षमा करना।'

इन बातों से कुमार के कान जलने लगे। प्रवेश करते हुए उन्होंने निकलती हुई माता यशोमती को देखा। उसने अपने सुहाग के चिह्न अर्पित कर दिये थे और अनुमरण के लिए शृङ्गार कर चुकी थी। सीता के समान पति के सामने अग्नि में प्रवेश करने के लिए तत्पर थी। तुरत किये गए स्नान से उसकी देह आर्द्र थी, मानों समुद्र से तुरत निकली हुई भगवती लक्ष्मी हों। आकाश जैसे संध्याकाल में तेज धारण करता है उसी प्रकार उसने कुसुम्भी रङ्ग के दो वस्त्रों को धारण किया था। पान की गाढ़ी लाली से युक्त उसके अधर की प्रभा से लाल पट्टांशुक को मानों उसने अङ्ग में लगे हुए विधवा के मरने के चिह्न को धारण किया था। उसका लाल कण्ठसूत्र कुचों के बीच लटक रहा था, उससे उसके फटे हुए हृदय से प्रवाहित रुधिरधारा की शंका उत्पन्न हो रही थी। टेढ़ी कुण्डल के

कुर्वन्तीम्, तिर्यक्कुटिलकुण्डलकोटिकण्टकाकृष्टतन्तुना हारेण वलितेन सितांशुकपाशेनेव कण्ठमुत्पीडयन्तीम्, सरसकुङ्कुमाङ्गरागतया कवलितामिव दिधक्षता चितार्चिष्मता, चितानलार्चनकुसुमैरिव धवलधवलैरश्रुबिन्दुभिरंशुकोत्सङ्गमापूरयन्तीम्, गृहदेवतामन्त्रणबलिमिव वलयैर्विगलद्भिः पदे पदे विकिरन्तीमाप्रपदीनाम्, कण्ठे गुणकुसुममालां यमदोलामिवारूढाम्, अन्तर्गुञ्जन्मधुकरमुखरेणामन्त्र्यमाणलोचनोत्पलामिव कर्णोत्पलेन, प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव मणिनूपुरबन्धुभिर्बद्धमण्डलं भ्रमद्भिर्भवनहंसैः, संनिहितप्राणसमं मरणाय चित्तमिव चित्रफलकमविचलं धारयन्तीम, अर्चाबद्धोद्धूयमानधवलपुष्पदामकां, पतिव्रतापताकामिव पतिप्रासयष्टिमिष्टामुपगूहमानाम्, बन्धोरिव निजचारित्रस्य धवलस्य नृपातपत्रस्य पुरो नेत्रोदकमुत्सृजन्तीम, पत्युः पादपतनसमुद्गमदभ्यधिकबाष्पाम्भःप्रवाहप्रतिरुद्धदृशः कथमपि प्रतिपन्नादेशान्सचिवान्संदिशन्तीम्, अनुनयनिवर्तितविधुरवृद्धबन्धुवर्गवर्धमानध्वनिभिर्गृहाक्रन्दैराकृष्यमाणश्रवणाम्, भर्तृभाषितनिभैः पञ्जरसिंहबृंहितैर्ह्रियमाणहृदयाम्, धात्र्या भर्तृभक्त्या च निजया प्रसाधिताम्, मूर्छया जरत्या च संस्तुतया

अग्रभाग का सूची में उसके हार का सूत्र फँस गया था, मानों सफेद वस्त्र के फाँस से वह अपना गला दबा रही थी। उसके अङ्गों में कुङ्कुम का सरस अङ्गराग लगा था, मानों जलाने के लिये चिता की अग्नि उसे कवलित कर रही थी। मानों चिता की अग्नि के पूजन के लिये सफेद पुष्प के समान अपने आँसू की बूँद से आँचल भर रही थी। उसके वलय पदे पदे गिरते जा रहे थे, मानों गृहदेवता के आमन्त्रण की बलि छोड़ती जा रही थी। उसके कण्ठ में फूलमाला पैर तक लटक रही थी, मानों यमराज की दोला पर चढ़ी हो। उसके कर्णोत्पल के भीतर भौंरे गुञ्जार रहे थे, मानों लोचनोत्पल से विदा ले रही हो। उसके मणिनूपुर की आवाज के साथ भवन-हंस चारों ओर घूम कर मानों उसकी प्रदक्षिणा करने लगे। वह चित्रफलक को जिसमें पति का चित्र था, मरण के लिये चित्त के रूप में दृढ़ता से धारण किये थी। पति की प्रासयष्टि (कुन्त नामक अस्त्र) को जिसमें पूजा के लिये बँधी हुई सफेद फूल की माला लटक रही थी, पतिव्रता की पताका के समान उसे वह धारण कर रही थी। अपने उज्ज्वल चारित्र्य के भाई के समान राजकीय आतपत्र के आगे आँसू टपका रही थी। पति के चरणों पर गिरने से निकलते हुये बाष्पजल के प्रवाह से भरी आँखों वाली अपने आज्ञाकारी मन्त्रियों को किसी प्रकार सन्देश दे रही थी। अनुनय विनय करके लौटाये गए, वियोग से दुःखी अपने बड़े-बूढ़े बाँधवजनों

धार्यमाणाम्, सख्या पीडया च व्यसनसंगतया समालिङ्गिताम्, परिजनेन संतापेन च गृहीतसर्वावयवेन परीताम्, कुलपुत्रोच्छ्वसितैश्च महत्तरैरधिष्ठिताम्, कञ्चुकिभिर्दुःखैश्चातिवृद्धैरनुगताम्, भूपालवल्लभान्कौलेयकानपि सास्रमालोकयन्तीम्, सपत्नीनामपि पादयोः पतन्तीम, चित्रपुत्रिकामप्यामन्त्रयमाणाम्, गृहपतत्रिणामप्यञ्जलिं पुरस्तादुपरचयन्तीम्, पशूनप्यापृच्छ्यमानाम्, भवनपादपानपि परिष्वज्यमानां मातरं ददर्श।

दूरादेव च बाष्पायमाणदृष्टिरभ्यधात्—'अम्ब! त्वमपि मां मन्दपुण्यं त्यजसि? प्रसीद, निवर्तस्व' इत्यभिदधान एव च सस्नेहमिव नूपुरमणिमरीचिभिश्चुम्ब्यमानचूडश्चरणयोर्न्यपतत। देवी तु यशोमती तथा तिष्ठति पादनिहितशिरसि विमनसि कनीयसि प्रेयसि तनये गुरुणा गिरिणेवोद्वेगावेगेनावष्टभ्यमाना, मूर्च्छान्धतमसं रसातलमिव प्रविशन्ती, बाष्पप्रवा-

---

आपृच्छ्यमाना ज्योत्कारयन्ती।

बाष्पायमाणा बाष्पमुद्वमन्ती। देवी बाष्पोत्पतनं धारयितुं न शशाकेति

के रोने से बढ़ी हुई घर की कराह भरी आवाज से उसके कान खिंचे जा रहे थे। पति की आवाज के समान दहाड़ते हुये, पिंजड़े के शेरों की गरज सुनने में उसका हृदय मुग्ध हो रहा था। धात्री और पतिभक्ति उसे प्रसाधित कर रही थीं। वृद्धा और मूर्च्छा उसे सम्हाल रही थीं। दुःख में सहायता के लिये आई हुई सखी और पीड़ा दोनों ने उसका आलिङ्गन किया था। परिजन और सन्ताप ने उसके सारे अवयवों को पकड़ कर घेर लिया था। वह महत्तर कुलपुत्रों के उच्छ्वास और बड़े लोगों से अधिष्ठित, एवं अतिवृद्ध कंचुकी और दुःखों से अनुगत थी। वह राजा के प्रिय कुत्तों को भी हसरत-भरी निगाह से देख रही थी। सपत्नियों के भी पैर पड़ती थी। चित्र की पुतली से भी बिदा ले रही थी। भवन के पक्षियों के भी आगे हाथ जोड़ती थी। पशुओं से भी बिदा ले रही थी। भवन के वृक्षों को भी अँकवार रही थी।

दूर से ही भरी आँखों वाले कुमारने कहा–'माँ, तुम भी मुझ मन्दभाग्य को छोड़ रही हो? कृपाकर इस विचार से निवृत्त होओ। यह कहते हुए स्नेह से विह्वल होकर नूपुरमणियों की किरणों से मस्तक का स्पर्श करते हुये माता के पैरों पर गिर गये। देवी यशोमती उस प्रकार पैर पर माथा टेके हुये व्याकुल अपने छोटे प्रिय पुत्र को देखकर पर्वत के समान भारी उद्वेग के आवेग से अभिभूत हो गयी; पाताल के समान मूर्च्छा के घोर अन्धकार में प्रवेश करने लगी; आँसू के प्रवाह के समान देर तक रोक रखने से

ह्येणेव चिरनिरोधसंपिण्डितेन स्नेहसंभारेण निर्भराविर्भूतेनाभिभूयमाना, कृतप्रयत्नापि निवारयितुं न शशाक बाष्पोत्पतनम्। उत्कटकुचोत्कम्पप्रकटितासह्यशोकाकूता च गद्गदिकागृह्यमाणगलविकला निःसामान्यमन्युतरलीक्रियमाणाधरोद्देशा पुनरुक्तस्फुरणनिबिडितनासापुटा निमील्य नयने नयनाम्भःसेकप्लवेन प्लावयन्ती विमलौ कपोलौ संच्छाद्य करनखमयूखमालाखचिततनुना तन्वन्तरनिर्गच्छदच्छास्रस्रोतसेवांशुकपटान्तेन किंचिदुत्तानितं वदनेन्दुं दूयमानमानसा स्मरन्ती प्रस्नुतस्तनी प्रसवदिवसादारभ्य सकलमङ्कशायिनः शैशवमस्य ज्ञातिगृहगतहृदया 'अम्ब, तात! न पश्यतं पापां परलोकप्रस्थितां मामेवमतिदुःखिताम्' इति मुहुर्मुहुराक्रन्दती पितरौ, 'हा वत्स! विश्रान्तभागधेयया न दृष्टोऽसि' इति प्रेष्ठं ज्येष्ठं तनयमसंनिहितं क्रोशन्ती, 'अनाथा जाता' इति श्वशुरकुलवर्तिनीं दुहितरमनुशोचन्ती, 'निष्करुण! किमपराद्धं तवामुना जनेन?' इति दैवमुपालभमाना, 'नास्ति मत्समा सीमन्तिनी दुःखभागिनी' इति

संबन्धः। बाष्पोत्पतनमश्रुप्रवाहम्।

एकत्र हुए और हृदय से उत्पन्न अपने स्नेहसम्भार से दब गयी; प्रयत्न करने पर भी वह गिरते हुये आँसुओं को न रोक सकी। जोर से काँपते हुये स्तनों से उसका असह्य शोक व्यक्त हो रहा था। गले में हिचकी बँध जाने से वह विकल हो गयी। असाधारण शोक से उसका अधर फड़फड़ा रहा था। बार-बार फड़कती हुई उसकी नाक जकड़ रही थी। आँखें मूद कर आँसू की धार से निर्मल अपने कपोलों को सींच रही थी। कुछ ऊपर उठाये हुए अपने मुखचन्द्र को हाथ के नखों की किरणों से खचित शरीर भीतर से निकलती हुयी आँसू की धार के समान अपने वस्त्र के अग्रभाग से ढक लिया। स्तन से दूध बहाती हुयी वह दुःखी मन से कुमार के जन्म से लेकर गोद में पलने वाले शैशव का स्मरण करने लगी। उसका हृदय अनायास पिता के घर चला गया। वह बार-बार अपने माता-पिता का स्मरण करके रोने लगी—'हा अम्ब, हा तात, परलोक में प्रस्थान करती हुई, इस प्रकार अत्यन्त पीड़ित मुझ पापिन को आप लोग नहीं देखते हैं?' वह दूर गये हुये अपने अत्यन्त प्रिय बड़े पुत्र राज्यवर्धन को सम्बोधन करके चिल्लाने लगी—'हा वत्स, मन्द भाग्य मैंने तुम्हें नहीं देखा।' श्वशुरकुलमें गयी हुयी पुत्री राज्यश्री को सोच कर कहने लगी—'तू अनाथ हो गई।' दैव को ओरहन देने लगी—'निर्दय, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था?' अपने आपको कोसने लगी—'मेरे समान दुखिया नारी कोई नहीं।'

निन्दन्ती बहुविधमात्मानम्, 'मुषितास्मि कृतान्त नृशंस ! त्वया' इत्यकाण्डे कृतान्तं गर्हमाणा मुक्तकण्ठमतिचिरं प्राकृतप्रमदेव प्रारोदीत्।

प्रशान्ते च मन्युवेगे सस्नेहमुत्थापयामास सुतम्। हस्तेन चास्य प्ररुदितस्य पक्ष्मपालीपुञ्ज्यमानाश्रुकणनिवहां द्रुतामिवाधिकतरं क्षरन्तीं दृष्टिमुन्ममार्ज। स्वयमपि कठोररागपरिपीयमानेन धवलिम्ना मुच्यमानोदरे क्वथदश्रुस्रवत्पर्यन्ते शुक्रशीकरतारतारकितपक्ष्मणी सूक्ष्मतराश्रुबिन्दुपरिपाटीपतनानुबन्धविधुरे लोचने पुनः पुनरापूर्यमाणे प्रमृज्य बाष्पार्द्रगण्डगृहीतां च श्रवणशिखरमारोप्य शोकलम्बामलकलतामधःस्रस्तविलोलबालिकाऽव्याकुलितां च समुत्सार्य तिरश्चीं चिकुरसटामश्रुप्रवाहपूरितमार्द्रं च किंचिच्च्युतमुत्क्षिप्य हस्तेन स्तनोत्तरीयं तरङ्गितमिव नखांशुपटलेन मग्नांशुकपटान्ततनुताम्रलेखालाञ्छितलावण्यकुब्जिका[1]वर्जितराजतराजहंसास्यसमुद्गीर्णेन पयसा प्रक्षाल्य मुखकमलं कलमूकलोकविधृते वासःशकले शुचिनि समुन्मृज्य पाणी सुतवदनविनिहितनिभृतनयनयुगला चिरं स्थित्वा पुनः पुनरायतं निःश्वस्यावादीत्—'वत्स ! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे

असमय में यमराज की निन्दा करने लगी—'अरे क्रूर यमराज, तूने मुझे लूट लिया।' इस प्रकार वह साधारण नारी के समान बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती रही।

जब शोक का वेग कम हुआ तब उसने पुत्र को स्नेह के साथ उठा लिया। रो पड़े हुये उसकी पपनियों में लगी हुई आँसू की बूँदों के रूप में पिघली-सी आँखों को अपने हाथ से पोंछा। स्वयं भी उसने गाढ़ प्रेम के कारण समाप्त सफेदी वाले, खौलते हुए आँसू से भींगे कोप वाले, तारों के समान उजले-उजले फुहारों से भरी पपनी वाले, हमेशा झरते हुये अपने नेत्र पोंछे। आँसू से भींगे कपोलों में चिपकी हुयी शोक के कारण खुलकर लटकती हुई अलकोंको कान पर चढ़ा लिया। नीचे खिसकी हुयी बालिका (एक कर्णाभरण) से व्याकुल अपने टेढ़े बालों को समेट लिया। आँसू के प्रवाह से भरे हुये भींगे कुछ खिसके हुये स्तनोत्तरीय को जो उसके नखों की किरणों से तरङ्गित हो रहा था, हाथ से ऊपर उठा लिया। शरीर से चिपटे हुये अंशुक वस्त्र के छोर पर डाली गयी पतली ताँबे की धारी से जिसका सौन्दर्य बढ़ रहा था, ऐसी कुब्जिका पुतली से झुकाकर पकड़े हुये चाँदी के बने राजहंस की आकृति के पात्र के मुख से निकलते हुये जल से

---

१. 'कुब्जिका' इति पाठान्तरम्।

हृदयम्। अस्मिंश्च समये प्रभूतप्रभुप्रसादान्तरिता त्वां न पश्यति दृष्टिः। अपि च पुत्रक! पुरुषान्तरविलोकनव्यसनिनी राज्योपकरणमकरुणा वा नास्मि लक्ष्मीः क्षमा वा। कुलकलत्रमस्मि चारित्रमात्रधना धर्मधवले कुले जाता। किं विस्मृतोऽसि मां समरशतशौण्डस्य पुरुषप्रकाण्डस्य

उसने अपना मुखकमल धोया[1]। गूँगे द्वारा लिये हुये पवित्र वस्त्रखण्ड से उसने हाथ पोंछे। तब पुत्र के मुखड़े में एक टक से आँखें गड़ा कर देर तक ठहर गई और बार-बार लम्बी साँस लेकर बोली—'वत्स, तुम मेरे प्रिय नहीं हो ऐसी बात नहीं और निर्गुण अथवा परित्याग के योग्य भी नहीं हो। दूध के साथ ही तुमने मेरे हृदय को पी लिया है। इस समय अत्यन्त स्वामिभक्ति से अन्तरित हो जाने के कारण मेरी दृष्टि तुम्हें नहीं देख रही है। हे प्यारे पुत्र, दूसरे पुरुष को भी देखने का व्यसन रखने वाली राज्य का उपकरण मात्र और करुणा से हीन लक्ष्मी या पृथिवी मैं नहीं हूँ। मैं कुलकलत्र हू, हमारा चारित्र ही धन है और धर्म से उज्ज्वल कुल में मैंने जन्म लिया है। क्या तुम भूल गए कि मैं सैकड़ों समर में मद करने वाले सिंह के समान उन पुरुष-प्रकाण्ड की

१. इस पंक्ति के चार अर्थ श्लेष द्वारा और भी लगाये जाते हैं जिसका स्पष्टीकरण डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने अपने 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन' में विस्तार के साथ किया है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—(१) पहला अर्थ, हंसाकृति पात्र को लक्ष्य करके जो अनुवाद में दिया गया है। (२) राजहंस पक्षि को लक्ष्य करके—छिपे हुये अंखुवे के छिलके के किनारे पर पड़ी हुयी महीन लाल धारी से सुहावने सिंघाड़े को छोड़ कर जाने वाले श्वेत राजहंस के मुख से उछले हुये जल से (सरोवर में) कमल का मुख धोकर। (३) राजहंस के ही पक्ष में जल में पड़ी किरणों के जलरूपी पट के चारों ओर झलकती हुयी पतली लाल किनारी से सुशोभित, गर्दन मोड़कर झुका हुआ श्वेत राजहंस मुख से जल में किलोल करता हुआ कमल के मुख को धो रहा है। (४) ब्रह्मा के हंस के पक्ष में—गीले अंशुक की धोती पहने ब्रह्मा के लाल शरीर के सम्पर्क से सुशोभित, दुबककर बैठा हुआ उनका श्रेष्ठ हंस मुख के क्षीरसागर का पय लेकर कमलासन को धो रहा है। (५) राजहंस अर्थात् प्रभाकरवर्धन और रानी यशोमती के पक्ष में—सटे हुये अंशुक वस्त्र के छोर की पतली लाल किनारी से दीप्त सौन्दर्य वाली कुब्जिका (सुंदरी कन्या के हाथ में रखे हुये पानपात्र) की ओर झुके हुये गौर वर्ण हंसजातीय सम्राट् प्रभाकरवर्धन के मुख से निकले हुये तरल (मधु) गण्डूष से (रानी यशोमती ने अपना) कमलरूपी मुख धोकर।—मर्मांशुक उत्तरीय के छोर पर बनी हुई महीन लाल किनारी से जिनका सौन्दर्य झलक रहा है और जो कुब्जिका की ओर (मधुपान के लिये) झुके हैं, ऐसे गौरवर्ण राजा के मुख से सिंचित गण्डूषसेक से यशोमती ने अपना मुख-कमल प्रक्षालित किया।

केसरिण इव केसरिणीं गृहिणीम्? वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्। एवंविधेन पित्रा ते भरत-भगीरथनाभागनिभेन नरेन्द्रवृन्दारकेण गृहीतः पाणिः। आसेवितः सेवा-संभ्रान्तानन्तसामन्तसीमन्तिनीसमावर्जितजाम्बूनदघटाभिषेकः शिरसा। लब्धो मनोरथदुर्लभो महादेवीपट्टबन्धसत्कारलाभो ललाटेन। आपीतौ युष्मद्विधैः पुत्रैरमित्रकलत्रबन्दिवृन्दविधूयमानचामरमरुच्चलचीनांशुकधरौ पयोधरौ। सपत्नीनां शिरःसु निहितं नमन्निखिलकटककुटुम्बिनीकिरीट-माणिक्यमालार्चितं चरणयुगलकम्। एवं कृतार्थसर्वावयवा किमपरमपेक्षे क्षीणपुण्या? मर्तुमविधवैव वाञ्छामि। न च शक्नोमि दग्धस्य स्वभर्तु-रार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकान्प्रलापान्कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलि-रिव प्रथमं गगनगमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि शूरानुरागिणीनां सुराङ्गनानाम्। प्रत्यग्रदृष्टदारुणदुःखदग्धायाश्च मे किं धक्ष्यति धूमध्वजः।

जाम्बूनदं सुवर्णम्। पादधूलिरिवेति। सापि प्रथमगतागमनमावेदयति। धक्ष्यति भस्मीकरिष्यति। धूमध्वजोऽग्निः।

शेरनी जैसी घरनी हूं? वीर पिता की पुत्री, वीर की पत्नी एवं वीर पुत्र को उत्पन्न करने वाली, पराक्रम-द्रव्य से खरीदी गई मुझ जैसी कुछ और कर सकती है? भरत, भगीरथ एवं नाभाग के सदृश राजाओं में श्रेष्ठ तुम्हारे पिता ने मेरा पाणिग्रहण किया है। सेवामें परायण अनेक सामन्तों की पत्नियों ने सुवर्ण के घड़े उठा कर मेरे सिर पर अभिषेक करके मेरी सेवा की है। मनोरथ से भी दुर्लभ महादेवीपद के पट्टबंध-सत्कार को मैंने अपने ललाट से प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे सदृश पुत्रों ने शत्रु की पत्नियों द्वारा झले गए चँवर की हवा से चंचल चीनांशुक धारण करने वाले मेरे स्तनों का पान किया है। झुकती हुई सारे कटक (स्कन्धावार) की कुटुम्बिनियों के किरीट में लगे हुए माणिक्य की माला से पूजित मेरे चरण सपत्नियों के सिर पर रह चुके हैं। इस प्रकार मेरे सब अङ्ग कृतकृत्य हो गए हैं तो क्षीण पुण्यों वाली मैं अब किसकी चाह करूँ? इसलिए अविधवा ही रह कर मरना चाहती हूँ। विधवा रति की भाँति मैं जले हुए अपने पति के शोक में निरर्थक प्रलाप नहीं कर सकती। तुम्हारे पिता की पैर की धूल के समान आकाश में अपने गमन को पहले ही सूचित करती हुई शूरानुरागिणी देवाङ्गनाओं के आदर का पात्र बनूंगी। आँखों के सामने देखे गए दारुण दुःख से जली हुई मुझे अग्नि क्या जलाएगी? मरने से अधिक साहस का काम इस समय मेरा जीना है। स्नेह का इन्धन जिसका कभी समाप्त

मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम्। अतिशीतलः पतिशोकानलादक्षयस्नेहेन्धनादस्मादनलः। कैलासकल्पे प्रवसति जीवेश्वरे जरत्तृणकणिकालघीयसि जीविते लोभ इति क घटते? अपि च जीवन्तीमपि मां नरपतिमरणावधीरणमहापातकिनीं न स्प्रक्ष्यन्ति पुत्र! पुत्रराज्यसुखानि। दुःखदग्धानां च भूतिरमङ्गला चाप्रशस्ता च निरुपयोगा च भवति। वत्स! विश्वस्तानां यशसा स्थातुमिच्छामि लोके न वपुषा। तदहमेव त्वां तावत्तात! प्रसादयामि न पुनर्मनोरथप्रातिकूल्येन कदर्थनीयास्मि।' इत्युक्त्वा पादयोरपतत्।

स तु ससंभ्रममपनीय चरणयुगलमवनमिततनुरुभयकरविधृतवपुषमवनितलगतशिरसमुदनमयन्मातरम्। दुर्निवारतां च शुचः समवधार्य कुलयोषिदुचितां च तामेव श्रेयसीं मन्यमानः क्रियां कृतनिश्चयां च तां ज्ञात्वा तूष्णीमधोमुखोऽभवत्।

अभिनन्दति हि स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम्। देव्यपि यशोमती परिष्वज्य समाघ्राय च शिरसि निर्गत्य चरणाभ्यामेव चान्तः-

---

भूतिः समृद्धिः, भस्म च। विश्वस्तानां विधवानाम्।

नहीं होता ऐसे पति के इस शोकानल से कहीं चिता की आग शीतल है। कैलास के सदृश प्राणनाथ जब प्रवास कर रहे हैं तो पुराने तृण के टुकड़े की तरह तुच्छ जीवन के लिए लोभ की बात कहाँ घटती है? हे पुत्र! पुत्र के राज्यसुख राजा के मरण के तिरस्कारजन्य पातक वाली जीती हुई माँ मुझे स्पर्श नहीं करेंगे। जो दुःख से जल चुके है उनके लिए ऐश्वर्य अमंगल, अप्रशस्त और उपयोगरहित होता है। हे वत्स, मैं विधवाओं के यश से इस लोक में रहना चाहती हूँ, शरीर से नहीं। इसलिए मैं ही तुम्हें मनाती हूँ कि फिर मेरी इच्छा के प्रतिकूल मुझे दुःखी न करना।' यह कह कर पैर पर गिर गईं।

कुमार हर्ष ने शीघ्र अपने पैर हटा लिए और झुक कर दोनों हाथों से पकड़ लिया और सिर से जमीन पर टिकी हुई माता को उठा लिया। उन्होंने निश्चय किया कि शोक का हटाना कठिन है। कुलाङ्गनाओं के लिए उचित उसी क्रिया को उन्होंने श्रेयस्कर माना। माता को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर चुपचाप अधोमुख हो रहे।

कुलीन लोग स्नेह से व्याकुल होकर भी देशकाल के अनुरूप आचार का अभिनन्दन करते हैं। देवी यशोमती ने पुत्र का आलिङ्गन कर और सिर सूंघ कर अन्तःपुर से पैदल ही निकल गईं और पुरवासियों के आर्तनाद से प्रतिध्वनित दिशाओं से मानों

केसरिण इव केसरिणीं गृहिणीम् ? वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्। एवंविधेन पित्रा ते भरत-भगीरथनाभागनिभेन नरेन्द्रवृन्दारकेण गृहीतः पाणिः। आसेवितः सेवा-संभ्रान्तानन्तसामन्तसीमन्तिनीसमावर्जितजाम्बूनदघटाभिषेकः शिरसा। लब्धो मनोरथदुर्लभो महादेवीपट्टबन्धसत्कारलाभो ललाटेन। आपीतौ युष्मद्विधैः पुत्रैरमित्रकलत्रबन्दिवृन्दविधूयमानचामरमरुच्चलचीनांशुकधरौ पयोधरौ। सपत्नीनां शिरःसु निहितं नमन्निखिलकटककुटुम्बिनीकिरीट-माणिक्यमालार्चितं चरणयुगलकम्। एवं कृतार्थसर्वावयवा किमपरमपेक्षे क्षीणपुण्या ? भर्तुमविधवैव वाञ्छामि। न च शक्नोमि दग्धस्य स्वभर्तु-रार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकान्प्रलापान्कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलि-रिव प्रथमं गगनगमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि शूरानुरागिणीनां सुराङ्गनानाम्। प्रत्यक्षदृष्टदारुणदुःखदग्धायाश्च मे किं धक्ष्यति धूमध्वजः।

जाम्बूनदं सुवर्णम्। पादधूलिरिवेति। सापि प्रथमगतागमनमावेदयति। धक्ष्यति भस्मीकरिष्यति। धूमध्वजोऽग्निः।

शेरनी जैसी घरनी हूँ ? वीर पिता की पुत्री, वीर की पत्नी एवं वीर पुत्र को उत्पन्न करने वाली, पराक्रम-द्रव्य से खरीदी गई मुझ जैसी कुछ और कर सकती है ? भरत, भगीरथ एवं नाभाग के सदृश राजाओं में श्रेष्ठ तुम्हारे पिता ने मेरा पाणिग्रहण किया है। सेवामें परायण अनेक सामन्तों की पत्नियों ने सुवर्ण के घड़े उठा कर मेरे सिर पर अभिषेक करके मेरी सेवा की है। मनोरथ से भी दुर्लभ महादेवीपद के पट्टबंध-सत्कार को मैंने अपने ललाट से प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे सदृश पुत्रों ने शत्रु की पत्नियों द्वारा झले गए चँवर की हवा से चंचल चीनांशुक धारण करने वाले मेरे स्तनों का पान किया है। झुकती हुई सारे कटक (स्कन्धावार) की कुटुम्बिनियों के किरीट में लगे हुए माणिक्य की माला से पूजित मेरे चरण सपत्नियों के सिर पर रह चुके हैं। इस प्रकार मेरे सब अङ्ग कृतकृत्य हो गए हैं तो क्षीण पुण्यों वाली मैं अब किसकी चाह करूँ ? इसलिए अविधवा ही रह कर मरना चाहती हूँ। विधवा रति की भाँति मैं जले हुए अपने पति के शोक में निरर्थक प्रलाप नहीं कर सकती। तुम्हारे पिता की पैर की धूल के समान आकाश में अपने गमन को पहले ही सूचित करती हुई शूरानुरागिणी देवाङ्गनाओं के आदर का पात्र बनूंगी। आँखों के सामने देखे गए दारुण दुःख से जली हुई मुझे अग्नि क्या जलाएगी ? मरने से अधिक साहस का काम इस समय मेरा जीना है। स्नेह का इन्धन जिसका कभी समाप्त

मरणाच्च मे जीवितमेवास्मिन्समये साहसम्। अतिशीतलः पतिशोकानलादक्षयस्नेहेन्धनादस्मादनलः। कैलासकल्पे प्रवसति जीवेश्वरे जरत्तृणकणिकालघीयसि जीविते लोभ इति क घटते ? अपि च जीवन्तीमपि मां नरपतिमरणावधीरणमहापातकिनीं न स्प्रक्ष्यन्ति पुत्र! पुत्रराज्यसुखानि। दुःखदग्धानां च भूतिरमङ्गला चाप्रशस्ता च निरुपयोगा च भवति। वत्स! विश्वस्तानां यशसा स्थातुमिच्छामि लोके न वपुषा। तदहमेव त्वां तावत्तात! प्रसादयामि न पुनर्मनोरथप्रातिकूल्येन कदर्थनीयास्मि।' इत्युक्त्वा पादयोरपतत्।

स तु ससंभ्रममपनीय चरणयुगलमवनमिततनुरुभयकरविधृतवपुषमवनितलगतशिरसमुदनमयन्मातरम्। दुर्निवारतां च शुचः समवधार्य कुलयोषिदुचितां च तामेव श्रेयसीं मन्यमानः क्रियां कृतनिश्चयां च तां ज्ञात्वा तूष्णीमधोमुखोऽभवत्।

अभिनन्दति हि स्नेहकातरापि कुलीनता देशकालानुरूपम्। देव्यपि यशोमती परिष्वज्य समाघ्राय च शिरसि निर्गत्य चरणाभ्यामेव चान्तः-

---

भूतिः समृद्धिः, भस्म च। विश्वस्तानां विधवानाम्।

नहीं होता ऐसे पति के इस शोकानल से कहीं चिता की आग शीतल है। कैलास के सदृश प्राणनाथ जब प्रवास कर रहे हैं तो पुराने तृण के टुकड़े की तरह तुच्छ जीवन के लिए लोभ की बात कहाँ घटती है ? हे पुत्र! पुत्र के राज्यसुख राजा के मरण के तिरस्कारजन्य पातक वाली जीती हुई भी मुझे स्पर्श नहीं करेंगे। जो दुःख से जल चुके हैं उनके लिए ऐश्वर्य अमंगल, अप्रशस्त और उपयोगरहित होता है। हे वत्स, मैं विधवाओं के यश से इस लोक में रहना चाहती हू, शरीर से नहीं। इसलिए मैं ही तुम्हें मनाती हूँ कि फिर मेरी इच्छा के प्रतिकूल मुझे दुःखी न करना।' यह कह कर पैर पर गिर गईं।

कुमार हर्ष ने शीघ्र अपने पैर हटा लिए और झुक कर दोनों हाथों से पकड़ लिया और सिर से जमीन पर टिकी हुई माता को उठा लिया। उन्होंने निश्चय किया कि शोक का हटाना कठिन है। कुलाङ्गनाओं के लिए उचित उसी क्रिया को उन्होंने श्रेयस्कर माना। माता को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर चुपचाप अधोमुख हो रहे।

कुलीन लोग स्नेह से व्याकुल होकर भी देशकाल के अनुरूप आचार का अभिनन्दन करते हैं। देवी यशोमती ने पुत्र का आलिङ्गन कर और सिर सूंघ कर अन्तःपुर से पैदल ही निकल गई और पुरवासियों के आर्तनाद से प्रतिध्वनित दिशाओं से मानों

पुरात्पौराक्रन्दप्रतिशब्दनिर्भराभिरुपरुध्यमानेव दिग्भिः सरस्वतीतीरं ययौ। तत्र च स्त्रीस्वभावकातरैर्दृष्टिपातैः प्रविकसितरक्तपङ्कजपुञ्जैरिवार्चयित्वा भगवन्तं भानुमन्तमिव मूर्तिरैन्दवी चित्रभानुं प्राविशत्। इतरोऽपि मातृमरणविह्वलो बन्धुवर्गपरिवृतः पितुः पार्श्वं प्रायात्। अपश्यच्च स्वल्पावशेषप्राणवृत्तिं परिवर्त्यमानतारकं तारकराजमिवास्तमभिलषन्तं जनयितारम्। असह्यशोकोद्रेकाभिद्रुतश्च त्याजितः स्नेहेन धैर्यम्। आश्लिष्यास्य सकलदुर्मदमहीपालमौलिमालालालितौ पादपद्मावन्तस्तापान्मुखचन्द्रमिव द्रवीभवन्तं दशनज्योत्स्नाजालमिव जलतामापद्यमानं लोचनलावण्यमिव विलीयमानं मुखसुधारसमिव स्यन्दमानम्, अच्छाच्छमश्रुस्रोतसां संतानं महामेघमयविलोचन इव वर्षन्नितरवद्विमुक्तारावश्चिरं रुरोद।

राजा तु तमुपरुध्यमानदृष्टिरविरतरुदितशब्दाश्रितश्रवणः प्रत्यभिज्ञाय शनैः शनैरवादीत्—"पुत्र! नार्हस्येवं भवितुम्। भवद्विधा न ह्यमहासत्त्वाः। महासत्त्वता हि प्रथममवलम्बनं लोकस्य पश्चाद्राजवीजिता।

अमावास्यायामिन्दुर्भानुमन्तं प्रविशतीति प्रसिद्धम्। चित्रभानुमग्निम्। तारकराजं चन्द्रम्। असह्यत्यादौ चिरं रुरोदेति संबन्धः। उद्रेक आधिक्यम्।

उपरुध्यमाना उपरोधवती दृष्टिर्बुद्धिर्यस्य सः। अवलम्बनमाश्रयः। राजवीजिता

रोकी जाने पर भी सरस्वती के तीर पर आ गई। वहाँ स्त्रीस्वभाव के कारण अपनी कातर दृष्टियों के कमलों से अर्चना करके भगवान् अग्निदेव में उस प्रकार प्रवेश किया जैसे चन्द्रमा की कला सूर्य में प्रवेश करती है। माता के मरण से विह्वल हर्ष भी बन्धुओं के बीच घिर कर पिता के समीप पहुँचे। जिनके प्राण कुछ-कुछ बच रहे थे और जो आँखें तरेरते जा रहे थे ऐसे पिता को अस्त होना ही चाहते हुए चन्द्रमा के समान देखा। असह्य शोक के आवेग से अभिभूत हो जाने से स्नेह के कारण उनका धैर्य टूट गया। समस्त दुर्मद राजाओं की मौलिमाला से लालित पिता का चरणकमल पकड़ कर बैठ गए। ताप के कारण मानों उनका मुखचन्द्र द्रवीभूत हो रहा था, या दाँतों की ज्योत्स्ना ही जल बनती जा रही थी, या आँखों का सौन्दर्य पिघल रहा था, या मुख का अमृतरस ही टपक रहा था, इस प्रकार वे महामेघ के समान अपनी आँखों से आँसू का प्रवाह बरसाने लगे और पुक्का फाड़ कर देर तक रोते रहे।

राजा की दृष्टि मुंद गई थी, फिर भी हमेशा कुमार के रोने की आवाज के कान में आने से जान कर वे धीरे-धीरे बोले—'पुत्र, ऐसे न बनो। तुम महासत्त्व हो। महा-

सत्त्ववतां चाग्रणीः सर्वातिशयाश्रितः क्व भवान्, क्व वैक्लव्यम्? 'कुलप्रदीपोऽसि' इति दिवसकरसदृशतेजसस्ते लघूकरणमिव। 'पुरुषसिंहोऽसि' इति शौर्यपटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य निन्देव। 'क्षितिरियं तव' इति लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य पुनरुक्तमिव। 'गृह्यतां श्रीः' इति स्वयमेव श्रिया परिगृहीतस्य विपरीतमिव। 'अध्यास्यतामयं लोकः' इत्युभयलोकविजिगीषोरपुष्कलमिव। 'स्वीक्रियतां कोश' इति शशिकरनिकरनिर्मलयशःसंचयैकाभिनिवेशिनो निरुपयोगमिव। 'आत्मीक्रियतां राजकम्' इति गुणगणात्मीकृतजगतो गतार्थमिव। 'उह्यतां राज्यभारः' इति भुवनत्रयभारवहनोचितस्यानुचितनियोग इव। 'प्रजाः परिरक्ष्यन्ताम्' इति दीर्घदोर्दण्डार्गलितदिङ्मुखस्यानुवाद इव। 'परिजनः परिपाल्यताम्' इति लोकपालोपमस्यानुषङ्गिकमिव। 'सातत्येन शस्त्राभ्यासः कार्यः' इति धनुर्गुणकिणकलङ्ककालीकृतप्रकोष्ठस्य किमादिश्यते। 'निग्राह्यतां चापल-

---

राजान्वयिता। कुलप्रदीपोऽसीत्यादौ पूर्ववदाक्षेपाभ्यूहः। आनुषङ्गिकं प्रस्तावागतम्।

सत्त्वता ही लोक का पहला आलम्बन है, फिर राजपुत्रता। सत्त्ववान् लोगों के अग्रणी और सब में बढ़े चढ़े कहाँ तुम और कहाँ यह व्याकुलता? 'तुम कुल के दीपक हो' यह कहना सूर्य सदृश तेजस्वी तुम्हे कम करने के समान है। 'तुम पुरुषसिंह हो' यह कहना शौर्य और प्रखर बुद्धि द्वारा बढ़े हुए पराक्रम वाले तुम्हारी निन्दा के समान है। 'यह पृथिवी तुम्हारी है' यह कहना लक्षण से ही जाने गए चक्रवर्ती के पद वाले तुम्हारे लिए दुहराने के समान है। 'श्री का ग्रहण करो' यह कहना स्वयं ही श्री के द्वारा स्वीकार किए गए तुम्हारे विपरीत है। 'इस संसार में राज्य करो' यह कहना दोनों लोकों को जीतने की इच्छा रखने वाले तुम्हारे लिए पर्याप्त नहीं। 'खजाने को स्वीकार करो' यह कहना चन्द्र की किरणों के समान निर्मल यशसमूह का ही एक अभिनिवेश रखने वाले तुम्हारे लिए किसी उपयोग का नहीं। 'राजसमूह को अपनाओ' यह कहना अपने गुणों से संसार को अपनाने वाले तुम्हारे लिए कोई नई बात नहीं। 'राज्यभार का वहन करो' यह कहना तीनों भुवन के भारवहन करने योग्य तुम्हारे लिए अनुचित आज्ञा है। 'प्रजाओं की रक्षा करो' यह कहना अपने लम्बे भुजदण्ड से दिशाओं को रोक रखने वाले तुम्हारे लिए अनुवाद मात्र है। 'परिजन की रक्षा करो' यह कहना लोकपालों के सदृश तुम्हारे लिए आनुषङ्गिक है। 'नियम से शस्त्राभ्यास करना' यह कहना धनुष की डोर की रगड़ खाने से काले प्रकोष्ठ वाले तुम्हारे लिए

जातम्' इति नूतनतरवयसि निगृहीतेन्द्रियस्य निरवकाशेव मे वाणी। 'निरवशेषतां शत्रवो नेयाः' इति सहजस्य तेजस एवेयं चिन्ता।" इत्येवं वदन्नेवापुनरुन्मीलनाय निमिमील राजसिंहो लोचने प्रत्यपद्यत च पूषात्मजः।

अस्मिन्नेवान्तरे पूषाप्यायुषेव तेजसा व्ययुज्यत ततश्च लज्जमान इव नरपतिजीवितापहरणजनितादात्मजापराधादधोमुखः समभवत्। भूपालाभावशोकशिखिनेवान्तस्ताप्यमानस्ताम्रतां प्रपेदे। मन्दं मन्दमप्रियप्रश्नार्थमिव लौकिकीं स्थितिमनुवर्तमानोऽवातरद्दिवः। दित्सुरिव जनेशाय जलाञ्जलिमपरजलनिधिसमीपमुपससर्प। सद्योदत्तजलाञ्जलिर्दुःखदहनदग्धमिव करसहस्रमालोहितमाधत्त।

एवं च महानराधिपनिधननिधीयमानविपुलवैराग्य इव शान्तवपुषि, विशति गिरिगुहागह्वरं गभस्तिमालिनि, समुपोह्यमानमहाजनाश्रुदुर्दिना-

---

अपुनरुन्मीलनाय पुनरप्रबोधनाय। निमिमील न्यमीलयत।

पूष्ण आत्मजो यमः। प्रत्यपद्यत प्राप्तः।

एवं चेत्यादौ। अस्मिन्सति नरेन्द्रो हुताशनसत्क्रियया यशःशेषतामनीयतेति संबन्धः। गभस्तीन्रश्मीन्मलते धारयतीति गभस्तिमाली सूर्यस्तस्मिन्। समुपो-

---

आदेश क्या देना है? 'चपलताओं पर निग्रह करना' यह बात नवीनतर इस वय में इन्द्रियों को वश में रखने वाले तुम्हारे लिए घटती नहीं। 'अपने शत्रुओं को समाप्त करना' यह सहज तेज वाले तुम्हारे लिए अफसोस की बात है।" यह कहते-कहते ही राजा ने हमेशा के लिए आँखें बन्द कर लीं और यम पहुंच आया।

इसी बीच सूर्य भी आयु की भांति अपने तेज से रहित हो गया और मानों राजा के प्राण हरने से उत्पन्न अपने पुत्र यम के अपराध के कारण मुंह नीचा करके लज्जित होने लगा। राजा के अभाव के शोकानल से मानों भीतर ही भीतर संतप्त होते हुए ताम्र वर्ण का हो गया। लोकमर्यादा के अनुसार इस अप्रिय समाचार को पूछने के लिए (राजा की मृत्यु कैसे हुई?) धीरे-धीरे आकाश से उतर गया। मानों मरे हुए राजा को जलांजलि देने के लिये पश्चिम समुद्र के समीप पहुँचा, शीघ्र जलाञ्जलि दी और मानों दुःख की अग्नि से जल जाने से लाल अपने हजारों करों (हाथों या किरणों) को धारण किया।

इस प्रकार महाराज के कारण अत्यन्त वैराग्य करके शान्त भाव से सूर्य ने पर्वत की कन्दरा में प्रवेश किया। बड़े लोगों के अश्रु की निरन्तर वर्षा से आतप ठंढा पड़ गया। समस्त लोगों के रोने से लाल नेत्रों की कान्ति से मानों संसार लाल वर्ण का हो गया।

र्द्रीकृत इव निर्वात्यातपे, रोदनताम्रसकललोकलोचनरुचेव लोहितायति जगति, उष्णायमानानेकनरनिःश्वाससंतापप्लुष्ट इव च नीलायमाने दिवसे, नृपानुगमनप्रचलितयेव लक्ष्म्या मुच्यमानासु कमलिनीषु, पतिशुचेव परिवृतच्छायायां श्यामायमानायां भुवि, कुलपुत्रेष्विव परित्यक्तकलत्रेषु कृतकरुणप्रलापेषु वनान्तानाश्रयत्सु दुःखितेषु चक्रवाकेषु, छत्रभङ्गभीतेष्विव निगूढकोशेषु कुशेशयेषु, स्फुटितदिग्वधूहृदयरुधिरपटलप्लव इव गलिते रक्तातपे, क्रमेण च लोकान्तरमुपगतवत्यनुरागशेषे जाते तेजसामधीशे, गगनतलवितन्यमानबहलरागपाटलायां प्रेतपताकायामिव प्रवृत्तायां संध्यायां, शवशिबिकालंकारकृष्णचामरमालास्विव स्फुरन्तीषु दर्शनप्रतिकूलासु तिमिरलेखासु, असितागुरुकालकाष्ठायां केनापि चितायामिव रचितायां रजन्यां, दन्तामलपत्रप्रसाधितकर्णिकासु केसरमालाकल्पितमुण्डमालिकासु, अनुमर्तुमिवोद्यतासु प्रहसितमुखीषु कुमुदलक्ष्मीषु,

---

ध्मानं वर्धमानम्। निर्वात्य शाम्यति सति। यश्चार्द्रीकृतः सोऽवश्यं निर्वाति शीतलीभवति। छायातपप्रतिपक्षजातिः, कान्तिश्च। श्यामा रात्रिः, नायिका च। वनं तोयम्, विपिनं च। छत्रभङ्गो राजदण्डः, पत्राणां च छत्राकारताभेदः। कोशो गञ्जः, कर्णिका च। अनुरागो भक्तिः, लौहित्यं च। तेजसामधीशो राजापि। शवशिबिका मृतयानम्। चामरमाला अपि दर्शनप्रतिकूलाः। काष्ठा दिशः, दारु च।

अनेक लोगों की गरम सांस के संताप से झुलस कर मानों दिन नील वर्ण का होने लगा। मानों राजा के पीछे-पीछे चल पड़ी लक्ष्मी ने कमलिनियों को छोड़ दिया। छाया से ढंकी हुई पृथिवी मानों पति के शोक में श्याम होने लगी। कुलपुत्रों की भाँति चक्रवाकों ने दुखी हो कर अपने कलत्र का त्याग कर दिया और करुण रोदन करने लगे एवं वनों में जाकर बसेरा लिया। कमलों ने मानों राजा के विनाश से डर कर अपने कोश (धनराशि या बीजकोश) को छिपा लिया। दिग्वधुओं के फटे हुए हृदय की रुधिर की धार के समान रक्तातप विगलित होने लगा। क्रम से अनुरागशेष होकर सूर्य लोकान्त में चला गया। आकाशमण्डल में टहाका लाल वर्ण वाली संध्या प्रेतों की पताका के समान फैल गई। शव-शिबिका (अरथी) में शोभा के लिए लगाए गए काले चंवरों की मालाओं के समान दर्शन के अयोग्य अन्धकार की लेखाएँ स्फुरित होने लगीं। अगुरु वृक्ष के काले काष्ठों से मानों किसी ने रजनी के रूप में चिता का निर्माण किया। कुमुदलक्ष्मियाँ निर्मल पत्र रूपी दन्तपत्र और कर्णिका (बीजकोशरूपी कर्णालंकार) से प्रसाधन कर एवं केसर (पराग, बकुल) की मुण्डमाला पहन कर अनुमरण के लिए हँसते-हँसते तैयार

अवतरत्त्रिदशविमानकिङ्किणीक्वणित इव श्रूयमाणे शाखिशिखरकुलायली-यमानशकुनिकुलकूजिते, नाकपथप्रस्थितपार्थिवप्रत्युद्गतपुरुहूतातपत्र इव पूर्वस्यां दिशि दृश्यमाने चन्द्रमसि, नरेन्द्रः स्वयं समर्पितस्कन्धैर्गृहीत्वा शवशिबिकां शिबिसमः सामन्तैः पौरैश्च पुरोहितपुरःसरैः सरितं सरस्वतीं नीत्वा नरपतिसमुचितायां चितायां हुताशसत्क्रियया यशःशेषतामनीयत।

देवोऽपि हर्षः पुञ्जीभूतेन सकलेनेव जीवलोकेन लोकेन राजकुलसंबद्धेनाशेषेण शोकमूकेन परिवृतोऽन्तर्वर्तिनापि शोकानलतप्तेन स्नेहद्रवेण बहिरिव सिच्यमानो निर्व्यवधानायां धरण्यामुपविष्ट एव तां निशीथिनीं भीमरथीभीमामखिलां सराजको जजागार। अजनि चास्य चेतसि—ताते दूरीभूते संप्रत्येतावान्खलु जीवलोकः, लोकस्य भग्नाः पन्थानः, मनोरथानां खिलीभूतानि भूतिस्थानानि, स्थगितान्यानन्दस्य द्वाराणि, सुप्ता सत्यवादिता, लुप्ता लोकयात्रा, विलीना बाहुशालिता, प्रलीना प्रियाला-

---

काष्ठदन्तवत्तस्य चामलं पत्रम्। कर्णिका कर्णाभरणं च। केसरशब्दः किंजल्कबकुलयोः। शिबिर्नाम राजर्षिरभूत्।

निशीथिनीं रात्रिम्। भीमरथी नरकनदी, कालरात्रिर्वा। अन्ये तु सप्तसप्तत्या वर्षैस्तत्संख्यैश्च मासैर्दिनैश्च तावद्भिर्गतैरेका रात्रिर्भीमरथी भवति, तामतिक्रान्तो वर्षशतजीवी नरो भवतीति प्राहुः। जीवलोकः संसारः। खिलीभूतानि शून्यानि। लोकयात्रा व्यवहारः।

दी गई। उतरते हुए देव-विमान की किंकिणियों की आवाज के समान वृक्षों के शिखर पर घोंसलों में बैठते हुए पक्षी चहचहाने लगे। स्वर्ग-मार्ग में प्रस्थान किए हुए राजा के स्वागत में सिंहासन से उठे छत्र की भाँति पूर्व दिशा में चन्द्र दिखाई देने लगा। उसी समय पुरोहितों के आगे आगे सामन्तों और पुरवासियों ने स्वयं अपने कंधे लगा कर अरथी को उठाया और सरस्वती नदी के तीर पर ले जाकर सजाई गई चिता में अग्नि-संस्कार करके राजा को यशःशेष कर दिया।

देव हर्ष ने भी मानों सारे संसार के एकत्र हुए राजकुल से सम्बद्ध उन लोगों के साथ जो शोक के कारण चुपचाप थे, घिर कर, मानों भीतरी भी शोकानल से तप्त स्नेह के द्रव से बाहर सिंचे हुए, बिना बिछाए खरहने जमीन पर बैठे ही बैठे राजाओं के साथ नरक की नदी के समान भयंकर उस कालरात्रि को जगे हुए व्यतीत किया। वे मन में सोचने लगे—'तात के चले जाने पर यह विशाल जीवलोक अनाथ हो गया। लोक की मर्यादाएँ भग्न हो गईं। मनोरथों के उत्पन्न होने के स्थान नहीं रहे। आनन्द के द्वार

पिता, प्रोषिताः पुरुषकारविहारविकाराः, समाप्ता समरशौण्डता, ध्वस्ता परगुणप्रीतिः, विश्रान्ता विश्वासभूमयः, अपदान्यपदानानि, निरुपयोगानि शास्त्राणि, निरवलम्बना विक्रमैकरसता, कथावशेषा विशेषज्ञता, ददातु जनो जलाञ्जलिमौर्जित्याय, प्रतिपद्यतां प्रव्रज्यां प्रजापालता, बध्नातु वैधव्यवेणीं वरमनुष्यता, समाश्रयतु राजश्रीराश्रमपदम्, परिधत्तां धवले वाससी वसुमती, वहतु वल्कले विलासिता, तपस्यतु तपोवनेषु तेजस्विता, प्रावृणोतु चीवरे वीरता, क गम्यतां पुनस्तस्य कृते कृतज्ञतया, क पुनः प्राप्स्यति तादृशान्महापुरुषनिर्माणपरमाणून्परमेष्ठी, शून्याः संवृत्ता दश दिशो गुणानाम्, जगज्जातमन्धकारं धर्मस्य, निष्फलमधुना जन्म शस्त्रोपजीविनाम्। तातेन विना कुतस्त्यास्तादृश्यो दिवसमसम-समररससमारब्धकलहकथाकण्टकितसुभटकपोलभित्तयो वीरगोष्ठ्यः। अपि नाम स्वप्नेऽपि दृश्येत दीर्घरक्तनयनं पुनस्तन्मुखसरोजम्, जन्मान्तरेऽपि पुनः परिष्वज्येत तल्लोहस्तम्भाभ्यधिकगरिमगर्भं भुजयुगलम्। लोकान्तरेऽपि पुत्रेत्यालपतः पुनः पुनः श्रूयेत सा सुधारसमुद्गिरन्ती

प्रावृणोतु परिदधातु। कलहो रणः।

बंद हो गए। सत्यवादिता सो गई। संसार के काम-काज लुप्त हो गए। बाहु का वीर्य विलीन हो गया। प्रिय बातचीत खत्म हो गई। दूसरे के गुणों के प्रति प्रेम ध्वस्त हो गया। विश्वास के पात्र जन नहीं रहे। अपदानों (वीरता के विलक्षण कार्य) के लिये कोई स्थान न रहा। शास्त्रों की कोई उपयोगिता न रही। पराक्रम के प्रति एकरसता निराधार हो गई। विशेषज्ञता सिर्फ कहने के लिए रह गई। अब लोग तेजस्विता को जलांजलि दे दें। प्रजापालन के कर्म संन्यास ले लें। श्रेष्ठ मनुष्यता वैधव्य की वेणी बांध ले। राजलक्ष्मी आश्रम में जाकर निवास करे। पृथिवी उज्ज्वल वस्त्रयुगल पहन ले। विलासिता वल्कल धारण कर ले। तेजस्विता तपोवन में जा कर तपस्या करे। वीरता चीवर ओढ़ ले। कृतज्ञता उनके बदले फिर कहाँ जाय? ब्रह्मा उस प्रकार के महापुरुषों के निर्माण के लिए परमाणुओं को फिर से कहाँ पाएगा? गुणों के लिए सारी दिशाएं शून्य हो गईं। धर्म के लिए अन्धकार बन गया। शस्त्रोपजीवी लोगों का जन्म अब निष्फल हो गया। तात के बिना वीरों की वे गोष्ठियां, जिनमें अपूर्व समर-रस के कारण कलह के सम्बन्ध की बातचीत से वीरों के कपोल पर रोमाञ्च हो उठता था, कहाँ की रह गईं? काश, स्वप्न में भी दीर्घ और लाल नेत्रों वाला उनका मुख-कमल फिर से दीख जाता! जन्मान्तर में भी फिर से लोहे के स्तम्भ के समान उनका भुज-युगल हमारा आलिङ्गन करता! लोकान्तर में भी बार-बार 'पुत्र-पुत्र' पुकारते

मथ्यमानक्षीरसागरोद्गारगम्भीरा भारतीति। एतानि चान्यानि च चिन्तयत एवास्य कथमपि सा क्षयमियाय यामिनी।

ततः शुचेव मुक्तकण्ठमारटत्सु कृकवाककुलेषु, गृहगिरितरुशिखरेभ्यः पातयत्स्वात्मानं मन्दिरमयूरेषु, परित्यक्तनिजनिवासेषु च वनाय प्रस्थितेषु पत्ररथेषु, सद्यस्तनूभूते ताम्यति तमसि, मन्दीभूतात्मस्नेहेष्वभावमाभलपत्सु प्रदीपेषु, स्फुरदरुणकिरणवल्कलप्रावृतवपुषि प्रव्रज्यामिव प्रतिपन्ने नभसि, प्रभातसमयेन समुत्तीर्यमाणासु पार्थिवास्थिशकलकलास्विव कलविङ्ककंधराधूसरासु तारकासु भूभृद्धातुगर्भकुम्भधारिषु विविधसरःसरित्तीर्थाभिमुखेषु प्रस्थितेषु वनकरिकुलेषु, शावशुचिसिक्थपटलपाण्डुरे पिण्ड इवापरपयोनिधिपुलिनपरिसरे पात्यमाने शशिनि, क्रमेण च नृपचितानलधूमविसरधूसरीकृततेजसीव, नरपतिशोकपावकदाहकिरणकलङ्ककालीकृतचेतसीव, प्रोषितसमस्तान्तःपुरपुरंध्रिमुखचन्द्रबृन्दोद्वेगविद्राणवपुषीव, प्रथमास्तमितरोहिणीरणरणकविमनसीव चास्त-

---

ततः शुचेत्यादौ। चचाल स्नानाय देवो हर्ष इति संबन्धः। शुचेवेति। गृहे गिर्यादौ योज्यम्। स्नेहः प्रेम, तैलं च। अरुणो रविसारथिः, लोहितं चारुणम्। कलविङ्को ग्रामचटकः। भूभृद्गिरिः, राजा च। धातवो लघून्यस्थीनि, गैरिकाद्याश्च। कुम्भौ कपाटौ, घटश्च कुम्भः। शावे धूसरे शवसंबन्धिनि च। सिक्थं भक्तम्, मधू-

---

हुए उनकी अमृतरस का उद्गिरण करती हुई, मथे जाते हुए समुद्र के निकले उद्गार के समान गम्भीर वाणी बार-बार सुन पड़ती' इस तरह और अन्य प्रकार की चिन्ता करते करते किसी प्रकार वह रात बीत गई।

तत्पश्चात् मानों शोक से मुर्गे गला फाड़कर टर्राने लगे। भवन के मयूर कृत्रिम पर्वतों के वृक्षों से अपने को गिराने लगे। हंस अपना-अपना स्थान छोड़ कर वन के लिए प्रस्थान करने लगे। तुरंत ही कृश होकर अंधकार दुखी होने लगा। अपने स्नेह (तैल या प्रेम) के कम पड़ जाने से प्रदीप बुझने लगे। अरुण की लाल किरण का वल्कल ओढ़ कर मानों आकाश ने सन्यास ले लिया। कलविंक पक्षी की कंधरा के समान धूसर वर्ण वाले तारे सम्राट् के फूल के समान उतरने लगे। राजा के फूल (अस्थिशेष) से युक्त कलश को लेकर विविध सरोवरों, नदियों और तीर्थों की ओर हाथी चल पड़े। प्रेत के लिए पवित्र भात के उजले पिण्डे के समान चन्द्रमा पश्चिम समुद्र के तट के पुलिन पर लुढ़का दिया गया। क्रम से चन्द्रमा का तेज मानों राजा के चितानल के धूमसमूह के फैलने से मंद पड़ गया, या

मुपगते रजनिकरे, राज्ञतीव देवे दिवमारूढे सवितरि, परिवृत्ते राज्य इव रजनीप्रबन्धे, प्रबुद्धराजहंसमण्डलप्रबोध्यमानः पङ्कजाकर इव चचाल स्नानाय देवो हर्षः। ततश्च नूपुररवविराममूकमन्दमन्दिरहंसेषु, शोकाकुलकतिपयकञ्चुकिमात्रावशेषेषु शुद्धान्तेषु, पतितयूथप इव वनगजयूथे, कक्ष्यान्तरवर्तिनि पितृपरिजने, विषादिन्युपरिरुदन्निषादिनि च स्तम्भनिषण्णे, निष्पन्दमन्दे राजकुञ्जरे, मन्दुरापालकाक्रन्दव्यथिने चाजिरभाजि राजवाजिनि, विश्रान्तजयशब्दकलकले च शून्ये च महास्थानमण्डपे दह्यमानदृष्टिर्निर्जगाम राजकुलात्। अगाच्च सरस्वतीतीरम्। तस्यां स्नात्वा पित्रे ददावुदकम्। अपस्नातश्चानिष्पीडितमौलिरेव परिधायोद्गमनीयदुकूलवाससी निःश्वासपरो निरातपत्रो निरुत्सारणः समुपनीतेऽपि सप्तौ चरणाभ्यामेव नासाग्रासक्तेन रक्ततामरसताम्रेण चक्षुषा

च्छिष्टं च। 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः'। राजहंसा इव राजानः, हंसाश्च। ततश्चेत्यादौ। अस्मिन्सति दह्यमानदृष्टिर्निर्जगाम राजकुलादिति संबन्धः। निषादी हस्तिपकः। अपस्नातेत्यादौ। भवनमाजगामेति संबन्धः। अपस्नातो मृतस्नातः। मौलयः केशाः। 'तत्स्यादुद्गमनीयं यद्धौतयोर्वस्त्रयोर्युगम्'। सप्तौ हये।

मानो राजा के शोक की जलती हुई अग्नि के कारण उसका चित्त कलंक के रूप में काला पड़ गया, या मानों स्वर्ग में गई हुई अन्तःपुर की समस्त पुरन्ध्रियों के मुखचन्द्र के उद्वेग से वह भागने लगा, या मानों पहले अस्त हुई रोहिणी की उत्कण्ठा से उदास हो गया। इस प्रकार चन्द्रमा डूब गया और सूर्य आकाश में उदित हुआ। राज्य के समान रात का समय पलट गया। तब जैसे राजहंस पहले जग कर कमल को जगाते हैं उसी प्रकार कुमार जगे हुए राजाओं द्वारा जगाए जाने पर उठे। तब अन्तःपुरों में रमणियों के नूपुररव के समाप्त हो जाने से भवन के हंस मूक और मन्द हो गए। केवल वहाँ कुछ कंचुकी ही बच रहे। कक्ष्याओं में रहने वाले पिता के परिजन उन जंगली हाथियों की तरह लगने लगे जिनका मेठ (मुखिया) न रहा। राजा का निजी हाथी आलानस्तम्भ में टिक कर विषाद में मग्न और निस्तब्ध होकर पड़ा रहा और उसका महावत रो रहा था। अश्वपाल के आर्तनाद से व्यथित हो कर राजा का निजी अश्व आंगन में पड़ा रहा। सारा महास्थानमंडप जयजयकार के कलकल से रहित और सूना-सूना हो रहा था। देव हर्ष इन पर दृष्टिपात करते हुए राजकुल से निकले और सरस्वती के तीर पर पहुंचे। नदी में स्नान करके पिता को जल दिया। प्रेत कार्य के लिए स्नान कर सिर का पानी बिना गारे ही उन्होंने उज्ज्वल दुकूल वस्त्र धारण किए। बार-बार दीर्घ श्वास लेते रहे। बिना छत्र के

हृदयावशेषस्यापि पितुर्दाहशङ्कया शोकाग्निमिव उद्गिरन्नताम्बूलस्यापि सुचिरप्रक्षालितस्य कल्पतरुकिसलयकोमलस्येव स्वभावपाटलस्याधरस्याधरपल्लवस्य प्रभया मांसरुधिरकवलानिव हृदयाभिघातादुद्वमन्नुष्णनिःश्वासमोक्षैर्भवनमाजगाम।

राजवल्लभास्तु भृत्याः सुहृदः सचिवाश्च तस्मिन्नेवाहनि निर्गत्य प्रियं पुत्रदारमुत्सृज्योद्बाष्पैर्बन्धुभिर्वार्यमाणा अपि बहुनृपगुणगणहृतहृदयाः केचिदात्मानं भृगुषु बबन्धुः, केचित्तत्रैव तीर्थेषु तस्थुः, केचिदनशनैरास्तीर्णतृणकुशा व्यथमानमानसाः शुचमसमामशमयन् , केचिच्छलभा इव वैश्वानरं शोकावेगविवशा विविशुः, केचिद्दारुणदुःखदहनदह्यमानहृदया गृहीतवाचस्तुषारशिखरिणं शरणमुपाययुः, केचिद्विन्ध्योपत्यकासु

भृगुषु प्रपातेषु। कुक्षोऽत्र संध्या।

और लोगों को हटाने वाले प्रतीहारों के बिना ही वे लाए गए भी घोड़े पर सवार न हो कर पैदल ही भवन तक आए। उनकी कमल के समान लाल आँखें नासाग्र पर टिकी थीं, मानों हृदय के रूप में बचे हुए पिता के जल जाने की शंका से शोकाग्नि को बाहर निकाल रहे थे। उनका अधरपल्लव ताम्बूलरहित होने पर भी अत्यन्त स्वच्छ और कल्पवृक्ष के पल्लव के समान कोमल और स्वभावतः लाल था। उसकी प्रभा के रूप में मानों वे अपने हृदय पर पड़े हुए शोकरूपी वज्र के आघात से उष्ण श्वास लेते हुए मांस और रुधिर के ग्रास उगल रहे थे।

राजा के अत्यन्त प्रिय भृत्य, मित्र और सचिव रोते हुए बन्धुओं से रोके जाने पर भी राजा के गुणों के प्रति मुग्ध हो कर अपने प्रिय पुत्र और स्त्री को छोड़ उसी दिन निकल गये। कुछ ने भृगुपतन स्थान में अपने आप को नीचे गिरा कर आत्माहुति दे दी, या भृगुओं में अनुरक्त हुए। कुछ तीर्थयात्रा के लिए गए और वहीं रह गए, या कुछ विद्याध्ययन के लिए आचार्यों के पास गए और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का व्रत ले कर वहीं रह गए। दुखी मन वाले कुछ लोग कुश बिछा कर बैठे और आहार त्याग कर भारी शोक मिटाने लगे, या निराहार रह कर प्रायोपवेशन के द्वारा लम्बे-लम्बे उपवास करने लगे। कुछ शोक के आवेग से शलभों के समान अग्नि में प्रविष्ट हो गए, या चारों ओर अग्नि जला कर पञ्चाग्नितापन करने लगे। दारुण दुःख से दह्यमान हृदय वाले कुछ मौनव्रत लेकर हिमालय की शरण में चले गए, या शब्दविद्या की साधना का व्रत लेकर हिमालय में तप करने गए। कुछ विन्ध्य के समीप प्रदेशों में जंगली हाथियों की सूंड़ के फुहारों में

वनकरिकुलकरशीकरासारसिच्यमानतनवः पल्लवशयनशायिनः संतापमशमयन्, केचित्संनिहितानपि विषयानुत्सृज्य सेवाविमुखाः परिच्छिन्नैः पिण्डकैरटवीभुवः शून्या जगृहुः, केचित्पवनाशना धर्मधना धमद्धमनयो मुनयो बभूवुः, केचिद्गृहीतकाषायाः कापिलं मतमधिजगिरे गिरिषु, केचिदाचोटितचूडामणिषु शिरःसु शरणीकृतधूर्जटयो जटा जघटिरे। अपरे परिपाटलप्रलम्बचीवराम्बरसंवीताः स्वाम्यनुरागमुज्ज्वलं चक्रुः। अन्ये तपोवनहरिणजिह्वाञ्चलोल्लिह्यमानमूर्तयो जरां ययुः। अपरे पुनः पाणिपल्लवप्रमृष्टैराताम्ररागैर्नयनपुटैः कमण्डलुभिश्च वारि वहन्तो गृहीतव्रता मुण्डा विचेरुः।

पिण्डकैः शरीरैः। धमनयो नाड्यः। अनेन कार्श्यं लक्ष्यते। अधिजगिरे अध्येष्यत। आचोटित उत्खातः। धूर्जटिः शिवः। वारि अश्रु, उदकं च।

स्नान करते हुए और पत्तों पर सोते हुए अपना सन्ताप मिटाने लगे, या विन्ध्याचल के प्रदेशों में जाकर पहनने या शयनादि के लिए पल्लव अर्थात् श्वेत दुकूल वस्त्रों का प्रयोग करने लगे। कुछ सन्निहित भी विषयों को छोड़ कर भोग से पराङ्मुख हो कर अल्पाहार करते हुए शून्य अटवी स्थानों में रहने लगे, या जैन साधु हो कर चान्द्रायण आदि अनेक प्रकार के व्रतों में नपा-तुला आहार लेने लगे। कुछ वायु भक्षण करते हुए कृशशरीर धर्मधन मुनि हो गए, या सब प्रकार का आहार त्याग कर वायुभक्षण से तपश्चर्या करते हुए शरीर को सुखाने वाले दिगम्बर जैन साधु हो गए। कुछ काषाय धारण करके गिरिकन्दराओं में कपिल मत का अध्ययन करने लगे। कुछ ने चूड़ामणि उतार कर शिव की शरण लेकर जटाएँ रख लीं, या पाशुपत शैव सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। कुछ लाल रंग का लम्बा चीवर पहन कर स्वामी के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने लगे, या लाल लम्बा चीवर (संघाटी) पहनने वाले भिक्षु स्वामी (भगवान् बुद्ध) के प्रति अपना-अपना अनुराग प्रकट करने लगे। कुछ तपोवन में आश्रम-मृगों से चाटे जाते हुए वार्धक्य को प्राप्त हुए, या गृहस्थ जीवन के बाद वैखानस हो कर वानप्रस्थ आश्रम तपोवन में व्यतीत करने लगे। कुछ ने आंसू भरे हुए लाल नेत्रों को हाथ से पोंछ कर और कमण्डलु के जल से धोकर सिर मुड़वा लिया और विविध व्रत लेकर विचरने लगे, या पाराशरी भिक्षु हो गए।

देवमपि हर्षं तदवस्थं पितृशोकविह्वलीकृतम्, श्रियं शाप इति, महीं महापातकमिति, राज्यं रोग इति, भोगान्भुजङ्गा इति, निलयं निरय इति, बन्धुं बन्धनमिति, जीवितमयश इति, देहं द्रोह इति, कल्यतां कलङ्क इति, आयुरपुण्यफलमिति, आहारं विषमिति, विषममृतमिति, चन्दनं दहन इति, कामं क्रकच इति, हृदयस्फोटनमभ्युदय इति च मन्यमानम्, सर्वासु क्रियासु विमुखम्, पितृपितामहपरिग्रहागताश्चिरन्तनाः कुलपुत्राः, वंशक्रमाहितगौरवाश्च ग्राह्यगिरो गुरवः, श्रुतिस्मृतीतिहासविशारदाश्च जरद्द्विजातयः, श्रुताभिजनशीलशालिनो मूर्धाभिषिक्ताश्चामात्या राजानो, यथावदधिगतात्मतत्त्वाश्च संस्तुता मस्करिणः, समदुःखसुखाश्च मुनयः, संसारासारत्वकथनकुशला ब्रह्मवादिनः, शोकापनयननिपुणाश्च पौराणिकाः पर्यवारयन्।

अस्वतन्त्रीकृतश्च तैर्मनसापि नालभत शोकानुप्रवणमाचरितुम्।

देवमित्यादौ। देवमपि हर्षमेवंविधा जनाः पर्यवारयन्निति संबन्धः। कल्यतामरोगिताम्। ग्राह्यगिर आदेयवाचः। अध्यात्ममात्मज्ञानम्। तत्त्वमितिकर्तव्यता। मस्करिणः परिव्राजकाः।

देव हर्ष भी पिता के शोक में विह्वल चित्त से तदवस्थ पड़े थे। वे श्री को शाप, पृथिवी को महापातक, राज्य को रोग, भोग-विलास को सर्प, घर को नरक, बन्धुजन को बंधन, जीवन को अयश; देह को द्रोह, आरोग्य को कलंक, आयु को अपुण्य का फल, भोजन को विष, विष को अमृत, चन्दन को अग्नि, काम को करपत्र और हृदय के फटने को अभ्युदय मान बैठे। उन्होंने सब कार्यों से मुँह मोड़ लिया। पिता-पितामह की कुल-परम्परा के पुराने कुलपुत्रों ने श्रुति, स्मृति, इतिहास के ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मणों ने, ज्ञान, कुल और शील से युक्त अमात्य पद के अधिकारी राजाओं ने, आत्मतत्त्व को ठीक प्रकार से अधिगत करने वाले प्रसिद्ध मस्करी साधुओं ने, सुख दुःख को एक-सा समझने वाले मुनियों ने, संसार की असारता का उपदेश करने वाले ब्रह्मवादी शांकर वेदान्त के अनुयायियों ने और शोक को कम करने में निपुण पौराणिकों ने आकर उन्हें घेर लिया।

उन लोगों के द्वारा समझाने-बुझाने से हर्ष ने शोक की वेदना को मन से भी अनुभव

प्रचुरमित्रानुनीयमानश्च सनाभिभिः कथं कथमप्याहारादिकासु क्रियास्वाभिमुख्यमभजत। भ्रातृगतहृदयश्चाचिन्तयत्—'अपि नाम तातस्य मरणं महाप्रलयसदृशमिदमुपश्रुत्य आर्यो बाष्पजलस्नातो न गृह्णीयाद्वल्कले। नाश्रयेद्वा राजर्षिराश्रमपदम्। न विशेद्वा पुरुषसिंहो गिरिगुहाम्। अश्रुसलिलनिर्भरभरितनयननलिनयुगलो वा पश्येदनाथां पृथिवीम्। प्रथमव्यसनविषमविह्वलः स्मरेदात्मानं वा पुरुषोत्तमः। अनित्यतया जनितवैराग्यो वा न निराकुर्यादुपसर्पन्तीं राज्यलक्ष्मीम्। दारुणदुःखदहनप्रज्वलितदेहो वा प्रतिपद्येताभिषेकम्। इहागतो वा राजभिरभिधीयमानो न पराचीनतामाचरेदिति। अतिपितृपक्षपाती खल्वार्यः। सर्वदा तातश्लाघया मामभिधत्ते—तात हर्ष! कस्यचिदभूद्भविष्यति वा पुनः काञ्च-

सनाभयः सगोत्राः। शौचानुप्रवणं शरीरबाधादि। बाष्पजलस्नातो न गृह्णीयाद्वल्कले इति प्रतीयमानता बोद्धव्या। अत्र च सर्वत्र नेत्याशङ्कायाम्। पुरुषोत्तमो हर्षः, हरिरपि। पराचीनता पराङ्मुखत्वम्, अनानुकूल्यं वा।

करने का अवसर नहीं प्राप्त किया। बहुत मित्रों के समझाने पर वे किसी-किसी प्रकार आहार आदि कार्यों में प्रवृत्त हुए। बड़े भाई राज्यवर्धन का स्मरण करके सोचने लगे—'कहीं ऐसा न हो कि तात के महाप्रलय के सदृश इस मरणवृत्तान्त को सुन कर आर्य रोते हुए वल्कल धारण कर लें। कहीं राजर्षि वह किसी आश्रम में प्रविष्ट न हो जाँय। कहीं पुरुष-सिंह वे गिरिकन्दरा में न चले जाँय। कहीं वे इस पृथिवी को अनाथ देख कर नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित न करने लगें। कहीं श्रेष्ठ मनुष्य वे दुःख की पहली चोट से घबरा कर आत्मचिन्तन में न लग जाँय। कहीं संसार की अनित्यता से वैराग्यवान् हो कर आती हुई राज्यलक्ष्मी से विमुख न हो जाँय। कहीं दारुण दुःखरूपी अग्नि से सन्तप्त हो कर जल में डूबने न लगें। अथवा यहाँ आकर राजाओं के प्रार्थना करने पर भी सिंहासन पर बैठने से पराङ्मुख न हो जाँय। वे पिता जी के अत्यन्त पक्षपाती हैं। हमेशा उनकी श्लाघा करते हुए कहते थे—भाई हर्ष, सुवर्ण के ताल वृक्ष की भाँति लम्बा शरीर किसीका हुआ है या फिर होगा? सूर्य की भक्तिसे विकसित होने वाला उनका मुखरूपी महाकमल और इस प्रकार वज्रस्तम्भ के समान उद्भासित होने वाले दोनों भुजदण्ड और ये मद से अलसाए बलराम के समान विलास किसी के हुए हैं अथवा होंगे? इस प्रकार कौन दूसरा

नतालतरुप्रांशु कायप्रमाणमिदम् ? ईदृक्च दिवसकरप्रीत्या दिवसमुन्मुखविकसितं मुखमहाकमलम् । एतौ च वज्रस्तम्भभास्वरौ भुजकाण्डौ । एते च हसितमदालसहलधरविभ्रमा विलासाः कोऽन्यो मानी विक्रान्तो वदान्यो वा ?' इति । एतानि चान्यानि च चिन्तयन्दर्शनोत्सुकहृदयो भ्रातुरागमनमुदीक्षमाणः कथंकथमप्यतिष्ठदिति ।

इति महाकविश्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते महाराजमरणवर्णनं नाम पञ्चम उच्छ्वासः ।



मुखकमलस्य दिवसकरप्रीतिः प्रतापित्वम् । वदान्यो दाता ॥

इति श्रीशंकरविरचिते हर्षचरितसंकेते पञ्चम उच्छ्वासः ।



मानी, पराक्रमी और दानशील है ?' इस तरह की और अन्य प्रकार की चिन्ता करते हुए बड़े भाई के दर्शन की उत्कण्ठा से उनके आगमन की प्रतीक्षा में किसी-किसी प्रकार ठहरे ।

हर्षचरित पञ्चम उच्छ्वास समाप्त ।



षष्ठ उच्छ्वासः

उच्चित्योच्चित्य भुवि प्रहितनिगूढात्मदूतनीतानाम् ।
विजिगीषुरिव कृतान्तः शूराणां संग्रहं कुरुते ॥ १ ॥
विस्रब्धघातदोषः स्ववधाय खलस्य वीरकोपकरः ।
नवतरुभङ्गध्वनिरिव हरेर्निद्रातस्करः करिणः ॥ २ ॥

अथ प्रथमप्रेतपिण्डभुजि भुक्ते द्विजन्मनि, गतेषूद्वेजनीयेष्वशौचदिवसेषु, चक्षुर्दाहदायिनि दीयमाने द्विजेभ्यः शयनासनचामरातपत्रामत्रपत्रशस्त्रादिके नृपनिकटोपकरणकलापे, नीतेषु तीर्थस्थानानि सह जनहृदयैः

उच्चित्येति । कृतान्तोऽन्तकः शूराणां संग्रहं कुरुते । किं कृत्वा । उच्चित्योच्चित्य यथाप्रधानं प्रहितनिगूढाः स्वभावप्रच्छन्ना यमदूता यमकिंकरास्तैर्नीतानां विजिगीषुर्यथान्विष्यान्विष्यात्मदूतानां शूराणां संग्रहं कुरुते । अनेनोच्छ्वासार्थः संगृहीतः । तथा हि कृतोऽन्तो विनाशो येन स शशाङ्कनामा गौडाधिपतिः । शूराणां राज्यवर्धनानुचराणां प्रधानराजपुत्राणां तत्सहितानां संग्रहमकरोत् । कथम् ? उच्चित्योच्चित्यान्विष्यान्विष्य । कीदृशानाम् ? प्रहितनिगूढात्मदूतानाम । तथा हि तेन शशांकेन विश्वासार्थं दूतमुखेन कन्याप्रदानमुक्त्वा प्रलोभितो राज्यवर्धनः स्वगेहे सानुचरो भुञ्जान एव छद्मना व्यापादितः ॥ १ ॥

अत एव चाह—विस्रब्धेत्यादि । खलोऽत्र गौडापसदः । निद्रातस्करः शशाङ्कः । वीरश्च हर्षः ॥ २ ॥

अथ प्रथमेत्यादौ । अस्मिन्नस्मिन्सति देवो हर्षो मौलेन महाजनेनात्मानं सकलं

विजय की इच्छा रखने वाले राजा के समान यमराज पृथिवी में जगह-जगह पर भेजे हुए अपने गुप्तचर दूतों द्वारा चुन-चुन कर लाए गए शूर वीरों का संग्रह करता है॥१॥

जिस प्रकार हाथी द्वारा तोड़े गए वृक्ष के टूटने की ध्वनि सिंह को नींद से उठा देती है और वह हाथी को मार डालता है उसी प्रकार खल स्वभाव के गौड़राज द्वारा विश्वासघात करके (राज्यवर्धन के) मारे जाने के अपराध ने वीर (हर्ष) को कुपित कर दिया और हर्ष ने उसे मार डाला ॥ २ ॥

प्रेतपिंड खाने वाले महाब्राह्मणों ने भोजन किया । उद्वेग से भरे हुए अशौच के दिन बीत गए । आँखों में शूल की तरह चुभती हुई राजा के निजी उपयोग की सामग्री—पलंग, पीढ़ा, चँवर, छत्र, बर्तन, सवारी, हथियार आदि ब्राह्मणों को समर्पित कर दी गई । जनता के हृदय के साथ राजा की अस्थियाँ तीर्थस्थानों में भेज दी गईं । चिता के स्थान

कीकसेषु, कल्पितशोकशल्ये सुधानिचयचिते चिताचैत्यचिह्ने, वनाय विसर्जिते महाजिजिति राजगजेन्द्रे, क्रमेण च मन्देष्वाक्रन्देषु, विरलीभवत्सु च विलापेषु, विश्राम्यत्यश्रुणि, शिथिलीभवत्सु श्वसितेषु, अविस्पष्टेषु हाकष्टाक्षरेषु, उत्सार्यमाणासु च व्यसनशय्यासु, उपदेशश्रवणक्षमेषु श्रोत्रेषु, अनुरोधावधानयोग्येषु हृदयेषु, गणनीयेषु नृपगुणेषु, प्रदेशवृत्तितामाश्रयति शोके, कृतेषु कविरुदितकेषु, जाते च स्वप्नावशेषदर्शने हृदयावशेषावस्थाने चित्रावशेषाकृतौ काव्यावशेषनाम्नि नरनाथे देवो हर्षः कदाचिदुत्सृष्टव्यापारः पुञ्जीभूतवृद्धबन्धुवर्गाग्रेसरेणावनतमूकमुखेन महाजनेन मौलेनाकाल आत्मानं वेष्ट्यमानमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा चाकरोन्मनसि—'किमन्यदार्यमागतमावेदयत्ययं शोकपराभूतो लोकाकरः' इति। वेपमानहृदयश्च पप्रच्छ प्रविशन्तमधिकतरप्रचारमन्यतमं पुरुषम् 'अङ्ग! कथय। किमार्यः प्राप्तः' इति। स मन्दमब्रवीत्—'देव! यथादिशसि द्वारि' इति

वेष्ट्यमानमद्राक्षीदिति संबन्धः। भोजनं भुक्तं तदस्यास्तीति। 'अर्शआदिभ्योऽच्'। अमत्राणि पात्राणि। पत्राणि वाहनानि। कीकसेष्वस्थिषु। चितायां चैत्यचिह्नस्तदाकारं चिह्नम्, श्मशानदेवगृहं वा। कविरुदितकेषु दुःखोद्दीपनकालेषु। लोको-

पर शोक के शल्य को उत्पन्न करने वाला चैत्यचिह्न स्थापित किया गया जो सुधा या गचकारी से बनाया गया था। महासमर में जीतने वाला राजा का निजी हाथी वन में छोड़ दिया गया। क्रम से आर्तनाद कम पड़ गए। विलाप की आवाज भी विरल हो गई। आँसुओं का बहना भी बंद हो गया। साँसें शिथिल पड़ गईं। हाय-हाय के दर्दभरे शब्द अस्पष्ट हो गए। शोक के अवसर पर पड़े रहने के लिए जो शय्याएँ बिछाई गई थीं अब हटा दी गईं। कान अब उपदेश की बात सुनने लगे। राजा के गुण गिने जाने लगे। अब शोक वस्तु-वस्तु पर ही आश्रित हो गया (अर्थात् राजा की किसी-किसी वस्तु को देख या सुन कर शोक उत्पन्न होता न कि हमेशा)। कवियों ने राजा के शोक में विलापपूर्ण काव्य रचे। राजा का दर्शन स्वप्न के रूप में अवशिष्ट रह गया, हृदय के रूप में वे अब बच रहे और उनका नाम काव्य के रूप में रह गया। तब किसी समय काम-धाम से विरत हो कर बैठे हर्ष ने वृद्ध बन्धुवर्ग, झुके हुए चुपचाप महाजन और मौल (वंशपरम्परागत) मन्त्रियों से घिरते हुए अपने आप को देखा। देख कर उन्होंने मन में सोचा—'शोक से पराभूत ये लोग भाई के आने के समाचार के अतिरिक्त क्या निवेदन करेंगे?' काँपते हुए हृदय से उन्होंने भीतर प्रवेश कर दौड़ते आते हुए एक व्यक्ति से पूछा—'अङ्ग, कहो क्या आर्य पधार चुके?' वह धीरे से बोला—'देव, हाँ, द्वार पर हैं।'

श्रुत्वा च सोदर्यस्नेहनिहितनिरतिशयमन्युमृदूकृतमनाः कथमपि न ववाम बाष्पवारिप्रवाहोत्पीडेन सह जीवितम्।

अनन्तरं च द्वारपालप्रमुक्तेन प्रथमप्रविष्टेन परिजनेनेवाक्रन्देन कथ्यमानम्, दूरद्रुतागमनमुषितबाहुल्येन विच्छिन्नच्छत्रधारेण लम्बिताम्बरवाहिना भ्रष्टभृङ्गारग्राहिणा च्युताचमनधारिणा ताम्यत्ताम्बूलिकेन खञ्जत्खड्गग्राहिणा कतिपयप्रकाशदासेरकप्रायेण बहुवासरान्तरितस्नानभोजनशयनश्यामक्षामवपुषा परिजनेन परिवृतम्, अविरलमार्गधूलिधूसरितशरीरतया शरणीकृतमिवाशरणया क्रमागतया वसुंधरया, हूणनिर्जयसमरशरव्रणबद्धपट्टकैर्दीर्घधवलैः समासन्नराज्यलक्ष्मीकटाक्षपातैरिव शबलीकृतकायम्, अवनिपतिप्राणपरित्राणार्थमिव च शोकहुतभुजि हुतमांसैरति-

चरो जनसमूहः। मन्युः शोकः।

अनन्तरमित्यादौ प्रविशन्तं ज्येष्ठं भ्रातरमद्राक्षीदिति संबन्धः। परिजनेनापि प्रथमप्रविष्टेन द्वारपालप्रमुक्तेन च। आचमनं पतद्ग्रहः। प्रकाशा आतुरङ्गत्वाच्चिश्रीयमानाः। दासेरका दासीसुताः।

यह सुन कर सहोदर भाई के स्नेह से अधिक रूप में उत्पन्न पिता जी की मृत्यु के शोक से आर्द्र मन वाले कुमार ने अश्रुधार की पीड़ा के साथ किसी प्रकार प्राण को रोक रखा।

तत्पश्चात् उन्होंने अपने जेठे भाई राज्यवर्धन को देखा। द्वारपाल से छूट पाकर परिजन की भाँति पहले ही घुसे हुए आर्तनाद ने उनकी खबर दे दी। उनके चारों ओर कई दिनों से स्नान, भोजन, शयन न होने के कारण मुर्झाये हुए और कृश शरीर वाले लोग थे जिन्होंने शीघ्रता से दूर का रास्ता तय करने के लिए बहुतों का साथ छोड़ दिया था। उनके छत्रधारी पुरुष भी पीछे रह गए थे। वेग से चलने के कारण उनके कपड़े खिसक कर लम्बे हो गए थे। भृङ्गार नामक पात्र लेकर चलने वाले पुरुष भी दूर रह गए थे। आचमन का जल लेकर चलने वाले भी जाने कहाँ रह गए थे। खड्गग्राही पुरुष लँगड़ा कर चल रहे थे। कुछ ऊँट भी दिखाई दे रहे थे। हमेशा मार्ग में चलते ही रहने से उनकी देह धूल से धूसरित हो गई थी, मानों अशरण हो कर क्रम से आई हुई वसुन्धरा को उन्होंने अपनी शरण में रख लिया हो। हूणों को पछाड़ देने के समर में बाणों से लगे हुए उनके शरीर के घावों पर लम्बी सफेद पट्टियाँ बँधी थीं, मानों समीप में पहुँची हुई राज्यलक्ष्मी के दीर्घ धवल कटाक्ष पात उन पर पड़ रहे हों। राजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानों उनके अंग-अंग अपने आपको शोक की अग्नि में स्वाहा कर रहे थे जिससे उनका दुःखभार व्यक्त हो रहा था। उनके सिर पर चूड़ामणि न थी, बाल गंदे और

कृशैरवयवैरावेद्यमानदुःखभारम्, अपगतचूडामणिनि मलिनाकुलकुन्तले शेखरशून्ये शिरसि शुचमारूढां मूर्तिमतीमिव दधानम्, आतपगलितस्वेदराजिना रुदतेव पितृपादपतनोत्कण्ठितेन ललाटपट्टेन लक्ष्यमाणम्, प्रथीयसा बाष्पपयःप्रवाहेणाभिमतपतिमरणमूर्च्छितामिव महीमनवरतं सिञ्चन्तम्, अनन्तसंततास्रुप्रवाहनिपतननिम्नीकृताविव दुःखक्षामौ कपोलावुद्वहन्तम्, अत्युष्णमुखमारुतमार्गगतेन द्रवतेव गलिततताम्बूलरागेणाधरबिम्बेनोपलक्षितम्, पवित्रिकामात्रावशेषेन्द्रनीलिकांशुश्यामायमानमचिरश्रुतपितृमरणजन्यमहाशोकाग्निदग्धमिव श्रवणप्रदेशमुद्वहन्तम्, अस्फुटाभिव्यक्तव्यञ्जनेनाप्यधोमुखस्तिमितनयननीलतारकमयूखमालाखचितेन शोकप्ररूढश्मश्रुश्यामलेनेव मुखशशिना लक्ष्यमाणम्, केसरिणमिव महाभूभृद्विनिपातविह्वलनिरवलम्बनम्, दिवसमिव तेजःपतिपतनपरिम्लानश्रियं श्यामीभूतम्, नन्दनमिव भग्नकल्पपादपं विच्छायम्, दिग्भागमिव प्रोषितदिक्कुञ्जरशून्यम्, गिरिमिव गुरुवज्रपातदारितं प्रकम्पमानम्, क्रीत-

शेखर आपीडः। अधरबिम्बेनापीतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। अभिव्यञ्जनं श्मश्रु।

अस्तव्यस्त थे, शेखरस्रज भी न था, इस प्रकार मानो मूर्तिमान् हो कर सिर पर बैठे शोक को धारण कर रहे थे। घाम की गर्मी से पसीने की बूँदें उनके ललाट पर छा गई थीं, मानों पिता के पैर पड़ने की उत्कंठा से रो रहे हों। अपने अभिमत स्वामी की मृत्यु से मानों मूर्च्छित पृथिवी को अपने बढ़े हुए बाष्प के प्रवाह से निरन्तर सींच रहे थे। उनके कपोल दुःख से इस प्रकार क्षीण हो रहे थे मानों निरन्तर बहते हुए अश्रुप्रवाह से पिचक गए हों। उनके मुँह से अत्यन्त उष्ण श्वास के साथ द्रवित हो कर मानों उनके अधर का ताम्बूल-राग निकल रहा था। उनका कर्णदेश विशुद्ध एक मात्र बची हुई इन्द्रनीलमणि की किरण से श्यामवर्ण हो रहा था मानों कुछ क्षण पूर्व सुने हुए पिता की मृत्यु के समाचार से उत्पन्न महाशोक की अग्नि में जल गया हो। उनके मुखचन्द्र में श्मश्रु के रूप में अभी पाम्ही पड़ ही रही थी, फिर मुंह नीचा करने से उनकी आँखों की नीली किरणें नीचे की ओर फैल रही थीं, मानों शोक के कारण क्षौर कर्म न कराने से उनकी दाढ़ी बढ़ आई हो। राजा के विनाश से व्याकुल और बिना किसी आश्रय के बने वे उस सिंह के समान लग रहे थे जो पर्वत के गिरने से उद्विग्न और आश्रयरहित हो गया हो। सूर्य के अस्त होने से दिन के समान तेजस्वी राजा की मृत्यु से मुर्झाए हुए श्रवों-से प्रतीत हो रहे थे। कल्पवृक्ष के भग्न हो जाने से नन्दनवन के समान छायारहित (कान्तिहीन) हो रहे थे। दिग्गज के चले जाने से दिग्भाग की तरह सूने-सूने लग रहे

मिव कशिम्ना, किंकरीकृतमिव कारुण्येन, दासीकृतमिव दौर्मनस्येन, शिष्यीकृतमिव शोचितव्येन, अन्धीकृतमिवाधिना, मूकीकृतमिव मौनेन, पिष्टमिव पीडया, स्विन्नमिव संतापेन, उषितमिव चिन्तया, विलुप्तमिव विलापेन, धृतमिव वैराग्येण, प्रत्याख्यातमिव प्रतिसंख्यानेन, अवज्ञातमिव प्रज्ञया, दूरीकृतमिव दुरभिभवत्वेन, अबोध्येन वृद्धबुद्धीनाम्, असाध्येन साधुभाषितानाम्, अगम्येन गुरुगिराम्, अशक्येन शास्त्रशक्तीनाम्, अपथेन प्रज्ञाप्रयत्नानाम्, अगोचरेण सुहृदनुरोधानाम्, अविषयेण विषयोपभोगानाम्, अभूमिभूतेन कालक्रमोपचयानां शोकेन कवलीकृतं ज्येष्ठं भ्रातरमपश्यत्। आवेगोद्गतकृत्स्नस्नेहोत्कलिकाकलापोत्क्षिप्यमाणकाय इव च परवशः समुदगात्।

अथ तं दूरादेव दृष्ट्वा देवो राज्यवर्धनश्चिरकालकलितं बाष्पावेगं मुमुक्षुः सुदूरप्रसारितेन संकल्पयन्निव सर्वदुःखानि दीर्घेण दोर्दण्डद्वयेन गृहीत्वा

भूभृद्राजा, गिरिश्च। तेजःपतिर्नृपतिः, सूर्यश्च। श्यामः कृष्णः, श्यामा च रात्रिः। कल्पपादपो राजापि। छाया कान्तिः, आतपाभावश्च। प्रत्याख्यातं त्यक्तम्। प्रतिसंख्यानेन विवेककुशलया बुद्ध्या।

कलितं धृतम्। बन्धनं लाभम्। पर्जन्य इन्द्रः।

थे। विशाल वज्रपात से फटे हुए पवन के समान जोर से काँप रहे थे। कृशता ने मानों उन्हें खरीद लिया था। कारुण्य ने अपना किंकर बना लिया था। दौर्मनस्य ने अपना उन्हें दास बना लिया था। शोक ने शिष्य कर रखा था। मानसिक व्यथा ने अंधा बना दिया था। मौन ने उन्हें चुप कर दिया था। पीड़ा ने पीस दिया था। संताप ने पका डाला था। चिन्ता ने पकड़ लिया था। विलाप ने विलुप्त कर दिया था। वैराग्य ने उन्हें थाम लिया था। बुद्धि ने उन्हें छोड़ दिया था। प्रज्ञा ने उनका तिरस्कार कर दिया था। अब उनमें दुरभिभव होने की बात न रही। बड़े-बूढ़े लोग भी उनके शोक को हटा न सके। सज्जनों के उपदेश भी उन पर काम न करते, गुरुओं की बातें भी न चलतीं, शास्त्रों की शक्ति भी असमर्थ थी, प्रज्ञा के प्रयत्न भी उनका हरण न कर सके, सामयिक उपचार भी कोई असर नहीं कर सके। वह शोक मानों उन्हें खाये जा रहा था। आवेग से उत्पन्न स्नेह की उत्कंठा ने हर्ष के शरीर को मानों झकझोर दिया और वे परवश हो कर उठ खड़े हुए।

कुमार हर्ष को देव राज्यवर्धन ने दूर ही से देखा और बहुत पहले से रोके हुए बाष्पावेग को छोड़ने की इच्छा से सारे दुःख का चिन्तन करके दूर तक अपनी लम्बी

कण्ठे मुक्तकण्ठं पुनः पतितक्षौमे क्षामे वक्षसि पुनः कण्ठे पुनः स्कन्धभागे पुनः कपोलोदरे निधाय तथा तथा रुरोद यथा संबन्धनानीवोदपाट्यन्त हृदयानि। अश्रुस्रोतःशिरा इवामुच्यत लोचनेषु लोकेन स्मृतनृपतिना राजवल्लभेनापि प्रतिशब्दकनिभेन निर्भरमिवारुद्यत। सुचिराच्च कथं कथमपि निर्वृष्टनयनजलः पर्जन्य इव शरदि स्वयमेवोपशशाम। उपविष्टश्च परिजनोपनीतेन तोयेन तरत्करनखमयूखपुञ्जतया महाजलप्लवजायमानफेनलेखमिव पुनः पुनः प्रमृष्टमपि पक्ष्माग्रसंगलद्बाष्पबिन्दुवृन्दमन्दोन्मेषमुषितदर्शनं कथं कथमपि चक्षुरक्षालयत्। ताम्बूलिकोपस्थापितेन च वाससा चन्द्रातपशकलेनेवोष्णोष्णबाष्पदग्धं वदनमुन्ममार्ज। तूष्णीमेव च चिरं स्थित्वोत्थाय स्नानभूमिमगात्। तस्यां च स्थित्वा विभूषं वित्रस्तव्यस्तकुन्तलं मौलिमनादरान्निष्पीड्य सावशेषमन्युस्फुरितेन जिजीविषतेव जलधौतसुभगमात्मानमपि चुचुम्बिषतेवाधरेण क्षालितस्य

'पर्जन्यौ रसदब्भेन्द्रौ' इत्युक्तेः। स हि मेघान्वर्षति। वित्रस्ता ऊर्ध्वं क्षिप्ताः। निर्गता इत्यन्ये। व्यस्ता विक्षिप्ताः। कुन्तलाः केशाः। उक्तं च—'चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः।' इति। 'चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः' इत्युक्तम्।

भुजाएँ फैलाईं और कुमार को गले से लगा कर फिर गिरे वस्त्र वाले क्षीण उनके वक्ष में, फिर कंठ में, फिर स्कन्धभाग में, फिर कपोल में लग-लग कर गला फाड़ कर उस प्रकार रोने लगे मानों हृदय की परतें उत्पाटित की जा रही हों। उस समय राजा का स्मरण करके लोगों ने शिरा के समान आँसू की धार बहाई और राजा के प्रिय लोगों ने भी राज्यवर्धन के रुदन की प्रतिध्वनि के रूप में जोर-जोर से रोना आरम्भ किया। जैसे शरत्काल में मेघ जल बरसा देता है उसी प्रकार देर तक रो-धो कर किसी किसी प्रकार वे स्वयं शान्त हो गए। आसन पर बैठ कर परिजन द्वारा लाए गए जल से नख की किरणों का फेन उत्पन्न करते हुए बार-बार साफ किए गए चक्षु को भी, जिसकी पपनियों पर आंसू के कतरे लग जाने के कारण खुलना और देखना न हो पाता था, किसी-किसी प्रकार धोया। ताम्बूलिक द्वारा दिए गए चाँद के टुकड़े की भाँति रूमाल से गरम आँसू से जला अपना मुंह पोंछा। बहुत देर तक चुप-चाप ही बैठे रहे और फिर वहाँ से उठ कर स्नानभूमि में पहुँचे। वहाँ ठहरे और अलंकारहीन, अस्तव्यस्त बाल वाले अपने सिर को अनादर से पोंछा। बचे हुए शोक से उनका अधर फड़फड़ा रहा था, मानों उसमें जान आ रही थी, पानी से धुले हुए अपने आपको ही मानों चूमना चाहता

चक्षुषः श्वेतिम्ना च शारदशशिकरविकसितविशदकुमुदवनदलावलिबलि-विक्षेपैरिव दिग्देवतार्चनकर्म कुर्वाणश्चतुःशालवितर्दिकाविनिवेशितायाम-प्रतिपादिकायां चापाश्रयविनिहितैकोपबर्हणायां पर्यङ्किकायां निपत्य जोष-मस्थात् ।

देवोऽपि हर्षस्तथैव स्नात्वा धरणितलनिहितकुथाप्रसारितमूर्तिरदूर एवास्य तूष्णीमेव समवातिष्ठत । दृष्ट्वा दृष्ट्वा दूयमानमानसमग्रजन्मानं समस्फुटदिवास्य सहस्रधा हृदयम् । औरसदर्शनं हि यौवनं शोकस्य । लोकस्य तु नरपतिमरणदिवसादपि दारुणतरः स बभूव दिवसः । सर्व-स्मिन्नेव च नगरे न केनचिदपाचि न केनचिदस्नायि नाभोजि । सर्वत्र सर्वेणारोदि । केवलमनेन च क्रमेणातिचक्राम दिवसः । स च प्रत्यग्रत्व-ष्टृटङ्कतष्टतनुरिव वमद्बहलरुधिररसमांसच्छेदलोहितच्छविरपरपारावारप-यसि ममज्ज माञ्जिष्ठारुणोऽरुणसारथिः । मुकुलायमानकमलिनीकोशवि-कलं चकाण चञ्चरीककुलं कमलसरसि । सविधविरहव्याधिविधुरवधूबा-

---

अत्र तूपचारान्मौलिशब्देन शिर उच्यते । वितर्दिका वेदिका । उपबर्हणमुपधा-नम् । जोषं तूष्णीम् ।

कुथो वर्णकम्बलः । औरसो भ्राता । त्वष्टा विश्वकर्मा तस्य टङ्कश्छेदनशस्त्रम् तेन तनूकृता तनुर्यस्य सः । पुरा स्वभर्तृतेजोविसरोद्विग्नया सूर्यभार्ययावमानितः सूर्यस्त्वष्टारमवोचन्मम तेजस्तनु कुरु । तेनाप्यारोप्य चक्रभ्रमं टंकेनासौ तष्ट इति वार्ता । अपरः पश्चिमः । पारावारः समुद्रः । चकाण जुगुञ्ज । चञ्चरीका भ्रमराः ।

था । धुली हुई अपनी आँखों की सफेदी से उन्होंने शरत्काल के चन्द्रमा की किरणों से खिले हुए कुमुद के दलों की बलि भेंट करके मानों दिग्देवताओं की अर्चना की । चतुः-शाल की वितर्दिका में रखी हुई बड़े-बड़े पावे वाली, सिरहाने रखे हुए तकिये से युक्त चौकी पर चुपचाप पड़ गए ।

देव हर्ष भी उसी प्रकार स्नान करके जमीन पर बिछे हुए कम्बल पर फैल कर उनके कुछ ही दूर पर मौन होकर बैठे । दुःख से भरे हुए अपने बड़े भाई को देख-देख कर उनका हृदय मानों हजारों टुकड़ों में बिखर गया । भाई को देखने से शोक और भी जवान हो जाता है (बढ़ जाता है) । लोगों के लिए वह दिन राजा के मृत्युदिवस से भी अधिक दुखद हो गया । सारे नगर में न किसी ने पकाया, न किसी ने स्नान किया और न किसी ने भोजन किया । सब जगह सबने रुदन किया । केवल इसी क्रम में वह सारा दिन चला गया । मानों विश्वकर्मा की टाँकी से अभी-अभी छाँटे

ध्यमानं बबन्ध बन्धाविव विबुद्धबन्धूकभासि भास्वति साम्रां दृशं चक्रवाकचक्रवालम्। संचरन्त्याः समधुकररवं कैरवाकरं कलहंसरमणीरमणीयं माणिक्यकाञ्चीकिङ्किणीजालमिवाचकाण श्रियः। प्रकटकलङ्कमुदयमानं विशङ्कटविषाणोत्कीर्णपङ्कसंकरशंकरबकुरशाकरककुदकूटसंकाशमकाशताकाशे शशाङ्कमण्डलम।

अस्यां च वेलायामनतिक्रमणीयवचनैरुपसृत्य प्रधानसामन्तैर्विज्ञाप्यमानः कथं कथमप्यभुक्त। प्रभातायां च शर्वर्यां सर्वेषु प्रविष्टेषु राजसु समीपस्थितं हर्षदेवमुवाच—'तात! भूमिरसि गुरुनियोगानाम्। शैशव एवाग्राहि गुणवत्पताकेव भवता तातस्य चित्तवृत्तिः। यतो भवन्तमेवंविधं विधेयं विधिविधानोपनतनैर्घृण्यमिदं किमपि बिभणिषति मे हृदयम्। नावलम्बनीया बालभावसुलभा प्रेमविलोमा वामता। वैधेय इव मा कृथाः

'कादम्बः कलहंसः स्यात्'। आचकाण चुकूज। कैरवाकरं संचरन्त्याः श्रियः किङ्किणीजालमिव चुकूजेत्युत्प्रेक्षा। विशङ्कटो विशालः। बकुरस्तरुणः। शक्करो दान्तः।

भातुं प्रवृत्ता प्रभाता तस्याम्। नियोग आदेशः। विधेयमायत्तम्। बिभणिषति कथयितुमिच्छति। विलोमाऽननुकूला। वामता प्रतिकूलता। वैधेयो मूर्खः।

गए शरीर वाले, निकलते हुए रुधिर और मांस से लाल, मंजीठे के समान वर्ण वाले सूर्य पश्चिम के जल में डूबने लगे। कमल के सरोवर में भौंरे बंद होती हुई कमलिनी के कोश में विकल होकर आवाज करने लगे। निकट में होने वाले विरहरूपी व्याधि से पीड़ित अपनी पत्नियों को देख कर दुखी चक्रवाक पक्षियों ने विकसित बन्धूक के समान लाल वर्ण वाले बन्धु की भाँति सूर्य में अपनी डबडबाई आँखें लगा दीं। भौरों की गुंजार और कलहंसियों की आवाज से भरा हुआ कुमुद का सरोवर ऐसा लग रहा था मानों वहाँ संचरण करती हुई लक्ष्मी की माणिक्यकांची में गुथी हुई किंकिणियाँ बज रही हों। आकाश में स्पष्ट कलंक वाला चन्द्रमण्डल कठोर सींग से उछाली हुई मिट्टी से सने हुए शिवजी के तगड़े वृषभ की पीठ पर के ककुद (टाट) की भाँति उदित होने लगा।

इसी अवसर पर प्रधान सामन्तों ने जिनकी बात टाली नहीं जाती थी, पहुँच कर बड़ा समझाया-बुझाया तो राज्यवर्धन ने किसी किसी प्रकार भोजन किया। रात बीती तो सब राजा लोग जुट आए और तब उन्होंने समीप में बैठे हुए देव हर्ष से कहा—'तात, भारी आदेशों के तुम योग्य हो। शैशवकाल में गुणवान् जनों की पताका के समान तात की चित्तवृत्ति को तुमने प्रभावित कर लिया था। इसीलिए इस प्रकार के आयत्त रहने वाले तुम से दैव की इच्छा से प्राप्त वैराग्य वाला मेरा यह हृदय कुछ कहना चाहता है।

प्रत्यूहमीहितेऽस्मिन्। शृणु न खलु न जानासि लोकवृत्तम्। लोकत्रय-त्रातरि मांधातरि मृते किं न कृतं पुरुकुत्सेन? भ्रूलतादिष्टाष्टादशद्वीपे दिलीपे वा रघुणा। महासुरसमरमध्याध्यासितत्रिदशरथे दशरथे वा रामेण। गोष्पदीकृतचतुरुदन्वदन्ते दुष्यन्ते वा भरतेन। तिष्ठन्तु तावत्ते तातेनैव शतसमधिकाधिगताध्वरधूमविसरधूसरितवासववयसि सुगृहीतनाम्नि तत्रभवति परासुतां गते पितरि किं नाकारि राज्यम्? यं च किल शोकः समभिभवति तं कापुरुषमाचक्षते शास्त्रविदः। स्त्रियो हि विषयः शुचाम्। तथापि किं करोमि। स्वभावस्य सेयं कापुरुषता वा स्त्रैणं वा यदेवमास्पदं पितृशोकहुतभुजो जातोऽस्मि। मम हि भूभृति पर्यस्ते निरवशेषतः प्रस्रवणानीव स्रुतान्यश्रूण्यस्तमिते महति तेजस्यन्धकारीभूतदशाशस्य प्रनष्टः प्रज्ञालोकः, प्रज्वलितं हृदयम्, आत्मदाहभीत इव स्वप्नेऽपि नोपसर्पति विवेकः, बलीयसा संतापेन जातुषमिव विलीनमखिलं धैर्यम, पदे पदे

धूमेन मलिनीक्रियते। स्त्रैणे स्त्रीत्वे। परासुता मरणम्। मम ह्रीत्यादिवाक्यद्वये श्लेषो व्याख्येयः। प्रस्रवणानि निर्झराः। जतुनो विकारो जातुषम्। 'त्रपुजतुनोः षुक्'।

बालभाव में सुलभ होने वाली प्रतिकूलता का अवलम्बन न करना। मेरी इस चाह में विचारमूढ़ के समान विघ्न न उत्पन्न करना। सुनो, क्या लोकव्यवहार नहीं जानते? त्रिभुवन की रक्षा करने वाले मान्धाता के मरने पर पुरुकुत्स ने क्या नहीं किया? या भ्रूभङ्ग के द्वारा अट्ठारह द्वीपों को आदेश देने वाले दिलीप के बाद रघु ने क्या नहीं किया? या दैत्यों के साथ युद्ध के बीच देवरथ को स्थापित करने वाले राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् राम ने क्या नहीं किया? चारों समुद्रों के छोर को गोष्पद बनानेवाले दुष्यन्त के बाद भरत ने क्या नहीं किया? उन लोगों की बात जाने दो, सैकड़ों यज्ञों के धूम से इन्द्र की आयु को धूसरित कर देनेवाले सुगृहीतनाम अपने पूज्य पिताजी की मृत्यु के बाद हमारे पिताजी ने क्या राज्य नहीं किया? जिस व्यक्ति को शोक अभिभूत कर देता है उसे शास्त्रज्ञ लोग कायर कहते हैं। शोक स्त्रियों में उत्पन्न होता है। तब भी मैं क्या करूं? मेरे स्वभाव की यह कायरता हो या मेरा स्त्रीभाव हो, मैं तात की शोकाग्नि में पड़ गया हूँ। राजा के अस्त होने पर मेरे आँसू झरने के समान झरते रहे। महान् तेज के अस्त हो जाने पर मेरे लिए दिशाओं में अंधेरा छा गया और मेरा प्रज्ञालोक जाता रहा। मेरा हृदय जल गया। मेरा विवेक अपने भी जल जाने के भय से मानों स्वप्न में भी पास नहीं आता। प्रबल संताप के कारण मेरा सारा धैर्य लाह की भांति गल गया। मेरी मति पदे-पदे विषैले बाण से हती हुई हरिणी के समान मूर्च्छित

दिग्धरोपाहतेव हरिणी मुह्यति मतिः, पुरुषद्वेषिणीव दूरत एव भ्रमति परिहरन्ती स्मृतिः, अम्बेव तातेनैव सह गता धृतिः, वार्धुषिकप्रयुक्तानीव धनानीव प्रतिदिवसं वर्धन्ते दुःखानि, शोकानलधूमसंभारसंभूताम्भोधरभरितमिव वर्षति नयनवारिधाराविसरं शरीरम्। सर्वः पञ्चजनः पञ्चत्वमुपगतः प्रयाति। वितथमेतद्वदति बालो लोकः। तातो हुताशनतामेव केवलामापन्नोऽपि नैवं दहति माम्। अन्तस्तदेवमिदमसांपरायिकमिव हृदयमवष्टभ्य व्युत्थितः शोको दुर्निवारो वाडव इव वारिराशिम्, पविरिव पर्वतम्, क्षय इव क्षपाकरम्, राहुरिव रविम्, दहति दारयति तनूकरोति कवलयति च माम्। कामं न शक्नोति मे हृदयं तादृशस्य सुमेरुकल्पस्य कल्पमहापुरुषस्य विनिपातमश्रुबिन्दुभिरेव केवलैरतिवाहयितुम्। राज्ये

पदे शब्दे, क्रमे च। दिग्धो विषलिप्तः शरः। उक्तं च—'बाणे विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ' इति। मेरुर्महीधरवद्रोपशब्दः प्रशंसार्थः। वृद्ध्या जीवति वार्धुषिकः वणिक्। वृद्धेर्वृधुषीभावः। पञ्चजनः पञ्चमहाभूतानि, मनुष्यश्च। उक्तं च—'स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नराः' इति। पञ्चत्वं मरणम्। वितथमिति। पञ्चसु पृथिव्यादिषु लयात्पुरुषस्तादूप्यं प्रतिपद्यत इत्यलीकम्। यतस्तत इत्याद्यग्निमात्रप्रतिबद्धकार्यदर्शनादित्यर्थः। आपत्कष्टम्। क्लेश इत्यर्थः। संपरायः सङ्ग्रामः। तस्मै यन्न भवति तदसांपरायिकम्। सभयं यः किल भीतः स कथं व्युत्थितं निवारयेत्। वाडव इत्यादयो दहतीत्यादिभिर्यथाक्रमं योज्याः। पविर्वज्रः। कल्पतेऽस्मादभीष्टार्थं

हो रही है। मेरी स्मृति मुझे छोड़ कर दूर ही दूर चक्कर मार रही है मानों पुरुष से उसका द्वेष हो। अम्बा के समान मेरी धृति पिता के साथ ही चली गई। बनिया के धन के समान मेरे दुःख बढ़ते ही जा रहे हैं। शोक की अग्नि का धूमसम्भार मेघ के रूप में शरीर में भर गया है और आंखों से जलधारा बरस रही है। सारे महाभूत अपने-अपने भाग में मिलते जारहे हैं। यह बालप्रकृति के लोग मिथ्या बोलते हैं। तात केवल अग्नि में मिल कर ही मुझे नहीं जला रहे हैं। भीतर ही भीतर लड़ने में असमर्थ के समान मेरे हृदय को दबा कर उठा हुआ दुर्निवार शोक उस प्रकार जला रहा है जैसे वडवानल समुद्र को, उस प्रकार विदीर्ण कर रहा है जैसे वज्र पर्वत को, उस प्रकार कृश कर रहा है जैसे क्षय चन्द्रमा को, उस प्रकार निगल रहा है जैसे राहु सूर्य को। निश्चय ही सुमेरुसदृश उस प्रकार के युगपुरुष के विनाशजन्य शोक को मेरा हृदय केवल आँसू की बूँदों से कम नहीं कर सकता। चकोर के समान मेरी आँखें विषतुल्य राज्य से विरक्त हो गई। राज्यलक्ष्मी को उस प्रकार त्याग देने का मन करता है

विष इव चकोरस्य मे विरक्तं चक्षुः। बहुमृतपटावगुण्ठनां रञ्जितरङ्गां जनंगमानामिव वंशबाह्यामनार्यां श्रियं त्यक्तुमभिलषति मे मनः। क्षणमपि दग्धगृहे शकुनिरिव न पारयामि स्थातुम्। सोऽहमिच्छामि मनसि वाससीव सुलग्नं स्नेहमलमिदममलैः शिखरिशिखरप्रस्रवणैः स्वच्छस्रोतोम्बुभिः प्रक्षालयितुमाश्रमपदे। यतस्त्वमन्तरितयौवनसुखामनभिमतामपि जरामिव पुरुराज्ञया गुरोर्गृहाण मे राज्यचिन्ताम्। त्यक्तसकलबालक्रीडेन हरिणेव दीयतामुरो लक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्।' इत्यभिधाय च खड्गग्राहिणो हस्तादादाय निजं निस्त्रिंशमुत्ससर्ज धरण्याम्।

अथ तच्छ्रुत्वा निशितशिखेन शूलेनेवाहतः प्रविदीर्णहृदयो देवो

इति कल्पः। चकोरः क्रकचः। तस्य विषे दृष्टे अक्षिणी विरज्येते। मृतस्य पटः। अवगुण्ठनं मस्तकाच्छादनम्। रङ्गः समाजः। जनंगमश्चण्डालः। उक्तं च—'चण्डालप्लवमातङ्गदिवाकीर्तिजनंगमाः। निषादश्वपचावन्तेवासिचण्डालपुक्कसाः॥' इति। वंशोऽभिजननं प्रबन्धो वेणुश्च। बाह्या बहिर्भूता, वहनीया च। शकुनिर्गृहचटिका। गृहशारिकेत्यन्ये। स्नेहः प्रेम, तैलादिश्च। यतस्त्वमिति। पुरा ययातिः शुक्रदुहितरं देवयानीमवमन्य देवयान्या दासीभूतां शर्मिष्ठामसक्तन्मिथ्याकामयानेन शुक्रेण जरां यास्यसीति शप्तः, प्राप्तजरादुःखो विषयलम्पटोऽन्यपुत्रैरगृहीतां जरां पुरौ स्वपुत्रे कृताभ्युपगमे संक्रमयांबभूवेति वार्ता। जराप्यन्तरितयौवनसुखाऽनभिमता च। गुरोर्ययातेरपि। मामन्तरेण मां विना, मय्यसंनिहित इत्यर्थः।

जैसे बहुत से मरे लोगों के रंग-बिरंगे कफन के घूंघट से सजाई हुई, लोगों का मन बहलाने वाली, बाँस के ऊपर लगी हुई टेसू की पुतली को डोम लोग फेंक देते हैं। इस जले हुए घर में पक्षी के समान मैं क्षण भर भी नहीं रह सकता। आश्रम में रह कर मैं मन के वस्त्र में लगे हुए स्नेह जैसे इस मल को पर्वतों के शिखर से प्रवाहित होते हुए निर्मल झरनों के जल से धो देना चहता हूं। जैसे पुरु ने पिता की आज्ञा से यौवनसुख से रहित और अप्रिय वार्धक्य को स्वीकार किया उसी प्रकार तुम मेरी राज्यचिन्ता ग्रहण कर लो। कृष्ण के समान सारी बालक्रीड़ाओं को अब छोड़ कर दाबने के लिए लक्ष्मी को अपनी जाँघ दो। मैंने शस्त्र का अब परित्याग ही कर दिया।' यह कह कर उन्होंने दाहिने हाथ से उठाकर अपनी तलवार जमीन पर रख दी।

यह सुनते ही चोखे शूल से आहत हुए की तरह देवहर्ष का हृदय विदीर्ण हो गया। उनके मन में अनेक प्रकार के विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ—'क्या मेरी अनुपस्थिति में डाह के कारण देख न पाने वाले किसी खल ने आर्य से मेरे प्रति कुछ कह दिया, जिससे कुपित हों। या इस प्रकार मेरी परीक्षा ले रहे हैं। या तात के शोक से उत्पन्न

हर्षः समचिन्तयत्—'किं नु खलु मामन्तरेणार्यः केनचिदसहिष्णुना किंचिद्ग्राहितः कुपितः स्यात्। उतानया दिशा परीक्षितुकामो माम्। उत तातशोकजन्मा चेतसः समाक्षेपोऽयमस्य। आहोस्विदार्य एवायं न भवति, किं वार्येणान्यदेवाभिहितमन्यदेवाश्रावि मया शोकशून्येन श्रवणेन्द्रियेण। आर्यस्य चान्यद्विवक्षितमन्यदेवापतितं मुखेन। अथवा सकलवंशविनाशाय निपातनोपायोऽयं विधेः। मम वा निखिलपुण्यपरिक्षयोपक्षेपः। कर्मणामननुकूलसमग्रग्रहचक्रवालविलसितं वा। अथवा तातविनाशनिःशङ्ककलिकालक्रीडितं येनायं यः कश्चिदिव यत्किंचनकारिणं मामपुण्यभूतिवंशसंभूतमिव, अतातनयमिव, अनात्मानुजमिव, अभक्तमिव, अदृष्टदोषमपि श्रोत्रियमिव सुरापाने, सद्भृत्यमिव स्वामिद्रोहे, सज्जनमिव नीचोपसर्पणे, सुकलत्रमिव व्यभिचारे, अतिदुष्करे कर्मणि समादिष्टवान्। तदेतत्तावदनुरूपं यच्छौर्योन्मादमदिरोन्मत्तसमस्तसामन्तमण्डलसमुद्रमथनमन्दरे तादृशि पितरि मृते तपोवनं वा गम्यते वल्कलानि वा गृह्यन्ते तपांसि वा सेव्यन्ते। या तु मयि राजाज्ञा सा

श्रोत्रियो वेदपारगः। धन्वनि मरौ। धन्वन्यपि दग्धे राजाज्ञापि दाहकारिणी।

यह इनके चित्त की व्याकुलता है। या आर्य यह नहीं हो सकते, क्या यही बात है कि आर्य ने कुछ दूसरा ही कहा और शोक के कारण शब्दग्रहण की क्षमता से रहित कर्णेन्द्रिय से रहित मैंने कुछ दूसरा ही सुना। आर्य ने कुछ दूसरी बात कहना चाहा और मुँह से कुछ दूसरी बात निकल गई। अथवा विधिने सारे वंश के विनाश के लिए ध्वंस का उपाय रचा है। या मेरे सारे पुण्यों के क्षीण हो जाने का यह प्रसंग है? या प्रतिकूल होकर एकत्र हुए सारे ग्रहों के ये काम हैं। या तात के अब न रहने से कलिकाल निःशंक होकर क्रीड़ा कर रहा है जिससे जिसी किसी के समान आर्य ने स्वेच्छा से आचरण करने वाले मुझे अत्यन्त दुष्कर कार्य करने के लिए उस प्रकार आदेश दिया है जैसे मैं पुष्यभूति के वंश में उत्पन्न ही नहीं, तात का पुत्र ही नहीं, अपना भाई ही नहीं, या सेवक ही नहीं। बिना किसी दोष के ही श्रोत्रिय के समान सुरापान में, सद्भृत्य के समान स्वामिद्रोह में, सज्जन के समान नीच के पास जाने में, कुलकलत्र के समान व्यभिचार में जैसे मुझे लगा दिया है। यह तो अच्छा ही है जो शौर्य के उन्माद की मदिरा से उन्मत्त समस्त सामन्तमण्डल का मंदर के समान मंथन करने वाले तात की मृत्यु के बाद तपोवन में रहा जाय, या वल्कल धारण किया जाय, या तपस्या की जाय।

दग्धेऽपि दाहकारिणी मय्यवग्रहग्लपिते धन्वनीवाङ्गारवृष्टिः। तदसदृशमिदमार्यस्य। यद्यपि च विभुरनभिमानः, द्विजातिरनेषणः, मुनिररोषणः, कपिरचपलः कविरमत्सरः, वणिगतस्करः, प्रियजानिरकुहनः, साधुरदरिद्रः, द्रविणवानखलः, कीनाशोऽनक्षिगतः, मृगयुरहिंस्रः, पाराशरी ब्राह्मण्यः, सेवकः सुखी, कितवः कृतज्ञः, परिव्राडबुभुक्षुः, नृशंसः प्रियवाक्, अमात्यः सत्यवादी, राजसूनुरदुर्विनीतश्च जगति दुर्लभः, तथापि ममार्य एवाचार्यः। को हि नाम तद्विधे निपतिते राजगन्धकुञ्जरे जनयितरि चेदृशे विफलीकृतविशालशिलास्तम्भोरुभुजे भूभुजि भ्रातरि त्यक्तराज्ये ज्यायसि नववयसि तपोवनं गच्छति सकललोकलोचनजलपाताऽपवित्रं मृद्गोलकं वसुधाभिधानं धनमदखेलनिखिलखलमुखविकारलक्षणाख्यायमाननीचाचरणां श्रीसंज्ञिकां सुभटकुटुम्बकर्मकुम्भदासीं चण्डालोऽपि

अनेषणो निरभिलाषः। प्रिया जाया यस्य। 'जायाया निङ्'। कुहना ईर्ष्या, शङ्का वा। कीनाशः क्षुद्रः। उक्तं च—'कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रकार्षिकयोस्त्रिषु'। अनक्षिगतः प्रियः। मृगयुर्व्याधः। पाराशरी भिक्षुः। कितवो द्यूतकृत्। गोप्यो दासः।

जो राज्य करने की मुझ पर आज्ञा है वह अनावृष्टिसे सूखा पड़े हुए मरु के समान स्वयं दग्ध और विघ्नों से क्षीण मुझ पर दाह करने वाली अङ्गार की वर्षा है। तो यह कथन आर्य के सदृश न था। यद्यपि जिसमें अभिमान न हो ऐसा अधिकारी, जिसमें एषणा न हो ऐसा द्विजाति, जिसमें रोष न हो ऐसा मुनि, जिसमें चपलता न हो ऐसा कपि, जिसमें मत्सर न हो ऐसा कवि, जो बेईमानी न करे ऐसा वणिक्, जो छलिया न हो ऐसा प्रिय, जो दरिद्र न हो ऐसा सज्जन, जो खल न हो ऐसा धनी, जो द्वेष न करता हो ऐसा क्षुद्र, जो हिंसा न करता हो ऐसा शिकारी, जो ब्राह्मणद्वेषी न हो ऐसा पाराशरी भिक्षु, जो सेवक हो ऐसा सुखी, जो धूर्त हो ऐसा कृतज्ञ, जो भीख मांगता न हो ऐसा परिव्राट्, जो प्रिय बोलता हो ऐसा क्रूर, जो सत्यवादी हो ऐसा कूटनीतिज्ञ मंत्री, और जो दुर्विनीत न हो ऐसा राजपुत्र संसार में दुर्लभ है। मेरे उपदेशक आचार्य तो आर्य ही हैं। कौन ऐसा है जो उन गन्धहस्ती के समान महाराज पिता श्री के चले जाने पर और शिलास्तम्भ के समान विशाल भुज को विफल करके राज्य छोड़ कर बड़े भाई के तपोवन चले जाते समय लोगों के आँसू से अपवित्र पृथिवी नामक मिट्टी के गोले को एवं धनमद की क्रीड़ा में निखिल दुष्टजनों के मुख को विकृत कर देने से विख्यात नीच आचरण वाली लक्ष्मीसंज्ञक सुभटों के काम करने वाली कुम्भदासी (पनभरिन) की चाण्डाल होकर

कामयेत। कथमित्र संभावितमत्यन्तमनुचितमिदमार्येण। किमुपलक्षितमनवदातमिदं मयि। किं वास्य चेतसश्च्युतः सौमित्रिर्विस्मृता वा वृकोदरप्रभृतयः। अनपेक्षितभक्तजना स्वार्थैकनिष्पादनैनिष्ठुरा नासीदियमार्यस्येदृशी प्रभविष्णुता। अपि चार्ये तपोवनं गते जिजीविषुः को मनसापि महीं ध्यायेत। कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि वनविहाराय विनिर्गते निवासं गिरिगुहां कः पाति पृष्ठतः। प्रतापसहाया हि सत्त्ववन्तः। कश्चपलां राजलक्ष्मीं प्रत्यनुरोधोऽयमार्यस्य यदियमपि न चीवरान्तरितकुचा कुशकुसुमसमित्पलाशपूलिकां वहन्ती तत्रैव तपोवने वनमृगीव नीयते जराजालिनी। किंवा ममानेन वृथा बहुधा विकल्पितेन तूष्णीमेवार्यमनुगमिष्यामि। गुरुवचनातिक्रमकृतं च किल्बिषमेतत्तपोवने तप एवापास्यति।' इत्यवधार्य मनसा प्रथमतरं गतस्तपोवनमधोमुखस्तूष्णीमवातिष्ठत्।

राजसूनुरदुर्विनीतश्चेत्येतत्प्रस्तावेन तदुक्तम्। खेलाः सविलासाः। अनवदातं निर्मलम्। सौमित्रिर्लक्ष्मणः। वृकोदरो भीमसेनः। प्रचयः समूहः। चपेटा करतलाघातः। वनमृग्यपि कुशादि वहति। जालिनी मायिनी।

कामना करे ? कैसे इस अत्यन्त अनुचित विचार को आर्य ने स्वीकार कर लिया ? क्या उनके मन में लक्ष्मण नहीं रहे, या भीम आदि छोटे भाई विस्मृत हो गए ? अपने भक्तजनों की परवाह न करने वाली, अपने ही स्वार्थ के निष्पादन करने में निष्ठुर आर्य की यह प्रभुता पहले न थी। अगर आर्य तपोवन में चले जाते हैं तब जीने की इच्छा रखने वाला कौन मन से भी पृथिवी की चिन्ता रखे ! वज्र के समान अपने नखों के प्रचण्ड चाँटे से मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर देने से उत्पन्न मदधारा से भींग हुए केसर के कारण भास्वर मुख वाले सिंह के वन-विहार के लिए निकल जाने पर पीछे कौन उसके निवासस्थान कन्दरा की रक्षा करे ? महानुभाव लोग प्रताप की सहायता लेते हैं। चंचल स्वभाव वाली राजलक्ष्मी के प्रति आर्य का कैसा यह आग्रह है कि चीवर से ढंके स्तनों वाली और कुश, कुसुम, समिधा एवं पलाश की पूली ढोने वाली वनमृगी के समान अति जर्जर इसे वहीं तपोवन में साथ नहीं ले जाते ? इस तरह के मेरे बहुत संकल्प-विकल्प से क्या मतलब ? मैं तो चुपचाप आर्य के पीछे चल दूँगा। गुरुवचनों के पालन न करने से उत्पन्न पाप को तपोवन में तप ही दूर करेगा।' ऐसा निश्चय करके मन से तपोवन में पहले ही पहुँचे हुए हर्ष मुँह नीचा किए चुपचाप बैठे रहे।

अत्रान्तरे पूर्वादिष्टेनैव रुदता वस्त्रकर्मान्तिकेन समुपस्थापितेषु वल्कलेषु, निर्दयकरतलताडनभियेव क्वापि गते हृदये, रटति राजस्त्रैणे, तारमब्रह्मण्यमूर्ध्वदोष्णि विरुदति विप्रजने, पादप्रणतिपरे फूत्कुर्वति पौरवृन्दे, विद्राति विद्रुतचेतसि चिरंतने परिजने, परिजनावलम्बिते, गते वर्षीयसि, वेपमानवपुषि, पर्याकुलवाससि, शोकगद्गदवचसि, विगलितनयनपयसि, निवारणोद्यतमनसि, विशति बन्धुवर्गे, निराशेषु नखलिखितमणिकुट्टिमेष्ववाङ्मुखेषु निःश्वसत्सु सामन्तेषु, सबालवृद्धासु तपोवनाय प्रस्थितासु सर्वासु प्रजासु सहसैव प्रविश्य शोकविक्लवः प्रक्षरितनयनसलिलो राज्यश्रियः परिचारकः संवादको नाम प्रज्ञाततमो विमुक्ताक्रन्दः सदस्यात्मानमपातयत्।

अथ संभ्रान्तो भ्रात्रा सह स्वयं देवो राज्यवर्धनस्तं पर्यपृच्छत्—'भद्र ! भण भण किमस्मद्व्यसनव्यवसायवर्धनबद्धधृतिः, अवनिपतिमरणमुदित-

---

अत्रेत्यादौ। संवादको नाम सदस्यात्मानमपातयदिति संबन्धः। कर्मान्तिकोऽधिकृतः। करतलताडनेति। करतलताडनं हृदये वा। स्त्रैणे स्त्रीसमूहे। 'अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ।' फूत्करणमुद्दामरोदध्वनिः। विद्रातिः कुत्सितः। गते प्राप्ते। वर्षीयसि वृद्धतरे।

इसी बीच पहले ही सहेजे हुए वस्त्रकर्मान्तिक (सरकारी तोशेखाने का अधिकारी) ने रोते हुए वल्कल हाजिर किया। हृदय मानों हाथों के निर्दय ताड़न के डर से कहीं चला गया। महल की स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं। ब्राह्मण लोग हाथ उठा कर जोर से 'हमारा त्याग न करो' इस प्रकार पुकारने लगे। नागरिक लोग पैर पर बार-बार गिर-गिर कर घिघियाने लगे। पुराने सेवक विचलित मन से दौड़ पड़े। बड़े-बूढ़े बाँधव लोगों ने भीतर प्रवेश किया, उन्हें परिजनों ने सम्हाल रखा था, उनके शरीर कांप रहे थे, वस्त्र भी इधर-उधर गिर रहा था, शोक से उनकी वाणी गद्गद थी, नेत्रों से आँसू ढल रहे थे, राज्यवर्धन को रोकने के लिए उनके मन में व्यग्रता थी। सामन्त लोग निराश होकर मुँह नीचा किए नख से मणिकुट्टिम पर कुछ लिख रहे थे और आह भर रहे थे। लड़के से बूढ़े तक सारी प्रजा तपोवन में जाने के लिए प्रस्थान करने लगी। उसी समय सहसा शोक से व्याकुल, नेत्र से आँसू ढालता हुआ राज्यश्री का संवादक नाम का अत्यन्त परिचित परिचारक रोता-पीटता सभा में आकर गिर पड़ा।

तब भाई के साथ घबड़ा कर देव राज्यवर्धन ने उससे पूछा—'हमारे दुःख के व्यापार को बढ़ाने में निश्चल धैर्यवाला, राजा की मृत्यु से प्रसन्न विधि अधीर बना देने वाला

मतिः, अधृतिकरमपरमधिकतरमितो दुःखातिशयं समुपनयति विधिः' इति। स कथं कथमप्यकथयत्—'देव! पिशाचानामिव नीचात्मनां चरितानि छिद्रप्रहारीणि प्रायशो भवन्ति। यतो यस्मिन्नहन्यवनिपतिरुपरत इत्यभूद्वार्ता तस्मिन्नेव देवो ग्रहवर्मा दुरात्मना मालवराजेन जीवलोकमात्मनः सुकृतेन सह त्याजितः। भर्तृदारिकापि राज्यश्रीः कालायसनिगडयुगलचुम्बितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता। किंवदन्ती च यथा किलाऽनायकं साधनं मत्वा जिघृक्षुः सुदुर्मतिरेतामपि भुवमाजिगमिषति। इति विज्ञापिते' प्रभुः प्रभवतीति।

ततश्च तादृशमनुपेक्षणीयमसंभावितमाकस्मिकमुपरि व्यतिकरमाकर्ण्याश्रुतपूर्वत्वात्परिभवस्य, परपरिभवासहिष्णुतया च स्वभावस्य, दर्पबहुलतया च नवयौवनस्य, वीरक्षेत्रसंभवत्वाच्च जन्मनः, कृपाभूमिभूतायाश्च स्वसुः स्नेहात्स तादृशोऽपि बद्धमूलोऽप्यत्यन्तगुरुरेकपद एवास्य ननाश शोकावेगः। विवेश च सहसा केसरीव गिरिगुहागृहं गभीरहृदयं भयंकरः कोपावेगः। केशिनिषूदनशङ्काकुलकालियकुलभङ्गुरभ्रूभङ्गतरङ्गिणी श्यामायमाना यम-

कारायां बन्धने। किंवदन्ती लोकवार्ता।

केशिनिषूदनः कृष्णः। यमस्वसा यमुना। सापि कालियाकुला सतरङ्गा,

इससे बढ़ कर भी क्या दुःखातिशय उपस्थित कर रहा है?' उसने किसी प्रकार कहा—'देव, नीच आत्मा वाले व्यक्ति पिशाचों की तरह छिद्र देख कर प्रहार करते हैं। इसी कारण जिस दिन 'महाराज शान्त हुए' यह समाचार फैला उसी दिन दुरात्मा मालवराज ने देव ग्रहवर्मा को अपने पुण्य के साथ जीवलोक से हटा दिया। भर्तृदारिका राज्यश्री को भी लोहे की बेड़ियों में जकड़ कर चोर स्त्री के समान कान्यकुब्ज के कारावास में डाल दिया है। यह खबर उड़ रही है कि सेना को नायकहीन जानकर वह दुर्बुद्धि आक्रमण करने के लिए इस ओर भी आना चाहता है। मेरे इस निवेदन में अब आप ही समर्थ हैं।'

तब उस प्रकार के अपने ऊपर उपेक्षा न करने योग्य, जिसकी कोई सम्भावना न थी ऐसे आकस्मिक व्यसन को सुन कर अपना परिभव पहले पहल सुनने के कारण, दूसरे द्वारा किया गया अपना परिभव न सहन करने वाले स्वभाव के कारण, कृपा के पात्र बहन के स्नेह से राज्यवर्धन का बद्धमूल भी अत्यन्त गुरुभूत उस प्रकार का शोकावेग एक ही क्षण में नष्ट हो गया। जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है उसी प्रकार उनके हृदय में भयंकर कोप का आवेग प्रविष्ट हुआ। कृष्ण के भय से व्याकुल कालियनाग

स्वसेव प्रथीयसी ललाटपट्टे भीषणा भ्रुकुटिरुदभिद्यत। दर्पात्परामृशन्नख-किरणसलिलनिर्झरैः समरभारसंभावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भ-कूटविकटस्य बाहुशिखरकोशस्य वामः पाणिपल्लवः। संगलत्स्वेदसलिल-पूरितोदरो निर्मूलं मालवोन्मूलनाय गृहीतकेश इव दुर्मदश्रीकचग्रहोत्क-ण्ठयेव च कम्पमानः पुनरपि समुत्ससर्प भीषणं कृपाणं पाणिरपरः शस्त्र-ग्रहणमुदितराजलक्ष्मीक्रियमाणदिष्टवृद्धिविधुतसिन्दूरधूलिरिव कपिलः कपो-लयोरदृश्यत रोषरागः। समासन्नसकलमहीपालचूडामणिचक्राक्रमणजाता-हंकार इव च समारुरोह वाममूरुदण्डमुत्तानितश्चरणो दक्षिणः। निष्ठुरा-

---

श्यामायमाना च। परामृशन्नित्यर्थाद्बाहुशिखरमेव। कोशो दिव्यम्। उक्तं च—'कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः' इति कोशकारः। पाणिः सलिलपूरितोदरो भवति। कचाः केशाः। यश्च कामी कामिनीकचग्रहणं प्रत्युत्कण्ठते स

के रूप में भङ्गुर भ्रूभङ्ग रूपी तरङ्गों वाली श्यामवर्ण यमुना नदी के समान भीषण भ्रुकुटि उद्भिन्न हो गई। उनका बायाँ पाणिपल्लव दिग्गज के कुम्भ कूट के समान विकट स्कन्ध-देश के खड्ग कोश का स्पर्श करता हुआ युद्धभार के ग्रहण से पूर्व नखकिरणों की जल-धार से मानों अभिषेक करने लगा[1]। उसका दाहिना हाथ पसीने से भर गया और मालव के निर्मूल विनाश के लिए मानों दुर्मद श्री के बालों को पकड़ने की उत्कंठा से काँपता हुआ भीषण कृपाण की ओर बार-बार बढ़ने लगा। उनके कपोलों पर कपिल वर्ण का रोषराग इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा मानों उसके शस्त्रग्रहण से प्रसन्न राज्यलक्ष्मी अपनी भाग्यवृद्धि मान कर सिन्दूर की धूल उड़ाने लगी हो। उसका दाहिना चरण पास में बैठे हुए समस्त राजाओं की चूड़ामणियों पर प्रतिबिम्ब के रूप में आक्रमण करने से

१. श्री अग्रवाल जी ने इस कूटश्लेष के तीन अर्थ किए हैं—(१) म्यान के पक्ष में—राज्यवर्धन का बायाँ हाथ दाहिनी ओर कमर में खोंसी हुई भुजाली की मूठ पर गया जो गजमस्तक के अलंकरण से सुशोभित था। यों उस हाथ की नखकिरणों ने युद्ध का बोझा उठाने में समर्थ उस म्यानबंद भुजाली का मानों जलधाराओं से सम्मानपूर्ण अभिषेक किया। (२) दिव्यपरीक्षा के पक्ष में—गजमस्तक की तरह विकट मुट्ठी बँधा हुआ बायाँ हाथ दिव्यपरीक्षा के समय दाहिनी मुट्ठी को अपनी नखकिरणों से मानों मरणपर्यन्त दंड की सम्भावना का अभिषेक करा रहा था। (३) अभिधर्मकोशग्रन्थ के पक्ष में—दिङ्नाग के मस्तक की कूटकल्पनाओं से विकट बना हुआ जो वसुबन्धु का अभिधर्मकोश ग्रन्थ का भावनामय (विचारों के द्वारा) ऐसा स्नान कराती थी जिससे शास्त्रार्थरूपी युद्धों के मचने से रसहीनता आ जाती थी। (पृ. १२१-१२३ हर्ष. सां. अ.)

ङ्गुष्ठकषणनिष्ठ्यूतधूमलेखो निर्वीरोर्वीकरणाय विमुक्तशिख इव लिलेख मणिकुट्टिममितरः पादपद्मः। दर्पस्फुटितसरसव्रणोच्छलितरुधिरच्छटावसेकैः शोकविषप्रसुप्तं प्रबोधयन्निव पराक्रममनुजमवादीत्—'आयुष्मन्! इदं राजकुलम्, अमी बान्धवाः, परिजनोऽयम्, इयं भूमिः, भूपतिभुजपरिघपालिताश्चैताः प्रजाः, गतोऽहमद्यैव मालवराजकुलप्रलयाय। इदमेव तावद्वल्कलग्रहणमिदमेव तपः शोकापगमोपायश्चायमेव यदत्यन्ताविनीतारिनिग्रहः। सोऽयं कुरङ्गकैः कचग्रहः केसरिणः, भेकैः करपातः कालसर्पस्य, वत्सकैर्बन्दिग्रहो व्याघ्रस्य, अलगर्दैर्गलग्रहो गरुडस्य, दारुभिर्दाहादेशो दहनस्य, तिमिरैस्तिरस्कारो रवेः, यो मौखराणां मालवैः परिभवः पुष्यभूतिवंशस्य। अन्तरितस्तापो मे महीयसा मन्युना। तिष्ठन्तु सर्व एव राजानः करिणश्च त्वयैव सार्धम्। अयमेको भण्डिरयुतमात्रेण तुरङ्गमाणामनुयातु माम्।' इत्यभिधाय चानन्तरमेव प्रयाणपटहमादिदेश।

कम्पते स्वेदवांश्च भवति। दिष्टमानन्दः। विमुक्तेति। धीराः किल रोषेण केशसंयमनमाऽरातिपरिभवप्रतीकारं न कुर्वते। भेको मण्डूकः। करपातश्चपेटादानम्। अलगर्दैर्जलसर्पैः।

मानों उत्पन्न अहंकार के कारण बायें ऊरुदण्ड पर उतान होकर चढ़ गया। बायें पैर के अंगूठे को कस के दबा कर रगड़ने से मानों पृथिवी को वीरविहीन करने के लिए धूमशिखा उत्पन्न करता हुआ मणिकुट्टिम को कुरेदने लगा। शोक के कारण विष से मूर्च्छित होकर पड़े हुए अपने पराक्रम को मानों दर्प के स्फोट से उत्पन्न उछाल मारते हुए रुधिर के छींटे डाल कर जगाते हुए छोटे भाई हर्ष से बोल उठे—'आयुष्मन्, यह राजकुल है, ये भाई-बन्धु हैं, ये परिजन हैं, यह पृथिवी है, महाराज के भुजदण्ड से पालित ये प्रजाएँ हैं, इन्हें सम्हालो, अब मैं मालवराज के वंश का नाश करने के लिए आज ही चला। मेरे लिए यही वल्कल का धारण और यही तप है और यही शोक को दूर करने का उपाय भी है कि अत्यन्त अविनीत इस शत्रु का दमन करूँ। हिरन शेर की मूंछ मरोड़ना चाहता है, मेढ़क काले सांप को तमाचा लगाना चाहता है, बछड़ा बाघ को बंदी बनाना चाहता है, डोड़बा सांप गरुड़ की गर्दन टीपना चाहता है, ईंधन स्वयं अग्नि को जलाना चाहता है, अन्धकार सूर्य का तिरस्कार करना चाहता है—यह जो मालवों ने पुष्यभूतिवंश का अपमान किया है। इस महान् क्रोध के कारण अब मेरा ताप मिट गया है। समस्त राजगण और हाथी तुम्हारे साथ ही रहें। अकेला यह भंडि दश हजार घोड़ों

तं च तथा समादिशन्तमाकर्ण्य जामिजामातृवृत्तान्तविज्ञानप्रकोपाधानदूयमाने मनसि निर्वर्तनादेशेन दूरप्ररूढप्रणयपीड इव प्रोवाच देवो हर्षः—'कमिव हि दोषं पश्यत्यार्यो ममानुगमनेन? यदि बाल इति नितरां तर्हि न परित्याज्योऽस्मि। रक्षणीय इति भवद्भुजपञ्जरो रक्षास्थानम्, अशक्त इति क परीक्षितोऽस्मि, संवर्धनीय इति वियोगस्तनूकरोति, अक्लेशसह इति स्त्रीपक्षे निक्षिप्तोऽस्मि, सुखमनुभवत्विति त्वयैव सह तत्प्रयाति, महानध्वनः क्लेश इति विरहाग्निरविषह्यतरः, कलत्रं रक्षत्विति श्रीस्ते निस्त्रिंशेऽधिवसति, पृष्ठतः शून्यमिति तिष्ठत्येव प्रतापः, राजकमनधिष्ठितमिति तत्सुबद्धमार्यगुणैः, न बाह्यः सहायो महत इति व्यतिरिक्तमेव मां गणयति, प्रलघुपरिकरः प्रयामीति पादरजसि कोऽतिभारः, द्वयोर्गमनमसांप्रतमिति मामनुगृहाण गमनाज्ञया, कातरो भ्रातृस्नेह इति

जामिर्भगिनी। न बाह्य इति। किल य एव त्वं स एवाहमिति। कोऽसौ सहायोऽस्य। आत्मंभरिता स्वार्थमात्रपरता।

की सेना लेकर मेरे साथ चलेगा।' यह कह कर उन्होंने तुरत ही कूच का डंका बजाने का हुक्म दिया।

इस प्रकार राज्यवर्धन के आदेश को सुन कर बहन और बहनोई के वृत्तान्त से प्रचण्ड प्रकोप द्वारा आविष्ट, अपने रुक जाने के आदेश से बढ़ी हुई प्रणय की पीड़ा से मानो युक्त देव हर्ष ने कहा—'मेरे अनुगमन से आर्य कौन-सा दोष देखते हैं? यदि मैं नाबालिग हूँ तो भी परित्याग के योग्य नहीं। यदि रक्षणीय हूँ तो आर्य का भुजपंजर ही मेरी रक्षा का स्थान है। यदि मुझे असमर्थ कहें तो आर्य ने मेरी कहाँ परीक्षा ली? संवर्धन के योग्य हूँ तो आपका वियोग मुझे क्षीण कर डालता है। क्लेश को सह नहीं पाता हूँ तो यह कह कर मुझे स्त्रियों की श्रेणी में रख रहे हैं। 'सुख से रहो' यह यदि आपकी आज्ञा है तो मेरा सुख आप ही के साथ जाने के लिए तत्पर है। 'मार्ग का कष्ट महान् है' यह कहें तो आपके विरह की अग्नि ही मेरे लिए असह्य है। 'स्त्रियों की रक्षा करो' यद कहें तो आपके ही खड्ग में वह श्री निवास करती है जिससे उनकी रक्षा हो। 'पीछे कुछ नहीं' यह कहें तो आप का प्रताप पीछे-पीछे है ही। 'राजसमूह नायकहीन है' यह कहें तो आर्य के गुणों से ही वह अपने अधीन बना रहेगा। 'वीरों का सहायक कोई बाहरी नहीं होता' यदि यह कहें तो आप मुझे अलग समझ रहे हैं। 'कुछ थोड़े से ही लोगों को साथ लेकर जा रहा हूँ' अगर यह बात है तो पैर की धूल का क्या बोझ है? 'दो भाइयों का साथ जाना ठीक नहीं' तो मुझे ही जाने की आज्ञा देकर अनुगृहीत करें। 'भाई

सदृशो दोषः। का चेयमात्मंभरिता भुजस्य ते यदेकाकी क्षीरोदफेनपटलपाण्डुरममृतमिव यशः पिपासति। अवञ्चितपूर्वोऽस्मि प्रसादेषु। तत्प्रसीदत्वार्यो नयतु मामपि' इत्यभिधाय क्षितितलविनिहितमौलिः पादयोरपतत्।

तमुत्थाप्य पुनरग्रजो जगाद—'तात! किमेवमतिमहारम्भपरिग्रहणेन गरिमाणमारोप्यते बलादतिलघीयानप्यहितः। हरिणार्थमतिह्रेपणः सिंहसंभारः। तृणानामुपरि कति कवचयन्त्याशुशुक्षणयः। अपि च तवाष्टादशद्वीपाष्टमङ्गलकमालिनी मेदिन्यस्त्येव विक्रमस्य विषयः। नहि कुलशैलनिवहवाहिनो वायवः संनह्यन्त्यतितरले तूलराशौ। न सुमेरुवप्रप्रणयप्रगल्भा वा दिक्करिणः परिणमन्त्यणीयसि वल्मीके। ग्रहीष्यसि सकलपृथ्वीपतिप्रलयोत्पातमहाधूमकेतुं मांधातेव चारुचामीकरपक्षपत्रलतालंकाराङ्ककायं कार्मुकं ककुभां विजये। मम तु दुर्निवारायामस्यां विपक्षक्षपणक्षुधि क्षुभितायां क्षम्यतामयमेकाकिनः कोपकवल एकः। तिष्ठतु

अतिह्रेपणोऽत्यन्तलज्जाकारी। कवचयन्ति संनह्यन्ति। आशुशुक्षणयोऽग्नयः। अष्टमङ्गलकं कङ्कणमित्यन्ये। तूलं कार्पासः। परिणमन्ति तटाघातक्रीडां न कुर्वन्ति।

का स्नेह भय उत्पन्न कर रहा है' यह तो हम दोनों के लिए बराबर है। आपके भुजदण्ड की यह कौन सी स्वार्थपरता है जो अकेले ही क्षीरसमुद्र के फेनपटल के समान उज्ज्वल अमृत रूप यश को पी जाना चाहता है। पहले कभी भी आपने अपने प्रसाद से मुझे वञ्चित नहीं किया। अतः आर्य प्रसन्न हों और मुझे भी साथ ले चलें।' यह कहकर पृथिवी पर सिर टेकते हुए उनके चरणों पर गिर गए।

बड़े भाई ने उनको उठाकर फिर कहा—'तात, इस प्रकार बहुत बड़ी तैयारी करके बल की दृष्टि से अत्यन्त हीन उस शत्रु को बड़ाई क्यों दे रहे हो? हिरन मारने के लिए शेरों का झुण्ड ले जाना लज्जास्पद है। तिनकों को जलाने के लिए कितनी अग्नियाँ कवच धारण करेंगी। और फिर, तुम्हारे पराक्रम के लिए अठ्ठारह द्विपों की अष्टमङ्गलक माला पहनने वाली पृथिवी उपयुक्त विषय है। कुलपर्वतों को उड़ा ले जाने वाले मारुत थोड़ी सी रूई की ढेर में कमर नहीं कसते। सुमेरु से टक्कर लेने वाले दिग्गज कभी बाम्बी से नहीं भिड़ते। मान्धाता के समान दिशाओं की विजय में समस्त राजाओं के विनाश के लिये उत्पात की सम्भावना करने वाला धूमकेतु रूप और सुवर्ण की पत्रलताओं से रचित धनुष अपने हाथ से पकड़ोगे। शत्रु के विनाश को तड़फड़ा देने वाले अकेले मेरी दुर्निवार

भवान् ।' इत्यभिधाय च तस्मिन्नेव वासरे निर्जगामाभ्यमित्रम् ।

अथ तथागते भ्रातरि, उपरते च पितरि, प्रोषितजीविते च जामातरि, मृतायां च मातरि, संयतायां च स्वसरि, स्वयूथभ्रष्ट इव वन्यः करी देवो हर्षः कथं कथमप्येकाकी कालं तमनैषीत् । अतिक्रान्तेषु बहुषु वासरेषु कदाचित्तयैव भ्रातृगमनदुःखासिकया दत्तप्रजागरस्त्रिभागशेषायां त्रियामायां यामिकेन गीयमानामिमामार्यां शुश्राव—

द्वीपोपगीतगुणमपि समुपार्जितरत्नराशिसारमपि ।
पोतं पवन इव विधिः पुरुषमकाण्डे निपातयति ॥ ३ ॥

तां च श्रुत्वा सुतरामनित्यताभावनया दूयमानहृदयः प्रक्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां क्षणमिव निद्रामलभत । स्वप्ने चाभ्रंलिहं लोहस्तम्भं भज्यमानमपश्यत् । उत्कम्पमानहृदयश्च पुनः प्रत्यबुध्यत । अचिन्तयच्च—'किं नु खलु मामेवममी सततमनुबध्नन्ति दुःस्वप्नाः । स्फुरति च दिवानिश-

---

अणीयस्यतिस्वल्पे । वल्मीके पिपीलिकोत्खाते मृत्स्थले । अभ्यमित्रं शत्रुसंमुखम् ।

यामिकेन जागरानियुक्तेन । रत्नराशिर्मणिसमूहः, अब्धिश्च । तस्य साराः श्रेष्ठरत्नानि । पोतं यानपात्रम् । निपातयति व्यापादयति । अत्युन्नतमभ्रंलिहं

इस भूख में क्रोध के केवल एक ग्रास के लिए क्षमा करो, रुक जाओ ।' यह कहकर राज्यवर्धन उसी दिन शत्रु की ओर निकल पड़े ।

इस प्रकार भाई चले गये, पिताजी की मृत्यु हो गई, बहनोई ग्रहवर्मा भी न बच रहे, माता मृत्यु को प्राप्त हुई, बहन कैद में पड़ गई तो देव हर्ष ने अपने यूथ से भटके हुए बनैले गज की भाँति किसी किसी प्रकार वह समय व्यतीत किया । बहुत दिनों के बाद किसी समय भाई के चले जाने के दुःख की चिन्ता में मग्न होकर जगे-जगे उन्होंने रात के तीसरे पहर में पहरुवे द्वारा गाई हुई इस आर्या को सुना—

'सारे द्वीपों में जिसके गुणों की प्रशंसा होती है, रत्नसमूह का जो उपार्जन कर लेता है ऐसे पुरुष को विधि असमय में उस प्रकार पटक देता है जैसे वायु जहाज को ।'

यह सुनकर उनका हृदय अनित्यता की भावना से दुखी होने लगा । अभी रात कुछ बच रही थी कि क्षण भर उन्हें नींद आ गई । स्वप्न में बहुत लम्बे एक लौहस्तम्भ को टूटते हुए देखा । उनका हृदय काँपने लगा और फिर नींद टूट गई—'क्यों ये दुःस्वप्न हमेशा मेरे ही पीछे लगे हैं ! अशुभ की सूचना देने वाली मेरी बायीं आँख दिन-रात फरकती रहती है । किसी बड़े राजा के नाश को सूचित करने वाले ये दारुण उत्पात

मकल्याणाख्यानविचक्षणमदक्षिणमक्षि। सुदारुणाश्चाक्षुद्रक्षितिपक्षयमाचक्षाणाः क्षणमपि न शाम्यन्ति पुनरुत्पाताः। प्रत्यहं राहुरविकलकायबन्ध इव कबन्धवति ब्रध्नबिम्बे घटमानो विभाव्यते। तपःकरणकालकवलितानिव धूसरितसमग्रग्रहानुद्गिरन्ति धूमोद्गारान्सप्तर्षयः। दिने दिने दारुणा दिशां दाहा दृश्यन्ते। दिग्दाहभस्मकणनिकर इव निपतति नभस्तलात्तारागणः। तारापातशुचेव निष्प्रभः शशी। निशि निशि इतस्ततः प्रज्वलिताभिरुल्काभिरुग्रं ग्रहयुद्धमिव वियति विलोकयन्ति विलोलतारकाः ककुभः। राज्यसंचारसूचकः संचारयतीव क्ष्मां क्वापि वहद्बहलरजःपटलकलिलशर्कराशकलसूत्कारी मारुतः। न कुशलमिव पश्यामि लग्नस्य। अस्मिन्नस्मद्वंशे करीण इव करीरं कोमलमपि कलयतः कृतान्तस्य कः परिपन्थी? सर्वथा स्वस्ति भवत्वार्याय।' इति चिन्तयित्वा च अन्तर्भिन्नं भ्रातृस्नेहकातरं द्रवदिव हृदयं कथं कथमपि संस्तभ्योत्थाय यथाक्रियमाणं क्रियाकलापमकरोत्।

नभःस्पृशम्। अक्षुद्रः प्रधानभूतः। राहोरविकलकायबन्धनं कबन्धयोगात्। कबन्धदर्शनं चोत्पातसूचकम्। विलोलतारका इति। स्त्रीणां च, युद्धदर्शनवशादक्ष्णोश्च लोलत्वं भवति। कलिलानि व्याप्तानि। वंशो वेणुरपि। करीरो वंशाङ्कुरः। अपिशब्दः कृतान्तस्येत्यतः परं योज्यः। परिपन्थी रोधकः। परिपूर्वपर्यायः परिपन्थशब्दोऽस्तीति ज्ञापितम्।

अब भी शान्त नहीं हो रहे हैं। प्रतिदिन सूर्य में कबन्ध दिखाई पड़ता है। सशरीर के समान होकर राहु सूर्य पर झपटता हुआ लगता है। सप्तर्षि तारे तपस्या करने के अवसर में किए धूम्रपान को अब मुँह से उगलते हैं जिससे आकाश के समस्त तारे धुँधले लग रहे हैं। प्रतिदिन दारुण दिग्दाह दिखाई पड़ते हैं। दिग्दाहों के भस्मकण के रूप में तारे आकाश से गिरते नजर आते हैं। तारों के गिरने के मानों शोक से चन्द्रमा निष्प्रभ लगता है। प्रत्येक रात में उग्र रूप में इधर-उधर उल्कायें जलती रहती हैं, चञ्चल तारों वाली दिशाएँ आकाश में मानों ग्रहयुद्ध देखा करती हैं। धूल और आँकड़-पाथर से भरा हुआ, साँय-साँय की ध्वनि से युक्त एवं राज्य के विलयन की सूचना देने वाला पवन पृथिवी को मानों कहीं उड़ाकर ले जाने की कोशिश करता है। शुभ लग्न को भी उपस्थित नहीं देखता हूँ। हाथी के लिये जैसे कोमल बाँस का कोंपल होता है उसी प्रकार हमारे इस वंश में यमराज का अब कौन शत्रु है। सब प्रकार से आर्य का कल्याण हो।' यह सोच

आस्थानगतश्च सहसैव प्रविशन्तम्, अनुप्रविशता विषण्णवदनेन लोकेनानुगम्यमानम्, असह्यदुःखोष्णनिःश्वासधूमरक्ततन्तुनेव मलिनेन पटेन प्रावृतवपुषम्, जीवितधारणलज्जयेवावनतमुखम्, नासावंशस्याग्रे ग्रथितदृष्टिम्, दुःखदूरप्ररूढरोम्णा मूकेनापि मुखेन स्वामिव्यसनमविच्छिन्नैरश्रुबिन्दुभिर्विज्ञापयन्तं कुन्तलं नाम बृहदश्ववारम्, राज्यवर्धनस्य प्रसादभूमिमभिज्ञाततमं ददर्श। दृष्ट्वा च जाताशङ्कश्चक्षुषि सलिलेन, मुखशशिनि श्वसितेन, हृदये हुताशनेन, उत्सङ्गे भुवा, दारुणाप्रियश्रवणसमये सममिव सर्वेष्वङ्गेष्वगृह्यत लोकपालैः। तस्माच्च हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत्।

श्रुत्वा च महातेजस्वी प्रचण्डकोपपावकप्रसरपरिचीयमानशोकावेगः सहसैव प्रजज्वाल। ततश्चामर्षविधुतशिरःशीर्यमाणशिखामणिशकलाङ्गार-

---

अप्रियेऽपि। अप्रियग्रहणकाले च दुःख सर्वाङ्गेषु गृह्यते।

तत इत्यादौ। परां भीपगतामयासीदिति संबन्धः।

कर भाई के स्नेह से कातर हो मानों द्रवीभूत होते हुए अपने हृदय को किसी प्रकार रोककर हर्ष ने अपने नित्य कार्य किए।

आस्थानमण्डप में पहुँचते ही उन्होंने राज्यवर्धन का प्रसाद-पात्र और अपने भी अति परिचित कुन्तल नामक प्रधान सवार को प्रवेश करते हुए देखा। उसके पीछे पीछे विषाद से भरे लोग प्रवेश कर रहे थे। उसके शरीर का वस्त्र मलिन हो गया था मानों असह्य दुःख के कारण निकला हुआ उष्ण निःश्वास का धुँवा लग गया था। प्राण धारण की लज्जा से मानों वह मुँह नीचा किए था। नाक के अग्रभाग में उसकी दृष्टि लगी हुई थी। दुःख के कारण रोमाञ्च से भरे हुए उसके मुख से आवाज नहीं निकल रही थी, फिर भी अपने स्वामी के आकस्मिक व्यसन को बेरोक-टोक ढलते हुए आँसुओं से सूचित कर रहा था। उसे देखकर वे शंकित हो गये, तभी उनको आँख में जल (जल देवता वरुण), मुख में श्वास (वायु देवता), हृदय में अग्नि (अग्नि देवता), उत्सङ्ग में पृथिवी (भूदेवता), आदि लोकपाल देवताओं ने दुसह अप्रिय समाचार के सुनने के अवसर में उन्हें मिलकर सम्हाल लिया। उसने खबर दी कि राज्यवर्धन ने मालव की सेना को खेल ही खेल में जीत लिया था, किन्तु गौड़ाधिपति की दिखावटी आवभगत का विश्वास करके वह अकेला शस्त्रहीन दशा में अपने ही भवन में मारा गया।

यह सुनते ही महातेजस्वी हर्ष का शोकावेग प्रचण्ड कोपाग्नि के धधकने से और भी बढ़ गया और वे सहसा प्रज्वलित हो उठे। क्रोध से काँपते हुए उनके मस्तक की

किताङ्कमिव रोषाग्निमुद्वमन्ननवरतस्फुरितेन पिबन्निव सर्वतेजस्विनामायूंषि, रोषनिर्भुग्नेन दशनच्छदेन लोहितायमानलोचनालोकविक्षेपैर्दिग्दाहानिव दर्शयन्, रोषानलेनाप्यसह्यसहजशौर्य्योष्मदहनदह्यमानेनेव वितन्यमानस्वेदसलिलशीकरासारदुर्दिनः, स्वावयवैरप्यदृष्टपूर्वप्रकोपभीतैरिव कम्पमानैरुपेतः, हर इव कृतभैरवाकारः, हरिरिव प्रकटितनरसिंहरूपः, सूर्यकान्तशैल इवापरतेजःप्रसरदर्शनप्रज्वलितः, क्षयदिवस इवोदितद्वादशदिनकरदुर्निरीक्ष्यमूर्तिः, महोत्पातमारुत इव सकलभूभृत्प्रकम्पकारी, विन्ध्य इव वर्धमाननिग्रहोत्सेधः, महाशीविष इव दुर्नरेन्द्राभिभवरोषितः,

---

निर्भुग्नेन वक्रीकृतेन। दह्यमानेनेति। दाहभीतेन च सलिलकणा वितन्यन्ते। भैरवो भीषणोऽपि। प्रशस्तो नरो नरसिंहः। इत्थं च—'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः॥' इति। नृसिंहरूपी च हरिरिति। तेजो क्षमता, आतपश्च, दिनकरवत्तैश्च दुर्निरीक्षणः। भूभृतो राजानोऽपि, गिरयश्च। वर्धमानेन देहेन उत्सेध औन्नत्यं यस्य। नरेन्द्रो मन्त्रज्ञः, राजापि। परीक्षिति दग्धे जनमेजयः पितृपरिभवेन सर्पसत्रे भोगिनां क्षयार्थं ययाजेति वार्ता।

शिखामणियाँ टुकड़े-टुकड़े होकर अङ्गार के रूप में छटकने लगीं, मानों वे रोष की अग्नि को उगल रहे हों। उनके ओठ इस तरह लगातार फड़फड़ा रहे थे मानों समस्त तेजस्वियों की आयु पी रहे हों। रोष के कारण ओठ कट जाने से आँखों की किरणें लाल होकर फैल रही थीं मानों दिग्दाह के दृश्य उत्पन्न कर रहे हों। उनके अपने क्रोधानल से भी कहीं अधिक ताप वाला स्वाभाविक शौर्य इस प्रकार उद्दीप्त हो उठा कि उनके शरीर से स्वेद जल की वर्षा होने लगी। मानों उनके अपने ही अङ्गों ने पहले कभी ऐसा कोप नहीं देखा था इसलिए काँपने लगे। उनकी आकृति शिव के समान भैरव (भीषण) हो गई। विष्णु के समान उन्होंने नरसिंह का रूप धारण कर लिया। सूर्यकान्त मणि के पर्वत के समान दूसरे का तेज देखते ही प्रज्वलित हो उठे। महोत्पात के समय पर्वतों को कम्पित करने वाले वायु के समान समस्त राजाओं को उन्होंने कँपा दिया। विन्ध्यपर्वत के समान उनका विग्रहमद बढ़ने लगा (विन्ध्य का विग्रह अर्थात् शरीर बढ़ा था)। दुष्ट सपेरे (नरेन्द्र) द्वारा कोपित महासर्प के समान दुष्ट राजा के द्वारा किए गए अपने अभिभव से कुपित थे। परीक्षित राजा के पुत्र जनमेजय के समान समस्त भोगियों (धनवानों, सर्पों) को जला डालने के लिये तैयार हो गए। भीम के समान शत्रु के खून के प्यासे हो गये। शत्रुहाथी को देखकर दौड़ पड़ने वाले ऐरावत के समान शत्रु के

पारीक्षित इव सर्वभोगिदहनोद्यतः, वृकोदर इव रिपुरुधिरतृषितः, सुरगज इव प्रतिपक्षवारणप्रधावितः, पूर्वागम इव पौरुषस्य, उन्माद इव मदस्य, आवेग इवावलेपस्य, तारुण्यावतार इव तेजसः, सर्वोद्योग इव दर्पस्य, युगागम इव यौवनोष्मणः, राज्याभिषेक इव रणरसस्य, नीराजनदिवस इवासहिष्णुतायाः परां भीषणतामयासीत्।

अवादीच्च गौडाधिपाधममपहाय कस्तादृशं महापुरुषं तत्क्षण एव निर्व्याजभुजवीर्यनिर्जितसमस्तराजकं मुक्तशस्त्रं कलशयोनिमिव कृष्णवर्त्मप्रसूतिरीदृशेन सर्ववीरलोकविगर्हितेन मृत्युना शमयेद्देवमार्यम्। अनार्यं च तं मुक्त्वा भागीरथीफेनपटलपाण्डुराः केषां मनःसु सरःसु राजहंसा इव परशुरामपराक्रमस्मृतिकृतो न कुर्युरार्यशौर्यगुणाः पक्षपातम्। कथमिवात्युग्रस्यास्यार्यजीवितहरणे निदाघरवेरिव कमलाकरसलिलशोषणेऽ-

---

भोगिनो राजानः। वृकोदरो भीमसेनः। वारणं निषेधः, हस्ती च वारणः। अवलेपस्य दर्पस्य। नीराजनं शान्तिकर्मविशेषः।

कलशयोनिं द्रोणाचार्यम्। कृष्णवर्त्मप्रसूतिः पापमार्गप्रवर्तकः। धृष्टद्युम्नश्चाग्निजातः, कृष्णवर्त्मा वह्निः। भागीरथीत्यादि परशुराम इत्यादि च हंसानामपि विशेषणम्। रामेण हि हंसमार्गः कैलासे कृत इति हंसास्तत्कीर्तिं स्मारयन्ति। पक्षपातं स्नेहम्, पक्षैर्गमनं च। अत्युग्रस्यातिक्रूरस्य, अतिचण्डस्य च। अत्रार्यस्य

विनाश के लिये चल पड़े। मानों पराक्रम इस रूप में पहली बार उपस्थित हुआ। मद के उन्माद के समान, अवलेप के आवेग के समान, तेज के चढ़ते हुए यौवन के समान, दर्प के समस्त उद्योग के समान, यौवन ताप के युगागम के समान, युद्ध रस के राज्याभिषेक के समान, असहनशीलता के नीराजन के समान वे अत्यन्त भयङ्कर हो गये।

वे बोले—'गौडाधिपति को छोड़कर कौन है जो बिना किसी छल-कपट के समस्त राजाओं को पराजित करने वाले वैसे महापुरुष को शस्त्रहीन अवस्था में ऐसी मृत्यु से मारे जिसे वीर लोग निन्दा की दृष्टि से देखते हैं। जिस प्रकार धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को शस्त्रहीन देखकर मार डाला था। उस अनार्य को छोड़कर गंगा के फेनपटल के समान उज्ज्वल और परशुराम के पराक्रम की स्मृति उत्पन्न करने वाले आर्य के शौर्यगुण सरोवर में राज-हंसों के समान किसके मन में पक्षपात नहीं करते? जैसे ग्रीष्मकाल में प्रखर तेज वाले सूर्य की किरणें सरोवर का जल सोख लेती हैं उसी प्रकार अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले उस गौड़ाधिप की प्रीति की बिलकुल अपेक्षा न रखने वाले हाथ आर्य के प्राण हरने के लिये कैसे फैल गए? उसकी क्या गति होगी? किस योनि में प्रवेश

नपेक्षितप्रीतयः प्रसृताः कराः। कां नु गतिं गमिष्यति, कां वा योनिं प्रवेक्ष्यति, कस्मिन्वा नरके निपतिष्यति। श्वपाकोऽपि क इदमाचरेत्। नामापि च गृह्णतोऽस्य पापकारिणः पापमलेन लिप्यत इव मे जिह्वा। किं वाङ्गीकृत्य कार्यमार्यस्तेन क्षुद्रेणानुप्रविश्य विगतघृणेन घुणेनेव सकलभुवनाह्लादनचतुरश्चन्दनस्तम्भः क्षयमुपनीतः। नूनं नानेन मूढेन मधुरसास्वादलुब्धेन मध्विवार्यजीवितमाकर्षता भावी दृष्टः शिलीमुखसंपातोपद्रवः। निजगृहदूषणं जालमार्गप्रदीपकेन कज्जलमिवातिमलिनं केवलमयशः संचितं गौडाधमेन। नत्वाश्वेवास्तमुपगतवत्यपि त्रिभुवनचूडामणौ सवितरि वेधसादिष्टः सत्पथशत्रोरन्धकारस्य निग्रहाय ग्रहषण्डविहारैकहरिणाधिपः शशी। विनयविधायिनि भग्नेऽपि चाङ्कुशे विद्यत एव व्यालवारणस्य विनयाय सकलमत्तमातङ्गकुम्भस्थलस्थिरशिरोभागभिदुरः खर-

---

कमलाकरेणोपमा। लक्ष्मीयात्रादिगुणयुक्तत्वात्। कराः हस्ताः, रश्मयश्च। क्षुद्रेण क्रूरेण, परिचितपरिपणेन च। अनुप्रविश्य विश्वासं नीत्वान्तर्भूय च। घुणेन काष्ठकृमिणा। शिलीमुखाः शराः, भ्रमराश्च। जालस्य कुसृतेर्मार्गं दीपयति यस्तेन गवाक्षमार्गेण यः प्रदीपः स यथा कज्जलं संचिनुते नत्वाशु इत्यप्रस्तुतप्रशंसा बोद्धव्या। विशेषेण हरणं विहारो, विच्छायीकरणं गमनं च। षण्डे हि सिंहो गमनं करोति। व्यालवारणस्य दुष्टदन्तिनः। स्थिरो दृढः शिरोभागो यस्य। यं प्राप्यैव

करेगा? या किस नरक में गिरेगा? चाण्डाल भी कौन है जो ऐसा करे? उस पापी के नाम लेने से भी मेरी जिह्वा में पाप जैसे लिपट जाता है। क्या सोचकर उसने ऐसा किया? जैसे छोटा सा घुन प्रवेश करके चन्दन के स्तम्भ को समाप्त कर डालता है उसी प्रकार उस घृणाहीन क्षुद्र ने सारे जगत् को आह्लादित करने वाले आर्य को उनके भवन में प्रवेश करके मार डाला। निश्चय ही मधुरस के चखने के लोलुप उस मूर्ख ने मधु के समान आर्य के प्राणों को चूसते हुए यह नहीं सोचा कि शिलीमुख (बाण या भौंरे) मुझ पर टूट पड़ेंगे। जैसे किसी झरोखे में रखा हुआ दीपक कालिख से घर को दूषित कर देता है उसी प्रकार अपने ही दोष के रूप में उस गौड़ाधम ने अत्यन्त मलिन अपने अयश को केवल सञ्चित किया। इस प्रकार शीघ्र त्रिभुवन के चूड़ामणि सूर्य (राज्यवर्धन) के अस्त हो जाने पर क्या विधाता ने सन्मार्ग के शत्रु अन्धकार (गौड़ाधिप) के निग्रह के लिये ग्रहों के वनखण्ड में विचरण करने वाले सिंह के रूप में चन्द्र (हर्षवर्धन) को आदेश नहीं दिया है? दुष्ट हाथी को विनय की सीख देने वाले अङ्कुश के टूट जाने पर भी समस्त मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल के भेदन में समर्थ और अत्यन्त तीक्ष्ण सिंह

त्तरः केसरिनखरः। तादृशाः कुवैकटिका इव तेजस्विरत्नविनाशकाः कस्य न वध्याः। क्वेदानीं यास्यति दुर्बुद्धिः ?' इत्येवमभिदधत एवास्य पितुरपि मित्रं सेनापतिः समग्रविग्रहप्राग्रहरो हरितालशैलावदातदेहः परिणतप्रगुणसालप्रकाण्डप्रकाशः प्रांशुः, अतिशौर्योष्मणेव परिपाकमागतो गतभूयिष्ठे वयसि वर्तमानः, बहुशरशयनसुप्तोत्थितोऽपि हसन्निव शान्तनवमतिदीर्घेणायुषा, दुरभिभवशरीरतया जरयापि भीतभीतयेव प्रकटितप्रकम्पया परामृष्टः कथमपि सारमयेषु शिरोरुहेषु शशिकरनिकरसितसरलशिरोरुहसटालां सैंहीमिव निष्कपटपराक्रमरसरचितां संक्रान्तो जीवन्नेव जातिम्, अपरामपरस्वामिमुखदर्शनमहापातकपरिजिहीर्षयेव भ्रूयुगलेन वलितशिथिलप्रलम्बचर्मणा स्थगितदृष्टिः, धवलस्थूलगुञ्जापिच्छप्रच्छादितकपोलभागभास्वरेण वमन्निव विक्रमकालमकालेऽपि विकाशिकाश-

---

तस्य स्वयं विदारणं भवतीत्यर्थः। वैकटिको रत्नबन्धकः।

इत्येवमादौ। सेनापतिः सिंहनादनामा संनिधावेव समुपविष्टो विज्ञापितवानिति संबन्धः। विग्रहाः संभ्रमास्तेषु प्राग्रहरोऽग्रेसरः। प्रगुणं स्पष्टम्। काण्डं स्कन्धः। शान्तनवं भीष्मम्। वलयोऽस्य सन्ति वलिनम्। गुञ्जोत्तरोष्ठोपरि रोमराजिः। विक्रमकालमिति। शरदारम्भविशेषणम्। तत्र शत्रुषु जययात्रा विधेयेति।

का नख तो विद्यमान ही है। उसी प्रकार से रत्न के निकृष्ट पारखी जो तेजस्वी रत्नों को नष्ट कर डालते हैं किसके वध्य नहीं? वह दुर्बुद्धि गौड़ाधिप अब बच कर कहाँ जायगा?' प्रभाकरवर्धन का मित्र सिंहनाद नाम का सेनापति पास में बैठा हुआ था। युद्ध के अवसरों में वह सबसे आगे रहने वाला था। हरिताल के समान उसकी देह उज्ज्वलवर्ण की और बढ़े हुए सालवृक्ष के समान लम्बी थी। शौर्य की अधिक गर्मी से मानों वह पक गया था, जिससे उसकी आयु का अधिक अंश बीत चुका था। मानों वह भी अनेक बाणों के बने हुये शयन पर सोकर उठा था और अपनी आयु से भीष्म को भी हँस रहा था। उसके कष्ट से अभिभव प्राप्त करने के कारण वृद्धावस्था भी डर कर मानों शरीर में कम्प उत्पन्न करती हुई उसका स्पर्श किए थी। चन्द्र की किरणों के समान सफेद और सीधे सादे एवं दृढ़ उसके बाल ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों वह अपने निष्कपट पराक्रम रस के कारण जीते जी ही सिंह की जाति को प्राप्त कर चुका था। उसकी आँख पर चमड़ी शिथिल होकर इस प्रकार नीचे झूल रही थी कि भौंहों से उसकी आँखें ढँक गई थीं। उसके भीमाकृति मुख के सफेद गलगुच्छे गालों पर छाये हुए थे, मानों असमय में भी युद्ध के लिये उचित, फूले हुये काश वनों से उज्ज्वल शरत्काल के आरम्भ को उगल रहा

काननविशदं शरदारम्भं भीमेन मुखेन, मृतमपि हृदयस्थितं स्वामिनमिव सितचामरेण वीजयन्नाभिलम्बेन कूर्चकलापेन, परिणामेऽपि धौतासिधाराजलपानतृषितैरिव विवृतवदनैर्बृहद्भिर्व्रणविदारैर्विषमितविशालवक्षाः, निशितशस्त्रटङ्ककोटिकुट्टितबहुबृहद्व्रणाक्षरपङ्क्तिनिरन्तरतया च सकलसमरविजयपर्वगणनामिव कुर्वन्पूर्वपर्वत इव पादचारी, विविधवीररसवृत्तान्तरामणीयकेन महाभारतमपि लघयन्निव, प्रतिपक्षक्षपणातिनिर्बन्धेन परशुराममपि शिक्षयन्निव, अब्भ्रमणेनानादरश्रीसमाकर्षणविभ्रमेण मन्दरमपि मन्दयन्निव, वाहिनीनायकमर्यादानुवर्तनेनाम्भोधिमप्यभिभवन्निव, स्थैर्यकार्कश्योन्नतिभिरचलानपि ह्रेपयन्निव, सहजप्रचण्डतेजःप्रसरपरिस्फुरणेन सवितारमपि तृणीकुर्वन्निव, ईश्वरभारोद्वहनघृष्टपृष्ठतया हरवृष-

---

कूर्चकलापः श्मश्रुः। परिणामे वृद्धत्वे। तृषितोऽपि जलं पातुं विवृतवदनो भवति। विदारैः स्फोटैः। शस्त्राण्येव टङ्काः छेदनभाण्डानि कुट्टितानि छिन्नानि। पूर्ववृत्तान्तः पूर्वप्रशस्तिः। अब्भ्रमणं समुद्रयात्रा, जले परिवर्तनमपि। ताभ्योऽनादरेण यक्षलक्ष्मीसमाकर्षणं तदर्थं यो विविधो भ्रमस्तेन। वाहिनी सेना, नदी च। स्थैर्यं व्यवसायादचलनमपि। कार्कश्यं परविषयं निर्दयत्वमपि। उन्नतिरभिमानोऽपि। तेज उन्नतिः, क्षमा, घर्मश्च। ईश्वरो देवो हरोऽपि। कार्येषु क्षुण्णो लोकेषु घृष्टपृष्ठ

हो। सफेद झालदार दाढ़ी नाभि तक इस प्रकार लटक रही थी मानों मरने पर भी हृदय में स्थित अपने स्वामी (प्रभाकर वर्धन) को उज्ज्वल चँवर से झल रहा हो। उसकी ऊबड़खाबड़ चौड़ी छाती पर मुँह बाये घावों के बड़े बड़े निशान इस प्रकार थे मानों वृद्धावस्था में भी तलवार के धाराजल के लिये तृषित हो रहे थे। उसके शरीर पर शस्त्र की तीक्ष्ण टाँकियों से व्रण रश्मियाँ टङ्कित थीं मानों समस्त युद्धों के विजय पर्व की गणना करता हो। उदयाचल के समान पृथिवी को चरणों से आक्रान्त करके बैठा था। वीररस के अनेक वृत्तान्तों के कारण महाभारत से भी बढ़कर वह रमणीय हो रहा था। शत्रुओं के संहार की प्रवृत्ति से वह परशुराम को भी मानों सीख दे रहा था। समुद्रभ्रमण के द्वारा श्री (लक्ष्मी या वैभव सम्पत्ति) को खींच लाने की अद्भुत सामर्थ्य से अपने सामने मन्दराचल को भी कम कर रहा था। वाहिनीनायक (सेनापति) की मर्यादा का अनुसरण करने से (वाहिनी नायक अर्थात् सरित्पति) समुद्र को भी अभिभूत कर रहा था। स्थिरता, कर्कशता और ऊँचाई से पर्वतों को भी लज्जित कर रहा था। स्वाभाविक प्रचण्ड तेज के स्फुरित होने से अपने सामने सूर्य को भी तृण के समान मान रहा था। पीठ पर स्वामी (ईश्वर) का बोझ ढोने से ईश्वर को भी हँस रहा था। क्रोधरूपी अग्नि की

भमपि हसन्निव, अरणिरमर्षाग्नेः, ऐश्वर्यं शौर्यस्य, मदो मदस्य, विसर्पो दर्पस्य, हृदयं हठस्य, जीवितं जिगीषुतायाः, समुच्छ्वसितमुत्साहस्य, अङ्कुशो दुर्मदानाम्, नागदमनो दुष्टभोगिनाम्, विरामो वरमनुष्यतायाः, कुलगुरुर्वीरगोष्ठीनाम्, तुला शौर्यशालिनाम्, सीमान्तदृश्वा शास्त्रग्रामस्य, निर्वोढा प्रौढवादानाम्, संस्तम्भयिता भग्नानाम्, पारगः प्रतिज्ञायाः, मर्मज्ञो महाविग्रहाणाम्, आघोषणापटहः समरार्थिनाम्, संनिधावेव समुपविष्टः सिंहनादनामा स्वरेणैव दुन्दुभिघोषगम्भीरेण सुभटानां समररसमानयन्विज्ञापितवान्—

'देव ! न क्वचित्कृताश्रयया मलिनया मलिनतराः कोकिलया काका इव कापुरुषा हतलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानमात्मानं न चेतयन्ते। श्रियो हि दोषा अन्धतादयः कामलाविकाराः। छत्रच्छायान्तरितरवयो विस्मर-

---

उच्यते। नागदमनो गजमर्दनः, गरुडश्च। भोगिनो राजानः, सर्पाश्च। यथा आघोषणापटहः समरार्थिनामुत्साहं जनयति तथाऽसावपीत्यर्थः।

देवेत्यादि। कापुरुषाः हतलक्ष्म्या विप्रलभ्यमानं वञ्च्यमानमात्मानं न चेतयन्ते इति योजना। न क्वचित्कृताश्रयया सर्वत्र चाञ्चल्यात्कस्मात्तान्हतलक्ष्मीर्विप्रलभत इत्याह—श्रियो हि दोषा अन्धतादयः। कामलाविकारा इति। हि यस्माच्छ्रियो ये

वह अरणि, शौर्य का ऐश्वर्य, मद का मद, दर्प का प्रसर, हठ का हृदय, विजय की इच्छा का जीवन, उत्साह का उच्छ्वसित, दुर्मदों का अंकुश, दुष्ट राजाओं का दमन करने वाला, श्रेष्ठ मनुष्यता का विराम, वीर गोष्ठियों का कुलगुरु, शौर्यशील लोगों की उपमा, शास्त्रों का पारदर्शी, उद्धत विवादों का समुचित उत्तर देने वाला, शत्रु के भय से भागने वालों को रोक रखने वाला, महासमरों का मर्मज्ञ, एवं युद्ध को चाहने वालों के लिए घोषणा पटह था। दुन्दुभि के घोष के समान गम्भीर आवाज में योद्धाओं के मन में युद्ध का कुतूहल उत्पन्न करते हुए उसने निवेदन किया।

'देव, कोयल के समान किसी स्थान पर स्थिर होकर न रहने वाली और मलिन दुष्ट लक्ष्मी के द्वारा प्रतारित होते हुए अपने आपको कौवे के समान मलिन प्रकृति के कायर पुरुष नहीं समझ पाते। कामला आदि आँखों के विकार के समान अन्धता आदि श्री के दोष हैं। छत्र की छाया में सूर्य को व्यवहित कर देने वाले मूढ़ लोग दूसरे तेजस्वी को बिलकुल भूल जाते हैं। वह वराक गौड़ाधिप क्या करे ? अत्यन्त डरपोक स्वभाव के कारण हमेशा मुँह फेरे रहने वाले उसने सबको अभिभूत कर देने वाले शौर्यातिशय के

न्त्यन्यं तेजस्विनं जडधियः। किं वा करोतु वराकः येनातिभीरुतया नित्यपराङ्मुखेन नतु दृष्टान्येव सर्वातिशायिशौर्यातिशयश्वयथुकपिलकपोलपुलकपल्लवितकोपानलानि कुपितानां तेजस्विनां मुखानि। नासौ तपस्वी जानात्येवं यथाभिचारा इव विप्रकृताः सद्यः सकलकुलप्रलयमुपाहरन्ति मनस्विन इति। जलेऽपि ज्वलन्ति ताडितास्तेजस्विनः। सकलवीरगोष्ठीबाह्यस्य तस्यैवेदमुचितमनुत्तारनिरयनिपातनिपुणं कर्म। मनस्विनां हि प्रधनप्रधानधने धनुषि ध्रियमाणे सति च कमलाकलहंसीकेलिकुवलयकानने कृपाणे कृपणोपायाः पयोधिमथनप्रभृतयोऽपि श्रीसमुत्थानस्य किं पुनरीदृशाः। येषां च धात्रा धरित्रीं त्रातुं नियुक्ताः स्वयमसमर्था इव कुलिशकर्कशभुजपरिघप्रहरणहेतोरुद्गिरन्ति गिरयोऽपि लोहानि ते कथमिव बाहुशालिनो मनसापि विमलयशोबान्धवा ध्यायेयुरकार्यम्। स-

---

दोषा अन्धतादयो विकारास्ते हि कामलाः कमलसंबन्धिनः। कमलानां दोषायां रात्रौ अन्धता संकोचः। तन्निवासश्च लक्ष्म्या अपि। स विकारश्चान्यं विप्रलभते। रागादयस्तैरन्धतेवान्धता सत्कार्यानालोचनम्। अथ च पाण्डु रोगभेदः। तेन शङ्खादौ पीतत्वादिज्ञानं तद्विकाराश्च रात्र्यन्धतादयो दोषा भवन्ति। सर्वातिशायिना शौर्यातिशयेन श्वयथुर्येषां तानि। ततो विशेषणसमासः। विप्रकृता उपद्रुताः। विप्रैर्द्विजैः कृताः। जले तेऽपि ताडिता आहता वैद्युताश्च तेजस्विनोऽग्नयोऽपि। गोष्ठी बाह्यश्च न जानाति धर्मं वृद्धासेवितत्वात्। प्रधनं रणः। गिरयो लोहान्युद्गि-

---

संवर्धन से लाल कपोलों पर रोमांच के रूप में उत्पन्न होते हुए कोपानल वाले कुपित तेजस्वी पुरुषों का मुख बिलकुल नहीं देखा है। वह बेचारा जानता ही नहीं कि मारण मन्त्र के समान मनस्वी पुरुष तिरस्कृत होने पर शीघ्र ही सारे वंश का उच्चाटन कर डालते हैं। तेजस्वी लोग बिजली के समान आघात पाकर जल में भी प्रज्वलित रहते हैं। वीरगोष्ठियों से बाहर उसके लिए उद्धार न पाने वाले नरक में गिरा देने वाला यह कर्म उचित ही है। मनस्वी पुरुष के द्वारा युद्ध के लिए धनुष धारण किये जाने पर और उनके पास लक्ष्मी रूपी कलहंसी की क्रीडा के लिए कुवलयवनरूपी कृपाण के विद्यमान रहने पर श्री को प्राप्त करने के लिए समुद्र मंथन प्रभृति उपाय भी तुच्छ हो जाते हैं तो ऐसे उपायों की क्या गणना? वज्र के समान कर्कश जिनकी बाहु द्वारा परिघ नामक अस्त्र के प्रहार के लिए विधाता की आज्ञा पाकर स्वयं असमर्थ होकर पर्वत लोहा उत्पन्न करते हैं ऐसे बाहु-वीर्यशाली और निर्मल यश के प्रेमी मन से भी कैसे किसी अकार्य का ध्यान कर

र्वग्रहाभिभवभास्वराणां हि सुभटकराणामग्रतो दिग्ग्रहणे पङ्गवः पतङ्गकराः। महामहिषशृङ्गतरङ्गभङ्गभङ्गुरभीषणान्तराला लोकप्रवादमात्रेण च दक्षिणाशा परमार्थतो भटभ्रुकुटिरधिवासो यमस्य। चित्रं च यदुन्मुक्तसिंहनादानां सहसा साहसरभसरसरोमाञ्चकण्टकनिकरेण सह न निर्यान्ति सटाः शूराणां रणेषु। द्वयमेव च चतुःसागरसंभृतस्य भूतिसंभारस्य भाजनं प्रतिपक्षदाहि दारुणं वडवामुखं वा महापुरुषहृदयं वा। तेजस्विनः सकलानन्नवाप्य पयोराशिसहजस्य कुतो निवृत्तिरूष्मणः। वृथाविततविपुलफणाभारो भुजङ्गानां भर्ता बिभर्ति यो भोगेन मृत्पिण्डमेव केवलम्। अप्रतिहतशासनाक्रान्त्युपभोगसुखरसं तु रसायां दिक्कुञ्जरकरभारभास्वरप्रकोष्ठा वीरबाहव एव जानन्ति। रविरिवोन्मुखपद्माकरगृहीतपादपल्लवः सुखेनाखण्डिततेजा दिवसान्नयति शूरः। कातरस्य तु शशिन इव हरिणहृदयस्य पाण्डुरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः। अपरिमित-

---

रन्ति गिरिभ्य एव लोहोत्पत्तेः। सर्वस्य वस्तुनो ग्रहोपहरणम्। ग्रहाश्चन्द्राद्याः। पतङ्गः सूर्यः। महामहिषशृङ्गयोस्तरङ्गवद्भङ्गुरा ये भङ्गास्तैर्भीषणमन्तरालं यस्याः सा। अन्यत्र,—महामहिषशृङ्गतुल्या। भूतिर्भस्मापि। तेजस्विनो वडवाग्नेरपि। मुखेन शोभनाकाशेनापि। शूरो रविरपि। हरिणहृदयस्याल्पसत्त्वस्यापि पाण्डुर-

---

सकते हैं ? सब ग्रहों के अभिभव करने में समर्थ (या सबका अपहरण करने वाले) सुभट लोगों के हाथों के सामने केवल दिशाओं के ग्रहण में सूर्य के कर (किरणें) पंगु हो जाते हैं। यह लोक प्रवाद मात्र है कि महामहिष की तरंगों के समान टेढ़ा सींगों से भयानक भीतरी भाग वाली दक्षिण दिशा यमराज का निवास स्थान है, परमार्थ रूप में महिष को सींग नहीं, बल्कि वहाँ योद्धाओं की भौंहें व्याप्त हैं। आश्चर्य है कि संग्रामों में सिंहनाद करने वाले शूरवीरों के साहस रस के कारण उत्पन्न रोमांच के साथ ही सिंहों जैसी सटाएँ नहीं निकल जातीं। चारों समुद्रों से उत्पन्न होने वाले भूतिसम्भार (अर्थात् सम्पत्ति समूह अथवा भस्मसमूह) के योग्य स्थान दो ही हैं एक अपने प्रतिपक्ष (जल) को भस्म कर देने वाला (भस्मसमूह का योग्य स्थान) वड़वानल और दूसरा (सम्पत्तिसमूह का योग्य स्थान) महापुरुष का हृदय। समुद्र में सहज उत्पन्न तेजस्वी वड़वानल के तीव्र तेज की निवृत्ति बिना सबको जलाए कैसे सम्भव है ? फणों का वृथा भार फैलाकर लादे हुए शेषनाग केवल मिट्टी का बोझ ही धारण कर रहे हैं। दिग्गज की सूँड़ के समान प्रकोष्ठ भागवाले वीरों के बाहु ही किसी प्रकार के विघ्न से रहित शासन द्वारा पृथिवी के उपभोगजनित आनन्द का अनुभव करते हैं। जैसे कमल (पद्माकर) सूर्य के किरणरूपी

यशःप्रकरवर्षी विकासी वीररसः। पुरःप्रवृत्तप्रतापप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य। शब्दविद्रुतविद्विषन्ति भवन्ति द्वाराणि दर्पस्य। शस्त्रालोकप्रकाशिताः शून्या दिशः शौर्यस्य। रिपुरुधिरशीकरासारेण भूरिव श्रीरप्यनुरज्यते। बहुनरपतिमुकुटमणिशिलाशाणकोणकषणेन चरणनखराजिरिव राजताप्युज्ज्वलीभवति। अनवरतशस्त्राभ्यासेन करतलानीव रिपुमुखान्यपि श्यामीभवन्ति। विविधव्रणबद्धपट्टकशतैः शरीरमिव यशोऽपि धवलीभवति। कवचिषु रिपूरःकवाटेषु पात्यमानाः पावकशिखामिव श्रियमपि वमन्ति निष्ठुरा निस्त्रिंशप्रहाराः। यश्चाहितहृतस्वजनो मनस्विजनो द्विषद्योषिदुरस्ताडनेन कथयति हृदयदुःखम् परुषासिलतानिपातपवनेनोच्छ्वसिति निरुच्छ्वसितशत्रुशरीराश्रुधारापातेन रोदिति विपक्षवनि-

---

पृष्ठस्य देशभाषया निर्लज्जस्यापि। द्विरात्रमर्यादि। पौर्णमास्यामेव शशिनः सातिशयं शोभायुक्तत्वात्। लक्ष्मीः श्रीः, कान्तिश्च। शून्या अनावृताः। अनुरज्यतेऽनुरक्ता भवति, उपलिप्ता च भवति। उज्ज्वला रम्या, निर्मला च। श्यामानि कृष्णानि, विच्छा-

---

पादपल्लव को उन्मुख होकर पकड़ते हैं उसी प्रकार अखण्डित तेज वाला वीर जिसके पैर पद्मा (लक्ष्मी) अपने हाथों से दबाती है, सुखपूर्वक दिन व्यतीत करता है। हरिण के समान भीरु हृदय वाला (हरिण से युक्त मण्डल वाला) और ऊपर से देखने में उज्ज्वल चन्द्रमा की भाँति कायर पुरुष की लक्ष्मी (शोभा या सम्पत्ति) दो रात भी नहीं ठहरती। वीररस अपरिमित यशसमूह बरसाने वाला एवं विकासशील होता है। पौरुष के मार्ग आगे-आगे चलने वाले प्रताप के द्वारा अभ्यस्त होते हैं। वीर के आवाज करते ही उसके दर्प के द्वार से शत्रु निकल भागते हैं। शौर्य के शस्त्र के आलोक से प्रकाशित दिशाएँ जनरहित होती हैं। शत्रुओं की रुधिर की वर्षा से पृथिवी के समान श्री भी अनुरक्त (लालिमा से युक्त या प्रेमपूर्ण) हो जाती है। अनेक राजाओं के मुकुट की शिखामणि के घर्षण से चरणनख के समान साम्राज्य भी उज्ज्वल हो जाता है। शस्त्रों के हमेशा अभ्यास करने से करतल के समान शत्रुओं के मुख भी काले पड़ जाते हैं। व्रणों के ऊपर बाँधे गए वस्त्र के सैकड़ों टुकड़ों से शरीर की भाँति यश भी उज्ज्वल हो जाता है। कवच पहने शत्रु के चौड़े वक्ष पर पड़ते हुए कठोर खड्ग के प्रहार अग्नि शिखा के समान श्री (सम्पत्ति) को भी उगलते हैं। जो मनस्वी वीर पुरुष शत्रु के द्वारा आत्मीयजन के मारे जाने पर अपने हृदय का दुःख उस शत्रु की पत्नियों के वक्षताडन से व्यक्त करता है, वेग से चलती हुई असिलता की हवा के रूप में उच्छ्वास लेता है, साँस तोड़ते हुए शत्रु के नेत्र से बहती हुई अश्रुधारा के रूप में रुदन करता है और शत्रु पत्नियों की

ताचक्षुषा ददाति जलं स श्रेयान्नेतरः। नष्ट स्वप्नदृष्टनष्टेष्विव क्षणिकेषु शरीरेषु निबध्नन्ति बन्धुबुद्धिं प्रबुद्धाः। स्थायिनि यशसीव शरीरधीर्वीराणाम्। अनवरतप्रज्वलिततेजःप्रसरभास्वरस्वभावं च मणिप्रदीपमिव कलुषः कज्जलमलो न स्पृशत्येवातितेजस्विनं शोकः। स त्वं सत्त्ववतामग्रणीः प्राग्रहरः प्राज्ञानां प्रथमः समर्थानां प्रष्ठोऽभिजातानामग्रेसरस्तेजस्विनामादिरसहिष्णूनाम्। एताश्च सततसंनिहितधूमायमानकोपाग्नयः सुलभासिधारातोयतृप्तयो विकटबाहुवनच्छायोपगूढा धीरताया निवासशिशिरभूमयः स्वायत्ताः सुभटानामुरःकवाटभित्तयः। यतः किं गौडाधिपाधमैकेन। तथा कुरु यथा नान्योऽपि कश्चिदाचरत्येवं भूयः। सर्वोर्वीश्रद्धाकामुकानामलीकविजिगीषूणां संचारय चामराण्यन्तःपुरपुरंध्रिनिःश्वसितैः। उच्छिन्धि रुधिरगन्धान्धगृध्रमण्डलच्छादनैश्छत्त्रच्छायाव्यसनानि। अपाकुरु कदुष्णशोणितोदकस्वेदैः कुलक्ष्मीकुलटाकटाक्षचक्षूरागरोगान्। उपशमय निशितशरशिरावेधैरकार्यशौर्यश्वयथून्। उन्मूलय

यानि च। श्रेयान्प्रशंसनीयः। शिशिरभूमयोऽप्यग्नितापच्छायायुक्ता भवन्ति। स्वेदैश्च

आँखों से जलदान करता है, वही सबसे श्रेष्ठ है दूसरा नहीं। समझदार लोग देखते ही स्वप्न की तरह नष्ट हो जाने वाले क्षणभंगुर शरीर में आत्मीय भावना को स्थापित नहीं करते। वीर लोग स्थायी रहने वाले यश को ही अपना शरीर मानते हैं। मणि-प्रदीप के समान हमेशा प्रज्वलित रहने वाले अपने तेज से भास्वर स्वभाव के तेजस्वी को कज्जल के समान मलिन शोक नहीं छू पाता। तुम बलवानों में अग्रणी, बुद्धिमानों में प्रधान, सामर्थ्यवानों में प्रथम, कुलीनों में श्रेष्ठ, तेजस्वियों में अग्रसर, (शत्रु के पराक्रम को) न सहने वालों में मुख्य हो। योद्धाओं के वक्षरूपी कपाट की ये दीवारें, जिनमें हमेशा जलती हुई कोपाग्नि का धुआँ व्याप्त रहता है, जो असिधारा जल के सुलभ होने से तृप्त हैं, जिन पर उनके विशाल भुजवन की छाया पड़ती रहती है और जो धीरता के रहने से ठंढी हैं, अपने अधीन ही समझो। क्योंकि अकेले उस अधम गौड़ाधिप की क्या बात है? तुम ऐसा उपाय करो जिससे फिर कोई दूसरा ऐसा आचरण न करे। समस्त पृथिवी की चाह रखने वाले एवं अलीक विजय की इच्छा वाले राजाओं के लिए उनके अन्तःपुर की नवेलियों के निःश्वास के चँवर संचारित करो। रुधिर की दुर्गन्ध के लोलुप गीधों की छाया देकर उनके आतपत्र की छाया में रहने का शौक तोड़ो। कुत्सित लक्ष्मी रूपी कुलटा के कटाक्ष से उत्पन्न उनके चक्षुराग रूप रोगों को कुछ उष्ण रुधिर के बिन्दुओं से दूर करो। अन्याय के कार्यों में बढ़े हुए उनके पराक्रम के शोथ को तीक्ष्ण बाणों के शिरावेध

लोहनिगडापीडमालामलमहौषधैः पादपीठदोहददुर्ललितपादपटुमान्द्यानि। क्षपय तीक्ष्णाज्ञाक्षरक्षारपातैर्जयशब्दश्रवणकर्णकण्डूः। अपनय चरणनखमरीचिचन्दनचर्चाललाटलेपैरनमितस्तिमितमस्तकस्तम्भविकारान्। उद्धर करदानसंदेशसंदंशैर्द्रविणदर्पोष्मायमाणदुःशीललीलाशल्यानि। भिन्धि मणिपादपीठदीधितिदीप्रप्रदीपिकाभिः शुष्कसुभटाटोपभ्रुकुटिबन्धान्धकारान्। जय चरणलङ्घनलाघवगलितशिरोगौरवारोग्यैर्मिथ्याभिमानमहासंनिपातान्। म्रदय सततसेवाञ्जलिमुकुलितकरसंपुटोष्मभिरिष्वसनगुणकिणकार्कश्यानि। येनैव च ते गतः पिता पितामहः प्रपितामहो वा तमेव मा हासीस्त्रिभुवनस्पृहणीयं पन्थानम्। अपहाय कुपुरुषोचितां शुचं प्रतिपद्यस्व कुलक्रमागतां केसरीव कुरङ्गीं राजलक्ष्मीम्। देव! देवभूयं गते नरेन्द्रे दुष्टगौडभुजङ्गजग्धजीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन्महाप्रलये धरणी-

---

नयनव्याध्युपशमो जायते, एवं निशितशरसिरावेधैरित्यादि बोद्धव्यम्। संदेशः शल्याञ्जनम्। सतताञ्जलिबन्धात्करयोरूष्मसंभवः। इष्वसनं धनुः। देवभूयं

(इन्जेक्शन) से शान्त करो। लोहे की बेड़ी रूपी महौषध से पादपीठों पर विराजमान होने में चतुर उनके पैरों की बढ़ी हुई मन्दता को हटाओ। अपनी प्रतिज्ञा के खारे अक्षरों को जयशब्द सुनने वाले उनके कानों में डालकर उनकी खुजान मिटाओ। चन्दन के समान अपने चरण नख की किरणों का लेप लगाकर नहीं झुकने वाले और निश्चल उनके मस्तक के स्तम्भरोग को दूर करो। कर देने के संदेश रूपी संड़सी से धनमद की गर्मी को उगलते हुए उनके दुराचरण रूपी शल्यों को निकाल डालो। अपने मणिमय पादपीठ की किरणों की दीपिकाओं से योद्धाओं के नीरस आरोपजनित भ्रूभङ्ग के अन्धकार को मिटाओ। चरण के द्वारा लंघन करने से (अथवा भोजन न करने से) उनके सिर के गौरव (अथवा भारीपन) को मिटाने वाले औषध प्रयोग से उनके मिथ्या अभिमानरूपी महासन्निपात को पराजित करो। तुम ऐसा करो कि तुम्हारी सेवा में वे इस प्रकार हाथ जोड़े हमेशा खड़े रहें कि उनके करसम्पुट की गर्मी से धनुष के गुणों की रगड़ के कारण पड़े हुए घट्ठे मुलायम हो जायँ। जिस मार्ग से तुम्हारे पिता, पितामह, प्रपितामह गए हैं त्रिभुवन में श्लाघनीय उस मार्ग की हँसी मत उड़ाओ। कुपुरुषों के लिए उचित शोक को छोड़कर परम्परागत राजलक्ष्मी को उस प्रकार प्राप्त करो जैसे सिंह हिरनी को अपने कब्जे में कर लेता है। देव, महाराज के देवत्व प्राप्त करने पर एवं राज्यवर्धन के दुष्ट गौड़ाधिप रूपी सर्प द्वारा डंस लिए जाने से जो महाप्रलय का समय आया है इसमें तुम्हीं शेषनाग

धारणायाधुना त्वं शेषः। समाश्वासय अशरणाः प्रजाः। क्ष्मापतीनां शिरःसु शरत्सवितेव ललाटंतपान्प्रयच्छ पादन्यासान्। अहितानामभिनवसेवादीक्षादुःखसंतप्तश्वासधूममण्डलैर्नखंपचैः प्रचलितचूडामणिचक्रवालबालातपैश्चायाहि कल्माषपादताम्। अपि च हते पितर्येकाकी तपस्वी मृगैः सह संवर्धितः सहजब्राह्मण्यमार्दवसुकुमारमनाः कृतनिश्चयश्चण्डचापवनाटनिटांकारनादनिर्मदीकृतदिग्गजं गुञ्जज्ज्याजालजनितजगज्ज्वरं समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान्राजन्यकं परशुरामः, किं पुनर्नैसर्गिककायकार्कश्यकुलिशायमानमानसो मानिनां मूर्धन्यो देवः। तदद्यैव कृतप्रतिज्ञो गृहाण गौडाधिपाधमजीवितध्वस्तये जीवितसंकलनाकुलकालाकाण्डदण्डयात्राचिह्नध्वजं धनुः। न ह्ययमरातिरक्तचन्दनचर्चाशिशिरोपचारमन्तरेण शाम्यति परिभवानलपच्यमानदेहस्य देवस्य दुःखदाहज्वरः सुदारुणः। निकारसंतापशान्त्युपायपरिक्षये हि हिडिम्बाचुम्ब-

---

देवत्वम्। शेषोऽवशिष्टः, शेषभट्टारकश्च। ललाटंतपानिति प्रचण्डतोक्ता। कल्माषपादतां चित्रचरणत्वम्। राजन्यकं क्षत्रियसमूहः। रामो भार्गवः। नैसर्गिकः स्वाभाविकः। मूर्धन्यो मुख्यः। परिभवो निकारः। हिडिम्बा राक्षसी। पवनात्मजेन

की भाँति पृथिवी को धारण करने में समर्थ हो। आश्रयहीन प्रजा को आश्वासन दो। शरत्कालीन सूर्य के समान राजाओं के सिर पर ललाट को पीड़ित करने वाले अपने चरण रखो। शत्रुओं को सेवा की नवीन दीक्षा देने वाले दुःख के कारण संतप्त श्वास के धूम मण्डल से, एवं नख को पीड़ित करने वाले चूड़ामणियों के बालातप से अपने चरण को चित्रित करो। पिता के मर जाने से अकेले, मृगों के साथ पले हुए स्वाभाविक ब्राह्मणत्व के कारण मृदु और अतिकोमल मन वाले तपस्वी परशुराम ने प्रतिज्ञा करके प्रचंड बाण समूह के टंकार करने की ध्वनि से दिग्गजों को मदहीन बना देने वाले, गूँजती हुई धनुष की डोरियों की आवाज से संसार को ज्वरग्रस्त कर देने वाले, संग्राम के लिए उद्यत समस्त राजाओं के वंशों का इक्कीस बार उन्मूलन किया था। देव भी अपने शरीर की स्वाभाविक कठोरता और वज्रतुल्य मन से मानियों के मूर्धन्य हैं। तो प्रतिज्ञा करके उस अधम गौड़ाधिप के नाश के लिए प्राणों के संग्रह में लगे हुए यमराज के अचानक सैनिक कूच की सूचक झंडी के साथ धनुष उठा लीजिए। परिभव की अग्नि में पके जाते हुए शरीर वाले देव का दुःखजन्य दारुण ज्वर शत्रु के रक्त की चन्दन चर्चा के शिशिरोपचार के बिना शान्त नहीं हो सकता। परिभवजन्य सन्ताप की शान्ति के लिए शत्रु का विनाश एकमात्र उपाय है। भीम ने हिडिम्बाराक्षसी के चुम्बन के साथ

नास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतममन्दरोपायमपायि पवनात्मजेन। जामदग्न्येन च शाम्यन्मन्युशिखिशिखासंज्वरसुखायमानस्पर्शशीतलेषु क्षत्रियक्षतजह्रदेष्वस्नायि।' इत्युक्त्वा व्यरंसीत्।

देवस्तु हर्षस्तं प्रत्यवादीत्—'करणीयमेवेदमभिहितं मान्येन। इतरथा हि मे गृहीतभुवि भोगिनाथेऽपि दायादृष्टिरीर्ष्यालोर्भुजस्य। उपरि गच्छतीच्छति निग्रहाय ग्रहगणेऽपि भ्रूलता चलितुम्। अनमत्सु शैलेष्वपि कचग्रहमभिलषति दातुं करः। तेजोदुर्विदग्धानर्ककरानपि चामराणि ग्राहयितुमीहते हृदयम्। राजशब्दरुषा मृगराजानामपि शिरांसि वाञ्छति पादः पादपीठीकर्तुम्। स्वच्छन्दलोकपालस्वेच्छागृहीतानामाक्षेपादेशाय दिशामपि स्फुरत्यधरः। किं पुनरीदृशे दुर्जाते जाते जातामर्षनिर्भरे च मनसि नास्त्येवावकाशः शोकक्रियाकरणस्य? अपि च हृदयविषमशल्ये

भीमसेनेन। क्षतजह्रदेषु रक्तनडाकेषु।

इतरथापीत्यन्यथा यदीदृशं दुर्जातं जातं नाभूत्तदादावेवमद्भुतं भुजस्य भोगिनाथेऽपि दायादृष्टिः। किं पुनरीदृशे दुर्जाते व्यसने जाते संपन्ने शत्रुवृद्धिर्भवेदिति योजना। एवमुपरि गच्छतीत्यादौ बोद्धव्यम्। आक्षेपोऽपहरणम्।

रुधिर का जो आस्वाद पाया था वही मन्दर के द्वारा मथन के बिना ही प्राप्त शत्रु (दुःशासन) के रुधिर रूपी अमृत का पान करके प्राप्त किया। परशुराम ने शान्त होती हुई क्रोधाग्नि की शिखा के संताप के कारण स्पर्श से सुख पहुँचाने वाली शीतल क्षत्रियों के रुधिर-सरोवरों में स्नान किया।' यह कहकर सेनापति सिंहनाद चुप हो गया।

देवहर्ष ने उत्तर दिया—'आर्य, आपने जो कहा है वह अवश्य ही करने योग्य है। अन्यथा पृथिवी का भार धारण करते हुए राजपद पर प्रतिष्ठित होने पर भी मेरे ईर्ष्यालु भुज की विरुद्ध दृष्टि बराबर बनी रहेगी। मेरी भ्रूलता आकाश में ऊपर चलते हुए तारों को पकड़ने के लिए चल पड़ने की इच्छा करती है। हाथ चाहता है कि सामने न झुकने वाले पर्वतों की बबरी पकड़ कर झटक दें। तेज हो जाने से सूर्य के दुर्विनीत करों (हाथों अथवा किरणों) में चंवर पकड़ाने की इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न होती है। मृगराज नाम वाले शेरों के नाम में 'राज' शब्द के प्रति क्रोध के कारण मेरा पैर उनके मस्तक को अपना पाद पीठ बनाना चाहता है। स्वतन्त्र लोकपालों ने जिन दिशाओं को अपने अधीन कर रखा है उन्हें भी हर लेने की आज्ञा देने के लिए मेरा अधर स्फुरित होता है। जब कि इतना बड़ा व्यसन आ पड़ा है तो फिर क्या कहना! क्रोध से भरे हुए मन में शोक का कोई स्थान ही नहीं। जब तक अधम, चंडाल, दुष्ट, पापी जगत् में निन्दा का

मुसल्ये जीवति जाल्मे जगद्विगर्हिते गौडाधिपाधमचण्डाले जिह्नेमि शुष्काधरपुटः पोटेव प्रतिकारशून्यं शुचा शूत्कर्तुम्। अकृतरिपुबलाबलाविलोललोचनोदकदुर्दिनस्य मे कुतः करयुगलस्य जलाञ्जलिदानम्। अदृष्टगौडाधमचिताधूममण्डलस्य चा चक्षुषः स्वल्पमप्यश्रुसलिलम्। श्रूयतां मे प्रतिज्ञा—'शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन, यदि परिगणितैरेव वासरैः सकलचापचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरणायमाननिगडां निर्गौडां गां न करोमि ततस्तनूनपाति पीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयाम्यात्मानम्' इत्युक्त्वा च महासंधिविग्रहाधिकृतमवन्तिकमन्तिकस्थमादिदेश—'लिख्यताम्। आ रविरथचक्रचीत्कारचकितचारणमिथुनमुक्तसानोरुदयाचलात्, आ त्रिकूटकटककुट्टाकटङ्कलिखितकाकुत्स्थलङ्कालुण्ठनव्यतिकरात्सुवेलात्, आ वारुणीमदस्खलितवरुणवरनारीनूपुररवमुखरकुहरकुक्षेरस्तगिरेः, आ गुह्यकगेहिनीपरिमलसुगन्धिगन्धपाषाणवासितगुहागृ-

---

मुसलेन वध्यो मुसल्यः। तस्मिन् जाल्मे पापिष्ठे। पोटा नपुंसकम्। निगडो बन्धनश्रृङ्खला। तनूनपाद्वह्निः। चारणा गन्धर्वाः। काकुत्स्थो रामः। वारुणी सुरा।

पात्र गौडाधिप जीवित रह कर मेरे हृदय में विषम काँटे की तरह चुभता रहता है तब तक सूखे हुए अधर पुट वाले मेरे लिए बदला न लेने के कारण नपुंसक की भाँति रोना-धोना लज्जास्पद है। जब तक शत्रु की अबलाओं के चंचल नेत्रों के जल से दुर्दिन न कर लूं तब तक मेरे हाथों से जलांजलि कैसे दी जा सकती है? जब तक गौडाधम की चिता से उठता हुआ धुवाँ मैं नहीं देखूँ तब तक मेरे नेत्रों में आँसू कहाँ? तो सुनिए मेरी प्रतिज्ञा—'आर्य के ही पैरों की धूल लेकर प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि कुछ ही दिनों में धनुष चलाने की चपलता के घमण्ड में भरे हुए समस्त उद्धत राजाओं के पैरों की बेड़ियों की झनकार से पूर्ण करके पृथिवी को गौड़ों से रहित न बना दूं तो घी से धधकती हुई आग में पतंगे की तरह पातकी अपने आप को जला दूंगा।' यह कह कर उन्होंने अपने पास में बैठे महासन्धि-विग्रहाधिकृत अवन्तिक को आज्ञा दी—'लिखो, पूर्व में सूर्य के रथ के चक्कों की घर्घर आवाज से चकचिहाए गन्धर्व युगलों द्वारा छोड़े गए शिखर वाले उदयाचल तक, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत तक जिसके मध्यभाग में कुट्टाक की टाँकी से राम के द्वारा लंकापुरी के लूटे जाने की घटना लिखी गई है, पश्चिम में मदिरा पीकर मतवाली वरुण की श्रेष्ठ सुन्दरियों के नूपुर की आवाज से जिसकी कन्दराएं भर रही हैं ऐसे अस्ताचल तक, उत्तर में यक्षिणियों के शरीर की सुगन्धि से सुवासित पाषाणों से युक्त गुहाओं वाले गन्धमादन तक सब राजा हाथ से कर दान के लिए तैयार हों या शस्त्रग्रहण

हाय गन्धमादनात्, सर्वेषा राज्ञां सज्जीक्रियन्तां कराः करदानाय शस्त्रग्रहणाय वा, गृह्यन्तां दिशश्चामराणि वा, नमन्तु शिरांसि धनूंषि वा, कर्णपूरीक्रियन्तामाज्ञा मौर्व्यो वा, शेखरीभवन्तु पादरजांसि शिरस्त्राणि वा, घटन्तामञ्जलयः करिघटाबन्धा वा, मुच्यन्तां भूमय इषवो वा, समालम्ब्यन्तां वेत्रयष्टयः कुन्तयष्टयो वा, सुदृष्टः क्रियतामात्मा मच्चरणनखेषु कृपाणदर्पणेषु वा। परागतोऽहम्। पङ्गोरिव मे कुतो निवृत्तिस्तावद्यावन्न कृतः सर्वद्वीपान्तरसंचारी सकलनरपतिमुकुटमणिशिलालोकमयः पादलेपः।' इति कृतनिश्चयश्च मुक्तास्थानो विसर्जितराजलोकः स्नानारम्भाकाङ्क्षी सभामत्याक्षीत्। उत्थाय च स्वस्थवन्निःशेषमाह्निकमकार्षीत्। अगलच्च दर्पप्रसर इव श्रुतप्रतिज्ञस्य शाम्यदूष्मा दिवसस्त्रिभुवनस्य।

ततश्च निजाधिकारापहारभीत इव भगवत्यपि क्वापि गते गत-

कुक्षिर्वेदिः। गुह्यका यक्षाः। पङ्गोर्गतिविकलस्य। ऊष्मा औष्ण्यम्।

ततश्चेत्यादौ। प्रदोषास्थाने नातिचिरं तस्थाविति संबन्धः। शरा अपि शिली-

---

करने के लिए, दिशाओं का ग्रहण करें या सेवा चामरों का, अपने मस्तक को नम्र करें या धनुष को, आज्ञा को कानों तक करें या धनुष की मौर्वी को, अपने सिर पर चरण की धूल धारण करें या शिरस्त्र (युद्ध के लिए टोप), प्रणाम के लिए अंजलि का संघटन करें या युद्ध के लिए हाथियों को जुटाएं, भूमि का त्याग करें या बाणों का, वेत्र यष्टि धारण करें या युद्ध के लिए बर्छियाँ लें, झुक कर मेरे चरण के नखों में अपना प्रतिबिम्ब देखें (अर्थात् प्रणाम के लिए तैयार हो जाँय) अथवा युद्ध के लिए उठाए गए कृपाण के दर्पणों में अपना रूप देखें। मैं अब आया। पंगु के समान मुझे तब तक कहाँ सुख मिलेगा जब तक उस प्रकार का अपने चरण में लेप नहीं लगाता जिसे लगाते ही सब द्वीपान्तरों में विचरण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और जो सब राजाओं की मुकुट मणियों में आलोक उत्पन्न करता है।' इस प्रकार निश्चय की घोषणा करके वे बाह्य आस्थान मण्डप से उठे, एवं सब राजाओं को बिदा किया। स्नान करने की इच्छा से सभा छोड़ कर भीतर गए। स्वस्थ के समान उन्होंने वहाँ से उठ कर सारे दैनिक कार्य किए। दिन का तेज शान्त होने लगा, इस रूप में मानों हर्ष की प्रतिज्ञा सुन कर त्रिभुवन का अहंकार विगलित हो गया।

तब अपने अधिकार के छिन जाने के डर से भगवान् सूर्य भी क्षीण तेज होकर कहीं चले गए। भौंरों की आवाज से भरे तामरसवन भी मानों त्रास के कारण संकुचित होने

तेजस्यहिमभासि, तामरसवनेष्वपि निगूढशिलीमुखालापेषु त्रासादिव संकुचत्सु, विहगगणेष्वपि समुपसंहृतनिजपक्षविक्षेपनिश्चलेषु भियेवाप्रकटीभवत्सु, भुवनव्यापिनीं संध्यां प्रतिज्ञामिव मानयति नतशिरसि घटिताञ्जलिवने जने सकले, स्वपदच्युतिचकितदिक्पालदीयमानाभ्रंलिहलोहप्राकारवलयकलितास्विव बहलतिमिरमालातिरोधीयमानासु दिक्षु प्रदोषास्थाने नातिचिरं तस्थौ। नपन्नृपलोकलोलांशुकपवनकम्पितशिखैर्दीपिकाचक्रवालैरपि प्रणम्यमान इव प्राहिणोल्लोकं प्रतिषिद्धपरिजनप्रवेशश्च शयनगृहं प्राविशत। उत्तानश्च मुमोचाङ्गानि शयनतले। दीपद्वितीयं च तमभिसर इव लब्धावसरस्तरसा भ्रातृशोको जग्राह। जीवन्तमिव हृदये निमीलितलोचनो ददर्शाग्रजम्। उपर्युपरि भ्रातृजीवितान्वेषिण इव प्रसस्रुः श्वासाः। धवलांशुकपटान्तेनेव चाश्रुजलप्लवेन मुखमाच्छाद्य निःशब्दमतिचिरं रुरोद। चकार च चेतसि कथं नामाकृतेस्तादृश्या युक्तः परिणामोऽयमीदृशः। पृथुशिलासंघातकर्कशकाय-

---

मुखाः। सहाया अपि पक्षाः। अभिसराश्चौराः।

लगे। पक्षी भी मानों डर के मारे अपने डैने सिकोड़ कर निश्चल भाव से छिप गए। सब लोग भुवन में व्याप्त संध्या को ही प्रतिज्ञा के समान मान कर सिर झुकाकर और हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगे। चारों ओर अंधकार से दिशाएँ तिरोहित होने लगीं, मानों दिक्पालों ने अपनी पदच्युति होने के डर से लोहे के आकाशचुम्बी प्राकार खड़े कर दिए हों। देव हर्ष प्रदोषास्थान में थोड़ी देर बैठे। पवन से कम्पित दीपशिखा के समान उन्हें प्रणाम करते हुए राजाओं के अंशुक चंचल हो उठे। सब लोगों को भेज कर स्वयं वे परिजनों का प्रवेश रोक कर शयनगृह में गए। वहाँ शयनतल पर उतान हो अङ्गों को ढीले छोड़ पड़ रहे। वहाँ एक दीप जल रहा था और दूसरे वे थे। उसी समय भाई के शोक ने अवसर पाकर चोर के समान उन्हें वेग से पकड़ लिया। आँखें बन्द करके उन्होंने अपने हृदय में मानों जीते हुए अपने बड़े भाई राज्यवर्धन को देखा। मानों भाई के प्राणों को ढूँढ़ने के लिए उनके श्वास ऊपर-ऊपर बढ़ने लगे। आँसू से डबडबाए अपने मुँह को सफेद अंशुक के अग्रभाग से ढंक कर बहुत देर तक बिना शब्द के सिसक-सिसक कर रोने लगे। मन में सोचने लगे कि उस तरह की आकृति का भी यह नतीजा ठीक कैसे है? पिताजी के शरीर की बनावट शिलासंघात जैसी थी और जैसे पर्वत से लोहा

बन्धात्तातादचलादिव लोहधातुः कठिनतर आसीदार्यः। कथं चास्य मे हतहृदयस्यार्यविरहे सकृदपि युक्तं समुच्छ्वसितुम्। इयं सा प्रीतिर्भक्तिरनुवृत्तिर्वा। बालिशोऽपि कः संभावयेदार्यमरणे मज्जीवितम्। तत्तादृशमैक्यमेकपद एव क्वापि गतम्। अयत्नेनैव हतविधिना पृथक्कृतोऽस्मि। दग्धरोषान्तरितशुचा सुचिरं रुदितमपि न मुक्तकण्ठं गतघृणेन मया। सर्वथा लूतातन्तुच्छटाच्छिद्रुरास्तुच्छाः प्रीतयः प्राणिनाम्। लोकयात्रामात्रनिबन्धना बान्धवता यत्राहमपि नाम पर इवार्ये स्वर्गस्थे स्वस्थ इवासे। किंच दैवहतकेन फलमासादितमीदृशि परस्परप्रीतिबन्धनिर्वृतहृदये सुखभाजि भ्रातृमिथुने विघटिते। तथा च चन्द्रमया इव जगदाह्लादिनो लोकान्तरीभूतस्य लग्नचिताग्नय इवार्यस्य त एव दहन्ति गुणाः। इत्येतानि चान्यानि च हृदयेन पर्यदेवत। प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरेव प्रतीहारमादिदेशाशेषगजसाधनाधिकृतं स्कन्दगुप्तं द्रष्टुमिच्छामीति।

लूता तन्तुच्छटा जालकारसूत्रजालम्। लोकयात्रा लोकाचारः। किं फलमासादितम्, न किंचिदित्यर्थः। पर्यदेवत शुशोच।

और भी कठोर उत्पन्न होता है उसी प्रकार आर्य थे। कैसे मेरे इस मुए हृदय का आर्य के विरह में एक बार भी सांस लेना ठीक है? यह क्या प्रीति है या भक्ति है या अनुवर्तन है? मूर्ख भी कौन होगा जो आर्य के मरने पर मेरे जीवित रहने की सम्भावना करे? उस प्रकार का वह अभिन्न साथ तत्काल ही कहीं चला गया। दुष्ट विधाता ने भाई से मुझे अनायास ही अलग कर दिया। रोष के कारण शोक के दब जाने से निर्दय मैं देर तक मुक्तकंठ से रो भी न सका। सर्वथा मकड़ी के जाले के समान प्राणियों का तुच्छ प्रेम थोड़े ही में टूट जाता है। सचमुच भाई-बन्धु का नाता लोकव्यवहार मात्र के लिए है, जहाँ मैं भी आर्य के स्वर्ग चले जाने पर पराये की भाँति स्वस्थ होकर पड़ा हूँ। परस्पर प्रेम-भरे सुखपूर्वक रहने वाले दो भाइयों के अलग हो जाने से दुष्ट दैव को क्या लाभ हुआ? आर्य के ही गुण जो चन्द्र की ज्योत्स्ना के समान संसार को आह्लादित करते थे, अब उनके लोकान्तर में चले जाने से चिता में लगी हुई अग्नि के समान दाह उत्पन्न कर रहे हैं।' इस प्रकार हृदय से वे रुदन करते रहे। रात बीतने पर प्रातःकाल ही उन्होंने प्रतीहार को आज्ञा दी—'मैं गजसाधनाधिकृत स्कन्दगुप्त से मिलना चाहता हूँ।'

अथ युगपत्प्रधावितबहुपुरुषपरम्पराहूयमानः, स्वमन्दिरादप्रतिपालितकरेणुश्चरणाभ्यामेव संभ्रान्तः, ससंभ्रमैर्दण्डिभिरुत्सार्यमाणजनपदः, पदे पदे प्रणमतः प्रतिदिशमिभभिषग्वरान्वरवारणानां विभावरीवार्ताः पृच्छन्नुच्छ्रितशिखिपिच्छलाञ्छितवंशलतावनगहनगृहीतदिगायामैर्विन्ध्यवनैरिव वारणबन्धविमर्दोद्योगागतैः, पुरःप्रधावद्भिरनायत्तमण्डलैराधोरणगणैश्च मरकतहरितघासमुष्टीश्च दर्शयद्भिर्नवग्रहगजपतींश्च प्रार्थयमानैश्च लब्धाभिमतमत्तमातङ्गमुदितमानसैश्च सुदूरमुपसृत्य नमस्यद्भिरात्मीयमातङ्गमदागमांश्च निवेदयद्भिः, डिण्डिमाधिरोहणाय च विज्ञापयद्भिः, प्रमादपतितापराधापहृतद्विरददुःखधृतदीर्घश्मश्रुभिरग्रतो गच्छद्भिः, अभिनवोपसृतैश्च कर्पटिभिर्वारणाप्तिसुखप्रत्याशया धात्रमानैः, गणिकाधिकारिगणैश्चिरलब्धान्तरैरुच्छ्रितकरैः, कर्मण्यकरेणुकासंकथनाकुलैरुल्लासितपल्लवचिह्नाभिररण्यपालपङ्क्तिभिश्च, निष्पादितनवग्रहनागनिबहनिवेदनोद्यताभिरुत्तम्भिततुङ्गतोत्रवनाभिर्महामात्रपेटकैश्च प्रकटितकरिकर्मचर्मपुटैः, अभि-

---

अथेत्यादौ। स्कन्दगुप्त एतैरेतैः क्रियमाणकोलाहलो राजकुलं विवेशेति संबन्धः। भिषग्वरान्वैद्योत्तमान्। बन्धो रोधनमपि। अनायत्ता हस्तिपार्श्वरक्षिणः। आधोरणा गजारोहाः। डिण्डिमः पटहः। गणिका गजानां प्रतिलोभनार्था हस्तिनी। कर्मण्यकरेणुका करिग्रहकुशला करिणी। तुदन्त्यनेनेति तोत्रं प्रेषणकम्। महामात्राः प्रधानहस्त्यारोहाः। तेषां पेटकैः समूहैः। करिणां कर्मार्थे युद्ध-

---

आज्ञा पाते ही अनेक युवक स्कन्दगुप्त को ताबड़तोड़ बुलाने पहुंचे। वह अपने भवन से निजी हथिनी की प्रतीक्षा किए बिना पैदल ही झटपट राजकुल के लिए चल पड़ा। घबराए हुए दण्डधारी सैनिक उसके सामने से लोगों की भीड़ हटाने लगे। पद-पद पर चारों ओर से प्रणाम करते हुए हाथियों के बारे में चिकित्सकों से पूछता जाता था कि पिछली रात उनका क्या हाल रहा? उसके चारों ओर गजकटक का शोर हो रहा था। विन्ध्याचल के वनों के समान ऊँचे बांस के सिरे पर मोर के पंख बांधे दिशाओं में व्याप्त होने वाले, हाथियों को हांका देकर पकड़ने के लिए दूर-दूर से बुलाए गए, हाथियों के पार्श्वरक्षी लोग और महावत, जो मरकत के समान हरी-हरी घास की मूठ देकर नए पकड़ कर लाए गए हाथियों को परचा रहे थे और मतवाले हाथियों के बात मान लेने पर प्रसन्न हो रहे थे, दूर से दौड़ कर उसे प्रणाम करने लगे, अपने अपने हाथियों के यौवन के कारण मद फूट कर बहने की सूचना देने लगे। बड़ी अवस्था के हाथियों के डिंडिमाधिरोहण के लिए निवेदन करने लगे। कुछ महावत गिर जाने के अपराध के कारण हाथी के छिन जाने के

नवगजसाधनसंचरणवार्तानिवेदनविसर्जितैश्च नागवनवीथीपालदूतवृन्दैः, प्रतिक्षणप्रत्यवेक्षितकरिकवलकूटैश्च, कटभङ्गसंग्रहं ग्रामनगरनिगमेषु निवेद्यमानैः, कटककदम्बकैः क्रियमाणकोलाहलः, स्वामिप्रसादसंभृतेन महाधिकाराविष्कारेण स्वाभाविकेन चावष्टम्भाभोगेनोदासीनोऽप्यादिशन्निव, असंख्यकरिकर्णशङ्खसंपत्संपादनाय समुद्रानाज्ञापयन्निव, शृङ्गारगैरिकपङ्काङ्गरागसंग्रहाय गिरीन्मुष्णन्निव, दिग्गजाधिकारं ककुभामैरावतमिवापहरन्हरेर्हरपदभरनमितकैलासगिरिगुरुभिः पादन्यासैर्गुरुभारग्रहणगर्वमुर्व्याः संहरन्निव, गतवशविलोलस्य चाजानुलम्बस्य बाहुदण्डद्वयस्य विक्षेपैरालानशिलास्तम्भमालामिवोभयतो निखनन्नीषदुत्तुङ्गलम्बेनाधरबिम्बे-

---

शिक्षायै। चर्मपुटः चर्मकृतो हस्त्याकारः। कटभङ्गः प्रत्यग्रम्। गोधूमादियवसम्, घास इत्यर्थः। निगमा वणिक्पथाः। कटका हस्तिपटनियुक्ताः, अग्रेसरा वेत्रिण इत्यन्ये। गुणाः शौर्याद्याः, मौर्वी च गुणः।

दुःख से लम्बी दाढ़ी बढ़ाए उसके आगे आगे चल रहे थे। बाहर से नये पहुंचे हुए सिर पर चीरा बांधे हाथियों के परिचारक हाथियों की सेवा के काम मिलने की प्रत्याशा में खुशी से दौड़ रहे थे। हाथियों को फसाने के काम में फुसलावा देने वाली गणिका संज्ञक हथिनियों के अधिकारी बहुत दिनों से आकर प्रतीक्षा कर रहे थे और अवसर पाकर काम में सिद्ध हथिनियों के करतब हाथ उठा कर सुनाने लगे। पल्लव के चिह्न वाले अरण्यपाल लोग नये पकड़े हुए गजयूथों को लेकर हाथ में ऊँचे अंकुश लिए कटक में उपस्थित थे। महामात्र लोग चमड़े का मरा हुआ हाथी का पुतला तैयार करके उसके द्वारा हाथियों को युद्ध की शिक्षा देते थे। नागवीथीपालों के भेजे हुए दूत अभिनव गजयूथ के संचरण की खबर देने के लिए आए हुए थे। कटक में एक एक क्षण हाथियों के लिए चारे की बाट देखने में नियुक्त झुण्ड के झुण्ड प्यादे हर गांव, नगर, मंडी में चारा संग्रह करके सूचना देते थे। स्वामी के प्रसाद से प्राप्त गजसाधनाधिकृत के पद की प्रतिष्ठा से एवं स्वाभाविक गर्वजनित गम्भीरता से वह चुपचाप होने पर आदेश देता हुआ सा लग रहा था। मानों समुद्रों को यह आज्ञा दे रहा था कि संख्यातीत हाथियों के कान में अलंकार के रूप में लटकाने के लिए शंख उत्पन्न करो। हाथियों के शृङ्गार के लिए गैरिक पंक के अंगराग के संग्रह के लिए पर्वतों को मानों लूट रहा था। दिशाओं के दिग्गजों के पद पर प्रतिष्ठित ऐरावत के अधिकार को मानों छीन रहा था। शिव के पदभार से झुके हुए कैलास पर्वत के समान भारी अपने पादन्यासों से वराहरूपधारी विष्णु के पृथिवी को उठाने से उत्पन्न गर्व को मानों कम कर रहा था। जानुभाग तक लम्बे उसके दोनों हाथ चलने से हिल रहे

नामृतरसस्वादुना नवपल्लवकोमलेन कवलेनेव श्रीकरेणुकां विलोभयन्नि-अनूपवंशदीर्घं नासावंशं दधानः, अतिस्निग्धमधुरधवलविशालतया पीत-क्षीरोदेनेव पिबन्नीक्षणयुग्मायामेन दिशामायामं मेरुतटादपि विकटवि-पुलालिकः, सततमविच्छिन्नच्छत्रच्छायाप्ररूढिवशादिव नितान्तायतनी-लकोमलच्छविसुभगेन स्वभावभङ्गुरेण कुन्तलबालवल्लरीवेल्लितविलासिना लुनन्निव, लुप्तालोकानर्ककरान्बर्बरकेणारिपक्षपरिक्षयपरित्यक्तकार्मुकक-र्मापि सकलदिगन्तश्रूयमाणगुरुगुणध्वनिः, आत्मस्थसमस्तमत्तमातङ्गसा-

थे, मानों अपने दाँतों और हाथियों को मारने के लिए पत्थर के आलानस्तम्भ गाड़ रहा था। अमृत के समान स्वादु, नवपल्लवसदृश कोमल, कुछ ऊँचे और लटके हुए अपने अधर से मानों वह श्रीकरेणुका (सिंगार-पटार से सजाई हुई हथिनी) को लुभा रहा था। उसका नासिकावंश अपने राजा के वंश के समान ही लम्बा था। मानों क्षीरसमुद्र को ही पी लेने के कारण उसकी आँखें अत्यन्त स्निग्ध, मधुर, धवल एवं विशाल थीं, जिनसे दिशाओं के आयाम को भी मानों पान करता जा रहा था। उसका ललाट मेरु के तट से भी कहीं अधिक विकट और फैला हुआ था। उसकी बबरी हमेशा छत्र की छाया में ही बढ़ते रहने से मानों अत्यन्त नील और कोमल हो गई थी। बालों के गुच्छे मजरी के समान घुमावदार थे, मानों वह उनसे सूर्यकिरणों के आलोक को भी मलिन कर रहा था। वह शत्रुओं के विनाश के लिए धनुष धारण करने का कर्म छोड़ चुका था, फिर भी समस्त दिशाओं में उसके गुणों की गम्भीर ध्वनि सुन पड़ती थी[1]। मतवाले हाथियों की सेना उसके अधीन थी, फिर भी उसे मद छू भी न सका था[2]। वह ऐश्वर्यसम्पन्न और स्नेह से भरा था[3]। वह पार्थिव (राजा) और गुणमय था[4]। दान से भरे हाथियों पर जैसे वह

---

१. विरोध पक्ष यह कि धनुष कर्म छोड़ देने पर दिशाओं में गुणों अर्थात् धनुष के तन्तुओं की टंकार कैसे सुन पड़ेगी ? समाहार पक्ष यह है कि उसके विनय आदि गुणों की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई थी।

२. विरोध—मदवाले हाथी को अपने अधीन रखने पर उनके मद का स्पर्श होना स्वाभाविक है। परिहार पक्ष—मद अर्थात् गर्व ने उसका स्पर्शन नहीं किया था।

३. विरोध—जो भूतिमान् अर्थात् भस्मयुक्त है वह स्नेहमय कैसे हो सकता है ? परिहार—भूतिमान् अर्थात् वह ऐश्वर्यसम्पन्न और स्नेह से भरा था।

४. विरोध—पार्थिव अर्थात् घट के समान पृथिवी से जो उत्पन्न हो वह पट के समान गुणमय अर्थात् तन्तु से बना कैसे हो सकता है ? परिहार—पार्थिव अर्थात् राजा एवं गुणमय अर्थात् गुणवान् था।

धनोऽप्यस्पृष्टो मदेन भूतिमानपि स्नेहमयः पार्थिवोऽपि गुणमयः करिणामिव दानवतामुपरि स्थितः, स्वामितामिव स्पृहणीयां भृत्यतामप्यपरिभूतामुद्वहन्नेकभर्तृभक्तिनिश्चलां कुलाङ्गनामिवानन्यगम्यां प्रभुप्रसादभूमिमारूढः, निष्कारणबान्धवो विदग्धानाम्, अभृतभृत्यो भजताम्, अक्रीतदासो विदुषाम, स्कन्दगुप्तो विवेश राजकुलम्। दूरादेव चाभयकरकमलावलम्बितं स्पृशन्मौलिना महीतलं नमस्कारमकरोत्।

उपविष्टं च नातिनिकटे तं तदा जगाद देवो हर्षः—'श्रुतो विस्तर एवास्यार्यव्यतिकरस्यास्मच्चिकीर्षितस्य च। अतः शीघ्रं प्रवेश्यन्तां प्रचारनिर्गतानि गजसाधनानि। न क्षाम्यत्यतिस्वल्पमप्यार्यपरिभवपीडापावकः प्रयाणविलम्बम्।' इत्येवमभिहितश्च प्रणम्य व्यज्ञापयत्—'कृतमवधारयतु स्वामी समादिष्टं किंतु स्वल्पं विज्ञाप्यमस्ति भर्तृभक्तेः। तदाकर्णयतु देवः। देवेन हि पुष्यभूतिवंशसंभूतस्याभिजनस्याभिजात्यस्य सहजस्य तेजसो

मदो गर्वोऽपि। भूतिः संपत्, भस्म च। पार्थिवो राजा, पृथिव्यारब्धश्च। गुणास्तन्तवोऽपि। नहि घटः पटो भवतीति विरोधः। दानं मदः, वितरणं च।

प्रचारो भक्षणम्। गजसाधनानि करिसैन्यानि। अभिपङ्गा अभिभवाः।

शासन करता था उसी प्रकार दानियों में भी सबसे ऊपर रहने वाला था। अपनी स्वामिता के समान स्पृहणीय और कभी अभिभूत न होने वाली भृत्यता को धारण कर रहा था। कुलांगना के समान एक ही पति में निश्चल भक्ति रखने वाली और किसी दूसरे का गमन न करनेवाली अपने स्वामी की प्रसन्नता उसे उपलब्ध थी। वह विदग्ध लोगों का अकारण बन्धु था, सेवा करने वालों का अवैतनिक भृत्य था, और विद्वानों का भी बिना वेतन का दास था। उसने दूर ही से अपने दोनों कर-कमलों का अवलम्बन लेकर मस्तक से पृथिवी का स्पर्श करते हुए नमस्कार किया।

स्कन्दगुप्त सम्राट् के कुछ दूर बैठ गया। तब देव हर्ष ने उससे कहा—'आर्य के हत्याकाण्ड के बारे में तथा हमने जो निश्चय किया है वह आपने विस्तार से सुन लिया होगा। अतः शीघ्र ही चरने के लिए बाहर गई हुई गजसेना को स्कन्धावार में लौटने की आज्ञा दी जाय। आर्य की हत्या से उत्पन्न कष्ट के कारण मैं क्षण भर भी शत्रु पर धावा बोलने में विलम्ब सह नहीं सकता।' हर्ष के ऐसा कहने पर स्कन्दगुप्त ने प्रणाम करके निवेदन किया—'देव, आपने जो आज्ञा दी है उसे पूरी ही समझें, किन्तु स्वामी के प्रति भक्ति के कारण थोड़ा-सा मेरा निवेदन है। कृपया देव उसे सुनें। देव ने जो यह

दिक्करिकरप्रलम्बस्य बाहुयुगलस्यासाधारणस्य च सोदरस्नेहस्य सर्वं सदृशमुपक्रान्तम्। काकोदराभिधानाः कृपणाः कृमयोऽपि न मृष्यन्ति निकारं किमुत भवादृशास्तेजसां राशयः। केवलं देवराज्यवर्धनोदन्तेन कियदपि दृष्टमेव देवेन दुर्जनदौरात्म्यम्। ईदृशाः खलु लोकस्वभावाः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेशं प्रतिद्वीपं प्रतिदिशं च भिन्ना वेशाश्चाकाराश्चाहाराश्च व्याहाराश्च व्यवहाराश्च जनपदानाम्। तदियमात्मदेशाचारोचिता स्वभावसरलहृदयजा त्यज्यतां सर्वविश्वासिता। प्रमाददोषाभिषङ्गेषु श्रुतबहुवार्त एव प्रतिदिनं देवः। यथा नागकुलजन्मनः सारिकाश्रावितमन्त्रस्यासीन्नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्। शुकश्रुतरहस्यस्य च श्रीरशीर्यत श्रुतवर्मणः श्रावस्त्याम्। स्वप्नायमानस्य च मन्त्रभेदोऽभून्मृत्यवे मृत्तिकावत्यां सुवर्णचूडस्य। चूडामणिलग्नलेखप्रतिबिम्बवाचिताक्षरा च चारुचामीकरचामर-

---

प्रतिग्राममिति। उपक्रान्तं निदर्शयितुमाह—यथेति। अत्र कथा—नागसेननामा पद्मावत्यां राजा मन्त्रिणमर्धराज्यहरमपाकर्तुं शारिकासमक्षं मन्त्रमकरोत्। स चापि मन्त्री शारिकामुखाद्विज्ञाय विस्रम्भपूर्वकं त दण्डेनावधीदिति। श्रावस्त्यां च श्रुतवर्मा पूर्ववच्छुकश्रावितमन्त्रो राज्याच्चुच्याव। अनेन च गूढमन्त्रेण यत्नाद्भाव्यमित्युक्तम्। मृत्तिकावत्यां सुवर्णचूडो नाम राजा कंचिद्विस्रम्भपूर्वकं जिघृक्षन्मन्त्रितवांस्तदेव तस्मै विललास। ततस्तत्पूर्वं तत्प्रयुक्तेन विश्वासिना शिरोरक्षकेण स्वस्वामिप्रयुक्तेन व्यापादित इति। अनेन च कुलस्वभावाद्यपरीक्ष्य न

उपक्रम किया है वह पुष्यभूति के वंश में उत्पन्न होने वाले आपके और परम्परागत आपके तेज के एवं दिग्गज की सूँड़ के समान लम्बी आपकी भुजाओं और सहोदर भाई के प्रति आपके असाधारण स्नेह के सर्वथा अनुकूल है। बेचारे साँप जैसे कीड़े भी जब अपना परिभव नहीं सहन कर पाते तो आपके जैसे तेजस्वियों की बात क्या? केवल आपने देव राज्यवर्धन के इस वृत्तान्त से दुर्जनों के अत्याचार को कुछ ही देखा। निश्चय ही अब के लोगों के ऐसे स्वभाव हैं जो कि प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक नगर, प्रत्येक द्वीप और प्रत्येक दिशा में सारे जनपदों के भिन्न भिन्न आकार, भिन्न-भिन्न आहार, भिन्न-भिन्न बातचीत एवं व्यवहार हो गए हैं। अतः स्वभाव से ही सरल हृदय होने के कारण अपने देश के अनुकूल सब पर विश्वास कर लेने की भावना का परित्याग करें। प्रतिदिन देव ने प्रमाद दोष से राजाओं पर आने वाली विपत्तियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना ही है। जैसा कि पद्मावती नगरी के नागवंशी राजा का नाश सारिका के गुप्त विचार देने पर (उसी का आधा राज्य हड़प कर बैठे हुए मंत्री द्वारा) हो गया। श्रावस्ती के राजा

ग्राहिणी यमतां ययौ यवनेश्वरस्य। लोभबहुलं च बहुलनिशि निधानमुत्खनन्तमुत्खातखड्गप्रमाथिनी ममन्थ माथुरं बृहद्रथं विदूरथवरूथिनी। नागवनविहारशीलं च मायामातङ्गाङ्गान्निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः। अतिदयितलास्यस्य च शैलूषमध्यमध्यास्य मूर्धानमसिलतया मृणालमिवालुनादग्निमित्रात्मजस्य सुमित्रस्य मित्रदेवः। प्रियतन्त्रीवाद्यस्यालाबुवीणाभ्यन्तरशुषिरनिहितनिशिततरवारयो गान्धर्वच्छात्रच्छद्मानः

कार्यो भृत्य इत्युक्तम्। यवनेश्वरः केनचिच्छत्रुणासाद्य व्यापादितुमिष्टः। स्वसुहृदा शत्रुप्रहितलेखेन बोधितः। लेखपृष्ठे च तेन लिखितम् 'स्वयं वाचयितव्यो लेख' इति। ततो यवनेश्वरस्य स्वयं वाचयतश्चूडामणिप्रतिबिम्बितान्यक्षराणि वाचयित्वा तत्प्रहिता चामरग्राहिणी प्रभवे निवेद्य तदाज्ञया तं जघानेति। अनेन सूक्ष्मोऽपि रहस्यभेदहेतू रक्षणीय इत्युक्तम्। विदूरथप्रयुक्तेन नरेन्द्रवृन्दप्रतारितो बृहद्रथो नाम राजा लोभवशात्खन्यवादे कृष्णनिशि प्रवृत्तस्तत्सेनया प्रहत इति। अतः प्रवर्तितव्यमित्युक्तम्। महासेनो नामोज्जयिनीपतिः स्वदुहितरं वासवदत्ताख्यामुदयनाय दित्सुः कपटजं नागं वीथ्यां प्रसज्य छद्मप्रहितैः शरैर्नामगुणान्प्रख्या-

श्रुतवर्मा का राज्य भी सुग्गे के द्वारा रहस्य की बात जान लेने पर हाथ से चला गया। मृत्तिकावती के राजा सुवर्णचूड़ का निद्रा की अवस्था में बड़बड़ाने से हुआ मंत्रभेद ही उसकी मृत्यु का कारण बना। शत्रु के द्वारा रहस्य जानने के लिए भेजी हुई चामरग्राहिणी बाचते समय चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित मित्र का गुप्त लेख पढ़कर यम के रूप में यवनेश्वर की हत्या का कारण बन गई। राजाओं के बहकाने पर अँधेरी रात में जमीन से रत्न का खजाना उखाड़ते हुए अत्यन्त लोभी मथुरा के राजा बृहद्रथ को विदूरथ की सेना ने तलवार खींच कर मार डाला। उज्जयिनी के राजा महासेन के मायाहस्ती के शरीर में छिपे हुए सैनिकों ने वत्सराज को नागवन में विहार के लिए छल से ले जाकर मार डाला। मित्रदेव ने नट का भेस बनाकर नृत्य के शौकीन अग्निमित्र के पुत्र सुमित्र का सिर मृणाल के समान कतर दिया। शत्रु के पुरुषों ने संगीत सीखने के बहाने कपट से शिष्य का भेस बनाकर संगीत के प्रेमी अश्मक के राजा शरभ का सिर वीणा के भीतर छिपाकर रखी हुई तलवारों से काट डाला। अनार्य सेनापति पुष्पमित्र ने सेना को देखने के बहाने सारे सैनिकों को मिलाकर प्रज्ञा में दुर्बल अपने स्वामी मौर्य राजा बृहद्रथ को समाप्त कर डाला। नये आविष्कारों में कुतूहल रखने वाला चण्डीपति युद्ध में हारे यवनों के द्वारा निर्मित आकाश में उड़ने वाले यंत्रयान से जाने कहाँ पहुँचा दिया गया। अचरज की बातों में कुतूहल दिखाने वाला शिशु नागपुत्र काकवर्ण युद्ध में जीतकर लाए हुए यवन से निर्मित

चिच्छिदुरश्मकेश्वरस्य शरभस्य शिरो रिपुपुरुषाः। प्रज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्पमित्रः स्वामिनम्। आश्चर्यकुतूहली च दण्डोपनतयवननिर्मितेन नभस्तलयायिना यन्त्रयानेनानीयत क्वापि काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचकृते निस्त्रिंशेन। अतिस्त्रीसङ्गरतमनङ्गपरवशं शुङ्गममात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यञ्जनया वीतजीवितमकारयत्। असुरविवरव्यसनिनं चापजह्रुरपरिमितरमणीमणिनूपुरझणझणाह्लादरम्यया मागधं गोधनगिरिसुरुङ्गया स्वविषयं मेकलाधिपमन्त्रिणः। महाकालमहे च महामांसविक्रयवादवातूलं वेतालस्तालजङ्घो जघान जघन्यजं

प्द्योदयनं लोभितवान्। सोऽप्यविचार्यैव गजग्रहग्राहिकया कतिपयाप्तपरिवारो घोषवतीं वीणामादाय तत्र गतः कपटकुञ्जरान्तर्गतैर्महासेनसैनिकैः संहृत इति। अतो नाल्पपरिवारैः संवीक्ष्य च विस्रब्धैर्भाव्यमित्युक्तम्। सुमित्रो राजा मित्रव्यसनी स्त्रीजनपरिवार इव नटजने विस्रब्धो मित्रदेवेन नटत्वमाश्रित्य हतः। स च योगचूर्णावचूर्णितस्तिरोहितो बभूवेति। अतो व्यसनिभिः प्रकृतलोकविश्वासिभिश्च न भाव्यमित्युक्तम्। शरभोऽतिशयितान्वाश्मवतः प्रवेशमदादिति गूढायुधै रिपुपुरुषैर्हत इति। अतो मनागपि व्यसनं वर्जनीयमित्युक्तम्। अकार्यमत्र परदारागमनादि। तरवारिरेकधारः खड्गः। प्रज्ञेत्यादि स्पष्टा कथा। अनेन च भृत्यबलदर्शनमसंनद्धेनं कार्यमित्युक्तम्। मौर्यमिति गोत्रनाम। काकवर्णो यवनान्विजित्य तैश्च स्वपुरुषानुपायनीकृत्य यन्त्रयानैस्तद्वृत्तैः परदारादीन्वाच्छन्न्यवनैरात्मदेशं प्रापय्य निहत इति। अतः शत्रुप्राभृतेषु भृत्येषु न विश्वसनीयमित्युक्तम्। देवीव्यञ्जनया महिषीव्याजया। मेकलाधिपमन्त्रिभिर्वातिकच्छद्मभिरहिविवरं साधितम्। तपसास्माभिरित्युक्त्वा मागधो गुहाद्वारप्रतिद्वारैर्बद्धोऽभूत्। गोधनगिरिः सूर्याख्यः पर्वतः। सुरुङ्गा विवरम्। मेकलो विन्ध्याद्रिः। मह

आकाशगामी यंत्रयान में उड़ाकर कहीं दूर किसी नगर नामक राजधानी के बाहर ले जाया गया और वहाँ तलवार से उसका कंठ काट दिया गया। अमात्य वसुदेव ने स्त्रियों के साथ दिन-रात रहने वाले कामी राजा शुंग को देवभूत की दासी की पुत्री को रानी के भेष में भेजकर मरवा डाला। मेकलाधिप के सचिव पातालदर्शन के प्रेमी मगधराज को अनेक सुन्दरियों के मणिनूपुर की आवाज से गूँजते हुए गोवर्धन पर्वत के सुरंग मार्ग से अपने देश में हरकर ले गए। पुणिक के पुत्र प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन को जब वह महाकाल के उत्सव में महामांस विक्रय के सम्बन्ध में वाद विवाद कर रहा था,

प्रद्योतस्य पौणकिं कुमारं कुमारसेनम्। रसायनरसाभिनिवेशिनश्च वैद्यव्यञ्जनाः सुबहुपुरुषान्तरप्रकाशितौषधिगुणा गणपतेर्विदेहराजसुतस्य राजयक्ष्माणमजनयन्। स्त्रीविश्वासिनश्च महादेवीगृहगूढभित्तिभाग्भूत्वा भ्राता भद्रसेनस्याभवन्मृत्यवे कालिङ्गस्य वीरसेनः। मातृशयनीयतूलिकातलनिपण्णश्च तनयोऽन्यं तनयमभिषेक्तुकामस्य दध्रस्य करूषाधिपतेरभवन्मृत्यवे। उत्सारकरुचिं च रहसि ससचिवमेव दूरीचकार चकोरनाथं शूद्रकदूतश्चन्द्रकेतुं जीवितात्। मृगयासक्तस्य च मथ्नतो गण्डकानुद्दण्डनड्वलनलवनानिलीनाश्च चम्पाधिपचमूचरभटाश्चामुण्डीपतेराचेमुः प्राणान्पुष्करस्य। बन्दिरागपरं च परप्रयुक्ता जयशब्दमुखरमुखा मल्ला मौखरिं मूर्खं क्षत्रवर्माणमुदखनन्। अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्च

उत्सवः। वातूलं व्यसनोन्मत्तप्रायम्। जघन्यजं कनीयांसम्। पुणको गोत्रविशेषः। तत्र भवः पौणकिः। वैद्यकं व्यञ्जयन्ति प्रकाशयन्तीति वैद्यव्यञ्जनाः। राजयक्ष्माणं क्षयरोगम्। दध्राख्यस्य करूषाधिपतेः। पितुस्तनयो मृत्यवेऽभवदिति प्राक्तनक्रियया संगतिः। गण्डकाः खड्गाख्याः प्राणिनः। चामुण्डीति नगरीनाम। आचेमुरभक्षयन्। शकानामाचार्यः शकाधिपतिः। चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानश्चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन रहसि व्यापादित

किसी तालजघवंश के पुरुष ने बेताल का रूप रखकर मार डाला। रसायन के रस का प्रयोग करने वाले कपट के बने हुए वैद्यों ने मिले हुए बहुत लोगों द्वारा औषधि के लाभ को ख्यापित करके विदेहराज के पुत्र गणपति को राजयक्ष्मा का रोगी बना दिया। कलिङ्ग के राजा भद्रसेन का भाई वीरसेन स्त्री पर विश्वास करने वाले उसी की पटरानी के घर में छिपकर उसकी मृत्यु का कारण बन गया। बड़े पुत्र को राज्य देने की इच्छा रखने वाले करुष के राजा दध्र को माता की शय्या पर पहले से पहुँचे हुए छोटे पुत्र ने उसे मार डाला। शूद्रक के दूत ने चकोर नामक देश के राजा चन्द्रकेतु को जो द्वारपाल के द्वारा शूद्रक का अपमान कर चुका था, सचिवों के साथ प्राणों से अलग कर दिया। ऊँचे ऊँचे डंठलों वाले नड़ के जंगलों में छिपकर बैठे हुए चम्पानगरी के राजा के सैनिकों ने गैंडों का शिकार करने में लगे हुए चामुण्डीपति पुष्कर के प्राण ले लिये। मूर्ख मौखरि क्षत्रवर्मा को, जो वैतालिकों से अपनी प्रशंसा सुनने का प्रेमी था, शत्रु के भेजे हुए मंल क्षत्रियों ने उसका जयजयकार करते हुए उखाड़ फेंका। शत्रु के नगर में दूसरे की पत्नी (चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी) की कामना करने वाले शकपति को चन्द्रगुप्त ने स्त्री के वेष में छिपकर मार डाला। देव ने प्रमादी राजाओं की स्त्रियों द्वारा

चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति। प्रमत्तानां च प्रमदाकृता अपि प्रमादाः श्रुतिविषयमागता एव देवस्य। यथा मधुमोचितमधुरकसंलिप्तैर्लाजैः सुप्रभा पुत्रराज्यार्थं महासेनं काशिराजं जघान। व्याजजनितकंदर्पदर्पा च दर्पणेन क्षुरधारापर्यन्तेनायोध्याधिपतिं परंतपं रत्नवती जारूथ्यम्, विषचूर्णचुम्बितमकरन्देन च कर्णेन्दीवरेण देवकी देवरानुरक्ता देवसेनं सौह्मथम्, योगपरागविरसवर्षिणा च मणिनूपुरेण वल्लभा सपत्नीरुषा वैरन्त्या रन्तिदेवम्, वेणीविनिगूढेन च शस्त्रेण बिन्दुमती वृष्णिं विदूरथम्, रसदिग्धमध्येन च मेखलामणिना हंसवती सौवीरं वीरसेनम्, अदृश्यागदविलिप्तवदना च विषवारुणीगण्डूषपायनेन पौरवी पौरवेश्वरं सोमकम्।' इत्युक्त्वा विरराम स्वाम्यादेशसंपादनाय च निर्जगाम।

देवोऽपि हर्षः सकलराज्यस्थितीश्चकार। ततश्च तथा कृतप्रतिज्ञे प्रयाणं विजयाय दिशां समादिशति देवे हर्षे गतायुषां प्रतिसामन्ताना-

---

इति। मधुरकं विषम्। परंतपं प्रतापवन्तम्। जारूथ्यमिति जघानेति प्राक्तन्येव क्रियोत्तरत्र च। चूर्णो विषक्षोदः। मकरन्दः पुष्परसः। देवरः कनीयान्भ्राता भर्तुः। योगपरागोऽभिचारचूर्णम्। वैरन्ती नाम नगरी। रसदिग्धं विषोपलिप्तम्। अगदो विषहरद्रव्यसमूहः। वारुणी सुरा।

उत्पन्न विपत्तियों के विषय में सुना ही है। जैसा कि सुप्रभा ने पुत्र को राज्य प्राप्त होने के लिए काशिराज महासेन को मधु के साथ लावा में विष मिलाकर मार डाला। रत्नवती ने छल से कामवेग को उत्पन्न करके अयोध्या के प्रतापी राजा जारूथ्य को छुरे की धार के समान चोखे दर्पण से मार डाला। देवर से फँसी हुई देवकी ने सुह्म के राजा देवसेन को कर्णोत्पल में मकरन्द के रूप में विष का चूर्ण मिलाकर मार डाला। वैरन्त के राजा रन्तिदेव को उसकी रानी ने सौत डाह के कारण अपने मणिनूपुर में जादू-टोना का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करके समाप्त कर दिया। बिन्दुमती ने अपने केशपाश में छिपाए शस्त्र के द्वारा वृष्णि विदूरथ की हत्या की। सौवीर के राजा वीरसेन को रानी हंसवती ने मेखला की मणियों में विष का लेप करके मार डाला। पौरव राजा सोमक को उसकी रानी ने पहले अपने मुँह में विष के प्रभाव को हर लेने वाले औषध को मुँह में लगाकर फिर अपने मदिरा के जहरीले गण्डूष से मार डाला।' यह कहकर स्कन्दगुप्त स्वामी के आदेश का विधिवत् सम्पादन करने के लिए उठकर बाहर चला गया।

इधर देव हर्ष ने भी राज्य की सारी स्थिति ठीक की। जब देव हर्ष ने इस प्रकार कृतप्रतिज्ञ होकर फिर दिग्विजय के लिए सैनिक प्रयाण करने की आज्ञा दी, तभी काल से घिरे शत्रु-सामन्तों के घरों में दुर्निमित्त होने लगे। यमराज के दूतों की दृष्टि की तरह

मुदवसितेषु बहुरूपाण्युपलिङ्गानि वितेनिरे। तथा ह्यविप्रकृष्टाः कालदूतदृष्टय इवेतस्ततश्चेरुश्चटुलाः कृष्णशारश्रेणयः। प्रचलितलक्ष्मीनूपुरप्रणादप्रतिमा मधुसरघासंघातझंकारा जह्रादिरे। चिरं विवृतविकृतवदनविवरविनिःसृतवह्निविसरा वासरेऽपि विरसं विरेसुश्चिरमशिवार्थमशिवाः शिवाः। शवपिशितप्ररूढप्रसरा इव कपिपोतकपोलकपिलपक्षतयः कानन-कपोताः पेतुः। आमन्त्रयमाणा इव दधुरकालकुसुमानि सममुपवनतरवः। तरलकरतलप्रहारप्रहतपयोधरा रुरुदुः प्रसभं सभाशालभञ्जिकाः। ददृशुरासन्नकचग्रहभयोद्भ्रान्तोत्तमाङ्गमिवात्मानं कबन्धमादर्शोदरेषु योधाः। चूडामणिषु चक्रशङ्खकमललक्ष्माणः प्रादुरभवन्पादन्यासा राजमहिषीणाम्। चेटीचामराण्यकस्माद्धावन्त पाणिपल्लवात्। प्रणयकलहेऽपि दत्तपृष्ठाश्चिरमभवन्भटाः पराङ्मुखा मानिनीनाम्, करिकपोलेषु व्यघटन्त मधुलिहां मधुमदिरापानगोष्ठ्यः। समाघ्रातयममहिषगन्धा इव ताम्यन्तः स्तम्बकरिमपि हरयो हरितं नवयवसं न चेरुः। चलवलयावलीवाचालबालिकातालिकातोद्यलालिता अपि न ननृतुर्मन्दा मन्दिरमयूराः। निशि निशि रजनिकरहरिणनिहितनयन इवोन्मुखस्तारमुपतोरणमकारण-

उदवसितेषु गृहेषु। उपलिङ्गान्यनिमित्तानि। सरघा मधुमक्षिकाः। कानन-कपोता गृध्राः। व्यघटन्त आसन्। स्तम्बकरिं बद्धस्तम्बम्, पक्वं वा। हरयो

काले-काले चंचल हिरन कुछ ही दूर पर इधर उधर मँडराने लगे। मधु मक्खियाँ चलती हुई लक्ष्मी के नूपुर की आवाज के समान भनभनाने लगीं। देर तक दिन में भी अमंगल सियारियाँ जिनके मुँह के फाड़ने से आग की चिनगारी निकलती रहती है, अशुभ और कटु आवाज में चिक्कारने लगीं। बन्दर के कपोल की तरह लाल पंखों वाले जंगली कबूतर मुर्दे के मांस की चाह से घरों पर बैठने लगे। उपवन के वृक्ष मानों परस्पर विचार करके असमय में पुष्प से भरने लगे। सभास्थान के खम्भों पर बनी हुई सालभंजिकाएँ स्तनों पर हाथ पीट-पीटकर जोर से रोने लगीं। योद्धा लोग हर्ष के सैनिकों द्वारा निकट भविष्य में होने वाले कचग्रह के भय से सिर में उत्पन्न चक्कर के कारण दर्पण में अपना ही सिर धड़ से अलग होते हुए देखने लगे। राजमहिषियों की चूणामणि में हर्ष के शंख, चक्र और कमल के चिह्नों वाले पैर के निशान प्रकट होने लगे। चेटियों के हाथ से अकस्मात् चँवर छूट कर गिरने लगे। भट लोग प्रणय के कलह में भी मानिनियों के सामने पीठ दिखाकर देर तक पराङ्मुख हो गए। हाथियों के गण्डस्थल में भौंरों का मदपान बन्द हो गया। घोड़ों ने मानों यमराज के महिष की गन्ध से हरे धान का खाना छोड़ दिया। झन-झन कंकण पहने हुए बालिकाओं के ताल देकर नाचने पर भी

मकाणीत्कौलेयकगणः। गणयन्तीव गतायुषस्तर्जनतरलया तर्जन्या दिवसमाटवाटकेषु कोटवी। कुट्टिमेषु कुटिलहरिणखुरवेणीतरङ्गिण्यश्च शष्पराजयोऽजायन्त। जनितवेणीबन्धानि निरञ्जनरोचनारोचींषि चषकमधुनि मुखकमलप्रतिबिम्बान्यदृश्यन्त भटीनाम्। समासन्नात्मापहारचकिता इव चकम्पिरे भूमयः। वध्यालंकाररक्तचन्दनरसच्छटा इवालक्ष्यन्त शूराणां पतिताः शरीरेषु विकसितबन्धूककुसुमशोणितशोचिषः शोणितवृष्टयः। पर्यग्नीकुर्वाणा इव विनश्वरीं श्रियमविरलस्फुरत्स्फुलिङ्गाङ्गारोद्गारदग्धताराגणा गणशः पतन्तः प्रज्वलन्तो न व्यरंसिषुरुल्कादण्डाः। प्रथममेव प्रतिहारीवापहरन्ती प्रतिभवनं चामरातपत्रव्यजनानि परुषा बभ्राम वात्येति।

इति श्रीबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते राजप्रतिज्ञावर्णनं नाम षष्ठ उच्छ्वासः।



हयाः। अकाणीद्ध्वान। कौलेयकाः श्वानः। आट बभ्राम। कोटवी नग्ना स्त्री। शष्पं बालतृणम्। बन्धूकं बन्धुजीवः। अपरिगताग्निं परिगताग्निं कुर्वाणाः। अग्नौ समन्तात्क्षिपन्तः। व्यरंसिषुर्निववृतिरे॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते षष्ठ उच्छ्वासः।



मन्दिरमयूरों ने नाचना छोड़ दिया। हर रात में मुंह उठाकर मानों चन्द्रमा के हिरन की ओर आँख लगाए कुत्ते तोरण के समीप बिना कारण ही जोर से रोने लगे। मार्गों में नंगी स्त्री चंचल तर्जनी से मरने वालों की मानों गणना करती हुई चक्कर लगाती दिखाई पड़ी। राजभवन के कुट्टिमों में टेढ़े हरिण के खुर के समान तरङ्ग भरी घास उहराने लगी। योद्धाओं की स्त्रियों के मुख का जो प्रतिबिम्ब मधुपात्र में पड़ता था उसमें विधवाओं जैसी एक वेणी और अञ्जन से रहित गोरोचना के समान पीली आँखें दिखाई पड़ने लगीं। निकट में होने वाले अपने हरण से मानों चकित होकर भूमि काँपने लगी। वीरों के शरीर पर पड़े हुए खिले बन्धूकपुष्प के समान लाल खून के छींटे वधदण्ड प्राप्त होने पर लगाए गए चन्दन के समान दिखाई पड़ने लगे। दिशाओं में चारों ओर मानों नाशावस्था को प्राप्त श्री को घेर कर निरन्तर निकलती हुई चिनगारियों से तारों को जलाती हुई उल्काएँ बार-बार गिरने लगीं। भयंकर हवा प्रतीहारी के समान सबके चँवर, छत्र और व्यजन का अपहरण करती हुई प्रत्येक घर को झकझोरने लगी।

हर्षचरित षष्ठ उच्छ्वास समाप्त।

सप्तम उच्छ्वासः

अङ्गनवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥ १ ॥
धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम्।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥ २ ॥

अथ व्यतीतेषु च केषुचिद्दिवसेषु मौहूर्तिकमण्डलेन शतशः सुगणिते सुप्रशस्तेऽहनि दत्ते चतसृणामपि दिशां विजययोग्ये दण्डयात्रालग्ने, सलिलमोक्षविशारदैः शारदैरिवाम्भोधरैः कालधौतैः शातकौम्भैश्च कुम्भैः स्नात्वा विरचय्य परमया भक्त्या भगवतो नीललोहितस्यार्चामुदर्चिषं हुत्वा प्रदक्षिणावर्तशिखाकलापमाशुशुक्षणिं, दत्त्वा द्विजेभ्यो रत्नवन्ति

अङ्गनेत्यादिनोद्योगितां सूचयति। शूरा हि स्वशौर्यमात्रेणावर्जितत्रिभुवनाधिपत्याः, न तु तेषां सामग्र्यन्तरप्रयोजनम्। तथा चाह—'कृतप्रयत्नस्य वीरस्य सर्वा भूरङ्गनवेदी'त्यनायासेनाक्रमणादनेनेदमपि प्रतिक्षिप्तम्। कदाचित्कश्चिद्ब्रूयादभिमानान्मोहाद्वेत्थं हर्षेण प्रतिज्ञातम्। अन्यथा गिरिगुहादौ पलायितं हर्षः कथं परिभवेत्। कथं च बहुपालितामुर्वीमेको जयेदिति। तन्न। यतोऽङ्गनवेदीत्यादि। नन्वेवमपि तत्तुल्यो वीरो न भवेदित्याह—धृतेत्यादि।

अथेत्यादौ। भवनान्निर्जगामेति संबन्धः। मौहूर्तिका गणकाः। दण्डश्चतुरङ्गबलम्। तस्य यात्रा गमनम्। तत्र लग्नो मेषादिस्तस्मिन्। विशारदैः प्रवीणैः, शुक्लैश्च। कालधौतैः, कालवशेन धौतैश्च। शातकौम्भैः सौवर्णैः। नीललोहितोऽसि-

---

जब वीर पुरुष प्रतिज्ञा कर लेता है तब उसके सामने पृथिवी क्या है? आँगन की एक वेदी है, समुद्र क्या है? एक पनाला मात्र है, पाताल क्या है? एक स्थली है और सुमेरु क्या है? मिट्टी का (कीटनिर्मित) एक टीला मात्र है।

बाहुवीर्यशाली वीर के धनुष उठा लेने पर पर्वत जो नहीं झुक जाते यही आश्चर्य होता है, अन्यथा शत्रु नामधारी वराक कौवों की गणना ही क्या?

कुछ दिन बीत गए। हर्ष के ज्योतिषियों ने बड़ी मेहनत से गणना करके शुभ मुहूर्त निकाला और चारों दिशाओं की विजय के लिए दण्डयात्रा के योग्य लगन दे दिया। तब हर्ष ने शरत्कालीन मेघों के समान जल बरसाने वाले चाँदी और सोने के कुम्भों से स्नान किया। भगवान् शंकर की परम भक्ति से पूजा की। दक्षिणावर्त शिखाओं की प्रज्वलित अग्नि में हवन किया। रत्न से भरे हजारों चाँदी और सोने से भरे हजारों

राजतानि जातरूपमयानि च सहस्रशस्तिलपात्राणि कनकपत्रलतालंकृत-शफशृङ्गशिखरा गाश्चार्बुदशः, समुपविश्य विततव्याघ्रचर्मणि भद्रासने विलिप्य प्रथमविलिप्तायुधो निजयशोधवलेनाचरणनखन्दनेन शरीरं, परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणी सदृशे दुकूले, परमेश्वरचिह्नभूतां शशि-कलामिव कल्पयित्वा सितकुसुममुण्डमालिकां शिरसि नीत्वा, कर्णाभरण-मरकतमयूखमिव कर्णगोचरतां गोरोचनाच्छुरितमभिनवं दूर्वापल्लवं विन्यस्य सह शासनवलयेन गमनमङ्गलप्रतिसरं प्रकोष्ठे परिपूजितप्रहृष्ट-पुरोहितकरप्रकीर्यमाणशान्तिसलिलसीकरनिकराभ्युक्षितशिराः सम्प्रेष्य म-हार्हाणि वाहनानि बहलरत्नालोकलिप्तककुम्भि च भूषणानि भूभुजां संवि-भज्य क्लिष्टकार्पटिककुलपुत्रकलोकमोचितैः प्रसाददानैश्च विमुच्य बन्ध-नानि सकलानि नियुज्य तत्कालस्मरणस्फुरणेन कथितात्मानमिव चाष्टा-

---

तरक्षुः। आशुशुक्षणिमग्निम्। राजतानि रौप्यानि। जातरूपं सुवर्णम्। पत्रलता पत्रभङ्गः। शफाः खुराः। अर्बुदं दशकोटयः। नृपासनं भद्रासनम्। उक्तं च— 'नृपासनं भद्रासनं, सिंहासनं तु तद्धैम'मिति। परमेश्वरो राजा, हरश्च। शासन-वलयेन मुद्राकटकेन। प्रतिसरं कङ्कणम्।

तिलपात्र और सोने के पत्तरों में मढ़े खुर और सींगों वाला असंख्य गायें ब्राह्मणों को दान में दिया। व्याघ्रचर्म पर भद्रासन बिछा कर विराजमान हुए। पहले अपने आयुध में यश के समान धवल चन्दन लगाया और फिर अपने सिर से पैर तक उसका लेप किया। फिर कोनों पर छपे हंसमिथुन वाले दुकूल वस्त्रों का जोड़ा धारण किया। शिव के चिह्न के रूप में चन्द्रकला के समान श्वेत फूलों की मुण्डमालिका को सिर पर रखा। कानों में मरकत के कर्णाभरण सदृश, गोरोचनों से युक्त सुन्दर दूब का पल्लव धारण किया। हाथ के प्रकोष्ठ में मंगलप्रद कंकण पहना और मुद्राकटक (राजकीय मुद्रा से युक्त कड़ा) भी धारण किया। पूजा पाये पुरोहित ने उनके सिर पर शान्ति का जल छिड़का। तब उन्होंने सहयोगी राजाओं को कीमती सवारियाँ भेजीं और दिशाओं में आलोक फैलाने वाले रत्नजटित आभूषण बाँटे। राज्य में कार्पटिक (सिर पर चीरा बाँधने के अधिकारी राजकीय कर्मचारी) राजघरानों के सम्बन्धी कुलपुत्र और साधारण जन जो बन्दी थे वे छोड़ दिए गए और जो किसी कारणवश दण्डित या कृपा से वंचित हो गए थे वे फिर से सम्राट् के प्रसादपात्र बनाए गए। उसी समय अपने दाहिने भुजस्तम्भ को जो फरक कर अपने स्वरूप को व्यक्त कर रहा था, अट्ठारह द्वीपों पर विजय पाने के योग्य अधिकार में नियुक्त किया। सेवकों के समान सुनिमित्त एक पर एक सामने

दशद्वीपजेतव्याधिकारे दक्षिणं भुजस्तम्भमहमहमिकया सेवकैरिव सनिमित्तैरपि समग्रैरग्रतो भवद्भिः प्रमुदितप्रजाजन्यमानजयशब्दकोलाहलो हिरण्यगर्भ इव ब्रह्माण्डात्कृतयुगकरणाय भवनान्निर्जगाम।

नातिदूरे च नगरादुपसरस्वति निर्मिते महति तृणमये, समुत्तम्भिततुङ्गतोरणे, वेदीविनिहितपल्लवललामहेमकलशे, बद्धवनमालादाम्नि, धवलध्वजमालिनि, भ्रमच्छुक्लवाससि, पठद्द्विजन्मनि मन्दिरे प्रस्थानमकरोत्। तत्रस्थस्य चास्य ग्रामाक्षपटलिकः सकलकरणिपरिकरः 'करोतु देवो दिवसग्रहणमद्यैवावन्ध्यशासनः शासनानाम्' इत्यभिधाय वृषाङ्कामभिनवघटितां हाटकमयीं मुद्रां समुपनिन्ये। जग्राह च तां राजा। समुपस्थापिते च प्रथमत एव मृत्पिण्डे परिभ्रश्य करकमलादधोमुखी महीतले पपात मुद्रा। मन्दाश्यानपङ्कपटले मृदुमृदि सरस्वतीतीरे परिस्फुटं व्यराजन्त राजयो वर्णानाम्। अमङ्गलाशङ्किनि च विषीदति परिजने नरपति-

---

ललामं चिह्नम्। 'ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु'। वनमाला पुष्पपत्रप्रतियोजिता स्रक्। अक्षाणां भूतानां। पटले समूहे नियुक्तोऽक्षपटलिकः। ग्रामाणामक्षपटलिकः ग्रामाक्षपटलिकः। करणिर्लेखयम्। कायस्थ इत्यन्ये। मुद्रा वालिका। मन्दाश्यानमीषच्छुष्कम्।

आने लगे। प्रजा के लोग प्रसन्न होकर उनका जयजयकार करने लगे। सतयुग की स्थापना के लिए ब्राह्मण से निकले हुए ब्रह्मा के समान हर्ष राजभवन से बाहर आए।

नगर से थोड़ी दूर सरस्वती के किनारे घास-फूस छाकर एक बड़ा राजमन्दिर तैयार किया गया था। उसमें ऊँचा तोरण खड़ा किया गया था। वेदी पर पल्लवसहित हेमकलश रखा हुआ था, वनमालाएँ लटकाई गई थीं, श्वेत ध्वजाएं फहराई गई थीं। श्वेत वस्त्रों से चेलोत्क्षेप हो रहा था और ब्राह्मण लोग मंगलपाठ कर रहे थे। ऐसे मन्दिर में हर्ष ने प्रस्थान किया। वहाँ उनके ग्रामाक्षपटलिक (गाँव का मुख्य अर्थ-अधिकारी, पटवारी) ने अपने समस्त लेखकों के साथ निवेदन किया—'देव आपका शासन अव्यर्थ है, अत एव आज ही शासनदान का आरम्भ करें।' यह कह कर उसने नई बनी हुई एक सोने की मुद्रा जिस पर बैल का चिह्न बना था, हर्ष के हाथ में दी। राजा ने जैसे मुद्रा हाथ में ले ली और पहले से सामने रखे हुए मिट्टी के पिण्डे पर उसे लगाना चाहा कि वह हाथ से छूट कर गिर गई और सरस्वती के किनारे की गीली मुलायम मिट्टी पर उसके अक्षर स्पष्ट छप गए। परिजन लोग अमंगल की आशंका से खिन्न होने लगे, तब हर्ष ने मन में यह कहा—'सीधे-सादे लोगों की बुद्धि तत्त्व को नहीं समझ पाती। 'यह पृथिवी आपके

रकरोन्मनस्येतत्—'अतत्त्वदर्शिन्यो हि भवन्त्यविदग्धानां धियः। तथा हि—एकशासनमुद्राङ्का भूर्भवतो भविष्यतीति निवेदितमपि निमित्तेनान्यथा गृह्णन्ति ग्राम्याः।' इत्यभिनन्द्य मनसा महानिमित्त तत्सीरसहस्रसंमित-सीम्नां ग्रामाणां शतमदाद्द्विजेभ्यः। निनाय च तत्र तं दिवसम्। प्रतिपन्नायां शर्वर्यां संमानितसर्वराजलोकः सुष्वाप।

अथ गलति तृतीये यामे सुप्तसमस्तसत्त्वनिःशब्दे दिक्कुञ्जरजृम्भमाण-गम्भीरध्वनिरताड्यत प्रयाणपटहः। अग्रतः स्थित्वा च मुहूर्तमिव पुनः प्रयाणक्रोशसंख्यापकाः स्पष्टमष्टावदीयन्त प्रहाराः पटहे पटीयांसः।

ततो रटत्पटहे, नन्दन्नान्दीके, गुञ्जत्गुञ्जे, कूजत्काहले, शब्दायमान-शङ्खे, क्रमोपचीयमानकटककलकले, परिजनोत्थापनव्यापृतव्यवहारिणि, द्रुतद्रुघणघातघट्यमानकोणिकाकीलकोलाहलकलितककुभि, बलाधिकृत-

एकशासनमुद्रैवाङ्के यस्याः सा। सीरं हलम्। संमितं परिच्छिन्नम्। अष्टक्रोशा अद्य गन्तव्यमिति प्रायेण क्रोशसंख्यापकाः।

तत इत्यादौ। एवंविधे प्रयाणसमये राजभिरापुपूरे राजद्वारमिति संबन्धः। नान्दी मङ्गलपटहः। गुञ्जासंज्ञः शङ्खभेदो यत्पृष्ठे जतु परिकलितं भवति। 'सब्बा' इति यस्य प्रसिद्धिः। शङ्खश्च मुण्डशङ्ख इति प्रसिद्धः। द्रुघणोऽयस्ताडनभाण्डम्।

एक छत्र शासन की मुद्रा से अंकित होगी' इस प्रकार का निमित्त सूचित होने पर भी ये नासमझ कुछ और अर्थ लगा रहे हैं।' इस महानिमित्त का हर्ष ने मन में अभिनन्दन किया और सौ गाँव, जिनमें प्रत्येक का क्षेत्रफल एक सहस्र हल भूमि था, ब्राह्मणों को दान में दिए। वे दिन भर वहीं रहे। रात होने पर सब राजाओं के सम्मान के बाद शयन किया।

जब रात का तीसरा याम समाप्त हो रहा था और सबके सो जाने से चारों ओर निसबद हो रहा था, तभी दिग्गज की जंमाई की तरह गम्भीर ध्वनि से कूच का नगाड़ा बजाया गया। कुछ ठहर कर आगे पहुँचे हुए सेना के ठहराव के लिए कोसों की सूचना देने वाले पुरुषों ने जोर-जोर से डंके की आठ चोटें मारीं।

सैनिक प्रयाण के अवसर में नगाड़े बजने लगे। नान्दीक की आवाज होने लगी। गुंजा गूँजने लगा और काहल भी बजने लगे। शंखों के शब्द होने लगे। क्रम से पूरे कटक का शोरगुल बढ़ने लगा। झाडू देने वाले जमादार आकर नौकरों को जगाने लगे। मुंगरी की तड़ातड़ चोटों का (घड़ियाल पर उत्पन्न शब्द से) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ तुम्भीके पतके डंडों से बजाए जाते हुए नक्कारों का शब्द दिशाओं में भर गया। सैनिक

बध्यमानपाटीपतिपेटके, जनज्वलितोल्कासहस्रालोकलुप्यमानत्रियामातमसि, यामचेटीचरणचलनोत्थाप्यमानकामिमिथुने, कटुककटुकनिर्देशनश्यन्निद्रोन्मिषन्निषादिनि, प्रबुद्धहास्तिकशून्यीक्रियमाणशय्यागृहे, सुप्तोत्थिताश्वीयविधूयमानसटे, रटत्कटकमुखरखनित्रखन्यमानक्षोणीपाशे, समुत्कील्यमानकीलशिञ्जानहिञ्जीरे, उपनीयमाननिगडतालकलरवोत्तालतुरङ्गतरङ्ग्यमाणखुरपुटे, लेशिकमुच्यमानमदस्यन्दिदन्तिसंदानशृङ्खलाखनखननिनादनिर्भरभरितदशदिशि, घासपूलकप्रहारप्रमृष्टपांसुलकरिपृष्ठप्रसार्यमाणप्रस्फोटितप्रमृष्टचर्मणि, गृहचिन्तकचेटकसंवेष्ट्यमानपटकुटीकाण्डप-

---

कोणिकाः पटहकुड्यादिकेषु याः कीलिकाः। पाटी बहुपरिवारपुरुषगृहीतो निवासभूभागः, कुलपुत्रकसमूह इत्यन्ये। पेटकं तत्समूहः, 'पाठीपति' इति पाठे पाठीपतयः प्रतिनियतस्वस्थानपरिरक्षिणः। उल्का दीपिका। यामचेटी प्रहरजागरणनियुक्ता। तत्क्षणं चरणचलनं पादेषु स्पर्शः। कटुकानां हस्तिपकयोक्राणाम्। यः कटुको रूक्षः। निर्देश आज्ञा। निषादिनां हस्त्यारोहाणाम्। हास्तिकं हस्तिसमूहः। अश्वीयमश्ववृन्दम्। क्षोणीपाशो भूम्या निबन्धनम्। समुत्कील्यमानान्युत्खन्यमानानि। हिञ्जीरं लौही शृङ्खला। निगडार्थं तालकं तालपत्रं निगडतालकम्। लौह एवाश्वबन्धनविशेष इत्यन्ये। तरङ्ग्यमाणाः कुटिलीक्रियमाणाः। लेशिकाः घासिकाः। संदानशृङ्खला बन्धनाद्याः। प्रस्फोटितं विपूरितम्। प्रमृष्टं शोधितम्। पटकुड्यादयः स्कन्धावारसरणिकाभेदाः। तथा च पटैः कुटी सूक्ष्मगृहम्। काण्डपटकं काण्डैः

संगठन करने वाले बलाधिकृतों ने पाटीपतियों (सेना के निरीक्षकों) को इकट्ठा किया। चारों ओर मशालें जल उठीं और अन्धकार दूर हो गया। चौथे पहर पर आने वाली चेटियाँ पहुँच गई और उनके पैरों की आहट से साथ सोए हुए स्त्री-पुरुष उठ बैठे। हाथीवान् प्यादों की कड़ी डांट से उठ कर आँखें मलने लगे। जगे हुए हाथी शयनगृह के बाहर आ गए। घोड़े भी उठकर अयाल झाड़ने लगे। हाँफने की आवाज करते हुए प्यादे कुदालों से तम्बुओं के धरती में गड़े फाँसेदार आँकुड़ों को खोदने लगे। कीलों के उखाड़ने से लोहे की सीकलें आवाज करने लगीं। घोड़ों के पैरों में पड़े हुए खटकेदार कड़े जब खोले जाने लगे तो उन्होंने अपने खुर टेढ़े कर दिए। जब मतवाले हाथियों के पैरों में पड़ी बन्धनशृङ्खलाओं को लेशिक (चारा देने वाले घसियारे) खोलने लगे तो खनखन का शोर चारों ओर भर गया। धूल से भरी हाथियों की पीठें घास के लम्बे मुठ्ठों से झाड़कर साफ की गईं और उन पर कमाये हुए चमड़े की खालें डाल दी गईं। घरों के बनने-उखाड़ने की चिन्ता रखने वाले (गृहचिन्तक) नौकर-चाकर तम्बू, बड़े डेरे, कनात और

ऽमण्डपपरिवस्त्रावितानके, कीलकलापापूर्यमाणचिपिटचर्मपुटे, संभाण्डायमानभाण्डागारिणि, भाण्डागारवहनसंवाह्यमानबहुनालीवाहिके, निषादिनिश्चलानेकानेकपारोप्यमाणकोशकलशपीडापीडसंकटायमानसामन्तौकसि, दूरगतदक्षदासेरकक्षिप्रप्रक्षिप्यमाणोपकरणसंभारभ्रियमाणदुष्टदन्तिनि, तिर्यगानमज्जाघनिककरकृच्छ्राकृष्टलम्बमानपरतन्त्रतुन्दिलचुन्दीजनजनितजनहासे, पीड्यमानशारशारिवरत्रागुणग्राहितगात्रविहारबृंहद्बहुबृहदुन्मदकरिणि, करिघटाघटमानघण्टाटांकारक्रियमाणकर्णज्वरे, पृष्ठप्रतिष्ठाप्यमानकण्ठालककदर्थितकूजत्करभे, अभिजातराजपुत्रप्रेष्यमाणकुप्ययुक्ताकुलकुलीनकुलपुत्रकलत्रवाहने, गमनवेलाविप्रलब्धवारणाधोरणान्विष्यमाणनवसे-

पटैश्च गृहम्। परिवस्त्रा तिरस्करिणी। वितानको रक्तकः। चिपिटो ह्रस्वः। चर्मपुटश्चर्मप्रसेवकः। संभाण्डायमानो भाण्डानि समाचिन्वन्। 'भाण्डात्समाचयने' इति णिच्। संवाह्यमानाः प्राप्यमाणाः। नालीवाहिकः करिणां घासग्रहणनियुक्तो हस्तिपको मेण्ठाख्यः। चुन्दी कुट्टनी। शारिर्मञ्जरी। हस्तिपर्याणमित्यर्थः। तत्स्थैः पीड्यमानदामभिर्ग्राहितेन गात्रविहारेण देहकम्पेन बृंहन्तः शब्दायमानाः

शामियाने लपेटने में लग गए और खूँटों को चपटे चमड़े के थैलों में भरने लगे। भण्डारी बर्तनों को बटोरने लगे। हाथियों के घसियारे भण्डार ढोने के लिए बुलाए जाने लगे। हाथीवानों ने सोधे हाथियों को लाकर चुपचाप खड़ा कर दिया और उन पर सामन्तों के डेरों में भरा हुआ सामान, प्याले और कलशों की पेटियों के समूह लादने लगे। जो दुष्ट हाथी थे उन पर सधे हुए ऊँट काठ-कबाड़, खाट-पीढ़े आदि उपकरण-सम्भार दूर से फेंक कर लदवाने लगे। दूसरे लोग मुटल्ली दासियों को, जो चल नहीं पा रही थीं, टेढ़ा झुक कर जोर से घसीटते ले जा रहे थे, यह देख कर कुछ लोग हँस रहे थे। रँग-विरंगी मोटी रस्सियों के कसे जाने के कारण जिनके झूमने में बाधा पड़ रही थी, ऐसे विशालकाय मन-मौजी हाथी चिग्घाड़ रहे थे। हाथियों के घण्टे की टंकार से कान फटने लगे। पीठ पर लादी जाती हुई कंडालों के कष्ट से ऊँट बलबला रहे थे। अभिजात राजपुत्रों के द्वारा भेजे गए पीतल जड़े वाहनों में कुलीन राजपुत्रों के द्वारा भेजे गए पीतल-जड़े वाहनों में कुलीन कुलपुत्रों की आकुल स्त्रियां जा रही थीं। चलते समय इधर-उधर भटके हुए नये सेवकों को हाथियों के आधोरण ढूँढ रहे थे। प्रसाद पाये हुए पैदल राजवल्लभ घोड़ों को पकड़ कर ले चल रहे थे। सजी-बजी

१. इस वाक्य में श्री अग्रवाल जी के अनुसार 'कुप्रयुक्त' के स्थान पर 'कुप्ययुक्त' पाठ स्वीकृत है। (ह० सां० १४२-२४१)

वके, प्रसादवित्तपत्तिनीयमाननरपतिवल्लभवारवाजिनि, चारुचाटभटसैन्य-न्यस्यमाननासीरमण्डलाडम्बरस्थूलस्थासके, स्थानपालपर्याणलम्बमान-लवणकलायीकिङ्किणीनालीसनाथसंकलिततलसारके, कुण्डलीकृतावरक्षणी-जालजटिलवल्लभपालाश्वघटानिवेश्यमानशाखामृगे, परिवर्धकाकृष्यमाणा-र्धजग्धप्राभातिकयोग्याशनप्रारोहके, व्याक्रोशीविजृम्भमाणघासिकघोषे, गमनसंभ्रमभ्रष्टभ्रमदुत्तुण्डतरुणतुरङ्गमतन्यमानानेकमन्दुराविमर्दे, सज्जी-

---

करिणो यत्र तस्मिन्। प्रसादेन वित्ताः पत्तयः। वारोऽवसरः। 'निवहावसरौ वारः' इत्यमरसिंहः। तत्र वाजिनो ये सेवकानां प्रत्यवसरं विसृज्यन्ते। 'वर' इति पाठः। चारुचारभटसैन्येन त्रस्यमाना आत्मान एव क्रियमाणाः। नासीरेण कूर्परेण। मण्डलाडम्बरार्थाः स्थूलाः स्थासकाश्चन्द्रका यत्र। अन्ये नासीरमग्रेसरमाहुः। स्थानपालानां पर्याणेषु लम्बमाना लवणकलायी किङ्किणी। नालीसनाथा संकलिता तलसारिका यत्र। स्थानपाला अश्वपालाः। अश्वभाण्डागारिका इत्यन्ये। लवण-कलायी मृगाकृतिरश्वानां दारुमयी क्रियते। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। नाली प्रधानार्थं वेणवी नाडिरुच्यते। तलसारकोऽश्वमुखपट्टिकोर्णादिसूत्रमयी। उरः-पट्टिकेत्यन्ये। कुण्डलीकृतैरवरक्षणीजालैर्जटिला वल्लभपाला यासु तास्वश्वघटासु निवेश्यमानाः शाखामृगा यासु। अवरक्षण्यश्वबन्धनरज्जुः। वल्लभपालोऽश्वपालः। अन्ये तु यो बलवान्। महाकारो हयोपकरणम्। यवसतण्डुलादि वहति स वल्लभपालोऽश्वपाल इत्याहुः। शाखामृगो वानरः। रक्षार्थमश्वानां परिवर्धकोऽश्व-पालः। प्रौढिको योग्याशनार्थं प्रसेवको यो 'बुक्कण' इति प्रसिद्धः। व्याक्रोशी

चाटभट सेना के हरावल दस्ते चौड़े छोपे हुए निशानों वाले वेष से सजे थे। स्थानपालों के घोड़ों की पलानें लटकती हुई लवणकलायी, किंकिणी और नाली से सुशोभित थीं एवं ज़ेरबंद (तलसारक) से बंधी हुई थीं। राजवल्लभ घोड़ों के परिचारक घोड़ों के बांधने की अवरक्षणी रस्सी लपेट कर लिए हुए थे और साथ में (घोड़ों को रोग और छूत से बचाने के लिए) बन्दर ले चल रहे थे। सवारों के घोड़े प्रभातकालीन भोजन अभी आधा ही समाप्त कर चुके थे कि परिचारकों ने उनके तोबड़े उतार लिये। घसियारे परस्पर चिल्ला-चिल्ला कर शोर मचा रहे थे। चलने की हड़बड़ी में छूट कर भागे हुए तरुण घोड़े मुँह उठाकर दौड़ मारने लगे जिससे घुड़साल में खलमली मच गई। हथिनियां इधर-उधर सवारी के लिए सजकर तैयार हो गईं तो परिचारकों के पुकारने पर जल्दी से सुन्दरियाँ

---

१. 'चारभट' के स्थान पर चाटभट किया गया है (हर्ष० सां० १४२–१४३)

कृतकरेणुकारोहाह्वानसत्वरसुन्दरीदीयमानमुखालेपने, चलितमातङ्गतुरङ्गप्रधावितप्राकृतप्रातिवेशिकलोकलुण्ठ्यमाननिर्घाससस्यसंचये, संचरच्चेलचक्राक्रान्तचक्रीवति, चक्रचीत्कारिगन्त्रीगणगृह्यमाणप्रहतवर्त्मनि, अकाण्डकोड्डीयमानभाण्डभरितानडुहि, निकटघासलाभलुभ्यल्लम्बमानप्रथमप्रसार्यमाणसारसौरभेये, प्रमुखप्रवर्त्यमानमहासामन्तमहानसे, पुरःप्रधावद्ध्वजवाहिनि, प्रियशतोपलभ्यमानसंकटकुटीरकान्तरालनिःसरणे, करिचरणदलितमठिकोत्थितलोकलोष्टहन्यमानमेण्ठक्रियमाणासन्नसाक्षिणि, संघट्टविघट्टमानव्याघ्रपल्लीपलायमानक्षुद्रकुटुम्बके, कलकलोपद्रवद्रवद्द्रविणबलीवर्दविद्राणवणिजि, पुरःसरदीपिकालोकविरलायमानलोकोत्पीडाप्रस्थितान्तःपुरकरिणीकदम्बके, हयारोहाहूयमानलम्बितशुनि, सरभसचरणनि-

---

परस्पराह्वानम्। उत्तुण्डा उत्प्रोथाः। मुखालेपनं सिन्दूरादिना करेणुकार्थमेव। प्रातिवेशिकलोकाः प्रत्यासन्ननिवासा जनाः। निर्घासो भुक्तशेषो घासः। चेलं वस्त्रम्, बालको वा चेलः। चक्रीवाग्गर्दभः, उष्ट्रो वा। गन्त्री शकटिका। गृह्यमाणमधिष्ठीयमानम्। प्रहतं क्षुण्णम्। सर्वसेवितमित्यर्थः। लम्बमानो गर्दभदासः, वणिजां कर्मकरो वा। सारसौरभेयो बलवाननड्वान्। प्रमुखेऽग्रे। महानसं सूपकारशाला। कुटीरं मठिका, स्वल्पगृहम्। मेण्ठो जागरिकः। व्याघ्रपल्ली तृणकुटीभेदः। क्षुद्रमल्पम्। कुटुम्बकं परिवारः। विद्राणाः सशोकाः। लम्बितः

मुखालेपन (हथिनियों के मुँह पर माडने-बनाने की सामग्री) लेकर आईं। हाथी-घोड़े जब चल पड़े तब उनके पड़े हुए चारों को लूटने के लिए आसपास में छोटे कौम के लोग आ पहुँचे। छोकरे गदहों पर सवार होकर साथ चल पड़े। चलते हुए चक्कों की चरर-मरर आवाज करती हुई गाड़ियाँ मार्ग में लीक डालने लगीं। मांगने पर फौरन देने योग्य सामान बैलों पर लादा गया। रसद का सामान देने वाले बनियों के बैल पहले ही रवाना कर दिए गए थे, किन्तु वे (या उन्हें हांकने वाले नौकर) घास के लोभ में देर लगा रहे थे। महासामन्तों के रसोड़े आगे ही भेज दिए गए थे। पताका लेकर चलने वाले पुरुष आगे-आगे दौड़ रहे थे। भरे कुटीर के मध्य से निकलते हुए सैनिक अपने प्रिय जनों से मिल रहे थे। हाथियों ने रास्ते के छोटे-छोटे घरों को पैर से रौंद डाला। लोग उठ उठ कर हाथीवानों को ढेले से मारने लगे और वे बेचारे पास के लोगों को साक्षी बनाकर सन्तोष कर लेते थे। फूस की झोपड़ियाँ इसी धकमधके में तितर-बितर हो गईं और उसमें रहने वाली छोटी गृहस्थियाँ जान लेकर भागीं। माल से लदे हुए बैल जब शोरगुल से बिदकने लगे तो बनियें सोच में पड़ गये। अन्तःपुर की स्त्रियाँ हथिनियों पर बैठ कर

पतननिश्चलगमनसुखायमानखक्खटस्तूयमानतुङ्गतङ्गणगुणे, त्रस्तवेसरविसंवादिसीदद्दाक्षिणात्यसादिनि, रजोजग्धजगति प्रयाणसमये, प्रतिदिशमागच्छद्भिर्गजवधूसमारूढैराधोरणैरूर्ध्वध्रियमाणहेमपत्रभङ्गशारशार्ङ्गैः, अन्तरासनासीनान्तरङ्गगृहीतासिभिः, ताम्बूलिकविधूयमानचामरपल्लवैः, पश्चिमासनिकार्पितभस्त्राभरणभिन्दिपालपूलिकैः, पत्रलताकुटिलकलधौतनलकपल्लवितपर्याणैः, पर्याणपक्षकपरिक्षेपपट्टिकाबन्धनिश्चलपट्टोपधानस्थिरावधानैः, प्रचलपादफलिकास्फालनस्फायमानपदबन्धमणिशिलाशब्दैः, उच्चित्रनेत्रसुकुमारस्वस्थानस्थगितजङ्घाकाण्डैश्च कार्दमिकपटकल्माषितपिशङ्गपिङ्गैः, अलिनीलमसृणसतुलासमुत्पादितसितसमायोगपरभागैश्चा-

---

पश्चात्स्खलितः। खक्खटा वृद्धाः। तुङ्गा उच्चाः, तङ्गणो देशः, तद्देशजोऽप्यश्वस्तङ्गणः। विसंवादः परिशीलनम्। दक्षिणापथे वेसरा न सन्तीत्यदृष्टदेशाः। सादिनोऽश्वारोहाः। भस्त्राभरणं तूणभेदः। भिन्दिपालः शरभेदः। तोमर इत्यन्ये। पक्षकः प्रान्तः, पार्श्वं वा। परिक्षेपो वेष्टनम्। पादफलिका उभयपार्श्वयोः पर्याणे या क्रियते। आगुल्फं पादत्राणमित्यन्ये। आस्फालनं चालनम्। स्फायमानो वर्धमानः। पादबन्धः पादकटकः। नेत्रं पटविशेषः। स्वस्थानं स्वस्थानेति यस्याः प्रसिद्धिः। कार्दमिकं कर्दमेन रक्तम्। कल्माषिताः शबलिताः। पिशङ्गा लोहिताः। पिङ्गा जङ्घिका।

निकलीं, उनके सामने मशाल लेकर लोग चलते थे जिसके संकेत से जनता मार्ग छोड़कर अलग हो जाती थी। घुड़सवार पीछे छूटे हुए अपने कुत्तों को पुकारने लगे। तंगण देश के ऊँचे घोड़े इस प्रकार तेज चल रहे थे कि उनकी पीठ बिलकुल नहीं हिल रही थी और उन पर सुख से सवार हुए खक्खट क्षत्रिय उनकी प्रशंसा कर रहे थे। खच्चरों पर तकलीफ से बैठे हुए दक्खिनी सवार फिसले पड़ते थे। चारों ओर धूल भर जाने से कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। हथिनियों पर सवार होकर देश-देश के राजा आने लगे। हाथीवानों द्वारा रखे गए हौदों की सोने की पत्ररचनाओं से उनके धनुष रँग-बिरंगे हो रहे थे। उनके पास बीच में तलवार पकड़े स्वजन लोग आसीन थे। ताम्बूलिक चँवर झल रहे थे। हाथियों के पीछे की ओर बैठे हुए परिचारक चमड़े के बने हुए विशेष प्रकार के तरकशों में भरे हुए छोटे हल्के भालों के मुठ्ठे लिए हुए थे। घुड़सवारों के पलानों में आगे-पीछे उठे हुए सोने के नलकों में पत्रलता के कटाव बने थे। पलान के पार्श्व भाग में लम्बी पट्टी से घुमा कर बंधे होने से निश्चल बिछे हुए पट्टोपधान पर अठंग कर वे बैठे थे। पलान के दोनों ओर लटकी हुई रकाबों में उनके पैर जब एक दूसरे से टकराते थे तो रकाबों का खनखन शब्द होने लगता था। नेत्र-संज्ञक रेशमी

बद्दालदेहवर्णविराजमानराजावर्तमेचकैः कञ्चुकैश्चापचितचीनचोलकैश्च तार-मुक्तास्तबकितस्तवरकवारबाणैश्च नानाकषायकर्बुरकूर्पासकैश्च शुकपिच्छ-च्छायाच्छादनकैश्च व्यायामोल्लुप्तपार्श्वप्रदेशप्रविष्टचारुशस्तैश्च गतिवशावे-ल्लितहारलतागलल्लोलकुण्डलोन्मोचनप्रधावितपरिजनैः, चामीकरपत्राङ्कुर-कर्णपूरकविघट्टमानवाचालवालपाशैश्चोष्णीषपट्टावष्टब्धकर्णोत्पलनालैश्च कु-ङ्कुमरागकोमलोत्तरीयान्तरितोत्तमाङ्गैश्च चूडामणिखण्डखचितक्षौमखोलैश्च मायूरातपत्रायमाणशेखरषट्पदपटलैश्च मार्गागतशारिकशारिवाहवेग-दण्डैः, पुनश्चञ्चच्चामरकिर्मीरकार्दरङ्गचर्ममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडा-मरचारभटभरितभुवनान्तरैः, आस्कन्दत्काम्बोजवाजिशतशिञ्जानजातरू-

---

अन्ये जङ्घालेत्याहुः। सतुला अर्धजङ्घिका इत्यन्ये। अर्धजङ्घालेत्याहुः। समायोगो व्यापृतकेषु प्रसिद्धः। परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः। राजावर्तः कृष्ण-पाषाणः। मेचको बर्हिकण्ठवर्णः। 'कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री'। अपचितं परिहितम्, पूजितं वा। 'चायृ पूजानिशामनयोः' इत्यस्यापचितश्चेति निपातनाद्रूपम्। ताराः शुद्धाः। स्तबकिताः संजातपुष्पनिकुरुम्बाकाराः। स्तवरको वस्त्रभेदः। वारबाणः कञ्चुकः। कर्बुरः कपोतकण्ठवर्णः। कूर्पासकाश्चोलकाः। पिच्छानि पत्राः। आच्छादन-मुत्तरीयम्। उल्लुप्तस्तनूकृतः। शस्तं पट्टिकाडोरः। कटिसूत्रमित्यर्थः। वेल्लिताश्चा-लिताः। कर्णाभरणभेदो वालपाशः। कोमलं संच्छायम्। अन्तरितमाच्छादितम्। खोलः शिरस्त्रम्। मायूरातपत्रायमानम्। वेगदण्डस्तरुणो हस्ती। किर्मीराणि शबलानि। कार्दरङ्गकानि कार्दरङ्गदेशोद्भवानि। बहुसुवर्णसूत्ररचितानि चर्माणि। स्फोटकाः स्निग्धवर्णमांसस्फाराणि कार्दरङ्गचर्माणि। डामरा उद्भटाः। चारभटाः

वस्त्र के बने हुए फूल-पत्तीदार पजामों से उनकी जाँघें ढँकी थीं। कर्दम के रङ्ग से रङ्गी हुई कलछौंह लिए लाल वर्ण वाली उनकी लम्बी सलवार थी। भौंरे के समान गहरे नीले रंग के जांघिये, जिनमें सफेद पट्टियों का जोड़ डालने के कारण उनकी शोभा और बढ़ गई थी, पहने थे। कुछ राजा लाजवर्दी नीले रंग के कंचुक पहने हुए थे। कुछ ने चीन देश का कंचुक धारण किया था। कुछ ने वारबाण नामक कंचुक-जैसा पहनावा धारण किया था, जो सितारों से टँके मोतियों के झुग्गों से सुशोभित हो रहा था। कुछ नाना रंगों से रँगे जाने के कारण चितकबरे कूर्पासक पहने हुए थे। कुछ राजाओं के शरीर पर सुग्गापंखी रंग की झलक देने वाले आच्छादनक नामक वस्त्र थे। व्यायाम करने के कारण पतले उनके कटिप्रदेश में पटके बँधे हुए थे। तेज चाल से चलने के कारण डोलती हुई उनकी हारलताओं में चंचल कुंडल को फँसे देखकर छुड़ाने के लिए परिजन

पायानरवमुखरितदिङ्मुखैश्च निर्दयप्रहतलम्बापटहशतपटुरवबधिरीकृतश्रवणविवरैः, उद्घोष्यमाणनामभिः, उन्मुखपादातप्रतिपाल्यमानाज्ञापातै राजभिरापुपूरे राजद्वारम् ।

उदिते च भगवति दिनकृति राज्ञः समायोगग्रहणसमयशंसी सस्वान संज्ञाशङ्खो मुहुर्मुहुः । अथ न चिरादिव प्रथमप्रयाण एव दिग्विजयाय दिग्गजसमागममिव गमनविलोलकर्णतालदोलाविलासैः कुर्वाणया करेणुकया सिद्धयात्रयोह्यमानः, वैदूर्यदण्डविकटेनोपरि प्रत्युप्तपद्मरागखण्डमयूखखचिततया सूर्योदयदर्शनकोपादिव लोहितायतया ध्रियमाणेन मङ्गला-

---

शूराः । आस्कन्दन्तश्चलन्तः । काम्बोजा बाह्लीकदेशजाः । आयानमश्वभूषणम् । लम्बापटहाः पटहभेदाः । 'तबिला' इति प्रसिद्धाः ।

संज्ञा संकेतः । अथेत्यादौ । दिग्विजयाय निर्जगाम नरपतिरिति संबन्धः । मङ्गलातपत्रेण कञ्चुकेन । ननूत्प्रेक्ष्यते द्वितीय इव भोगिनामीश इति योजना । यद्वा

दौड़ पड़ते थे । सुवर्ण के पत्राङ्कुरों वाले उनके कर्णपूर से कानों की बाली टकरा कर आवाज करती थी । उन्होंने पगड़ियों में अपने कर्णोत्पल के नाल खोंस लिये थे । कुछ के सिर केसरिया रङ्ग के कोमल उत्तरीयों से ढँके थे, जिनमें चूड़ामणि के खण्ड टँके हुये थे । मोरपङ्ख से बने उनके सिर के शेखर पर भौंरे मँडरा रहे थे । रङ्ग बिरंगी झूलों से ढँके हुए जवान हाथी पर सवार होकर राजा पहुँचे हुए थे । उद्भट शूर-वीर हाथों में चमचमाती हुई छोटी-छोटी चौरियों से युक्त कार्दरङ्ग चमड़े से बने हुये ढाल लिये हुये भुवनभाग को भरने लगे । सैकड़ों काम्बोज घोड़ों के दुलकती चाल में चलने के कारण उनके झकारते हुए आयान नामक गहने दिशाओं को मुखरित कर रहे थे । सैकड़ों तड़ातड़ बजाये जाने वाले नगाड़ों की तीखी आवाज कानों को फोड़े डालती थी । राजाओं के नाम पुकारे जा रहे थे । पैदल सैनिक (हाथी पर सवार) राजाओं की आज्ञा को उन्मुख होकर सुनते थे और पालन में लग जाते थे । इस प्रकार राजाओं से राजद्वार भरा हुआ था ।

सूर्योदय हो जाने पर बार-बार शंखध्वनि होने लगी जो इस बात की सूचक थी कि राजा समायोग-ग्रहण (सेना का व्यूहबद्ध प्रदर्शन) करेंगे । संज्ञाशंख की ध्वनि के कुछ ही देर बाद दिग्विजय के लिये पहली बार सैनिक प्रयाण के अवसर पर निकली हुई हथिनी पर, जो चलते हुए कर्णतालों के विलास से मानों दिग्गज के साथ समागम कर रही थी, सवार होकर राजभवन से बाहर आये । उनके सिर पर बिल्लौर के दण्डवाला, जड़े हुए पद्मराग की किरणों से खचित मङ्गलातपत्र ऐसा लग रहा था मानों सूर्य का उदय देखकर कोप से तमतमा उठा हो । केले के गाभे से भी अधिक मुलायम रेशम (नेत्र)

तपत्रेण कदलीगर्भाभ्यधिकम्रदिम्ना नवनेत्रनिर्मितेन द्वितीय इव भोगिनामधिपतिरङ्गलग्नेन कञ्चुकेनामृतमथनदिवस इव क्षीरोदफेनपटलधवलाम्बरवाही, बाल एव पारिजातपादप इवाखण्डलभूमिमारूढः, विधूयमानचामरमरुद्विधूतकर्णपूरकुसुममञ्जरीरजसा सकलभुवनवशीकरणचूर्णेनेव दिशश्छुरयन्नभिमुखचूडामणिघटमानपाटलप्रतिबिम्बमुदयमानं सवितारमपि पिबन्निव तेजसा बहलताम्बूलसिन्दूरच्छुरितया विलभमान इव द्वीपान्तराण्योष्ठमुद्रयानुरागस्य स्फुरन्महाहारमरीचिचक्रवालानि चामराणीव दिशोऽपि ग्राहयन्, राजकेक्षणोत्क्षिप्तत्रिभागया त्रीनपि लोकान्करदानाज्ञापयन्निव सविभ्रमं भ्रूलतया द्राघीयसा बाहुप्राकारेण परिक्षिपन्निव रिरक्षया सप्तापि सागरमहाखातानखिलमिव च क्षीरोदमाधुर्यमादायोद्गतया लक्ष्म्या समुपगूढः, गाढममृतमय इव पीयमानः कुतूहलोत्तानकटकलोकलोचनसहस्रैः स्नेहार्द्रेषु राज्ञां हृदयेषु गुणगौरवेण मज्जन्निव, लिम्पन्निव मज्जामपि सौभाग्यद्रवेण द्रष्टॄणाममरपतिरिवाप्रजवधकलङ्कप्रक्षालनाकुलः,

---

मङ्गलातपत्रेणेति इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। अम्बरं वस्त्रम्, नभश्च। विलभमानोऽर्थिसात्कुर्वन्। मुद्रया हि ससिन्दूरया विलभ्यते। परिक्षिपन्वेष्टयन्। अग्रजो

का बना हुआ कंचुक पहने हुए सम्राट् दूसरे शेष नाग के समान लग रहे थे। क्षीरोदक नाम का सफेद वस्त्र पहने हुए वे अमृतमथन के दिवस के समान प्रतीत होते थे। पारिजात नामक वृक्ष के समान कम आयु में ही वे इन्द्र पदवी पर आसीन हो गये थे। सारे संसार को वश में करने वाले (वशीकरण) चूर्ण के समान, कर्णपूर के रूप में उनके कान में लगी हुई पुष्पमञ्जरी का पराग झले जाते हुये चँवर की हवा से दिशाओं में उड़ने लगा। उदय होते हुए सूर्य को जिसका लाल मण्डल सामने उनकी चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित हो रहा था, मानों वे अपने तेज से पीते जा रहे थे। ताम्बूल चबाने से उहाका लाल अपनी ओष्ठ मुद्रा से मानों वे द्वीपान्तरों को लुभा रहे थे। उनके लम्बे हार की किरणें फैल रही थीं, मानों अपने झलने के लिये दिशाओं के हाथ में चँवर पकड़ा रहे थे। राजसमूह को देखने के लिये तिरछी हुई अपनी भौंहों से वे मानों तीनों लोकों को करदान का आदेश दे रहे थे। अपने भुजदण्डों से मानों उन्होंने सप्त समुद्रों की रक्षा के लिये ऊँचा परकोटा खींच दिया था। क्षीरसमुद्र की सारी मधुरिमा को लेकर मानों निकली हुई लक्ष्मी उनका आलिङ्गन कर रही थी। कटक के लोगों की कुतूहल से उठी हुई हजारों आँखें अमृततुल्य उनके रूप का पान कर रही थीं। स्नेह से राजाओं के हृदय में अपने गुणों की गरिमा से मानों मज्जन कर रहे थे। देखने वालों के अङ्गों में मानों सौभाग्य के द्रव का

पृथुरिव पृथिवीपरिशोधनावधानसंकलितसकलमहीभृत्समुत्सारणः, पुरःसरैरालोककारकैः सहस्रसंख्यैरर्क इव किरणैरधिकारचातुर्यचञ्चलचरणैर्व्यवस्थास्थापननिष्ठुरैः भयपलायमानलोकोत्पीडान्तरिता दशापि दिशो ग्राहयद्भिरिव, चलितकदलिकासंपातपीतप्रचारं पवनमपि विनये स्थापयद्भिरिव, द्रुतचरणोद्धतधूलिपटलावधूतान्दिनकरकिरणानप्युत्सारयद्भिरिव, कनकवेत्रलतालोकविक्षिप्यमाणं दिनमपि दूरीकुर्वद्भिरिव, दण्डिभिरितस्ततः समुत्सार्यमाणजनसमूहो निर्जगाम नरपतिः।

अवनमति च विनयनमितवपुषि, भयचकितमनसि, चलनशिथिलमणिकनकमुकुटकिरणनिकरपरिकररुचिरशिरसि, विलुलितकुसुमशेखररजसि राजचक्रे, प्रभामुचां चूडामणीनामवाञ्चस्तिर्यञ्च उदञ्चश्च चञ्चन्तो मरीचयश्चापराशय इव सुशकुनसंपादनाय चेलुः। मेघायमानरेणुमेदुरं

ज्येष्ठः, राज्यवर्धनः, द्विजश्च। पुरा ब्रह्मणः किल सुतोऽसुरपक्षपाती त्रिशिरास्तद्भ्राता च वृत्रस्तौ तपस्यन्तौ शक्रेण हताविति प्रथा। महीभृतो राजानः, पर्वताश्च। पृथुना ह्यद्रयो भूमिमास्तीर्य स्थिताश्चापकोट्या समुत्सार्यन्त प्रक्षिप्ताः। लोका इत्येवं ये वदन्ति ते आलोककारकाः, तैः; अन्यत्रालोकः प्रकाशः। पुरःसरैः सहस्रसंख्यैरिति च साधारणम्। दिशो ग्राहयद्भिः पर्यन्तेषु च विसर्जयद्भिः।

उदञ्च ऊर्ध्वप्रसारिणः। चापराशय इवेत्याद्युत्प्रेक्षात्रयं समीचीनम्। उड्डीयन्तः

लेप कर रहे थे। बड़े भाई के वध के कारण उत्पन्न शोक को मिटाने के लिये इन्द्र के समान व्याकुल थे (अग्रज अर्थात् ब्राह्मण का वध करने से इन्द्र कलंकित थे)। पृथु के समान उनके चारों ओर अवकाशमण्डल बनाने के काम में लगे हुए राजा लोग भीड़ को हटा रहे थे (पृथिवी को छेक कर पड़े हुये पर्वतों को पृथु ने चापकोटि से उठाकर दूर फेंक दिया)। जैसे हजारों किरणें सूर्य के आगे-आगे आलोक करती हुई चलती हैं उसी प्रकार सम्राट् के आगे-आगे आलोक शब्द (जय शब्द) का उच्चारण करते हुये दण्डधर पुरुष जनसमूह को हटाते हुये चल रहे थे। अधिकार मिलने से उत्पन्न चतुराई के कारण उनमें तेजी आ गई थी। व्यवस्था करने में कड़ाई से काम लेते थे। भय के कारण भागे हुए लोगों से छिपी हुई दिशाओं को भी मानों पकड़वा लेते थे। फहराती हुई पताकाओं को गिरा देने से अवरुद्ध गति वाले वायु को भी मानों विनय की सीख देते थे। पैरों से धूल उड़ाकर सूर्य की किरणों का भी तिरस्कार के साथ उत्सारण करते थे। सोने की बेंतलताओं के आलोक से दिन को भी दूर फेंक दे रहे थे।

सम्राट् के बाहर आते ही राजा लोग प्रणाम करने लगे। विनय के कारण उनका

मन्दिरशिखण्डिन इव खमुड्डीयमानाः कोमलकल्पपादपपल्लववन्दनमाला-कलापा इवाबध्यन्त दिग्द्वारेषु दिक्पालैः। प्रणम्यमानश्च नेत्रविभागैश्च कटाक्षैश्च समग्रेक्षितैर्भ्रूबद्धितैश्चार्धस्मितैश्च परिहासैश्च छेकालापैश्च कुशल-प्रश्नैश्च प्रतिप्रणामैश्चोन्मत्तभ्रूवीक्षितैश्चाज्ञादानैश्चाक्रीणन्निव मानमयान्प्राणा-न्प्रणयदानैः प्रवीराणां वीरो यथानुरूपं विबभाज राजकम्।

अथ प्रस्थिते राजनि बहलकलकलत्रस्तदिङ्नागशूत्काररव इवेतस्तत-स्तस्तार तारतरस्तूर्याणां प्रतिध्वनिराशातटेषु। दिग्गजेभ्यः प्रकुपितानां त्रिप्रस्नुतानां करिणां मदप्रस्रवणवीथीभिरलिकुलकालीभिः कालिन्दीवेणि-

---

प्रसृताः कटाक्षैरपाङ्गदृष्टैः। भ्रूवञ्चितैर्भ्रूचलितैः। 'भ्रुवाञ्चितैः' इति पाठे उन्नतैक-भ्रुविलसितैरित्यर्थः। छेकालापैर्वक्रोक्तिभिः छेकान्तरान्तरा वा।

तस्तारेति। विस्तृतोऽभवत्। त्रिप्रस्नुतानां त्रिषु गण्डादिषु मदस्रुचाम्।

शरीर झुक गया। उनके मन में आश्चर्य और भय दोनों व्याप्त हो गये। झुकने से सुवर्ण के मुकुट की खिसकती हुई मणियों की किरणें चारों तरफ उनके सिर पर फैलने लगीं। उनके सिर के कुसुमशेखर से पराग झड़ने लगा। चूड़ामणियों की नीचे, अगल-बगल में और ऊपर की ओर फैलती हुई किरणें बाणों के रूप में पहले-पहल सगुन करने के लिये चल पड़ीं। मेघ के समान मँडराती हुई धूल से भरे आकाश में गृहमयूरों के समान उड़ी हुई चूड़ामणियों की रश्मियाँ मानों दिशाओं के द्वारों पर कल्प वृक्ष के पल्लव की बन्दनवार के रूप में बँध गईं। सम्राट् ने प्रणाम करते हुये किसी को तिहाई खुले हुए नेत्रों की दृष्टि से, किसी को कटाक्ष या अपांग दृष्टि से, किसी को समग्र दृष्टि या भरपूर आँखों से देखकर, किसी को और भी अधिक ध्यान से देखते हुए जिसमें भौंहें खिंच जाती हैं, किसी को हल्की मुस्कुराहट से किसी को और अधिक मुख की प्रसन्नता से, किसी को चतुराई भरे एक दो शब्दों से, किसी को कुशल-प्रश्न पूछकर, किसी को प्रणाम के उत्तर में स्वयं प्रणाम करके, किसी को अत्यन्त बढ़े हुए भ्रूविलास और वीक्षणरुचि से और किसी को आज्ञा देकर सम्मानित किया। इन-इन रूपों में अपने प्रणय का दान करके उनके मानधनी प्राणों को मानों सम्राट् मोल ले रहे थे। इस प्रकार वीरों में वीर सम्राट् ने राजसमूह को योग्यता के अनुसार विभक्त किया।

देव हर्ष के प्रस्थान करने पर सेना के शोरगुल से मानों डरे हुए दिग्गजों की चिग्घाड़ हो, ऐसी तूर्य संज्ञक बाजों की ऊँची प्रतिध्वनि इधर-उधर दिशाओं में फैल गई। मतवाले हाथियों के कुम्भ, कपोल एवं सूँड़ से चूते हुए भौरों से काली मदधाराएँ बहके

कासहस्राणीव सस्यन्दिरे। सिन्दूररेणुराशिभिररुणायमानबिम्बे रवावस्तमयसमयं शशङ्किरे शकुनयः। करिणां षट्पदकोलाहलमांसलैः कर्णतालनिःस्वनैस्तिरोदधिरे दुन्दुभिध्वनयः। दोधूयमानश्च सचराचरमाचचाम चामरसंघातो विश्वम्। अश्वीयश्वासनिक्षिप्तैः शिश्विन्दे सितसिन्धुवारदामशुचिभिर्निरन्तरमन्तरिक्षं फेनपिण्डैः। पिण्डीभूततगरस्तबकपाण्डुराणि पपुरिव परस्परसंघट्टनष्टाष्टदिशं दिवसमुच्चचामीकरदण्डान्यातपत्रवनानि। रजोरजनीनिमीलितो मुकुटमणिशिलावलीबालातपेन विचकास वासरः। राजतैर्हिरण्मयैश्च मण्डनकभाण्डमण्डलैर्ह्लादमानैर्हरितीकृताः परिह्लादा हरितो बधिरतां दधुः। अरिप्रतापानलनिर्मूलनायेव मदोष्मशीकरैः शिशेकिरे करिणः ककुभां चक्रम्। चक्षुषामुन्मेषं मुमुषुस्तडिच्चञ्चलानि चूडामणीनामर्चींषि। स्वयमपि विसिष्मिये बलानां भूपालः सर्वतोविक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात्प्रतिष्ठमानं स्कन्धावारम्, अधोक्षजकुक्षेरिव युगादौ निष्पतन्तं जीवलोकम्, अम्भोनिधिमिव कुम्भ-

शकुनयोऽत्र चक्रवाकाः। मण्डनकमायानम्। 'स्याद्भाण्डमश्वाभरणे'। अधोक्षजो हरि-

लगीं, मानों यमुना की हजारों सोतें फूट पड़ी हों। हाथियों के मस्तक की सिन्दूर-धूलि सूर्यबिम्ब को लाल बनाने लगी जिसे देखकर पक्षी सायंकाल की शंका करने लगे। मद पीने के लिए बैठते हुए भौरों की गुंजार से भरी हाथियों के कर्णतालों की फट-फट आवाज ने दुन्दुभिध्वनि को तिरोहित कर दिया। चामर-समूह इस प्रकार झले जाने लगे कि चराचर के साथ सारा विश्व ही ढँक लिया गया। घोड़ों की श्वास से उड़े हुए उजले सिन्धुवार-पुष्प की मालाओं के समान मुख के फेन आकाश को सफेद बनाने लगे। एकत्र किए गए तगर के फूलों की भांति उज्ज्वल, ऊँचे सुवर्णदण्ड से शोभित छत्र एक में एक लग कर दिशाओं को इस प्रकार ढँक रहे थे मानों दिन का ही पान कर लिया हो। धूल की राशि के कारण छिपा हुआ दिन राजाओं के मुकुटों की मणियों के बालातप से खिल उठा। घोड़ों के रुपहले और सुनहले साजों की खनखनाहट से दिशाएँ बधिर हो गईं। हाथियों ने शत्रु के फैले हुए प्रतापानल को मानों बुझाने के लिए अपने मदजल के फुहारों से दिशाओं को सींच दिया। बिजली के समान चंचल चूड़ामणियों की चकमक किरणें पलक उठाने नहीं देती थीं। चारों ओर दृष्टि फेंक कर सम्राट् ने जब अपनी सेना को देखा और युगारम्भ में विष्णु की कुक्षि से निकलते हुए जीव लोक के समान, अगस्त्य के मुख से संसार को प्लावित करने वाले समुद्र के समान और सहस्रार्जुन की भुजाओं से छूटकर हजारों रूपों में बहते हुए नर्मदा के प्रवाह के समान राजद्वार के समीप प्रस्थान करते हुए स्कन्धावार को देखकर

भ्रुवो वदनात्प्लावितभुवनमुद्वमन्तम्, अर्जुनबाहुदण्डसहस्रसंपिण्डितोन्मुक्तमिव सहस्रधा प्रवर्तमानं प्रवाहं नर्मदायाः। 'प्रसर तात। भाव, किं विलम्बसे? लङ्घति तुरङ्गमः। भद्र, भग्नचरण इव संचरसि यावदमी पुरःसराः सरभसमुपरि पतन्ति। वाहयसि किमुष्ट्रम्? न पश्यसि निर्दय, निःशूकशिशुकं शयानम्? वत्स रामिल, रजसि यथा न नश्यसि तथा समीपे भव, किं न पश्यसि गलति शक्तुप्रसेवकः? किमेवमित्वर, त्वरसे। सौरभेय सरणिमपहाय हयमध्यं धावसि? धीवरि, विशसि। गन्तुकामा मातङ्गि, मातङ्गमार्गम्। अङ्ग, गलति तिरश्चीना चणकगोणी। गणयसि न मामारटन्तम्? अवटमवटेनावतरसि। सुखमास्स्व स्वैरिणि। सौवीरक, कुम्भो भग्नः। मन्थरक, खादिष्यसि गतः सन्निक्षुम्। उक्षाणं प्रसादय। कियच्चिरमुच्चिनोपि चेट, बदराणि? दूरं गन्तव्यम्। किमद्यैव विद्रासि द्रोणक, द्राघीयसि दण्डयात्रा त्रिनेकेन निष्ठुरकेण निष्क्रेयमस्माकम्। अग्रतः पन्थाः स्थपुटक, स्थावरक, यथा न भनक्षि फाणितस्थालीं

कुम्भभवोऽगस्त्यश्च। प्लावितभुवनं स्कन्धावारम्, नर्मदाप्रवाहं च। पूर्वं कार्तवीर्येणान्तःपुरैः सह रेवातीरे विहरता तत्स्रोतो भुजसहस्रेणोभयतो वृत्वा त्यक्तमभूत्। प्रसरतेत्येवमादिप्रवर्तमानानेकसंलापनमिति स्कन्धावारविशेषणम्। तातेति। भावेति च। मान्यामन्त्रणम्। लसति गलति। प्रसेवको भस्त्राभरणमित्यन्ये। इत्वरो गमनशीलः। सौरभेयो दान्तः। अङ्गेति इष्टामन्त्रणम्। अवटं श्वभ्रम्। अवटेनामार्गेण। स्वैरिणि स्वतन्त्रे। 'स्वादीरेरिणोः' इति वृद्धिः। सौवीरिकं काञ्जिकम्। विद्रासि लङ्घसि। निष्ठा श्लेषः। स्थपुटो निम्नोन्नतः, विषम इत्यन्ये। फाणितमिक्षुविकारः,

---

स्वयं भी आश्चर्य में डूब गए। चलते हुए कटक में अनेक संलाप सुनाई पड़ रहे थे—'आगे बढ़ो; भाई, देर क्यों लगा रहे हो? अरे, घोड़ा लंगड़ाकर चल रहा है; भले मानस, अभी पाँव टूटे की तरह रेंग रहे हो, और ये आगे वाले लोग हमारे ऊपर गिरे पड़ते हैं; अरे निर्दय, ऊँट को मत चला, देखता नहीं बच्चा आगे सोया पड़ा है? वत्स रामिल, धूल में कहीं गायब न हो जाओ, मेरे समीप ही रहो; अरे देखते नहीं कि फटे थैले से सत्तू कैसे गिर रहे हैं? अरे चालू, ऐसी हड़बड़ी ही क्या है? अबे, बैल की लीक छोड़कर घोड़ों के बीच भागा जाता है? अरी धीवरी, कहाँ घुसी पड़ती है? अरी हथिनी की बच्ची, हाथियों में जाना चाहती है; वाह, चने की बोरी टेढ़ी होकर झर रही है; अरे, मैं कब से चिल्ला रहा हूँ, फिर भी तू नहीं सुनता; अरे, गड्ढे में गिरेगा क्या?; अरे मनमौजी, चुपचाप बैठ; अरे सौवीरक, तेरा घड़ा तो फूट गया; अरे मन्थरक, पड़ाव पर ही पहुंचकर गन्ना

गरीयान्गण्डकतण्डुलभारको न निर्वहति दम्यः। दासक, माषोण्णादमुतो द्राग्दात्रेण मुखघासपूलकं लुनीहि। को जानाति यवसगतं गतानाम्। धव, वारय बलीवर्दान्। वाहीकरक्षितं क्षेत्रमिदम्। लम्बिता शाकटी। शाकरं धुरंधरं धुरि धवलं नियुङ्क्ष्व। यक्षपालित, प्रमदाः पिनक्षि। अक्षिणी किं ते स्फुटिते। हत हस्तिपक नेदीयसि करिकरदण्डे समदः संमर्दकर्दमे स्खलसि। भ्रातर्भावविधुरबन्धो, उद्धर पङ्कादनड्वाहम्। इत एहि माणवक, घनेभघटासंघट्टसंकटे नास्ति निस्तरणसरणिः।' इत्येवमादिप्रवर्तमानानेकसंलापं क्वचित्स्वेच्छामृदितोद्दामसस्यघासविघससुखसं-

---

गुड इति प्रसिद्धः। दम्यो दान्तः। माषाणां भवनं क्षेत्रम्। 'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्'। किञ्चिन्मात्रं बुभुक्षानिवृत्तये। घासो मुखघासः। यवसं घासः। उक्तं च 'शष्पं बालतृणं घासो यवसम्' इति। धवः पुरुषः। वाहीकः काष्ठकः, परिपालक इत्यन्ये, गोरक्षक इति चान्ये। लम्बिता मार्गमाक्रान्तुं न शक्नोति। शाकरं शूरम्। तरुणं वा। धवलं महोक्षम्। नेदीयसि करदण्डेऽन्यहस्तसंबन्धिनि सति। करी समदोऽर्थात्संपन्नः। स्वेच्छयानायासेन। मृदितानि क्षुण्णानि। उद्दामानि प्रभूतानि सस्यानि। घासो यवसम्। तथा घासो विघसं, तथा विघसो भृत्याद्युपयुक्तशेष-

---

चूस लेना, बिगड़े बैल को सम्हाल, कबतक बेर बीनता रहेगा ? चल, दूर जाना है; द्रोणक, आज ही क्यों ऊब गए, अभी तो सेना की यात्रा लम्बी पड़ी है; स्थपुटक, आगे और भी मार्ग है; स्थावरक, खांड़ की हांडी को फोड़ न देना; चावलों का बोरा भारी है बैल के मान का नहीं; अबे टहलुवे, सामने उड़द के खेतों में से बैलों के लिए एक पूली तो दरांत से जल्दी काट ले; कौन जाने, यात्रा में चारे का क्या प्रबन्ध होगा ? यार, बैलों को अलगाए रहो, इस खेत में रखवाले हैं; सग्गड़ गाड़ी में ओलार पड़ता है, तगड़ा धौला बैल उसमें जोतो; ऐ पगले, स्त्रियों को रौंद डालेगा ? तेरी आँखें क्या फूट गई हैं ? धत्तेरे हस्तिपक की, मेरे हाथी की सूँड़ पर चढ़ा हुआ खिलवाड़ कर रहा है; ओ, धक्कामुक्की खाकर कीचड़ में गिर रहा है। ऐ भाई, दुखियों के साथी कीचड़ में फँसे बैल को निकाल लो; छोकरे, इधर भाग आ, हाथियों के भीड़-भड़क्के में अगर गया तो फिर जीता बच निकलने का उपाय नहीं।' कहीं पर कटवा कर ढेर की ढेर लाई गई हरी घासों को मीड़ कर मनचाहा आहार प्राप्त कर वे लोग सुख से फूल रहे थे और आपस में हँसी-मजाक करते हुए खिलखिला कर हँस रहे थे। ये लोग नौकर-चाकर थे, जैसे मेठ (हाथियों की झाड़-पोंछ करने वाला), वंठ (कुंवारे जवान पट्ठे जो डंडा लिए हाथी से भिड़ जाते थे), वठर (उजड्ड), लम्पन (गदहे की तरह काम लेने योग्य लद्दू नौकर), चेटक (घोड़ों

पन्नाप्रपुष्टैः केकिकलैः किलकिलायमानैर्मेण्ठवण्ठवठरलम्बनलेशिकलुण्ट-कचेटशाटचण्डालमण्डलैराण्डीरैः स्तूयमानम्, क्वचिदसहायैः क्लेशार्जि-तकुग्रामकुटुम्बिसंपादितसीदत्सौरभेयशम्बलसंवाहनायासावेगागतसंयोगैः स्वयंगृहीतगृहोपस्करणैः 'इयमेका कथंचिद्दण्डयात्रा यातु। यातु पाताल-तलं तृष्णाभूतेरभवनिः। भवतु शिवम्। सेवां करोतु। स्वस्ति सर्वदुःख-कूटाय कटकाय' इति दुर्विधवृद्धकुलपुत्रकैर्निन्द्यमानम्, क्वचिदतितीक्ष्णस-लिलस्रोतःपातिनौगतैरिव ग्रथितैरिव पङ्क्तिभूतैर्जनैरतिद्रुतम्, द्रवद्भिः कृष्ण-कठिनस्कन्धगुरुलगुडैर्गृहीतसौवर्णपादपीठीकरङ्ककलशपतद्ग्रहावग्राहैः प्र-त्यासन्नपार्थिवोपकरणग्रहणगर्वदुर्वारैः सर्वमेव बहिः कारयद्भिर्भूपतिभृतक-

---

मन्नम्, परस्परलुण्ठनं वा, तैः सुखेन संपन्नं यदन्नं तेन सुपुष्टैः। केलिकलाः प्रहसनाः, बहुभाषिणो वा। मेण्ठा हस्तिजागरिकाः। वण्ठाः अकृतविवाहास्तरुणाः, ये दण्ड-मादाय हस्तिनां दर्पमाकर्षयन्ति, पत्तय इत्यन्ये। वठरा मूर्खाः। लम्बना गर्दभ-दासाः। [1]लेशिका जनपरिचारकाः। लुण्ठकाश्चौराः। चेटा दासाः। शाटा धूर्ताः। चण्डाला अश्वपालाः। आण्डीराः प्रगल्भाः। यद्वा राण्डीराः रण्डापुत्राः। संपादितो दत्तः। सीदन्नसमर्थो यः सौरभेयस्तेन शम्बलसंवाहनाय य आयासो योगस्तेन। गतसंयोगैरुत्पन्नचित्तक्षोभैरिति समासः। अभवनिरिति 'आक्रोशे नञ्यनिः'। दुर्विधा दरिद्राः। वृद्धाः स्थविराः। कुलपुत्राः कुलक्रमागताः सेवकास्तैर्निन्द्यमानमिति स्कन्धावारविशेषणम्। क्वचिच्च भूभृद्द्वारिकैर्महानसोपकरणवाहिभिश्च समुत्सार्य-माणपुरोवर्तिजनमिति स्कन्धावारविशेषणम्। अतितीक्ष्णं वेगवत्। ग्रन्थिर्विद्यते येषां तैः। करकस्ताम्बूलाधारः। पतद्ग्रहो निष्ठीवनपात्रम्। अवग्राहः स्नानद्रोणी।

के घसियारे), [1]लुंठक (लूट-पाट करने वाले), चेट (छोटे नौकर-चाकर), शाट (धूर्त या शठ), चंडाल (अश्वपाल), आण्डीर (प्रगल्भ)—ये सब यात्रा की प्रशंसा करते थे। कहीं पर बेचारे असहाय वृद्ध कुलपुत्र जो किसी तरह गाँवों से मिले हुए मरियल बैलों पर सामान लादकर और स्वयं अपने ऊपर सामान लादकर घिसट रहे थे बुरी तरह घबड़ा कर कोसने लगे—'बस यह यात्रा किसी तरह पूरी हो जाय, तृष्णा पाताल चली जाय, धन का सत्यानाश हो, भगवान् बचाए इस नौकरी से। सब दुःखों की जड़ इस कटक को हाथ जोड़ता हूँ।' कहीं तेजी से बहते हुए जल के प्रवाह में नावों की भाँति पंक्तिबद्ध होकर एक में-एक गुथे हुए बैसे लोग चल रहे थे। राजाओं के अन्न-पान को ढोने वाले कर्मचारी बाहर निकल रहे थे, वे अपने काले कठोर कंधों पर भारी लट्ठ रखे हुए थे, सोने का पाद-पीठ, पानदान, पानी का कलसा, पीकदान, नहाने की द्रोणी आदि राजाओं की मिली

भारिकैर्महानसोपकरणवाहिभिश्च बहुवराहवर्ध्रवार्ध्रीणसैर्लम्बमानहरिणचटुकचटकजूटजटिलैः शिशुशशकशाकपत्रवेत्राग्रसंग्रहसंग्राहिभिः शुक्लकर्पटप्रावृतमुखैकदेशदत्तार्द्रमुद्रागुप्तगोरसभाण्डैस्तलकतापकतापिकाहस्तकताम्रचरुककटाहसंकटपिटकभारिकैः समुत्सार्यमाणपुरोवर्तिजनम्, क्वचित् 'क्लेशोऽस्माकम्। फलकालेऽन्य एव विटाः समुपस्थास्यन्ते' इति मुखरैः पदे पदे पततां दुर्बलबलीवर्दानां नियुक्तैः स्खलने खलचेटकैः खेद्यमानासंविभक्तकुलपुत्रलोकम्, क्वचिन्नरपतिदर्शनकुतूहलादुभयतः प्रजविप्रधावितग्रामेयकजनपदम्, मार्गग्रामनिर्गतैराग्रहारिकजाल्मैश्च पुरःसरजरन्महत्तरोत्तम्भिताम्भःकुम्भैरुपायनीकृतदधिगुडखण्डकुसुमकरण्डकैर्घटितपेटकैः सरभसं समुत्सर्पद्भिः प्रकुपितप्रचण्डदण्डिवित्रासनविद्रुतैर्दूरग-

---

बहिःकारयद्भिर्निरस्यद्भिः। महानसा सूपकारशाला। वराहवर्ध्र सूकरचर्म। सूकरपाठेति प्रसिद्धम्। वार्ध्रीणसा यज्ञियाश्छागविशेषाः। हरिणानां च चटुकाः पूर्वभागाः। जूटः संघः। वेत्राग्राणि वंशाङ्कुराः। तलकोऽग्निशकटिका। तापकोऽपूपादिकरणस्थानम्। तापिका काकपालिका। यत्र तैलादिना भक्ष्याः पच्यन्ते। हस्तकः शूलम्। पिटका भाण्डानि। विटा धूर्ताः। समुपस्थास्यन्ति ढौकयिष्यन्ति। पततां स्खलताम्। स्खलने प्रेरणे। नियुक्तैः स्थापितैः। असंविभक्ता अकृतविभागाः। ग्रामे भवा ग्रामेयकाः। 'ग्रामाद्यखञौ'। आग्रहारिकजाल्मैर्मृग्यमाणसस्यसंरक्षणमिति संगतिः। जाल्मा मूर्खाः। उत्तम्भिता ऊर्ध्वीकृताः। अम्भःकुम्भा जलपूर्णकलशाः। खण्ड इक्षुविकारः। समुत्सर्पद्भिर्ढौकमानैः। वित्रासनं भयोत्पादनम्।

सामग्री को हेंकड़ी में हठलाते हुए ले चल रहे थे। रसोई के सामान ढोने वाले भारिक भी आगे पड़ने वाले लोगों को हटाते हुए चलते थे, वे सूअर के चमड़े की बद्धियों में बकरे लटकाए चल रहे थे, कुछ हिरनों के अग्रभाग और चिड़ियों के ठट्ट के ठट्ट लटकाए चल रहे थे। कुछ लोग खरगोश के छोटे बच्चे, साग-पात, बांस के नरम अंकुर रसोई के लिए लेकर चले जा रहे थे; कुछ दूध-दही के हंडे लिए थे; सफेद कपड़े से जिनके मुंह ढंक कर और एक तरफ गीली मिट्टी पर मोहर लगा दी गई थी। सामान ढोने वाले अंगीठी, तवा, तई, सलाखें, रांधने के लिए तांबे के बने बर्तन, कड़ाही आदि बर्तनों से भरे टोकरे लेकर चल रहे थे। कमजोर बैलों को हांकने के लिए देहाती नौकर कुलपुत्रों पर ताना कसते हुए कह रहे थे—'मेहनत तो हम करेंगे, लेकिन फल लेने के लिए भंडुए टपक पड़ेंगे।' कहीं सम्राट् के देखने की उत्कण्ठा से गांव के लोग दोनों ओर वेग से दौड़े आ रहे थे। मार्ग के गांव से निकले हुए अनपढ़ आग्रहारिक लोग (खेती-बारी की देखभाल करने वाले) आगे-आगे मंगल के लिए गांव के तीन बड़े-बड़े बुड्ढों के हाथों में जलकुम्भ उठाए

तैरपि स्खलद्भिरपि पतद्भिरपि नरेन्द्रनिहितदृष्टिभिरसतोऽपि पूर्वभोगपति-दोषानुद्भावयद्भिरधिक्रान्तायुक्तकशतानि च शंसद्भिश्चिरंतनचाटापराधांश्चाभिदधानैरुद्धूयमानधूलिपटलम्, क्वचिदेकान्तप्रवृत्ताश्ववारचक्रचर्व्यमाणागामिगौडविमृग्यमाणसस्यसंरक्षणम्, अपरैरादिष्टपरिपालकपुरुषपरितुष्टैः 'धर्मः प्रत्यक्षो देवः' इति स्तुतीरातन्वद्भिः, अपरैर्लूयमाननिष्पन्नसस्यप्रकटितविषादैः क्षेत्रशुचा सकुटुम्बकैरेव निर्गतैः प्ररूढप्राणच्छेदैः परितापत्याजितभयैः 'क राजा, कुतो राजा। कीदृशो वा राजा?' इति प्रारब्धनरनाथनिन्दम्, शशकैश्च कैश्चित्पदे पदे प्रजविप्रचण्डदण्डपाणिपेटकानुबद्धैर्गिरिगुडकैरिव हन्यमानैरितस्ततः संचरद्भिः, अपरैर्युगपत्परापतितमहाजनग्रस्तैस्तिलशो विलुप्यमानैरनेकजन्तुजङ्घान्तरालनिःसरणकुशलिभिः कुटिलिकाव्यंसितसादिबहुश्वभिः पतल्लोष्टलगुडकोणकुठारकीलकु-

---

आयुक्तका व्यापृतकाः। चाटा धूर्ताः। अपरैराग्रहारिकजाल्मैरुपलक्षितमपरैः। प्रारब्धनरनाथनिन्दमिति योजना। निष्पन्नानि पक्वानि। सकुटुम्बैः सदारैः। शशकैः कृतकलकलमित्यन्वयः। अनुबद्धा अनुसृताः। गिरिगुडकैर्लोष्टैः। कुटिलिकया वक्रगमनेन। व्यंसिता वञ्चिताः सादिनामश्ववाराणां बहवः श्वानो यैः। कोणो वादन-

---

आ रहे थे। कुछ लोग दही, गुड़, शक्कर और पुष्पों की करंडियां पेटियों में बन्द करके जल्दी से ला रहे थे। कुछ लोग क्रोधित कठोर दंडधरों के डराने-धमकाने से दूर भागते हुए गिरते-पड़ते भी राजा पर ही दृष्टि गड़ाए थे। वे पहले के भोगपतियों की झूठी निन्दा कर रहे थे और पहले के कर्मचारियों की सराहना कर रहे थे और धूर्तों के अपराधों को कह-सुन रहे थे। इनकी दौड़-धूप से चारों ओर धूल भर रही थी। दूसरे कुछ लोग सरकारी कर्मचारियों से सन्तुष्ट होकर 'सम्राट् साक्षात् धर्म के अवतार हैं' इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। दूसरे कुछ लोग जिनकी तैयार फसल सेना के लिए काट ली गई थी, विषाद प्रकट करते हुए उसके शोक में अपने गृहस्थी के साथ बाहर निकल कर प्राणों को हथेली पर रक्खे निडर होकर कह रहे थे—'कहां है राजा! किसका राजा? कैसा राजा?' इस प्रकार राजा को बाहर निकल कर बोली मार रहे थे। झाड़ियों में छिपे हुए झुण्ड के झुण्ड खरगोश सेना की कल-कल ध्वनि से इधर-उधर उचकने लगे, बस डंडा लिए हुए तेजी से लोग उनपर टूट पड़े और जैसे खेत के ढेले तोड़े जाते हैं ऐसे उन्हें मारने लगे। कुछ खरगोश एकाएक टूट पड़े लोगों के बीच में पड़ जाने से बोटी-बोटी नुच गए। कुछ खरहे पशुओं की टांगों के बीच से घुस कर भाग निकले और अपनी टेढ़ी-मेढ़ी

शालखनित्रदात्रयष्टिवृष्टिभिरपि निःसरद्भिरायुषो बलात्कृतकलकलम्, अन्यत्र संघशो घासिकैर्बुसधूलिधूसरितघासजालजालकितजघनैश्च पुराणपर्याणैकदेशदोलायमानदात्रैश्च शीर्णोर्णाशकलशिथिलमलिनमलकुथैश्च प्रभुप्रसादीकृतपाटितपटच्चरचलच्चोलकधारिभिश्च धावमानैरुद्धूयमानधूलिपटलम्, क्वचिदेकान्तप्रवृत्ताश्ववारचक्रचर्च्यमाणागामिगौडविग्रहम्, क्वचित्पङ्किलप्रदेशपूरणादेशाकुलसकललोकलूयमानतृणपूलकम्, क्वचित्तलवर्तिवेत्रिवेत्रवित्रास्यमानशाखिशिखरगतविक्रोशद्विवादद्ब्राह्मणम्, क्वचित्कुलुण्ठकपाशविवेष्ट्यमानग्रामीणग्रामाकृष्टकौलेयकम्, क्वचिदन्योन्यविभवस्पर्धोद्धुरराजपुत्रवाह्यमानवाजिसंघट्टमण्डितम्, अनेकवृत्तान्ततया कौतुकजननम्, प्रलयजलधिमिव जगद्ग्रासग्रहणाय प्रवृत्तम्, पातालमिव

भाण्डम्। अन्यत्र घासिकैः उद्धूयमानधूलीपटलमिति संबन्धः। संघशो बहुशः। घासे नियुक्ता घासिकाः। घासजालं घाससंघातः। एकदेशः पश्चिमा दिक्। 'मलकुथैः' इति पाठः। मलकुथा मलपट्टी। छविरित्यर्थः। अंसोपरिवास इत्यन्ये। पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्। कुलुण्ठकाः शुनां बन्धनलगुडाः। उद्धुरा उद्दामप्रसराः। जगतो

चाल से दौड़ कर घुड़सवारों के कुत्तों को झांसा देने लगे। यद्यपि उनपर चारों ओर से ढेले, डंडे, टेढ़ी छड़ी, कुठार, कील, कुदाल, फड़आ, दरांती, लाठी की बरसा होती रहती थी, तथापि आयु के बल से बच निकलते थे। एक ओर घसियारे धूल-धक्कड़ करते दौड़ रहे थे, उनकी जांघों पर भूसों की धूल से मिली हुई घास भर आई थी, घोड़े पर कसी हुई पुरानी काठी के पीछे की ओर उनके दरांत लटक रहे थे। रद्दी ऊन के टुकड़ों से जमाए हुए गुदगुदे और मैले नमदे उनके घोड़ों की पीठ पर पड़े हुए थे, प्रभु के प्रसाद के रूप में फटे हुए कपड़े का फीता उनके सिर से बंधा हिल रहा था। एक तरफ सवारों की टुकड़ी आने वाले गौड़युद्ध के विषय में चर्चा कर रही थी। कहीं पांक वाली जमीन पर पुआल की आँटियाँ बिछाने में लोग जुट जाते थे। कहीं नीचे खड़े दण्डधर सैनिकों के डंडे के डर से उजड्ड ब्राह्मण झट पेड़ों पर चढ़कर गाली-गलौज कर रहे थे। कहीं गांव के लोग कुत्तों को घसीट कर ला रहे थे और कुलुण्ठक (कुत्ते पालने वाले) उन्हें अपने फांसों में बांध रहे थे। कहीं परस्पर ऐश्वर्य की स्पर्धा से राजपुत्र घुड़दौड़ मचा रहे थे। नाना प्रकार के वृत्तान्तों से भरे चलते हुए कटक को देखकर कौतुक उत्पन्न होता था। मानों वह कटक प्रलयकाल में समुद्र के समान संसार को गड़प लेने के लिए चल पड़ा था। महाभोगी (धनिकों, सर्पों) की रक्षा के लिए पाताल का रूप मानों धारण कर रहा था। परमेश्वर (सम्राट्, शंकर) के निवास के लिए कैलास बन गया था। प्रजापतियों के

महाभोगिनां गुप्तये समुत्पादितम्, कैलासमिव परमेश्वरवसतये सृष्टम्, दृश्यमानसकलप्राणिपर्यायं चतुर्युगसर्गकोशमिव प्रजापतीनां क्लेशबहुलमपि तपःकरणमिव क्रमकारिणं कल्याणानाम्, एवं च वीक्ष्यमाणः कटकं जगाम।

आसन्नवर्तिनां च 'तत्रभवता मांधात्रा प्रवर्तिताः पन्थानो दिग्विजयाय। अप्रतिहतरथरंहसा रघुणा लघुनैव कालेनाकारि ककुभां प्रसादनम्। शरासनद्वितीयः करदीचकार चक्रं क्रमागतभुजबलाभिजनधनमदावलिप्तानां भूभुजां पाण्डुः। पाण्डवः सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसंपदे क्रुध्यद्गन्धर्वधनुष्कोटिटांकारकूजितकुञ्जं हेमकूटपर्वतं पराजैष्ट। संकल्पान्तरितो विजयस्तरस्विनाम्। सहिमहिमवद्व्यवहितोऽप्युवाह बाहुबलव्यतिकरकातरः करं कौरवेश्वरस्य किङ्कर इवाकृती द्रुमः। नातिजिगीषवः खलु पूर्वे येनाल्प एव भूभागे भूयांसो भगदत्तदन्तवक्र-

ग्रहणं स्वीकरणम्, प्लावनं च। भोगिनो भोगवन्तः, सर्पाश्च। परमेश्वरो हरोऽपि। परितः समन्तादायः। आगमनं पर्यायः।

आसन्नेत्यादौ। पार्थिवसुतानामित्येवंप्रायानालापाञ्शृण्वन्नेवावाससादावासमिति संबन्धः। तत्रभवता पूज्येन। सव्यसाची अर्जुनः। पराजैष्ट जिगाय। तरस्विनां पराक्रमवताम्। कौरवेश्वरो दुर्योधनः। अकृती अकृतार्थः। द्रुमाख्यः किन्नरराजः।

चारों युगों की सृष्टि के कोश की भाँति सारा प्राणिवर्ग उसमें दिखाई पड़ रहा था। यद्यपि उसमें क्लेश ही क्लेश था लेकिन तपस्या की भांति अन्त में कल्याण ही करने वाला था। सम्राट् ऐसे कटक को देखते हुए चले।

समीप में रहने वाले पराक्रमी राजपुत्रों ने बातचीत के द्वारा इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया—'मान्धाता ने दिग्विजय का मार्ग दिखाया। उसी मार्ग पर चलकर अप्रतिहत रथ, वेग से रघु ने थोड़े समय में दिशाओं को शान्त कर दिया। धनुर्धारी पाण्डु ने वंश-परम्परागत भुजबल के मद में चूर अभिमानी राजाओं को अपना करद बना दिया। पाण्डुपुत्र अर्जुन ने राजसूय यज्ञ के समय चीन देश को पार करके हेमकूट पर्वत के वनों में क्रोधित होकर धनुष की टङ्कार करने वाले गन्धर्वों को जीत लिया। एकमात्र अपने ही सङ्कल्प के अभाव से वीरों की विजय में बाधा होती है। जैसे किन्नरराज द्रुम बरफ से ढँका हिमालय जैसा रक्षक पाकर भी बल के अभाव में कृतार्थ न होकर दुर्योधन का किंकर हो गया। निश्चय ही पहले के राजा विजय के इच्छुक न थे, क्योंकि थोड़ी ही जमीन के

ऋाथकर्णकौरवशिशुपालसाल्वजरासंधसिन्धुराजप्रभृतयोऽभवन्भूपतयः । संतुष्टो राजा युधिष्ठिरो यो ह्यसहत समीप एव धनंजयजयजनितजगत्कम्पः किंपुरुषाणां राज्यम् । अलसश्चण्डकोशो यो न प्राविक्षत्क्ष्मां जित्वा स्त्रीराज्यम् । ह्रसीय एवान्तरं तुषारगिरिगन्धमादनयोः उत्साहिनः । किष्कुः तुरुष्कविषयाः । प्रादेशः पारसीकदेशः । शशपदं शकस्थानम् । अदृश्यमानप्रतिप्रहारे परियात्रे यात्रैव शिथिला । शौर्यशुल्कः सुलभो दक्षिणापथः । दक्षिणार्णवकल्लोलानिलचलितचन्दनलतासौरभसुन्दरीकृतदरीमन्दिराद्दर्दुरादद्रेर्नेदीयसि मलयो मलयलग्न एव च महेन्द्रः ।' इत्येवंप्रायानुयोगद्योतकानामालापान्पार्थिवकुमाराणां बाहुशालिनां शृण्वन्नेवाससादावासम् । मन्दिरद्वारि चोभयतः सबहुमानं भ्रूलताभ्यां विसर्जितराजलोकः प्रविश्य चावततार बाह्यास्थानमण्डपस्थापितमासनमाचक्राम । अपास्तसमायोगश्च क्षणमासिष्ट ।

सिन्धुनाथो जयद्रथः । ह्रसीयो ह्रस्वतरम् । साङ्गुष्ठया प्रदेशिन्या प्रादेशः । 'प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते । अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ॥' इत्यमरसिंहः । शौर्यकृतः शुल्कः पणो यत्र स शौर्यशुल्कः । अतिशयेनान्तिकं नेदीयः । 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति ।

टुकड़े में एक साथ भगदत्त, दन्तवक्र, रुक्मि, कर्ण, दुर्योधन, शिशुपाल, साल्व, जरासंध, जयद्रथ आदि बहुत से राजा राज्य करते थे। राजा युधिष्ठिर कैसे सन्तोषी थे जिन्होंने दिग्विजय द्वारा जगत् को कम्पित कर देने वाले अर्जुन के रहते भी समीप ही किंपुरुषों के राज्य को सह लिया। चण्डकोश कितना आलसी था जिसने पृथिवी को जीत लेने पर भी स्त्रीराज्य में प्रवेश नहीं किया। उत्साही के लिए हिमालय और गन्धमादन पर्वतों में अंतर ही कितना है। तुरुष्कों के देश हाथ भर हैं। पारसिकों का प्रदेश एक बित्ता भर है। शकों का देश खरहे के पैर भर है। परियात्र में सेना की यात्रा ही व्यर्थ है, क्योंकि मुकाबले के लिये कोई दीखता नहीं। दक्षिणापथ शौर्य के धनी के लिए सुलभ है। जिस दर्दुर पर्वत के गुफामन्दिर दक्षिणसमुद्र के कल्लोल की हवा से हिलती हुई चन्दनलताओं की सौरभ-सुगन्धि से भर जाते हैं उसी के निकट ही तो मलयाचल है, एवं मलयाचल से मिला हुआ ही महेन्द्र पर्वत है।' राजपुत्रों की इन बातों को सुनते हुए हर्ष अपने निवासस्थान में पहुँचे। जब मन्दिर के द्वार पर आये तो अगल-बगल में खड़े राजाओं को आदरपूर्वक भौंह के संकेत से विदा करके अन्दर प्रवेश किया और महल के बाह्य आस्थानमण्डप

अथ तत्र प्रतीहारः पृथ्वीपृष्ठप्रतिष्ठापितपाणिपल्लवो विज्ञापितवान्—'देव ! प्राग्ज्योतिषेश्वरेण कुमारेण प्रहितो हंसवेगनामा दूतोऽन्तरङ्गस्तोरणमध्यास्ते' इति । राजा तु 'तमाशु प्रवेशय' इति सादरमादिदेश । अथ दक्षतया क्षितिपालादराच्च प्रतीहारः स्वयमेव निरगात् । अनन्तरं च हंसवेगः सविनयमाकृत्यैव नयनानन्दसंपादनसुभगाभोगभद्रतया समुल्लङ्घ्यमानगुणगरिमा प्रभूतप्राभृतभृतां पुरुषाणां समूहेन महतानुगम्यमानः प्रविवेश राजमन्दिरम् । आरादेव पञ्चाङ्गालिङ्गिताङ्गनः प्रणाममकरोत् । 'एह्येहि' इति सबहुमानमाहूतश्च प्रधावितोऽपसृतः पादपीठलुठितललाटलेखो न्यस्तहस्तः पृष्ठे पार्थिवेनोपसृत्य भूयो नमश्चक्रे । स्निग्धनरेन्द्रदृष्ट्या निर्दिष्टमविप्रकृष्टं स प्रदेशमध्यास्त । ततो राजा तिरश्चीं तनुमीषदिव दधानश्चामरग्राहिणीमन्तरालवर्तिनीं समुत्सार्य संमुखीनस्तं सप्रश्रयं पप्रच्छ—'हंसवेग ! श्रीमान्कच्चित्कुशली कुमारः ?' इति । स तमन्ववादीत्—'अद्य कुशली येनैवं स्नेहस्नपितया सौहार्दद्रवार्द्रया सगौरवं गिरा पृच्छति देवः' इति ।

प्राग्ज्योतिषं कामरूपाख्यो देशः । समुल्लङ्घ्यमानो नीयमानः । संमुखीनोऽभिमुखः भोगः पालनम् ।

में स्थापित आसन पर विराजमान हुए। वहाँ से समायोग (फौजी परेड) के बर्खास्त होने की सूचना देकर क्षण भर वहीं ठहरे।

इसी समय वहाँ आकर प्रतिहार ने जमीन पर हाथ टेक कर सूचना दी—'देव, प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार द्वारा भेजा हुआ हंसवेग नाम का अन्तरंग दूत राजद्वार पर खड़ा है।' राजा ने 'शीघ्र उसे बुलाओ' यह आदरपूर्वक आज्ञा दी। तब बात समझ जाने वाला प्रतीहार राजा के आदर से स्वयं बाहर निकल गया। तत्पश्चात् हंसवेग ने भेंट की। सामग्री लाने वाले अनेक पुरुषों के साथ विनयपूर्वक राजमन्दिर में प्रवेश किया। आँखों को आनन्दित करने वाली वह अपनी सुभग और भद्र आकृति से ही गुणों का गौरव प्राप्त कर रहा था। दूर ही से उसने अपने पाँच अंगों से पृथिवी को छूते हुए राजा को प्रणाम किया। राजा ने 'आओ आओ' कहकर उसे आदर के साथ बुलाया। वह दौड़कर उनके पास आकर पादपीठ पर सिर रगड़ने लगा। तब राजा ने उसकी पीठ पर अपना हाथ रखा। उसने फिर उन्हें प्रणाम किया। राजा ने स्नेहभरी दृष्टि से उसे बैठने के लिए संकेत किया। तब वह थोड़ी दूर पर बैठ गया। तब राजा ने कुछ तिरछे होकर शरीर को झुकाते हुए चामरग्राहिणी को बीच से हटाकर दूत की ओर मुँह करके प्रेमपूर्वक पूछा—'हंसवेग, श्रीमान् कुमार तो कुशल से हैं ?' उसने उत्तर दिया—'जब इतने स्नेह से सनी और

स्थित्वा च मुहूर्तमिव पुनः स चतुरमुवाच—'चतुरम्भोधिभोगभूति-भाजनभूतस्य देवस्य सद्भावगर्भमपहाय हृदयमेकमन्यदनुरूपं प्राभृतमेव दुर्लभं लोके तथाप्यस्मत्स्वामिना संदेशमशून्यतां नयता पूर्वजोपार्जितं वारुणातपत्रमाभोगाख्यमनुरूपस्थानन्यासेन कृतार्थीकृतमेतत्। अस्य च कुतूहलकृन्ति बहून्याश्चर्याणि दृश्यन्ते। तथा हि—प्रतिदिवसं प्रविशति शैत्यहेतोश्छायायाः किरणसहस्रादेकैकः सोमस्य रश्मिरस्मिन्। यस्मिन्प्रविष्टे प्रध्यानानन्तरं स्वादवो दन्तवीणोपदेशाचार्याश्च्योतन्ति चन्द्रभासामम्भसां मणिशलाकाभ्यो यावदिच्छमच्छा धाराः। प्रचेता इव यश्चतुर्णामर्णवानामधिपतिर्भूतो भावी वा तमिदमनुगृह्णाति च्छायया नेतरम्। इदं च न सप्तार्चिर्दहति, न पृषदश्वो हरति, नोदकमार्द्रयति, न रजांसि मलिनयन्ति, न जरा जर्जरयतीति। एतत्तावदनुगृह्णातु दृशा देवः संदेशमपि विस्रब्धं श्रोष्यति।' इत्येवमभिधाय विवृत्यात्मीयं पुरुषमभ्यधात्—'उत्तिष्ठ। दर्शय देवस्य' इति।

शीतोद्भवो दन्तानामन्योन्याघातो दन्तवीणा। सप्तार्चिरग्निः। पृषदश्वो वायुः। विवृत्य स्थित्वा।

सौहार्द से आर्द्र अपनी वाणी से गौरव के साथ देव पूछ रहे हैं तो वे आज सब प्रकार कुशली हुए।

कुछ देर बाद उसने फिर निपुणता के साथ कहा—'चारों समुद्र की लक्ष्मी के भाजन देव को देने योग्य सद्भाव से भरे एक हृदय को छोड़कर लोक में और दूसरा उपहार क्या है? फिर भी हमारे स्वामी ने पूर्वजों द्वारा उपार्जित आभोग नामक यह वारुण आतपत्र सन्देश के साथ सेवा में भेजकर योग्य स्थान में रखने से इसे कृतार्थ कर दिया। इसके अनेक कुतूहलजनक आश्चर्य देखे गये हैं। छाया की ठण्डक पाने के लिए प्रतिदिन चन्द्रमा की एक-एक किरण इसमें प्रवेश करती है। उसके प्रवेश करने पर चन्द्र के समान मणिशलाकाओं से मधुर, स्वच्छ और दाँतों को खटखटा देने वाली धारा निकलने लगती है। वरुण के समान जो चारों समुद्रों का अधिपति हुआ है अथवा होगा उसी पर इस छत्र की छाया पड़ेगी दूसरे पर नहीं। इस छत्र को अग्नि नहीं जला सकती, हवा नहीं उड़ा सकती, पानी गीला नहीं कर सकता, धूल मलिन नहीं कर सकती, एवं जरा इसे जर्जर नहीं बना सकती। देव इस पर दृष्टिपात करने का अनुग्रह करें, फिर एकान्त में संदेश भी सुनें।' यह कह कर वह पीछे मुड़ कर अपने नौकर से बोला—'उठो, देव के सामने वह छत्र दिखाओ।'

स च वचनानन्तरमुत्थाय पुमानूर्ध्वीचकार तद्धौतदुकूलकल्पिताच्च निचोलकादकोषीत् । आकृष्यमाण एव च यस्मिन्नतिसितमहसि सरभसमहासीव हरेण रसातलादुदलासीव शेषफणिफणाफलकमण्डलेन, अस्थायीव चक्रीभूयान्तरिक्षे क्षीरोदेन, अघटीव गगनाङ्गने गोष्ठीबन्धः शारदेन बलाहकव्यूहेन, विश्रान्तमिव विततपक्षतिना वियति पितामहविमानहंसयूथेन, अत्रिनेत्रनिर्गतस्य धवलधाममण्डलमनोहरो दृष्ट इव जनेन जन्मदिवसः कुमुदबन्धोः, प्रत्यक्षीकृत इवोद्गमनक्षणो नारायणनाभिपुण्डरीकस्य, आहितेव कौमुदी प्रदोषदर्शनानन्दतृप्तिरदणाम्, उदमाङ्क्षीदिव मन्दाकिनीपुलिनमण्डलं महदम्बरोदरे, परिवर्तित इव दिवसः पौर्णमासीनिशया मन्दंमन्दमिन्दूदयसंदेहदूयमानमानसैर्विघटितं घटमानचञ्चुच्युतमृणालकोटिभिरासन्नकमलिनीचक्रवाकमिथुनैः शरज्जलधरपटलाशङ्कासंकोचितकेकारवमूकमुखपुटैः पराङ्मुखीभूतं भवनशिखण्डिमण्डलैः, प्रबुद्धमाबद्धचन्द्रानन्दोद्दामोहलदलपुटाट्टहासविशदं कुमुदषण्डैः ।

निचोलकादाच्छादनप्रसेवकात् । अकोषीन्निष्कासितवान् । उदलासदुल्लसितम् । अस्थायि स्थितम् । अघटि घटितम् । विश्रान्तं व्यश्रमत । उद्गमनक्षण उत्पत्तिसमयः । उदमाङ्क्षीदुन्मग्नम् । परिवर्तितः स्वरूपः कृतः ।

उसके कहने पर उसने उठ कर छत्र को ऊँचा किया और सफेद दुकूल के बने हुए खोल में से उसे निकाला । उस छत्र के बाहर खींचे जाते ही अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश भर गया, मानों शिव ने जोर से अट्टहास किया हो या पाताल से होकर शेषनाग का फणामण्डल निकल आया हो, या चक्राकार क्षीरसमुद्र आकाश में स्थिर हो गया हो, या शरत्कालीन मेघसमूह आकाश के प्राङ्गण में सभा करने बैठा हो, या ब्रह्माजी के विमान का हंसयूथ आकाश में पंख फैला कर विश्राम लेने लगा हो । मानों लोगों ने अत्रि के नेत्र से निकले हुए उज्ज्वल धाममंडल से मनोहर चन्द्रमा का जन्मदिन देख लिया । विष्णु के नाभिकमल का उद्भवकाल प्रत्यक्ष देखने में आया । आँखों को कौमुदी-महोत्सव के देखने का आनन्द पूर्ण मिल गया । विशाल आकाश के मध्य में मन्दाकिनी की रेत मानों ऊपर उठ आई हो । दिन ही मानों पूनम की रात के रूप में बदल गया । समीप के कमलिनी-वनों में रहने वाले जोड़े चक्रवाक जो परस्पर मृणाल का आदान-प्रदान कर रहे थे, मन्द-मन्द उदित होते हुए चन्द्रमा के संदेह से दुखी होकर विघटित हो गए । उनके चंचु से मृणाल छूट कर गिर गए । भवन के मयूरों ने उसे शरत्क.ल

चित्रीयमाणचेताश्च सराजको राजा दण्डानुसाराधिरोहिण्या दृष्ट्या सादरमैक्षिष्ट तत्तिलकमिव त्रिभुवनस्य, शैशवमिव श्वेतद्वीपस्य, अंशावतारमिव शरदिन्दोः, हृदयमिव धर्मस्य, निवेशमिव शशिलोकस्य, दन्तमण्डलकद्युतिधवलं मुखमिव चक्रवर्तित्वस्य, मौक्तिकजालपरिकरसितं सीमन्तचक्रमिव दिवः, बहलज्योत्स्नाशुक्लोदरमैन्दवमिव परिवेषवलयं शौक्ल्यापहसितशङ्खश्रीकं श्रवणमण्डलमिव निश्चलतां गतमैरावतस्य श्वेतगङ्गावर्तपाण्डुरं पदमिव त्रिभुवनवन्दनीयं त्रिविक्रमस्य, प्रचेतसश्चूडामणिमरीचिशिखाभिरिव श्लिष्टाभिर्मानसबिसतन्तुमयीभिश्चामरिकावलीभिर्विरचितपरिवेषम्, उपरि चक्रवर्तिलक्ष्मीनूपुरस्वनश्रवणदोहदनिश्चलेनेव लक्ष्मणा विततपत्रेण हंसेन सनाथीकृतशिखरम्, स्पर्शवता च प्रभावस्तम्भितेन मन्दाकिनीमृणालेन मुकुलितफणेन वासुकिनेव नीतेन दण्डतां द्योतमानम्, धवलिम्ना क्षालयदिव नक्षत्रपथम्, प्रभाप्रवाहप्रथिम्ना प्रावृण्व-

---

निवेशः स्थानम्। दन्तमण्डलकं दशनकृतं चक्रवालम्, दशनसमूहश्च। मुखमारम्भः, वक्त्रं च। परिकरः परिवेष्टनम्। परिवेषवलयं परिधिकटकम्। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः'। आवर्तनमावर्तः। प्रावृण्वदाच्छादयत्।

का मेघ समझ कर केका की आवाज बन्द कर दी और पराङ्मुख हो गए। कुमुद चन्द्र के प्रति स्नेह के कारण अपने दलों को विकसित करके अट्टहास के साथ जग पड़े।

अन्य राजाओं के साथ देव हर्ष ने विस्मय-विमुग्ध होकर दण्ड के अनुसार दृष्टि को ऊपर उठाते हुए उस अद्भुत महत् छत्र को ध्यानपूर्वक देखा। वह छत्र मानों त्रिभुवन का तिलक, श्वेतद्वीप का शैशव, शरत्काल के चन्द्रमा का अंशावतार, धर्म का हृदय, चन्द्रलोक का आयतन था, और मानों दाँतों की चमक से उज्ज्वल चक्रवर्तित्व का मुख था। उसके चारों ओर मोतियों के जालक लटक रहे थे, मानों स्वर्गलोक का केश-विन्यास हो। उसके मध्यभाग में चाँदनी छिटक रही थी, मानों चन्द्रमा के मंडल का घेरा हो। अपनी सफेदी से वह शंख की श्री को हँस रहा था, मानों ऐरावत का चंचलता से रहित श्रवणमण्डल हो। वह गंगा की भँवरियों के समान उज्ज्वल था, मानों विष्णु का त्रिभुवनवन्दनीय चरण हो। मानसरोवर के बिसतन्तुओं से मानों बनी हुई छोटी-छोटी चौरियाँ उसके चारों ओर लटक रही थीं, मानों वरुण की चूड़ामणि की किरणें हों। उसके शिखर पर पंख फैलाए हंस का चिह्न बना था, जो मानों चक्रवर्ती की लक्ष्मी के नूपुर की आवाज सुनने के आनन्द में निश्चल था। स्पर्श से सुख देने वाला मन्दाकिनी का मृणाल या प्रभाव से स्तम्भित होकर फनों को सिकोड़ते हुए वासुकिनाग ही उसका

दिव दिवसम्, समुच्छ्रायेणाधःकुर्वदिव दिवम्, उपरिस्थितमिव सर्वमङ्गलानाम्, श्वेतमण्डपमिव श्रियः, स्तबकमिव ब्रह्मस्तम्बस्य, नाभिमण्डलमिव ज्योत्स्नायाः, विशदहासमिव कीर्तेः, फेनराशिमिव खड्गधाराजलानाम्, यशःपटलमिव शौर्यशालितायाः, त्रैलोक्याद्भुतं महच्छत्रम्।

दृष्टे च तस्मिन्राज्ञा प्रथमे शेषमपि प्राभृतं प्रकाशयांचक्रुः क्रमेण कार्माः। तद्यथा पराघ्यर्यरत्नांशुशोणीकृतदिग्भागान्, भगदत्तप्रभृतिख्यातपार्थिवपरागतानाहतलक्षणानलंकारान्, प्रभालेपिनां च चूडामणीनां समुत्कर्षान्, क्षीरोदधेर्धवलताहेतूनिव हारान्, अनेकरागरुचिरवेत्रकरण्डकुण्डलीकृतानि शरच्चन्द्रमरीचिरुञ्चि शौचक्षमाणि क्षौमाणि, कुशलशिल्पिलोकोल्लिखितानां च शुक्तिशङ्खगल्वर्कप्रमुखानां पानभाजनानां निचयान्, निचोलकरक्षितरुचां च रुचिरकाञ्चनपत्रभङ्गभङ्गुराणामतिबन्धुरपरिवेशानां कार्दरङ्गचर्मणां संभारान्, भूर्जत्वक्कोमलाः स्पर्शवतीर्जातिर-

---

कार्मा भृतकाः। आहतलक्षणान्गुणैः प्रसिद्धान्। उक्तं च—'गुणैः प्रतीते तु कृतलक्षणाहतलक्षणौ' इति। समुत्कर्षानतिशयान्, गल्वर्को मसाराख्यो मणिभेदः, चन्द्रकान्त इत्यन्ये। शौचो धावनम्। कार्दरङ्गचर्मणां कार्दरङ्गदेशभवानां स्फोटका-

---

दण्ड बन गए हों। वह मानों अपनी सफेदी से आकाश को धो रहा था। प्रभा के बढ़े हुए प्रभाव से दिन को ढँक रहा था। अपनी ऊँचाई से आकाश को नीचा कर रहा था। सब मंगलों के वह मानों ऊपर स्थित था। छत्र क्या था, मानों लक्ष्मी का श्वेतमंडप (चाँदनी में विहार करने के लिए ऐसा मंडप जिसकी सजावट श्वेत रंग की हो) था; श्वेतद्वीप का बाल रूप था; ज्योत्स्ना का नाभिमण्डल था; कीर्ति का विशद हस्त था; खड्ग के धाराजल की फेनराशि था और शूरता का यशःपटल था।

देव हर्ष जब छत्र को देख चुके तब भृत्यों ने बचे हुए अन्य उपहारों को भी उघाड़ कर दिखाया। वे इस प्रकार थे—आभूषण जो जड़े हुए बहुमूल्य रत्नों की किरणों से दिग्भाग को रंगीन कर रहे थे, जो भगदत्त आदि प्रसिद्ध राजाओं के समय से कुल में चले आ रहे थे, जिन पर भाँति-भाँति के लक्षण या चिह्न ठप्पे से बनाए गये थे। चूड़ामणि या शिरोभूषण, जिनमें बहुत चमक थी। हार, जो क्षीरसमुद्र को भी धवलता के मानों कारण थे। क्षौम वस्त्र, जो शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह चिट्टे रङ्ग के थे और जो धुलाई सह सकने वाले थे और नाना वर्ण की रङ्ग-बिरंगी बेंत की करंडियों (झाँपियों) में कुण्डलित करके रखे गए थे। अनेक प्रकार के पान-भाजन या मधुपान करने के चषक, जो सीप, शंख, गल्वर्क के बने हुए थे और जिनपर चतुर कारीगरों ने भाँति-भाँति की

पट्टिकाः, चित्रपटानां च म्रदीयसां समूरुकोपधानादीन्विकारान्, प्रियङ्गु-प्रसवपिङ्गलत्वञ्चि चासनानि वेत्रमयान्यगुरुवल्कलकल्पितसंचयानि च सुभाषितभाञ्जि पुस्तकानि, परिणतपाटलपटोलत्विषि च तरुणहारीतह-रिन्ति क्षीरक्षारीणि च पूगानां पल्लवावलम्बीनि सरसानि फलानि, सह-कारलतारसानां च कृष्णागुरुतैलस्य च कुपितकपिकपोलकपिलकापोति-कापलाशकोशीकवचिताङ्गीः स्थवीयसीर्वैणवीर्नाडीश्च, पट्टसूत्रप्रसेवकार्पि-तांश्च भिन्नाञ्जनवर्णस्य कृष्णागुरुणो गुरुपरितापमुषश्च गोशीर्षचन्दनस्य, तुषारशिलाशकलशिशिरस्वच्छसितस्य च कर्पूरस्य, कस्तूरिकाकोशकानां च पक्वफलजूटजटिलानां च कक्कोलपल्लवानाम्, लवङ्गपुष्पमञ्जरीणां जातीफलस्तबकानां च राशीन्, अतिमधुरमधुरसामोदनिर्हारिणी-

---

नाम्। जातिपट्टिकाः श्रेष्ठानि जघनग्रन्थनानि। संचयाः पत्रसमूहाः। पटोलस्तिक्तक ओषधिभेदः। उक्तं च—'अथ कुलकं पटोलस्तिक्तकः पटुः' इति। कापोतिका ओषधिभेदः। गोशीर्षचन्दनस्य चन्दनभेदस्य। कोशका नाभयः। अतिमधुरं मधुरसाया इवामोदानि हरन्ति मुञ्चन्ति यास्ताः। मधुरसा द्राक्षा। उक्तं च—'मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा माध्वी मधुरसेति च' इति। अन्ये मधुरसं मकरन्दं द्रव-

---

नक्काशी का काम किया था। कार्दरङ्ग द्वीप से आई हुई ढालें जिनपर आब की रक्षा के लिए खोल चढ़े थे, इनके काले चमड़े पर सुनहली फूल-पत्तियों के कटाव खचित थे और इनकी गोलाई ऊंची-नीची थी। भोजपत्र की तरह मुलायम स्पर्श से सुख देने वाली जाती-पट्टिकाएँ या कटिप्रदेश में बाँधने के काम में आने वाले एक प्रकार के बढ़ियाँ पटके। नरम चित्रपटों (जामदानी) के बने हुए तकिये जिनके भीतर समूर या पक्षियों के बाल या रोंए भरे थे। बेंत के बुने हुए आसन, जिनका रङ्ग प्रियंगुमजरी की तरह ललछौंही पीली झलक का था। सुभाषितों से भरी पुस्तकें जिनके पन्ने (संचय) अगुरु को पीट कर बनाए गए थे। हरी सुपारियों के झुग्गे, जिनमें पल्लवों के साथ सरस फल झूम रहे थे, इनका रङ्ग पके हुए लाल परवल की तरह ललछौंह और हरियल पक्षी की तरह हरियाली लिए था, इनसे दूध टपक रहा था। सहकार लताओं के रस से भरी हुई मोटी बाँस की नलियाँ, जिनके चारों ओर क्रोधित बन्दर के कपोल की भाँति कपोतिका के लाल-पीले पत्ते बँधे हुए थे। काले अगुरु का तेल भी इसी प्रकार की मोटी बाँस की नलियों में भर कर और पत्तों में लपेट कर लाया गया था। पटसन के बने हुए बोरों में भर कर काले अगुरु के ढेर लगाए गए थे, जिनका रङ्ग छूटे हुए अंजन की तरह था। गरमी में ठंडक पहुँचाने वाले गोशीर्ष नामक चन्दन की राशियाँ बरफ़ के शिलाखण्ड की

श्चोल्लककलशीः सितासितस्य च चामरजातस्य निचयान्, अवलम्बमान-तूलिकालाबुकांश्च लिखितानेकलेख्यफलकसंपुटान्, कुतूहलकृन्ति च कनकशृङ्खलानियमितग्रीवाणां किंनराणां च वनमानुषाणां च जीवञ्जीवकानां च जलमानुषाणां च मिथुनानि, परिमलामोदितककुभश्च कस्तूरिकाकुरङ्गान्, गेहपरिसरणपरिचिताश्च चमरीः, चामीकररसचित्रवेत्रपञ्जरान्तर्गतांश्च बहुसुभाषितजल्पाकजिह्वांश्च[1] शुकशारिकाप्रभृतीन्पक्षिणः, प्रवालपञ्जरगतांश्च चकोरान्, जलहस्तिनामुदग्रकुम्भमुक्ताफलदामदन्तुराणि च दन्तकाण्डकुण्डलानि।

राजा तु छत्रदर्शनात्प्रहृष्टहृदयः प्रथमप्रयाणे शोभननिमित्तमिति मनसा जग्राह। हंसवेगं च प्रीयमाणो बभाषे—'भद्र! सकलरत्नधाम्नः परमेश्वरशिरोधारणार्हस्यास्य महातपत्रस्य महार्णवादिव कुमुदबान्धवस्य

माहुः। उल्लकः सुगन्धिफलविशेषरसः। आसवभेद इत्यन्ये। तूलिका ऊर्जिका। यया चित्रं क्रियते। अलाब्व्यस्तुम्ब्यः। प्रवालो विद्रुमः। उक्तं च—'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुंनपुंसकम्' इति। 'नीहारो मिहिका चाथ'।

तरह ठंडे सफेद और साफ कपूर के डले, कस्तूरी के नाफे (थैली) जो कस्तूरी मृगों की नाभि से निकलते हैं। कक्कोल के पक्के फलों से युक्त कक्कोलपल्लव। लवंगपुष्पों की मंजरियाँ, जायफल के गुच्छे, जस्ते की कपड़े चढ़ी कलसी या सुराहियाँ, जिनमें अत्यन्त मीठा मधुरस भर कर लाया गया था, जिनकी भीनी सुगन्धि बाहर फैल रही थी। चित्रफलों के जोड़े, जिनमें भीतर की ओर चित्र लिखे थे और उनके एक ओर तूलिका एवं रङ्ग रखने के लिए छोटी अलाबू की कुप्पियाँ लटक रही थीं। कुतूहल उत्पन्न करने वाले भाँति-भाँति के पशु-पक्षी जैसे सोने की शृंखलाओं से गर्दन में बँधे हुए किन्नर, वनमानुस, जीवंजीवक, जलमानुषों के जोड़े, दिशाओं में सुगन्धि फैलाते हुए कस्तूरीहिरन, घरों में विचरने वाली विश्वासभरी चँवरी गाय, सुनहले रंग से बेंत के पिंजड़ों में अनेक प्रकार के सुभाषित पाठ करने वाले शुकसारिका प्रभृति पक्षी-मूँगे के पिंजड़ों में बैठे हुए चकोर, जलहस्तियों के मस्तक से निकलने वाले मुक्ताफल से जड़े हुए हाथीदाँत के कुण्डल।

छत्र देखते ही राजा का हृदय प्रसन्नता से भर गया और उसने पहले प्रस्थान के समय मन में उसे शुभ निमित्त समझ कर स्वीकार किया। उन्होंने स्नेहपूर्वक हंसवेग से कहा—'भद्र, सब प्रकार के रत्नों से भरे हुए सम्राट् के सिर पर धारण करने योग्य इस महाछत्र

१. जातीः कौशिकशुक।

कुमाराल्लाभो न विस्मयाय। बालविद्याः खलु महतामुपकृतयः' इति। अपनीते च तस्मात्प्रदेशात्प्राभृतसंभारे क्षणमिव स्थित्वा 'हंसवेग! विश्रम्यताम्' इति प्रतीहारभवनं विसर्जयांबभूव। स्वयमप्युत्थाय स्नात्वा मङ्गलाकाङ्क्षी प्राङ्मुखः प्राविशदाभोगस्य छायाम्।

अथ विशत एवास्य छायाजन्मना जडिम्ना चूडामणितामनीयतेव शशिबिम्बमम्बुबिन्दुमुचश्चुचुम्बुरिव चन्द्रकान्तमणयो ललाटतटं कर्पूररेणव इव व्यलीयन्त लोचनयुगले गले गलत्तुहिनकणनिकरकृतनीहारा हारा इवावबध्यन्त हरिचन्दनरसासारेणेवापाति संततमुरसि कुमुदमयमिव हृदयमभवदतिशिशिरमन्तर्हितहिमशिलेव विलीयमाना व्यलिम्पदङ्गानि। जातविस्मयश्चाकरोन्मनसि एकमजर्यं संगतमपहाय काऽस्त्यन्या प्रतिकौशलिकेति। आहारकाले च हंसवेगाय धवलकर्पटप्रावृतधौतनालिकेरपरिगृहीतं विलिप्तशेषं चन्दनमङ्गस्पृष्टे च वाससी शरत्तारकाकारतारमुक्तास्तबकितपदं परिवेशं नाम कटिसूत्रकम् अतिमहार्हपद्मरागालोकलोहि-

---

का कुमार से लाभ होना उस प्रकार आश्चर्यजनक नहीं, जिस प्रकार क्षीरसमुद्र से चंद्रमा का उद्भव होना। महापुरुष लोग उपकार के लड़कों की खेल की विद्या की तरह पहले से ही जान जाते हैं। प्राभृत की सामग्री के वहाँ से हटा लिए जाने पर क्षणभर के बाद हंसवेग को 'तुम विश्राम करो' यह कह कर प्रतिहार-भवन में भेजा। स्वयं उठकर स्नान करके मंगल की आकांक्षा से प्राङ्मुख होकर आभोग नामक उस छत्र के नीचे छाया में बैठ गए।

जब हर्ष ने छत्र की छाया में प्रवेश किया तब उसकी ठंडक से मानों चन्द्र की किरणें ही घनीभूत होकर उसकी चूड़ामणि बन गईं। चन्द्रकान्तमणियाँ पसीजने लगीं और जलकण उनके ललाट पर छा गए। उनकी आँखों में कपूर का आँजन मानों लग गया। गले में बरफ के टुकड़ों के छोटे-छोटे फुहारे हार के समान कतार से बँध गए। उनके वक्षपर मानों हरिचन्दन रस बरसने लगा। हृदय मानों कुमुदों से भर कर अत्यन्त शिशिर हो गया। अदृश्य रूप में मानों बरफ की शिला उनके अङ्गों पर पिघलने लगी। आश्चर्य से भर कर उन्होंने मन में सोचा—'आमरण मैत्री के अतिरिक्त इस प्रकार से सुंदर उपहार का बदला क्या हो सकता है?' भोजन के अवसर पर राजा ने हंसवेग के लिए सफेद वस्त्र लपेट कर नारियल के साथ अपने लगाने से बचा हुआ चन्दन भेजा और उसके साथ ही अपने अङ्ग से छुआए हुए परिधानीय वस्त्रयुगल शरत्कालीन तारों की आकृति वाले मोतियों से बना हुआ परिवेश नामक कटिसूत्र और बहुमूल्य जड़े हुए पद्मराग

तीकृतदिवसं च तरङ्गकं नाम कर्णाभरणं प्रभूतं च भोज्यजातं प्राहिणोत्। एवंप्रायेण च क्रमेण जगाम दिवसः।

ततः कटकस्थबलबहलधूलिधूसरितवपुरंशुमाली मलीमसमङ्गमिव क्षालयितुमपरजलनिधिमवातरत्। आभोगातपत्रप्रदानवार्तामिव निवेदयितुं वरुणाय वारुणीं दिशमयासीत्। मुकुलायमानसकलकमलवना प्रमुख एव बद्धसेवाञ्जलिपुटेव सद्वीपा भूरभूद्भूपतेः। भूपालानुरागमय इव निखिलजीवलोकलोकाञ्जलिबद्धबन्धुर्जगज्जग्राह संध्यारागः। गौडापराधशङ्किनीव श्यामतां प्रपेदे दिक्प्राची। प्रचिततिमिरनिर्वोढा निर्वाणान्यनृपप्रतापानलकलापेव कालिमानमतानीन्मेदिनी। मेदिनीशप्रदोषास्थानपुष्पनिकरमिव विकचलगररुचिरमवचकरुरुडुनिकरमविरलं ककुभः। स्कन्धावारगन्धगजमदामोदधावितस्येव मार्गो वियति विरराज रजःपाण्डुरैरावतस्य। कुपितनृपव्याघ्राघ्रातामुपसृष्टामित पौरुष्टुतीं विहाय विहायस्तलमारुरोह रोहिणीरमणः। प्रयाणवार्ता इव मानिनीनां हृदयभेदिन्यो

कटकं हस्त्यश्वादीनां सर्वेषां संनिवेशदेशः। तत्स्थं बलं सैन्यम्। तगरं पिण्डीभवनम्। नृपव्याघ्रो राजशार्दूलः, हर्षः। उपसृष्टां सोपद्रवाम्। पौरुष्टुतीं ऐन्द्रीम्। रोहिणीरमणश्चन्द्रः, वृषभश्च। रोहिणी गौः। उक्तं च—'माहेयी सौरभेयी गौरुस्रा

की किरणों से दिन मे लाली बिखेरता हुआ तरंगक नाम का कर्णाभरण एवं बहुत-सा भोजन का सामान भेजा। इस प्रकार वह दिन व्यतीत हुआ।

तब सूर्य कटक की सेना से उड़ी हुई धूल से मानों धूसरित होने के कारण अपने मलिन अङ्गों को धोकर साफ करने के लिए पश्चिम समुद्र में अवतीर्ण हुआ या हर्ष को आभोग नामक छत्र के प्राप्त होने का संदेश निवेदन करने के लिए पश्चिम दिशा में वरुण के पास पहुँचा। कमलों के वन मुकुलित होने लगे, मानों राजा के सम्मुख द्वीपों के साथ पृथिवी सेवा करने के लिए अञ्जलिपुट बाँधे खड़ी हो। राजा के अनुराग से भरा हुआ संध्याराग जो सारे जीवलोक के लिए निवासी लोगों के बँधे अञ्जलिपुट का बन्धु है, जगत् में भर गया। पूर्व दिशा मानों गौड़ाधिप के अपराध से डर कर मलिन हो गई। पृथिवी पर गाढ़ा अन्धकार छा गया मानों पृथिवी ने अन्य राजाओं के प्रतापानल के बुझ जाने से उसकी कालिमा को फैला दिया हो। दिशाओं ने राजा के सायंकालीन सभामण्डल पर पुष्पसमूह के समान खिले हुए तगर पुष्पों की भाँति तारों को बिखेर दिया। आकाश में मानों स्कन्धावार के गन्धगजों की मदगन्ध सूँघ मुठभेड़ के लिये दौड़ने से ऐरावत का मार्ग धूल से भर गया। रोहिणीरमण (रोहिणी का पति) चन्द्रमा रूपी (रोहिणी

ययुरिन्दुदीधितयो दश दिशः। नवनृपदण्डयात्रात्रासातुरा इव तरलित-सत्त्ववृत्तयश्चुक्षुभुः पतयो वाहिनीनाम्। चिन्तेव भूभृतां हृदयानि विवेश गुहाविवराणि विमुक्तसर्वाशातिमिरसंततिः। प्रतिसामन्तचक्षुषामिव ननाश निद्रा कुमुदवनानाम्।

अस्यां च वेलायां विततवितानतलवर्ती नरेन्द्रो 'यात तावत्' इति विसर्ज्यानुजीविनो हंसवेगमादिष्टवान्—'कथय संदेशम्' इति। प्रणम्य स कथयितुं प्रास्तावीत्—'देव! पुरा महावराहसंपर्कसंभूतगर्भया भगवत्या भुवा नरको नाम सूनुरसावि रसातले। वीरस्य यस्याभवन्बाल्य एव पादप्रणामप्रणयिनश्चूडामणयो लोकपालानाम् यस्य च त्रिभुवनभुजो भुजशौण्डस्य भवनकमलिनीचक्रवाकीकोपकुटिलकटाक्षेक्षितोऽपि भय-

---

माता च शृङ्गिणी। अर्जुन्यघ्न्या रोहिणी स्यादुत्तमा गोषु नैचिकी॥' इति। वृषभश्च कुपितव्याघ्राघ्रातामत एव सोपद्रवां दिशं विहाय स्थानान्तरमारोहति। मानः प्रियाविषये, अन्यत्र,-धीरविषये। सत्त्वानि प्राणिनः, धैर्यं च सत्त्वम्। वाहिनीनां सेनानाम्, नदीनां च। आशा दिशः, आस्था च। निद्रा संकोचः, स्वापश्च।

अर्थात् गौ का पति) वृषभ क्रोधित राजा रूपी व्याघ्र से आक्रान्त पूर्व दिशा रूपी गाय को छोड़कर आकाश पर चढ़ आया। मानिनियों के हृदय को विदीर्ण करने वाली चन्द्रमा की किरणें सैनिकप्रयाण की वार्ता के समान आकाश में फैल गईं। राजा की नई दण्डयात्रा के त्रास से आतुर शत्रु के सेनापतियों का धैर्य नष्ट हो गया (समुद्र और उनके जलजन्तु खलबला उठे)। समस्त दिशाओं को छोड़ कर अन्धकारसन्तति गुहाविवरों में उस प्रकार घुस गई जैसे राजाओं के हृदय में आशा से रहित चिन्ता। शत्रु-सामन्तों की आँखों के समान ही कुमुदवनों की निद्रा न जाने कहाँ चली गई।

इस समय हर्ष फैले हुए वितान के नीचे लेटे थे। उन्होंने 'जाओ' कह कर नौकरों को बाहर हटा दिया और हंसवेग को आज्ञा दी—'संदेश कहो।' उसने प्रणाम कर कहना शुरू किया—'देव, प्राचीनकाल में महावराह के सम्पर्क से गर्भिणी होकर पृथिवी ने नरक नाम का पुत्र उत्पन्न किया। वह बाल्यकाल में ही बड़ा हो गया। लोकपाल उसके पैरों पर अपनी चूड़ामणि रगड़ने लगे। भुजशाली वह त्रिभुवन पर शासन करता था और उसकी आज्ञा के बिना भवनकमलिनी के वनों में रहने वाली चक्रवाक पत्नियों के कुटिल कटाक्षों द्वारा देखे जाने पर भी एवं जिनका सारथी अरुण डर के मारे रथ को घुमा लेता था ऐसे सूर्य भी अस्त नहीं होते थे, उसी नरक ने वरुण का मानों बाहरी हृदय हो ऐसे इस छत्र को हर लिया। उसके वंश में भगदत्त, पुष्पदत्त, वज्रदत्त

चकितारुणपरिवर्तितरथो नाज्ञया विना रविरस्तमयासीत्। यश्च वरुणस्य बहिर्वृत्ति हृदयमिदमातपत्रमहार्षीत्। महात्मनस्तस्यान्वये भगदत्तपुष्पदत्तवज्रदत्तप्रभृतिषु व्यतीतेषु बहुषु मेरूपमेषु महत्सु महीपालेषु प्रपौत्रो महाराजभूतिवर्मणः पौत्रश्चन्द्रमुखवर्मणः पुत्रो देवस्य कैलासस्थिरस्थितेः स्थितिवर्मणः सुस्थिरवर्मा नाम महाराजाधिराजो जज्ञे तेजसां राशिर्मृगाङ्क इति यं जना जगुः। योऽयमग्रजेनेवाजायत सहैवाहंकारेण। यश्च बाल एव प्रीत्या द्विजातीनप्रीत्या चारातीन्समग्रान्प्रतिग्रहानग्राहयत्। यत्र चातिदुर्लभं लवणालयसंभूतायाः परं माधुर्यमभूल्लक्ष्म्याः। तथा च यो वाहिनीनाथानां शङ्खाञ्जहार न रत्नानि, पृथिव्याः स्थैर्यं जग्राह न करम्, अवनिभृतां गौरवमादत्त न नैष्ठुर्यम्। तस्य च सुगृहीतनाम्नो देवस्य देव्यां श्यामादेव्यां भास्करद्युतिर्भास्करवर्मापरनामा तनयः शंतनोर्भागीरथ्यां भीष्म इव कुमारः समभवत्। अयमस्य च शैशवादारभ्य संकल्पः स्थेयान्स्थाणुपादारविन्दद्वयादृते नाहमन्यं नमस्कुर्यामिति ईदृशश्चायं मनोरथस्त्रिभुवनदुर्लभस्त्रयाणामन्यतमेन संपद्यते सकलभुवनविजयेन वा मृत्युना वा यदि वा प्रचण्डप्रतापज्वलनजनितदिग्दाहेन जगत्येक-

---

प्रतिग्रहो द्विजदीयमानोऽर्थः, सैन्यपश्चाद्भागश्च।

आदि मेरुसदृश बड़े-बड़े राजा हुए। उसी परम्परा में महाराज भूतिवर्मा का प्रपौत्र, चन्द्रमुखवर्मा का पौत्र, कैलासवासी महाराज स्थितिवर्मा का पुत्र सुस्थिरवर्मा नाम का महाराजाधिराज उत्पन्न हुआ। उस तेजस्वी को लोग मृगाङ्क के नाम से गाया करते हैं। वह मानों अपने अग्रज अहंकार के साथ ही उत्पन्न हुआ। बाल्यावस्था में ही उसने प्रीतिपूर्वक दान दिए और अप्रीति से समस्त शत्रुओं को पछाड़ डाला। सारे समुद्र से उत्पन्न जिस लक्ष्मी का अत्यन्त दुर्लभ माधुर्य बढ़ कर था उसने प्रतिपक्ष सेनापतियों से (अथवा समुद्रों के) शंखों को छीन लिया रत्नों को नहीं। राजाओं (अथवा पर्वतों) के गौरव को ले लिया, उनकी निष्ठुरता को नहीं। सुगृहीत नाम उस राजा की रानी श्यामादेवी से भास्करद्युति नामक पुत्र जिसका दूसरा नाम भास्करवर्मा है, उत्पन्न हुआ; जैसे गङ्गा से शन्तनु के पुत्र भीष्म हुए। शैशव से ही उसने यह अटल प्रतिज्ञा की थी कि मैं शिव के अतिरिक्त दूसरे किसी के चरणों में प्रणाम न करूँगा। त्रिभुवन में दुर्लभ ऐसा मनोरथ तीन तरह से सिद्ध हो सकता है, त्रिभुवन पर विजय प्राप्त करने से या मृत्यु से अथवा प्रचण्ड प्रताप की अग्नि से दिग्दाह उत्पन्न करने वाले आपके समान

वीरेण देवोपमेन मित्रेण। मैत्री च प्रायः कार्यव्यपेक्षिणी क्षोणीभृताम्। कार्यं च कीदृशं नाम तद्भवेद्यदुपन्यस्यमानमुपनयेन्मित्रतां देवम्। देवस्य हि यशांसि संचिचीषतो बहिरङ्गभूतानि धनानि। बाहावेव च केवले निषण्णस्य शेषावयवानामपि साहायकसंपादनमनोरथो निरवकाशः किमुत बाह्यजनस्य। चतुःसागरग्रासग्रहणघस्मरस्य पृथिव्येकदेशदानोपन्यासेनापि का तुष्टिः। अभिरूपकन्याविश्राणनविलोभनमपि लक्ष्मीमुखारविन्ददर्शनदुर्ललितदृष्टेरकिंचित्करम्। एवमघटमानसकलोपायसंपादितपदार्थेऽस्मिन्प्रार्थनामात्रकमेव केवलमनुरुध्यमानः शृणोतु देवः। प्राग्ज्योतिषेश्वरो हि देवेन सहैकपिङ्ग इवानङ्गद्विषा, दशरथ इव गोत्रभिदा, धनञ्जय इव पुष्कराक्षेण, वैकर्तन इव दुर्योधनेन, मलयानिल इव माधवेन, अजर्यं संगतमिच्छति। यदि च देवस्यापि मैत्रीयति हृदयमवगच्छति च पर्यायान्तरितं दास्यमनुतिष्ठन्ति सुहृद इति ततः किमास्यते समाज्ञाप्यतामनुभवतु विष्णोर्मन्दरगिरिरिव विकटकेयूरकोटिमणिविघट्टनक्वणितकटकमणिशिलाशकलानि गाढापगूढानि देवस्य कामरूपा-

---

अद्वितीय वीर की मित्रता से। राजाओं की मित्रता तो परस्पर उपकार के कार्य से होती है। कार्य वह कैसा हो, जिसे करके आपको मित्र बनाया जाय ? केवल यश के संचय की इच्छा रखने वाले आप धन को हेय समझते हैं। एक मात्र अपने भुजवीर्य पर निर्भर होकर रहने वाले आपके अन्य अङ्ग भी आपको सहायता देने की इच्छा प्रकट करते हैं तो उनकी इच्छा व्यर्थ है, ऐसी स्थिति में जो बाह्य लोग हैं तो बात ही और है। जो व्यक्ति चारों समुद्रों को एक घूँट बना लेना चाहते हैं उसके सामने धरती एक भाग रख देने से क्या सन्तुष्टि होगी ? सुन्दरी कन्या को अर्पित करने का लोभ भी उत्पन्न किया जाय तो व्यर्थ है, क्योंकि आपकी दृष्टि स्वयं लक्ष्मी के मुखकमल को ही देखने वाली है। इस प्रकार किसी भी उपाय के द्वारा उपस्थित किया गया पदार्थ चाहे वह कैसा भी हो आपके लिए अनुकूल नहीं बैठता, तो केवल हमारी प्रार्थना मात्र के अनुरोध से ही देव सुनें—प्राग्ज्योतिषेश्वर देव के साथ कभी न मिटने वाली मैत्री चाहते हैं। जैसे शिव के साथ एकपिङ्ग, इन्द्र के साथ दशरथ, कृष्ण के साथ अर्जुन, दुर्योधन के साथ कर्ण, वसन्त के साथ मलयानिल ने मैत्री की है। यदि देव का हृदय मित्रता का अभिलाषी हो और यह जानता हो कि मैत्री के नाम पर मित्र लोग दासता का भी आचरण करते हैं तो बैठे रहने से क्या ? आज्ञा दीजिए। कामरूप के अधिपति कुमार की केयूर मणि से आलिङ्गन में उस प्रकार रगड़ खाएगी जैसे मन्दराचल के कटक विष्णु के केयूर से टकराए

धिपतिः। अस्मिन्नातृप्तेरनवरतविमललावण्यसौभाग्यसुधानिर्झरिणि मुखशशिनि चिराच्चक्षुषी लालयतु प्राग्ज्योतिषेश्वरश्रीः। नाभिनन्दति चेद्देवः प्रणयमाज्ञापयतु किं कथनीयं मया स्वामिन' इति।

विरतवचसि तस्मिन्भूपालः पूर्वोपलब्धैरेव गुरुभिर्गुणैरारोपितबहुमानः कुमारे सुदूरमाभोगातपत्रव्यतिकरेण तु परां कोटिमारोपिते प्रेम्णि लज्जमान इव सादरं जगाद—'हंसवेग! कथमिव तादृशि महात्मनि महाभिजने पुण्यराशौ गुणिनां प्राग्रहरे परोक्षसुहृदि स्निह्यति मद्विधस्यान्यथा स्वप्नेऽपि प्रवर्तेत मनः। सकलजगदुत्तापनपटवोऽपि शिशिरायन्ते त्रिभुवननयनानन्दकरे कमलाकरे करास्तिग्मतेजसः। सुबहुगुणगणक्रीताश्च के वयं सख्यस्य। सज्जनमाधुर्याणामभृतदास्यो दश दिशः। एकान्तावदातोत्तानस्वभावसंभृतसादृश्यस्य कुमुदस्य कृते केनाभिहितः शिशिररश्मिः। श्रेयांश्च संकल्पः कुमारस्य। स्वयं बाहुशाली मयि च समालम्बितशरासने सुहृदि हरादृते कमन्यं नमस्यति। संवर्धिता मे प्रीतिरमुना संकल्पेन। अवलेपिनि पशावपि केसरिणि बहुमानो हृदयस्य

थे। प्राग्ज्योतिषेश्वर की लक्ष्मी जब तक तृप्त न हो तब तक निरन्तर लावण्य और सौभाग्य के अमृत को झरने वाले आपके मुखचन्द्र में अपने नेत्रों को लगा दें। अगर देव कुमार के प्रणय का स्वागत नहीं करते तो आज्ञा दें। मैं जाकर स्वामी से क्या कहूँगा?

उसके इस प्रकार कहने पर कुमार के सुष्ठ गुणों के पहले ही मिले परिचय से हर्ष के मन में आदरभाव उत्पन्न हो गया था और आभोग नामक छत्र को भेंट में देने के सम्पर्क से वे कुमार के प्रति अत्यन्त प्रेमासक्त हो चुके थे। उन्होंने लज्जित होते हुए आदरपूर्वक कहा—'हंसवेग, इस प्रकार महान आत्मा, महाकुलीन, पुण्यराशि, गुणियों में श्रेष्ठ, परोक्ष मित्र कुमार के स्नेह दर्शाने पर मेरे जैसे के मन में स्वप्न में भी अन्यथाभाव कैसे आ सकता है? समस्त संसार को संतप्त कर देने में समर्थ सूर्य के तेज त्रिभुवन के नेत्र को आनन्दित करने वाले पद्मसमूह में आकर ठण्डे पड़ जाते हैं। कुमार के अनेक गुणों से जब हम बिक गये तो हमें मित्रता का अधिकार क्या? दिशाएँ सज्जनों के मधुर स्वभाव के कारण ही वेतन के बिना ही उनकी दासी बन जाती हैं। अत्यन्त स्वच्छ स्वभाव कुमुदों को, जो स्वच्छहृदय सज्जनों का सादृश्य प्राप्त करते हैं, विकसित करने के लिए चन्द्रमा से किसने सिफारिश की है। कुमार का संकल्प श्रेष्ठ है। स्वयं वे बाहुवीर्यशाली हैं। धनुष धारण करके जब मैं मित्र के रूप हूँ तो शिव के अतिरिक्त किसी अन्य के सामने क्यों झुकेंगे। मेरे इस संकल्प से प्रीति और भी बढ़ गई। पशुजाति

किं पुनः सुहृदि। तत्तथा यतेथाः यथा न चिरमियमस्मान्क्लेशयति कुमारदर्शनोत्कण्ठा' इति।

हंसवेगस्तु विज्ञापयांबभूव—'देव! किमपरमिदानीं क्लेशयत्यभिजातमभिहितं देवेन। सेवाभीरवो हि सन्तः, तत्रापि विशेषेणायमहङ्कारधनो वैष्णवो वंशः। आस्तां तावदस्मत्स्वामिवंशः। पश्यतु देवः पुरुषस्य हि सेवां प्रति दुर्जनन्येवातिवृद्धया दुर्गत्या वाभिमुखीक्रियमाणस्य, कुटुम्बिन्येवासंतुष्टया तृष्णया वा प्रेर्यमाणस्य, दुरपत्यैरिव यौवनजनितैर्नानाभिलाषिभिरसत्संकल्पैर्वाकुलीक्रियमाणस्य जरत्कुमारीमिव परमार्गणयोग्यामतिमहतीं वा अवस्थां पश्यतः, स्वगृहे दुर्बन्धुभिरिव दुःस्थितैः समग्रैर्ग्रहैर्वा ग्राह्यमाणस्याभियोगं, पुरातनैरतिदुस्त्यजैर्भृत्यैरिव मलिनैः कर्मभिर्वानुवर्त्यमानस्य, सकलशरीरसंतापकरं करीषाग्निमिव दुष्कृतिनः कृतचित्तस्य संप्रवेष्टुं राजकुलमुपहतसकलेन्द्रियशक्तेरिव मिथ्यैव हृदयगतविषयग्रामग्रहणाभिलाषस्य, प्रथममेव तोरणतले वन्दनमालाकिस-

---

में उत्पन्न अभिमान करने वाले सिंह के प्रति भी जब हृदय में आदर है तो मित्र के प्रति क्यों न हो? तो तू जाकर यह प्रयत्न करना कि कुमार के दर्शन की उत्कण्ठा हमें चिरकाल तक न सताती रहे।'

हंसवेग ने निवेदन किया—'देव, दूसरा क्या कष्ट होगा? देव ने बहुत ठीक कहा। सज्जन लोग अपनी सेवा से डरते हैं, अहंकार के धनी विष्णु (वराह) के वंश की तो बात ही और है। हमारे स्वामी के वंश की बात तो जाने दीजिए। देव ही देखें, दुष्ट जननी के समान अत्यन्त बढ़ी हुई (अतिवृद्धा) दुर्गति मनुष्य को नौकरी के लिए ढकेलती है। असन्तुष्ट तृष्णा पत्नी की भाँति उसे प्रेरित करती है। दुष्ट पुत्रों की भाँति यौवन-जनित नाना प्रकार की अभिलाषाओं से भरे हुए असत् संकल्प उसे आकुल कर डालते हैं। उस कन्या के समान, जो उम्र होने पर भी ब्याही नहीं गई ऐसी बुरी अवस्था को जिसमें दूसरों (धनी लोगों या पति) का अन्वेषण होता है, वह देखने लगता है। दुष्ट बान्धवों के समान सारे ग्रह उसके घर में डेरा डाल देते हैं और उसे सताने लगते हैं। पुराने हो जाने के कारण जिनसे पिण्ड छुड़ाना नहीं बनता, ऐसे भृत्यों के समान मलिन कर्म उसके पीछे पड़ जाते हैं। पाप का मारा वह सारे शरीर को संतप्त करने वाले भूसे की अग्नि के समान राजकुल में प्रवेश पाने के लिए निश्चय करता है। वह उस व्यक्ति के समान, जिसकी इन्द्रियों की सारी शक्ति ठप हो गई हो, विषयों के उपभोग की मन में झूठी साध करता है। पहले ही जब वह तोरणद्वार के

लयस्येव शुष्यतो द्वारस्थिभिर्निरुद्धस्य, पीडितस्य प्रविशतो द्वारे हरिणस्येवापरैर्हन्यमानस्य, करिकर्मचर्मपुटस्येव मुहुर्मुहुः प्रतिहारमण्डलकरप्रहारैर्निरस्यमानस्य, निधिपादपप्ररोहस्येव द्रविणाभिलाषादधोमुखीभवतः, दूरममार्गणस्याप्यतिविप्रकृष्टविवृतविसर्जितस्योद्वेगं व्रजतः, अकण्टकस्यापि चरणतललग्नस्याकृष्य क्षेपीयः क्षिप्यमाणस्य, अमकरकेतोरप्यकालोपसर्पणाप्रकुपितेश्वरदृष्टिदग्धस्य, प्रलयमुपगच्छतः कपेरिव कोपनिर्भर्त्सितस्याप्यभिन्नमुखरागस्य, ब्रह्मघ्न इव प्रतिदिवसवन्दनोद्घृष्टशिरःकपालस्य, स्पर्शरहितस्याशुभकर्माणि निर्वहतः, त्रिशङ्कोरिवोभयलोकभ्र-

---

हस्तिनां युद्धशिक्षार्थं चर्ममयो हस्ती। प्रतिहारमण्डलेन दौवारिकसमूहेन। प्रतिसंहारेण वेष्टनेन मण्डलं यस्य करस्य तत्प्रहारैश्च। निधिपादपप्ररोहो निधानपृष्ठजन्मा वृक्षाङ्कुरः। स च सर्वो निधिप्रभावादधोमुखीभावः प्रणामः। अमार्गणस्यायाचकस्य च अतिविप्रकृष्टैः प्राकृतैः। पूर्वं विवृतः स्वतश्च लब्धदर्शन एव विसर्जितस्यात एवोद्वेगं मन्युं व्रजतः। मार्गणः शरश्चातिविप्रकृष्टं कर्णान्ते विवृतो विसर्जित उद्गतवेगं याति। अमकरकेतोरशृङ्गारिणोऽपि। अकालेऽप्रस्ताव उपसर्पणं यस्य सः। तथा। अप्रकुपितस्येश्वरस्य हर्षस्य दृष्ट्या दग्धः। ततो विशेषणसमासः। प्रलयः प्रकृष्टो लयो भित्त्यादिश्लिष्टत्वम्, नाशश्च। कपिसदृशः कपेर्लोहितमुखत्वात्। प्रतिदिवसेत्यादि। ब्रह्मघ्नो हतब्राह्मणः कपालमहरहर्वन्दते। त्रिशङ्कुर्नाम चण्डालभावमास्थितोऽपि याजयित्वा विश्वामित्रेण स्वर्गमारोपितः कुपितेनेन्द्रेण हुंकार-

---

पास पहुँचता है, द्वारपाल उसे रोक देते हैं और वह बन्दनवार के पत्ते की तरह वहीं झूरता रहता है। वहाँ के दुःख सहकर किसी तरह राजकुल की ड्योढ़ी के भीतर प्रवेश भी हो गया तो दूसरे लोग उस पर टूट कर हिरन की तरह कुटियाते हैं। चमड़े के बने हुए हाथी की तरह बार-बार प्रतिहारों के घूसे खाकर धकिया दिया जाता है। धन कमाने की इच्छा से राजकुल में गया हुआ वह ऐसे मुँह लटकाए रहता है जैसे जमीन में गड़े खजाने के ऊपर लगाए गए पौधे की डाल नीचे झुकी हो। वह चाहे कुछ भी याचना न करे, फिर भी राजकुल में दूर तक प्रविष्ट हुआ वह जोर के साथ बाहर फेंक दिया जाता है, जैसे धनुष बाण को खींच कर जोर से फेंक देता है। यद्यपि वह काँटे की तरह गड़ कर किसी को दुःख नहीं देता तथापि पैर में लगा हुआ वह निकाल कर फेंक दिया जाता है। किसी प्रकार असमय में स्वामी के पास पहुँच भी गया तो उसकी कुपित दृष्टि उसे जला कर नष्ट कर देती है, जैसे अनाड़ी कामदेव देवताओं के फेर में पड़ कर शिव के द्वारा जल गया था। विनाश के मुख में पहुँचे हुए उसे डाँट-फटकार सुनने पर

ष्टस्य नक्तंदिनमवाक्शिरसस्तिष्ठतः, वाजिन इव कवलवशेन सुखवाह्य-मात्मानं विदधानस्य, अनशनशायिन इव हृदयस्थापितजीवनाशस्य, शरीरं क्षपयतः शुन इव निजदारपराङ्मुखस्य, जघन्यकर्मलग्नमात्मानं ताडयतः, प्रेतस्येवानुचितभूमिदीयमानान्नपिण्डस्य, बलिभुज इव जिह्वा-लौल्योपयुक्तपुरुषवर्चसो वृथा विहितायुषो जीवतः, श्मशानपादपानिव पिशाचस्य दग्धभूत्या परुषीकृतान्राजवल्लभानुपसर्पतः, विपरीतजिह्वाज-नितमाधुर्यैरोष्ठमात्रप्रकटितरागैः राजशुकालापैः शिशोरिव मुग्धविलोभ्य-

---

तर्जितः। स च निपित्सुरेव विश्वामित्रप्रभावाद्भुवमनवाप्य तत्रैव पूर्वं लम्ब-मानोऽद्यापि स्थितः। कवलो ग्रासः। सुखेन वाह्यम्। स्वयोरैक्यात्। सुखेभ्यो वहिर्भूतम्, कृच्छ्रेण व्याप्यं च। हृदये स्थापिता जीवने वृत्त्युपाय आशा येन, जीवस्य नाशो, जीवनाशश्च। जघन्यं निकृष्टम्, जघने भवं जघन्यं च सुतम्। अनु-चितायामयशस्यायां भूमौ। चितायाः पश्चादनुचितम्। बलिभुजः काकस्य। लौल्यं चापलम्, अभिलाषश्च। उपयुक्तं व्ययीकृतम्, भुक्तं च। वर्चस्तेजः, विष्ठा च। वृथा विहितं कृतमायुर्यस्य, विभ्यः पक्षिभ्यो हितमायुर्यस्य, वृथा निष्फलं जीवतः पिशाचस्य मूर्खस्य। भूतिः संपत्, भस्म च। राजानः शुका इव, राजशुकाश्च।

भी वानर की तरह मुँहपर लाली बनाए रखनी पड़ती है। प्रतिदिन उसे सबके पैरों पर सिर रगड़ना पड़ता है, मानों उसे ब्रह्महत्या लगी हो। उसे कोई नहीं छूता, मानों अशौच पड़ गया हो। त्रिशंकु के समान दोनों लोकों से भ्रष्ट होकर दिन-रात वह नीचे मूड़ो लटकाए रहता है। घोड़े की तरह थोड़े से टुकड़ों के लिए वह अपने सब सुख छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। अनशन करके सोने वाले की तरह उसके हृदय में हमेशा मर जाने की इच्छा रहती है। कुत्ते के समान अपनी पत्नी से पराङ्मुख होकर वह अपने शरीर को कँपाता रहता है और नीच कर्म में प्रवृत्त अपने आपको स्वयं वह पीटता रहता है। प्रेत के समान भोजन करने के लिए जहाँ के तहाँ (अनुचित जगह में) बैठा दिया जाता है। वह कौवे की तरह जीभ के चटोरपन में अंचड़ कर अपने बल को उपयोग में लाता है और व्यर्थ आयु गँवाते हुए जीता है। जैसे श्मशान के वृक्षों पर पिशाच मँडराता है उसी प्रकार वह नासपीटी बढ़ोतरी पाकर बदमिजाज हुए राजा के मुंहलगे लोगों के पास चक्कर लगाता रहता है। मीठी-मीठी बातें करने वाले और ओठ मात्र में ही राग दिखलाने वाले सुग्गे बच्चों की तरह उसे भुलावे में डाल देते हैं। मदारी के प्रभाव में पड़ कर बेताल जाते उसी प्रकार वे भी राजा के डर के मारे अपने मन से कुछ भी नहीं कर सकते। जैसे चित्रलिखित धनुष चढ़ी

मानस्य, वेतालस्येव नरेन्द्रप्रभावाविष्टस्य न किंचिन्नाचरतः, चित्रधनुष इवालीकगुणाध्यारोपणैकक्रियानित्यनम्रस्य निर्वाणतेजसः, संमार्जनीसमुपार्जितरजसोऽवकरकूटस्येव निर्माल्यवाहिनः, कफविकारिण इव दिने दिने कटुकैरुद्वेज्यमानस्य, सौगतस्येवार्थशून्यविज्ञप्तिजनितवैराग्यस्य काषायाण्यभिलषतः, निशास्वपि मातृबलिपिण्डस्येव दिक्षु विक्षिप्यमाणस्य, अशौचगतस्येव कुशयनजनितसमधिकतरदुःखवृत्तेः, तुलायन्त्रस्येव पश्चात्कृतगौरवस्य तोयार्थमपि नमतः, अतिकृपणस्य शिरसा केवलेनासंतुष्टस्य वचसापि पादौ स्पृशतः, निर्दयवेत्रिवेत्रताडनत्रस्तयेव त्रपया त्यक्तस्य, दैन्यसंकोचितहृदयहृतावकाशयेवाहोपुरुषिकया परिवर्जितस्य, कु-

---

राजशुकभेदाः । नरेन्द्रो राजा, मन्त्रविच्च । गुण उत्कर्षः, ज्या च गुणः । निर्वाणं प्रशान्तम्, निर्गतत्राणतेजश्च । अवकरकूटो मार्जनीक्षिप्तो रजस्तृणादिसंघातः । उक्तं च—'संमार्जनी शोधनी स्यात्संकरोऽवकरस्तथा । क्षिप्ते' इति । अमाल्यवाहित्वेन निःश्रीकत्वमुच्यते । कटुकैः प्रतीहारैः, तीक्ष्णैश्च । अर्थशून्यया निष्फलया । विज्ञप्त्या प्रार्थनया कृतोद्वेगस्य । बौद्धानामपि बाह्यवस्तुशून्यानि विज्ञानानि । अशौचं मृतकादि । कुशयनं कुत्सितशय्या, भूमिश्च कुः । पश्चात्कृतं वर्जितम् , पृष्ठतश्च कृतम् । गौरवं महत्त्वम् , गुरुत्वं च । तोयशब्दो जलोपलक्षणार्थः । तोयं जलं च पादस्पर्शनं पथोऽपि । त्रपया लज्जया । 'आहोपुरुषिका दर्पाद्या स्यात्संभावनात्मनि' । स्वमात्मा, धनं च । उक्तं च—'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽ-

---

प्रत्यञ्चा से झुका हुआ भी बाण चलाने की शक्ति नहीं रखता उसी प्रकार झूठ-मूठ किसी के गुणों की प्रशंसा करते हुए अपनी नम्रता दर्शाता है और उसका तेज बुझा रहता है। झाड़ू से बटोर कर एकत्र किये गए कूड़े की तरह वह श्रीहीन होता है (कभी माला नहीं धारण करता)। कफ के रोगी की तरह उसे दिन पर दिन प्रतिहार और प्यादे घुड़कते रहते हैं। सेवा करने से टका-पैसा नहीं मिलता तो मन में वैराग्य उत्पन्न होकर बुद्ध के समान गेरुआ धारण कर लेने की इच्छा करने लगता है। मातृबलि के पिंडे की तरह रात के समय में भी बाहर फेंक दिया जाता है। अशौच में पड़े हुए की तरह वह मोटी-झोटी अपनी रहन-सहन से अनेक प्रकार के दुःख उठाता है। पीछे भार बढ़ने से तराजू जैसे झुक जाती है उसी प्रकार आत्मसम्मान को पीछे डाल कर पानी के लिए भी झुकता रहता है। अत्यन्त दीन हो जाने के कारण सिर से केवल पैर नहीं छूता, बल्कि असन्तुष्ट होकर बात-बात में पैर छूने के लिये तैयार रहता है। निष्ठुर प्रतीहारों की मार खाते-खाते वह बेहया हो जाता है। दीनता के कारण हृदय के बुझ जाने से उसकी आत्म-गौरव की भावना समाप्त हो जाती है। निन्दित कर्मों के

त्सितकर्माङ्गीकरणकुपितयेवोन्नत्या वियुक्तस्य, धनश्रद्धया क्लेशानुपार्जयतः, स्ववृद्धिबुद्ध्यावमानं संवर्धयतो मूढस्य, सत्यपि विविधकुसुमाधिवाससुरभिणि वने तृष्णयाञ्जलिमुपरचयतः, कुलपुत्रस्यापि कृतागस इव भीतभीतस्य समीपमुपसर्पतः, दर्शनीयस्याप्यालेख्यकुसुमस्येव निष्फलजन्मनः, विदुषोऽपि वैधेयस्येवापशब्दमुखस्य, शक्तिमतोऽपि श्वित्रिण इव संकोचितकरयुगलस्य, समसमुत्कर्षेषु निरग्निपच्यमानस्य, नीचसमीकरणेषु निरुच्छ्वासं म्रियमाणस्य, परिभवैस्तृणीकृतस्य, दुःखानिलेनानिर्वृतेर्ज्वलतः, भक्तस्याप्यभक्तस्य, निरूष्मणः संतापयतो बन्धून्, विमानस्याप्यगतिकस्य, च्युतगौरवस्याप्यधस्ताद्गच्छतः, निःसत्त्वस्यापि महामांसविक्रयं कुर्वतः, निर्मदस्याप्यस्वतन्त्रवृत्तेः, अयोगिनोऽपि ध्यानवशीकृतात्मनः, शय्योत्थायं

स्त्रियां धने' इति। अधिवासः सौगन्ध्यम्, भावना च। वनं काननम्, जलं च। तृष्णा धनस्पृहा मृगतृष्णा च। विदुषो जानानस्य, पण्डितस्य च। वैधेयस्य मूर्खस्य। अपगतशब्दं मुखं यस्य, लघ्यहीनश्च। शब्दोऽपशब्दः। श्वित्रं कुष्ठव्याधिभेदः। समास्तुल्यशीलाः। अनिर्वृतेरप्रतीतेः। अनिर्वृतेर्गमनस्यागाभावाच्च। भक्तस्य हितैषिणः। अभक्तस्यालब्धसविभागस्य। विरोधः स्पष्टः सर्वत्र। ऊष्मा गर्वोऽपि। विमानस्य विगतमानस्य, व्योमयानस्य च। गतिरुपायोऽपि। गौरवमादरोऽपि। महामांसं स्वकायोऽपि। मदो गर्वः, क्षीवता च। अयोगिनो विपरीतदैववतः। दरि-

---

ही हमेशा करते रहने से उसका अभ्युदय रुक जाता है। धन के कमाने से केवल क्लेशों का उपार्जन करता है। अपमानों को ही वह मूर्ख अपनी वृद्धि समझ लेता है। अनेक प्रकार के फूलों की गन्ध से भरे वन के होने पर भी जब देखो उसकी तृष्णाञ्जलि बनी रहती है। कुलपुत्रों के पास भी अपराधी की भाँति थर-थर काँपता रहता है। देखने योग्य होने पर भी चित्रलिखित पुष्प के समान उसका जन्म लेना व्यर्थ हो जाता है। ज्ञान से भरा होने पर भी उसके मुँह से अनजान की तरह बात नहीं निकलती। शक्ति होने पर भी उसके हाथ कोढ़ी की तरह नीचे रह जाते हैं। उसके बराबर के लोग जब तरक्की पा लेते हैं तो बिना आग के भीतर ही भीतर पकने जलने लगता है। और जब मातहत के लोग बराबरी में आ जाते हैं तो साँस के न निकलने पर भी मर जाता है। पद के घटने से तिनके की तरह प्रतिष्ठा खो बैठता है। दुःख की वायु का झोंका उसे रात-दिन दहकाता रहता है। राजभक्त होने पर भी हिस्से में उसे कुछ नहीं मिलता। उसकी गरमी सब कम पड़ जाती है, पर भाई-बन्धुओं को सताता है। उसका मान नहीं रहता। फिर भी अपने पद से नहीं डिगता। उसका गौरव नहीं रह जाता और वहीं नीचे ही गिरता जाता है। उसका सत्त्व चला जाता है, फिर भी अपने

प्रणमतो दग्धमुण्डस्य, गोत्रविदूषकस्य नक्तंदिनं नृत्यतो मनस्विजनं हासयतः, कुलाङ्गारस्य वंशं दहतः, नृपशोस्तृणेऽपि लब्धे कन्धरामवनमयतः, जठरपरिपूरणमात्रप्रयोजनजन्मनो मांसपिण्डस्य गर्भरोगस्य मातुः, अपुण्यानां कर्मणामाचरणाद्भूतकस्य किं प्रायश्चित्तम्, का प्रतिपत्तिक्रिया, क्व गतस्य शान्तिः, कीदृशं जीवितम्, कः पुरुषाभिमानः, किंनामानो विलासाः, कीदृशी भोगश्रद्धा, प्रबलपङ्क इव सर्वमधस्तान्नयति दारुणो दासशब्दः। धिक्तदुच्छ्वसितमुपयातु निधनं धनम्, अभवनिर्भूतेरस्तु तस्या नमो भगवद्भ्यस्तेभ्यः सुखेभ्यस्तस्यायमञ्जलिरैश्वर्यस्य तिष्ठतु दूर एव सा श्रीः शिवं स परिच्छदः करोतु यदर्थमुत्त-

---

द्रस्येत्यन्ये, अप्राप्तबलस्येत्यन्ये, चित्तवृत्तिनिरोधाभाववतश्च। दग्धमुण्डस्यातपहतशिरसः, व्रतिभेदश्च दग्धमुण्डः। विदूषको नायकश्च, नर्मसुहृच्च। वंशो वेणुः। दारुणो दुःसहः, काष्ठस्य च। सर्वमस्त्विवति योजना। मुखप्रियेस्यादावेवंविधः सेवकोऽपि यदि मर्त्यमध्ये गण्यते तद्राजिलोऽपि भोगी कथं न भवति। पुलाको व्युप्तः कलमः कथ न स्यादिति संबन्धः। तपस्वी वराकोऽपि। भुवि विपमानस्य(?)

आपको बेचा करता है। वह मद से रहित होता है और अपनी वृत्ति का स्वयं मालिक नहीं होता। योगी नहीं होकर भी उसका अन्तरात्मा सदा सोच-विचार के वशीभूत रहता है। दग्धमुण्ड साधुओं की भाँति खाट से उठते ही सबको प्रणाम करने का उसका स्वभाव बन जाता है। घर के विदूषक की तरह रातदिन नाच-नाच कर दूसरों को हँसाता रहता है। कुलाङ्गार की भाँति वंश को जला डालता है। मनुष्य के रूप में पशु वह तिनके के लिए भी कन्धा झुका देता है। उसका जन्म केवल पेट का गड्ढा भरने के लिये होता है। सचमुच वह तो मांसपिण्ड के रूप में निकलता हुआ माता का गर्भ रोग है। अपुण्य कर्मों के हमेशा आचरण करने से वह मृतक कौन-सा प्रायश्चित करे? कौन-सा उपाय करे? कहाँ पर जाय, जिससे शन्ति मिले? उसका जीवन कैसा? अभिमान कैसा? विलास कैसे? सुख भोगने की इच्छा कैसी? उसके नाम के साथ जुड़ा हुआ यह 'दास' शब्द कीचड़ की ढाब की भाँति सबको गड़प जाता है। उसके जीने को धिक्कार है। वह धन मिट जाय, उस वैभव का सत्यानाश हो, उन सुखों को दण्डवत् प्रणाम है, उस ऐश्वर्य को हथजोरी है, वह लक्ष्मी दूर रहे, उस टीम टाम से जान बचे, अपने को पृथिवी पर रगड़ना पड़े। राजसेवक ऐसा तपस्वी है जो क्रोधित होकर शाप नहीं दे सकता और प्रसन्न होकर

माङ्गं गां गमिष्यत्यशापानुग्रहक्षमस्तपस्वी मुखप्रियरतः क्लीबो पूतिमांसमयः कृमिरगण्यमानो नरकः, पादरजोधूसरोत्तमाङ्गो जङ्गमः पादपीठः पुंस्कोलिकः काकुक्वणितेषु, शिखी सुखकरकेकासु, स्थूलकूर्मः क्रोडकषणेषु, श्वा नीचचाटुकरणेषु, कृकलासः शिरोविडम्बनासु, जाहक आत्मसंकोचनेषु, वेणुर्मूर्च्छनासु, वेश्याकायः करणबन्धक्लेशेषु, पलालं सत्त्वशालिषु, प्रतिपादकः पादसंवाहनासु, कन्दुकः करतलताडनेषु, वीणादण्डः कोणाभिघातेषु, वराकः सेवकोऽपि मर्त्यमध्ये राजिलोऽपि वा भोगी, पुलाकोऽपि वा कलमो, वरं क्षणमपि कृता मानवता मानवता न मतो नमतस्त्रैलोक्याधिराज्योपभोगोऽपि मनस्विनः। तदेवमभिनन्दि-

सुखदायिनः रतः रक्तः। मुख आरम्भे, वदने च। प्रियं रतं मोहनं यस्य। क्लीबोऽशक्तः, शरण्यश्च। पूति दुष्टगन्धम्। अगण्यमानो न गणनार्हः। कुत्सितो नरो नरकः, अगण्यश्च मानो यस्य सोऽगण्यमानो नरको भौमनामा। अवीच्यादिर्वा। काकुक्वणितम्, मधुरवचनम्। भिन्नध्वनिर्वक्रत्वकथनं निर्व्यापारत्वाच्छ्रोकाद्वा। कृकलासोऽप्यनवरतं शिर उन्नमयन्नास्ते। जाहकः आखुतुल्यः प्राणिभेदः, कूर्म इत्यन्ये। मूर्च्छना मोहः, स्वराणां विशिष्टा स्थितिश्च। करणं शरीरम्, मन्त्रो वा। कामशास्त्रोदितकरणानि। कोणो लगुडश्च। यथा। शालिषु पलालमप्रयोजनं तद्वदसौ। राजिलो डिण्डिभाख्यो निर्विषः सर्पः। पुलाकः फलदरिद्रः। शालिः श्यामाकप्रायः। मानवताऽहंकारिणा, मानवस्य कर्म मानवता पौरुषम्। न मतः नेष्टः, नमतः प्रणामं कुर्वतः।

अनुग्रह नहीं कर सकता। केवल मुख से मीठा बात करने वाला नपुंसक है। पीब और मांस से भरा कीड़ा है। जिसकी कोई गणना नहीं ऐसा कुत्सित नर (नरक) है। दूसरों के पैरों की धूल से भरे मस्तक वाला चलता-फिरता पादपीठ है, लप्पो-चप्पो करने वाला नरकोयल है, मीठी बोल उचारने वाला मोर है, धरती पर सीना घिसने वाला कछुआ है, चापलूसी का कुत्ता है, केवल सिर हिलाने वाला गिरगिट है, अपने आपको सिकोड़कर रखने वाला चूहा है, राग अलापने वाला बेणु है, दूसरे के लिए शरीर को तोड़-मरोड़ करने में वेश्या की भाँति है। सत्त्व वाले व्यक्तियों में घास-फूस की तरह है, दाबने में पैर का बोझ उठाने वाला पंगल का पावा है, हाथ की मार सहने में कन्दुक है और कोणाभिघात (दूसरा अर्थ—छड़ी की मार) का अभ्यस्त वीणादण्ड है। बेचारे राजसेवक को अगर मनुष्यों में गिना जाय तो राजिल (पानी वाला ढोंड़ साँप) को भी सर्प मानना पड़ेगा, पयाल की भी धान में गिनती होनी चाहिए। मानधनी के लिए क्षण भर भी मानवता के गौरव के साथ जीना अच्छा, किन्तु मनस्वी के लिए त्रैलोक्य के राज्य का उपभोग भी

तास्मदीयप्रणयो देवोऽपि दिवसैः कतिपयैरेव परागतः प्राग्ज्योतिषेश्वर इति करोतु चेतसि' इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत् । अचिराच्च नमस्कृत्य निर्जगाम ।

राजापि रजनीं तां कुमारदर्शनौत्सुक्यस्वीकृतहृदयः समनैषीत्। आत्मार्पणं हि महताममूलमन्त्रमयं वशीकरणम् । प्रभाते च प्रभूतं प्रतिप्राभृतं प्रधानप्रतिदूताधिष्ठितं दत्त्वा हंसवेगं प्राहिणोत् । आत्मनापि ततः प्रभृति प्रयाणकैरनवरतैरभ्यमित्रं प्रावर्तत । कदाचित्तु राज्यवर्धनभुजबलोपार्जितमशेषं मालवराजसाधनमादायागतं समीप एवावासितं लेखहारकाद्भण्डिमश्रृणोत् । श्रुत्वा चाभिनवीभूतभ्रातृशोकहुताशनस्तद्दर्शनकातरहृदयो बभूव मूर्च्छान्धकारमिव विवेशातिष्ठच्च समुत्सृष्टसकलव्यापारः प्रतीहारनिवारणनिभृतनिःशब्दपरिजने निजमन्दिरे सराजकपरिवारस्तदागमनमुदीक्षमाणो मुहूर्तम् ।

अथ भण्डिरेकेनैव वाजिना कतिपयकुलपुत्रपरिवृतो मलिनवासा

मालान्योषधयः । साधनं हस्त्यादि । निभृतः सनयः ।
अथेत्यादि । राजद्वारं भण्डिराजगामेति संबन्धः ।

अच्छा नहीं, यदि उसके लिये सिर झुकाना पड़े । तो हमारे प्रणय को स्वीकार करने वाले देव भी यह समझें कि कुछ ही दिनों में प्राग्ज्योतिषेश्वर आ जाते हैं ।' इतना कहकर हंसवेग चुप हो गया । थोड़ी देर बाद नमस्कार करके चलता बना ।

राजा ने भी उस रात को कुमार के दर्शन की उत्सुकता में व्यतीत किया । आत्मसमर्पण कर देना महापुरुषों का मूलमन्त्ररहित वशीकरण है । प्रातःकाल उन्होंने प्रधान दूत के साथ बदले में बहुत-सा उपहार देकर हंसवेग को विदा किया । स्वयं शत्रु पर चढ़ाई करने के लिए सेना का प्रयाण उस दिन से बराबर जारी रखा । एक दिन लेखहारक ने आकर यह सूचना दी कि राज्यवर्धन की सेना ने मालवराज की जिस सेना को जीत लिया था उस सबको साथ लेकर भण्डि आ रहा है और समीप ही पहुँच गया है । सुनते ही उनके हृदय में भ्रातृशोक की अग्नि फिर से उमड़ गई और भण्डी को देखने के लिये व्याकुल हो गये, मानों मूर्च्छा के अन्धकार में प्रवेश कर गये हों । सब कार्य को छोड़कर राजसमूह और अन्तःपुर के लोगों के साथ भण्डि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए क्षण भर अपने भवन में ठहरे । प्रतीहारों के रोक लगा देने से भवन के सब परिजन इशारे से काम करते थे ।

कुछ समय के बाद भण्डि अकेला ही घोड़े पर सवार कुछ कुलपुत्रों को साथ लिए

रिपुशरशल्यपूरितेन निखातबहुलोहकीलकपरिकररक्षितस्फुटनेनेव हृदयेन, हृदयलग्नैः स्वामिसत्कृतैरिव श्मश्रुभिः, शुचं समुपदर्शयन्दूरीकृतव्यायामशिथिलभुजदण्डदोलायमानमङ्गलवलयैकशेषालंकृतिरनादरोपयुक्तताम्बूलविरलरागेण शोकदहनदह्यमानस्य हृदयस्याङ्गारेणेव, दीर्घनिःश्वासवेगनिर्गतेनाधरेण शुष्यता स्वामिविरहविधृतजीवितापराधवैलक्ष्यादिव, बाष्पवारिपटलेन पटेनेव प्रावृतवदनः, विशन्निव दुर्बलीभूतैः स्वाङ्गमपत्रपयाङ्गैर्वमन्निव च व्यर्थीभूतभुजोष्माणमायतैर्निःश्वसितैः, पातकीव, अपराधीव, द्रोहीव, मुषित इव, छलित इव, यूथपतिपतनविषण्ण इव वेगदण्डवारणः, सूर्यास्तमयनिःश्रीक इव कमलाकरः, दुर्योधननिधनदुर्मना इव द्रौणिः, अपहृतरत्न इव सागरो राजद्वारमाजगाम। अवतीर्य च तुरङ्गमादवनतमुखो विवेश राजमन्दिरम्। दूरादेव च विमुक्ताक्रन्दः पपात पादयोः।

श्मश्रुरिति। शोकवशेन ततो विक्षिप्तत्वाद्वा।

राजद्वार पर आया। उसके कपड़े मलिन थे, उसकी छाती में शत्रु के बाणों के घाव थे। लोहे के कड़े कीलों वाले परिकर के धारण कर लेने से वह बच निकला था। स्वामी के आदर से मानों उसकी दाढ़ी छाती तक बढ़ आई थी, जिससे उसके शोक का पता चल रहा था। बहुत दिनों से व्यायाम के छूट जाने के कारण उसके हाथ पतले पड़ गए थे और उसका मंगलवलय खिसक कर नीचे कलाई में आ गया था। बिना मन के चिबाए हुए पान की लाली शोक की अग्नि से जले हुए हृदय के अंगारे की भांति लग रही थी। उसका अधर लम्बी सांस के निकलते रहने से सूख रहा था, मानों स्वामी के विरह के बाद भी जीवित रहने के अपराध से लज्जित था। आँसुओं की झड़ी ऐसे लगी थी मानों उसके मुँह पर शोकपट ढँका हो। लज्जा के मारे उसके अङ्ग अपने आप में सिमटते जा रहे थे। वह लम्बी सांसों से मानों व्यर्थ पड़ी भुज की गरमी को छोड़ रहा था। वह पातकी, अपराधी, द्रोही, लुटा हुआ, छला हुआ जैसा लग रहा था। उसकी ऐसी दीन दशा थी जैसे यूथपति के मरने पर तरुण हाथी की हो जाती है। वह उस सरोवर के समान था जो सूर्य के अस्त हो जाने से हो जाता है, जैसे दुर्योधन के मर जाने से अश्वत्थामा दुःखी हुआ उसी प्रकार वह भी राज्यवर्धन के निधन से विषादमग्न था। वह उस समुद्र की भांति था जिसमें से रत्न हर लिया गया हो। घोड़े से उतर कर वह मुँह लटकाए ही राजमंदिर के भीतर गया। दूर ही से धाड़ मार कर वह पैरों पर गिर पड़ा।

अवनिपतिरपि दृष्ट्वा तमुत्थाय प्रविरलैः पदैः प्रत्युद्गम्योत्थाप्य च गाढमुपगूह्य कण्ठे करुणमतिचिरं रुरोद। शिथिलीभूतमन्युवेगश्च पुरेव पुनरागत्य निजासने निषसाद। प्रथमप्रक्षालितमुखे च भण्डौ मुखं प्रक्षालयत्। समतिक्रान्ते च कियत्यपि कालकलाकलापे भ्रातृमरणवृत्तान्तमप्राक्षीत्। अथाकथयच्च यथावृत्तमखिलं भण्डिः। अथ नरपतिस्तमुवाच—'राज्यश्रीव्यतिकरः कः?' इति। स पुनरवादीत्—'देव! देवभूयं गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्रीः परिभ्रश्य बन्धनाद्विन्ध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति लोकतो वार्तामश्रृणवम्। अन्वेष्टारस्तु तां प्रति प्रभूताः प्रहिता जना नाद्यापि निवर्तन्ते' इति। तच्चाकर्ण्य भूपतिरब्रवीत्—'किमन्यैरनुपदिभिः यत्र सा तत्र परित्यक्तान्यकृत्यः स्वयमेवाहं यास्यामि। भवानपि कटकमादाय प्रवर्ततां गौडाभिमुखम्।' इत्युक्त्वा चोत्थाय स्नानभुवमगात्। कारितशोकश्मश्रुवपनकर्मणा च महाप्रतीहारभवनस्नातेन, शारीरिकवसनकुसुमाङ्गरागालंकारप्रेषणप्रकटितप्रसादेन भण्डिना सार्धमभुक्त, निनाय च तेनैव सह वासरम्।

हर्ष उसे देखकर उठे और लड़खड़ाते पैरों से आगे बढ़ उसे गले लगाया और स्वयं भी देर तक फूट-फूट कर रोते रहे। जब उनका शोक कुछ कम हुआ तब पहले की तरह आकर आसन पर बैठ गए। जब भण्डि अपना मुँह धो चुका तब उन्होंने भी धोया। कुछ देर के बाद भाई की मृत्यु का वृत्तान्त पूछा। जैसा हो चुका था भण्डि ने सब हाल कह सुनाया। तब राजा ने उससे फिर कहा—'राज्यश्री की क्या गति हुई?' वह फिर बोला—'देव, देव राज्य वर्धन के दिवंगत होने पर जब गुप्त नाम के व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अधिकार कर लिया तो देवी राज्यश्री किसी प्रकार बन्धन से छूट कर अपने परिवार के साथ विन्ध्याचल के जंगल में चली गई। यह मैंने लोगों के मुँह से सुना है। बहुत खोज-पड़ताल करने वाले आदमी वहाँ भेजे गए जो अभी तक नहीं लौटे।' यह सुनकर राजा ने कहा—'औरों के ढूँढने से क्या? जहाँ राज्य श्री है मैं वहां दूसरे सब काम छोड़ कर स्वयं जाऊँगा। तुम भी सेना लेकर गौड़ पर चढ़ाई करो।' यह कहकर वे उठे और स्नानभूमि में चले गए। भण्डि ने हर्ष के कहने पर शोक से बढ़े हुए केशों का क्षौर कराया और महाप्रतीहार-भवन में स्नान किया। हर्ष ने उसके लिए वस्त्र, पुष्प, अंगराग और आभूषण भेज कर अपना प्रसाद प्रकट किया और साथ ही भोजन किया। एवं वह दिन उसके साथ ही बिताया।

अथापरेद्युरुषस्येव भण्डिर्भूपालमुपसृत्य व्यज्ञापयत्—'पश्यतु देवः श्रीराज्यवर्धनभुजबलार्जितं साधनं सपरिबर्हं मालवराजस्य' इति। नरपतिना स 'एवं क्रियताम्' इत्यभ्यनुज्ञातो दर्शयांबभूव। तद्यथा—अनवरतगलितमदमदिरामोदमुखरमधुकरजूटाजटिलकरटपट्टपङ्किलगण्डान्, गण्डशैलानिव जङ्गमान्, गम्भीरगर्जितरवाञ्जलधरानिव महीमवतीर्णानुत्फुल्लसप्तच्छदवनामोदमुचः, शरद्दिवसानिव पुञ्जभूतान्, अनेकसहस्रसंख्यान्करिणः, चारुचामीकरचित्रचामरमण्डलमनोहरांश्च हरिणरंहसो हरीन्, बालातपविसरवर्षिणां च किरणैरनेकेन्द्रायुधीकृतदशदिशामलंकाराणां विशेषान्, विस्मयकृतः स्मरोन्मादितमालवीकुचपरिमलदुर्ललितांश्च निजज्योत्स्नापूरप्लावितदिगन्तानपि तारान्हारान्, उडुपतिपादसंचयशुचीनि निजयशांसीव बालव्यजनानि, जातरूपमयनालं च निवासपुण्डरीकमिव श्रियः श्वेतमातपत्रम्, अप्सरस इव बहुसमररससाहसानुरागावतीर्णा वारविलासिनीः, सिंहासनशयनासन्दीप्रभृतीनि सज्योपकरणानि, कालायसनिगडनिश्चलीकृतचरणयुगलं च सकलं मालवराजलो-

उसके बाद दूसरे दिन पौ फटते ही भण्डि ने राजा के पास आकर निवेदन किया—'श्री राज्यवर्धन के भुजबल से मालवराज की जो सेना साज-सामान के साथ जीती गई है उसे देव देखने की कृपा करें।' राजा ने 'ऐसा ही करो' जब यह आज्ञा दी तो उसने वह सब सामान दिखाया। हजारों की संख्या में अनेक हाथी, जिनके गण्डस्थल को हमेशा बहते हुए मदजल की मादक गंध से आकृष्ट होकर लुभते हुए भौंरे पंकिल बना रहे थे, जो चलते-फिरते गण्डशैल की भांति लग रहे थे और इस प्रकार चिग्घाड़ रहे थे मानों पृथिवी पर उतरे हुए मेघ हों, और खिले हुए तमाल वन की तरह जिनकी गंध फैल रही थी। हरिण की भांति तेज चाल वाले घोड़े सुन्दर सुनहली चौरियों से सजे थे। बहुत से अलंकार, जिनकी किरणें बालातप के रूप में निकल रही थीं, अपनी रंग-बिरंगी प्रभा से दिशाओं में इन्द्रायुधों का निर्माण कर रहे थे। आश्चर्य करने वाले शुद्ध मोतियों से पोहे गए तारहार जिनमें काम से मतवाली मालवी स्त्रियों के कुचों के परिमल लगे हुए थे और जो अपनी ज्योत्स्ना के प्रभाव से दिशाओं को प्लावित कर रहे थे। चन्द्रमा के किरणसमूह के समान सफेद चँवर जो हर्ष के अपने यश की भांति प्रतीत हो रहे थे। सुवर्ण दण्ड वाला श्वेत छत्र, जो मानों लक्ष्मी के निवास का कमल हो। वेश्यायें, जो मानों अनेक युद्धों के देखने के साहस और अनुराग से पृथिवी पर उतरी हुई अप्सराएँ हों। सिंहासन, शयनासन आदि राज्य का सामान पैरों में

कम्, अशेषांश्च ससंख्यालेख्यपत्रान्, सालंकारापीडपीडान् कोशकलशान्। अथालोच्य तत्सर्वमवनिपालः स्वीकर्तुं यथाधिकारमादिशदध्यक्षान्। अन्यस्मिंश्चाहनि हयैरेव स्वसारमन्वेष्टुमुच्चचाल विन्ध्याटवीमवाप च परिमितैरेव प्रयाणकैस्ताम्।

अथ प्रविशन्दूरादेव दह्यमानषष्टिकबुसविसरविसारिविभावसूनां वन्यधान्यबीजधानीनां धूमेन धूसरिमाणमादधानैः, शुष्कशाखासंचयरचितगोवाटवेष्टितविकटवटैः, व्यापादितवत्सरूपकरोषाविष्टगोपालकल्पितव्याघ्रयन्त्रैः, अयन्त्रितवनपालहठह्रियमाणपरग्रामीणकाष्ठिककुठारैः, गहनतरुखण्डनिर्मितचामुण्डामण्डपैर्वनप्रदेशैः, प्रकाश्यमानमटवीप्रायप्रान्ततया कुटुम्बभरणाकुलैः कुद्दालप्रायकृषिभिः कृषीवलैरबलवद्भिरुरुभागभाषितेन भज्यमानभूरिशालिखलक्षेत्रखण्डलकमल्पावकाशैश्च कापिलैः, कालायसैरिव कृष्णमृत्तिकाकठिनैः, स्थानस्थानस्थापितस्थाणूत्थितस्थूलप-

लोहे की बेड़ी पहने हुए मालव के राजा लोग। कोष से भरे हुए कलसे, जिनपर ब्यौरे की पट्टियां लगी थीं और जिनके गले में आभूषणों की बनी मालाएँ पड़ी थीं। सब सामान को देखकर हर्ष ने अपने विभिन्न अधिकारी अध्यक्षों को उसे विधिपूर्वक स्वीकार करने की आज्ञा दी। दूसरे दिन घोड़ों से बहन राज्यश्री को ढूँढने के लिए प्रस्थान किया और कुछ ही पड़ावों के बाद विन्ध्याटवी में पहुँच गए।

उसमें प्रवेश करते ही उन्होंने वनबस्ती के चारों ओर के वन-प्रदेश पर दृष्टिपात किया जो उसका दूर ही से परिचय दे रहे थे। वहाँ के लोग साठी चावल का भूसा जला लेते थे और उसकी फैलती हुई आग बनैले धान तक पहुँच कर वनप्रदेश को धुमैला बना रही थी। कहीं पुराने खंखाड़ बरगद के चारों ओर सूखी लकड़ियों के अम्बार लगाकर गायों का बाड़ा बनाया गया था। कहीं बाघों ने बछड़ों पर वार किया था तो उससे खीझकर ग्वालों ने बाघ को फँसाने का जाल लगा रखा था। स्वतन्त्र विचरण करने वाले वनपालों ने गाँवों से आकर लकड़ी काट ले जाने वाले लकड़हारों के कुठार जबर्दस्ती छीन लिये थे। पेड़ों के घने झुरमुट में चामुण्डा देवी का मण्डप बना हुआ था। वनग्राम के चारों ओर जङ्गल के सिवा और कुछ न था। इसलिए किसान कुटुम्ब का पेट पालने के लिये व्याकुल रहते थे और उसी चिन्ता में दुर्बल होकर जोर-जोर से आवाज करते हुए केवल कुदारी से कोडकर परती जमीन तोड़ते और खेत के टुकड़े निकाल लेते। खेत छोटे-छोटे और कहीं-कहीं पर थे। भूमि काश से भरी हुई थी। काली मिट्टी लोहे के तवे की तरह कड़ी थी। कुदारी ही उनका एक सहारा था। जगह-जगह पर काटने से पेड़ों के ठूँठ पड़े

ल्लवैः दुरुपगमश्यामाकप्ररूढिभिरलम्बुसबहुलैः, अविरहितकोकिलाक्षक्षुपै-विरलविरलैः केदारैः, कृच्छ्रात्कृष्यमाणैर्नातिप्रभूतप्रवृत्तगतागतप्रहतभुवमुपक्षेत्रमुपरचितैरुच्चैर्मञ्चैश्च सूच्यमानश्वापदोपद्रवं, दिशि दिशि च प्रतिमार्गद्रुमकृतानां पथिकपादप्रस्फोटनधूलिधूसरैर्नवपल्लवैर्लाञ्छितच्छायानाम्, अटवीसुलभसालकुसुमस्तबकाञ्चितनवखातकूपिकोपकण्ठप्रतिष्ठितनागस्फुटानामच्छिद्रकटकलिपतकुटीरकाणाम्, कुटिलकीटवेणीवेष्ट्यमानशक्तुशारशरावश्रेणीश्रितानाम्, अध्वगजनजग्ध जम्बूफलास्थिशबलसमीपभुवाम्, उद्धूलितधूलीकदम्बस्तबकप्रकरपुलकिनीनाम्, कण्टकितकर्करीचक्राक्रान्तकाष्ठमञ्चिकामुषिततृषाम्, तिम्यत्तलशीतलसिकतिलकलशीशमितश्रमाणाम्, आश्यानशैवलश्यामलितालिञ्जरजायमानजलजडिम्राम्, उदकुम्भाकृष्टपाटलशर्कराशकलशिशिरीकृतदिशाम्, घटमुखघटितकटहारपाटलपुष्पपुटानाम्, शीकरपुलकितपल्लवपूलीपाल्यमानशोष्यसरसशिशु-

थे। उनमें फिर से पत्ते निकल रहे थे। खेतों में साँवा का जङ्गल लहरा रहा था। छुईमुई भी खूब बढ़ आई थी। तालमखाने के छोटे-छोटे पौधों से भी चलने में कठिनाई होती थी। खेत बड़ी कठिनाई से जोते जाते थे। आने जाने वाले कम थे, इसलिए पगडण्डियाँ साफ दिखायी न पड़ती थीं। खेतों के पास ऊँचे बँधे हुए मचानों से यह सूचित हो रहा था कि यहाँ जङ्गली जानवर उपद्रव करते हैं। जंगल के प्रवेशमार्गों पर प्याउओं का विशेष प्रबन्ध था। पेड़ों के झुरमुट में प्याऊ के स्थान बना लिए गये थे। पथिक वहाँ आते और पल्लवों की टहनी तोड़कर पैरों की धूल झाड़कर छाया में बैठते थे। नई खोदी हुई छोटी कुइयाँ पर जङ्गली साल के फूलों के गुच्छे टांग दिए गए थे और समीप में नागफनी से घेर दिया गया था। वहीं पर प्याऊ की मड़ैया घने घास-फूस से छा दी गई थी। सत्तू खाकर पथिकों ने जो सिकोरे फेंक दिए थे उन पर जंगली मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। प्याऊ के समीप की भूमि पथिकों को खाये जामुन की गुठलियों से रङ्गबिरंग की हो रही थी। कदम्बों के फूलों से लदी हुई टहनियाँ तोड़कर धूल में फेंक दी गई थीं। काठ की घड़ौंचियों पर प्यास बुझाने के लिए मिट्टी की गगरियाँ, जिन पर काँटे जैसे बुन्दकियों की सजावट बनी थी, रखी हुई थीं। बालू की ठण्डी कलसियों में पानी पड़ जाने से जब वे रिसती थीं तो उन्हें ही देखकर पथिकों की थकान दूर हो जाती थी। कुछ सिम-सिम सिरवालों के लपेट देने से नीले रङ्ग के नादों का जल खूब ठण्डा हो गया था। जल निकाल करके जलकुंभों में लाल शर्करा रखी गयी थी, जो चारों ओर ठंडक फैला रही थी। घड़े के मुँह गेहूँ की नालियों या तिनके के ढकन से ढँके थे, और उनके

सहकारफलजूटीजटिलस्थाणूनाम्, विश्राम्यत्कार्पटिकपेटकपरिपाटीपीयमानपयसामटवीप्रवेशप्रपाणां शैत्येन त्याजयन्तमित्र ग्रैष्ममूष्माणं कचिदन्यत्र ग्राहयन्तमिवाङ्गारीयदारुसंग्रहदाहिभिः व्योकारैः, सर्वतश्च प्रातिवेश्यविषयवासिना समासन्नग्रामगृहस्थगृहस्थापितस्थविरपरिपाल्यमानपाथेयस्थगितेन कृतदारुणदारुव्यायामयोग्याङ्गाभ्यङ्गेन स्कन्धाध्यासितकठोरकुठारकण्ठलम्बमानप्रातराशपुटेन पाटच्चरप्रत्यवायप्रतिपन्नपटच्चरेण कालवेत्रकत्रिगुणव्रततिवलयपाशग्रथितग्रीवाग्रथितैः पत्रवीटावृतमुखैः, बोटंकूटैरूढवारिणा पुरःसरबलद्बलीवर्दयुगसरेण नैकटिककुटुम्बिकलोकेन काष्ठसंग्रहार्थमटवीं प्रविशता श्वापदव्यधनव्यवधानबहलीसमारोपितकुटीकृतकूटपाशैश्च गृहीतमृगतन्तुतन्त्रीजालवलयवागुरैः, बहिर्व्याधैर्विचरद्भिरंसा-

ऊपर जल सुवासित करने के लिए पाटल के फूल रखे गये थे। भीतर थूनियों के सिरों पर बाल सहकार के फलों की डालें झूल रही थीं और हरे पत्तों पर पानी का छींटा देकर उनके झुराते हुए फलों को ताजा रखा जा रहा था। झुंड के झुंड यात्री प्याऊ में आकर पानी पी रहे थे। प्रपाओं की ठण्ढक से ग्रीष्म की गरमी कम पड़ रही थी। दूसरी ओर लकड़ी के ढेरों में आग लगाकर अङ्गार बनाने वाले लुहार फिर उतनी ही तपन पैदा कर रहे थे। पड़ोसी प्रदेश में रहने वाले निकटवासी कुणबी (कुटुम्बिक) जाति के लोग काष्ठसंग्रह के लिए जंगल में आ रहे थे। निकट के गाँवों में रहने वाले गृहस्थों के घर पर अपने भोजन के सामान रख आये थे और बूढ़ों को रखवाली के लिए बैठा आये थे। लकड़ियों के साथ कुल्हाड़ा भाँजने की कसरत के बर्दाश्त के लिए शरीर में तेल की मालिश कर रखी थी। उनके कन्धों पर भारी कुठार रखे थे और गले में कलेवे में पोटली लटक-रही थी। चोरों के डर से फटे-पुराने कपड़े पहन रखे थे। उनके गले में काले बेंत की तिलड़ी माला लपेटी हुई थी और उसी से पानी की लम्बोतरी घड़ियाँ जिनके मुँह में डाट लगी थी, लटकी हुई थीं। उनके आगे लकड़ी लादने के लिए बैलों की जोड़ी चल रही थी। आधे ग्राम के बाहर वाले जंगल में विचर रहे थे। जंगल के खूंखार जानवरों के शिकार में घुसने के लिए टट्टियाँ लगाई थीं और शिकारी कुटपाशी की गेडुरी बनाकर साथ में लिये थे। उनके हाथ में पशुओं के नसों की डोरियाँ, जाल और फन्दे थे। कुछ दूसरी तरह के बहेलिये चिड़ियाँ फसाने वाले शाकुनिक विचर रहे थे, जो कन्धेपर वीतंसक जाल या डला लटकाये थे, जो उनके बालपाशिक आभूषण से उलझ-उलझ जाते थे। उनके हाथों में बाज, तीतर और भुजंगा आदि के पिंजड़े थे। चिड़ीमारों के लड़के बेलों पर लासा लगाकर गौरैया पकड़ने के इरादे में इधर से उधर फुदक रहे थे। चिड़ियों

१. 'पीत' इति।

वसनकवीतंसव्यालम्बमानबालपाशिकैश्च संगृहीतग्राहककरकपिञ्जलादिपञ्जरकैः शाकुनिकैः, संचरद्भिश्च्युतलासकलेशलिप्तलतावधूलट्वालम्पटानां चपेटकैः, पाशकशिशूनामटद्भिः तृणस्तम्बान्तरिततित्तिरितरलायमानकौलेयककुलचाटुकारैश्चलद्विहगमृगयां मृगयुयुवभिः क्रीडद्भिः, परिणतचक्रवाककण्ठकषायरुचां शीधव्यानां वल्कलानां कलापान्, नातिचिरोद्धृतानां च धातुत्विषां धातकीकुसुमानां गोणीरगणिताः पिचव्यानां चातसीगणपट्टमूलकानां पुष्कलान्संभारान्, भारांश्च मधुनो माक्षिकस्य मयूराङ्गजस्याक्लिष्टमधूच्छिष्टचक्रमालानां लम्बमानलामज्जकमुञ्जजूटजटानामपत्वचां खदिरकाष्ठानां कुष्ठस्य कठोरकेसरिसटाभारबभ्रुणश्च रोध्रस्य भूयसो भारकान्, लोकेनादाय व्रजता प्रविचितविविधवनफलपूरितपिटकमस्तकाभिश्चाभ्यर्णग्रामगत्वरीभिस्त्वरमाणाभिर्विक्रयचिन्ताव्यग्राभिर्ग्रामेयकाभिर्व्याप्तदिगन्तरमितस्ततश्च युक्तशूरशकुरशाकराणां पुराणपांसूत्किरकरीषकूटवाहिनीनां धूर्गतधूलिधूसरसैरिभसरोपस्वरसार्यमाणानां संक्रीडच्चट्टुल-

मधुनः क्षौद्रस्य । मयूराङ्गजस्य बर्हिपिच्छस्य । मधूच्छिष्टं सिक्थकम् । लामज्जकेति । 'लामज्जकं लघुलयम्' इत्यमरः । उशीरभेद इत्यन्ये । बभ्रुणः कपिलस्य । रोध्रस्येति । रोध्रो लोध्रः । शाबरकः 'शिल्लकः शिल्कुकस्तरः । तिरीटः कानहीरश्च शिल्लो शाबरपादपः' । शकुरास्तरुणाः । शाकरा बलीवर्दाः । करीषं शुष्कगोमयम् । उक्तं च—'गोविड्गोमयमस्त्रियाम् । तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री' इति । सैरिको हालिकः ।

के शिकार के शौकीन नवयुवक लोग शिकारी कुत्तों को जो बीच-बीच में झाड़ी में उड़ते हुए तीतरों की फड़फड़ाहट से बेचैन हो उठते थे, पुचकार रहे थे। गाँव के लोग वन की उपज के बोझ सिर पर उठाये जा रहे थे। कोई पुराने चक्रवाक के गले की तरह लाल पीली सेंहुड़ की छाल का गट्ठा लिए था। किसी के पास तुरत तोड़े हुए गेरू की तरह लाल वर्ण वाले धाय के फूलों की बोरियाँ थीं। कई लोग रुई, अलसी, सन के मुट्ठों का बोझा लिए थे। मधुमक्खी की शहद, मोर के पिच्छ, छाल उधेड़ी हुई कत्थे की लकड़ी, जिसपर खस की जटायें लटक रही थीं, कूठ (एक पौधा) पुराने सिंह के केसर के समान पीले-पीले लोध के भार सिरों पर उठाये बोझिये जा रहे थे। गँवई स्त्रियों ने अनेक प्रकार के जंगली फूलों को बीन-बीन कर टोकरे भर लिए थीं और उन्हें बेचने की चिन्ता में व्यग्र होकर जल्दी-जल्दी डेग रखती हुई पास के गाँवों में चली जा रही थीं। एक ओर छोटी-छोटी गाड़ियाँ इधर-उधर चली जा रही थीं। उनमें पुष्ट और तरुण बैल जुटे थे। वे पुराने खाद कूड़े के ढेर ढो रही थीं। उनमें जुते हुए बैल धूल से

चक्रचीत्कारिणीनां शकटश्रेणीनां संपातैः, संपाद्यमानदुर्बलोर्वीविरूक्षक्षेत्र-संस्कारमारक्षक्षिप्तदान्तवाहकदण्डोड्डीयमानहरिणहेलालङ्घिततुङ्गवैणववृति-भिश्च निखातगौरकरङ्कशङ्कुशङ्कितशशाकशाकलिततुङ्गशुङ्गैः, प्रयत्नप्रभृतवि-शङ्कटविटपैर्वाटैरैक्षवैः सुबहुभिः श्यामायमानोपकण्ठमतिविप्रकृष्टान्तरैर्मर-कतासृग्धस्नुहावाटवेष्टितैः, कार्मुककर्मण्यवंशविटपसंकटैः, कण्टकितकर-ञ्जराजिदुष्प्रवेश्यैः, उरुबूकवचावङ्ककसुरसमूरणशिग्रुग्रन्थिपर्णगवेधुकागर्मु-

संक्रीडत्कूजत्। वृतिर्वाटोपान्ते लताकृतः प्राकारमयः। करङ्कः कङ्कालः। तदुप-लक्षिताः शङ्कवः। शुङ्गोऽग्रभागः। वृतिरित्यन्ये। प्रभृताः पोषिताः। विशङ्कटा विस्तीर्णाः। विटपाः शाखाः। अतिविप्रकृष्टत्यादि। अटवीकुटुम्बिनां गृहैरुपेतमिति वनग्रामविशेषणम्। स्नुहा सुधावृक्षः। उक्तं च—'स्नुक्स्नुहा च सुधावृक्षः शुंभो निस्त्रिंशपत्रकः। समन्तदुग्धी गण्डोरी सेहुण्डो वज्रकन्दकः'॥ इति। कर्मणि साधुः कर्मण्यः। करञ्जो नक्तमालः। उक्तं च—'करञ्जो नक्तमालः स्यात्प्रतीतश्चिरबिल्वकः' इति। उरुबूक एरण्डः। उक्तं च—'उरुबूकस्तथैरण्डो रुचको वातनाशनः। पञ्चाङ्गुलो वर्धमानश्चित्रो गन्धर्वपात्तथा॥' वचा उग्रगन्धा। उक्तं च—'वचोग्रगन्धा गोलोमी जाटिलोग्रा सलोमशा' इति। वङ्को हरीतकविशेषः। सुरसो भूतघ्नी। उक्तं च—'सुरसा तुलसीदुः स्यादलसो बहुमञ्जरी। अपेतो राक्षसो गौरी भूतघ्नी देवदुन्दुभिः।' इति। सूरणः कन्दविशेषः। शिग्रुः सौभाञ्जनः। उक्तं च—'साभा-ञ्जनः कृष्णगन्धा मुखभञ्जोऽथ शिग्रुकः' इति। ग्रन्थिपर्णः मुस्ताकारः सुगन्धिकन्द-विशेषः। उक्तं च—'ग्रन्थिपर्णोऽशुकं बर्हिपुष्पं स्थौणेयकुक्कुरे' इति। गवेधुका

लथपथ थे और चलने के लिए ललकारे जा रहे थे। डगमग पहिये घिसटते हुये चूं-चूं कर रहे थे। जिन खेतों की उपजाऊ शक्ति कम हो गई थी, उनमें लाद कर कूड़ा-कर्कट डाले जा रहे थे। गन्नों के खूब लहलहाते हुए बहुत से खेतों के बाड़े गाँव की हरियाली बढ़ा रहे थे। खेतों के रखवाले जब गन्नों में छिपे हुये हिरनों को ताककर बैलों को हाँकने का डण्डा उनकी ओर चलाते तो हिरन छलाँग मार कर ऊंची बाँसों की बाड़ से उस पार निकल जाते थे। जंगली भैंसों के कंकाल खेत में काँटे की तरह गाड़े गये थे, उनसे डरे हुए खरहे गन्ने के ऊँचे अंकुरों को ही कुतर डालते थे। गन्नों के पौधे बड़े यत्न से बढ़ाये गये थे। वनग्राम के घर एक-दूसरे से काफी दूरी पर थे। उनके चारों ओर मरकत के जैसे चिकने हरे रङ्गवाली सेंहुड़ की बाड़ लगी थी। धनुष बनाने के काम में लाने योग्य बाँसों की बँसवारी पास में उग रही थी। करंजुए के काँटेदार वृक्षों की पंक्ति में रास्ता बना कर घुसना मुश्किल था। एरंड, बचा, बंगक (बैंगन), तुलसी, सूरनकन्द, सोंहिजन, गंठिवन, गरबेरुआ और मकआ धान के गुल्म वर्गों

दूगुल्मगहनगृहवाटिकैः, निखातोच्चकाष्ठारोपितकाष्ठालुकलताप्रतानविहितच्छायैः, परिमण्डलबदरीमण्डपकतलनिखातखादिरकीलबद्धवत्सरूपैः, कथमपि कुक्कुटरटितानुमीयमानसंनिवेशैरङ्गनाशस्तिस्तम्भतलविरचितपक्षिपूपिकावापिकैर्विकीर्णबदरपाटलपटलैः, वेणुपोटदलनलकलितशरमयवृतिविहितभित्तिभिः, किंशुकगोरोचनारचितमण्डलमण्डपबल्वजबद्धाङ्गारराशिभिः, शाल्मलीफलतूलसंचयबहुलैः, संनिहितनलशालिशालूकखण्डकुमुदबीजवेणुतण्डुलैः, संगृहीततमालबीजैः, भस्ममलिनम्लानकाश्मर्यकूटव्याधूतकटैराश्यानराजादनमदनफलस्फीतैर्मधूकासवमद्यप्रायैः, कुसुम्भ-

---

तृणधान्यभेदः। गर्मुच्छतागुल्मः। 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इति काष्ठालुकलता अलाबुवल्ली। स्वल्पा वत्सा वत्सरूपा। संनिवेशो रचना। अगस्तिर्मुनितरुः। पक्षिपूपिका पक्षाणां वेत्रवलानि भाण्डभेदः। पोटः शकलः। किंशुकानि पलाशवृक्षपुष्पाणि। बल्वजस्तृणभेदः। बन्धकाष्ठ इति प्रसिद्धः। शाल्मली रक्तपुष्पा। उक्तं च—'शाल्मली रक्तपुष्पा च कुकुंटी स्थिरजोविता। पिच्छिला तूलिनी मोचा कण्टकाढ्या सुपूरिणी ॥' इति। तूलं कर्पासः। नलशालिः शालिभेदः। शालूकं पद्ममूलम्। उक्तं च—'पद्ममूलं तु शालूकं सकिलं तत्किरातकम्। शालीनं पद्मकन्दं च जालालूकं निगद्यते ॥' इति। काश्मर्यः कश्मीरीहीरः। 'काश्मीरी मधुमत्यपि। श्रीपर्णी सर्वतोभद्रा गम्भीरी कृष्णमृत्तिका ॥' इति। कूटाः कुनालानि। राजादनः कपीष्टः। उक्तं च—'क्षीरोदकस्तु राजन्यः क्षीरमृत्स्नः कपीनृपः। राजादनो दृढस्कन्धः कपीष्टः प्रियदर्शनः ॥' इति। मदनो रोधः। उक्तं च—'मदनः शल्यको रोधो गालः पिण्डीतकः फलम्। मसरः करहाटश्च सुमनोऽति-

---

के साथ लगी हुई बगीचियों में भरे हुए थे। गाड़ी गई ऊँची बल्लियों पर चढ़ाई हुई लौकी की बेलें फैल कर छाया दे रही थीं। बेरी की गेल में मंडपों के नीचे खैर के खूँटे गाड़कर बछड़े बाँध दिए गए थे। मुर्गों की कुकड़ूँकूँ से पहचान मिलती थी कि घर कहाँ कहाँ बसे हैं। आंगन में लगे अगस्त्य वृक्ष के नीचे चिड़ियों का चुग्गा खिलाने और पानी पिलाने की हौदियाँ बनी हुई थीं और लाल बेरों की चादरसी बिछी थी। घरों की दीवारें बांस के फट्ठे, नरकुल और सरकंडों को जोड़ कर बना ली गई थीं। कोयले के ढेरों पर बबई घास के मड़वे छाए थे, जिनपर पलास के फूल और गोरोचना की सजावट थी। घरों में सेमल की रूई ढेर के ढेर पड़ी थी। नलशालिकमल की जड़, खंड शर्करा, कमलबीज, बाँस, तंडुल और तमाल के बीज आदि बटोर कर रखा लिए गए थे। चटाइयों पर गंभीरी के ढेर के ढेर सूख रहे थे और धूल पड़ने से कुछ मटमैले लग रहे थे। खिरनी और मैनफल सुखा कर रखे गए थे। महुए का आसव और चुवाया हुआ मद प्रायः हर

कुम्भगण्डकुसूलैरविरहितराजमाषत्रपुषकर्कटिकाकूष्माण्डालाबुबीजैः, पोष्यमाणवनबिडालमालुधाननकुलशालिजातजातकादिभिरटवीकुटुम्बिनां गृहैरुपेतं वनग्रामकं ददर्श। तत्रैव च तं दिवसमत्यवाहयदिति।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते छत्रलब्धिर्नाम सप्तम उच्छ्वासः।



सुपुष्पकः॥' इति। मधूको गुडपुष्पः। उक्तं च—'गुडपुष्पो रोध्रपुष्पो माल्यप्रस्थोऽथ माधवः' इति। राजमाषो निष्पावः। त्रपुसं लाङ्गुकः। कर्कटिकादयः प्रसिद्धाः। मालुधाना मालुकावधाख्याः प्राणिभेदाः, नकुलादयश्च।

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते सप्तम उच्छ्वासः।



घर में था। प्रत्येक घर में कुसुम्भ, कुंभ और गंडकुसूल भी थे। रवांस, खीरा, ककड़ी, कोहड़ा और लौकियों के बीजों से उनके घर भरे हुए थे। घरों में बनबिलाव, नेवले, मालुधान और शालिजात नाम के पशुओं के बच्चे पले हुए थे। इस प्रकार के वनग्राम में ही हर्ष ने उस दिन को व्यतीत किया।

हर्षचरित सप्तम उच्छ्वास समाप्त



अष्टम उच्छ्वासः

सहसा संपादयता मनोरथप्रार्थितानि वस्तूनि ।
दैवेनापि क्रियते भव्यानां पूर्वसेवेव ॥ १ ॥
विद्वज्जनसंपर्को नष्टेष्टज्ञातिदर्शनाभ्युदयः ।
कस्य न सुखाय भवने भवति महारत्नलाभश्च ॥ २ ॥

अथापरेद्युरुत्थाय पार्थिवस्तस्माद्ग्रामकान्निर्गत्य विवेश विन्ध्याटवीम् । आट च तस्यामितश्चेतश्च सुबहून्दिवसान् । एकदा तु भूपतेर्भ्रमत एवाटविकसामन्तस्य शरभकेतोः सूनुर्व्याघ्रकेतुर्नाम कुतोऽपि कज्जलश्यामलश्यामलतावलयेनाधिललाटमुच्चैः कृतमौलिबन्धम्, अन्धकारिणीमकारणभुवा भ्रुकुटिभङ्गेन त्रिशाखेन त्रियामामिव साहससहचारिणीं ललाटस्थलीं सदा समुद्वहन्तम्, अवतंसितैकशुकपक्षकप्रभाहरितायमानेन पिनद्धकाचरकाचमणिकर्णिकेन श्रवणेन शोभमानम्, किंचिच्चुल्लस्य

सहसेत्यादियुगलकेन श्रीहर्षाभ्युदयशिवाकारमित्रराज्यश्रीप्राप्त्येकावलीलाभान्सूचयति । भव्यानां पूर्वसेवा दैवेन शुभसंपादनेन । शुभाभ्यासभावितचिन्ता भूयोऽपि क्रियत इति प्रतिपाद्यते ।

एकदा त्वित्यादौ । व्याघ्रकेतुर्नाम कुतोऽपि शबरयुवानमादाय भूपतेरर्थात्समीपमाजगामेति संबन्धः । अटव्यां भव आटविकः । श्यामा गन्धप्रियङ्गुः । मौलयः केशाः । अन्धकारिणीं कृष्णाम् । त्रिशाखेन त्रिलेखेन । पिनद्धो बद्धः । काचरस्य कपिलस्य काचमणेः कर्णिका यत्र तत्तेन । चुल्लश्चिल्लः । उक्तं च—'स्युः क्लिन्नाक्षे

बड़े लोगों के मन में जिन वस्तुओं की अभिलाषा उत्पन्न होती है, दैव उन्हें उपस्थित करने में देर नहीं लगाता, मानों वह भी पहले से उनकी सेवा करता रहता है ।

विद्वानों का संपर्क, भूले हुए अपने प्रिय बन्धु का दर्शन और अपने ही भवन में बहुमूल्य रत्नों का लाभ—ये तीनों किसे सुख नहीं देते ?

दूसरे दिन हर्ष उठे और उन्होंने उस वनग्राम से निकल कर विन्ध्याटवी में प्रवेश किया । बहुत दिनों तक उसी में इधर-उधर घूमते रहे । एक दिन जब राजा भटक ही रहे थे कि जंगली प्रदेशों के राजा शरभकेतु का लड़का व्याघ्रकेतु कहीं से एक शबर युवक को साथ लेकर मिलने आया । उस शबर युवक ने ललाट के ऊपर सांवली प्रियंगुलता से अपने बालों का जूड़ा बांध लिया था । बिना कारण के ही उसकी भौंहें तिरछी हो गई थीं, मानों वह साहस करके पास आई अंधेरी रात की भांति अपनी ललाटस्थली को हमेशा

प्रविरलपक्ष्मणश्चक्षुषः सहजेन रागरोचिषा रसायनरसोपयुक्तं तारक्षवं क्षतजमिव क्षरन्तम्, अवनाटनासिकम्, चिपिटाधरम्, चिक्किनचिबुकम्, अहीनहनूत्कटकपोलकूटास्थिपर्यन्तमीषदवाग्ग्रीवाबन्धम्, स्कन्नस्कन्धार्धभागम्, अनवरतकठिनकोदण्डकुण्डलीकरणकर्कशव्यायामविस्तारितेनांसलेनोरसा हसन्तमिव तटशिलाप्रथिमानं विन्ध्यगिरेः, अजगरगरीयसा च भुजयुगलेन लघयन्तं तुहिनशैलशालद्रुमाणां द्राघिमाणम्, वराहबालवलितबन्धनाभिर्नागदमनजूटिकावाटिकाभिर्जटिलीकृतपृष्ठे प्रकोष्ठे प्रतिष्ठां गतं गोदन्तमणिचित्रं त्रापुपं वलयं बिभ्राणम्, अतुन्दिलमपि तुण्डिभम्, अहीरमणीचर्मनिर्मितपट्टिकयोश्चित्रचित्रकत्वक्कारकितपरिवारया सं-

---

चुल्लचिल्लपिल्लाः क्लिन्नेऽक्ष्णि चाप्यमी' इति। 'तरक्षुस्तु मृगादनः।' आरण्यश्वेत्यर्थः। तस्येदं तारक्षवम्। तच्च क्वचिद्रसायनेनोपयुज्यते। अवनाटो निम्नः। चिपिटः स्थूलः ईषल्लघुश्च। चिक्किनं स्थूलेषद्ध्रस्वम्। चिबुकमधराधः। उक्तं च—'अधस्ताच्चिबुकं गण्डौ कपोलौ तत्परा हनुः' इति। अवाग्ग्रावनता ग्रीवा कंधरा। स्कन्नः शुष्कः, लम्बमानो वा, उन्नतो वा। 'स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री'। अंसलेन बलवता। उरसा वक्षसा। अजगरः सर्पभेदः। द्राघिमाणं दीर्घत्वम्। वराहः सूकरः। नागदमनो विषहर ओषधिभेदः। जूटिका लघुमूलम्। वाटिकाः पूल्यः। गोदन्तः सर्पभेदः। त्रपुणो विकारस्त्रापुपम्। 'त्रपुजतुनोः षुक्'। अतुन्दिलं कृशोदरम्। तुण्डिभं बृहन्नाभिकम्। 'तुन्दिवलिवटेर्भः'। स हि व्यायामवशात्क्षाममध्य उन्नतनाभिः तुण्डिभः। अहीरमणीनामा द्विवक्त्रः। चित्रकश्छायया गन्धतोऽप्यपरसर्पत्रासकः।

धारण कर रहा था। उसके कान में सुग्गे के पंख का अवतंस लगा हुआ था, जो अपनी प्रभा से नीचे पाली में कच्चे शीशे के बाले को हरा बना रहा था। उसकी आँखें चिपचिपी और बरौनियाँ कम थीं और उनमें से स्वाभाविक लाली रसायन बनाने के उपयोग में आने वाले बाघ के रुधिर के समान मानों ढरक रही थी। नाक कुछ झुकी हुई और निचली ओठ चिपकी हुई थी। एवं ठुड्ढी कुछ छोटी थी। गालों के ऊपर की हड्डी बढ़ी हुई और गाल चौड़े थे। गर्दन एक ओर कुछ झुकी हुई थी। कन्धे का आधा भाग लटका हुआ था। वह अपनी चौड़ी छाती से जो हमेशा धनुष के खींचने के कठिन व्यायाम से मजबूत हो गई थी, विन्ध्याचल की शिलाओं की चौड़ाई को और अजगर सर्प के समान अपनी लम्बी भुजाओं से हिमालय के शालवृक्षों की लम्बाई को हँस रहा था। कलाई में सूअर के बालों में लपेटी हुई नागदमन नामक विषहर ओषधि की गुच्छियाँ बँधी थीं और गोदन्ती मणि से जड़ा हुआ

कुब्जाजिनजालकितया शृङ्गमयमसृणमुष्टिभागभास्वरया पारदरसलेशलिप्तसमस्तमस्तिकया कृपाण्या करालितविशंकटकटिप्रदेशम्, प्रथमयौवनोल्लिख्यमानमध्यभागभ्रष्टमांसभरिताविव स्थवीयसावूरुदण्डौ दधतम्, अच्छभल्लचर्ममयेन भल्लीप्रायप्रभूतशरभृता शबलशार्दूलचर्मपटपीडितेनालिकुलकालकम्बललोललोम्ना पृष्ठभागभाजा भस्त्राभरणेन पल्लवितमिव कार्श्यमुपदर्शयन्तम्, उत्तरत्रिभागोत्तंसितचाषपिच्छचारुशिखरे खदिरजटानिर्माणे खरप्राणे प्रचुरमयूरपित्तपत्रलताचित्रितत्वचि त्वचिसारगुणे गुरुणि वामस्कन्धाध्यासितधनुषि दोषि लम्बमानेनावाक्शिरसा शितशरकृत्तैकनलकविवरप्रवेशितेतरजङ्घाजनितस्वस्तिकबन्धेन बन्धूकलोहितरुधिरराजिरञ्जितघ्राणवर्त्मना वपुर्वितति्व्यक्तविभाव्यमानकोमलक्रोडरोम-

रांगे का कड़ा पड़ा था। उसका उदर छोटा किन्तु नाभी उभरी हुई थी। उसकी चौड़ी कमर में कटारी बँधी हुई थी। वह दुमुही साँप की खाल की दो पट्टियों से बनी म्यान में, जिस पर चिते के चमड़े के चकत्ते काटकर शोभा के लिए लगाए गए थे, रखी हुई थी। म्यान पर उसने औंध कर मृगचर्म लटका दिया था। कटारी की मूठ चमकदार सींग की बनाई गई थी और उसके मुँहवाल पर पारा चढ़ा हुआ था। उसकी जाँघें पहली जवानी के कारण कटिप्रदेश से खिसके हुए माँस से मानों भरकर अधिक मोटी हो गई थी। पीठ पर लटकते हुए तरकस के बोझ से वह जैसे दबता जा रहा था। उसका तरकस भालू के चमड़े का बना हुआ था। उसमें विशेष रूप से भल्लियाँ और बाण भरे हुए थे। चितकबरे बाघ के चमड़े से वह कसकर बँधा हुआ था और उसके रोयें भौंराले कम्बल की तरह लग रहे थे। बाँह के ऊपरी तिहारी भाग में चहे पक्षी के पंख सुशोभित थे। बाँह के नस इस प्रकार लग रहे थे मानों खैर की जटाएँ एक साथ बटी गई हों और उसकी भुजा में बल अधिक था। बाँस की तरह ठोस और तगड़ी उसकी बाँह पर मयूरपिच्छ से फूल-पत्तियों का गुदना गुदा था। उसके बायें कन्धे पर धनुष रखा हुआ था। खरहे की एक टाँग की लम्बी हड्डी तेज बाण की धारा से घुटने के पास काटकर दूसरे टाँग की पिंडली पहले की नलकी में पिरो देने से जो कमच्चा बन गया था उसमें अपनी बांह का अग्रभाग डालकर उसने खरहा को भुजा पर टाँग लिया था। नाक से बहते हुए लाल रक्त से सना हुआ खरहे का सिर नीचे की ओर लटक रहा था और झुकते हुए शरीर के खिंच जाने के कारण सामने की ओर पेट पर के मुलायम सफेद रोओं की धारी साफ दिखाई देती थी। धनुष के निचले कोर के निकले भाग द्वारा कण्ठ छेद कर उसमें एक तीतर लटकाया हुआ था, जिसकी चोंच के भीतर का ऊपरी तालु दिखाई पड़ रहा था। खरहे और तीतर उसके शिकार की बानगी की मूँठ जान पड़ते थे। उनके दाहिने हाथ में विष से

शुक्लिम्ना शशेन शिताटनीशिखाग्रग्रथितग्रीवेण चापावृतचञ्च्वृत्तानताम्रतालुना तित्तिरिणा वर्णकमुष्टिमिव मृगयाया दर्शयन्तम्, विषमविषदूषितवदनेन च विकर्णेन कृष्णाहिनेव मूलगृहीतेन व्यग्रदक्षिणकराग्रम्, जङ्गममिव गिरितटतमालपादपम्, यन्त्रोल्लिखितमश्मसारस्तम्भमिव भ्रमन्तम्, अञ्जनशिलाच्छेदमिव चलन्तम्, अयःसारमिव गिरेर्विन्ध्यस्य गलन्तम्, पाकलं करिकुलानाम्, कालपाशं कुरङ्गयूथानाम्, धूमकेतुं मृगराजचक्राणाम्, महानवमीमहं महिषमण्डलानाम्, हृदयमिव हिंसायाः, फलमिव पापस्य, कारणमिव कलिकालस्य, कामुकमिव कालरात्रेः, शबरयुवानमादायाजगाम। दूरे च स्थापयित्वा विज्ञापयांबभूव—'देव! सर्वस्यास्य विन्ध्यस्य स्वामी सर्वपल्लीपतीनां प्राग्रहरः शबरसेनापतिर्भूकम्पो नाम। तस्यायं निर्घातनामा स्वस्रीयः सकलस्यास्य विन्ध्यकान्ताराण्यस्य पर्णानामप्यभिज्ञः किमुत प्रदेशानाम्। एनं पृच्छतु देवो योग्योऽयमाज्ञां कर्तुम्।' इति कथिते च निर्घातस्तु क्षितितलनिहितमौलिः प्रणाममकरोत्। उपनिन्ये च तित्तिरिणा सह शशोपायनम्। अवनिपतिस्तु संमानयन्स्वयमेव तमप्राक्षीत्—'अङ्ग! अभिज्ञा यूयमस्य सर्वस्योद्देशस्य? विहारशीलाश्च दिवसेष्वेतेषु भवन्तः? सेनापतेर्वान्यस्य वा तदनुजीविनः कस्यचिदुदाररूपा नारी न गता भवेद्दर्शनगोचरम्?' इति।

मुड़ी हुई नोंक वाला बाण था, मानों पूँछ से पकड़ा हुआ काला नाग हो। पर्वतीय प्रदेश का वह चलता-फिरता तमालवृक्ष था। वह खराद पर चढ़ाकर बना घुमता हुआ लौह-स्तम्भ था। चलता हुआ अञ्जनशिला का टुकड़ा था। खान से ढलता हुआ विन्ध्याचल का लोहा था। वह हाथियों के लिये ज्वर, हिरनों के लिए कालपाश, सिंहों के लिए धूमकेतु, भैंसों के लिए दुर्गानवमी का उत्सव (जिसमें भैंसे बलि चढ़ाए जाते हैं) था। वह साक्षात् हिंसा का हृदय, पाप का फल, कलियुग का कारण, कालरात्रि का पति जैसा लग रहा था। व्याघ्रकेतु ने उस शबर युवक को दूर ही ठहरा कर राजा से निवेदन किया—'देव, समस्त विन्ध्यक्षेत्र का स्वामी और पल्लीपतियों में श्रेष्ठ भूकम्प नाम का शबर सेनापति है। निर्घात नाम का यह उसी का भांजा है जो समस्त विन्ध्याचल के जङ्गल के पत्ते-पत्ते की खबर रखता, प्रदेशों की तो बात ही क्या? देव इससे जो पूछें यह आज्ञापालन के योग्य है। उसके यह कहने पर निर्घात ने धरती पर सिर टेक कर प्रणाम किया और तीतर के साथ खरहे को भेंट के रूप में समीप में रख दिया। राजा ने उस भेंट

निर्घातस्तु भूपालालापनप्रसादेनात्मानं बहुमन्यमानः प्रणनाम, दर्शितादरं च व्यज्ञापयत्—'देव ! प्रायेणात्र हरिण्योऽपि नापरिगताः संचरन्ति सेनापतेः, कुत एव नार्यः ? नाप्येवंरूपा काचिदबला। तथापि देवादेशादिदानीमन्वेषणं प्रति प्रतिदिनमनन्यकृत्यैः क्रियते यत्नः। इतश्चार्धगव्यूतिमात्र एव मुनिमहिते महति महीधरमालामूलरुहि महीरुहां षण्डेऽपि पिण्डपाती प्रभूतान्तेवासिपरिवृतः पाराशरी दिवाकरमित्रनामा गिरिनदीमाश्रित्य प्रतिवसति, स यदि विन्देद्वार्ताम्' इति। तच्छ्रुत्वा नरपतिरचिन्तयत्—'श्रूयते हि तत्रभवतः सुगृहीतनाम्नः स्वर्गतस्य ग्रहवर्मणो बालमित्रं मैत्रायणीयस्त्रयीं विहाय ब्राह्मणायनो विद्वानुत्पन्नसमाधिः सौगते मते युवैव काषायाणि गृहीतवान्' इति। प्रायशश्च जनस्य जनयति सुहृदपि दृष्टो भृशमाश्वासम्। अभिगमनीयाश्च गुणाः सर्वस्य। कस्य न प्रतीक्ष्यो मुनिभावः। भगवती च वैधेयेऽपि धर्मगृहिणी गरिमाणमापाद-

---

पाराशरी भिक्षुः। विन्देल्लभेत। मैत्रायणीयः शाखाया अध्येता। 'ऋग्यजुःसामनामाथ त्रयी वेदास्त्रयः स्मृताः'। ब्राह्मणायनो द्विजवरिष्ठः। समाधिरेकाग्रता। अभिगमनार्हा अभिगमनीयाः। प्रतीक्ष्यः पूज्यः। वैधेये मूर्खे। उक्तं च—'अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः' इति।

का सम्मान करते हुए स्वयं पूछा—'भाई, तुम इस समस्त प्रदेश की जानकारी रखते हो ? और इन दिनों यहीं घूमते रहे हो। क्या तुम्हारे सेनापति या उसके किसी दूसरे अनुचर के देखने में एक सुन्दर स्त्री इधर आई है ?'

निर्घात राजा के साथ बातचीत करने की प्रसन्नता से अपने आपको धन्य मानता हुआ प्रणाम करके आदरपूर्वक बोला—'देव, सेनापति के अनजाने में हरिणी भी जब नहीं घूमतीं तो नारियों की बात ही क्या ! इस तरह की कोई अबला इस जङ्गल में नहीं, फिर भी आपके आदेश से अब सब काम छोड़कर उसे ढूँढ़ने का प्रयत्न होगा। यहाँ से एक कोस की दूरी पर पहाड़ की जड़ में वृक्षों के घने झुरमुट में भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाला, अपने अनेक शिष्यों के साथ दिवाकरमित्र नाम का पाराशरी भिक्षु गिरि नदी के किनारे रहता है। शायद उसे खबर लगी हो।' यह सुनकर राजा ने सोचा—'मैंने भी सुना है कि आदरणीय सुगृहीतनाम स्वर्गीय गृहवर्मा के बालसखा मैत्रायणी शाखा के अध्येता ब्राह्मणश्रेष्ठ और विद्वान् जिन्होंने चित्तवृत्ति की एकाग्रता प्राप्त कर लेने से प्रव्रज्या ग्रहण कर बौद्ध भिक्षुओं के गेरुवे वस्त्र धारण कर लिये थे।' ऐसा प्रायः देखा जाता है कि मित्र भी मिलकर हृदय में आश्वासन उत्पन्न कर देता है। सबके गुण अनुसरण के योग्य

यति प्रव्रज्या, किं पुनः सकलजनमनोमुषि विदुषि जने। यतो नः कुतूहलि हृदयमभूत्सततमस्य दर्शनं प्रति प्रासङ्गिकमेवेदमापतितमतिकल्याणं पश्यामः प्रयत्नप्रार्थितदर्शनं जनमिति। प्रकाशं चाब्रवीत्—'अङ्ग! समुपदिश तमुद्देशं यत्रास्ते स पिण्डपाती' इति। एवमुक्त्वा च तेनैवोपदिश्यमानवर्त्मा प्रावर्तत गन्तुम्।

अथ क्रमेण गच्छत एव तस्य अनवकेशिनः कुड्मलितकर्णिकाराः, प्रचुरचम्पकाः स्फीतफलेग्रहयः, फलभरभरितनमेरवः नीलदलनलदनारिकेलनिकराः, हरिकेसरसरलपरिकराः कोरकनिकुरम्बरोमाञ्चितकुरबकराजयः, रक्ताशोकपल्लवलावण्यलिप्यमानदशदिशः, प्रविकसितकेसररजोविसरबध्यमानचारुधूसरिमाणः स्वरजः सिकतिलातलकतालाः, प्रविचलि-

---

अथ क्रमेण गच्छत एवास्यैवंविधास्तरवो दर्शनमवतेरुरिति संबन्धः। अवकेशी निष्फलतरुः। उक्तं च—'वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च कर्णिकारो द्रुमोत्पलः। परिव्याधः' इति पर्यायः। 'स्यादवन्ध्यः फलेग्रहिः'। नमेरुस्तरुभेदः। 'नलदः सल्लकी मांसी नारिकेलस्तु लाङ्गली' इत्यमरः (?)। हरिकेसरः। उक्तं च—'चाम्पेयः केसरो नागकेसरः काञ्चनाह्वयः'। सरला देवदारवः। कोरकः कलिका। कुरबका ये योषितामालिङ्गनैः पुष्प्यन्ति। रक्ताशोका ये सालक्तककामिनीचरणहताः फुल्लन्ति। केसरा बकुलाः। ये कान्तागण्डूषशीधुसेकेन विकसन्ति। तिलकाः क्षुरकाः। ये

है और भिक्षु का वेष किसका पूज्य नहीं! धर्म की घरनी भगवती प्रव्रज्या जब मूर्ख व्यक्ति में भी गौरव उत्पन्न कर देती है तो समस्त जन के चित्त को हर लेने वाले विद्वान् की क्या बात है जो हमारा हृदय उनके दर्शनों के लिए कुतूहल से भर गया है। हम प्रयत्न से दर्शन देने वाले उनको (दिवाकरमित्र को) प्रसङ्गतः प्राप्त अपने कल्याण के रूप में देखते हैं। उन्होंने कहा—'भाई, वे भिक्षु जहाँ हों, उस स्थान को बताओ।' यह कहकर निर्घात के द्वारा बताए गये मार्ग पर चलने लगे।

उसके साथ मार्ग में चलते हुए ही हर्ष ने फले-फूले अनेक वृक्षों पर दृष्टिपात किया। कर्णिकार कौंढ़ी ले रहे थे। चम्पक फलों से लद गए थे। नमेरु फलों के भार से झुक गये थे। साँवले पत्तों वाले सल्लकी और नारियल के पेड़ झुण्ड के झुण्ड थे। नागकेसर और सरल चारों ओर छाए हुए थे, कुरबक वृक्षों की कौंढ़ियाँ उनके रोमाञ्च की भाँति निकल रही थीं। रक्ताशोक के पल्लवों की लाली दिशाओं में जैसे लिप रही थी। खिले हुए केसरवृक्षों के पराग उड़कर वन को धूसर कर रहे थे। तिलकवृक्षों के पराग बालू के

तहिङ्गवः, प्रचुरपूगफलाः, प्रसवपूगपिङ्गलप्रियङ्गवः, परागपिञ्जरितमञ्जरीपुञ्जायमानमधुपमञ्जुशिञ्जाजनितजनमुदः, मदमलमेचकितमुचुकुन्दस्कन्धकाण्डकथ्यमाननिःशङ्ककरिकरटकण्डूतयः, उड्डीयमाननिःशङ्कचटुलकृष्णशारशावसकलशाद्वलसुभगभूमयः, तमःकालतमतमालमालामीलितातपाः, स्तबकदन्तुरितदेवदारवः, तरलताम्बूलीस्तम्बजालकितजम्बूजम्भीरवीथयः, कुसुमरजोधवलधूलीकदम्बचक्रचुम्बितव्योमानः, बहलमधुमोक्षोक्षितक्षितय', परिमलघटितघनघ्राणतृप्तयः; कतिपयदिवससूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटराः, चटकासंचार्यमाणवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटवः, सहचरीचारणचञ्चुरचकोरचञ्चवः, निर्भयभूरिभुरुण्डभुज्यमानपाककपिल-

---

प्रसादितकामिनीदर्शनमात्रेण कुसुमिताः संपद्यन्ते। हिङ्गु रामठम्। उक्तं च—'सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम्' इति। पूगः क्रमुकवृक्षः। प्रसवपूगाः पूगफलसमूहाः। प्रियङ्गु श्यामलता। 'श्यामा तु वनिताह्वया। लता गोवन्धनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली। विष्वक्सेना गन्धफली कारम्भः प्रियकश्च सः॥' पुञ्जमानः संह्रियमाणः। मुचुकुन्दाः पुष्पतरुभेदाः करटौ गण्डौ। तमालस्तापिच्छः। उक्तं च—'शक्रपादपः पारिभद्रकः। भद्रदारु द्रुकिलिमं पीतदारु च दारु च। पूतिकाष्ठं च सप्त स्युर्देवदारुणि' इति। ताम्बूली नागवल्ली। जम्बू वृक्षभेदः। जम्भीरा दन्तशठाख्याः। उक्तं च—'स्युर्जम्बीरे दन्दशठजम्भजम्भीरजम्भलाः' इति। 'समीरणो मरुबकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः। जम्भीरे' इति। धूलीकदम्बाख्या ग्रैष्मिका वृक्षभेदाः। कुटजो गिरिमल्लिका। उक्तं च—'कुटजो गिरिमल्लिका' इति। चटकाया अपत्यानि चाटकैराः। चारणं भोजनम्। चञ्चुरा निपुणाः। भुरुण्डाः पक्षिभेदाः।

सम्रान भर गये थे। हींग हवा से हिल रहे थे। सुपारी के फल खूब लगे थे। प्रियङ्गुलतायें सुपारी के फूलों से पीली लग रही थीं। पराग से भरी पीली मञ्जरियों पर लदे हुए भौंरे की सुन्दर गुञ्जार सुनकर लोग प्रसन्न हो रहे थे। मुचुकुन्द के वृक्षों में लगे हुए मद के मलिन चिह्न स्पष्ट बता रहे थे कि हाथियों ने निःशङ्क होकर अपने कुम्भस्थल की खुजान मिटाई है। घास की हरियाली से भरी जमीन पर चञ्चल हिरन के बच्चे कुलांचे मार रहे थे। अन्धकार के समान कृष्ण वर्ण वाले तमालवृक्षों से आतप नष्ट हो गया था। देवदारु वृक्षों में गुच्छे निकल आए थे। जामुन और जम्भीरी नींबू के वृक्षों पर नागवल्ली लतायें लहरा रही थीं। धूलीकदम्बों के फूलों का पराग उड़कर आकाश में व्याप्त हो रहा था। धरती फूलों के मकरन्द से सिंच गई थी। फूलों की गन्ध नाक में भर जाती थी। कुछ ही दिनों की ब्याई हुई कुक्कुटी कुटज के कोटर में बैठी थी। गौरैया चूँ-चूँ करते हुए अपने चुङ्कलों को उड़ाना सिखा रही थी। चकोर अपनी सहचरी को चोंच से चुग्गा

पीलवः, सदाफलकट्फलफलविशसननिःशूकशुकशकुन्तशातितशलाटवः, शैलेयसुकुमारशिलातलसुखशयितशशशिशवः, शेफालिकाशिफाविवरविलम्बविवर्त्तमानगौधेरराशयः, निरातङ्करङ्कवः, निराकुलनकुलकुलकेलयः, कलकोकिलकुलकवलितकलिकोद्गमाः, सहकारारामरोमन्थायमानचमरयूथाः, यथासुखनिषण्णनीलाण्डजमण्डलाः, निर्विकारवृकविलोक्यमानपोतपीतगवयधेनवः, श्रवणहारिसनीडगिरिनितम्बनिर्झरनिनादनिद्रानन्दमन्दायमानकरिकुलकर्णतालदुन्दुभयः, समासन्नकिन्नरीगीतरवरसमानरुरवः, प्रमुदिततरतरक्षवः, क्षतहरितहरिद्राद्रवरज्यमाननववराहपोतपोत्रवलयः, गुञ्जाकुञ्जगुञ्जज्जाहकाः, जातीफलकसुप्तशालिजातकवलयः, दशनकुपित-

---

पीलुफलं स्रंसीकम् । कट्फलः श्रीपर्णाख्यो वृक्षः । उक्तं च—'श्रीपर्णिका कुमुदिका कुम्भी कैडर्यकट्फलौ' इति । विशसनं भेदनम् । निःशूको निर्दयः । शलाटून्यपक्वानि फलानि । उक्तं च—'आमे फले शलाटुः स्यात्' इति । शिलासु भवं शैलेयम् । शेफालिका लताभेदः । 'स्त्रियां गौधेरगौधारगौधेया गोधिकात्मजाः' इति । रङ्कवो मृगभेदाः । सहकार आम्रः । उक्तं च—'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इति । रोमन्थायमाना उद्गीर्य चर्वन्तः । चमरा मृगविशेषाः । नीलाण्डजा मृगभेदाः । वृका आरण्यश्वानः । पोतः शिशुः । 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । गवया गोसदृशाः प्राणिभेदाः । 'तरक्षुस्तु मृगादनः' । हरिद्रा पीतद्रुः । उक्तं च—'अथ पीतद्रुः कालेयकहरिद्रवाः । दार्वी पचंपचा दारुहरिद्रा पर्जनीत्यपि ॥' वराहः सूकरः । पोत्रं सूकरमुखम् । गुञ्जा रक्तिका । जाहकाः

दे रहा था । भुरुण्ड पक्षी पके हुए लाल पीलुओं को निःशङ्क होकर खा रहे थे । तोतों के बच्चे शरीफे और कटहल के कच्चे फलों को निठुरता से कुतर कर गिरा रहे थे । पर्वत की चिकनी शिलाओं पर खरहों के बच्चे सुख से सो रहे थे । छिपकली के छोटे बच्चे शेफालिका की जड़ों की सुराखों में घुस रहे थे । रङ्कु नामक मृग निडर घूम रहे थे । नेवले आपस में निराकुल होकर कूद-फाँद कर रहे थे । कूकभरे कोकिल उत्पन्न होती हुई कोंढ़ी को निगल जाते थे । चमरु हिरनों के झुण्ड आम के बगीचों में जुगाली कर रहे थे । नीलांडज मृग सुखपूर्वक बैठे हुए थे । दूध पीते हुए नीलगाय के बच्चों को पास में बैठे भेड़िये कुछ कहे बिना देख रहे थे । कानों को सुख पहुँचाने वाली निकट के पर्वत के झरते हुए झरने की आवाज सुनते हुए नींद से मोते ऊँघते हुए हाथियों के कानों के फटफटाने की दुन्दुभि जैसी आवाज धीरे-धीरे कम पड़ती जा रही थी । कहीं रुरु हिरन पास ही में किन्नरियों के संगीत का आनन्द ले रहा था और तेन्दुए उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे थे । बनैले सूअरों के बच्चों की थूथनियाँ खोदकर हल्दी के कुटकुटाने से रँग गई थी । झाऊ चूहे गुञ्जा वृक्षों

कपिपोतपेटकपाटितपाटलमुखकीटपुटकाः, लकुचलम्पटगोलाङ्गूललङ्घ्यमानलवलयः, बद्धवालुकालवालवलयाः, कुटिलकुटावलिवलितवेगगिरिनदिकास्रोतसः, निबिडशाखाकाण्डलम्बमानकमण्डलवः, सूत्रशिक्यासक्तरिक्तभिक्षाकपालपल्लवितलतामण्डपाः, निकटकुटीकृतपाटलमुद्राचैत्यकमूर्तयः, चीवराम्बररागकषायोदकदूषितोद्देशाः, मेघमया इव कृतशिखण्डिकुलकोलाहलाः, वेदमया इवापरिमितशाखाभेदगहनाः, माणिक्यमया इव महानीलतनवः, तिमिरमया इव सकलजननयनमुषः, यामुना इवोर्ध्वीकृतमहाह्रदाः, मरकतमणिश्यामलाः क्रीडापर्वतका इव वसन्तस्य, अञ्जनाचला इव पल्लविताः, तनया इवाटवीजाता विन्ध्यस्याद्रेः, पालाला-

---

शालिजातकाश्च प्राणिभेदाः। पाटलाः कीटाः। पुटका आलयाः। 'लकुचो लिकुचो डुहुः' इत्यमरः। गोलाङ्गूलाः कृष्णमुखवानराः। लवलयो लताभेदः। कमण्डलुर्मुनिजलभाण्डम्। शिक्यं भिक्षाभाजनम्। जालिका निकटकुटीषु कृताः। मुद्रया कृतानामल्पचैत्यानां मूर्तयो येषु। शाखा लताः, कठाद्याश्च। महानीला अत्यन्तकृष्णाः, महानीलाश्च प्राणिभेदाः। नयनमुषो रम्यत्वात्, प्रकाशनाच्च। प्रतिप्रसन्नकाः प्रतिच्छन्दकाः।

के कुंजों में गूँज रहे थे। जायफल के नीचे शालिजातक नामक पशु सोए थे। लाल ततैयों के डङ्क मारने से कुपित हुए बन्दरों ने उनके छत्तों को नोंच डाला था। लगूर डहुआ के फल खाने के लिए लवली लताओं के इस पार से उस पार कूद रहे थे। पेड़ों के चारों ओर पानी डालने के लिए बालू के थल्ले बनाए गए थे। टेढ़े-मेढ़े वृक्षों के चारों ओर पहाड़ी नदियों के सोते तेजी से बह रहे थे। मुनियों ने वृक्षों की मोटी शाखाओं में कमण्डल लटका दिए थे। लतामण्डपों में सूत की बनी हुई सिकहरों पर खाली भिक्षाकपाल रख दिए गए थे। कुटियों के समीप स्तूप या चैत्य की बनी हुई आकृतियों वाली पक्की मिट्टी की लाल मुहरें थीं। चीवर वस्त्रों के धोने से दूर तक वहाँ के जल उनके रस से दूषित हो गए थे। मेघ के सदृश उन वृक्षों पर मोर शोर मचा रहे थे। वेदों जैसी उन वृक्षों की शाखाएँ अपरिमित और गहन थीं। माणिक्य की भाँति वे वृक्ष अत्यन्त नीले (महानील, मणिविशेष) वर्ण के थे। सारे लोगों की दृष्टि को अन्धकार के समान विफल कर देने वाले थे। महावृक्षों के रूप में मानों यमुना के बड़े-बड़े सरोवर ऊपर उठा दिए गए हों, या मानों जड़ी हुई मरकत मणियों से श्यामवर्ण के वसन्त के क्रीड़ापर्वतक हों, या काले-काले अञ्जन के पर्वत निकल आए हों, जंगलों में उत्पन्न हुए मानों विन्ध्याचल के पुत्र हों,

न्धकारराशय इव भित्त्वा भुवमुत्थिताः, प्रतिप्रवेशिका इव वर्षावासराणाम्, अंशावतारा इव कृष्णार्धरात्रीणाम्, इन्द्रनीलमयाः प्रासादा इव वनदेवतानाम्, पुरस्ताद्दर्शनपथमवतेरुस्तरवः।

ततो नरपतेरभवन्मनस्यदूरवर्तिना खलु भवितव्यं भदन्तेनेति। अवतीर्य च गिरिसरिति समुपस्पृश्य युगपद्विश्रामसमयसमुन्मुक्तहेषाघोषबधिरीकृताटवीगहनामस्मिन्नेव प्रदेशे स्थापयित्वा वाजिसेनामवलम्ब्य च तपस्विजनदर्शनोचितं विनयं हृदयेन दक्षिणेन च हस्तेन माधवगुप्तमंसे विरलैरेव राजभिरनुगम्यमानश्चरणाभ्यामेव प्रावर्तत गन्तुम्।

अथ तेषां तरूणां मध्ये नानादेशीयैः स्थानस्थानेषु स्थाणूनाश्रितैः शिलातलेषूपविष्टैर्लताभवनान्यध्यावसद्भिररण्यानीनिकुञ्जेषु निलीनैर्विटपच्छायासु निषण्णैस्तरुमूलानि निषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैर्मस्करिभिः श्वेत-

भदन्त इति सौगतप्रतिमानां पूजावचनम्। उद्यानमित्यन्ये।

अथेत्यादौ। तरूणां मध्ये दिवाकरमद्राक्षीदिति संबन्धः। नानादेशीयैर्वीतरागैरिति चार्हतैरित्यादीनां सर्वेषां विशेषणम्। स्थाणूनाश्रितैरित्यादि तु केषाञ्चित्। 'स्थाणुरस्त्री ध्रुवः शङ्कुः' इत्यमरः। 'महारण्यमरण्यानी विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः'। अर्हन्देवता येषां ते आर्हतास्तैर्नग्नक्षपणकैः।

या मानों पाताल के अन्धकार पृथिवी को फोड़कर बाहर निकल गए हों, अथवा वे मानों वर्षा के दिनों के पड़ोसी हों, या कृष्णपक्ष की अर्धरात्रियों के अंशावतार हों, या इन्द्रनील मणियों के बने वनदेवताओं के प्रासाद हों।

तब राजा के मन में हुआ कि अब निश्चय ही भदन्त का आश्रम यहां से दूर नहीं होना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने गिरिनदी में उतरकर आचमन किया। उसी प्रदेश में विश्राम के लिए वाजिसेना को, जो अपनी हिनहिनाहट से जंगल को भर रही थी, ठहरा दिया। स्वयं तपस्वियों के दर्शन के उचित विनय को हृदय से धारण किया। माधवगुप्त के कन्धे पर दाहिना हाथ रख और साथ में कुछ राजाओं को ले पैदल ही चल पड़े।

उन वृक्षों के बीच में शिष्यभाव से नाना देशों से आए हुए अनेक वीतराग लोगों को देखा। जगह-जगह पर उनमें कुछ लोग लकड़ी के खूंटों पर बैठे थे। कुछ चट्टानों पर विराजमान थे। कुछ लताभवनों में बैठे हुए थे। कुछ जंगल के झुरमुटों में छिपकर बैठे थे। कुछ वृक्षों की छाया में जम गए थे। कुछ वृक्षों की जड़ों पर आसन जमा चुके थे। वे वीतराग आर्हत (जैन साधु), मस्करी (पाशुपतमतानुयायी), श्वेतपट (सेवड़ा,

पटैः पाण्डुरभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुञ्चकैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकैः काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकैः कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभिः पौराणिकैः साप्ततन्तवैः शाब्दिकैः पाञ्चरात्रिकैरन्यैश्च स्वान्स्वान्सिद्धान्ताञ्शृण्वद्भिरभियुक्तैश्चिन्तयद्भिश्च प्रत्युच्चरद्भिश्च संशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यस्यद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यतां प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्यमानम्, अतिविनीतैः कपिभिरपि चैत्यकर्म कुर्वाणैस्त्रिसरणपरैः परमोपासकैः शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः शिक्षापदोपदेशदोषोपशमशालिनीभिः शारिकाभिरपि धर्मदेशानां दर्शयन्तीभिरनवरतश्रवणगृहीनालोकैः कौशिकैरपि

मस्करिभिः परिव्राजकैः। श्वेतपटैः श्वेतोर्णाकम्बलिवासोभिः, नग्नक्षपणकभेदैः। पाण्डुरभिक्षुभिस्त्यक्तकाषायैः। भागवतैर्विष्णुभक्तैः। वर्णिभिर्ब्रह्मचारिभिः। केशलुञ्चनैर्यथार्थनामभिः। लोकायतिकैश्चार्वाकैः। जैनैर्बौद्धैः। कापिलैः सांख्यैः। काणादैर्वैशेषिकतार्किकैः। औपनिषदैर्वेदान्तवादिभिः। ऐश्वरकारणिकैर्नैयायिकैः। कारन्धमिभिर्धातुवादिभिः। पाषण्डभेदैरित्यन्ये। धर्मशास्त्रिभिः स्मृतिज्ञैः। शाब्दिकैर्वैयाकरणैः। पाञ्चरात्रिकैर्वैष्णवभेदैः। सिद्धान्तानागमान्। त्रिसरणेति। त्रयो बुद्धधर्मसंघाः। शाक्यो बुद्धः। कोशो बौद्धसिद्धान्तो वसुबन्धकृतः। देशना कथनम्।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के साधु), पाण्डुर भिक्षु (आजीवक), भागवत, वर्णी (नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधु), केशलुञ्चक (केशों का लोच करने वाले जैन साधु), कापिल (कपिलमतानुयायी सांख्य), जैन, लोकायतिक (चार्वाक), काणाद (वैशेषिक), औपनिषद (उपनिषद् या वेदान्तदर्शन के ब्रह्मवादी दार्शनिक), ऐश्वरकारणिक (नैयायिक), कारन्धमी (धातुवादी या रसायन बनाने वाले), धर्मशास्त्री (मन्वादि स्मृतियों के अनुयायी), पौराणिक, साप्ततन्तव (यज्ञवादी मीमांसक), शाब्दिक (शब्दब्रह्म के अनुयायी वैयाकरण दार्शनिक), पाञ्चरात्रिक (पञ्चरात्र संज्ञक प्राचीन वैष्णवमत के अनुयायी) और इनके अतिरिक्त और भी लोग अपने-अपने आगमों का पूरी लगन के साथ श्रवण, मनन, आवृत्ति, संशय, निश्चय, व्युत्पत्ति, विवाद और अभ्यास के द्वारा व्याख्यान कर रहे थे। दूर ही से देखकर प्रतीत हो जाता था कि यह भदन्त का निवास है। वहां अत्यन्त विनीत शिष्य की भाँति वानर भी चैत्यवन्दनकर्म में तत्पर रहते थे, शुक पक्षी भी बुद्ध, धर्म, संघ इन तीन रत्नों की शरण में जाते थे और परम उपासक एवं शाक्यशासन में कुशल विद्वान् होकर वसुबन्धुकृत अभिधर्मकोश का उपदेश देते थे। सारिकाएं भी भगवान् बुद्ध के बताए हुए दस शीलों के शिक्षापदों के उपदेश द्वारा दोष का मार्जन करके धर्म देशना

बोधिसत्त्वजातकानि जपद्भिर्जातसौगतशीलशीतलस्वभावैः शार्दूलैरप्यमांसाशिभिरुपास्यमानम्, आसनोपान्तोपविष्टविस्रब्धानेककेसरिशावकतया मुनिपरमेश्वरम्, अकृत्रिम इव सिंहासने निषण्णम्, उपशममिव पिबद्भिर्वनहरिणैर्जिह्वालताभिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नता पारावतपोतकेन कर्णोत्पलेनेव प्रियां मैत्रीं प्रसादयन्तम्, इतरकरकिसलयनखमयूखलेखाभिर्जनितजनव्यामोहम्, उद्ग्रीवं मयूरं मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभिः पूरयन्तम्, इतस्ततः पिपीलकश्रेणीनां श्यामाकतण्डुलकणान्स्वयमेव किरन्तम्, अरुणेन चीवरपटलेन म्रदीयसा संवीतम्, बहलबालातपानुलिप्तमिव पौरंदरं दिग्भागम्, उल्लिखितपद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्तावदातया देहप्रभया पाटलीकृतानां काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलित-

---

बोधिः समाधिः। तत्प्रधानसत्त्वं बुद्धभट्टारकः। तदीयानि जातकानि जीमूतवाहनादिजन्मकथाः। मुनिपरमेश्वरम् मुनीश्वरं बुद्धम्। अपकारिण्यभिप्रीतिर्मैत्री। पिपीलकः कीटभेदः। चीवरं मुनिवासः। संवीतमाच्छादितम्। उल्लिखितश्चरणो-

---

(धर्मोपदेश) करती थीं। उलूक पक्षी भी बोधिसत्त्व की जातक कहानियों को हमेशा सुन रहे थे और उनसे आलोक ग्रहण कर रहे थे। व्याघ्र भी भगवान् बुद्ध का शील पालन करते थे और उनका स्वभाव शान्त बन गया था, और कभी भी मांस का आहार नहीं करते थे। इस प्रकार वहां भदन्त की सेवा हो रही थी। उनके आसन के दोनों ओर कई सिंहशावक विस्रब्धभाव से बैठे हुए थे। ऐसा लग रहा था मानों साक्षात् मुनि परमेश्वर भगवान् बुद्ध ही सिंहासन पर विराजमान हों। वनहरिन उनके पैर चाट रहे थे, मानों उनके शमभाव का पान कर रहे हों। उनके बायें हाथ पर बैठा हुआ कबूतर का बच्चा धान कुटरा रहा था, मानों अपने-अपने कर्णोत्पल के द्वारा प्रियामैत्री-भावना का प्रसादन कर रहे थे। उनके दाहिने हाथ के नखों की किरणें लोगों को चकाचौंध में डाल देती थीं। मरकत के कमण्डलु की भाँति गर्दन ऊपर उठाए मयूर को जलधारा से नहला रहे थे। इधर उधर स्वयं जाकर चीटियों के लिए सांवा की खुद्दी छींट रहे थे। लाल और मुलायम संघाटी ओढ़े हुए थे, मानों प्रातःकाल अरुणाई से भरा पूर्व का दिग्भाग हो। खराद पर चढ़े हुए पद्मराग के समान लाल और उज्ज्वल अपनी देह की प्रभा से दिशाओं को पाटल बना रहे थे, मानों उन्हें भी काषाय वस्त्र धारण करने के लिए उपदेश कर रहे हों। थोड़े मुकुलित कुमुद की भाँति उनकी स्निग्ध, धवल और प्रसन्न आँखें अनौद्धत्य के कारण झुकी हुई थीं मानों संसारी क्षुद्र जन्तुओं के जीवन के लिए अमृत की वर्षा कर रहे थे। उनका

कुमुदाकरेण स्निग्धधवलप्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तुजीवनार्थममृतमिव वर्षन्तम्, सर्वशास्त्राक्षरपरमाणुभिरिव निर्मितम्, परमसौगतमप्यवलोकितेश्वरम्, अस्खलितमपि तपसि लग्नम्, आलोकमिव यथावस्थितसकलपदार्थप्रकाशकं दर्शनार्थिनाम्, सुगतस्याप्यभिगमनीयम्, अवधर्मस्याप्याराधनीयमिव, प्रसादस्यापि प्रसादनीयमिव, मानस्यापि माननीयमिव, वन्द्यत्वस्यापि वन्दनीयमिव, आत्मनोऽपि स्पृहणीयमिव, ध्यानस्यापि ध्येयमिव, ज्ञानस्यापि ज्ञेयमिव, जन्म जपस्य, नेमिं नियमस्य, तत्त्वं तपसः, शरीरं शौचस्य, कोशं कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सद्वृत्तं सद्वृत्ततायाः, सर्वस्वं सर्वज्ञतायाः, दाक्ष्यं दाक्षिण्यस्य, पारं परानुकम्पायाः, निर्वृतिं सुखस्य, मध्यमे वयसि वर्तमानं दिवाकरमित्रमद्राक्षीत्। अतिप्रशान्तगम्भीराकारारोपितबहुमानश्च सादरं दूरादेव शिरसा वचसा मनसा च ववन्दे।

दिवाकरमित्रस्तु मैत्रीमयः प्रकृत्या विशेषतस्तेनापरेणादृष्टपूर्वेणामानुषलोकोचितेन सर्वाभिभाविना महानुभावाभोगभाजा भ्राजिष्णुना भूपतेर-

---

क्षीढः। क्षुद्राः स्वल्पाः। अवलोकितेश्वरनामा बुद्धविशेषोऽपि। अस्खलितमपीति। स्खलितो ह्यन्यत्र लग्नो भवति, सत्त्वभ्रष्टशीलस्तपःस्थश्च।

दिवाकरमित्रस्तु तेन भूपतावाकारविशेषेण प्रश्रयेण च युगपच्चक्षुषि चेतसि

विग्रहशरीर मानों समस्त शास्त्रों के अक्षररूपी परमाणुओं से बना हुआ जान पड़ता था। परमसौगत होते हुए भी वे अवलोकितेश्वर (एक बोधिसत्त्व) थे। (विरोध पक्ष में वह बौद्ध होते हुए भी ईश्वर का दर्शन करने वाला था।) स्खलित न होते हुए भी वे तपस्या में लग्न थे। वे आलोक के समान दर्शनार्थियों के लिये ठीक-ठीक रूप में समस्त पदार्थों को प्रकाशित कर देते थे। स्वयं बुद्ध से भी वे आदर पाने योग्य थे और स्वयं धर्म से भी पूजा के योग्य थे। वे आत्मा के भी स्पृहा करने योग्य, ध्यान के भी ध्येय, ज्ञान के भी ज्ञेय, जप के जन्म, नियम के नेमि, तपस्या के तत्त्व, पवित्रता के साक्षात् शरीर, कुशल के कोश, विश्वास के गृह, सदाचार के निवास, सर्वज्ञता के सर्वस्व, दाक्षिण्य के दाक्ष्य, दूसरों पर अनुकम्पा से भरे और सुख के प्राप्तिसाधन थे, उनकी अवस्था अधेड़ थी। दिवाकरमित्र के अति प्रशान्त और गम्भीर आकार को देखकर राजा के मन में सम्मान का भाव उत्पन्न हुआ और राजा ने दूर ही से अपने सिर से, वचन से और मन से उनकी वन्दना की।

दिवाकरमित्र स्वभाव से ही मैत्रीभावना से परिपूर्ण थे, फिर भी विशेषरूप से जिसे

प्राकृतेनाकारविशेषेण तेन चाभिजात्यप्रकाशकेन गरीयसा प्रश्रयेण चाह्लादितश्चक्षुषि च चेतसि च युगपदग्रहीत्। धीरस्वभावोऽपि च संपादितससंभ्रमाभ्युत्थानः संकलय्य किंचिदुद्गमनकेन विलोलं विलम्बमानं वामांसाच्चीवरपटान्तमुत्क्षिप्य चानेकाभयदानदीक्षादक्षिणो दक्षिणं महापुरुषलक्षणलेखाप्रशस्तं स्निग्धमधुरया वाचा सगौरवमारोग्यदानेन राजानमन्वग्रहीत्। अभ्यनन्दच्च स्वागतगिरा गुरुमिवाभ्यागतं बहु मन्यमानः स्वेनासनेनाद्ध्यमत्रेति निमन्त्रयांचकार। पार्श्वस्थितं च शिष्यमब्रवीत्—'आयुष्मन्! उपानय कमण्डलुना पादोदकम्' इति। राजा त्वचिन्तयत्—'अलोहः खलु संयमनपाशः सौजन्यमभिजातानाम्। स्थाने खलु तत्रभवान्गुणानुरागी ग्रहवर्मा बहुशो वर्णितवानस्य गुणान्' इति। प्रकाशं चावभाषे—'भगवन्! भवद्दर्शनपुण्यानुगृहीतस्य मम पुनरुक्त इवायमार्यप्रयुक्तः प्रतिभात्यनुग्रहः। चक्षुःप्रमाणप्रसादस्वीकृतस्य च परकरणमिवा-

---

च आह्लादित आनन्दितः सन्नन्वग्रहीदिति संबन्धः। महानुभावानामुत्तमानाम्। आभोगं टङ्कं भजत इत्याकारविशेषणम्। संकलय्य संयम्य। उद्गमनमुत्थापनम्। आगमनमागतम्, सुखेनागतं स्वागतम्। स्वागतप्रश्नार्थं गीस्तया अत्रोपविशेति।

पहले नहीं देखा था, जो मनुष्य के लिए सम्भव नहीं, सबको अभिभूत कर देने वाला, महानुभावता से ओत-प्रोत, चमकीला और अग्राम्य राजा के उस आकार से और उनकी कुलीनता को व्यक्त करने वाले श्रेष्ठ विनय को देख कर उनकी आंखों में और चित्त में प्रसन्नता भर आई। गम्भीर प्रकृति के होने पर भी व्यग्रता के साथ अपने आसन से उठ कर अनेक जीवों को अभय दान की दीक्षा देने वाले उन्होंने शीघ्रता से उठने के कारण खिसक कर बायें कन्धे से लटकते हुए अपने चीवर समेट लिया और महापुरुष के लक्षणों से युक्त राजा को अपनी स्निग्ध और मधुर वाणी के गौरव के साथ आशीर्वाद देकर अनुगृहीत किया और उचित आवभगत से उनका स्वागत किया एवं गुरु के समान पधारे हुए अभ्यागत को 'यहां विराजिए' यह कह कर बड़े आदर के साथ निमंत्रित किया। बगल में बैठे हुए अपने एक शिष्य से बोले—'आयुष्मन्, चरण पखारने के लिए कमण्डल का जल लाओ।' राजा सोचने लगे—'सचमुच कुलीन पुरुषों का सौजन्य बिना लोहा के बना हुआ बांधने वाला पाश है। गुण के अनुरागी आदरणीय गृहवर्मा ने ठीक ही बहुत से इनके गुणों का वर्णन किया था।' तब उन्होंने कहा—'भगवन्, आपने दर्शन देकर ही मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया। फिर जो आर्य के द्वारा मेरा यह सम्मान है, इससे वह अनुग्रह पुनरुक्त-सा लगता है। जब आपने मुझे नयन-प्रसाद से स्वीकृत किया तो ये

सनादिदानोपचारश्चेष्टितम्। अतिभूमिर्भूमिरेवासनं भवादृशां पुरः संभाषणामृताभिषेकप्रक्षालितसकलवपुषश्च मे प्रदेशवृत्तिः। पाद्यमप्यपार्थकम्। आसतां भवन्तो यथासुखम्। आसीनोऽहम्' इत्यभिधाय क्षितावेवोपाविशत्।

'अलंकारो हि परमार्थतः प्रभवतां प्रश्रयातिशयः, रत्नादिकस्तु शिलाभारः' इत्याकलय्य पुनः पुनरभ्यर्थ्यमानोऽपि यदा न प्रत्यपद्यत पार्थिवो वचनं तदा स्वमेवासनं पुनरपि भेजे भदन्तः। भूपतिमुखनलिननिहितनिभृतनयनयुगलनिगडनिश्चलीकृतहृदयश्च स्थित्वा कांचित्कालकलां कलिकालकल्मषकालुष्यमिव क्षालयन्नमलाभिर्दन्तमयूखमालाभिर्मूलफलाभ्यवहारसंभवमुद्गमन्निव च परिमलसुभगं विकचकुसुमपटलपाण्डुरं लतावनमवादीत्—'अद्यप्रभृति न केवलमयमनिन्द्यो वन्द्योऽपि प्रकाशितसत्सारः संसारः। किं नाम नालोक्यते जीवद्भिरद्भुतं येन रूपमचिन्तितोपनतमिदं दृक्पथमुपगतम्। एवंविधैरनुमीयन्ते जन्मान्तरावस्थितसुकृतानि हृदयो-

---

भूमिमतिक्रान्तातिभूमिः। स्वर्गादिस्थानरूपः प्रदेशवृत्तिः एकदेशो वा।

नयनयुगलमेव निगडो बन्धनशृङ्खला। निवृत्तिः चित्तविभ्रमः।

आसनादि देने के उपचार मुझे पृथक् करने के समान प्रतीत होते हैं। आप जैसे लोगों के सामने भूमि पर बैठना ही परस्पर बातचीत के अमृताभिषेक से प्रक्षालित शरीर वाले मेरे लिए मर्यादा से बाहर है। चरणोदक भी व्यर्थ है। आप सुख-पूर्वक विराजें, मैं तो बैठता ही हूँ।' यह कह कर जमीन पर ही बैठ गए।

'परमार्थतः बड़े लोगों का अलंकार विनयातिशय है, रत्नादिक तो शिलाभार है।' यह सोचकर बार-बार आग्रह करने पर भी जब राजा ने आसन पर बैठना स्वीकार नहीं किया तब फिर भदन्त अपने ही आसन पर विराजमान हुए। कुछ समय तक राजा के मुख की ओर अविचल दृष्टि से देखते रहे, मानों उनका हृदय जंजीर में बँध कर निश्चल हो गया था। तब वे अपने निर्मल दांतों की किरणों से कलिकाल के पापजन्य कालुष्य को मानों प्रक्षालित करते हुए और फल एवं मूल के आहार करने से मुँह से परिमल भरा, खिले हुए पुष्पों से उज्ज्वल लतावन का दृश्य उत्पन्न करते हुए वे बोले—'आज तक सज्जनों के उत्कर्ष को प्रकाश में लाने वाला यह संसार केवल अनिन्द्य ही नहीं, बल्कि वन्दनीय भी है। जीवित रहने वाले लोग कौन-सा आश्चर्य नहीं देख लेते! उदाहरण के रूप में बिना सोचे ही यह रूप हमारी आँखों का गोचर हो गया। हृदय के इन्हीं आनन्दों से लोग जन्मान्तर के पुण्यों का अनुमान करते हैं। हमारे इस तपस्या के क्लेश ने इस जन्म में भी असुलभदर्शन देवानांप्रिय आपके दर्शन के रूप में फल दे दिया।

त्सवैः। इहापि जन्मनि दत्तमेवास्माकममुना तपःक्लेशेन फलमसुलभदर्शनं दर्शयता देवानांप्रियम्। आ तृप्तेरापीतममृतमीक्षणाभ्याम्। जातं निरुत्कण्ठं मानसं निर्वृत्तिसुखस्य। महद्भिः पुण्यैर्विना न विश्राम्यन्ति सज्जने त्वादृशि दृशः। सुदिवसः स त्वं यस्मिञ्जातोऽसि। सा सुजाता जननी या सकलजीवलोकजीवितजनकमजनयदायुष्मन्तम्। पुण्यवन्ति पुण्यान्यपि तानि येषामसि परिणामः। सुकृततपसस्ते परमाणवो ये तव परिगृहीतसर्वावयवाः। तत्सुभगं सौभाग्यमाश्रितोऽसि येन। भव्यः स पुरुषभावो भवत्यवस्थितो यः। यत्सत्यं मुमुक्षोरपि मे पुण्यभाजमालोक्य पुनः श्रद्धा जाता मनुजजन्मनि। नेच्छद्भिरप्यस्माभिर्दृष्टः कुसुमायुधः। कृतार्थमद्य चक्षुर्वनदेवतानाम्। अद्य सफलं जन्म पादपानां येषामसि गतो गोचरम्। अमृतमयस्य भवतो वचसां माधुर्यं कार्यमेव। अस्य त्वीदृशे शैशवे विनयस्योपाध्यायं ध्यायन्नपि न संभावयामि भुवि। सर्वथा शून्य आसीदजाते दीर्घायुषि गुणग्रामः। धन्यः स भूभृद्यस्य वंशे मणिरिव मुक्तामयः संभूतोऽसि। एवंविधस्य च पुण्यवतः कथंचित्प्राप्तस्य केन

अमृतमयस्येति यतोऽमृतमयस्त्वमतो भवद्वचसां माधुर्यं कार्यं प्रयोज्यं कारणसदृशेन कार्येण भवितव्यमित्युक्तेः। शून्यः निराश्रयः। वंशो वेणुरपि। मुक्तामयस्त्यक्तदोषः,

---

तृप्ति पर्यन्त मेरी आँखों ने आज अमृत का पान किया। अब चित्त में निर्वाण के सुख की उत्कण्ठा नहीं रही। अगर बहुत अधिक पुण्य न हो तो आप जैसे सत्पुरुषों पर दृष्टिपात करने का अवसर नहीं मिलता। वह दिन बड़ा ही अच्छा होगा जिस दिन आपका जन्म हुआ होगा। वह जननी सच्चे अर्थ में जननी है, जिसने समस्त जीवलोक के प्राण आयुष्मान को जन्म दिया। वे पुण्य भी सचमुच पुण्यवान् हैं, जिनके फलस्वरूप तुम हो। जो परमाणु तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग के बनने में लगाए गए हैं, निश्चय ही उन्होंने खूब तपस्या की होगी। वह सौभाग्य बड़ा ही शोभन होगा, जिसके आश्रय में तुम हो। वह पौरुष बड़ा ही भव्य है जो तुममें रहता है। सचमुच मुझ मुमुक्षु को भी पुण्यवान् आपको देखकर मनुष्य के जन्म में श्रद्धा होती है। इच्छा न रखते हुए भी हमने आज कामदेव को साक्षात् देख लिया। आज देवताओं की आँखें कृतार्थ हो गई। आज वृक्षों का भी जन्म सफल हुआ, जिनके सामने तुम गए। अमृतमय आपकी बातों में माधुर्य का होना स्वाभाविक है। इस प्रकार के शैशवकाल में भी इस विनय की शिक्षा देने वाले आचार्य को पृथिवी भर में ढूँढ़ कर प्राप्त करना मुश्किल है। दीर्घायु आपकी उत्पत्ति के पूर्व सर्वथा गुणों का समूह किसी काम का न था। वह राजा धन्य है जिसके वंश में मणि की भाँति आप

प्रियं समाचराम इति पारिप्लवं चेतो नः। सकलवनचरसार्थसाधारणस्य कन्दमूलफलस्य गिरिसरिदम्भसो वा के वयम्। अपरोपकरणीकृतस्तु कायकलिरयमस्माकम्। सर्वस्वमवशिष्टमिष्टातिथ्याय। स्वायत्ताश्च विद्यन्ते विद्याबिन्दवः कतिचित्। उपयोगं तु न प्रीतिर्विचारयति। यदि च नोपरुणद्धि कंचित्कार्यलवमरक्षणीयाक्षरं वा कथनीयं तत्कथयतु भवान् स श्रोतुमभिलषति हृदयं सर्वमिदं नः। केन कृत्यातिभारेण भव्यो भूषितवान्भूमिमेतामभ्रमणयोग्याम्? कियदवधिर्वाऽयं शून्याटवीपर्यटनक्लेशः कल्याणराशेः? कस्माच्च संतप्तरूपेव ते तनुरियमसंतापार्हा विभाव्यते?' इति।

राजा तु सादरतरमब्रवीत्—'आर्य! दर्शितसंभ्रमेणानेन मधुरसविसरममृतमिव हृदयधृतिकरमनवरतं वर्षता वचसैव ते सर्वमनुष्ठितम्। धन्योऽस्मि यदेवमभ्यर्हितमनुपचरणीयमपि मान्यो मन्यते माम्। अस्य

मौक्तिकरूपश्च। पारिप्लवं दोलाधिरूढमित्यर्थः। अनेकदुःखहेतुत्वात्। काय एव कलिः। आरक्षणीयाक्षरमिति। यद्यस्माकमुपरि विश्वासोऽस्तीत्यर्थः।

उत्पन्न हुए हैं। हमारे मन में यह विकलता है कि इस प्रकार के पुण्यवान् आप किसी तरह पधारे हों तो हम आपके योग्य कौन सा प्रिय करें? जो कन्द, मूल, फल और झरने के जल समस्त वनचरों के लिए सुलभ हैं, उनके देने के अधिकारी ही नहीं। केवल हमारा यह शरीर दूसरे के अधीन नहीं है। प्रिय अतिथि-सत्कार के लिए यह सर्वस्व हमारे पास बचा है। विद्या के कुछ कण ही अपने अधीन रह गए हैं। हमारी प्रीति उनका कोई उपयोग नहीं समझती। यदि कोई कार्य की बाधा न हो और बात कहने योग्य हो तो आप उसे कहें, हमारा हृदय वह सब कुछ सुनना चाहता है। भ्रमण के अयोग्य इस भूमि को भव्य आपने किस आवश्यक कार्य से आकर अलंकृत किया है? कल्याणराशि आप इस निर्जन अटवी में कब से पर्यटन का क्लेश उठा रहे हैं? सन्ताप के सहन न करने के योग्य यह आपकी देह किस कारण इस प्रकार कष्ट उठा रही है?'

राजा ने आदर के साथ कहा—'आर्य, अमृत के समान निरन्तर मधुरस बरसाने वाले, मेरे प्रति आदर से भरे और हृदय को धैर्य देने वाले आपके इस वचन ने सब कुछ कर दिया। मैं धन्य हूँ कि मान्य आप उपचार के अयोग्य भी मुझे आदर के योग्य समझते हैं। इस महावन में घूमने का कारण मतिमान् आप सुनें। परिवार के सब इष्ट व्यक्तियों के नष्ट हो जाने के बाद मेरे जीवन का एकमात्र सहारा मेरी छोटी बहन बची थी, वह भी पति के वियोग से और शत्रु के द्वारा पकड़े जाने के भय से मारी-मारी किसी

च महावनभ्रमणपरिक्लेशस्य कारणमवधारयतु मतिमान्। मम हि विनष्टनिखिलेष्टबन्धोर्जीवितानुबन्धस्य निबन्धनमेकैव यवीयसी स्वसावशेषा। सापि भर्तुर्वियोगाद्वैरिपरिभवभयाद् भ्रमन्ती कथमपि विन्ध्यवनमिदम्, अशुभशबरबलबहुलम्, अगणितगजकुलकलिलम्, अपरिमितमृगपतिशरभभयम्, उरुमहिषमुषितपथिकगमनम्, अतिनिशितशरकुशापरुषम्, अवटशतविषममविशत्। अतस्तामन्वेष्टुं वयमनिशं निशि निशि च सततमिमामटवीमटामः। न चैनामासादयामः। कथयतु च गुरुरपि यदि कदाचित्कुतश्चिद्वने चरतः श्रुतिपथमुपगता तद्वार्ता' इति।

अथ तच्छ्रुत्वा जातोद्वेग इव भदन्तः पुनरभ्यधात्—'धीमन्! न खलु कश्चिदेवंरूपो वृत्तान्तोऽस्मानुपागतवान्। अभाजनं हि वयमीदृशानां प्रियाख्यानोपायनानां भवताम्।' इत्येवं भाषमाण एव तस्मिन्नकस्मादागत्यापरः शामिनि वयसि वर्तमानः संभ्रान्तरूप इव पुरस्तादुपरचिताञ्जलिर्जातकरुणः प्रक्षरितचक्षुर्भिक्षुरभाषत—'भगवन्भदन्त! महत्करुणं वर्तते। बालैव च बलवद्व्यसनाभिभूता भूतपूर्वापि कल्याणरूपा स्त्री

अतिशयेनाल्पा यवीयसी कनिष्ठा। अयोगाद्विरुद्धविधिवैधुर्यादिदं विन्ध्यवनमनिशं प्रविष्टेति पदयोजना। अनिशं सदा। अटवीमटामो गच्छामः।

प्रकार इस विन्ध्यवन में आ गई, जहाँ दुराचारी शबर निवास करते हैं, असंख्य हाथियों से जो भरा है, जहाँ अनेक सिंहों और शरभों का डर बना रहता है, विकराल भैंसे राहियों को चलने नहीं देते, तीखे बाणों की तरह कुश-काँटे जहाँ बिछे हैं और सैकड़ों खाइयाँ हैं, इसलिए मैं उसे ढूँढ़ने के लिए रात-दिन इस जंगल का चप्पा-चप्पा छान रहा हूँ, पर अभी तक कोई पता नहीं मिला। यदि किसी वनचर से आपको कभी कोई समाचार मिला हो तो कृपया बतावें।'

यह सुनते ही भदन्त ने उद्विग्न मन से फिर कहा—'धीमन्, अभी तक ऐसा कोई वृत्तान्त मुझे नहीं मिला है। मैं इस प्रकार के प्रिय वृत्तान्त के उपहार आपको अर्पित करने के योग्य नहीं।' जब वे यह कह ही रहे थे कि अकस्मात् एक अन्य भिक्षु जो शमभाव का उपासक था, सम्भ्रान्त जैसा दौड़ा-दौड़ा आया और हाथ जोड़कर करुणा से रोते हुए बोला—'भगवन्, भदन्त, अत्यन्त दुःख का विषय है। कोई एक अत्यन्त सुन्दरी बाल अवस्था की स्त्री विपत्ति में पड़ी हुई शोक के आवेश से अग्नि में जलने के लिए तैयार है। जब तक वह अपने प्राणों का परित्याग नहीं करती, कृपया चलकर उसे

शोकावेशविवशा वैश्वानरं विशति। संभावयतु तामप्रोषितप्राणां भगवान्। अभ्युपपद्यता समुचितैः समाश्वासनैः। अनुपरतपूर्वं कृमिकीटप्रायमपि दुःखितं दयाराशेरार्यस्य गोचरगतम्' इति।

राजा तु जातानुजाशङ्कः सोदर्यस्नेहाद्वान्तर्द्रुत इव दुःखेन दोदूयमानहृदयः कथमपि गद्गदिकागृहीतकण्ठो विकलवाग्बाष्पायमाणदृष्टिः पप्रच्छ—'पाराशरिन्! कियद्दूरे सा योषिदेवंजातीया जीवेद्वा कालमेतावन्तमिति। पृष्टा वा त्वया भद्रे! कासि, कस्यासि, कुतोऽसि, किमर्थं वनमिदमभ्युपगतासि, विशसि च किंनिमित्तमनलम्? इत्यादितश्च प्रभृति कात्स्न्र्येन कथ्यमानमिच्छामि श्रोतुं कथमार्यस्य गता दर्शनगोचरमाकारतो वा कीदृशी' इति।

तथाभिहितस्तु भूभुजा भिक्षुराचचक्षे—'महाभाग! श्रूयताम्—अहं हि प्रत्यूषस्येवाद्य वन्दित्वा भगवन्तमनेनैव नदीरोधसा सैकतसुकुमारेण यदृच्छया विहृतवानतिदूरम्। एकस्मिंश्च वनलतागहने गिरिनदीसमीपभाजि भ्रमरीणामिव हिमहृतकमलाकरकातराणां रसितं सार्यमाणानाम-

---

यदृच्छया स्वेच्छया सार्यमाणानां श्रुतिरीत्यास्थाप्यमानानां स्वराणां विशिष्टम-

---

समझायें। उचित आश्वासनों द्वारा अनुग्रह करें। मरने से पूर्व दुःख में पड़े हुए कीड़े-पतंग भी दयाराशि आर्य की करुणा के पात्र हैं।'

राजा के मन में बहिन की शंका उत्पन्न हुई। स्नेह के कारण वे जैसे पिघल गए। दुःख से उनका हृदय भर गया और कण्ठ में घिग्घी आने लगी। वाणी में विकलता हो उठी और आँखें आँसू से भर आईं। तब उन्होंने पूछा—'हे पाराशरिन्, कितनी दूर पर वह स्त्री है और इतनी देर तक वह जीवित रह सकेगी? तुमने क्या उससे पूछा है कि भद्रे, तुम कौन हो? किसकी हो? कहाँ की हो? इस जंगल में किसलिए आ निकली हो? और किस निमित्त से अग्नि में प्रवेश कर रही हो? इस प्रकार आदि से लेकर पूरा वृत्तान्त आपके द्वारा सुनना चाहता हूँ। वह कैसे आपको दिखाई पड़ी? और आकार से कैसी है?'

राजा के ऐसा पूछने पर भिक्षु ने उत्तर दिया—'महाभाग, सुनिए—मैं आज प्रातः भगवान् की वन्दना करके इस नदी के सैकत-सुकुमार तीर पर स्वेच्छा से घूमता हुआ बहुत दूर निकल गया। गिरि नदी के निकट एक लताओं के घने झुरमुट में मैंने बहुत-सी

सितारतानवर्तिनीनां वीणातन्त्रीणामिव झांकारमेकतानं नारीणां हृदिलम-भृतिकरमतिकरुणमाकर्णितवानस्मि । समुपजातकृपश्च गतोऽस्मि तं प्रदेशम् । दृष्टवानस्मि च दृषत्खण्डखण्डिताङ्गुलिगलल्लोहितेन च पार्ष्णि-प्रविष्टशरशलाकाशल्यशूलसंकोचितचक्षुषा चाध्वनीनश्रमश्वयथुनिश्चल-चरणेन च स्थाणवव्रणव्यथितगुल्फबद्धभूर्जत्वचा च वातखुडखेदखञ्ज-जङ्घाजातज्वरेण च पांसुपाण्डुरपिच्छकेन च खर्जूरजूटजटाजर्जरितजानुना च शतावरीविदारितोरुणा च विदारीदारिततनुदुकूलपल्लवेन चोत्कटवंश-विटपकण्टककोटिपाटितकञ्चुककर्पटेन च फललोभावलम्बितानम्रबदरी-लताजालकैरुत्कण्टकैरुल्लिखितसुकुमारकरोदरेण च कुरङ्गशृङ्गोत्खातैः कन्द-

---

वस्थानमेकलोपे द्विलोपे वा । ताना मूर्च्छना वा । वर्णाः स्थायिसञ्चार्यारोह्यवरोहि-णश्चत्वारस्तदुपलक्षिताः । तन्त्र्यो वर्णतन्त्र्यः । एकतानमेकरूपम् , अनवरतं वा । दृष्टवानित्यादौ । अस्मि चैवंविधानामबलानां चक्रवालेन परिवृतां योषितं दृष्टवानिति संबन्धः । लोहितं रक्तम् । पार्ष्णिः पादाधोदेशः । 'स्थाणुरस्त्री ध्रुवः शङ्कुः ।' स्था-णोरिमे स्थाणवः । वातखुडो गतिप्रतिघातलक्षणो वातव्याधिः । पिच्छकं केश-कलापः । शतावरी शतमूली । विदारी क्षीरशुक्ली । सरला देवदारवः । शोकेन

स्त्रियों के रोने का शब्द सुना । जैसे कमलवन के तुषारपात के कारण नष्ट हो जाने से भ्रमरियाँ चीख पड़ी हों, अथवा जैसे अनेक वीणाओं को कोई जोर से झनझना रहा हो, रोने की वह आवाज अत्यन्त उद्विग्न करने वाली और अति करुण थी। मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न हुई और मैं उस स्थान पर पहुँचा । उस प्रदेश में जाकर क्या देखता हूँ कि अनेक स्त्रियों से घिरी हुई एक स्त्री दुःख में पड़ी हुई अत्यन्त करुणा से विलाप कर रही है। रोती हुई उन स्त्रियों के पैर की उँगलियाँ पत्थर से ठेस लग जाने के कारण फूट गई थीं और उनसे रुधिर बह रहा था । एड़ी में जंगली काँटों के गड़ जाने की अपार वेदना से उनकी आँखें सिकुड़ गई थीं। मार्ग में चलते-चलते उनके पैर सूज गये थे और उनमें चलने की शक्ति न थी । लकड़ी की खूँटों से टकरा जाने के कारण उनकी ठेहुनी में चोट आ गई थी और उन्होंने उसे भोजपत्र से बाँध रखा था । उनकी जाँघें भर आई थीं जिससे वे लँगड़ा रही थीं। इस कारण से उन्हें ज्वर भी हो आया था । उनके बाल धूल भर जाने से उजले हो गये थे । खजूर के नोकदार काँटों से कहीं-कहीं उनके पैर छिल गये थे । काँटेदार शतावरी के लग जाने से उनकी जाँघें फट गई थीं। बिदारी नामक लताओं में उलझ कर उनके वस्त्रों की धज्जियाँ उड़ गई थीं। उनके कञ्चुक भी बाँस की छरहरी शाखाओं में लगकर फट गए थे । जंगल में भूख लग जाने से फल खाने के लिये झुकाई हुई बेर की काँटेदार डालों से उनके हाथ में छिछोहे पड़ गए थे। हिरन की सींगों

मूलफलैः कदर्थितबाहुना ताम्बूलविरहविरसमुखखण्डितकोमलामलकीफलेन कुशाकुसुमाहतिलोहितानां श्वयथुमतामक्ष्णां लेपीकृतमनःशिलेन च कण्टकीलताळूनालकलेशेन केनचित्किसलयोपपादितातपत्रकृत्येन केनचित्कदलीदलव्यजनवाहिना केनचित्कमलिनीपलाशपुटगृहीताम्भसा केनचित्पाथेयीकृतमृणालपूलिकेन केनचिच्चीनांशुकदशाशिक्यनिहितनालिकेरकोशकलशीकलितसरलतैलेन, कतिपयावशेषशोकविकलकलमूककुब्जवामनबधिरबर्बराविरलेनाबलानां चक्रवालेन परिवृताम्, आपत्कालेऽपि कुलोद्गतेनेवामुच्यमानां प्रभालेपिना लावण्येन, प्रतिबिम्बितैरासन्नवनलताकिसलयैः सरसैर्दुःखक्षतैरिवान्तःपटलीक्रियमाणकायाम्, कठोरदर्भाङ्कुरक्षतक्षारिणा क्षतजेनानुसरणालक्तकेनेव रक्तचरणाम्, उष्णालेनान्यतरनारीधृतेनारविन्दिनीदलेन कृतच्छायमपि विच्छायं मुखमुद्वहन्तीम्, आका-

विकला विक्षिप्ताः। कलमूकाः षण्ढकाः। एवमादयोऽन्तःपुररक्षिणः। बर्बरा एतद्देशजाः। सरसैः प्रत्यग्रैः सान्द्रैश्च। क्षतानि व्रणाः। अरविन्दिनी पद्मिनी। छाया आतपप्रतिपक्षजातिः, छाया च कान्तिः। उक्तं च—'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रति-

से जंगली कन्दों को खोदते-खोदते उनके हाथों में छाले पड़ गए थे। पान के न मिलने के कारण उनके मुँह फीके पड़ गए थे और वे आँवले के कोमल फलों को चिचोर कर काम चलाती थीं। कुशों के लग जाने से उनकी आँखें लाल हो गई थीं और सूजकर उबल आई थीं। उन पर उन्होंने मैनसिल का लेप चढ़ाया था। कण्टकी नामक लताओं में उलझकर उनके बाल उलझ गए थे। कुछ ने घाम से बचने के लिए पत्रों को चुनकर छाता बना लिया था। कुछ पंखों के स्थान पर केले के पत्तों से झल रही थीं। कुछ पानी पीने के लिए कमलिनी के पत्तों को उपयोग में लाती थीं। कुछ ने खाने के लिए मृणाल की रोटियाँ बना ली थीं। अपने चीनांशुक को फाड़कर उन्होंने छींका बना लिये थे और उन पर नारियल के कुप्पों में बड़े यत्न से देवदार का तेल रख दिया था। राजमहल के कुछ बचे हुए शोकार्त गूँगे, कुबड़े, बौने, बहरे और भोंदे वहाँ उनके साथ रह गए थे। विपत्ति का पहाड़ उस पर टूट पड़ा था, फिर भी उसके मुँह में झलकने वाला लावण्य छोड़कर हटा नहीं,—जैसे अपना ही वंशज हो। दर्पण के समान झलकते हुए अङ्गों में पड़ती हुई पास के लता-किसलयों की परछाईं ऐसी लग रही थी, मानों उसके शरीर के भीतर के उत्पन्न घाव हों। कुशों के तीखे अग्रभाग के गड़ जाने से उसके पैर आलते के समान बहते हुए रुधिर से लाल हो गए थे। नाल पकड़े कमलिनी के दल उठाये कोई अन्य की

शमपि शून्यतयातिशयानाम्, मृण्मयीमिव निश्चेतनतया मरुन्मयीमिव निःश्वाससंपदा पावकमयीमिव संतापसंतानेन सलिलमयीमिवाश्रुप्रस्रवणेन वियन्मयीमिव निरवलम्बनतया तडिन्मयीमिव पारिप्लवतया शब्दमयीमिव परिदेवितवाणीबाहुल्येन मुक्तमुक्तांशुकरत्नकुसुमकनकपत्राभरणां कल्पलतामिव महावने पतिताम्, परमेश्वरोत्तमाङ्गपातदुर्ललिताङ्गां गङ्गामिव गां गताम्, वनकुसुमधूलिधूसरितपादपल्लवाम्, प्रभातचन्द्रमूर्तिमिव लोकान्तरमभिलषन्तीम्, निजजलमोक्षकदर्थितदर्शितधवलायतनेत्रशोभां मन्दाकिनीमृणालिनीमिव परिम्लायमानाम्, दुःसहरविकिरणसंस्पर्शखेदनिमीलितां कुमुदिनीमिव दुःखेन दिवसं नयन्तीम्, दग्धदशाविसंवादितां

बिम्बमनातपः' इति। शून्यतेन्द्रियरहितत्वमपि। संतापसंतानो दुःखपरम्परा, औष्ण्यप्रबन्धश्च। मुक्ताख्यमंशुकं मालवदेशजमुत्तरीयम्। मुक्ता मौक्तिकं च, अल्पा अंशवोऽशुकाश्च। महावनं विस्तीर्णारण्यम्, विपुलजलं च। परमेश्वरोत्तमाङ्गपातो राजशिरश्छेदो हरमूर्ध्नि पातश्च। इष्टानि ललितानीप्सितानि येषु तान्यङ्गानि यस्याः। दुर्ललितं च हेवाकः। गां गतामिति। वाहनाभावाद्भूमिमवतीर्णां च वनकुसुमानि जलजातत्वात्कुमुदानि च, पादा रश्मयोऽपि। लोकान्तरं परलोकम्, मेरुद्वितीयपार्श्वं च। जलमश्रु च, नेत्रम् अक्षिमूलं च। दग्धदशा दुरवस्थाः, प्लुष्ट-

---

उसके सिर पर छाया कर रही थी। तब भी उसका मुँह छायारहित (कान्तिहीन) लग रहा था। वह अपनी शून्यता में आकाश से भी बढ़ रही थी। वह निश्चेतनता से मानों मृण्मयी, साँस पर साँस लेने से वायुमयी, लगातार सन्ताप से पावकमयी, आँसू के प्रवाह से जलमयी, निराधार हो जाने से आकाशमयी, चञ्चलता से विद्युन्मयी और करुण स्वर से रोते रहने के कारण शब्दमयी हो रही थी। मोतियों को पोहकर बना हुआ उत्तरीय रत्न, पुष्प और कनकपत्र के गहनों को छोड़ कर वह कल्पलता की भाँति उस महावन में गिर कर पड़ी हुई थी। वह शिव के मस्तक से गिरकर अस्तव्यस्त हुई गङ्गा के समान पृथिवी पर आ गई थी। उसके पैर जंगली फूलों के पराग से धूसरित हो गये थे। वह प्रभातकालीन चन्द्रमूर्ति की भाँति इस लोक से दूर हो जाना चाहती थी। आँसू पोंछते-पोंछते उसकी दीर्घ आँखों की शोभा मन्द पड़ गई थी और वह मन्दाकिनी की मृणालिनी की भाँति मुरझाती जा रही थी। वह सूर्य की दुसह किरणों के स्पर्शजन्य खेद से मुकुलित होती हुई कुमुदिनी बड़े कष्ट से दिन बिता रही थी। जिसकी बत्ती जल चुकी, ऐसी प्रभातकालीन दीपशिखा के समान वह आश्रयहीन अत्यन्त क्षीण और फीकी पड़ी जा रही थी। वह उस हथिनी के समान थी जो अपने पार्श्ववर्ती

प्रत्यूषप्रदीपशिखामिव क्षामक्षामां पाण्डुवपुषम्, पार्श्ववर्तिवारणाभियोगरक्ष्यमाणां वनकरिणीमिव महाह्रदे निमग्नाम्, प्रविष्टां वनगहनं ध्यानं च, स्थितां तरुतले मरणे च पतितां धात्र्युत्सङ्गे महानर्थे च, दूरीकृतां भर्त्रा सुखेन च, विरेचितां श्रमणेनायुषा च, आकुलां केशकलापेन मरणोपायेन च, विवर्णितामध्वधूलिभिरङ्गवेदनाभिश्च, दग्धां चण्डातपेन वैधव्येन च, धृतमुखीं पाणिना मौनेन च, गृहीतां प्रियसखीजनेन मन्युना च, तथा च भ्रष्टैर्बन्धुभिर्विलासैश्च, मुक्तेन श्रवणयुगलेनात्मना च, परित्यक्तैर्भूषणैः सर्वारम्भैश्च, भग्नैर्वलयैर्मनोरथैश्च, चरणलग्नाभिः परिचारिकाभिर्दर्भाङ्कुरसूचीभिश्च, हृदयविनिहितेन चक्षुषा प्रियेण च, दीर्घैः शोकश्वसितैः केशैश्च, क्षीणेन वपुषा पुण्येन च, पादयोः पतन्तीभिर्वृद्धाभिरश्रुधाराभिश्च, स्वल्पावशेषेण परिजनेन जीवितेन च, अलसामुन्मेषे, दक्षामश्रुमोक्षे,

---

दीप्यमानश्च। प्रत्यूषः कल्यम्। वारणा निषेधः, हस्ती च वारणः। महाह्रदे निमग्नामनुसरणार्थं पुण्यजलाशयस्नाताम्, विस्तीर्णसरस्यवसन्नां च। 'स्थितां कृतनिश्चयां च। विगतो धवो यस्यास्तद्भावो वैधव्यम्। धवो भर्ता। बन्धुभिरित्यादावित्थंभूतलक्षणे तृतीया। मुक्तेन निरलंकारेण। अलसां दक्षां चेत्यादौ

हाथी के बलात्कार से त्राण पाने के लिए किसी महासरोवर में कूद पड़ी हो। वह घने जंगल और ध्यान दोनों में प्रवेश कर चुकी थी। तरुतल और मरण दोनों की ओर पहुँच चुकी थी। धाय की गोद और महान् अनर्थ दोनों में गिर पड़ी थी। पति और सुख दोनों ने उसे छोड़ दिया था। श्रमण और आयु दोनों ने उसका परित्याग कर दिया था। केशकलाप और मरण के उपाय दोनों से वह आकुल थी। मार्ग की धूल और अङ्गों की वेदना दोनों से उसका चेहरा फीका पड़ गया था। कड़ी धूप और वैधव्य दोनों ने उसे जला डाला था। हाथ और मौन दोनों ने उसके मुँह को थाम लिया था। उसकी प्रिय सखियों और शोक दोनों ने उसे पकड़ रखा था। उसके परिवार के बन्धु नहीं रहे और विलास भी समाप्त हो गया। उसके कान अलङ्कार से सूने हो गए थे और वह स्वयं अपने आपमें खोई-खोई थी। उसने गहने उतार दिये थे और सारे काम छोड़ बैठी थी। उसके हाथ का वलय और मनोरथ दोनों टूट गये थे। उसके चरणों में परिचारिकायें और कुशों की नुकीली सूइयाँ लिपटी हुई थीं। उसकी आँखें हृदय और प्रिय दोनों में लगी हुई थीं। उसकी साँस और अलकें दोनों लम्बी थीं। शरीर और पुण्य दोनों क्षीण हो गए थे। बूढ़ी स्त्रियाँ और आँसू की धारायें दोनों उसके पैरों पर पड़ रही थीं। उसके परिजन और प्राण दोनों ही अब बहुत कम बच रहे थे। आँख खोलकर ताकने में

संततां चिन्तासु, विच्छिन्नामाशासु, कृशां काये, स्थूलां श्वसिते, पूरितां दुःखेन, रिक्तां सत्त्वेन, अध्यासितामायासेन, शून्यां हृदयेन, निश्चलां निश्चयेन, चलितां धैर्यात्, अपि च वसतिं व्यसनानाम्, आधानमाधीनाम्, अवस्थानमनवस्थानाम्, आधारमधृतीनाम्, आवासमवसादानाम्, आस्पदमापदाम्, अभियोगमभाग्यानाम्, उद्वेगमुद्वेगानाम्, कारणं करुणायाः, पारं परायत्तताया योषितम्। चिन्तितवानस्मि च चित्रमीदृशीमप्याकृतिमुपतापाः स्पृशन्तीति। सा तु समीपगते मयि तदवस्थापि सबहुमानमानतमौलिः प्रणतवती। अहं तु प्रबलकरुणाप्रेर्यमाणस्तामालपितुकामः पुनः कृतवान्मनसि—कथमिव महानुभावामेनामामन्त्रये। 'वत्से' इत्यतिप्रणयः, 'मातः' इति चाटु, 'भगिनि' इत्यात्मसंभावना, 'देवि' इति परिजनालापः, 'राजपुत्रि' इत्यस्फुटम्, 'उपासिके' इति मनोरथः, 'स्वामिनि' इति भृत्यभावाभ्युपगमः, 'भद्रे' इतीतरस्त्रीसमुचितम्, 'आयुष्मति' इत्यवस्थायामप्रियम्, 'कल्याणिनि' इति दशायां विरुद्धम्, 'चन्द्र-

---

विरोधो बोद्धव्यः। अनवस्थानां दुःखरूपक्रियाणाम्। अभियोगमुद्योगम्। कथमिवेत्यादि समानः प्रश्न इत्यर्थः। महानुभावां मनस्विनीम्। अतिप्रणयो महती

अलसाती थी। आँसू ढलते जा रहे थे; चिन्ता उसे खाये जा रही थी। उसकी आशायें टूट गई थीं। बहुत दुबली थी, भारी सांस ले रही थी, दुःख से भरी थी, सत्त्व से हीन थी, थोड़े में वह थक जाती थी, हृदय से शून्य थी। उसका निश्चय अचल था, उसे धैर्य नहीं रह गया था। वह दुःखों की वसति, मानसिक व्यथाओं का आश्रय, दुर्दशा का स्थान, अधीरता का आधार, अवसादों का निवासस्थान, आपदाओं का आस्पद, दुर्भाग्य का आक्रमणस्थान, उद्वेगों की जन्मभूमि, करुणा का कारण, एवं पराधीनता की सीमा थी। देखकर मैं सोचने लगा—'आश्चर्य की बात है कि सन्ताप ऐसी आकृति को भी नहीं छोड़ते। मैं जब उसके समीप गया तो उस अवस्था में भी उसने आदर के साथ झुककर प्रणाम किया। मैं प्रबल करुणा से प्रेरित होता हुआ उससे बातचीत करने की इच्छा से फिर मन में सोचने लगा—मैं किस शब्द से इस महानुभावा को संबोधित करूँ! अगर 'वत्से' कहता हूँ तो अतिशय प्रणय हो जाता है। 'मातः' कहता हूँ तो चाटुकारिता व्यक्त होती है। 'बहन' कहता हूँ तो आत्मगौरव जग पड़ता है। 'देवि' कहता हूं तो परिजनों जैसी बात होती है। 'राजपुत्रि' कहता हूँ तो क्या यह स्पष्ट है कि यह राजपुत्री है? 'उपासिके' कहता हूँ तो अपने मन के अननुकूल बात होती है। 'स्वामिनि' कहता हूँ तो दास की भाँति अपने में लघुता आती है। 'भद्रे' कहता हूँ

मुखि' इत्यमुनिमतम्, 'बाले' इत्यगौरवोपेतम्, 'आर्ये' इति जरारोपणम्, 'पुण्यवति' इति फलविपरीतम्, 'भवति' इति सर्वसाधारणम्। अपि च 'कासि' इत्यनभिजातम्, 'किमर्थं रोदिषि' इति दुःखकारणस्मरणकारि, 'मा रोदीः' इति शोकहेतुमनपनीय न शोभते, 'समाश्वसिहि' इति किमाश्रित्य, 'स्वागतम्' इति यातयामम्, 'सुखमास्यते' इति मिथ्या। इत्येवं चिन्तयत्येव मयि तस्मात्स्त्रैणादुत्थायान्यतरा योषिदार्यरूपेव शोकविह्वला समुपसृत्य कतिपयपलितशारं शिरो नीत्वा महीतलमतुलहृदयसंतापसूचकैरश्रुबिन्दुभिश्चरणयुगलं दहन्ती ममातिकृपणैरक्षरैश्च हृदयमभिहितवती—'भगवन्! सर्वसत्त्वानुकम्पिनी प्रायः प्रव्रज्या। प्रतिपन्नदुःखक्षपणदीक्षादक्षाश्च भवन्ति सौगताः। करुणाकुलगृहं च भगवतः शाक्यमुनेः शासनम्। सकलजनोपकारसज्जा सज्जनता जैनी। परलोकसाधनं च धर्मो मुनीनाम्।

प्रीतिः। अनभिजातमनुचितम्। यातयामं जीर्णप्रायम्। शासनं शास्त्रम्। सज्जनता

तो साधारण स्त्री के लिए उचित संबोधन हो जाता है। 'आयुष्मति' कहता हूँ तो जिस अवस्था में यह पड़ी है उसके अनुसार प्रिय बात नहीं होती। 'कल्याणिनि' कहता हूँ तो यह संबोधन इसकी दशा के विरुद्ध हो जाता है। 'चन्द्रमुखी' कहता हूँ तो मुझ भिक्षु के लिए सम्मत नहीं। 'बाले' कहता हूँ तो इसके प्रति गौरवहीनता की बात होती है। 'आर्ये' कहता हूँ तो इसको वृद्धावस्था में आरोपित करना हो जाता है। 'पुण्यवति' कहता हूँ तो क्या पुण्य का यही फल होता है? 'भवति' कहता हूँ तो सबके लिए यह साधारण संबोधन है। और भी, 'तू कौन है' पूछना उचित नहीं लगता। 'क्यों रोती है' यह तो दुःख के कारणों की याद दिलाने वाला प्रश्न है। 'रो मत' यह प्रश्न तो शोक के कारण को बिना हटाए नहीं शोभा देता। 'धीरज धरो' यह किस बात पर कहा जाय? 'स्वागतम्' का तो जमाना लद गया। 'क्या सुखी हो?' यह तो सरासर झूठ हुआ। मैं ऐसा सोच ही रहा था कि उन स्त्रियों के बीच से शोक से व्याकुल एक कुलीन स्त्री मेरे निकट आ गई और अपना सिर जिसके कई बाल सफेद हो गये थे, पृथिवी पर रखकर हृदय के अतुल संताप को व्यक्त करने वाले आँसुओं से भरे चरणों को और अत्यन्त करुण अक्षरों से मेरा हृदय जलाती हुई बोली—'भगवन्, प्रव्रज्या सब जीवों पर दया करने वाली है। सौगत लोग आपत्ति में पड़े हुओं का दुःख दूर करने की दीक्षा लिये रहते हैं। भगवान् शाक्यमुनि का शासन करुणा का स्थान है। बौद्ध साधु सब लोगों के उपकार के लिए तत्पर रहते हैं। मुनियों द्वारा अभिहित धर्म उत्कृष्ट लोक में पहुँचने का साधन है। लोगों का कहना है कि दूसरों की प्राणरक्षा से बढ़कर संसार में कोई पुण्य

प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजातं जगति गीयते जनेन। अनुकम्पाभूमयः प्रकृत्यैव युवतयः किं पुनर्विपदभिभूताः। साधुजनश्च सिद्धक्षेत्रमार्तवचसाम्। यत इयं नः स्वामिनी मरणेन पितुरभावेन भर्तुः प्रवासेन च भ्रातुः भ्रंशेन च शेषस्य बान्धववर्गस्यातिमृदुहृदयतयानपत्यतया च निरवलम्बना, परिभवेन च नीचारातिकृतेन, प्रकृतिमनस्विनी अमुना च महाटवीपर्यटनक्लेशेन कदर्थितसौकुमार्या, दग्धदैवदत्तैरेवंविधैर्बहुभिरुपर्युपरि व्यसनैर्विक्लवीकृतहृदया, दारुणं दुःखमपारयन्ती सोढुं निवारयन्तमनाक्रान्तपूर्वं स्वप्नेऽप्यवगणय्य गुरुजनमनुनयन्तीरखण्डितप्रणया नर्मस्वपि समवधीर्य प्रियसखीर्विज्ञापयन्तमशरणमनाथमश्रुव्याकुलनयनमपरिभूतपूर्वं मनसापि परिभूय भृत्यवर्गमग्निं प्रविशति। परित्रायताम्। आर्योऽपि तावदसह्यशोकापनयनोपायोपदेशनिपुणां व्यापारयतु वाणीमस्याम्' इति चातिकृपणं व्याहरन्तीमहमुत्थाप्योद्विग्नतरः शनैरभिहितवान्—'आर्ये! यथा कथयसि तथा। अस्मद्गिरामगोचरोऽयमस्याः पुण्या-

---

साधुजनसमूहः। सिद्धक्षेत्रं सिद्धायतनम्। यत इत्यादौ। यत इयं नः स्वामिन्यग्निं

नहीं है। स्वभाव ही से युवतियाँ अनुकम्पा के पात्र हैं। और अगर विपत्तियों से वे अभिभूत हो गईं तो कहना ही क्या? साधु लोग तो दुखियों की वाणी के सिद्धायतन हैं। यह स्वभाव से ही मनस्विनी हमारी स्वामिनी पिता के मरण, स्वामी के विनाश, भाई के प्रवास और अन्य सब बन्धुओं के बिछुड़ जाने से और हृदय के अत्यन्त मृदु एवं पुत्र के न होने से अनाथ हुई नीच शत्रु द्वारा किए गए पराभव के कारण अग्नि में प्रवेश कर रही है। इस घोर जंगल में भटकने के क्लेश ने इसके सौकुमार्य को दूषित कर डाला है। जले दैव ने इस प्रकार बहुत से दुःख जो इस पर उड़ेल दिए हैं, उनसे यह व्याकुल हो उठी है। यह अब अपने दारुण दुख को सहने में असमर्थ हो रही है। जिन गुरुजनों की बात का स्वप्न में भी उल्लङ्घन इसने नहीं किया था, अग्निप्रवेश से निवारण करते हुए उन्हीं की बात नहीं सुन रही है। हँसी-मजाक के खेलों में भी जिनसे अपना प्रेमभाव बनाए रही, अनुनय करती हुई उन प्रिय सखियों की बात भी नहीं मान रही है। जिन परिचारकों को उसने कभी भी डाँट नहीं सुनाई, अशरण और अनाथ होकर आँसू से भरे प्रार्थना करते हुए उन्हें भी फटकार देती है। इसे बचाइए। आर्य भी इसके असह्य शोक को दूर करने के उपायों का उपदेश करते हुए इसे समझाइए।' इस प्रकार अत्यन्त दीन भाव से कहती हुई उस स्त्री से दुखी मैं उठकर धीरे से बोला—'आर्ये, जो तुम कहती हो

शयायाः शोकः। शक्यते चेन्मुहूर्तमात्रमपि त्रातुमुपरिष्टान्न व्यर्थेयमभ्यर्थना भविष्यति। मम हि गुरुरपर इव भगवान्सुगतः समीपगत एव। कथिते मयास्मिन्नुदन्ते नियतमागमिष्यति परमदयालुः। दुःखान्धकारपटलभिदुरैश्च सौगतैः सुभाषितैः स्वकीयैश्च दर्शितनिदर्शनैर्नानागमगुरुभिर्गिरां कौशलैः कुशलशीलामेनां प्रबोधपदवीमारोपयिष्यति' इति। तच्च श्रुत्वा 'त्वरतामार्यः' इत्यभिदधाना सा पुनरपि पादयोः पतितवती। सोऽहमुपगत्य त्वरमाणो व्यतिकरमिममधृतिकरमशरणकृपणबहुयुवतिमरणमतिकरुणमत्रभवते गुरवे निवेदितवान्' इति।

अथ भूभृद्भिक्षवं समवधार्य तद्भाषितमश्रुमिश्रितमश्रुतेऽपि स्वसुर्नाम्नि निम्नीकृतमना मन्युना सर्वाकारसंवादिन्या दशयैव दूरीकृतसंदेहो दग्ध इव सोदर्यावस्थाश्रवणेन श्रवणयोः श्रमणाचार्यमुवाच—'आर्य ! नियतं सैवेयमनार्यस्यास्य जनस्यातिकठिनहृदयस्यातिनृशंसस्य मन्दभाग्यस्य भगिनी भागधेयैरेतामवस्थां नीता निष्कारणवैरिभिर्वराकी विदीर्यमाणं मे

प्रविशति तदार्योऽपि तावदस्यां वाणीं व्यापारयत्विति संबन्धः। निदर्शनं दृष्टान्तः। निम्नं संकुचच्छक्ति।

सो ठीक है; किन्तु मेरे समझाने से इस पुण्य-आशय वाली का शोक कम न होगा। मुहूर्त भर भी तुम इसे रोक सको तो यह प्रार्थना व्यर्थ न होगी, क्योंकि दूसरे भगवान् बुद्ध के समान मेरे गुरु यहाँ से समीप ही रहते हैं। मैं इस वृत्तान्त को कहूँगा तो निश्चय ही परम दयालु वे आकर दुःखान्धकार के निवारण में समर्थ भगवान बुद्ध के अनेक सुभाषितों से और दृष्टान्तों से भरी अनेक आगमों से गौरवशालिनी अपनी वाणी से कुशलशीलवाली इसे प्रबोधित करेंगे।' यह सुनकर 'आर्य शीघ्रता करें' यह कहती हुई वह मेरे चरणों में गिर गई। सो मैंने शीघ्रता से आकर धीरज को तोड़ने वाले अनाथ, दीन, दुखिया अनेक युवतियों के मरने के इस अत्यन्त करुण समाचार को श्रीचरणों में सुना दिया।'

राजा भिक्षु की आँसू से मिली हुई बात सुनते ही राज्यश्री का नाम न कहे जाने पर भी शोक से आक्रान्त होकर सब प्रकार की बातों से मेल खाने वाली उस दशा से ही तुरन्त समझ गये और अपनी बहन की इस दशा के सुनने से जैसे जल गए। तब उन्होंने श्रमणाचार्य दिवाकरमित्र से कान में कहा—'आर्य ! फटा जाता हुआ मेरा हृदय यह निवेदन कर रहा है कि अनार्य अति कठिन हृदय वाले अतिक्रूर मन्दभाग्य इस जन की (मेरी) वही यह बेचारी अकारण शत्रु भाग्य की मारी बहिन राज्यश्री है जो इस अवस्था

हृदयमेवं निवेदयति' इत्युक्त्वा तमपि श्रमणमभ्यधात्—'आर्य! उत्तिष्ठ। दर्शय कासौ। यतस्व प्रभूतप्राणपरित्राणपुण्योपार्जनाय यामः, यदि कथंचिज्जीवन्तीं संभावयामः' इति भाषमाण एवोत्तस्थौ।

अथ समग्रशिष्यवर्गानुगतेनाचार्येण तुरगेभ्यश्चावतीर्य समस्तेन सामन्तलोकेन पश्चादाकृष्यमाणाश्वीयेनानुगम्यमानः पुरस्ताच्च तेन शाक्यपुत्रीयेण प्रदिश्यमानवर्त्मा पद्भ्यामेव तं प्रदेशमविरलैः पदैः पिबन्निव प्रावर्तत। क्रमेण च समीपमुपगतः शुश्राव लतावनान्तरितस्य मुमूर्षोर्महतः स्त्रैणस्य तत्कालोचितानेकप्रकारानालापान्—'भगवन्धर्म! धाव शीघ्रम्। क्वासि कुलदेवते। देवि धरणि, धीरयसि न दुःखितां दुहितरम्। क्व नु खलु प्रोषिता पुष्पभूतिकुटुम्बिनी लक्ष्मीः। अनाथां नाथ मुखरवंश्य, विविधाधिविधुरां वधूं विधवां विबोधयसि किमिति नेमाम्। भगवन्, भक्तजने संज्वरिणि सुगत सुप्तोऽसि। राजधर्म पुष्पभूतिभवनपक्षपातिन्, उदासीनीभूतोऽसि कथम्। त्वय्यपि विपद्बान्धव विन्ध्य, वन्ध्योऽय-

---

यतस्व यत्नं कुरु।

अश्वीयमश्वसमूहः। शाक्यपुत्रीयेण दिवाकरमित्रशिष्येण। अविरलैर्दीर्घैः। पदैश्चरणक्रमैः। मुमूर्षोर्मरणोन्मुखस्य। स्त्रैणस्य स्त्रीसमूहस्यालापाञ्शुश्रावेत्यन्वयः। संज्वरिणि संतापवति। राजधर्मो बुद्धः।

तक पहुँच गई है।' और उस दूसरे भिक्षु से भी कहा—'आर्य, उठो और बताओ वह कहाँ है? प्रयत्न करो, बहुत से प्राणों की रक्षा के पुण्योपार्जन के लिए चलें, जिससे किसी प्रकार जीवित अवस्था में ही उसे प्राप्त कर सकें।' यह कहते ही उठ खड़े हुए।

समस्त शिष्य वर्ग के साथ आचार्य दिवाकरमित्र हर्ष के आगे चले, और उनके पीछे समस्त सामन्त लोग घोड़ों से उतर कर पैदल उन्हें खींचते हुए चलने लगे। राजा के आगे-आगे मार्ग दिखलाता हुआ दिवाकरमित्र का शिष्य चल रहा था। इस प्रकार वे पैदल ही उस प्रदेश को अपनी आँखों से जैसे पीते हुए कदम बढ़ाते चल पड़े। कुछ देर में जब समीप पहुँच गये तो लतावन की ओट में मरने के लिए तैयार बहुत-सी स्त्रियों के उस अवसर के लिए उचित विलाप सुने—'हे भगवन् धर्म, शीघ्र दौड़ो। हे कुलदेवते, कहाँ हो? हे देवी पृथिवी, अपनी दुखिया पुत्री को क्यों नहीं धीरज देती हो! पुष्पभूति की गृहिणी लक्ष्मी कहाँ चली गई? हे मुखरवंश में उत्पन्न होने वाले राजन् (गृहवर्मा), नाना प्रकार की मानसिक व्यथाओं से पीड़ित अनाथ विधवा अपनी वधू को क्यों नहीं समझाते? हे भगवन् सुगत, क्या तुम भी इस दुःखिनी के लिए सो गए? हे पुष्पभूति के भवन में

मञ्जलिबन्धः। मातर्महाटवि, रटन्तीं न शृणोषीमामापत्पतिताम्। पतङ्ग, प्रसीद पाहि पतिव्रतामशरणाम्। प्रयत्नरक्षित कृतघ्न चारित्रचण्डाल, न रक्षसि राजपुत्रीम्। किमवधृतं लक्षणैः। हा देवि दुहितृस्नेहमयि यशोमति, मुषितासि दग्धदैवदस्युना। देव, दुहितरि दह्यमानायां नापतसि। प्रतापशील, शिथिलीभूतमपत्यप्रेम। महाराज राज्यवर्धन, न धावसि मन्दीभूता भगिनीप्रीतिः। अहो निष्ठुरः प्रेतभावः। व्यपेहि पाप पावक स्त्रीघातनिर्घृण, ज्वलन्न लज्जसे। भ्रातर्वात, दासी तवास्मि। संवादय द्रुतं देवीदाहं देवाय दुःखितजनार्तिहराय हर्षाय। नितान्तनिःशूक शोकश्वपाक, सकामोऽसि। दुःखदायिन्वियोगराक्षस, संतुष्टोऽसि। विजने वने कमाक्रन्दामि, कस्मै कथयामि, कमुपयामि शरणम्, कां दिशं प्रतिपद्ये, करोमि किमभागधेया। गान्धारिके, गृहीतोऽयं लतापाशः। पिशाचि मोचनिके, मुञ्च शाखाग्रहणकलहम्। कलहंसि हंसि, किमतःपरमुत्तमाङ्गम्। मङ्गलिके, मुक्तगलं किमद्यापि रुद्यते। सुन्दरि, दूरीभवति सखीसार्थः।

गान्धारिके मोचनिके कलहंसि इत्यादीनि सहगतसखीनां संबोधनानि।

रहने वाले राजधर्म, तुम क्यों उदासीन हो गए? हे विपत्ति के बान्धव विन्ध्य, क्या तुम्हारे प्रति यह अञ्जलि व्यर्थ जायगी? हे माता महाटवी, विपत्ति में पड़ी रट लगाती हुई इसका विलाप क्यों नहीं सुनती हो? हे सूर्यदेव, प्रसन्न होकर इस अशरण पतिव्रता की रक्षा करो। अरे प्रयत्नरक्षित, कृतघ्न, चारित्रचण्डाल, राजपुत्री की क्यों नहीं रक्षा करता? शुभ लक्षणों ने रहकर क्या किया? हा पुत्री के प्रति स्नेहमयी देवी यशोमती, आज लुटेरे दैव ने तुम्हें लूट लिया। देव प्रतापशील, पुत्री आग में जल रही है और तुम नहीं आते? महाराज राज्यवर्धन, आते नहीं, क्या बहिन के प्रति तुम्हारा प्रेम कम हो गया है? आश्चर्य है! मर जाने वाला निष्ठुर हो जाता है। अरे पापी, स्त्री को मार डालने में निर्घृण अग्नि, क्या जलते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? हे भाई वायु, मैं तेरी दासी हूँ, जल्दी जाकर देवी के जलने का यह संवाद दुखी जन के दुःख दूर करने वाले देव हर्ष को कह दे। अत्यन्त निर्दय चण्डाल शोक, तेरी मनोकामना पूरी हुई। दुःख देने वाले राक्षस वियोग, अब तू सन्तुष्ट है। इस निर्जन वन में किसे पुकारूँ? किस ओर जाऊँ और अभागिन मैं क्या करूँ? हे सखी गान्धारिका, फँसरी के लिए मैंने लता की वह डोर उठा ली। अरी पिशाचिन मोचनिका, झूल जाने के लिए डाल पकड़ लेने दे, झगड़ मत। अरी कलहंसी, क्यों सिर फोड़ रही है? मरना तो है ही। अरी मङ्गलिका, आज भी क्यों गला फाड़ कर रोती है? अरी सुन्दरी अब सखियाँ अलग

स्थास्यसि कथमिवाशिवे शवशिबिरे शबरिके। सुतनु, तनूनपाति पतिष्यसि त्वमपि। मृणालकोमले मालावति, म्लानासि। मातर्माङ्गलिके, अङ्गीकृतस्त्वयापि मृत्युः। वत्से वत्सिके, वत्स्यसि कथमनभिप्रेते प्रेतनगरे। नागरिके, गरिमाणमागतास्यनया स्वामिभक्त्या। विराजिके, विराजितासि राजपुत्रीविपदि जीवितव्ययव्यवसायेन। भृगुपतनाभ्युद्यमभागाभिज्ञे भृङ्गारधारिणि, धन्यासि। केतकि, कुतः पुनरीदृशी स्वप्नेऽपि सुस्वामिनी। मेनके, जन्मनि जन्मनि देवीदास्यमेव ददातु देवो देहं दहन्दहनः। विजये, वीजय कृशानुम्। सानुमति, नमतीन्दीवरिका दिवं गन्तुकामा। कामदासि, देहि दहनप्रदक्षिणावकाशम्। विचारिके, विरचय वह्निम्। विकिर किरातिके, कुसुमप्रकरम्। कुररिके, कुरु कुरुबककोरकाचितां चिताम्। चामरं चामरग्राहिणि, गृहाण। पुनरपि कण्ठे मर्षयितव्यानि नर्मदे, नर्मनिर्मितानि निर्मर्यादहसितानि। भद्रे सुभद्रे, भद्रमस्तु ते परलोकगमनम्। अग्रामीणगुणानुरागिणि ग्रामेयिके, गच्छ सुगतिम्।

तनूनपाति वह्नौ। वत्स्यस्यासिष्यसि। भृगुः प्रपातः। उक्तं च—'प्रपातस्त्वतटो भृगुः' इत्यमरः। निर्माणं विधानम्। अर्थात्संसारस्य।

हो रही हैं। अरी शबरिका, मुर्दों की इस अमङ्गल छावनी में कैसे तू ठहरेगी? अरी सुन्दर अङ्गों वाली तू भी आग में गिरेगी। अरी मृणाल की भाँति कोमल मालावती, तू मुरझा गई है। हे माता माङ्गलिका, तूने भी मृत्यु को स्वीकार कर लिया? अरी वत्से वत्सिका, अनभिप्रेत प्रेतनगर में तू कैसे रहेगी? अरी नागरिके, स्वामी के प्रति इस भक्ति से तुझमें गौरव आ गया है। अरी विराजिका, राजपुत्री की विपत्ति में अपने प्राण त्यागने के इस प्रयत्न से तू सुशोभित है। अरी भृङ्गार (विशेष प्रकार का जलपात्र) धारण करने वाली, पहाड़ की चोटी से गिरने के इस उद्योग से तू धन्य है। अरी केतकी, स्वप्न में भी ऐसी कामिनी कहाँ मिलेगी? अरी मेनका, अग्निदेव शरीर को जलाकर जन्म-जन्म में देवी की ही दासी बनने का सौभाग्य दे। अरी विजया, आग लगा दे। अरी सानुमती, स्वर्ग जाने के लिए तैयार इन्दीवरिका तुझे प्रणाम कर रही है। अरी कामदासी, अग्नि की परिक्रमा करने दे। अरी विचारिका, आग लगाने की तैयारी कर। अरी किरातिका, फूल बिखेर। अरी कुररिका, कुरबक की कोढ़ियों से चिता को सजा। अरी चामरग्राहिणी, चँवर उठा। अरी नर्मदा, परिहास की हँसियों को भूल जाना। भद्रे सुभद्रा, तेरा परलोकगमन मंगलमय हो। अरी ग्रामीण गुणों में अनुराग करने वाली ग्रामेयिका, तेरी सद्गति हो। अरी वसन्तिका, फुर्सत दे। हे देवी, छत्रधारी

वसन्तिके, अन्तरं प्रयच्छ। आपृच्छते छत्रधारी देवि, देहि दृष्टिम्। इष्टा तव जहाति जीवितं विजयसेना। सेयं मुक्तिका मुक्तकण्ठमारटति निकटे नाटकसूत्रधारी। पादयोः पतति ते ताम्बूलवाहिनी बहुमता राजपुत्रि, पत्रलता, कलिङ्गसेने, अयं पश्चिमः परिष्वङ्गः। पीडय निर्भरमुरसा माम्। असवः प्रवसन्ति वसन्तसेने। मञ्जुलिके, मार्जयसि कतिकृत्वः सुदुःसह-दुःखसहस्रास्रदिग्धं चक्षुरिदं रोदिषि कियदाश्लिष्य च माम्। निर्माणमी-दृशं प्रायशो यशोधने। धीरयस्यद्यापि किं मां माधविके। क्वेयमवस्था संस्थापनानाम्। गतः कालः कालिन्दि, सखीजनानुनयाञ्जलीनाम्। उन्म-त्तिके मत्तपालिके, कृताः पृष्ठतः प्रणयिनीप्रणिपातानुरोधाः। शिथिलय चकोरवति, चरणग्रहणं ग्रहिणि। कमलिनि, किमनेन पुनःपुनर्दैवोपालम्भेन। न प्राप्तं चिरं सखीजनसंगमसुखम्। आर्ये महत्तरिके तरङ्गसेने, नम-स्कारः। सखि सौदामिनि, दृष्टासि। समुपनय हव्यवाहनार्चनकुसुमानि कुमुदिके। देहि चितारोहणाय रोहिणि, हस्तावलम्बनम्। अम्ब, धात्रि, धीरा भव। भवन्त्येवंविधा एव कर्मणां विपाकाः पापकारिणीनाम्। आर्य-

---

संस्थापनानां सांत्वनानाम्। ग्रहोऽभिनिवेशः।

विदा ले रही है, दृष्टि डालिए। आपकी प्रिय सखी विजयसेना प्राण त्याग कर रही है। नाटक की सूत्रधारी यह मुक्तिका आपके निकट गला फाड़कर चिल्ला रही है। हे राजपुत्री, आपकी अच्छी ताम्बूलवाहिनी पत्रलता चरणों पर गिर रही है। अरी कलिङ्गसेना, यह अन्तिम आलिङ्गन है। कसकर मुझे छाती से दबा। अरी वसन्तसेने, अब प्राण जा रहे हैं। अरी मंजुलिका, दुःसह दुःखों के उत्पन्न आँसू से नेत्र को कितनी बार साफ करेगी और कितनी बार मुझे अँकवार कर रोयेगी? अरी यशोधना, विधि का यही विधान है। अरी माधविका, आज भी क्यों मुझे धीरज बँधाती है? सान्त्वना देने की अवस्था अब कहाँ? अरी कालिन्दी, सखियों के अनुनय की अञ्जलि का अवसर चला गया। अरी पागल मत्तपालिका, प्रिय सखियों के प्रणिपात के अनुरोध पीछे कर दिए गए। अरी ढीठ चकोरवती, मेरे पैर छोड़। अरी कमलिनी, बार-बार दैव को कोसने से क्या काम? सखियों का संगमसुख देर तक प्राप्त नहीं हो सका। आर्या, महत्तरिका, तरंगसेना, यह मेरा नमस्कार है। सखी सौदामिनी, तुझे देख लिया। अरी कुमुदिका, अग्निदेव की पूजा के फूल ला। अरी रोहिणी, चिता पर चढ़ने के लिए हाथ का सहारा दे। अम्ब धात्री, धीरज धरो। पापिनियों के कर्मों के विपाक ऐसे ही होते हैं। आर्यचरणों के लिए

चरणानामयमञ्जलिः। परः परलोकप्रयाणप्रणामोऽयं मातः। मरणसमये कस्माल्लवलिके, हलहलको बलीयानानन्दमयो हृदयस्य मे। हृष्यन्त्युच्च-रोमाञ्चमुञ्चि किमङ्गीकृत्याङ्गानि। वामनिके, वामेन मे स्फुरितमक्ष्णा। वृथा विरससि वयस्य वायस, वृत्ते क्षीरिणि क्षणे क्षणे क्षीणपुण्यायाः पुरः। हरिणि, हेषितमिव हयानामुत्तरतः। कस्येदमातपत्रमुच्चमत्र पादपान्तरेण प्रभावति, विभाव्यते। कुरङ्गिके, केन सुगृहीतनाम्नो नाम गृहीतममृत-मयमार्यस्य। देवि, दिष्ट्या वर्धसे देवस्य हर्षस्यागमनमहोत्सवेन।' इत्येतच्च श्रुत्वा सत्वरमुपससर्प। ददर्श च मुह्यन्तीमग्निप्रवेशायोद्यतां राजा राज्यश्रियम्। आललम्बे च मूर्च्छामीलितलोचनाया ललाटं हस्तेन तस्याः ससंभ्रमम्।

अथ तेन भ्रातुः प्रेयसः प्रकोष्ठबद्धानामोषधीनां रसविरसमिव प्रत्यु-ज्जीवनक्षमं क्षरता वमतेव पारिहार्यमणीनामचिन्त्यं प्रभावममृतमिव नख-चन्द्ररश्मिभिरुद्गिरता बध्नतेव चन्द्रोदयच्युतशिशिरशीकरं चन्द्रकान्तचूडा-मणिं मूर्धनि मृणालमयाङ्गुलिनेवातिशीतलेन निर्वापयता दह्यमानं हृदयं

हलहलक उत्कण्ठा। एवमादिना निमित्तेन हर्षागमनं सूच्यते।

अथेत्यादौ—भ्रातुर्हस्तसंस्पर्शेन राज्यश्रीः सहसैव समुन्मिमीलेति संबन्धः।

यह अञ्जलि है। हे माता, परलोक जाने का यह अन्तिम प्रणाम है। अरी लवलिका, मरने के समय मेरे हृदय में यह आनन्द से भरी उत्कण्ठा क्यों उत्पन्न हो रही है? क्या सोचकर मेरे रोमांचित अंग प्रसन्न हो रहे हैं? अरी वामनिका, मेरी बाईं आँख फरक रही है। मित्र वायस, क्षीणपुण्य मेरे सामने दुधारे वृक्ष पर बैठ कर व्यर्थ काँव-काँव मचा रहे हो। अरी हरिणी, उत्तर की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट सी सुन पड़ रही है। अरी प्रभावती, किसका यह ऊँचा छत्र वृक्षों की ओट में झलक रहा है? अरी कुरङ्गिका, सुगृहीतनाम आर्य का किसने अमृतमय नाम लिया? हे देवी, देव हर्ष के इस आगमन-महोत्सव से तुम्हारी भाग्यवृद्धि हो।' यह सुनकर हर्ष पास पहुँच गए और मूर्च्छित-सी अग्निप्रवेश के लिए तैयार राज्यश्री को देखा। झट दौड़कर मूर्च्छा से बन्द आँखों वाली उस राज्यश्री के ललाट को हाथ से ओढ़ लिया।

इस अवस्था में बड़े भाई के आह्लादित करने वाले हाथ के स्पर्श से राज्यश्री की आँखें सहसा खुल गयीं। हर्ष के हाथ का वह स्पर्श ऐसा लगा मानों पुनः जीवित कर देने में समर्थ प्रकोष्ठ में बँधी हुई औषधियों का रस उड़ेल रहा हो। या मानों नख की ज्योत्स्नाओं के रूप में वलय की मणियों का अमृत के समान अचिन्त्य प्रभाव उगल रहा हो।

प्रत्यानयतेव कुतोऽपि जीवितमाह्लादकेन हस्तसंस्पर्शेन सहसैव समुन्मिमील राज्यश्रीः। तथा चासंभाविताागमनस्याचिन्तितदर्शनस्य सहसा प्राप्तस्य भ्रातुः स्वप्नदृष्टदर्शनस्येव कण्ठे समाश्लिष्य तत्कालाविर्भावनिर्भरेणाभिभूतसर्वात्मना दुःखसंभारेण निर्दयं नदीमुखप्रणालाभ्यामिव मुक्ताभ्यां स्थूलप्रवाहमुत्सृजन्ती बाष्पवारि विलोचनाभ्याम् 'हा तात, हा अम्ब, हा सख्यः' इति व्याहरन्ती, मुहुर्मुहुरुच्चैस्तरां च समुद्भूतभगिनीस्नेहसद्भावभारभावितमन्युना मुक्तकण्ठमतिचिरं विक्रुश्य 'वत्से, स्थिरा भव त्वम्' इति भ्रात्रा करस्थगितमुखी समाश्वास्यमानापि, 'कल्याणिनि, कुरु वचनमग्रजस्य गुरोः' इत्याचार्येण याच्यमानापि, 'देवि, न पश्यसि देवस्यावस्थाम्। अलमतिरुदितेन' इति राजलोकेनाभ्यर्थमानापि, 'स्वामिनि, भ्रातरमवेक्षस्व' इति परिजनेन विज्ञाप्यमानापि, 'दुहितर्, विश्रम्य पुनरारटितव्यम्' इति निवार्यमाणापि बान्धववृद्धाभिः, 'प्रियसखि, कियद्रोदिषि, तूष्णीमास्स्व। दृढं दूयते देव' इति सखीभिरनुनीयमानापि, चिरं संभावितानेकदुःसहदुःखनिवहनिर्वहणबाष्पोत्पीडपीड्यमानकण्ठभागा, प्रभूत-

---

पारिहार्यं कटकम्। तथा चेत्यादौ साकरोदिति संबन्धः। दुःखनिवहस्य निर्वहणं

या मानों उदित होते हुए चन्द्र की ठंडी किरणें जिसमें पड़ गई हों ऐसी चन्द्रकान्त की चूड़ामणि को मस्तक में बाँध रहा हो। या प्राणों को कहीं से लौटा रहा हो। भाई हर्ष के आगमन की पहले से कोई सम्भावना न थी और उनके दर्शन की बात सोची भी न थी कि वे आ गए, मानों स्वप्न में दिखाई पड़ रहे हों। राज्यश्री उनके कण्ठ में जोर से लिपटकर तत्काल प्रकट हुए सबको अभिभूत कर देनेवाले अपने दुःखभार से नदी को जल निकलने वाली नाली की तरह आँसू के स्थूल प्रवाह को अपने नेत्रों से बहाती हुई विलाप करने लगी—'हा पिता, हा माता, हा सखियाँ!' बार-बार बहिन के स्नेह से शोक उत्पन्न हो जाने के कारण हर्ष भी देर तक मुक्तकंठ से रोते रहे और कहा—'अब धीरज धरो, अपने को सम्हालो।' इस प्रकार भाई ने हाथ से मुँह ढँकी हुई उसे सान्त्वना दी। आचार्य ने याचना की—'कल्याणिनी, बड़े भाई की बात मानो।' राजाओं ने अभ्यर्थना की—'देवी, देव की अवस्था को नहीं देख रही हो? अत्यन्त रोना व्यर्थ है।' परिजनों ने निवेदन किया—'स्वामिनी, भाई को देखो।' सगी बूढ़ाओं ने मना करते हुए कहा—'पुत्री, विश्राम करके फिर रो लेना।' सखियों ने अनुनय किया—'कितना रोओगी, चुप हो जाओ, देव को कष्ट हो रहा है।' फिर भी बहुत दिनों के अनुभूत दुःसह दुःख के कारण

मन्युभारभरितान्तःकरणा करुणं काहलेन स्वरेण कतिचित्कालमतिदीर्घं रुरोद। विगते च मन्युवेगे वह्नेः समीपादाक्षिप्य भ्रात्रा नीता निकटवर्तिनि तरुतले निषसाद।

शनैराचार्यस्तु तथा हर्ष इति विज्ञाय विवर्धितादरः सुतरां मुहूर्तमिवातिवाह्य निभृतसंज्ञाज्ञापितेन शिष्येणोपनीतं नलिनीदलैः स्वयमेवादाय नम्रो मुखप्रक्षालनायोदकमुपनिन्ये। नरेन्द्रोऽपि सादरं गृहीत्वा प्रथममनवरतरोदनाताम्रं चिरप्रवृत्ताश्रुजलजालं रक्तपङ्कजमिव स्वसुश्चक्षुरक्षालयत्पश्चादात्मनः। प्रक्षालितमुखशशिनि च महीपाले सर्वतो निःशब्दः संबभूव सकलो लिखित इव लोकः। ततो नरेन्द्रो मन्दमन्दमब्रवीत्स्वसारम्—'वत्से! वन्दस्वात्रभवन्तं भदन्तम्। एष ते भर्तुर्हृदयं द्वितीयमस्माकं च गुरुः' इति। राजवचनात्तु राजदुहितरि पतिपरिचयश्रवणोद्घातेन पुनरानीतनेत्राम्भसि नमन्त्यामाचार्यः प्रयत्नरक्षितागमागतबाष्पाम्भःसंभारभज्यमानधैर्यार्द्रलोचनः किंचित्परावृत्तनयनो दीर्घं निःशश्वास। स्थित्वा च क्षणमेकं प्रदर्शितप्रश्रयो मृदुवादी मधुरया वाचा व्याजहार—'कल्या-

---

प्रकटनं यस्माद्बाष्पोत्पीडादिति समासः। काहलेन महता।

उद्घातः प्रस्तावः। यतोऽयं राजलोकश्चिरं रुदित्वा नाद्यापि रोदनान्निवर्तते तत्स्नानविधिः क्रियतामिति।

बाष्प से रुँधे हुए गले वाली और अत्यन्त शोकभार से भरे अन्तःकरण वाली राज्यश्री कुछ देर तक जोर-जोर से रोती रही। शोक का वेग जब कम हुआ तो हर्ष उसे अग्नि के पास से दूर हटा कर निकटवर्ती वृक्ष के नीचे ले गए।

आचार्य दिवाकरमित्र ने हर्ष को उस प्रकार जान, क्षण भर ठहर, धीरे से अपने शिष्य को इशारा से आज्ञा दी, और उसके द्वारा लाए गए जल को कमलिनीपत्र के खदोने में लेकर स्वयं आदर और नम्रता के साथ राजा को अर्पित किया। राजा ने भी आदर के साथ उसे लेकर पहले निरन्तर रोने से लाल, देर तक आँसू बहने से रक्तकमल के समान राज्यश्री के नेत्र धोए और फिर अपने। राजा के मुँह धो लेने पर सब लोग चित्रलिखित की भाँति निःशब्द हो गए। तब राजा ने धीरे धीरे राज्यश्री से कहा—'वत्से, भदन्त को प्रणाम करो। वे तुम्हारे पति के दूसरे हृदय और हमारे गुरु हैं।' हर्ष के वचन से राजपुत्री के नेत्र पति का परिचय सुनने के प्रस्ताव से फिर छलछला उठे और उसने प्रणाम किया। तब आचार्य ने भी निकलते हुए आँसुओं को प्रयत्न से रोक कर धैर्य टूटने से फिर भी आर्द्र होते हुए नेत्र को कुछ मोड़ कर जोर से सांस लिया। मृदुवादी वे

तान्कथमपि रसातलनिवासी वासुकिर्नाम विषमुषामीशः। स च तैर्मुक्ताफलैः पातालतलेऽपि तारागणमिव दर्शयद्भिरेकावलीमकल्पयत्। चकार च मन्दाकिनीति नाम तस्याः। सा च भगवतः सोमस्य सर्वासामोषधीनामधिपतेः प्रभावादत्यन्तविषघ्नी हिमामृतसंभवत्वाच्च स्पर्शेन सर्वसत्त्वसंतापहारिणी बभूव। यतः स तां सर्वदा विषोष्मशान्तये वासुकिः पर्यधत्त।

समतिक्रामति च कियत्यपि काले कदाचिन्नामैकावलीं तस्मान्नागराजान्नागार्जुनो नाम नागैरेवानीतः पातालतलं भिक्षुरभिक्षत लेभे च। निर्गत्य च रसातलात्त्रिसमुद्राधिपतये सातवाहननाम्ने नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम्। सा चास्माकं कालेन शिष्यपरम्परया कथमपि हस्तमुपगता। यद्यपि च परिभव इव भवति भवादृशां दत्त्रिम उपचारस्तथाप्योषधिबुद्ध्या बुद्धिमता सर्वसत्त्वराशिरक्षाप्रवृत्तेन रक्षणीयशरीरेणायुष्मता विषरक्षापेक्षया गृह्यताम्' इत्यभिधाय भिक्षोरभ्याशवर्तिनश्चीवरपटान्तसंयतां मुमोच तामेकावलीं मन्दाकिनीम्।

उन्मुच्यमानाया एव यस्याः प्रभालेपिनि लब्धावकाशे विशदमहसि

दानेन निर्वृत्तो दत्त्रिमः। अभ्याशो निकटः।

रहने वाले नागराज वासुकि के हाथ लगे। उसने उन मुक्तफलों को गूँथ कर एकलड़ी माला बनाई, जिसका नाम मन्दाकिनी रखा। वह एकलड़ी माला समस्त औषधियों के अधिपति भगवान् चन्द्रमा के प्रभाव से अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण समस्त प्राणियों की सन्तापहारिणी है। इसलिये विषज्वालाओं को शान्त रखने के लिए वासुकि सदा उसे पहने रहता है।

कुछ समय के बाद कभी नागों से ही पाताल में लाये गये नागार्जुन नाम के किसी भिक्षु ने वासुकि से उस मालाको माँगकर प्राप्त कर लिया। पाताल से निकल कर नागार्जुन ने तीन समुद्रों के अधिपति अपने मित्र सातवाहन नाम के राजा को वह एकावली माला प्रदान की और वही माला किसी प्रकार शिष्यपरम्परा द्वारा हमारे हाथ आई। यद्यपि आपको किसी वस्तु का देना अपमान है तथापि औषधि समझकर विष से अपनी रक्षा के लिए आप कृपया इसे स्वीकार करें।' यह कहकर उन्होंने शिष्य के चीवर वस्त्रों में लेकर वह मन्दाकिनी राजा को दी।

निकालते ही उस माला की उज्ज्वल किरणें अवकाश पाकर फैल गयीं। उसके प्रकाश

महीयसि विसर्पति रश्मिमण्डले युगपद्धवलायमानेषु दिङ्मुखेषु मुकुलितलतावधूत्कण्ठितैरामूलाद्विकसितमिव तरुभिः, अभिनवमृणाललुब्धैर्धावितमिव धुतपक्षपुटपटलधवलितगगनं वनसरसीहंसयूथैः, स्फुटितमिव भरवशविशीर्यमाणधूलिधवलैर्गर्भभेदसूचितसूचीसंचयशुचिभिः केतकीवाटैः, उद्दलितदलदन्तुराभिः प्रबुद्धमिव कुमुदिनीभिः, विधुतसितसटाभारभरितदिक्चक्रैश्चलितमिव केसरिकुलैः, प्रहसितमिव सितदशनांशुमालालोकलिप्यमानवनं वनदेवताभिः, विकसितमिव शिथिलितकुसुमकोशकेसराट्टहासनिरङ्कुशं काशकाननैः, भ्रान्तमिव संभ्रमभ्रमितबालपल्लवपरिवेषश्वेतायमानैश्चमरीकदम्बकैः, प्रसृतमिव स्फायमानफेनिलतरलतरतरङ्गोद्गारिणा गिरिनदीपूरेण, अपरतारागणलोभमुदितेनोदितमिव विकचमरीचिचक्राक्रान्तककुभा पूर्णचन्द्रेण, प्रक्षालित इव दावानलधूलिधूसरितदिगन्तो दिवसः, पुनरिव धौतान्यश्रुजलक्लिष्टानि नारीणां मुखानि।

राजा तु मांसलैस्तस्याः संमुखैर्मयूखैराकुलीक्रियमाणं मुहुर्मुहुर-

---

महत्सरः सरसी। केतक्यो वृक्षभेदाः। काशास्तृणभेदाः। परिवेषः परिवलनम्। स्फायमाना वर्धमानाः।

से दिशायें धवलित हो गईं। खिलती हुई लतावधुओं के लिए उत्कण्ठित होकर वृक्ष मानों नीचे तक विकसित हो गए। नये मृणालों के लोभी वनसरसियों के हंस झुण्ड के झुण्ड अपने पंखों से आकाश को सफेद करते हुए मानों दौड़ पड़े। केतकी के समूह, भार के कारण जिनके पराग झड़ रहे थे और जिनके गर्भ से सफेद सूचियाँ निकल रही थीं, मानों फूट पड़े। खिले हुए दलों वाली कुमुदिनियाँ मानों जग पड़ीं। अनेक सिंह अपनी गर्दन के उज्ज्वल सटाभार को दिशाओं में झलते हुए मानों चल पड़े। वनदेवतायें अपने उज्ज्वल दाँतों की किरणों से वन को उद्भासित करती हुई मानों हँस पड़ीं। काश के वन फूल-गुच्छों से अट्टहास के रूप में निकलते हुए परागों द्वारा मानों खिल उठे। चमरी गायें अपने हिलते हुए बालव्यजनों से वन को श्वेत करती हुई मानों घूम पड़ीं। बढ़ती हुई फेनिल और चंचल तरंगों के रूप में पहाड़ी नदी का प्रवाह मानों फैल गया। दूसरे तारों के लोभ से प्रसन्न पूर्णचन्द्र मानों किरणों से दिशाओं को आक्रान्त करता हुआ उदित हो गया। दावानल की धूल से मटमैला बना दिन मानों धुल गया। आँसू के जल से कलुषित स्त्रियों के मुख मानों फिर से धुल गए।

राजा की आँखें उसकी सामने पड़ती हुई किरणों से चौंधिया गयीं और बन्द होने

न्मीलयन्निमीलयंश्च चक्षुः कथमपि प्रयत्नेन ददर्श सर्वाशापूरणीं पङ्क्तीकृतामिव दिङ्नागकरशीकरसंहतिम्, घनमुक्तां शारदीमिव लेखीकृतां ज्योत्स्नाम्, प्रकटपदकचिह्नां संचारवीथीमिव बालेन्दोर्निश्चलीभूतां सप्तर्षिमालामिव हस्तमुक्ताम्, अभिभूतसकलभुवनभूषणभूतिप्रभावामिवैशानीं शशिकलाम्, धवलतागुणपरिगृहीतां कान्तिमिव निर्गतां क्षीरराशेः, अनेकमहामहीभृत्परम्परागतां गङ्गामिव दुर्गतिहराम्, अनवरतस्फुरिततरलांशुकां पुरःसरपताकामिव महेश्वरभावागमस्य, घनसारशुभ्रां दन्तपङ्क्तिमिवाभिमुखस्येश्वरस्य, वरमनोरथपूरणसमर्थां स्वयंवरस्रजमिव भुवनश्रियः, निजकरपल्लवावरणदुर्लक्ष्यां चक्षूरागविहसतिकामिव वसुधायाः,

---

आशा आस्थाः, दिशश्च। घनमुक्तां निरन्तरमौक्तिकाम्, मेघत्यक्तां च। पदकं मध्यमणिः। पदमेव च पदकम्। हस्तमुक्ताम्। परिवर्तुलत्वाद्धस्ते यः स्थितिं न बध्नाति। हस्तो हस्तसंज्ञा वा, नक्षत्रं च हस्तः। सकलभुवनभूषणं कौस्तुभादिः, हरश्च। भूतिः समृद्धिः, भस्म च। गुणो धर्मः, तन्तुश्च। महीभृतो राजानः, पर्वताश्च। दुर्गतिर्दारिद्र्यम्, नरकादिगतिश्च। तरलो हारमध्यगतो मणिः, चञ्चलश्च। अंशुका रश्मयः, उत्तरीयं चांशुकम्। घनसारवच्छुभ्रां कर्पूरवच्छुभ्राम्, निरन्तरदृढधवलां च। अभिमुखस्य प्रतिमुखमागच्छतः, दन्तपङ्क्तिश्च मुखस्याभितो भवति। वरः श्रेष्ठः, जामाता च। निजाः कराः सहजा रश्मयः, स्वकश्च हस्तो

और खुलने लगीं। किसी प्रकार बड़े प्रयत्न से उसे देखा। सब दिशाओं को भर देने वाली पंक्ति के रूप में एकत्रित की हुई वह मानों दिग्गजों की सूँड़ से निकली हुई शीकरसंहति हो, घने मोतियों को गूँथकर बनाई हुई वह मानों शरत्कालीन ज्योत्स्ना की मेघमुक्त लेखा हो। वह मानों बालचन्द्रमा के संचरण करने की विथि हो, या हाथ से गिरकर (या हस्त नक्षत्र से मुक्त होकर) स्थिर हुई सप्तर्षिमाला हो, या समस्त भुवन के भूषणों के ऐश्वर्य को अपने प्रभाव से अभिभूत कर देने वाली वह मानों शिव के ललाट की चन्द्रकला हो, या धवलता गुण को लेकर हुई क्षीरसमुद्र की वह मानों कान्ति हो। दुर्गति (दुर्दशा या दरिद्रता) को दूर करने वाली गङ्गा के समान वह अनेक महीभृतों (राजाओं या पर्वतों) की कुलपरम्परा से आयी हुयी थी। साम्राज्यलाभ के आगे-आगे चलने वाली निरन्तर फहराती हुई मानों पताका थी। सामने आते हुए शिव की कपूर की भाँति श्वेत मानों दन्तपंक्ति हो, भुवनलक्ष्मी की वर (श्रेष्ठ पुरुष या विवाह करने वाले) के मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ मानों स्वयंवर की माला हो। अपनी ही किरणों के आवरण से वह

मन्त्रकोशसाधनप्रवृत्तस्याक्षमालामिव राजधर्मस्य, समुद्रालंकारभूतां संख्यालेख्यपट्टिकामिव कुबेरकोशस्य। पश्यंश्चैतां विस्मयमाजगाम मनसा सुचिरम्। आचार्यस्तु तामुद्धृत्य बबन्ध बन्धुरे स्कन्धभागे भूपतेः। अथ नरपतिरपि प्रतिप्रीतिमुपदर्शयन्प्रत्यवादीत्—'आर्य! रत्नानामीदृशानामनर्हाः प्रायेण पुरुषाः। तपःसिद्धिरियमार्यस्य देवताप्रसादो वा। के च वयमिदानीमात्मनोऽपि किमुत ग्रहणस्य प्रत्याख्यानस्य वा। दर्शनात्प्रभृति प्रभूतगुरुगुणगणहृतेन हृदयेन परवन्तो वयम्। संकल्पितमिदमामरणादार्योपयोगाय शरीरम्। अत्र कामचारो वः कर्तव्यानाम्' इति।

समतिक्रान्ते च कियत्यपि काले गते चैकावलीवर्णनालापे लोकस्यानन्तरं लब्धविश्रम्भा राज्यश्रीस्ताम्बूलवाहिनीं पत्रलतामाहूयोपांशु किमपि कर्णमूले शनैरादिदेश। दर्शितविनया च पत्रलता पार्थिवं व्यज्ञापयत्—'देव! देवी विज्ञापयति न स्मराम्यार्यस्य पुरः कदाचिदुच्चैर्वचनमपि।

निजकरः। चक्षूरागः प्रीतिस्तया विहसतिका नर्महासः। मन्त्रः कर्तव्यावधारणम्। कोशो गञ्जः। साधनं हस्त्यश्वादि। तेन प्रकृष्टाचरितस्य मन्त्रसमूहाराधनप्रसृतस्य। समुद्रः सागरः, सह मुद्रया च यो वर्तते। बन्धुरे हृद्ये। प्रत्याख्यानस्य प्रतिषेधस्य। परवन्तोऽन्यायत्ताः।

उपांशु गुप्तम्।

दुर्लक्ष्य हो रही थी, मानों वह पृथिवी का प्रातिजन्य नर्महास हो। मन्त्र, कोश और साधन में प्रवृत्त राजधर्म की अक्षमाला थी। वह कुबेर के कोष की संख्या बताने वाली मानों लेख्यपट्टिका थी, जो मुद्रा और अलङ्कारों से सुशोभित थी। राजा उसे देखते हुए देर तक आश्चर्य में पड़े रहे। आचार्य ने उसे उठाकर राजा के निम्नोन्नत स्कन्धभाग में बाँध दिया। तब राजा ने भी प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा—'आर्य, ऐसे रत्न प्रायः मनुष्यों को नहीं मिलते, यह तो आर्य की तपःसिद्धि है, या देवता का प्रसाद हो। जब से हमने आपको देखा है तभी से आपके महान् गुणों से हमारा हृदय आपके वशीभूत है। जीवनपर्यन्त आर्य के उपयोग के लिए इस शरीर का संकल्प करता हूँ। यथेष्ट कार्य के लिए आज्ञा करें।'

कुछ समय बीतने पर जब एकावली के सम्बन्ध की चर्चा समाप्त हुई और राज्यश्री कुछ आश्वस्त हुई तब उसने अपनी ताम्बूलवाहिनी पत्रलता को पास बुलाकर कान में धीरे से कुछ कहा। विनय को प्रदर्शित करती हुई पत्रलेखा ने हर्ष से विनती की—'देव, देवी निवेदन करती हैं कि आर्य के सामने कभी भी सिर उठा कर बात नहीं की, विज्ञापन

कुतो विज्ञापनम्। इयं हि शुचामसह्यतां व्यापारयन्ती हतदैवदत्ता च दशा शिथिलयति विनयम्। अबलानां हि प्रायशः पतिरपत्यं वावलम्बनम्। उभयविकलानां तु दुःखानलेन्धनायमानं प्राणितमशालीनत्वमेव केवलम्। आर्यागमनेन च कृतोऽपि प्रतिहतो मरणप्रयत्नः। यतः काषायग्रहणाभ्यनुज्ञयानुगृह्यतामयमपुण्यभाजनं जनः' इति। जनाधिपस्तु तदाकर्ण्य तूष्णीमेवावतिष्ठत्।

अथाचार्यः सुधीरमभ्यधात्—'आयुष्मति! शोको हि नाम पर्यायः पिशाचस्य, रूपान्तरमाक्षेपस्य, तारुण्यं तमसः-विशेषणं विषस्य, अनन्तकः प्रेतनगरनायकः, अयमनिर्वृतिधर्मा दहनः, अयमक्षयो राजयक्ष्मा, अयमलक्ष्मीनिवासो जनार्दनः, अयमपुण्यप्रवृत्तः क्षपणकः, अयमप्रतिबोधो निद्राप्रकारः, अयमनलसधर्मा संनिपातः, अयमशिव-

---

प्राणितं जीवितम्। अशालीनत्वं धाष्टर्यम्।

आक्षेपस्यापस्मारस्य। अनन्तान्कायति रावयतीत्यनन्तकः। अनिर्वृतिरस्वास्थ्यम्, निर्वाणाभावश्च। अक्षयश्चिरस्थायी, क्षयरहितश्च। जनानर्दयति पीडयतीति जनार्दनः, कृष्णश्च। अपुण्यप्रवृत्तः पापप्रवृत्तः। क्षपणको यः क्षपयति, नग्नाटकश्च। प्रतिबोधो विवेकः, स्वापादुत्थानं च। निद्रां प्रकिरति हिनस्ति निद्राप्रकारः। कर्मण्यण्। निद्राविशेषश्च मोहरूपः। अनलेनाग्निना सधर्मा सदृशः। अलसलक्षणो धर्मं आलस्यं यस्य सोऽलसधर्मा, नालसधर्माऽनलसधर्मा। सम्यङ्निपातयति घातयति यः। त्रिदोषजो व्याधिश्च स संनिपातः। शिवः श्रेयः, हरश्च शिवः। विशेषेण नयति

की बात दूर है। शोक को दुःसह बना देने वाली दैव के द्वारा की गई यह मेरी दशा नम्रता को शिथिल कर रही है। प्रायः अबलाओं के जीवित रहने का अवलम्बन पति होता है या सन्तान। जो इन दोनों से हीन हैं उनके लिए दुःखाग्नि के इन्धन के रूप में जीवित रहना केवल निर्लज्जता ही है। आर्य के आने से मरण का प्रयत्न निष्फल चला गया, इसलिए इस पुण्यहीन जन को काषाय वस्त्र धारण करने की अनुज्ञा मिले।'

तब दिवाकरमित्र ने धीरे स्वर में कहा—'आयुष्मति, शोक पिशाच का ही दूसरा नाम है, वातव्याधि (अपस्मार) का ही दूसरा रूप है, अंधकार का यौवन है और विष का ही विशेष प्रकार है। यह प्राणों का वियोग न करने वाला यमराज है। कभी न बुझने वाली अग्नि है। कभी न समाप्त होने वाला राजयक्ष्मा है। यह जन को पीड़ित करने वाला (जनार्दन, श्लेष से कृष्ण) है जो लक्ष्मी का नहीं। यह वह क्षपणक (सबका नाश करने वाला या क्षपणक साधुविशेष) है, जो अपुण्य कार्यों में लगा हुआ है या किसी अपुण्य से पहुँच पड़ता है। यह ऐसी नींद है जिससे कोई जागता नहीं। यह ऐसा सन्निपात

सहचरो विनायकः, अयमबुधसेवितो ग्रहवर्गः, अयमयोगसमुत्थो ज्योतिःप्रकारः, अयं स्नेहाद्वायुप्रकोपः, मानसादग्निसंभवः, आर्द्रभावाद्रजःक्षोभः, रसाद्भिशोषः, रागात्कालपरिणामः। तदस्याजस्रास्रस्राविणो हृदयमहाव्रणस्य बहलदोषान्धकारलब्धप्रवेशप्रसरस्य प्राणतस्करस्य शून्यताहेतोर्महाभूतग्रामघातकस्य सकलविग्रहक्षपणदक्षस्य

मारयतीति विनायकः, विनायको विघ्नो वा, गणपतिश्च विनायकः। बुधः पण्डितः, ग्रहभेदश्च बुधः। ग्रहो व्यसनम्, सूर्यादिश्च। अयोगोऽननुकूलं दैवम्, चित्तवृत्तिनिरोधाभावश्च। ज्योतिःप्रकारोऽग्निभेदः, परं ज्ञानं च। स्नेहः प्रीतिः, पुष्टिहेतुश्च घृतादिः। वायुप्रकोप उन्मादोऽत्र। मानसं चेतः, देवसरश्च। आर्द्रभावो वत्सलत्वम्, सरसत्वं च। रजो गुणविशेषो धूलिश्च। रसः प्रीतिः, रसायनं च। रागोऽभिष्वङ्गः, लौहित्यं च। कालोऽन्तकः, कृष्णश्च। तदस्येत्यादौ। तत्तस्मादस्य शोकस्य पारं विदुषामपि हृदयानि सोढुं नालम्, किं पुनरबलानां हृदयमिति संबन्धः। अजस्रं सदा। अस्रं बाष्पः, रक्तं च। व्रणं च रक्तं स्रवति। एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्। बहलदोषा बहवोऽपगुणाः, कृष्णपक्षरात्रयश्च। अन्धकारो मोहः, तमश्च। शून्यता किंकर्तव्यतामूढता। महाभूतग्रामो जन्तुसमूहः तद्घातकश्चायं, महान्तो भूताः प्राणिनो यस्मिन्। ग्रामे जनपदसमूहे तस्य यो घातकः स शून्यताया जनरहितस्य हेतुर्भवति। विग्रहः शरीरम्, विरोधश्च। दोषचक्रे मुख्यतया वर्तते यः स

(त्रिदोषजन्य व्याधि या सबका नाश करने वाला) है, जो अनल के सदृश है। यह वह विनायक (गणेश या मार डालने वाला) है जो शिव (शंकर या श्रेय) के साथ नहीं रहता। यह वह ग्रहों का समूह है जिसमें बुध (ग्रहविशेष या पण्डित) नहीं रहता। यह दुर्भाग्य से उत्पन्न हुआ एक प्रकार का अग्नि है। यह स्नेह से उत्पन्न होने वाला वायुप्रकोप या उन्माद है। मानस से उत्पन्न अग्नि है। वात्सल्य से उत्पन्न होने वाला रजोगुण का क्षोभ है (अथवा आर्द्रता के कारण धूल का भर जाना है)। यह अनुराग से होने वाला शोषण है (जो शरीर को क्षीण कर देता है)। राग से उत्पन्न होने वाली परिणामस्वरूप मृत्यु है (अथवा लाली से होने वाला कृष्ण वर्ण का परिणाम है)। यह हृदय का महाव्रण (नासूर) है, जो सदा आँसू का रक्त बहाता रहता है। यह प्राणों का वह तस्कर है जो दोषों के घने अन्धकार में प्रवेश करता है। यह महाभूतों (क्षिति आदि पांच) के ग्राम का घातक है, जो शून्यता (निर्जनता या निश्चेतनता) की अवस्था का कारण है। यह दोषों का सम्राट् है जो समस्त विग्रहों (शरीर या कलहों) को नष्ट करने में चतुर है। यह एक बड़ा रोग है जो दुबलापन,

दोषचक्रवर्तिनः कार्श्यश्वासप्रलापोपद्रवबहुलस्य दीर्घरोगस्यासद्ग्रहस्य सकललोकक्षयधूमकेतोर्जीवितापहारदक्षस्याक्षणरुचेरनभ्रवज्रपातस्य स्फुरदनवद्यविद्याविद्युद्विद्योतमानानि गहनग्रन्थगूढगर्भग्रहणगम्भीराणि भूरिकाव्यकथाकठोराणि बहुशास्त्रोद्वहनगृहन्ति विदुषामपि हृदयानि नालं सोढुमापातं किमुत नवमालिकाकुसुमकोमलानां सरसबिसतन्तुदुर्बलकमबलानां हृदयम्।

एवं सति सत्यव्रते! वद किमत्र क्रियते, कतम उपालभ्यते, कस्य पुर उच्चैराक्रन्द्यते, हृदयदाहि दुःखं वा ख्याप्यते? सर्वमक्षिणी निमील्य सोढव्यममूढेन मर्त्यधर्मणा। पुण्यवति! पुरातन्यः स्थितय एताः केन शक्यन्तेऽन्यथाकर्तुम्। संसरन्त्यो नक्तंदिवं द्राघीयस्यो जन्मजरामरण-

---

दोषचक्रवर्ती, चक्रवर्ती च सार्वभौमः, उपद्रवो बाधा, व्याधेरुपर्यन्यो व्याधिश्च। उक्तं च—'व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तरकालजः। उपक्रमविरोधित्वात्स उपद्रव उच्यते॥' इति। दीर्घरोगः क्षयादिः। असद्ग्रहोऽनर्थासक्तिः, धूमकेतुश्च। अशोभनो ग्रहः। न विद्यमाना क्षणमपि रुचिर्भोजनाभिलाषः, क्षणरुचिस्तडिच्च। स्फुरन्त्याः प्रकाशमानाया अनवद्याया विद्याया विद्युता किंचिन्मात्रज्ञानेन विद्युदपि सकृदेव स्फुरति। तथा गहनानां दुरवग्रहाणां ग्रन्थानां ये विषमतमाः प्रदेशास्तेषां गुप्तो यो गर्भः तद्ग्रहणेन गम्भीराणि।

पुण्यवति, पुरातन्य इत्यादौ। ध्वनिच्छायाजन्मजरामरणघटनान्येव घटीयन्त्रराज्या रज्जवः। पञ्चजना मानुषाः। 'मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः।

सांस और बड़बड़ाहट उत्पन्न करता है। यह समस्त लोकों का क्षय करने वाला दुष्ट ग्रह धूमकेतु है। प्राणों का अपहरण करने वाला बिजली एवं मेघ से रहित यह वज्रपात है। अनिन्द्य विद्याओं के प्रकाश से चमकने वाले, शास्त्रों के गहन तत्त्व को समझने से गम्भीर, अनेक काव्यकथाओं को जानने से कठोर, बहुत से शास्त्र का अभ्यास करने वाले विद्वानों के हृदय भी शोक को नहीं सह सकते, तो नवमालिका के फूलों के सदृश कोमल मृणालतन्तु की भाँति दुर्बल अबलाओं के हृदय की तो बात ही क्या!

अतएव हे सत्यव्रते, तुम्हीं कहो अब क्या किया जाय? किसे उलाहना दें? किसके आगे जोर-जोर से रोवें? किसे हृदय का जलाने वाला दुःख कहें? मनुष्य को सब कुछ आँखें मूंद कर सहना चाहिए। हे पुण्यवती, इन पुरानी स्थितियों को कौन मेट सकता है? सभी मनुष्यों के लिए रात-दिन, जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रहट की घड़ियों की लम्बी माल

घटनघटीयन्त्रराजिरजवः सर्वपञ्चजनानाम्। पञ्चमहाभूतपञ्चकुलाधिष्ठितान्तःकरणव्यवहारदर्शननिपुणाः सर्वंकषा विषमा धर्मराजस्थितयः। क्षणमपि क्षममाणा गलन्त्यायुष्कलाकलनकुशला निलये निलये कालनालिकाः। जगति सर्वजन्तुजीवितोपहारपातिनी संचरति झटिति चण्डिका यमाज्ञा। रटन्त्यनवरतमखिलप्राणिप्रयाणप्रकटनपटवः प्रेतपतिपटहाः। प्रतिदिशं पर्यटन्ति पेटकैः प्रतप्तलोहलोहिताक्षाः कालकूटकान्तिकालकायाः कालपाशपाणयः कालपुरुषाः। प्रतिभवनं भ्रमन्ति भीषणकिंकरकरघट्टितयमघण्टापुटपटुटांकारभयंकराः सर्वसत्त्वसंघसंहरणाय घोराघातघोषणाः। दिशि दिशि वहन्ति बहुचिताधूमधूसरितप्रेतपतिपताकापटुपतितगृध्रदृष्टयः शोककृतकोलाहलाकुलकुटुम्बिनीविकीर्णकेशकलापशबलशवशिबिकासहस्रसंकुलाः किलकिलायमानश्मशानशिविरशिवाशावकाः परलोकावसथपथिकसार्थप्रस्थानविशिखा वीथयः।

स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरुषा नरः॥' इति। पञ्चकुलोऽध्यक्षः। अन्तःकरणं मनः। कला भागाः, कलनं संख्यानम्। नालिका होराः। चण्डिका भीषणा, रौद्रदेवताभेदश्च। पेटकैः समूहैः। घोषणा राजाज्ञया पश्वादिसंबद्धः पटहादिशब्दो दिशि दिश्येवंविधा रीतिर्विधेयेति। विशिखा वीथयः रथ्या मार्गा वहन्तीति संगतिः। कुटुम्बिन्योऽपहेलाः। शिबिका वाहनम्। श्मशानमेव शिबिरं येषां ते।

घूम रही है। पंचमहाभूतों के द्वारा जितने मानस व्यवहार हो रहे हैं वे सब यमराज के विषम अनुशासन से नियंत्रित होकर विलय को प्राप्त हो जाते हैं। घर-घर में आयु को नापने की घड़ियां लगी हुई हैं जो एक-एक क्षण का हिसाब रखती हैं। सब प्राणियों के प्राणों के उपहार लेने के लिए यमराज की भीषण आज्ञा चारों ओर घूम रही है। समस्त प्राणियों के प्रस्थान की सूचना देने वाले यमराज के नगाड़े निरन्तर बज रहे हैं। तपे हुए लोहे के समान लाल आँखों वाले विष की भाँति काले शरीर वाले कालपुरुष हाथों में कालपाश लिये झुण्ड के झुण्ड चारों ओर प्रत्येक नगर में घूम रहे हैं। हर घर में यमराज के भयंकर दूत यमघण्टा बजा कर सब जीवों के संहरण के लिए घोर घोषणा कर रहे हैं। हर दिशा में परलोक के यात्रियों की पगडंडियां बनी हुई हैं, जहाँ चिता के निकलते हुए धूम से मलिन यमराज की पताकाओं पर गीध अपनी दृष्टि डाले हुए है, जिन पर शोक से रुदन करती हुई व्याकुल विधवाओं के टूट कर बिखरे केशों से अंकित अर्थियाँ आ रही हैं, जहाँ मरघट की झाड़ियों में सियारियों के बच्चे चिल्ला रहे हैं। कालराशि की चिता के कोयलों

सकललोककवलावलेहलम्पटा बहला बहुंलिहा लेढि लोहिताश्चिता चिताङ्गारकाली कालरात्रिजिह्वा जीवितानि जीविनाम्। तृप्तिमशिक्षिता च भगवतः सर्वभूतभुजो बुभुक्षा मृत्योः। अतिद्रुतवाहिनी चानित्यतानदी। क्षणिकाश्च महाभूतग्रामगोष्ठ्यः। रात्रिषु भङ्गुराणि पात्रयन्त्रपञ्जरदारूणि देहिनाम्। अशुभशुभावेशविवशा विशरारवः शरीरनिर्माणपरमाणवः। छिदुरा जीवबन्धनपाशतन्त्रीतन्तवः। सर्वमात्मनोऽनीश्वरं विश्वं नश्वरम्। एवमवधृत्य नात्यर्थमेवार्हसि मेधाविनि मृदुनि मनसि तमसः प्रसरं दातुम्। एकोऽपि प्रतिसंख्यानक्षण आधारीभवति धृतेः अपि च दूरगतेऽपि हि शोके नन्विदानीमपेक्षणीय एवायं ज्येष्ठः पितृकल्पो भ्राता भवत्या गुरुः। इतरथा को न बहु मन्येत कल्याणरूपमीदृशं संकल्पमत्रभवत्याः काषायग्रहणकृतम्। अखिलमनोज्वरप्रशमनकारणं हि भगवती प्रव्रज्या। ज्यायः खल्विदं पदमात्मवताम्। महाभागस्तु भिनत्ति मनोरथमधुना।

बहला दीर्घा गौश्च। उक्तं च—'बहलाः कृत्तिका गावः' इति च। बहुंलिहा छिद्रान्वेषिणी, बहुंलिहा च गौर्वत्सस्य भवति। देहिनां शरीरवतां जीवाः प्राणिन एव बन्धनपाशतन्त्रीतन्तवः। आत्मनोऽनीश्वरं न स्वायत्तम्। परतन्त्रमित्यर्थः। प्रतिसंख्यानं विवेककुशला मतिः। दूरगते परधरारूढे। ज्येष्ठो भ्रातेत्याद्युत्तरोत्तरं साभिप्रायं व्याख्येयम्।

के समान कालजिह्वा प्राणियों के जीवन चाट रही है जैसे गाय बछड़े को। समस्त प्राणियों को चट कर जाने वाले भगवान् मृत्युदेव की भूख कभी नहीं बुझती। अनित्यता रूपी नदी तेजी से बह रही है। पंचमहाभूतों की पंचायतें क्षण भर ही रहती हैं। साधु जैसे दिन में कमण्डलु रखने के लिए लकड़ियों को जोड़ कर पिंजड़ा बनाते हैं और रात को उसे खोल डालते हैं वैसा ही यह शरीर का यंत्र है। शरीर के परमाणु पुण्य और पाप के अनुसार विवश होकर एक दूसरे का घात करते है। जीव को बंधन में बांधने वाले पाश की डोरी के तन्तु एक दिन अवश्य टूटते हैं। सारा नश्वर संसार परतंत्र है। हे मेधाविनि, ऐसा जान कर अपने सुकुमार मन में अन्धकार को न फैलने दो। विवेक का एक क्षण भी धृति के लिए बड़ा सहारा होता है। शोक के कम होने पर भी अब यह पितृतुल्य तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता ही तुम्हारा गुरु है, अन्यथा कौन ऐसा है जो काषायग्रहण के लिए आपके ऐसे कल्याणरूप संकल्प की सराहना न करे। प्रव्रज्या ही सब प्रकार के मानसिक ज्वरों को शान्त करने का उपाय है। मनस्वी के लिए यह उत्तम कार्य है। इस समय महाभाग (हर्ष) तुम्हारे मनोरथ विफल करते हैं। जो वे आदेश दें वही तुम्हें

यदयमादिशति तदेवानुष्ठेयम्। यदि भ्रातेति यदि ज्येष्ठ इति यदि वत्स इति यदि गुणवानिति यदि राजेति सर्वथा स्थातव्यमस्य नियोगे' इत्युक्त्वा व्यरंसीत्।

उपरतवचसि च तस्मिन्निजगाद नरपतिः—'आर्यमपहाय कोऽन्य एवमभिदध्यात्। अनभ्यर्थितदैवनिर्मिता हि विषमविपदवलम्बनस्तम्भा भवन्तो लोकस्य। स्नेहार्द्रमूर्तयो मोहान्धकारध्वंसिनश्च धर्मप्रदीपाः। किंतु प्रणयप्रदानदुर्ललिता दुर्लभमपि मनोरथमतिप्रीतिरभिलषति। धीरस्यापि धाष्टर्यमारोपयति हृदयलघिमलङ्घितमतिवल्लभत्वम्। युक्तायुक्तविचारशून्यत्वाच्च शालीनमपि शिक्षयन्ति स्वार्थतृष्णाः प्रागल्भ्यम्। अभ्यर्थनाया रक्षन्ति च जलनिधय इव मर्यादामार्याः। दत्तमेव च शरीरमिदमनभ्यर्थितेन प्रथममेवातिथ्याय माननीयेन भवता मह्यम्। अतः किंचिदर्थये भदन्तमियं नः स्वसा बाला च बहुदुःखखेदिता च सर्वकार्यावधीरणोपरोधेनापि यावल्लालनीया नित्यम्। अस्माभिश्च भ्रातृवधापकारिरिपुकुलप्रलयकरणोद्यतस्य बाहोर्विधेयैर्भूत्वा सकललोकप्रत्यक्षं प्रतिज्ञा कृता। पूर्वावमाननाभिभवमसहमानैरर्पित आत्मा कोपस्य।

अनभ्यर्थितेत्यादौ ध्वनिच्छायावगन्तव्या। धीरस्य गम्भीरस्य। लङ्घितमाक्रान्तम्। शालीनमधृष्टत्वम्। भदन्तेति बौद्धकर्मविशेषपूजावचनम्। अवधीरणमुपे-

---

करना चाहिए। यदि इन्हें ज्येष्ठ, या भ्राता, या स्निग्ध, या गुणी, या राजा समझते हो तो सर्वथा इनके आदेश का पालन करना चाहिए।' इतना कहकर आचार्य चुप हो गए।

उनके चुप हो जाने पर राजा ने कहा—'आर्य के सिवा कौन इस प्रकार के वचन कहेगा? आर्य समस्त संसार को विषम विपत्तियों में सहारा देने वाले स्तम्भ हैं जिसे दैव ने प्रार्थना के बिना ही बना दिया है। स्नेह से आर्द्र, और मोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले दीपक हैं, किन्तु प्रणय के लाभ से बढ़ी हुई प्रीति दुर्लभ मनोरथ की भी अभिलाषा करने लगती है। हृदय के संकोच का अतिक्रमण करने वाला अतिप्रेम धीर पुरुष को भी धृष्ट कर देता है। युक्तायुक्त के विचार से रहित स्वार्थ की तृष्णाएँ शील वाले व्यक्ति को प्रगल्भ बना देती हैं। आर्य लोग समुद्र की तरह अभ्यर्थना की मर्यादा रखते हैं। माननीय आर्य ने याचना के बिना ही इस शरीर को आतिथ्य के लिए मुझे अर्पित किया है इसलिए सेवा में एक याचना करता हूँ। काम हरज करके भी अनेक कष्टों से दुखी मेरी इस छोटी बहिन का लालन करना मेरा कर्त्तव्य है। किन्तु भाई के वध का बदला लेने के लिए शत्रुकुल के नाश की प्रतिज्ञा मैं सब लोगों के समक्ष कर चुका हूँ। पहले शत्रु द्वारा किए गए अपने अपमान के अभिभव को न सह सकने के कारण हम

अतो नियुङ्क्तां कियन्तमपि कालमात्मानमार्योऽपि कार्ये मदीये। दीयतामतिथये शरीरमिदम्। अद्यप्रभृति यावदयं जनो लघयति प्रतिज्ञाभारम्, आश्वासयति च तातविनाशदुःखविक्लवाः प्रजाः, तावदिमामत्रभवतः कथाभिश्च धर्म्याभिः, कुशलप्रतिबोधविधायिभिरुपदेशैश्च दूरापसारितरजोभिः, शीलोपशमदायिनीभिश्च देशनाभिः, क्लेशप्रहाणहेतुभूतैश्च तथागतैर्दर्शनैः, अस्मात्पार्श्वोपयायिनीमेव प्रतिबोध्यमानामिच्छामि। इयं तु ग्रहीष्यति मयैव समं समाप्तकृत्येन काषायाणि। अर्थिजने च किमिव नातिसृजन्ति महान्तः। सुरनाथमात्मास्थिभिरपि यावत्कृतार्थमकरोद्धैर्योदधिर्दधीचः। मुनिनाथोऽप्यनपेक्षितात्मस्थितिरनुकम्पेति कृत्वा कृपावानात्मानं वठरसत्त्वेभ्यः कतिकृत्यो न दत्तवान्। अतः परं भवन्त एव बहुतरं जानन्ति।' इत्युक्त्वा तूष्णीं बभूव भूपतिः।

भूयस्तु बभाषे भदन्तः—'भव्या न द्विरुच्चारयन्ति वाचम्। चेतसा प्रथममेव प्रतिग्राहिता गुणास्तावकाः कायबलिमिमाम्। अमुना जन्मेनो-

---

चणम्। विधेयैरायत्तैः। नियुङ्क्तां स्वीकरोतु। देशनाभिः शिक्षाभिः। क्लेशा अविद्यादयस्तेषां प्रहाणम्। तथागतैर्बौद्धैरात्मास्थिभिरपि। यावदित्यत्र यावच्छब्दोऽवधारणे। मुनिनाथः सुगतः। वठरसत्त्वा जडप्राणिनः सिंहाद्याः। एवं किल श्रूयते—पुरा काचन सिंही प्रसवकाले बुभुक्षातुरा स्वशावकान्भक्षयितुं प्रवृत्ता, सौगतेन च समालोक्यातिकारुण्यात्स्वमांसप्रदानेन तस्मान्निवारितेति।

भव्या भाग्यवन्तः। काय एव बलिहेतुत्वाद्बलिरिव कायबलिस्ताम्।

अपने क्रोध के वशीभूत हैं। कुछ समय तक आर्य भी मेरे इस काम में सहायक हों। मैं आपका अतिथि हूँ, कृपया मुझे अपने शरीर का दान दें। आज से लेकर जब तक मैं अपनी प्रतिज्ञा के बोझे को हल्का न बनाऊँ, पिता की मृत्यु के दुःख से व्याकुल प्रजाओं को ढाढ़स न दूं, तब तक मैं चाहता हूँ कि आप मेरे साथ ही रहने वाली मेरी बहिन को धार्मिक कथाओं से रजोगुणरहित कुशल को उत्पन्न करने वाले उपदेशों से, शील और शम देने वाली शिक्षाओं से, क्लेशों को मिटाने वाले भगवान् तथागत के सिद्धान्तों से समझाते रहें। जब मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लूँगा तो मेरे साथ ही यह भी काषाय ग्रहण करेगी। बड़े लोग प्रार्थी के लिए क्या नहीं दे डालते हैं? धैर्य के समुद्र दधीचि ने इन्द्र को अपनी हड्डियाँ दे डाली थीं। क्या मुनिनाथ बुद्ध ने शरीर की कुछ परवाह न करके अनुकम्पावश अपने आपको कितनी बार हिंस्र पशुओं के लिए नहीं दे डाला? उदाहरण तो आप स्वयं इससे अधिक जानते हैं।' यह कह कर हर्ष चुप हो गए।

भदन्त ने फिर कहा—'भाग्यशाली को दो बार बात कहने की आवश्यकता नहीं।

पयोगस्तु निरुपयोगस्यास्य लघुनि गुरुणि वा कृत्ये गुणवदायत्तः' इति।
अथ तथा तस्मिन्नभिनन्दितप्रणये प्रीयमाणः पार्थिवस्तत्र तामुषित्वा विभावरीमुषसि च वसनालंकारादिप्रदानपरितोषितं विसर्ज्य निर्घातमाचार्येण सह स्वसारमादाय प्रयाणकैः कतिपयैरेव कटकमनुजाह्नवि निविष्टं प्रत्याजगाम्।

तत्र च राज्यश्रीप्राप्तिव्यतिकरकथां कथयत एव प्रणयिभ्यो रविरपि ततार गगनतलम्। बहलमधुपङ्कपिङ्गलः पङ्कजाकर इव संचुकोच चक्रवाकवल्लभो वासरः। प्रकीर्णानि नवरुधिररसारुणवर्णानि लोकालोकजुंषि यजूंषीव कुपितयाज्ञवल्क्यवक्त्रवान्तानि निजवपुषि पूषा पापमूंषि पुनरपि संजहार जालकानि रोचिषाम्। क्रमेण च समुपोह्यमानमांसलरागरोचिष्णुरुष्णांशुरुष्णीषबन्धसहजचूडामणिरिव वृकोदरकरपुटोत्पाटितः, प्रत्यग्रशोणितशोणाङ्गरागरौद्रो द्रौणायनस्य रुद्रभिक्षादानशौण्डपुरमथन-

---

पद्मषण्डोऽपि चक्रवाकप्रियो मुकुलितो भवति। रुधिररसवत्तेन चारुणवर्णानीति यजूंषीति वेदोपलक्षणार्थः। याज्ञवल्क्यः शाकल्यस्य मुनेर्वेदानधीत्याज्ञामकुर्वन्गुरुणोपालब्धः 'वेदान्परित्यज' इति। ततस्तेन चत्वारोऽपि वेदा रक्तोपक्लिन्ना उद्वान्ताः। ते च शाकल्यमुनिना स्वे वपुषि संक्रान्ता इति श्रुतिः। क्रमेणेत्यादावुष्णांशुर्मुहूर्तमेवंविधो दृश्यत इति संबन्धः। समुपोह्यमानो वर्धमान इत्यर्थः। उष्णीषो बध्यते यत्र स उष्णीषबन्धो मस्तकः। वृकोदरो भीमसेनः। द्रौणायनोऽश्वत्थामा। अत्र कथा—अश्वत्थामा सौप्तिके हतपुत्रया द्रौपद्या भीमसेनोऽभ्यर्थायि

मैं पहले ही अपने मन में इस शरीर को आपके गुणों के समर्पित कर चुका हू। किसी उपयोग में न आने वाला यह शरीर छोटे या बड़े जिस काम में इसका उपयोग हो सके आपके अधीन है।' इस प्रकार दिवाकरमित्र से अभिनन्दित होकर हर्ष उस रात को वहीं रहे। अगले दिन वस्त्र, अलंकार आदि देकर निर्घात को विदा किया। तब आचार्य और राज्यश्री को साथ लेकर कुछ पड़ाव करते हुए गंगा के किनारे अपने कटक में लौट आए।

कटक में राज्यश्री के मिलने की कथा को प्रेमीजन सुन-सुना रहे थे कि सूर्य भी आकाश को पार कर गए। चक्रवाकों को प्रिय लगने वाला दिन मधु के पंक की भाँति ललछहूँ वर्ण के कमल-समूह की तरह संकुचित हो गया। सूर्य ने नये रुधिर के समान लाल वर्ण वाली, लोकालोक पर्वत तक फैली हुई, पाप का क्षय करने वाली अपनी किरणों के जाल को पुनः अपने शरीर में सिकोड़ लिया। जैसे कुपित याज्ञवल्क्य के मुख से वान्त यजुष मन्त्रों को शाकल्य ने पुनः पान कर लिया था। क्रम से सूर्य की लाली मांस की लाली के समान और बढ़ी और वह ऐसा जान पड़ने लगा कि भीमसेन के द्वारा निकाली गई

मुक्तमुण्डसिरानाडिरुधिरपूरणशोभितकपिल:, कपालकर्पर इव च पैतामहः, पितृवधरुषितरामरागरचितः, पृथुविकटकार्तवीर्यांसकूटकुट्टाककुठारतुण्ड-तष्टदुष्टक्षत्रियकण्ठकुहररुधिरकुल्याप्रणालसहस्रपूरितो ह्रद इव दूररोधी रौधिरो भयनिगूढकरचरणमुण्डमण्डलाकृतिर्गुरुगरुडनखपञ्जराक्षेपक्षपण-क्षिप्तक्षतजोक्षितो व्यसुर्विभावसुः, कमठ इव च लोठ्यमानः, नभस्यरुण-गर्भमांसपिण्ड इव च खण्डिमानमानीतः, नियतकालातिपातदूयमान-दाक्षायणीक्षिप्तः, धातुतट इव च सुमेरोरसुरवधाभिचारचरुपचनपिशुनः, शोणितकाथकषायितकुक्षिरतिविसंकटः, कटाह इव च बार्हस्पत्यः, सद्यो-गलितगजदानवदेहलोहितोपलेपभीषणः, मुखमण्डलाभोग इव महाभैरवस्य

यद्यश्वत्थाम्नः शिरश्छित्त्वा नानीयते तदाहं जीवितं त्यजामीति। ततोऽहमेवं करो-मीति प्रतिज्ञायान्तं भीमं दृष्ट्वा व्यासाश्रमस्थो रणश्रान्तो घृताभ्यक्तोऽश्वत्थामा शस्त्रभावाद्दिषीकाः संमन्त्र्य ब्राह्ममस्त्रं भीमवधाय ददौ। एकाकिनश्च भ्रातुर्गमना-न्द्भीतेनार्जुनेन कृष्णसहितेन तमेवानुसरता ब्रह्मशिरोऽस्त्रं मुमुचे। तदवसरागतैश्च नारदाद्यैर्मध्यस्थैर्भूत्वोक्तं द्रौणेरस्त्रमभिमन्त्र्य प्रियाया गर्भे पतत्विति अर्जुनेनाप्या-त्मीयेऽस्त्रे संहृते भीमोऽश्वत्थाम्नः सहजं मूर्धमणिमुद्धीय नातिचिरेणाजगामेति। मुक्तं त्यक्तम्। मुण्डं शिरः। सिरा नाड्यः, रुधिरवाहिन्यो नाड्यः, कुट्टाकश्छेदनशीलः। कुठारतुण्डं कुठारधारा। आक्षेपक्षपणमुत्क्षिप्य परित्यागः। क्षिप्तं निःसृतम्। लोठ्य-मानः परिभ्रमन्। नियतकालातिपातः प्रलयागमः। दाक्षायणी काली। पिशुनः

नये रक्त के लाल अंगराग से रौद्र, अश्वत्थामा के ललाट पर सहज उत्पन्न हुई मणि हो। अथवा वह ब्रह्मा के मस्तकरूपी उस खप्पर की भाँति लग रहा था जिसे भिक्षा लेने के लिए शिव ने काटकर बहती हुई शिराओं के रक्त से भर दिया था। अथवा वह पितृवध से कुपित परशुराम द्वारा निर्मित दूर तक फैला हुआ रुधिर का ह्रद था जो सहस्रार्जुन के चौड़े और विकट कन्धों के चीरने वाले कुठार की धार से काटे हुए दुष्ट क्षत्रियों के गले से निकलती हुई रुधिर की सहस्रों पनालियों से भरा गया था। अथवा सूर्य का वह गोला गरुड के नखों से क्षतविक्षत, भय के मारे हाथ-पैर-मुण्डी सिकोड़े हुए विगत-प्राण विभावसु कछुए के आकाश में लुढ़कते हुए लोथड़े की तरह दिखाई पड़ रहा था। अथवा गर्भ की नियत अवधि के बीतने से दुःखी विनता के द्वारा आकाशमें टुकड़े करके फेंके हुए उस अण्डे की तरह लग रहा था जिसके भीतर गर्भ की दशा में अरुण का अपूर्ण मांसपिण्ड हो। अथवा वह गैरिकतट सुमेरु था जिसे प्रलय के अवसर में काली ने तोड़ डाला था। अथवा वह बृहस्पति के उस कटाह की तरह था जिसमें असुरों के नाश के लिए अभिचार कर्म करते हुए वे शोणित के क्वाथ में चरु पका रहे थे। अथवा लाल सूर्य की वह झाँकी महाभैरव के उस मुखमण्डल की तरह थी जो तुरन्त मारे हुए गजासुर के

मुहूर्तमदृश्यत । जलनिधिजलप्रतिबिम्बितरविबिम्बराजिभास्वराभ्राव-लम्बिनी गृहीतार्द्रमांसभारेव चाबभासे वासरावसानवेला वेतालनिभा। ज्वलत्संध्यारागरज्यमानजलप्रवाहः पुनरिव पुराणपुरुषपीवरोरुसंपुटपिष्ट-मधुकैटभरुधिरपटलपाटलवपुरभवदधिपतिरर्णसाम् । समवसिते च संध्या-समये समनन्तरमपरिमितयशःपानतृषिताय मुक्ताशैलशिलाचषक इव निजकुलकीर्त्या, कृतयुगकरणोद्यतायादिराजराजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया, सकलद्वीपजिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत इव चायत्या, श्वेत-भानुरुपानीयत निशया नरेन्द्रायेति भद्रमोम् ॥

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरितेऽष्टम उच्छ्वासः ।



सूचकः । वेतालोऽपि गृहीतार्द्रमांसभरो भवति । पटलं समूहः । समवसिते निवृत्ते । संध्यासमये निशया । नरेन्द्राय श्वेतभानुरुपानीयतोपायनीकृत इति संबन्धः । आदिराजस्य मनोः, वैन्यस्य वा । मुद्रानिवेशो राज्याधिकारमहामुद्रा । चलिताय निर्गताय । आयत्याऽऽगामिशुभदैवेनेति भद्रमोम् ॥

दुर्बोधे हर्षचरिते संप्रदायानुरोधतः । गूढार्थोन्मुद्रणं चक्रे शंकरो विदुषां कृते ॥

इति महाकविचूडामणिशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेतेऽष्टम उच्छ्वासः ।



टपकते हुए लोहू से भीषण दीखता है । दिन के अवसान में सन्ध्या, जो जल में प्रतिबिम्बित सूर्यमण्डल की किरणों से लाल मेघों में अवलम्बित हो रही थी, उस बैताल के साथ चिमटी जान पड़ती थी जिसने अभी कच्चा मांस खाया हो । संध्या की लाली से रञ्जित जलप्रवाह वाला समुद्र उस प्रकार लाल हो उठा जैसे विष्णु की मोटी जाँघ के बीच में दले हुए मधु-कैटभ के रुधिर से पहले कभी लाल हो गया था । सन्ध्या का विकराल समय ज्यों ही समाप्त हुआ त्यों ही रजनी हर्ष के लिये चन्द्रमा का उपहार लेकर आई, मानों अपने कुल की कीर्ति ही साक्षात् अपरिमित यश के प्यासे संगमरमर का मधुपात्र लायी हो, अथवा स्वयं राजलक्ष्मी सतयुग की स्थापना के लिये उद्यत उसके लिये चाँदी की गोल शासनमुद्रा लायी हो । अथवा उसके भाग्योदय की अधिष्ठात्री देवी ने सब द्वीपों की दिग्विजय के लिए कूच करते हुए उसको सेवा में श्वेतद्वीप का प्रतिनिधि दूत भेजा हो । इस प्रकार उस रात्रि में शुभ्र चन्द्रोदय मालूम पड़ा ।

हर्षचरित हिन्दी अनुवाद अष्टम उच्छ्वास समाप्त ।



परिशिष्टम्

बाण-प्रशस्तयः

१. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविता विन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

(श्रीचन्द्रदेवस्य)

२. हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाक् मन्ये परिम्लानताम् ॥

(रुय्यककृतव्यक्तिविवेकव्याख्याने)

३. अर्थेश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दं वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥

(उदयसुन्दर्यां सोढ्ढलस्य)

४. परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी ।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥

५. कादम्बरीसहोदर्या सुधया वै बुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥

६. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥ (त्रिविक्रमस्य)

७. जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

(गोवर्धनस्य)

८. हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

९. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥

१०. सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः ।
श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ॥ (नवसाहसाङ्के)

११. प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः ॥

(वीरनारायणचरिते)

१२. युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतियतः ॥

१३. रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी, नहि नहि, वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

१४. सहर्षचरिता शश्वत्कृतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ॥

१५. बाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कविः ।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिकतमो मणिः ॥ (रघुनाथचरिते)

१६. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

१७. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ॥ (धनपालस्य)

१८. दण्डीत्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः ।
प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते ॥

शुद्धपत्रम्

अशुद्धं	शुद्धं	पृष्ठं	पंक्तिः
निगूहन	निगूहनैः	४	६
नाटक	नाटके	७	१४
हृदयस्थः स्मृतरपि	हृदयस्थैः स्मृतैरपि	८	२६
वसना	वसाना	१६	२
गृहबुधि	गृहबुधिं	३०	१८
कुतूहलानिलीयमान	कुतूहलनिलीयमान	५१	२१
अभृत्यग्राम्यतया	प्रभृत्यग्राम्यतया	५२	१८
शोकेनामील	शोकेनाभील	६६	२२
सिद्धि	सिद्धिं	७१	२
नासहन्तः	नासहन्त	७४	७
खरखरामयूखे	खरखगमयूखे	७५	४
गिरिकणिका	गिरिकर्णिका	९०	१०
निमितम्	निर्मितम्	११३	५
रथ तुरग	रथतुरग	१५१	४
तास्बूल	ताम्बूल	२०४	६
हृषः	हृर्षः	२०९	४
दृपण	दृर्पण	२२७	२
व्यतिरिक्त	व्यतिरिक्तौ	२२९	७
निष्पृभान्	निष्प्रभान्	२४५	४
पाश्व	पार्श्व	२५२	१३
स्कन्धे	स्कन्धै	२९०	३
हव	हव	२९३	४
करीण	करिण	३२०	१०
नाचरनश्चन्दनेन	नाचरतश्चन्दनेन	३५१	२
सम्प्रेष्य	संप्रेष्य	,,	८
निमित्त	निमित्तं	३५३	३
भारिकैमहान	भारिकैर्महान	३६८	१
पनिषद्	पनिषदै	४१४	२
श्वाम्यसन्निश्च	श्वाम्यसन्निश्च	,,	५